ॐ

स्वामी शरण कृत

यजुर्वेद भाष्य

सरल पाठ, मन्त्रार्थ, भावार्थ, पदार्थ सहित

प्रकाशक

पालीवाल प्रकाशन

117/एच-1/02, पाण्डु नगर, जे.के. मन्दिर के सामने, कानपुर - 208005

ईमेल - **paliwalprakashanvedicsahitya@gmail.com**

बेवसाईट - **vedayan.simplesite.com**

संस्करण : प्रथम, बुद्ध पूर्णिमा, वैशाख, 2074 वि., 5119 युगाब्द (ई. 2017)

सर्वाधिकार : स्वामी शरण

मूल्य : पन्द्रह सौ रुपये

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः,
सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म ॥

पुस्तक : **यजुर्वेद भाष्य**

लेखक : स्वामी शरण

सर्वाधिकार : लेखकाधीन

संस्करण : प्रथम 2019

सहयोग राशि : रु. 1500/–

प्रकाशक : **पालीवाल प्रकाशन**

117/एच-1/02, पाण्डु नगर, जे.के. मन्दिर के सामने, कानपुर - 208005

ईमेल - paliwalprakashanvedicsahitya@gmail.com

बेवसाईट - vedayan.simplesite.com

मुद्रक : **पालीवाल प्रकाशन**

117/एच-1/02, पाण्डु नगर, जे.के. मन्दिर के सामने, कानपुर - 208005

ईमेल - paliwalprakashanvedicsahitya@gmail.com

बेवसाईट - vedayan.simplesite.com

ॐ

स्वामी शरण कृत

यजुर्वेद भाष्य

सरल पाठ, मन्त्रार्थ, भावार्थ, पदार्थ सहित

विषय सूची

प्रथमो अध्यायः	09-28
द्वितीयः अध्यायः	29-48
तृतीयो अध्यायः	49-73
चतुर्थो अध्यायः	74-93
पञ्चमो अध्यायः	94-118
षष्ठो अध्यायः	119-142
सप्तमो अध्यायः	143-173
अष्टमो अध्यायः	174-211
नवमो अध्यायः	212-237
दशमो अध्यायः	238-260
एकादशो अध्यायः	261-304
द्वादशो अध्यायः	305-365
त्रयोदशो अध्यायः	366-401
चतुर्दशो अध्यायः	402-427
पञ्चदशो अध्यायः	428-472
षोडशो अध्यायः	473-505
सप्तदशो अध्यायः	506-558
अष्टादशो अध्यायः	559-601
एकोनविंशो अध्यायः	602-652
विंशो अध्यायः	653-695
एकविंशो अध्यायः	696-743

द्वाविंशो अध्यायः 744-767
त्रयोविंशो अध्यायः 768-800
चतुर्विंशो अध्यायः 801-827
पञ्चविंशो अध्यायः 828-860
षड्विंशो अध्यायः 861-874
सप्तविंशो अध्यायः 875-898
अष्टाविंशो अध्यायः 899-936
एकोनत्रिंशो अध्यायः 937-973
त्रिंशो अध्यायः 974-988
एकत्रिंशो अध्यायः 989-999
द्वात्रिंशो अध्यायः 1000-1007
त्रयस्त्रिंशो अध्यायः 1008-1053
चतुस्त्रिंशो अध्यायः 1054-1078
पञ्चत्रिंशो अध्यायः 1079-1087
षड्त्रिंशो अध्यायः 1088-1096
सप्तत्रिंशो अध्यायः 1097-1105
अष्टात्रिंशो अध्यायः 1105-1115
एकोनचत्वारिंशो अध्यायः 1116-1121
चत्वारिंशो अध्यायः 1122-1130

ॐ

निवेदन

हमारी मान्यता है कि वेद भगवान् ही हमारे गुरु हैं। वेद ही परमात्मा का शब्द-शरीर तथा प्रत्यक्ष रूप है। वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य तथा भारतीय धर्म - संस्कृति का मूल स्रोत है। वेद का पाठ तथा स्वाध्याय करना हमारा परम धर्म है। हमारी मान्यताएँ, चिन्तन तथा आचार - विचार वेद के अनुकूल होना चाहिए। वेद में सूक्त का गठन महत्वपूर्ण है। अतः भाव, विचार, सन्देश को स्पष्ट रूप से समझने के लिए सम्पूर्ण सूक्त को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है। मात्र एक मन्त्र को लेकर विचार करने पर भ्रम भी हो सकता है। यद्यपि बहुधा एक मन्त्र अथवा उसका कोई अंश भी अत्यन्त महत्वपूर्ण सन्देश या मार्गदर्शन दे सकता है।

हमने वेद भाष्य में मन्त्रों का सरल पाठ देने के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ भी प्रस्तुत किया है। इसका स्वाध्याय कर लें तो धात्वादि कोश, सरल संस्कृत व्याकरण तथा वैदिक शब्दकोश का उपयोग कर विचारशील परिजन सम्पूर्ण वेद का इसी रूप में प्रामाणिक अर्थ करने में समर्थ हो सकते हैं। सरल पाठ में मन्त्र का सन्धियों से मुक्त पाठ प्रस्तुत किया जाता है। इसका अर्थ है कि पदान्त में अन्य पद की सन्धि नहीं होती है। सरल पाठ में क्रिया विभक्ति अथवा नामिक विभक्ति के पश्चात् कोई शब्द या पद सन्धि के द्वारा नहीं मिलाया जाता है। इसी प्रकार अव्यय आदि शब्दों में जहाँ विभक्ति का लोप होता है, उनके अन्त में भी किसी पद या शब्द या शब्दांश की सन्धि नहीं होती है। इस प्रकार सरल पाठ में सभी पद पृथक् तथा स्पष्ट होते हैं। वेद मन्त्रों का सरल पाठ जनसाधारण के लिए, विशेष रूप से विद्यार्थियों के लिए वेद पाठ तथा अर्थ समझने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

मन्त्रार्थ में हमने मन्त्र का यथासम्भव शाब्दिक अनुवाद देने का प्रयास किया है। वेदमन्त्र के किस पद के लिए भाषा में किस पद का प्रयोग किया गया है, यह भी पूर्णतः स्पष्ट है। मन्त्र का पद यथावत् देकर भाषा में अर्थ दिया गया है। संस्कृत में बहुधा वर्तमान काल की सहायक क्रियाएं अस्ति (है) आदि का लोप होता है, अर्थात् इनके विना वाक्य पूर्ण हो जाता है। भाषा में इनका प्रयोग आवश्यक होता है। हमने प्रयास किया है कि उनको भी कोष्ठक में दिया जाये जिससे यह स्पष्ठ रहे कि यह शब्द वेदमन्त्र में नहीं है तथा वाक्य पूरा करने के लिए भाषा में लिखना पड़ा है। इसी प्रकार संयोजक शब्दों (अथवा, तथा आदि) भी वाक्य पूर्ण करने के लिए इसी रूप में दिये गये हैं। इस प्रकार हमने मन्त्रार्थ में तटस्थता, निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता तथा प्रामाणिकता का ध्यान रखने का पूर्ण प्रयास किया है। फिर भी यदि कोई भूल-चूक रह गयी होगी तो विद्वानों के मार्गदर्शन के अनुसार भविष्य में संशोधन-परिष्कार किया जा सकता है।

भावार्थ में मन्त्र के भाव तथा सन्देश को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। यह वेदार्थ नहीं है, भावार्थ है। इसमें हमारे विवेक की सीमा है तथा मतभेद के लिए पर्याप्त अवकाश भी है। इससे वेदमन्त्र तथा वेदार्थ की प्रामाणिकता प्रभावित नहीं होती है। प्रवचनकर्ता इसमें अपने विवेक के अनुसार परिवर्तन-परिष्कार के लिए स्वतन्त्र हैं।

पदार्थ में मुख्यतः धातुज शब्दों में धातु स्पष्ट करना आवश्यक माना गया है। अन्य पदों सर्वनाम, अव्यय, संख्या, उपसर्ग आदि के अर्थ को लेकर कोई मतभेद नहीं है। संज्ञा, विशेषण तथा क्रियाएं धातुज हैं। उनमें धातु स्पष्ट कर देने से वास्तविक शाब्दिक अर्थ स्पष्ट हो जाता है। कुछ धातुएं अनेकार्थी भी होती हैं। मन्त्र में जिस अर्थ की उपयोगिता हो, उसे ग्रहण कर सकते हैं। धातु के एक से अधिक अर्थों के अनुसार भी यदि मन्त्र का अर्थ हो सकता है तो श्लेष के रूप में स्वीकार्य है। इसमें विचारधारा को लेकर कोई दुराग्रह नहीं होना चाहिए। हमें वेद के विचारों को महत्व देना चाहिए, वेदमन्त्रों का अर्थ अपने विचार के अनुसार करने का दुराग्रह उचित नहीं है। वेदमन्त्रों का सरल स्वाभाविक शाब्दिक अर्थ सभी अध्येता सहज रूप से जानें तथा उसका चिन्तन-मनन कर स्वयम् अपने विवेक के अनुसार विचार विकसित करें। इसके पश्चात् भावार्थ तथा व्याख्या प्रत्येक व्यक्ति अपने विवेक के अनुसार स्वतन्त्र रूप से कर सकता है।

वैदिक भाषा और संस्कृत की संरचना में सूक्ष्म अन्तर मिलता है। वेद में उपसर्ग और धातुएँ संस्कृत से अधिक हैं। विभक्तियों में बहुलता है तथा विकल्प भी स्वीकार्य हैं।

कुछ उपसर्ग और अव्ययों में त्य आदि प्रत्यय जुड़कर नामिक शब्द बन जाते हैं। फिर उनमें नामिक विभक्ति लग

जाती है। महर्षि पाणिनि ने एक सूत्र में इस नियम का उल्लेख किया है। इस प्रकार के शब्दों को अपवाद ही कहा जा सकता है। इस प्रकार नि उपसर्ग में त्य प्रत्यय जुड़कर नित्य शब्द बना। जिसका बहुवचन नित्यासः बना। इस शब्द का अर्थ नि उपसर्ग के अर्थ से लिया जायेगा। अतः नित्यासः शब्द का अर्थ निरन्तर बने रहना ही है।

उपसर्ग तथा अन्य अव्यय शब्दों में प्रत्यय जोड़कर नामिक शब्द बनते हैं। ऐसे अव्ययज अथवा निपातज शब्द संज्ञा और विशेषण बन जाते हैं परन्तु उनसे क्रियाएँ नहीं बनतीं अर्थात् उनमें आख्यातिक अथवा क्रिया विभक्तियाँ नहीं जुड़ती हैं। इस प्रकार नामिक अर्थात् संज्ञा विशेषण शब्द दो प्रकार के हैं - धातुज तथा अधातुज अथवा अव्ययज या निपातज। कुछ शब्द ध्वनि के अनुसार होते हैं, जिनकी कोई धातु नहीं होती है। उन्हें ध्वन्यानुसारी शब्द कहते हैं। जैसे - चिश्चा।

वैदिक भाषा और संस्कृत में उपसर्ग और धातुएँ लगभग समान हैं, परन्तु प्रत्यय और विभक्तियाँ में अन्तर मिलता है। वेद में उपसर्ग और धातुएँ संस्कृत से अधिक हैं। विभक्तियों में बहुलता है तथा विकल्प भी स्वीकार्य हैं। जिन शब्दों के क्रिया रूप मिल जाते हैं, उनकी धातु निश्चित है। (सिच्यते - सिच - यजु. 19/15)। हिंसा के भाव वाली धातुओं में गति का भाव निहित होता है तथा गत्यर्थक धातुओं में जानना, पाना का भाव निहित होता है। वेद को श्रुति भी कहते हैं। प्राचीनकाल में गुरु से सुनकर ही शिष्य ज्ञान प्राप्त करते थे अतः वेद में श्रु-श्रवण धातु का अर्थ जानना, विद्वान होना भी स्वाभाविक रूप से माना जाना चाहिए। श्रवस्यवः आदि शब्द विद्वान्, सुनाने वाले, सुनने वाले के लिए प्रयोग किये गये हैं।

धातु अथवा शब्द के प्रथम स्वर से पूर्व अ लगता है तथा सन्धि हो जाती है। इसे परम्परागत व्याकरण में सन्धि प्रकरण में गुण कहा गया है। इस प्रकार अ जुड़ने को प्रत्यय भी माना जाता है। यदि पहले से अ, आ है तो दोनों मिलकर दीर्घ आ हो जायेंगे, इसी प्रकार इ होने पर ए, उ होने पर ओ हो जाते हैं। उदाहरण के लिए रम् से राम, कम् से काम शब्द बनते हैं। इक प्रयय लगने पर भी ऐसा होता है। वेद में इक प्रत्यय जुड़ने पर वैदिक शब्द बनेगा। वैदिक शब्द का अर्थ है - वेद से उत्पन्न, वेद से सम्बन्धित, वेद से युक्त। यह प्रत्यय स्वार्थ अर्थात् स्वयम् के अर्थ में भी लगता है। इसका अर्थ है कि कम तथा काम शब्द के अर्थ समान होंगे। अग्नि शब्द का अर्थ ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् आदि होता है। वेद में इसी अर्थ में यह शब्द परमात्मा के लिए सर्वाधिक प्रयुक्त है। शब्दार्थ के अनुसार समाज के ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् भी अभिप्रेत हैं। इसी प्रकार वेदमन्त्रों के अनेक अर्थ होते हैं।

लोकभाषा में पञ्चमाक्षर के स्थान पर अनुस्वार (ं) का प्रयोग अधिक होने लगा है। यह अनुचित है। इससे उच्चारण अशुद्ध होता है तथा अर्थ भी अस्पष्ट हो सकता है। हमने अनुस्वार (ं) के स्थान पर क से म तक पञ्चमाक्षर का प्रयोग करने का प्रयास किया है। य, र, ल, व, श, ष, स के पहले आने वाले अनुस्वार (ं) को तालव्य, मूर्धन्य और दन्त्य स्थान के अनुसार शब्द क्रम में रखा गया है। इसी प्रकार ह से पहले आने वाला अनुस्वार (ं) स्वाभाविक रूप से ङ के स्थान पर है। ङ के स्थान पर अनुस्वार (ं) को स्वीकार किया गया है। इससे सभी को सरलता होती है। विसर्ग (:) का उच्चारण स् (सूक्ष्म) अथवा ह् (सूक्ष्म) के रूप में है। अतः इसको शब्दकोश में इसी क्रम में स्थान दिया गया है।

वेदार्थ करने में अनेक विद्वान् अपने विचार को वेद में दर्शाने का प्रयास करते हैं। इसके लिए अनेक शब्द ही नहीं, वाक्यांश तथा कई वाक्य तक वेदमन्त्र का अर्थ करते समय जोड़ देते हैं जिनके लिए कोई शब्द या पद वेदमन्त्र में होता ही नहीं है। इसे अध्याहार कहा जाता है। कहा जाता है कि अध्याहार मन्त्र का अर्थ स्पष्ट करने के लिए दिया जाता है। स्पष्ट है कि इस प्रकार विद्वान् मन्त्रार्थ के स्थान पर भावार्थ करते हैं। कई विद्वान् तो पदार्थ में भी अध्याहार के नाम पर ऐसी टिप्पणियां तक दे देते हैं जिनको उचित नहीं माना जा सकता है। हम उनकी आलोचना नहीं करना चाहते हैं। उन्होंने जो भी प्रयास किये, उससे ही वेद के अध्ययन को दिशा मिली तथा हम इस प्रकार निष्पक्ष प्रामाणिक वेदार्थ करने का प्रयास कर पा रहे हैं। भविष्य में विद्वान् अधिक उत्तम, निष्पक्ष तथा प्रामाणिक वेदार्थ प्रस्तुत करेंगे, ऐसी आशा - अपेक्षा करना स्वाभाविक है। आशा है कि हमारे सहयोगी इस कार्य को पूर्ण करेंगे। शेष जीवन काल में हमसे जो कुछ बन पड़ेगा, सेवा करने का प्रयास करते रहेंगे।

बुद्ध पूर्णिमा, वैशाख, 2074 वि. **स्वामी शरण**

पाण्डु नगर, कानपुर

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः,
सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म ॥

वेद पढ़ो सब वेद पढ़ाओ।
वैदिक भाषा को अपनाओ॥
हवन-कुण्ड, मूर्तियाँ हटाओ।
पुनर्जन्म भ्रमजाल मिटाओ॥

मिथ्या रूढ़िवाद को छोड़ो।
देव-देवियों का भ्रम तोड़ो॥
सभी अन्ध-विश्वास मिटाओ।
वेद-धर्म की ज्योति जलाओ।

ग्रह-नक्षत्र की पूजा छोड़ो।
दिशाशूल से नाता तोड़ो॥
सभी दिशा, सब पल शुभ पाओ।
मानव जाति एक सब गाओ॥

वेद पढ़ो सब वेद पढ़ाओ।
वैदिक भाषा को अपनाओ॥

स्वामी शरण
चतुर्वेद भाष्यकार

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म ॥

गायत्री साहित्य केन्द्र

वैदिक साहित्य मिलने का प्रमुख स्थान

पालीवाल प्रकाशन, पालीवाल भवन,

117/एच-1/02, पाण्डु नगर,

जे. के. मन्दिर के सामने, कानपुर - 208005

ईमेल - **paliwalprakashanvedicsahitya@gmail.com**

वेबसाइट - **vedayan.simplesite.com**

मो. 9839105629, 8687849004, 7985402016

ॐ

स्वामी शरण कृत

यजुर्वेद भाष्य

सरल पाठ, मन्त्रार्थ, भावार्थ, पदार्थ सहित

प्रथमो अध्यायः

(1) सूक्त 1

1. इषे त्वा ऊर्जे त्वा वायव स्थ, देवो वः सविता प्रार्पयतु।
श्रेष्ठतमाय कर्मणे आ प्यायध्वम्, अघ्न्याः इन्द्राय भागम्।
प्रजावतीः अनमीवा अयक्ष्माः, मा व स्तेन ईशत मा अघशंसो।
ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीः, यजमानस्य पशून् पाहि॥01॥

संहितापाठ

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽ अयक्ष्मा मा व स्तेनऽईशत माघशंसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥1॥

मन्त्रार्थ : (**देवो**) देव (**सविता**) सविता, सृष्टिकर्ता, ऐश्वर्यवान् (परमात्मा) (**त्वा**) तुमको (**इषे**) गति (**ऊर्जे**) बल, प्राण (**त्वा**) तुमको (**वायव**) रचनाशीलता में (**स्थ**) स्थित (**वः**) तुमको (**प्रार्पयतु**) अर्पण करे, प्राप्त करायें। (**श्रेष्ठतमाय**) श्रेष्ठतम (**कर्मणे**) कर्म के लिए (एवम्) (**इन्द्राय**) इन्द्र (परम ऐश्वर्यशाली) के लिए (**अघ्न्याः**) अहिंसक (विधि से) (**भागम्**) भाग (सेवा, दान) (**आप्यायध्वम्**) प्राप्त करायें। (**प्रजावतीः**) सन्तान वाली (नारियाँ) (**अनमीवा**) निरोगी हों, (**अयक्ष्मा**) गतिशील हों। (**स्तेन**) चोर, (**मा**) नही (**अघशंसो**) पापी - अपराधी (**मा ईशत**) शासन न करें। (**अस्मिन्**) इस (में) (**गोपतौ**) सुरक्षा में (**ध्रुवा**) स्थिर (**यजमानस्य**) यजमान के (**पशून्**) पशुओं (सम्यक् दृष्टि अथवा सम्बन्ध) की (**बह्वीः**) बहुविधि (**पाहि**) रक्षा करो॥1॥

भावार्थ : यजुर्वेद को कर्म प्रधान माना गया है। प्रथम मन्त्र में ही परमात्मा से कर्मशीलता, रचनाशीलता प्रदान करने के लिए प्रार्थना की गयी है। इसके लिए आवश्यक गति, बल, प्राणशक्ति देने के लिए कहा गया है। श्रेष्ठतम कर्म तथा परम ऐश्वर्य के लिए सेवा, दान आदि की भी आवश्यकता है तथा यह भी महत्वपूर्ण है कि ये सभी संसाधन अहिंसक हों अर्थात् किसी व्यक्ति को कष्ट पहुँचाकर प्राप्त न किये जायें। सबके सुख में ही अपना सुख निहित है। प्रजावती शब्द स्त्रीलिंग है, अतः स्पष्ट है कि निरोगी तथा गतिशीलता की कामना नारियों के लिए की गयी है। नारियों का स्वास्थ्य अच्छा हो, उनमें गतिशीलता हो, उनको घर तक सीमित न रखा जाए। परमात्मा से प्रार्थना है कि सुरक्षा स्थायी हो, सुनिश्चित हो। नारियों का इस प्रकार सम्मान करने वाले यजमान के मार्गदर्शकों-शुभचिन्तकों की रक्षा परमात्मा करे॥1॥

विशेष :- यजमान का शाब्दिक अर्थ है यजन करता हुआ। यज् धातु का अर्थ है देवपूजा, संगतिकरण, दान। अतः यजमान का अर्थ हुआ देवपूजा, संगतिकरण तथा दान करने वाला। ऐसे सज्जनों की रक्षा के लिए परमात्मा से प्रार्थना की गयी है। प्रयास हमें करना होगा तथा प्रार्थना से परमात्मा की सहायता मिलेगी। यजमानस्य पशून् पाहि का अर्थ है यजमान के पशुओं की रक्षा करो। पशु का सामान्य अर्थ घोड़े, गाय आदि मानना वेद की गरिमा-गम्भीरता के अनुकूल नहीं है। यजुर्वेद का प्रथम मन्त्र इतने साधारण भाव का सन्देश नहीं देता। पश्यति इति पशुः अर्थात् जो देखता है, वह पशु है। नेत्रों वाले सभी जीवों में देखने की क्षमता है, अतः सामान्य अर्थ में वे पशु हैं। परन्तु वेद में पशु का अर्थ विशेष दृष्टि वाले विद्वान् साधक ही हो सकता है। मन्त्रदृष्टा विद्वानों को ऋषि कहते हैं - **ऋषियो मन्त्र दृष्टारः**। पश्यन्ते यस्मिन् इति पशुः

इस प्रकार विग्रह करने पर अर्थ होगा, जिसमें देखते हैं। यजमान अर्थात् साधक उपासक जिसमें अपनी दृष्टि केन्द्रित करते हैं, अर्थात् परमात्मा। यहां पशु का ऐसा ही उदात्त अर्थ स्वीकार करना उचित है। श्लेष के रूप में पशु के अर्थ परमात्मा, उपासक तथा प्राणी या संसाधन माने जा सकते हैं। वेद मन्त्रों की त्रिविधि अर्थ प्रक्रिया में तीनों ही अर्थ उपयुक्त हैं। पश बन्धने धातु से भी पशु शब्द बनता है। बन्धनों की रक्षा करने का भाव है कि परमात्मा के साथ हमारे सम्बन्ध बने रहें। इस बन्धन की रक्षा करना तो आवश्यक है ही।। 1।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : इषे (इष् = गति करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **ऊर्जे** (ऊर्ज् = बल होना, प्राण होना)। **वायव** (वे = वुनना वा = गति करना) **स्थ** (स्था- स्थित होना)। **देवो** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **वः** (सर्वनाम)। **सविता** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। **प्रार्पयतु** (प्र + अर्पयतु, अर्प् = अर्पण करना)। **श्रेष्ठतमाय** (श्रि - सेवा करना)। **कर्मणे** (कृ - करना)। **आ प्यायध्वम्** (आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग), आप् - प्राप्त होना, पाना)। **अघ्न्या** (अ = नहीं, घ्न्, हन् = हिंसा करना)। **इन्द्राय** (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **भागम्** (भज् = सेवा करना, दान करना)। **प्रजावती** (प्र + जन् = जन्म होना, उत्पन्न होना या करना)। **अनमीवा** (अन् + अम् + ईवा, अन् = नहीं (उपसर्ग), अम् - रोगी होना)। **अयक्ष्मा** (इ-अय् = गति करना)। **मा** (अव्यय)। **स्तेन** (स्तेन - चुराना, लूटना)। **ईशत** (ईश = ऐश्वर्य-अधिकार होना)। **अघशंसो** (अघ् = पाप, अपराध करना, शंस् = इच्छा करना, स्तुति करना, प्रशंसा करना)। **ध्रुवा** (ध्रुव् = स्थिर होना)। **अस्मिन्** (सर्वनाम)। **गोपतौ** (गुप् = रक्षा करना)। **स्यात** (अस् = होना)। **बह्वीः** (बृह - बढ़ना)। **यजमानस्य** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना)। **पशून्** (पश् = देखना, पश-बन्धन होना)। **पाहि** (पा = रक्षा करना)।।01।।

2. वसोः पवित्रम् असि द्यौः असि, पृथिवि असि मातरिश्वनो घर्मो असि।
विश्वधा असि परमेण धाम्ना दृंहस्व, मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिः ह्वार्षीत्।।02।।

संहितापाठ

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि। परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्।।2।।

मन्त्रार्थ : (वसोः) वसु अर्थात् वासस्थान आदि को **(पवित्रम्)** पवित्र करने वाले **(असि)** (तुम) हो, **(द्यौः)** अग्रगामी **(असि)** (तुम) हो, **(पृथिवि)** पृथ्वी हो, **(मातरिश्वनो)** मातरिश्वा अर्थात् उपासक को **(घर्मो)** अभिसिंचित तथा प्रकाशित करने वाले **(असि)** हो, **(विश्वधा)** विश्व को धारण करने वाले **(असि)** हो। **(परमेण धाम्ना)** परमधाम से **(दृंहस्व)** वृद्धि करो, **(मा)** मत, नहीं **(ह्वार्मा)** कुटिलता करो, **(ते)** तुम्हारा **(यज्ञपतिः)** यज्ञपति, यजन का स्वामी, रक्षक **(मा)** मत, नहीं **(ह्वार्षीत्)** कुटिलता करे।।

भावार्थ : परमात्मा के पवित्रकर्ता, अग्रगामी, प्रेरणा, प्राणदाता आदि गुणों का वर्णन करते हुए कुटिलता से बचाने की प्रार्थना की गयी है। जिन गुणों का वर्णन किया गया है, हमें उन गुणों को स्वयम् धारण करना है तथा कुटिलता से बचना है, तभी तो परमधाम से वृद्धि की कामना पूर्ण होगी। परमात्मा के परम धाम से वह प्रेरणा तथा प्रकाश हमें प्राप्त होगा जिससे हम वृद्धि कर सकेंगे।।। 2।।

विशेष :- मातरिश्वनो का अर्थ वायु तथा लक्षणा से प्राणों को माना गया है। इस प्रकार इसका व्यापक अर्थ प्राणियों से लिया जा सकता है। मातरि श्वसति इति मातरिश्वन् व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ हुआ माता में श्वास लेने वाला अर्थात् माता के आश्रय में जीवन पाने वाला। वेद में इसका भावार्थ उत्पन्न करने वाले परमात्मा में ही जीवन को सार्थक करने वाला उपासक लेना उपयुक्त है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त): वसोः (वस - वसना)। **पवित्रम्** (पू - पवित्र करना)। **असि** (अस् = होना)। **द्यौ** (द्यु = आगे जाना)। **पृथिवि** (पृथ् = फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, विस्तार होना)। **मातरिश्वनो** (मा - मान करना, श्वस - श्वास लेना, जीते रहना)। **घर्मो** (घृ = सींचना, प्रकाशित होना)। **विश्वधा** (विश्व - सब कुछ, सभी, धा - धारण करना)। **परमेण** (अव्यव)। **धाम्ना** (धा - धारण करना आदि)। **दृंहस्व** (दृंह = वृद्धि करना)। **मा** (अव्यय)। **ह्वार्मा** (ह्वृ = वक्र होना)। **ते** (सर्वनाम)।

यज्ञपतिः (यज - देवपूजा करना, देना, संगति करना)। **ह्वार्षीत्** (ह्वृ = वक्र होना)॥ 2॥

(2) सूक्त 2

3. वसोः पवित्रम् असि शत-धारम्, वसोः पवित्रम् असि सहस्र-धारम्।
देवः त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शत-धारेण सुप्वा कामधुक्षः॥3॥

संहितापाठ

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः॥3॥

मन्त्रार्थ : (**वसोः**) वसु का, वासस्थान का (**पवित्रम्**) पवित्र (**शतधारम्**) सैकड़ों धाराओं वाले (परमात्मन् तथा विद्वान्) (**असि**) हो, (**वसोः**) वसु का, वासस्थान का (**पवित्रम्**) पवित्र (**सहस्र-धारम्**) सहस्रों धाराओं वाले (**असि**) हो। (**वसोः**) वसु का, वासस्थान को (**सुप्वा**) अच्छी तरह पवित्र करने वाला, (**कामधुक्षः**) कामनाओं को जीवन देने वाला, प्रकाशित करने वाला (**सविता**) उत्पन्न करने वाले (**देवः**) देव (परमात्मा) (**शतधारेण**) सैकड़ों धाराओं से (**त्वा**) तुम्हे (**पुनातु**) पवित्र करें॥ 3॥

भावार्थ : परमात्मा सैकड़ों - सहस्रों धाराओं से हमारे वासस्थान को पवित्र करने वाला है। सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करने वाला वह देव परमात्मा वासस्थान को सैकड़ों धाराओं से पवित्र करता है तथा अच्छी पवित्र कामनाओं-इच्छाओं को जीवन देता है, प्रकाशित करता है अर्थात् उन्हें सफल बनाता है, पूर्ण करता है॥ 3॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : वसोः (वस - निवास करना)। **पवित्रम्** (पू - पवित्र करना)। **असि** (अस् = होना)। **शत-धारम्** (शत = सौ, धाः- धारा होना, धार बाँधना)। **सहस्रधारम्** (सहस्र = हजार, धाः- धारा होना, धार बाँधना)। **देवः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सविता** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। **पुनातु** (पू - पवित्र करना)। **पवित्रेण** (पू - पवित्र करना)। **शतधारेण** (शत = सौ, धाः- धारा होना, धार बाँधना)। **सुप्वा** (सु = अच्छा, पू = पवित्र करना)। **कामधुक्षः** (काम = कामनाएँ, धुक्ष = दीप्त करना, जीवन होना)॥ 3॥

4. सा विश्वायुः, सा विश्वकर्मा, सा विश्वधायाः।
इन्द्रस्य त्वा भागम् सोमेन आ तनच्मि, विष्णो हव्यम् रक्ष॥4॥

संहितापाठ

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः। इन्द्रस्य त्वा भागꣳसोमेनातनच्मि विष्णो हव्यꣳरक्ष॥4॥

मन्त्रार्थ : सा वह (वेद वाणी) **विश्वायुः** सम्पूर्ण आयु वाली, **सा** वह विश्वकर्मा सम्पूर्ण कर्म वाली, **सा** वह **विश्वधायाः** सम्पूर्ण (सृष्टि को) धारण करने वाली (है)। **त्वा** तुम्हारे **इन्द्रस्य** इन्द्र के, परम ऐश्वर्यवान् के **भागम्** भाग को **सोमेन** सोम से, सौम्यता से, श्रद्धा व उपकार की भावना से **आ तनच्मि** शब्द विस्तार करता हूँ। (अर्थात् श्रद्धापूर्वक सबके उपकार के लिए वेदवाणी का विस्तार करता हूँ।) **विष्णो** हे विष्णु (सर्वव्यापी, अर्थात् परमात्मा) **हव्यम्** हव्य, देय या दान की **रक्ष** रक्षा करो॥ 4॥

भावार्थ : 'सा' शब्द स्त्रीलिंग है तथा विष्णु शब्द पुल्लिंग है। अतः 'सा' शब्द परमात्मा के लिए नहीं, उसकी वेदवाणी के लिए माना गया है। क्रिया तनच्मि का अर्थ विस्तार, श्रद्धा, उपकार के साथ शब्द करना भी है। इससे भी 'सा' शब्द का प्रयोग वेदवाणी के लिए मानना उपयुक्त है। हव्यम् का अर्थ दानयोग्य, देय, आदान-प्रदान योग्य (वस्तु, विचार, ज्ञान आदि) है, (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)॥ 4॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : सा (सर्वनाम)। **विश्वायुः** (विश्व + आयुः, विश्व = सब, आयुस् - जीवनम्)। **विश्वकर्मा** (विश्व = सब, कृ - करना)। **विश्वधाया** (धा - धारण करना)। **इन्द्रस्य** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **भागम्** (भज - अंश या भागहोना)। **सोमेन** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **आ** (उपसर्ग)। **तनच्मि** (तन् = शब्द करना, विस्तार करना)। **विष्णो** (विष्ण् = सींचना, व्याप्त होना)। **हव्यम्** (हु = आदान-प्रदान करना)। **रक्षः** (रक्ष - रक्षण करना)॥ 4॥

5. अग्ने व्रतपते व्रतम् चरिष्यामि, तत् शकेयम् तत् मे राध्यताम्। इदम् अहम् अनृतात् सत्यम् उपैमि॥5॥

संहितापाठ

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥

मन्त्रार्थ : व्रतपते हे व्रतपते! **अग्ने** हे अग्नि! **व्रतम्** व्रत **चरिष्यामि** (मैं) आचरण करूँगा। **तत्** वह **शकेयम्** (मैं) कर सकूँ, **मे** मेरा **तत्** वह (व्रत) **राध्यताम्** पूर्ण करो। **इदम्** इस प्रकार **अहम्** मैं **अनृतात्** अनृत से (दूर होकर) **सत्यम्** सत्य की ओर **उपैमि** जाता हूँ॥

भावार्थ : अग्नि (गतिस्वरूप परमात्मा) को व्रतपति अर्थात् व्रत का रक्षक स्वामी सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि मैं व्रत करूँगा। प्रार्थना है कि मैं ऐसा कर सकूँ, उसे पूर्ण करो। व्रत का अर्थ है वरण किया हुआ संकल्प। वह व्रत यही है कि अनृत से सत्य के समीप जाऊँ। अनृत (अन् + ऋत) का अर्थ है जो ऋत नहीं है। ऋत कहते हैं व्यापक सार्वभौम प्राकृतिक नियमों को। अर्थात् प्राकृतिक नियमों के विपरीत चलने का प्रयास न करें तथा सत्य का आचरण करें। यही वैदिक व्रत है॥ 5॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अग्ने (अग - गति करना, घूमना, जाना)। **व्रतपते** (वृ = वरण करना)। **व्रतम्** (वृ = वरण करना)। **चरिष्यामि** (चर् = चलना, विचरना, आचरण करना)। **तत्** (सर्वनाम)। **शकेयम्** (शक- सक्षम होना, कर सकना)। **मे** (सर्वनाम)। **राध्यताम्** (रध् = पूर्ण करना)। **इदम्** (सर्वनाम)। **अहम्** (सर्वनाम)। **अनृतात्** (अ - नहीं, ऋ- जाना, फैलाना)। **सत्यम्** (सत् = सत्य होना)। **उपैमि** (इ - जाना)॥ 5॥

6. कः त्वा युनक्ति, सः त्वा युनक्ति। कस्मै त्वा युनक्ति, तस्मै त्वा युनक्ति। कर्मणे वाम्, वेषाय वाम्॥6॥

संहितापाठ

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति। कर्मणे वां वेषाय वाम्॥6॥

मन्त्रार्थ : कः कौन **त्वा** तुमको **युनक्ति** नियुक्त करता है? **सः** वह **त्वा** तुमको **युनक्ति** नियुक्त करता है। **कस्मै** किसलिए **त्वा** तुमको **युनक्ति** नियुक्त करता है? **तस्मै** उसके लिए **त्वा** तुमको **युनक्ति** नियुक्त करता है। **कर्मणे** कर्म के लिए, **वेषाय** अनुपयोगी को अलग करने के लिए, सींचने के लिए, व्यापक के लिए **वाम्** तुम दोनों को (नियुक्त करता है)।

भावार्थ : वह परमात्मा तथा उसके उपासक विद्वान् ऋषि हमें प्रेरणा देते हैं कि हम जीवन में कर्मशील रहें, अनुपयोगी को छोड़ने में तत्पर रहें, उपयोगी को सींचते रहें तथा व्यापक दृष्टि रखें एवम् सर्वव्यापी परमात्मा की उपासना करते रहें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : कः (सर्वनाम)। **त्वा** (सर्वनाम)। **युनक्ति** (युङ्क् - मिलाप करना, एकत्र करना, जुड़ना)। **सः** (सर्वनाम)। **कस्मै** (सर्वनाम)। **तस्मै** (सर्वनाम)। **कर्मणे** (कृ - करना)। **वाम्** (सर्वनाम)। **वेषाय** (विष् = विलग करना, प्रयोग न होने से निकाल देना, विष = सींचना, व्यापना)॥ 6॥

7. प्रति उष्टम् रक्षः, प्रति उष्टा अरातयो। निष्टप्तम् रक्षो, निष्टप्ता अरातयः।
उरु अन्तरिक्षम् अनु एमि॥7॥

संहितापाठ

प्रत्युष्टꣳरक्षः प्रत्युष्टाऽरातयो निष्टप्तꣳरक्षो निष्टप्ताऽरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि॥7॥

मन्त्रार्थ : रक्षः रक्षा करने वाले **प्रति उष्टम्** दहनशील (हैं) **अरातयो** अदानी (दान न करने वाले) **प्रति उष्टा** दहनशील (हैं) अर्थात जल रहे हैं। (ऐसे) **निष्टप्तम्** दहनशील (जल रहे लोगों) की **रक्षा** रक्षा करो। **अरातयः** अदानी लोग **निष्टप्ता** सन्तापयुक्त हैं, (उन्हें बचाओ)। (मैं) **उरु** विराट **अन्तरिक्षम्** आकाश को **अनु एमि** प्राप्त होता हूँ।

भावार्थ : दान न करने वाले तनाव, ईर्ष्या आदि दुःखों से पीड़ित रहते हैं। उनको सत्संग से विवेक जागृत कर इस पीड़ा से बचाना चाहिए। हमारी दृष्टि विराट आकाश की भाँति व्यापक होनी चाहिए। हम ऐसे अदानी लोगों से भी द्वेष न करें, उन्हें सत्य मार्ग पर लाने का प्रयास करें।7॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : प्रति उष्टम् (प्रति - प्रतिकार, सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में (उपसर्ग), उष् = दहन,

हिंसा करना)। **रक्षः** (रक्ष् = बचाना)। **प्रति उष्टा** (उष् = दहन, हिंसा करना)। **अरातयो** (अ - नहीं, रा = देना)। **निष्टप्तम्** (निः = बिना, बाहर, निश्चित, निरन्तर (उपसर्ग), तप् = सन्ताप, दहन ऐश्वर्य होना)। **निष्टप्ता** (निः = बिना, बाहर, निश्चित, निरन्तर (उपसर्ग), तप् = सन्ताप, दहन ऐश्वर्य होना)। **उरु** (अव्यय, सर्वनाम)। **अन्तरिक्षम्** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, ईक्ष् -देखना)। **अन्वेमि** (इ = जाना)॥ 7॥

(3) सूक्त 3

8. धूः असि धूर्व धूर्वन्तम्, धूर्व तम् यो अस्मान् धूर्वति, तम् धूर्व यम् वयम् धूर्वामः।
देवानाम् असि वह्नितमम् सस्नितमम् पप्रितमम् जुष्टतमम् देवहूतमम्॥8॥

संहितापाठ

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः। देवानामसि वह्नितमꣳसस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्॥8॥

मन्त्रार्थ : **धूः** हिंसा करने वाले **असि** हो, **धूर्वन्तम्** हिंसा में रत, हिंसकों की **धूर्व** हिंसा करो। **यो** जो **अस्मान्** हमको **धूर्वति** पीड़ित करते हैं, हिंसा करते हैं, **तम्** उनको **धूर्व** पीड़ित करो, हिंसा करो। **वयम्** हम **यम्** जिनकी **धूर्वामः** हिंसा करते हैं, **तम्** उनकी **धूर्व** हिंसा करो। **देवानाम्** देवों को **वह्नितमम्** वहन करने वाले, **सस्नितमम्** अतिशय शुद्ध, **पप्रितमम्** पालन-पोषण करने वाले, **जुष्टतमम्** विचार-सेवा **देवहूतमम्** योग्य हो।

भावार्थ : यदि हिंसा करना ही हो तो हिंसकों की ही हिंसा करो। परमात्मा हिंसकों की ही हिंसा करता है, देवजनों तथा सज्जनों की नहीं। परमात्मा सज्जनों का पालन करने वाला, वहन करने वाला तथा अतिशय शुद्ध है, हमें भी इन गुणों को धारण करना चाहिए। धूर् धातु का अर्थ हिंसा के साथ ही समीप जाना या आना भी होता है। इस प्रकार इसका अर्थ होगा कि जो हमारे निकट आयें, उनके निकट जाओ, उन्हें अपनाओ। दोनो ही अर्थ उत्तम हैं, अपनाने योग्य हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : धूः (धूर् - मार डालना या दुःख देना)। **असि** (अस् = होना)। **धूर्व** (धूर् - मार डालना या दुःख देना)। **धूर्वन्तम्** (धूर् - मार डालना या दुःख देना)। **तम्** (सर्वनाम)। **यो** (सर्वनाम)। **अस्मान्** (सर्वनाम)। **धूर्वति** (धूर् - मार डालना या दुःख देना)। **यम्** (सर्वनाम)। **वयम्** (सर्वनाम)। **धूर्वामः** (धूर् - मार डालना या दुःख देना)। **देवानाम्** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना आदि)। **वह्नितमम्** (वह् = वहन करना, ले जाना)। **सस्नितमम्** (सस् = शुद्ध करना)। **पप्रितमम्** (पृ = पालन करना, पोषण करना)। **जुष्टतमम्** (जुष् = विचार करना, सेवा करना)। **देवहूतमम्** (हु = आदान-प्रदान करना, लेना, ह्वे = शब्द करना)॥ 8॥

9. अहꣳरुतम् असि हविर्धानम् दृंहस्व, मा ह्वाः मा ते यज्ञपतिः ह्वार्षीत्।
विष्णुः त्वा क्रमताम् उरु वाताय, अपहतम् रक्षो यच्छन्ताम् पञ्च॥9॥

संहितापाठ

अहꣳरुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्।
विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳरक्षो यच्छन्तां पञ्च॥9॥

मन्त्रार्थ : **अहꣳरुतम्** व्यापक **असि** हो, **हविर्धानम्** हवि को धारण करने (की क्षमता) को **दृंहस्व** दृढ़ करो, बढ़ाओ। **मा** मत (नहीं) **ह्वाः** त्याग करो, **यज्ञपतिः** यजनपति **ते** तुम्हारा **ह्वार्षीत्** त्याग न करे। **विष्णुः** विष्णु (सर्वव्यापी परमात्मा) **त्वा** तुमको **उरु वाताय** बहुत सुख-सेवा के लिए **क्रमताम्** आगे बढ़ाये। **अपहतम्** नष्ट हुए की **रक्षो** रक्षा करने वाला (परमात्मा) **पंच यच्छन्ताम्** पाँच गुना दे॥

भावार्थ : व्यापक परमात्मा हवि को अर्थात् आदान-प्रदान, ग्रहण करने योग्य वस्तुओं, सम्पदाओं तथा शब्दों को बढ़ाता है। उससे याचना है कि हमारा त्याग मत करो। यजन करने वाले उसका त्याग न करें। वह व्यापक परमात्मा ऐसे यजनपति को अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण तथा दान करने वाले को भयमुक्त कर जीवन में आगे बढ़ाता है। उसे बहुत सुख देता है तथा सेवा करने में व्यय हो चुकी सम्पदा का कई गुना, पाँच गुना तो देता ही है॥ 9॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : अहरुतम् (अह् = व्याप्त होना)। **असि** (अस् = होना)। **हविर्धानम्** (हविः + धानम्, हुः = दान, ग्रहण करना, ह्वे = शब्द करना, धा = धारण करना)। **दृंहस्व** (दृंह् = वृद्धि करना)। **मा** (अव्यय)। **ह्वाः** (ह्वा = त्याग करना)। **ते** (सर्वनाम)। **यज्ञपतिः** (यज् = देव पूजा, संगतिकरण, दान करना)। **ह्वार्षीत्** (ह्वा = त्याग करना)। **विष्णुः** (विष्ण - व्यापना, फैलना, प्रसृत होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **क्रमताम्** (क्रम = वृद्धि करना, बचाना)। **उरु** (अव्यय)। **वाताय** (वात् = सुखी होना, सेवा करना, जाना)। **अपहतम्** (मार डालना, किसी प्रकार समाप्त करना)। **रक्षो** (रक्ष - रक्षण करना)। **यच्छन्ताम्** (यच्छ = देना)। **पंच** (संख्या)॥ 9॥

10. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्॥
अग्नये जुष्टम् गृह्णामि, अग्नि-सोमाभ्याम् जुष्टम् गृह्णामि॥10॥

संहितापाठ

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि।॥10॥

मन्त्रार्थ : देवस्य देव को **सवितुः** उत्पन्न करने वाला (परमात्मा) तुम्हें **अश्विनोः** व्यापक (फैले हुए) **बाहुभ्याम्** बाहुओं से, **पूष्णो** पोषण करने वाले **हस्ताभ्याम्** हाथों से **प्रसवे** उत्पन्न करे। **अग्नये** अग्नि (अग्रणी परमात्मा) के लिए, **जुष्टम्** सुविचारित सेवा भावना को **गृह्णामि** अपनाता हूँ, स्वीकार करता हूँ। **अग्नि-सोमाभ्याम्** अग्नि - सोम दोनों के लिए **जुष्टम्** सुविचारित सेवा भावना को **गृह्णामि** अपनाता हूँ, स्वीकार करता हूँ।।

भावार्थ : परमात्मा ने देव शक्तियों, सूर्य आदि दिव्यताओं को उत्पन्न किया है। वह तुमको भी उत्पन्न करे। सभी शिशुओं, वस्तुओं, सम्पदाओं को वही उत्पन्न करता है। हम बाहें फैलाकर सबका पोषण करने वाली सेवा भावना को अपनायें तो वह हमारे लिए सुख-सम्पदा उत्पन्न करेगा।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना आदि)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना)। **प्रसवे** (सु = उत्पन्न करना)। **अश्विनोः** (अश्-अशु = व्यापक होना)। **बाहुभ्याम्** (बाहुः - भुजा)। **पूष्णो** (पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। **हस्ताभ्याम्** (हस्त - दान करना, ग्रहण करना)। **अग्नये** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **जुष्टम्** (जुष् = विचार करना, सेवा करना आदि)। **गृह्णामि** (गृह- लेना, स्वीकार करना)। **अग्नि-सोमाभ्याम्** (अग् = गति करना, आगे जाना, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)।॥10॥

(4) सूक्त 4

11. भूताय त्वा न अरातये, स्वः अभि विख्येषम्, दृंहन्ताम् दुर्याः पृथिव्याम्, उरु अन्तरिक्षम् अनु एमि।
पृथिव्याः त्वा नाभौ सादयामि, अदित्याः उपस्थे, अग्ने हव्यम् रक्ष॥11॥

संहितापाठ

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृꣳहन्तां दुर्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउपस्थेऽअग्ने हव्यꣳरक्ष॥11॥

मन्त्रार्थ : भूताय भूतों (सृष्टि में उत्पन्न लोगों) के लिए **त्वा** तुमको **अभि विख्येषम्** सभी से कहूँ, **न अरातये** अदानी के लिए नहीं। **दुर्याः** दुःखी गतिशील लोगों को **पृथिव्याम्** पृथ्वी पर **दृंहन्ताम्** सुदृढ़ करो। **उरु** बहुत (व्यापक) **अन्तरिक्षम्** आकाश को **अनु एमि** जाऊँ। **त्वा** तुमको **पृथिव्याः** पृथ्वी की **नाभौ** नाभि में **सादयामि** बैठाता हूँ। **अग्ने** हे अग्नि, **अदित्याः** अदिति के **उपस्थे** समीप स्थित **हव्यम्** हव्य की **रक्ष** रक्षा करो।

भावार्थ : परमात्मा का गुणगान, स्तुति, प्रार्थना सभी के हित के लिए करना चाहिए, संकीर्ण स्वार्थ के लिए नहीं। ईश्वर से याचना है कि दुःखी लोगों को दृढ़ता दें, उन्हें सुख-साधन दें। ऐसी उदार भावना हो तो विशाल आकाश जैसी उन्नति होगी।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : भूताय (भू = होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **न** (अव्यय)। **अरातये** (रा - देना)। **स्वः** (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **अभिविख्येषम्** (अभि + वि + ख्या = कहना)। **दृंहन्ताम्** (दृंह् = बढ़ाना)। **दुर्याः** (दु = जाना, दुःख

होना)। **पृथिव्याम्** (पृथ = व्यापक होना, विस्तृत होना)। **उरु** (अव्यय, सर्वनाम)। **अन्तरिक्षम्** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **अन्वेमि** (इ - जाना)। **पृथिव्याः** (पृथ = व्यापक होना, विस्तृत होना)। **नाभौ** (नभ - मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना, आदि)। **सादयामि** (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। **अदित्याः** (अद् = खाना, आत्मसात् करना)। **उपस्थे** (उप = समीप, स्थ = स्थित)। **अग्ने** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **हव्यम्** (हू = दान, आदान, लेना-देना)। **रक्ष** (रक्ष् = बचाना)॥ 11॥

12. पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुः, वः प्रसवे उत् पुनामि, अच्छिद्रेण पवित्रेण, सूर्यस्य रश्मिभिः॥
देवीः आपो अग्रे गुवो अग्रे पुवो, अग्रे इमम् अद्य यज्ञम् नयत,
अग्रे यज्ञपतिम् सुधातुम्, यज्ञपतिम् देवयुवम्॥12॥

संहितापाठ

पवित्रे स्थो वैष्णव्यो सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। देवीरापोऽअग्रेगुवोऽअग्रेपुवोऽग्रिमद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिꣳसुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम्॥12॥

मन्त्रार्थ : सवितुः सबको उत्पन्न करने वाले (परमात्मा) की **प्रसवे** सृष्टि में **वः** तुम दोनों को **पवित्रे** पवित्र **स्थो** स्थित **वैष्णव्यौ** व्यापक तत्वों को **अच्छिद्रेण** छिद्ररहित (निर्दोष) **पवित्रेण** पवित्र **सूर्यस्य** सूर्य की **रश्मिभिः** किरणों से **उत् पुनामि** पवित्र करता हूँ। **अग्रे गुवो** अग्रगामी, **अग्रे पुवो** अग्र पावनकर्ता, **देवीः** दिव्य **आपो** आपः (व्यापक, जल, परमात्मा) **अद्य** आज **इमम्** इस **यज्ञम्** यजन को, **सुधातुम्** भलीभाँति धारण करने वाले **यज्ञपतिम्** यजनपति को, दिव्यगुण सम्पन्न यजनपति को **अग्रे** आगे **नयत** ले जाये।

भावार्थ : सूर्य की किरणों से दो पवित्र व्यापक तत्वों को पवित्र करने के निर्देश से सूर्य किरण चिकित्सा का संकेत है। सूर्य किरणें निर्दोष तथा पवित्र हैं। उनसे व्यापक पवित्र तत्वों को पवित्र किया जाता है। वायु, जल, भूमि, वनस्पति आदि व्यापक प्रकृति को सूर्य किरणें पवित्र, जीवन्त, शुद्ध करती हैं। हमारे जीवन में, विचारों में व्यापकता हो तो सूर्य किरणों से प्रेरणा लेकर स्वयम् को तथा समाज को शुद्ध पवित्र बना सकते हैं, भेदभाव दूर कर व्यापकता, समरसता ला सकते हैं। आपः तो वेद में परमात्मा को ही कहा गया है, सः आपः सः प्रजापतिः। हमारे जीवन में व्यापकता, पवित्रता हो तो वह परमात्मा हमें आगे ले जायेगा, हम जीवन में आगे बढ़ सकेंगे॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : पवित्रे (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **स्थो** (स्था - स्थित होना, ठहरना)। **वैष्णव्यौ** (विष्ण - व्यापना, व्यापने आवरणे)। **सवितुः** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **वः** (सर्वनाम)। **प्रसवे** (प्र - अधिक, सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **उत्** (अव्यय, निपात)। **पुनामि** (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **अच्छिद्रेण** (छिद्र - छेद करना)। **पवित्रेण** (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **सूर्यस्य** (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। **रश्मिभिः** (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। **देवीः** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना आदि)। **आपो** (आप् - व्यापना, जाना, अप - पालने, अपस् - जलम्)। **अग्रेगुवो** (अग् - अगि = गति करना, आगे जाना)। **अग्रेपुवो** (पू = पावन करना, अग = गति करना, आगे जाना)। **अग्रे** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **इमम्** (सर्वनाम)। **अद्य** (अव्यय)। **यज्ञम्** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना)। **नयत** (नी = ले जाना)। **यज्ञपतिम्** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। **सुधातुम्** (धा - धारण करना, रक्षण करना, देना)। **देवयुवम्** (दिव् = तेजस्वी होना, आदि)॥ 12॥

13. युष्मा इन्द्रो अवृणीत वृत्रतूर्ये, यूयम् इन्द्रम् अवृणीध्वम् वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ॥
अग्नये त्वा जुष्टम् प्रोक्षामि। अग्नीषोमाभ्याम् त्वा जुष्टम् प्रोक्षामि॥
दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वम् देवयज्यायै यत् वो अशुद्धाः पराजघ्नुः, इदम् वः तत् शुन्धामि॥13॥

संहितापाठ

युष्माऽइन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ। अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि॥13॥

मन्त्रार्थ : इन्द्रो इन्द्र (परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा) ने **युष्मा** तुमको **वृत्रतूर्ये** सेवा आदि अच्छे कार्यों को शीघ्रता से करने के लिए **अवृणीत** वरण किया है, **यूयम्** तुम दोनों **इन्द्रम्** इन्द्र (परमात्मा) को **वृत्रतूर्ये** शीघ्र शुभकर्म करने के लिए **अवृणीध्वम्** वरण करो, **प्रोक्षिता** निर्मल अभिसिञ्चित **स्थ** रहो। **अग्नये** अग्नि के लिए **त्वा** तुम्हारे **जुष्टम्** सुविचारित सेवाकर्म को **प्रोक्षामि** निर्मल अभिसिञ्चित करता हूँ, **अग्नीषोमाभ्याम्** अग्नि - सोम के लिए त्वा तुम्हारे **जुष्टम्** जुष्ट (सुविचारित सेवा कर्म) को **प्रोक्षामि** निर्मल अभिसिञ्चित करता हूँ। **दैव्याय** दिव्य **कर्मणे** कर्म के लिए **शुन्धध्वम्** शुद्ध करो। **देवयज्यायै** देवयजन के लिए **यत्** जो कुछ **वो** तुम्हारा **अशुद्धाः** अशुद्ध है, **पराजघ्नुः** नष्ट हो जाये, **वः** तुम्हारे **इदम् तत्** यह उस (अशुद्ध) को **शुन्धामि** शुद्ध करता हूँ।

भावार्थ : परमात्मा ने उत्तम कर्मों के लिए हमारा वरण किया है। हम भी उत्तम कर्मों के लिए परमात्मा का वरण करें तो सफलता मिलेगी।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : युष्माः (सर्वनाम)। **इन्द्रो** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **अवृणीत** (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, वृ = वरण करना)। **वृत्रतूर्ये** (वृत् = सेवा करना, सेवक होना, चमकना, बोलना, तुर् = शीघ्र जाना, त्वरा करना)। **यूयम्** (सर्वनाम)। **इन्द्रम्** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **अवृणीध्वम्** (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, वृ = वरण करना आदि)। **प्रोक्षिता** (प्र + उक्षिता, उक्ष् = निर्मल करना, स्वच्छ करना)। **स्थ** (तिष्ठ-स्था = स्थित होना)। **अग्नये** (अग् = आगे जाना, गति करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **जुष्टम्** (जुष् = विचार करना, सेवा करना)। **प्रोक्षामि** (प्र - अधिक, उक्ष् = सींचना, भेजना, निर्मल करना, स्वच्छ करना)। **अग्नीषोमाभ्याम्** (अग् - गति करना, आगे जाना, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **दैव्याय** (दिव् = तेजस्वी होना आदि)। **कर्मणे** (कृ - करना)। **शुन्धध्वम्** (शुन्ध् = शुद्ध होना, शुद्ध करना)। **देवयज्ञायै** (दिव् = तेजस्वी होना आदि, यज - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **यत्** (सर्वनाम)। **वः** (सर्वनाम)। **अशुद्धाः** (अ - नहीं, शुन्ध - शुद्ध होना)। **पराजघ्नुः** (परा - परम, परे, पीछे, विपरीत (अव्यय), जघ्न्-हन - मार डालना, समाप्त करना)। **इदम्** (सर्वनाम)। **तत्** (सर्वनाम)। **शुन्धामि** (शुन्ध् = शुद्ध होना, शुद्ध करना)।

(5) सूक्त 5

14. शर्म असि अवधूतम्, रक्षो अवधूता अरातयः, अदित्याः त्वक् असि, प्रति त्वा अदितिः वेत्तु। अद्रिः असि वानस्पत्यो, ग्रावा असि पृथुबुध्नः, प्रति त्वा अदित्याः त्वक् वेत्तु॥14॥

संहितापाठ

शर्मास्यवधूतꣳरक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावसि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु॥14॥

मन्त्रार्थ : (तुम) **अवधूतम्** कम्पनरहित **शर्म** सुख, **अवधूता** कम्पनरहित **रक्षो** रक्षक, **अरातयः** अदेय (तथा) **अदित्याः** अविनाशी (परमात्मा) की **त्वक्** त्वचा **असि** हो, **त्वा** तुम्हारे **प्रति** प्रति **अदितिः** अदिति (अविनाशी परमात्मा) **वेत्तु** जानें (अथवा अदिति के प्रति जानें)। **अद्रिः** ग्रहण करने योग्य **असि** हो, **वानस्पत्यो** वनस्पतिजन्य **ग्रावा** अभिसिञ्चक (पोषक) हो, **पृथुबुध्नः** विस्तृत जानकारी वाले (विद्वान्) **प्रति त्वा** तुमको **अदित्याः** अदिति की **त्वक्** त्वचा **वेत्तु** जानें।

भावार्थ : सम्पूर्ण सृष्टि के साथ हम सब जीव भी अविनाशी अपनाने योग्य परमात्मा की त्वचा हैं, उसके शरीर के ही भाग हैं। वनस्पति के रूप में भोजन तथा औषधियों से जो पोषण तथा शक्ति का अभिसिञ्चन होता है, वह परमात्मा की ही शक्ति है। विद्वान् उसे जानें तथा जन सामान्य को इस सत्य की जानकारी प्रदान करें।। 14 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : शर्म (शर्म = सुख होना)। **असि** (अस् = होना)। **अवधूतम्** (अव, धू = कम्पन करना)। **रक्षः** (रक्ष् = रक्षा करना, बचाना)। **अवधूताः** (अव, धू = कम्पन करना)। **अरातयः** (अ - नहीं, रा = देना)। **अदित्याः** (अ - नहीं, दी = नष्ट होना)। **त्वक्** (त्वच - लपेटना, ढांकना)। **प्रति** (उपसर्ग)। **त्वा** (सर्वनाम)। **अदितिः** (अ + दी = नष्ट होना)। **वेत्तु** (विद् = जानना)। **अद्रिः** (अद् = खाना)। **वानस्पत्यः** (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना)। **ग्रावा** (गृ = सींचना, समझना, जानना)। **पृथुबुध्नः** (पृथ् = विस्तार करना, बुध् = जानना)।। 14 ।।

15. अग्नेः तनूः असि वाचो विसर्जनम्, देव-वीतये त्वा गृह्णामि।

वृहद् ग्रावा असि, वानस्पत्यः सः इदम्, देवेभ्यो हविः शमीष्व, सुशमि शमीष्व,
हविष्कृत् एहि, हविष्कृत् एहि ॥15॥

संहितापाठ

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद् ग्रावासि वानस्पत्यः सऽइदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व। हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥15॥

मन्त्रार्थ : अग्नेः अग्रणी परमात्मा के **तनूः** शरीर **असि** हो। **देव-वीतये** देव (परमात्मा) की व्यापकता के लिए **वाचो** वाणी के **विसर्जनम्** विसर्जन (रूप) **त्वा** तुमको **गृह्णामि** ग्रहण करता हूँ। **वृहद्** बृहद् **ग्रावा** अभिसिञ्चन करने वाले **असि** हो। **देवेभ्यो** देवों के लिए **सः** वह **वानस्पत्यः** वनस्पतिजन्य **इदम्** यह **हविः** हवि **शमीष्व** शमन करो, **सुशमि** सुशील, **शमीष्व** स्वस्थ, शान्त करो। **हविष्कृत्** हविष्कृत **एहि** प्राप्त करो, **हविष्कृत्** हविष्कृत **एहि** प्राप्त करो।

भावार्थ : परमात्मा निराकार है, उसका शरीर वेदवाणी, वेदमन्त्र ही है। हमारे जीवन में परमात्मा की व्यापकता का अनुभव बना रहे, इसके लिए देवजन विद्वान् वेदवाणी का विसर्जन अर्थात् दान अथवा उच्चारण करते रहें और जन साधारण उसको ग्रहण करते रहें। वनस्पति अर्थात् शब्दों का अधिपति स्वामी वेदवाणी से उत्पन्न सद्भावना ही देवों के लिए हवि अर्थात् देय (अथवा) आदान-प्रदान करने योग्य है। इसका शमन करो, प्रसिद्ध करो तथा ऐसे हविकर्ता विद्वान् को प्राप्त करो॥ 15॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : अग्नेः (अग् = गति करना)। **तनूः** (तन् = विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। **असि** (अस - होना)। **वाचो** (वच्-वद = बोलना)। **विसर्जनम्** (वि + सृज् = छोड़ना)। **देववीतये** (वीतये, दिव् = तेजस्वी होना आदि, वी = व्याप्त होना, गति करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **गृह्णामि** (गृह - लेना, स्वीकार करना)। **बृहद्** (बृह - बढ़ना)। **ग्रावा** (गृ = सींचना, समझना, जानना, निगलना, शब्द करना, बोलना, समझाना, बताना)। **वानस्पत्यः** (वन् = शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना)। **सः** (सर्वनाम)। **इदम्** (सर्वनाम)। **देवेभ्यः** (दिव् = तेजस्वी होना आदि)। **हविः** (हू = दान करना, लेना, तृप्त करना)। **शमीष्व** (शम - सान्त्वना करना, शमन करना, शान्त होना)। **सुशमि** (शम - शान्त होना, ठण्डा होना)। **हविष्कृत्** (हु - देना, खेाना, लेना, कृ - करना)। **एहि** (ई - जाना)॥ 15॥

16. कुक्कुटो असि मधु जिह्वः, इषम् ऊर्जम् आ वद। त्वया वयम् संघातम् संघातम् जेष्म।
वर्ष-वृद्धम् असि, प्रति त्वा वर्ष-वृद्धम् वेत्तु।
परापूतम् रक्षः, परापूता अरातयः अपहतम्, रक्षो वायुः वो वि विनक्तु,
देवो वः सविता हिरण्यपाणिः, प्रति गृभ्णातु अच्छिद्रेण पाणिना ॥16॥

संहितापाठ

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वऽइषमूर्जमावद त्वया वयꣳसङ्घातꣳसङ्घातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतꣳरक्षः परापूता अरातयोऽपहतꣳरक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥16॥

मन्त्रार्थ : कुक्कुटो लोभहर्ता, **मधु-जिह्वः** मधुरभाषी **असि** हो, **इषम्** गतिशील, अभ्यास इच्छा, **ऊर्जम्** बल को **आ वद** कहो। **त्वया** तुम्हारे द्वारा **वयम्** हम **संघातम् संघातम्** संघर्षों में **जेष्म** विजयी हों। **वर्ष-वृद्धम्** वर्षा को बढ़ाने वाले **असि** हो, **त्वा** तुम **वर्ष-वृद्धम्** वर्षा को बढ़ाने के **प्रति** प्रति **वेत्तु** जानो। **रक्षः** रक्षक **परापूतम्** परम पवित्र (हैं), **अपहतम्** अपहत अदानी (भी) **परापूता** परम पवित्र (बनाये गये हैं)। **रक्षो** रक्षक **वायुः** वायु **वो** तुमको **वि विनक्तु** विनक्त (शुद्ध) करे। **वः** तुम लोगों को **हिरण्यपाणिः** हिरण्यपाणि **सविता** सविता **देवो** देव **अच्छिद्रेण** निर्दोष **पाणिना** हाथों से **प्रति गृभ्णातु** धारण करें।

भावार्थ : लोभरहित बनें, मीठा बोलें, गतिशीलता अपनायें, इन सद्गुणों के बल को, आध्यात्मिक बल को अन्य लोगों को भी बतायें। वर्षा अच्छी हो, इसके लिए उपाय करते रहें। जलवर्षा के लिए पर्यावरण पर ध्यान दें तथा वेद विद्या की वर्षा भी समाज में होती रहे, इसके लिए सत्संग-प्रवचन की व्यवस्था बनाये रखें। हमारे रक्षक अर्थात् सुरक्षा कर्मी परम पवित्र

भावना वाले हों, जिससे समाज में न्याय-व्यवस्था बनी रहे। जो अदानी-अनुदार हैं, उनमें भी पवित्र सहयोग भावना का विकास करने का प्रयास शालीनता से करते रहें। वायु अर्थात् गतिशीलता तथा रचनात्मकता द्वारा ही शुद्धता का प्रचार-प्रसार सम्भव है। इतनी पवित्र भावना हो तो ज्योतिर्मय हाथों वाले सृजनकर्ता परमात्मा अपने अचूक हाथों से हमें धारण करेंगे।। 16 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : कुक्कुट (कुक् = ललचाना, लेना)। **असि** (अस - होना)। **मधु-जिह्वः** (मधु = मीठा, जिह्वः = वाणी)। **इषम्** (इष् = जाना, बार-बार करना, इच्छा करना)। **ऊर्जम्** (ऊर्ज = बल होना, प्राण होना, प्राणवान् करना)। **आवद** (वद् = बोलना, कहना)। **त्वया** (सर्वनाम)। **वयम्** (सर्वनाम)। **संघातम्** (सम् - सम्यक् रूप से, घा-हन् = मारना, घात लगाना)। **जेष्म** (जि = जीतना, विजयी होना)। **वर्षवृद्धम्** (वर्ष् = गीला होना, वर्षा होना, वृध् = बढ़ना)। **प्रति** (उपसर्ग)। **त्वा** (सर्वनाम)। **वेत्तु** (विद् = जानना)। **परापूतम्** (परा = परम्, परे, पीछे, विपरीत (अव्यय), रक्ष् = रक्षा करना, बचाना)। **परापूता** (परा + पूता, परा = परम्, परे, पीछे, विपरीत (अव्यय), पू = पवित्र करना)। **अरातयः** (अ - नहीं, रा = दान करना)। **अपहतम्** (अप - दूर, नीचे, अपकार (उपसर्ग), हन् = मारना)। **रक्षो** (रक्ष् = रक्षा करना, बचाना)। **वायुः** (वा = गति करना, वे बुनना)। **वो** (सर्वनाम)। **विविनक्तु** (वि + विनक् = शुद्ध करना)। **देवो** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, आनन्द करना आदि)। **वः** (सर्वनाम)। **सविता** (सु = उत्पन्न करना)। **हिरण्यपाणिः** (हिरण्य = ज्योति, स्वर्ण, पाणि = हाथ, पण् = स्तुति करना)। **प्रति गृभ्णातु** (प्रति - सम्बन्ध में, गृभ् = धारण करना)। **अच्छिद्रेण** (अ - नहीं, छिद्र - छेद करना)। **पाणिना** (पाणि = हाथ)।। 16 ।।

17. धृष्टिः असि अप अग्ने, अग्निम् आमादम् जहि। निः क्रव्यादम् सेध आ देवयजम् वह।।
ध्रुवम् असि पृथिवीम् दृंह, ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवनि, उप दधामि भ्रातव्यस्य वधाय।।17।।

संहितापाठ

धृष्टिरस्यापऽग्नेऽअग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादꣳसेधा देवयजं वह। ध्रुवमसि पृथिवीं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय।।17।।

मन्त्रार्थ : अग्ने हे अग्ने (अग्रणी गति स्वरूप परमात्मन्) (आप) **धृष्टिः** धृष्टि अर्थात् विजय हैं, गर्व हैं। **आमादम्** आमाद (कच्चा खाने वाले, रोगी को खाने वाले) अर्थात् नष्ट करने वाले **अग्निम्** अग्नि (अग्रणी व्यक्ति नेता आदि अथवा जलाने वाली आग) को **अप** दूर (या) **जहि** नष्ट कर दो। **निः क्रव्यादम्** अकरणीय को खाने वाले (नष्ट करने वाले) को **सेध** सिद्ध करो। **देवयजम्** देवयजन अर्थात् विशेष गुणयुक्त विद्वानों को **आ वह** वहन करो (धारण करो)। (आप) **ध्रुवम्** ध्रुव **असि** हैं, **पृथिवीम्** पृथिवी को **दृंह** दृढ़ करो, बढ़ाओ। **ब्रह्मवनि** हे ब्रह्मवनि, **क्षत्रवनि** हे क्षत्रवनि, **सजातवनि** हे सजातवनि! **भ्रातव्यस्य** भ्रातव्य (कपटबन्धु) के **वधाय** वध के लिए **त्वा** तुमको **उप दधामि** धारण करता हूँ।

भावार्थ : अग्नि स्वरूप तेजस्वी अग्रणी परमात्मा से प्रार्थना है कि नष्ट करने वाले अग्नि को नष्ट करो, अनुचित को नष्ट करने वाले को सिद्ध करो, पूर्ण करो, विजयी करो। अग्नि का शाब्दिक अर्थ अग्रणी है। सम्पूर्ण सृष्टि में अग्रणी तो परमात्मा है। समाज में अग्नि अर्थात् अग्रणी व्यक्ति शासक, प्रशासक, साधन सम्पन्न लोग हैं। उष्णता देने वाली ज्वाला भी अग्नि, अग्रणी है। ऊष्मा, प्रकाश के बिना तो जीवन सम्भव ही नहीं है, अतः दहन तथा ज्वलन से उत्पन्न ज्वाला, ऊष्मा को भी अग्नि कहते हैं। जो अग्नि अर्थात् अग्रणी तेजस्वी हैं, वे सृजन भी कर सकते हैं तथा विनाश भी। जो उपयोगी तथा लाभदायक है, वही दिशा बदल देने पर हानिकारक तथा विनाशक भी हो सकता है। विनाशकारी अग्नि को नष्ट करना है तथा उपयोगी अग्नि को बढ़ाना है, सिद्ध करना है, पूर्ण करना है। विनाश करने वाले का विनाश करना है तथा जो विनाशक को नष्ट करता है, उसका सहयोग करना है। पृथिवी को दृढ़ करना है, बढ़ाना है। इसे प्रदूषण से नष्ट नहीं होने देना है। भ्रातव्य शब्द का अर्थ भरण करने योग्य तथा भाई जैसा होता है। भाई के सन्तान को भी भ्रातव्य कहते हैं। इनका वध करने को कहा गया है। इसका अर्थ है कि जो लोग अपने भरण-पोषण में ही लगे रहते हैं, भाई के समान परिजनों जैसे, आत्मीय जैसे दिखते हैं, पर ऐसे हैं नहीं। ऐसे कपटबन्धुओं से बचना ही उचित है। वध का भाव हत्या करना नहीं है। ऐसे लोगों से दूर रहना, उपेक्षा करना ही उचित है। सभी वैदिक विद्वान् मानते हैं कि गति अर्थ वाली सभी धातुओं का

अर्थ जानना, जाना, पहुँचना, पाना, समझना भी होता है। इस प्रकार अग्नि का अर्थ विद्वान, गतिशील, प्रबुद्ध, लक्ष्य को पाने वाला भी होता है। इसीलिए वेद में परमात्मा का अग्नि नाम सबसे अधिक आया है।। 17 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : धृष्टिः (धृष् = जीतना, धृषा = गर्व करना)। **असि** (अस - होना)। **अप** (उपसर्ग)। **अग्ने** (अग् = गति करना)। **अग्निम्** (अग् = गति करना)। **आमादम्** (आम = कच्चा, अपक्व, बिना पका हुआ, अद् = खाना)। **जहि** (जह = हनन करो, नष्ट करो, जह - हिंसा करना, चलना, फैलना, जहा – परित्याग करना, छोड़ना)। **निष्क्रव्यादम्** (अद् = खाना, कृ = करना, क्रव्य = करने योग्य)। **सेध** (सिध् = जाना, सिद्ध होना)। **आ** (उपसर्ग)। **देवयजम्** (दिव् = तेजस्वी होना आदि)। **वह** (वह् = ले जाना, वहन करना)। **ध्रुवम्** (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना)। **पृथिवीम्** (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। **दृंह** (दृंह् = दृढ़ होना)। **ब्रह्मवनि** (बृह् = बढ़ना, वन् = शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, याचना करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **क्षत्रवनि** (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। **सजातवनि** (जा, जन् = उत्पन्न होना)। **उपदधामि** (धा = धारण करना)। **भ्रातव्यस्य** (भृ = भरण करना, भ्राता = भाई)। **वधाय** (वध्-हन् = मारना)।।

(6) सूक्त 6

18. अग्ने ब्रह्म गृभ्णीस्व, धरुणम् असि अन्तरिक्षम् दृंह।
ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवनि, उप दधामि भ्रातृव्यस्य वधाय।।
धर्त्रम् असि दिवम् दृंह, ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवनि, उप दधामि भ्रातृव्यस्य वधाय।।
विश्वाभ्यः त्वा आशाभ्यः उप दधामि, चितः स्थ ऊर्ध्व चितो भृगूणाम्, अंगिरसाम् तपसा तप्यध्वम्।।18।।

संहितापाठ

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृंह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। धर्त्रमसि दिवं दृंह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्यऽउपदधामि चितः स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम्।।18।।

मन्त्रार्थ : अग्ने हे अग्ने! **ब्रह्म** हे ब्रह्म! **गृभ्णीस्व** अपने गर्भ में धारण करो। **धरुणम्** धारण करने वाले **असि** हो, **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष को **दृंह** दृढ़ करो। **ब्रह्मवनि** हे ब्रह्मवनि, **क्षत्रवनि** क्षत्रवनि, **सजातवनि** सजातवनि! **भ्रातृव्यस्य** भ्रातव्य के **वधाय** वध के लिए **त्वा** तुमको **उप दधामि** समीप धारण करता हूँ। **धर्त्रम्** धारण करने वाले **असि** हो, **दिवम्** दिव को **दृंह** दृढ़ करो। **ब्रह्मवनि** हे ब्रह्मवनि, **क्षत्रवनि** हे क्षत्रवनि, **सजातवनि** हे सजातवनि! **भ्रातव्यस्य** भ्रातव्य (कपटबन्धु) के **वधाय** वध के लिए **त्वा** तुमको **उप दधामि** समीप धारण करता हूँ। **त्वा** तुमको **विश्वाभ्यः** सभी **आशाभ्यः** आशाओं के लिए **उप दधामि** समीप धारण करता हूँ। **चितः** चेतन **स्थ** हो, **ऊर्ध्व चितो** ऊर्ध्वचेता **भृगूणाम्** भृगुओं, **अंगिरसाम्** अंगिरसों के **तपसा** तप से **तप्यध्वम्** तप कराओ।

भावार्थ : परमात्मा से प्रार्थना है कि हमको अपने गर्भ में, अपने भीतर धारण करो। यह भी कहा गया है कि मैं परमात्मा को अपने समीप धारण करता हूँ। सर्वव्यापक परमात्मा के भीतर तो सब कुछ है ही, हमें इस तथ्य को अनुभव करना है, उसे अपने निकट अनुभव करना है। भ्रातव्य अर्थात् कपट बन्धुओं से बचना है तथा भाई-भतीजावाद अर्थात् अपने पराये की भावना से दूर रहना है, तप करना है, ऊर्ध्वचेता बनना है, तभी हमारी आशाएँ पूर्ण होंगी।। 18 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : अग्ने (अग् = गति करना)। **ब्रह्म** (बृह् = बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। **गृभ्णीस्व** (गृभ् = भीतर धारण करना, गर्भ होना)। **धरुणम्** (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना)। **असि** (अस् = होना)। **अन्तरिक्षम्** (अन्तः = बीच में, ईक्ष - देखना)। **दृंह** (दृंह् = बढ़ना, दृढ़ होना, दृढ़ करना)। **ब्रह्मवनि** (बृह् = बढ़ना, वन् = शब्द करना, सेवा करना, याचना करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **क्षत्रवनि** (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। **सजातवनि** (सज्, संज = सम्बन्धी होना)। **उपदधामि** (उप + दधामि, धा = धारण करना)। **भ्रातव्यस्य** (भृ = भरण करना, भ्राता = भाई, भाई जैसा, भाई सम्बन्धी)। **वधाय** (वध्-हन् = मारना)। **धर्त्रम्** (धृ = धारण करना)। **दिवम्** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना, आनन्द करना आदि)। **विश्वाभ्यः** (सर्वनाम)। **आशाभ्यः** (आ + शास् = भला चाहना, आशा करना)।

चितः (चित् = चेतन होना)। **स्थ** (स्था - स्थित होना, ठहरना)। **ऊर्ध्वचितो** (ऊर्ध्व = उच्च, ऊपर, चित् = चेतन होना)। **भृगूणाम्** (भृ = भरण करना, भृग् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। **अंगिरसाम्** (अंग् = चलना, समीप जाना)। **तपसा** (तप् = तप करना, ऐश्वर्य होना}। **तप्यध्वम्** (तप् = तप करना)।। 18 ।।

19. शर्म असि अवधूतम् रक्षो अवधूता अरातयः, अदित्याः त्वक् असि प्रति त्वा अदितिः वेत्तु ।।
धिषणा असि पर्वती, प्रति त्वा अदित्याः त्वक् वेत्तु,
दिवः स्कम्भनीः असि धिषणा असि पार्वतेयी, प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ।। 19 ।।

संहितापाठ

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिव स्कम्भीनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ।। 19 ।।

मन्त्रार्थ : (तुम) **अवधूतम्** कम्पनरहित, निष्कम्प **शर्म** सुख, **अवधूताः** कम्पनरहित, निष्कम्प **रक्षो** रक्षक, **अरातयः** अदेय, अदत्त (तथा) **अदित्याः** अपनाने योग्य अविनाशी (परमात्मा) की **त्वक्** त्वचा **असि** हो, **त्वा** तुम्हारे **प्रति** प्रति **अदितिः** अदिति (अविनाशी परमात्मा) **वेत्तु** जानें (अथवा अदिति के प्रति जानें)। **धिषणा** तेजस्वी **पर्वती** क्रियाशीलता **असि** हो, **प्रति त्वा** तुम्हारे प्रति (तुमको) **अदित्याः** अदिति (अविनाशी) की **त्वक्** त्वचा **वेत्तु** जाने, **दिवः** तेजस्वी **स्कम्भनीः** क्रियाशीलता **असि** हो, **पार्वतेयी** पूर्ण से उत्पन्न **धिषणा** वाणी हो। **प्रति त्वा** तुमको **पर्वती** पूर्ण (परमात्मा) **वेत्तु** जाने।

भावार्थ : अपनी भावना, उपासना को इतना प्रखर बना लें कि परमात्मा भी उपासक का ध्यान रखे। परमात्मा के प्रति पूर्ण विश्वास हो, पूर्ण समर्पण की भावना हो तो यह सम्भव है। हममें तेजस्वी क्रियाशीलता होनी चाहिए, हमें परमात्मा की वाणी भी सुननी चाहिए, तभी परमात्मा तक हमारी प्रार्थना पहुँच सकेगी।। 19 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : शर्म (शर्म = सुख होना)। **असि** (अस् = होना)। **अवधूतम्** (अव + धू = कम्पन करना)। **रक्षः** (रक्ष् = रक्षा करना, बचाना)। **अवधूताः** (अव + धू = कम्पन करना)। **अरातयः** (अ + रा = देना)। **अदित्याः** (अद् = खाना, अ + दी = नष्ट होना)। **त्वक्** (त्वच - आच्छादित करना, लपेटना, ढांकना)। **प्रति** (उपसर्ग)। **त्वा** (सर्वनाम)। **अदितिः** (अद् = खाना, अ + दी = नष्ट होना)। **वेत्तु** (विद् = जानना)। **धिषणा** (धिष् = शब्द करना, बोलना)। **पर्वती** (पर्व = पूरा करना, भरना)। **दिवः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना आदि)। **स्कम्भनी** (स्कम्भ = सक्रिय होना, क्रियाशील होना)। **पार्वतेयी** (पर्व = पूरा करना, भरना)।।19 ।।

20. धान्यम् असि धिनुहि देवान्, प्राणाय त्वा उदानाय त्वा व्यानाय त्वा ।।
दीर्घाम् अनु प्र सितिम् आयुषे धाम्, देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रति गृभ्णातु,
अच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनाम् पयो असि ।।

संहितापाठ

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ।। 20 ।।

मन्त्रार्थ : धान्यम् धारण करने योग्य **असि** हो, **देवान्** देवों को **प्राणाय** प्राण, **उदानाय** उदान, **व्यानाय** व्यान के लिए **धिनुहि** सन्तुष्ट करो। **आयुषे** आयु के लिए **दीर्घाम्** दीर्घ **सितिम्** सम्बन्ध **धाम्** बनाओ। **वः** तुम लोगों को **चक्षुषे** आँख के लिए **हिरण्यपाणिः** ज्योतिर्मय हाथों वाले **देवो** देव **सविता** सविता **अच्छिद्रेण** अचूक **पाणिना** हाथ से **प्रति गृभ्णातु** अपने भीतर धारण करें। **महीनाम्** विशाल **पयो** प्रवाह **असि** हो जाओ, बनबनो।

भावार्थ : अपना महत्व समझो, तुम परमात्मा के लिए, इस समाज के लिए मूल्यवान् हो, धारण करने योग्य हो। प्राण, उदान, व्यान आदि जीवन धाराओं श्वास, प्रश्वास के लिए देवों को सन्तुष्ट करो। देव का अर्थ है तेजस्वी। ऐसे विद्वानों तथा इन्द्रियों का ध्यान रखो। दीर्घ आयु अर्थात् लम्बे जीवन के लिए हमें परमात्मा, विद्वानों तथा शरीर की इन्द्रियों को पुष्ट करने वाली दिनचर्या से दीर्घ सम्बन्ध बनाये रखना है। विचार तथा कर्म से सीमित मत रहो, विशाल प्रवाह बनो। अपनी

भावना को, आत्मीयता को विस्तार दो।। 20।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : धान्यम् (धा = धारण करना)। **असि** (अस् = होना)। **धिनुहि** (धिन्, धिन्व = सन्तुष्ट होना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, समीप होना, समीप जाना, समीप आना)। **देवान्** (दिव् = तेजस्वी होना आदि)। **प्राणाय** (अन् = प्राण होना, जीवन होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। । **उदानाय** (अन् = प्राण होना, जीवन होना)। **व्यानाय** (अन् = प्राण होना, जीवन होना)। **दीर्घाम्** (दिह - बढ़ना)। **अनु** (उपसर्ग)। **प्रसितिम्** (प्र (उपसर्ग) + सिन् = बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। **आयुषे** (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। **धाम्** (धा = धारण करना)। **देवो** (दिव् = तेजस्वी होना आदि)। **वः** (सर्वनाम)। **सविता** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। **हिरण्यपाणिः** (हिरण्य = ज्योति, स्वर्ण, पाणि = हाथ)। **प्रति गृभ्णातु** (गृभ्, गर्भ् = गर्भ होना)। **अच्छिद्रेण** (अच्छ -सत्य होना, निर्मल होना)। **पाणिना** (पाणि = हाथ)। **चक्षुषे** (चक्ष् - देखना)। **महीनाम्** (मंह् - बढ़ना)। **पयो** (पय् = बहना, गति करना)।। 20।।

(7) सूक्त 7

21. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्।।
सम् वपामि सम् आपः ओषधीभिः, सम् ओषधयो रसेन।।
सम् रेवतीः जगतीभिः पृच्यन्ताम्, सम् मधुमतीः मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्।।21।।

संहितापाठ

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
सं वपामि समापऽओषधीभिः समोषधयो रसेन।सꣳरेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताम् सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्।।21।।

मन्त्रार्थ : देवस्य देव को **सवितुः** उत्पन्न करने वाला (परमात्मा) **त्वा** तुम्हें **अश्विनोः** व्यापक **हस्ताभ्याम्** भुजाओं के लिए, **पूष्णो** पोषक **हस्ताभ्याम्** हाथों के लिए **प्रसवे** उत्पन्न करे। **ओषधयो** ओषधियों को **आपः** व्यापक **ओषधीभिः** ओषधियों से, **रसेन** रसों से **सम् वपामि** बोता हूँ। **सम् रेवतीः** रेवती को **जगतीभिः** जगती से **पृच्यन्ताम्** जोड़ो। **सम् मधुमतीः** मधुमती को **मधुमतीभिः** मधुमती से **पृच्यन्ताम्** जोड़ो।

भावार्थ : परमात्मा देवशक्तियों को उत्पन्न करने वाला है। वही हमें भी व्यापक भुजाओं से तथा पोषक हाथों से उत्पन्न करता है। हमें स्वयम् को सर्वव्यापी परमात्मा से जोड़ लेना है। सांसारिक ओषधियों को परमात्मा की दिव्य चेतना रूपी परम ओषधि से और उसकी चेतना के रस से बो देना है। परमात्मा की चेतना शक्ति से भाव-सम्बन्ध जोड़ देने से ओषधियों का प्रभाव बहुत बढ़ जाता है। जीवन गतिशीलता का नाम है। अपनी गतिशीलता, सक्रियता को परमात्मा को समर्पित कर दें। अपने कर्म समर्पण भाव से करें तो तनाव मुक्त जीवन रहेगा तथा परमात्मा की कृपा तथा सहयोग भी मिलता रहेगा।। 21।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना आदि)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना)। **प्रसवे** (सु = उत्पन्न करना)। **अश्विनोः** (अशु = व्यापक होना)। **बाहुभ्याम्** (बाहुः, बाहा - भुजायाम्)। **पूष्णो** (पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। **हस्ताभ्याम्** (हस्त - देना लेना, ग्रहण करना)।। **सम्** (उपसर्ग)। **वपामि** (वप् = बोना, उत्पन्न करना)। **समापः** (आप् = व्यापना, पाना)। **ओषधीभिः** (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। **समोषधयो** (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। **रसेन** (रस् = शब्द करना, स्वाद लेना, प्यार करना)। **रेवतीः** (री = गति करना, शब्द करना)। **जगतीभिः** (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। **पृच्यन्ताम्** (पृच् = जोड़ना)। **मधुमतीः** (मध्-मधु = मधुर होना, मीठा होना)। **मधुमतीभिः** (मध्-मधु = मधुर होना, मीठा होना)।। 21।।

22. जनयत्यै त्वा सम् यौमि, इदम् अग्नेः इदम् अग्नीषोमयोः,
इषे त्वा घर्मो असि विश्वायुः, उरु प्रथा, उरु प्रथस्व,
उरु ते यज्ञपतिः प्रथताम्, अग्निः ते त्वचम् मा हिंसीत्,

देवः त्वा सविता श्रपयतु, वर्षिष्ठे अधि नाके॥22॥

संहितापाठ

जनयत्यै त्वा सँयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथाऽउरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिꣳसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके॥22॥

मन्त्रार्थ : जनयत्यै उत्पादक शक्ति के लिए **त्वा** तुमको **सम् यौमि** संयुक्त करता हूँ। **इदम्** यह (शक्ति) **अग्नेः** अग्नि (तथा) **इदम्** यह **अग्नीषोमयोः** अग्नि-सोम की **इषे** गति, जानने, पाने के लिए (है)। **त्वा** तुम **विश्वायुः** पूर्ण आयु, **उरु** बहुत **प्रथा** विस्तृत, **घर्मो** ज्योति **असि** हो। **उरु** बहुत **प्रथस्व** विस्तार करो। **ते** तुम्हारे लिए **यज्ञपतिः** यजनपति **उरु** बहुत **प्रथताम्** विस्तार करे। **अग्निः** अग्नि **ते** तुम्हारी **त्वचम्** त्वचा को **मा** न **हिंसीत्** हिंसित करें। **त्वा** तुमको **सविता** सविता **देवः** देव **वर्षिष्ठे** परम पराक्रम, **अधि नाके** अकुटिलता, शान्ति, विश्रान्ति में **श्रपयतु** परिपक्व करें।

भावार्थ : परमात्मा ने हमको उत्पादक शक्ति दी है। यह शक्ति अग्नि तथा अग्नि-सोम को जानने, पाने के लिए है। यदि हम सृजन क्षमता का सदुपयोग करें, अग्नि स्वरूप परमात्मा को जानें तथा अनुभव करें, उसे पा लें, तो पूर्ण आयु तथा विस्तृत ज्योति मिल जायेगी। यजनपति परमात्मा की कृपा से हमारी शक्ति-सामर्थ्य का बहुत विस्तार हो जायेगा। यदि हम परमात्मा की चेतना के साथ एकाकार हो जायें तो वह परमात्मा अग्नि अथवा संसार हमारी त्वचा को भी हानि नहीं पहुँचा सकेगा। अध्यात्म दृष्टि से अग्नि तो परमात्मा ही है, परन्तु संसार के तेजस्वी, अग्रणी, बलशाली लोग भी अग्नि कहे जा सकते हैं। सविता देव अर्थात् सबको उत्पन्न करने वाले परमात्मा हमें परिपक्वता दें, परम पराक्रम के साथ अकुटिल, विश्रान्त, शान्त जीवन प्रदान करें॥ 22॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : जनयत्यै (जन् = उत्पन्न करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सम्** (उपसर्ग)। **यौमि** (यु = मिलाना, अलग करना)। **इदम्** (सर्वनाम)। **अग्नेः** (अग् - अगि = गति करना, आगे जाना)। **अग्नीषोमयोः** (अग् - अगि = गति करना, आगे जाना, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **इषे** (इष् = जाना, इच्छा करना)। **घर्मो** (घृ =चमकना, प्रकाश होना)। **असि** (अस् = होना)। **विश्वायुः** (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। **उरु** (अव्यय, सर्वनाम)। **प्रथा** (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। **प्रथस्व** (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। **ते** (सर्वनाम)। **यज्ञपतिः** (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **प्रथताम्** (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। **अग्निः** (अग् = जाना, आगे जाना, ऊर्ध्वगति करना, तेजस्वी होना)। **त्वचम्** (त्वच -आवरण होना)। **मा** (अव्यय)। **हिंसीत्** (हिंस् = हिंसा करना, मारना, सताना)। **देवः** (दिव्, देव् = तेजस्वी होना आदि)। **सविता** (सु = उत्पन्न करना)। **श्रपयतु** (श्रप् = परिपक्व करन)। **वर्षिष्ठे** (वृष् = अति पराक्रम करना)। **अधि** (उपसर्ग)। **नाके** (अक् = जाना, कुटिल गति होना)॥ 22॥

23. मा भेः मा सम् विक्था, अतमेरुः यज्ञो अतमेरुः यजमानस्य प्रजा भूयात्।
त्रिताय त्वा द्विताय त्वा एकताय त्वा॥23॥

संहितापाठ

मा भेर्मा संविक्थाऽअतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा॥23॥

मन्त्रार्थ : मा मत **भेः** डरो, **मा** मत **सम् विक्था** पीछे हटो। **त्रिताय** त्रित, **द्विताय** द्वित, **एकताय** एकत के लिए **अतमेरुः** निष्काम **यज्ञो** यजन **यजमानस्य** यजमान की **प्रजा** सन्तति **भूयात्** हो।

भावार्थ : यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान निष्काम भाव से करना चाहिए। विपरीत परिस्थितियों से डरो नहीं, कभी पीछे मत हटो। यदि साहस के साथ सत्कर्म में लगे रहे तो ईश्वर की कृपा से सफलता मिलेगी ही॥ 23॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : मा (अव्यय)। **भेः** (भी - डरना, घबराना)। **सम् विक्था** (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति, विच्, विज् = अलग होना, टूटना)। **अतमेरुः** (अ + तम् = इच्छा करना)। **यज्ञो** (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान)। **यजमानस्य** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना)। **प्रजा** (जन् = उत्पन्न होना)। **भूयात्** (भू = होना)। **त्रिताय** (त्रि = तीन)। **त्वा** (सर्वनाम)। **द्विताय** (द्वि = दो)। **एकताय** (एक - संख्या, एक - विचार करना)॥ 23॥

24. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम् ॥
आ ददे अध्वरकृतम् देवेभ्यः, इन्द्रस्य बाहुः असि दक्षिणः,
सहस्र भृष्टिः शततेजा वायुः, असि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥ 24 ॥

संहितापाठ

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेऽध्वरकृतं देवेभ्यऽइन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥ 24 ॥

मन्त्रार्थ : देवस्य देव का **सवितुः** जनक (परमात्मा) **त्वा** तुमको **अश्विनोः** व्यापक **बाहुभ्याम्** भुजाओं के लिए, **पूष्णो** पोषक **हस्ताभ्याम्** हाथों के लिए **प्रसवे** उत्पन्न करता है। **अध्वरकृतम्** अहिंसक अवर्णनीय कर्म **देवेभ्यः** देवों के लिए **आ ददे** दे दिया है। **इन्द्रस्य** इन्द्र की **सहस्र-भृष्टिः** सहस्र-ज्योति (तथा) **शततेजा** शत तेज वाली **दक्षिणः** दक्षिण **बाहुः** बाहु **असि** हो। **द्विषतो** द्वेष का **वधः** विनाश करने वाले **तग्मतेजा** तिग्म तेज वाले **वायुः** वायु **असि** हो।

भावार्थ : परमात्मा देवों को उत्पन्न करने वाला है। इस बात का स्मरण कराते हुए कहा गया है कि हमारा जीवन व्यापक भुजाओं तथा पोषक हाथों के लिए है। अर्थात् हमारे कार्यों में व्यापकता होनी चाहिए। कर्म समाज का पोषण करने वाले होने चाहिए। देवों के जनक परमात्मा ने अहिंसक तथा अवर्णनीय कर्म करने की अपेक्षा देव-मानवों से की है। हमें अपना जीवन महान् अवर्णनीय कर्मों में लगाना चाहिए जो किसी को कष्ट न दें। परमात्मा तथा उसकी अनुपम कृति मानव भी सहस्र ज्योति तथा शततेज युक्त है। महान् प्रकाशयुक्त तथा तेजस्वी मानव इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा का दाहिना हाथ है। परमात्मा द्वेष का विनाश करने वाला वायु अर्थात् गतिशील रचनात्मक सत्ता है। हमें भी ऐसा ही होना चाहिए। परमात्मा द्वेष का विनाशक है। द्वेष करने वाले का विनाश निश्चित है, अतः द्वेष मत करो। तिग्म का अर्थ है जानने वाला, गतिशील। कुटिल चाल चलना भी तिग् धातु का एक अर्थ है। परमात्मा सब कुछ जानता है, गति स्वरूप है तथा कुटिल लोगों के लिए कुटिल भी है॥ 24 ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : देवस्य (दिव्, देव् = तेजस्वी होना आदि)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना)। **प्रसवे** (सु = उत्पन्न करना)। **अश्विनोः** (अशु = व्यापक होना)। **बाहुभ्याम्** (बाहुः, बाहा - भुजायाम्)। **पूष्णो** (पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। **हस्ताभ्याम्** (हस्त - देना लेना, ग्रहण करना)। **आ ददे** (दा - देना)। **अध्वर** (ध्वर् = टेढ़ा करना, झुकाना, मार डालना} । **कृतम्** (कृ = करना)। **देवेभ्यः** (दिव्, = तेजस्वी होना आदि)। **इन्द्रस्य** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना}। **बाहुः** (बाह् - प्रयास करना, बह् - बहना, गति करना, बाहर होना, परे हो जाना, हिंसा करना)। **असि** (अस् = होना)। **दक्षिणः** (दक्ष् - बढ़ना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना, दक्ष होना, चलना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, मार डालना)। **सहस्र** (संख्या)। **भृष्टिः** (भृश् = चमकना)। **शततेजा** (शत + तेजाः - तिज्, तेज् = चमकना, चमकाना)। **वायुः तिग्मतेजा** (तिग् = जाना, कूटचाल चलना, तिज्, तेज् = चमकना, चमकाना, पैना करना)। **द्विषतो** (द्विष् = द्वेष करना, विरोध करना, शत्रुता करना)। **वधः** (वध्-हन् = मारना)॥ 24 ॥

25. पृथिवि देवयजनि ओषध्याः, ते मूलम् मा हिंसिषम्, व्रजम् गच्छ गोष्ठानम्,
वर्षतु ते द्यौः, बधान देव सवितः परमस्याम् पृथिव्याम् शतेन पाशैः,
यो अस्मान् द्वेष्टि, यम् च वयम् द्विष्मः, तम् अतो मा मौक् ॥ 25 ॥

संहितापाठ

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिꣳसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्या शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ 25 ॥

मन्त्रार्थ : देवयजनि देवयजन वाली **पृथिवि** पृथ्वी पर **ते** तुम्हारे लिए **ओषध्याः** ओषधियों का **मूलम्** मूल **मा** नहीं **हिंसिषम्** नष्ट हो। **व्रजम्** पूर्ण सिद्ध **गोष्ठानम्** गोष्ठों को **गच्छ** जाओ। **ते** तुम्हारे लिए **द्यौः** सम्मुख **वर्षतु** वर्षा हो। **यो** जो **अस्मान्** हमसे **द्वेष्टि** द्वेष करते हैं, **च** और **यम्** जिनसे **वयम्** हम **द्विष्मः** द्वेष करते हैं, **तम्** उनको **देव** देव **सवितः** सविता

परमस्याम् इस परम विस्तृत **पृथिव्याम्** पृथिवी पर **शतेन पाशैः** सैकड़ों बन्धनों से **बधान** बाँधें, **तम्** उसे **अतो** इससे **मा** नहीं **मौक्** मुक्त करें।

भावार्थ : तात्कालिक हितों के लिए प्रकृति का अनुचित दोहन न करें। ध्यान रखें कि ओषधियों के मूल नष्ट न हों। ओषधीय पौधों की प्रजातियाँ नष्ट हो गयीं तो मानव भी नहीं बचेगा। अतः वहाँ जाओ, जहाँ विद्वानों के प्रवचन हों, वेदमन्त्रों का पाठ-स्वाध्याय हो। इससे जीवन में सफलता मिलेगी। परमात्मा द्वेष करने वालों को बन्धन में डालता है, उनकी कर्म स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है। अतः किसी से द्वेष न करें॥ 25॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : पृथिवि (पृथ = विस्तार होना, फैलाना, फेंकना)। **देवयजनि** (दिव् = तेजस्वी होना आदि, यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **ओषध्याः** (ओषध्, उषध् = रोगमुक्त करना)। **ते** (सर्वनाम)। **मूलम्** (मूल् = बोना, उगना, उत्पन्न होना)। **मा** (अव्यय)। **हिंसिषम्** (हिंस् = हिंसा करना, मारना)। **व्रजम्** (व्रज = जाना, पूर्ण करना, सिद्ध करना)। **गच्छ** (गम्, गच्छ = जाना)। **गोष्ठानम्** (गो + स्थानम्, गु = शब्द करना, उपदेश, मन्त्रपाठ करना)। **वर्षतु** (वर्ष् = बरसना आदि)। **द्यौः** (द्यु = आगे जाना, समीप जाना}। **बधान** (बध् = बांधना, बध करना, मारना)। **देव** (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **सवितः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **परमस्याम्** (अव्यय)। **पृथिव्याम्** (पृथ = विस्तार होना, फैलाना, फेंकना)। **शतेन** (संख्या)। **पाशैः** (पश् = बन्धन करना, बाँधना, जाना)। **यो** (सर्वनाम)। **अस्मान्** (सर्वनाम)। **द्वेष्टि** (द्विष - द्वेष करना, शत्रुता करना)। **यम्** (सर्वनाम)। **च** (अव्यय)। **वयम्** (सर्वनाम)। **द्विष्मः** (द्विष - मत्सर करना, द्वेष करना)। **तम्** (सर्वनाम)। **अतो** (सर्वनाम)। **मौक्** (मुच्, मुक् = मुक्त करना)॥ 25॥

(8) सूक्त 8

26. अप अररुम् पृथिव्यै देवयजनात् वध्यासम्, व्रजम् गच्छ गोष्ठानम्, वर्षतु ते द्यौः,
बधान देव सवितः, परमस्याम् पृथिव्याम् शतेन पाशैः,
यो अस्मान् द्वेष्टि यम् च वयम्, द्विष्मः तम् अतो मा मौक्।
अररो दिवम् मा पप्तो द्रप्सः ते द्याम् मा स्कन्, व्रजम् गच्छ गोष्ठानम् वर्षतु ते द्यौः,
बधान देव सवितः, परमस्याम् पृथिव्याम् शतेन पाशैः,
यो अस्मान् द्वेष्टि यम् च वयम् द्विष्मः, तम् अतो मा मौक्॥26॥

संहितापाठ

अपाररु पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्या शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्। अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्या शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्॥26॥

मन्त्रार्थ : अररुम् विनाशकारी को **देवयजनात्** देवयजन वाली भूमि से **वध्यासम्** दूर या नष्ट कर दें। **व्रजम्** पूर्ण सिद्ध **गोष्ठानम्** गोष्ठों को **गच्छ** जाओ। **ते** तुम्हारे लिए **द्यौः** सम्मुख **वर्षतु** वर्षा हो। **यो** जो **अस्मान्** हमसे **द्वेष्टि** द्वेष करते हैं, **च** और **यम्** जिनसे **वयम्** हम **द्विष्मः** द्वेष करते हैं, **तम्** उनको **देव** देव **सवितः** सविता **परमस्याम्** इस परम विस्तृत **पृथिव्याम्** पृथिवी पर **शतेन पाशैः** सैकड़ों बन्धनों से **बधान** बाँधें, **तम्** उसे **अतो** इससे **मा** नहीं **मौक्** मुक्त करें। **अररो** विनाशकारी (तत्व) **दिवम्** तेज को **मा** न **पप्तो** गिरा सकें। **ते** तुम्हारे लिए **द्याम्** अभिगमन **द्रप्सः** आनन्द का **मा** नहीं **स्कन्** तिरस्कार हो। **व्रजम्** पूर्ण सिद्ध **गोष्ठानम्** गोष्ठों को **गच्छ** जाओ। **ते** तुम्हारे लिए **द्यौः** सम्मुख **वर्षतु** वर्षा हो। **यो** जो **अस्मान्** हमसे **द्वेष्टि** द्वेष करते हैं, **च** और **यम्** जिनसे **वयम्** हम **द्विष्मः** द्वेष करते हैं, **तम्** उनको **देव** देव **सवितः** सविता **परमस्याम्** इस परम विस्तृत **पृथिव्याम्** पृथिवी पर **शतेन पाशैः** सैकड़ों बन्धनों से **बधान** बाँधें, **तम्** उसे **अतो** इससे **मा** नहीं **मौक्** मुक्त करें।

भावार्थ : विनाशकारी भावना को देवयजन की भूमि से दूर रखें, उसे नष्ट कर दें। ऐसी भावना देवयजन के अनुकूल नहीं है। सदैव सचेत रहें कि विनाशकारी तत्व तुम्हारे तेज का पतन न कर सकें। परमात्मा ने जीवन में आनन्द दिया है,

उसका तिरस्कार नकारात्मक भावना से होने लगता है। ऐसा न होने दें।। 26 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : अप (उपसर्ग)। **अररुम्** (अरर् = काटना, नष्ट करना)। **पृथिव्यै** (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना)। **देवयजनात्** (दिव् = तेजस्वी होना, यज - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **वध्यासम्** (वध्-हन् = मारना)। **व्रजम्** (व्रज = पूर्ण करना, सिद्ध करना)। **गच्छ** (गम्, गच्छ = जाना)। **गोष्ठानम्** (गो + स्थानम्, गु = शब्द करना, उपदेश, मन्त्रपाठ करना)। **वर्षतु** (वर्ष् = बरसना आदि)। **ते** (सर्वनाम)। **द्यौः** (द्यु = आगे जाना, समीप जाना)। **बधान** (बध् = बांधना, बध करना, मारना आदि)। **देव** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **सवितः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **परमस्याम्** (अव्यय)। **पृथिव्याम्** (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना)। **शतेन** (संख्या)। **पाशैः** (पश् = बन्धन करना, बाँधना, जाना)। **यो** (सर्वनाम)। **अस्मान्** (सर्वनाम)। **द्वेष्टि** (द्विष - द्वेष करना)। **यम्** (सर्वनाम)। **च** (अव्यय)। **वयम्** (सर्वनाम)। **द्विष्मः** (द्विष - द्वेष करना)। **तम्** (सर्वनाम)। **अतो** (सर्वनाम)। **मा** (अव्यय)। **मौक्** (मुच्, मुक् = छोड़ना, मुक्त करना)। **अररो** (अरर् = काटना, नष्ट करना)। **दिवम्** (दिव् = तेजस्वी होना)। **पप्तो** (पत् = गिरना)। **द्रप्सः** (दृप् = हर्ष होना, गर्व होना)। **द्याम्** (द्यु = अभिगमन करना)। **स्कन्** (स्कन् = तिरस्कार करना)। 26 ।।

27. गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि, त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि, जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि ।।
सुक्ष्मा च असि शिवा च असि स्योना च असि, सुषदा च असि ऊर्जस्वती च असि पयस्वती च ।। 27 ।।

संहितापाठ

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगह्णामि। सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च ।। 27 ।।

मन्त्रार्थ : त्वा तुमको **गायत्रेण** गायत्री **छन्दसा** छन्द द्वारा **परिगृह्णामि** प्राप्त करता हूँ। **त्वा** तुमको **त्रैष्टुभेन** त्रिष्टुप् **छन्दसा** छन्द द्वारा **परिगृह्णामि** प्राप्त करता हूँ। **त्वा** तुमको **जागतेन** जगती **छन्दसा** छन्द द्वारा **परिगृह्णामि** प्राप्त करता हूँ। **सुक्ष्मा** भलीभाँति धारण करने वाले दानी **असि** हो, **शिवा** कल्याणकारी **असि** हो, **स्योना** सुखदाता हो, **सुषदा** अच्छा लक्ष्य (गन्तव्य) **असि** हो, **ऊर्जस्वती** ऊर्जामय **असि** हो और **पयस्वती** विस्तृत, प्रवाहमान **असि** हो।

भावार्थ : परमात्मा को गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती आदि छन्दों के वेदमन्त्रों द्वारा पाया जा सकता है। वेदमन्त्रों में उत्तम मार्गदर्शन है तथा आध्यत्मिक शक्तियाँ समाहित हैं। वेदमन्त्रों से उपासना करने पर हमें अनुभव होता है कि परमात्मा सृष्टि को किस प्रकार सुव्यवस्थित रूप से धारण कर रहा है, वह हमारे लिए परम कल्याणकारी है, सुखदाता है, श्रेष्ठ लक्ष्य है, जीवन का परम लक्ष्य, परम ध्येय है, वह परम ऊर्जावान् है, ऊर्जा का अनन्त स्रोत है तथा अनन्त विस्तारयुक्त सर्वव्यापी सत्ता है।। 27 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : गायत्रेण (गा - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **छन्दसा** (छन्द् - संवरण करना, ढकना, आच्छादन करना, लपेटना)। **परिगृह्णामि** (परि + गृह् = ग्रहण करना, स्वीकार करना, पाना)। **त्रैष्टुभेन** (त्रै - संरक्षण करना, पोषण करना, बचाना, त्रि = तीन, संख्या, सर्वनाम, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना, स्तु - स्तुति करना)। **जागतेन** (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। **सुक्षमा** (सु + क्ष्मा, क्ष्मै = धारण करना, सहन करना, क्ष्मा = दान करना)। **च** (अव्यय)। **असि** (अस् = होना)। **शिवा** (शिव् = कल्याण करना)। **स्योना** (स्योन् = सुख होना, सुख देना)। **सुषदा** (सु + षद् = जाना)। **ऊर्जस्वती** (ऊर्ज् = बल होना, प्राण होना)। **पयस्वती** (पयस् = फैलाना, विस्तार करना)।। 27 ।।

28. पुरा क्रूरस्य विसृपो, विरप्शिन्, उत् आदाय पृथिवीम् जीवदानुम् ।।
याम् ऐरयन् चन्द्रमसि स्वधाभिः, ताम् उ धीरासो अनुदिश्य यजन्ते ।।
प्रोक्षणीः आ सादय द्विषतो वधो असि ।। 28 ।।

संहितापाठ

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम्। यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासोऽअनुदिश्य

यजन्ते। प्रोक्षणीरासादय द्विषतो वधोऽसि ॥ 28 ॥

मन्त्रार्थ : विरप्शिन् स्पष्ट वक्ता **पुरा** पहले **क्रूरस्य** निर्दयता को **विसृपो** हटायें, **जीवदानुम्** जीवनदायिनी **पृथिवीम्** विस्तृत भावना को **उत्-आदाय** उत्कृष्टता से प्राप्त करें। **याम्** जिसे **ऐरयन्** पाकर **धीरासो** धीर जन **चन्द्रमसि** आनन्दपूर्वक **अनुदिश्य** दान कर **स्वधाभिः** स्वधाओं द्वारा **ताम्** उसका **यजन्ते** यजन करते हैं, **प्रोक्षणीः** दृढ़ता, निर्मलता को **आ सादय** स्थापित करो, **द्विषतो** द्वेष भावना का **वधो** विनाश करने वाले **असि** हो।

भावार्थ : स्पष्टवक्ता होने के लिए निर्दयता, क्रूरता की भावना को हटाना होगा, तभी लोगों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। स्पष्ट बोलने का अर्थ कटुवचन बोलना नहीं है। विस्तृत व्यापक दृष्टिकोण ही जीवनदायी है, उसे जीवन में पूरी तरह उतार लें। द्वेषभावना से अपना विनाश होना ही है, अतः इससे बचें और उस निर्मल भाव को दृढ़ता से मन में स्थापित कर लें जिसे पाकर धीर लोग आनन्दपूर्वक दान करते हैं तथा स्वधा अर्थात् स्वयम् को धारण करने वाली दिव्य चेतना के साथ यजन करते हैं। यजन का अर्थ परमात्मा की उपासना के साथ ही संगतिकरण तथा दान भी है। सामूहिकता की भावना के बिना तथा समाज के हित में देने की भावना से रहित पूजा-उपासना अपूर्ण है, अतः सफल नहीं होती है॥ 28 ॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : पुरा (अव्यय)। **क्रूरस्य** (क्रू, क्रूर् = निर्दय होना, निर्दयता करना)। **विसृपो** (वि = विशेष, विविध, विना, विलोम, सृ, सृप् + जाना, सरकना, हटना)। **विरप्शिन्** (वि = विशेष, विविध, विना, विलोम, रप् = स्पष्ट बोलना)। **उदादाय** (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, उद् = उत्कृष्ट होना, उच्च होना, उदार होना, उन्द् - गीला करना, आद्र होना, कष्ट होना, दा - देना, दान करना, आ-दा = लेना, ग्रहण करना)। **पृथिवीम्** (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना)। **जीवदानुम्** (जीव- जीना, प्राणवान् होना, दा = देना)। **याम्** (सर्वनाम)। **ऐरयन्** (ईर - जाना, पाना)। **चन्द्रमसि** (चन्द् = चमकना, आनन्द होना)। **स्वधाभिः** (स्व + धा = धारण करना)। **ताम्** (सर्वनाम)। **उ** (निपात)। **धीरासो** (धी = धारण करना, आधार होना)। **अनुदिश्य** (अनु + दिश् = दिखाना, समझाना, देना)। **यजन्ते** (यज् = देवपूजा, संगति, दान करना)। **प्रोक्षणीः** (प्र + उक्ष् = स्वच्छ करना, सींचना, भेजना, दृढ़ होना, दृढ़ करना)। **आ सादय** (आ + साद् = स्थापित करना)। **द्विषतो** (द्विष् = द्वेष करना)। **वधो** (वध्-हन् = मारना)। **असि** (अस् = होना)॥ 28 ॥

29. प्रति उष्टम् रक्षः, प्रति उष्टा अरातयः, निष्टप्तम् रक्षो, निष्टप्ता अरातयः ॥
अनिशितो असि सपत्नक्षित् वाजिनम् त्वा वाज इध्यायै सम् मार्ज्मि ॥
प्रति उष्टम् रक्षः प्रति उष्टा अरातयः निष्टप्तम् रक्षो निष्टप्ता अरातयः ॥
अनिशिता असि सपत्नक्षित् वाजिनीम् त्वा वाज इध्यायै सम् मार्ज्मि ॥ 29 ॥

संहितापाठ

प्रत्युष्टꣳरक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳरक्षो निष्टप्ताऽअरातयः। अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि। प्रत्युष्टꣳरक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳरक्षो निष्टप्ताऽअरातयः। अनिशिताऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ॥ 29 ॥

मन्त्रार्थ : रक्षः रक्षा करने वाले **प्रति उष्टम्** दहनशील (हैं) **अरातयो** अदानी (दान न करने वाले) **प्रति उष्टा** दहनशील (हैं) अर्थात जल रहे हैं। (ऐसे) **निष्टप्तम्** दहनशील (जल रहे लोगों) की **रक्षा** रक्षा करो। **अरातयः** अदानी लोग **निष्टप्ता** सन्तापयुक्त हैं, (उन्हें हिंसा, दहन होने से निकालो)। **अनिशितो** विचार से परे **असि** हो, **वाजिनम्** शक्ति को, **सपत्नक्षित्** पतन, ऐश्वर्य, जानने वाले हो, **वाज** बल, विद्या से **इध्यायै** चमकने के लिए **त्वा** तुमको **सम् मार्ज्मि** सम्यक् रूप से शुद्ध करता हूँ, सम्यक् वाणी बोलता हूँ। **रक्षः** रक्षा करने वाले **प्रति उष्टम्** दहनशील (हैं) **अरातयो** अदानी (दान न करने वाले) **प्रति उष्टा** दहनशील (हैं) अर्थात जल रहे हैं। (ऐसे) **निष्टप्तम्** दहनशील (जल रहे लोगों) की रक्षा रक्षा करो। **अरातयः** अदानी लोग **निष्टप्ता** सन्तापयुक्त हैं, (उन्हें हिंसा, दहन होने से निकालो)। **अनिशिता** विचार से परे **असि** हो, **सपत्नक्षित्** ऐश्वर्यवान्, **वाजिनीम्** बलवती, विद्वान् **त्वा** तुमको **वाज** बल, विद्या से **इध्यायै** चमकने के लिए **सम् मार्ज्मि** सम्यक् रूप से शुद्ध करता हूँ, सम्यक् वाणी का उच्चारण करता हूँ।

भावार्थ : रक्षा करने वाले को भी हिंसा करनी पड़ती है, दुष्टों को मारना पड़ता है। वे रक्षा करने के कर्तव्यपालन

के लिए हिंसा करते हैं और इसी चिन्ता में जलते रहते हैं। दान न करने वाले अनुदार स्वभाव के लोग सज्जनों, विद्वानों का सहयोग न करने से पूरे समाज को कष्ट देते हैं, इस प्रकार हिंसा करते हैं। उनका हृदय तो दूसरों का सुख, उनकी उन्नति देखकर जलता रहता है। दोनों को इस तरह जलने से मुक्त करना है, रक्षा करने वाले को सहयोग देकर, समाज में सद्गुणों की स्थापना कर उनका कार्य सरल कर सकते हैं। इसी प्रकार से दान न करने वालों को समझाकर, सदुपदेश देकर, सत्संग के माध्यम से दान के लिए सहमत कर सकते हैं। उदारता आने पर वे भी ईर्ष्या, द्वेष के कारण होने वाली जलन से बच जायेंगे। उनका भी हित होगा तथा समाज का भी। परमात्मा हमारी विचार शक्ति की सीमा से परे है। हम उसे पूर्णतः विचार की परिधि में नहीं ला सकते। वह परम ऐश्वर्यवान्, बलवान्, विद्वान् है। बल, विद्या से दीप्त होने के लिए हम परमात्मा की सम्यक् वाणी का उच्चारण करते हैं। सच्चे मन से परमात्मा की प्रार्थना करें तो उसकी कृपा अवश्य प्राप्त होती है। वेद को परमात्मा की वाणी माना जाता है, वेद मन्त्रों से प्रार्थना, उपासना अधिक उपयोगी, फलदायी होती है, इसमें यह भाव भी निहित मानना चाहिए। स्वयम् को विकारों, दुर्व्यसनों, दुर्भावनाओं, कुविचारों से मुक्त शुद्ध कर लें तो उपासना बहुत अधिक फलदायी होती है।। 29 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : प्रति-उष्टम् (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, अव्यय, उष् = दहन, हिंसा करना)। **रक्षः** (रक्ष् = रक्षा करना, बचाना)। **अरातयः** (रा = देना)। **निष्टप्तम्** {तप् = सन्ताप, दहन ऐश्वर्य होना}। **निष्टप्ता** (तप् = सन्ताप, दहन ऐश्वर्य होना)। **अनिशितो** (अ + निश् = विचार करना, मनन करना, ध्यान करना)। **असि** (अस् = होना)। **सपत्नक्षित** (पत् = गिरना, शक्तिमान होना, ऐश्वर्य होना, नक्ष् = जाना, जानना, पाना)। **वाजिनम्** (वाज् = बल होना, गति करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **वाजेध्यायै** (वाज + इध्यायै, वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना, इध् = चमकना, दीप्त होना)। **सम्मार्ज्मि** (सम्-सम्यक् रूप से, भली भाँति, मार्ज् = शब्द करना, मृज् = शुद्ध करना)। **अनिशिता** (अ + निश् = विचार करना, मनन करना, ध्यान करना)। **वाजिनीम्** (वाज् = बल होना, गति करना)।। 29 ।।

30. अदित्यै रास्ना असि विष्णोः वेष्पो असि ऊर्जे त्वा अदब्धेन त्वा चक्षुषा अव पश्यामि ।।
अग्नेः जिह्वा असि सु हूः देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ।। 30 ।।

संहितापाठ

अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्पोऽस्यूर्जे त्वाऽदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि। अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्नेधाम्ने मे भव यजुषेयजुषे ।। 30 ।।

मन्त्रार्थ : अदित्यै अविनाशी के लिए **रास्ना** स्नेहमय वाणी **असि** हो, **विष्णोः** सर्वव्यापी की **वेष्पो** व्यापकता **असि** हो। **ऊर्जे** ऊर्जा के लिए **त्वा** तुमको **अदब्धेन** तृप्त **त्वा** तुमको **चक्षुषा** नेत्रों से **अव पश्यामि** देखता हूँ। **अग्नेः** अग्रणी तेजस्वी की **जिह्वा** वाणी **देवेभ्यो** देवों के लिए **सु हूः** आदान-प्रदान, सुन्दर पुकार **असि** हो। **धाम्ने धाम्ने** प्रत्येक धाम में, **यजुषे** यजुषे प्रत्येक यजन में **मे** मेरे लिए **भव** हो जाओ।

भावार्थ : अव्यक्त परमात्मा इस विराट सृष्टि, व्यापक प्रकृति तथा सबसे परिचय कराने वाली वेदवाणी के रूप में हमारे सामने व्यक्त हो रहा है। यह प्रकृति तथा वेदवाणी अविनाशी परमात्मा अदिति की स्नेहमय वाणी है। व्यापक परमात्मा विष्णु की व्यापकता है। अग्रणी तेजस्वी अग्नि की वाणी रसना जिह्वा है। देवों विद्वानों के लिए आदान-प्रदान का पुनीत कर्म, प्रार्थना की सुन्दर पुकार है। वह मेरे लिए भी घर-घर में, मन्त्र-मन्त्र में विराजमान हो। हम सबको विराट सृष्टि में, सुन्दर प्रकृति में, पुनीत वेदवाणी तथा परमात्मा की अनुभूति हो।। 30 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अदित्यै (अ + दी = नष्ट होना)। **रास्ना** (रस्, रास् = शब्द करना, रस् = प्यार करना)। **असि** (अस् = होना)। **विष्णोः** (विष्ण = व्यापक होना)। **वेष्पो** (विष् = व्यापक होना, सींचना)। **ऊर्जे** (ऊर्ज् = बल होना, प्राण होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **अदब्धेन** (अद् = खाना, दब्ध् = दुःख होना)। **चक्षुषा** (चक्ष् = देखना, साफ करना)। **अव पश्यामि** (अव = नीचे, दूर, प्राप्त, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना, पश्य-दृश् - देखना)। **अग्नेः** (अग् = गति करना, अग्रणी होना)। **जिह्वा** (जिह = जाना, जानना, पाना)। **सु हूः** (हू = दान करना, लेना, ह्वे = पुकारना, शब्द करना)। **देवेभ्यो** (दिव् = चमकना, जानना)। **धाम्ने-धाम्ने** (धा = धारण करना)। **मे** (सर्वनाम)। **भव** (भू

- होना, रहना, उत्पन्न होना)। **यजुषे-यजुषे** (यज् = देवपूजा, संगतिकरण)।। 30 ।।

31. सवितुः त्वा प्रसवे उत् पुनामि, अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।
सवितुः वः प्रसवे उत् पुनामि, अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।।
तेजो असि शुक्रम् असि, अमृतम् असि धाम नाम असि।
प्रियम् देवानाम् अनाधृष्टम्, देव-यजनम् असि ।।31 ।।

संहितापाठ

सवितुस्त्वा प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ।।31 ।।

मन्त्रार्थ : सवितुः सृष्टिकर्ता की **प्रसवे** सृष्टि **त्वा** तुमको **अच्छिद्रेण** अचूक **पुनामि** पावन **सूर्यस्य** सूर्य की **रश्मिभिः** किरणों से **पवित्रेण** पवित्र करता हूँ। **सवितुः** सृष्टिकर्ता की **प्रसवे** सृष्टि में **वः** तुम सब को **अच्छिद्रेण** अचूक **पुनामि** पावन **सूर्यस्य** सूर्य की **रश्मिभिः** किरणों से **पवित्रेण** पवित्र करता हूँ। **तेजो** तेज असि हो, **शुक्रम्** शुद्ध असि हो, **अमृतम्** अमृत असि हो, **धाम नाम** धाम-नाम वाले **असि** हो। **देवानाम्** देवों के **प्रियम्** प्रिय, **अनाधृष्टम्** अविजित, निरभिमानी **देव-यजनम्** देवयजन **असि** हो।

भावार्थ : पहले कहा गया है कि तुमको (एक वचन में एक व्यक्ति को) पावन बनाता हूँ। पुनः उसी बात को दोहराते हुए कहा गया कि तुम सबको पवित्र करता हूँ। इसका भाव है कि एक-एक व्यक्ति को शुद्ध करना होगा। एक व्यक्ति का सुधार हो जाये तो वह अपने परिवार, परिवेश का सुधार करे। इस प्रकार सबका सुधार सम्भव है। इस तरह अपना तथा अपने परिजनों तथा समाज को पवित्र शुद्ध करने वाले को तेजवान्, शुद्ध, अमृत कहा गया है। वह समाज को धारण करने वाला 'धाम' नाम वाला होता है। वह देवों-विद्वानों का प्रिय होता है और अविजित होकर भी निरभिमानी रहता है। वह देवयजन करने वाला होकर स्वयम् देव तथा देवयजनरूप हो जाता है।।। 31।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : सवितुः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **प्रसवे** (सु = उत्पन्न करना आदि)। **उत्** (अव्यय)। **पुनामि** (पू - पवित्र करन)। **अच्छिद्रेण** (छिद् = छेदना, काटना)। **पवित्रेण** (पू - पवित्र करना)। **सूर्यस्य** (सुर - अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना)। **रश्मिभिः** (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना)। **वः** (अव्यय)। **प्रसवे** (सु - उत्पन्न करना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। **तेजो** (तिज्, तेज् = चमकना, चमकाना)। **असि** (अस् = होना)। **शुक्रम्** (शुच्, शुक् = पावन होना, शुद्ध होना}। **अमृतम्** (अ + मृ = मरना)। **धाम** (धा = धारण करना)। **नाम** = नाम वाला। **प्रियम्** (प्री = स्नेह करना, प्यार करना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना, चाहना)। **देवानाम्** (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। **अनाधृष्टम्** (अन् + आ + धृष् = जीतना, अधीर होना, घबराना, धृषा = गर्व करना, स्वयम् को बड़ा समझना)। **देवयजनम्** (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना, यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। । 31।।

इति प्रथमो अध्यायः

ॐ

द्वितीयः अध्यायः

(9) सूक्त 1

32. कृष्णो असि आखरेष्ठो अग्नये त्वा जुष्टम् प्रोक्षामि। वेदिः असि बर्हिषे त्वा जुष्टाम् प्रोक्षामि। बर्हिः असि स्रुग्भ्यः त्वा जुष्टम् प्रोक्षामि॥1॥

संहितापाठ

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥1॥

मन्त्रार्थ : आखरेष्ठो आखरेष्ठ **कृष्णो** कृष्ण **असि** हो, **अग्नये** अग्नि के लिए **जुष्टम्** सेवित, सन्तुष्ट, **त्वा** तुम्हें **प्रोक्षामि** स्वच्छ, अभिसिञ्चित करता हूँ। **वेदिः** विद्वान् **असि** हो, **त्वा** तुमको **बर्हिषे** बर्हिष् (वृद्धि, विराट) के लिए **जुष्टाम्** सेवित, सन्तुष्ट, **प्रोक्षामि** स्वच्छ, अभिसिञ्चित करता हूँ। **बर्हिः** विराट **असि** हो, **स्रुग्भ्यः** विद्वानों के लिए **जुष्टम्** सेवित, सन्तुष्ट **त्वा** तुमको **प्रोक्षामि** स्वच्छ, अभिसिञ्चित करता हूँ।

भावार्थ : परमात्मा, उसका उपासक देवमानव आखरेष्ठ कृष्ण है, विद्वान् है, विराट है। वह सेवित तथा सन्तुष्ट भी है। ऐसे उपासक को अग्नि के लिए अर्थात् अग्रणी, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी के लिए, विद्वानों के लिए, वृद्धि के लिए स्वच्छ, शुद्ध, अभिसिञ्चित किया जाता है। परमात्मा को हम समर्पण तथा सेवा भावना से अभिसिञ्चित करते हैं तथा हमको परमात्मा अपने अनुग्रह, कृपा, करुणा से अभिसिञ्चित करते हैं॥1॥

विशेष : आखरेष्ठ (आ + खर + स्थ) में खर शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है। ख का अर्थ आकाश है। खर का भाव है आकाश का विस्तार। आ उपसर्ग का भाव है पूरी तरह। आखरेष्ठ का अर्थ हुआ आकाश के सम्पूर्ण विस्तार में स्थित जो परमात्मा ही हो सकता है। उसके उपासक की भावना इतनी विराट हो सकती है, होनी ही चाहिए। खर का अर्थ कठोर होता है। परमात्मा दुष्टों के लिए कठोर भी है। कृष्ण का अर्थ आकर्षणयुक्त है। परमात्मा के आकर्षण में हम रहें तथा उपासना से आकर्षण करते भी रहें। हम समाज में आकर्षण का केन्द्र भी बनें अपनी उदारता, योग्यता, सद्गुणों से॥1॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : कृष्णो (कृष् = खींचना, रेखा खींचन)। **असि** (अस् = होना)। **आखरेष्ठो** (आ + खर + स्थ- स्थित होना)। **अग्नये** (अग् = ऊपर जाना, ऊर्ध्व गमन करना, आगे जाना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **जुष्टम्** (जुष् = सेवा करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। **प्रोक्षामि** (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, उक्ष् = सींचना, भेजना, निर्मल करना, स्वच्छ करना)। **वेदिः** (विद् = जानना)। **बर्हिषे** (बृह् = बढ़ना)। **जुष्टाम्** (जुष् = सेवा करना)। **बर्हिः** (बृह् = बढ़ना)। **स्रुग्भ्यः** (स्रु = जाना, जानना, पाना, बहना)॥

33. अदित्यै वि उन्दनम् असि विष्णो स्तुपो असि ऊर्णम्रदसम् त्वा स्तृणामि स्वासस्थाम् देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा, भुवनपतये स्वाहा भूतानाम् पतये स्वाहा॥2॥

संहितापाठ

अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णो स्तुपोऽस्यूर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा॥2॥

मन्त्रार्थ : विष्णो हे विष्णु, **अदित्यै** अविनाशी के लिए **वि उन्दनम्** अभिसिञ्चन करने वाले **असि** हो, **स्तुपो** एकत्र करने वाले हो, **ऊर्णम्रदसम्** चूर्ण के समान कोमल (आच्छादन) से **त्वा** तुमको **स्तृणामि** आच्छादित करता हूँ, **स्वासस्थाम्** भलीभाँति अच्छी तरह सुखी हो, **देवेभ्यो** तेजस्वी विद्वानों के लिए **भुवपतये** उत्पन्न हुए के ऐश्वर्य के लिए **स्वाहा** व्यापकता हो, **भुवनपतये** सृष्टि के ऐश्वर्य के लिए **स्वाहा** व्यापकता हो, **भूतानाम्** उत्पन्न प्राणियों के **पतये** ऐश्वर्य के लिए **स्वाहा**

व्यापकता हो।

भावार्थ : अविनाशी परमात्मा के लिए स्नेह-समर्पण भावना का अभिसिञ्चन करो, ऐसे अभिसिञ्चन करने वाले उपासकों को एकत्र करो। ऐसा करने से समाज में सद्भाव का वातावरण बनेगा जो कोमल आच्छादन के समान सुखकारी होगा। तेजस्वी विद्वानों के लिए, सम्पूर्ण संसार के लिए, सभी प्राणियों के लिए हमारा दृष्टिकोण व्यापक होना चाहिए। हमारा दृष्टिकोण इतना व्यापक होना चाहिए कि सभी प्राणी, सम्पूर्ण सृष्टि उसमें समा जाये, सभी अपने बन जायें।2।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अदित्यै (अ-नहीं, दी, दी = नष्ट होना, ह्रास होना)। **व्युन्दनम्** (वि = विशेष, विविध, विना, विलोम, उन्दनम्, उन्द् = गीला होना, आर्द्र, रससिक्त होना)। **असि** (अस् = होना)। **विष्णोः** (विष्ण-विष् -विविष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना, व्यापना, फैलना, प्रसृत होना)। **स्तुपो** (स्तुप = ढेर लगाना, एकत्र करना)। **ऊर्णम्रदसम्** (ऊर्णु = आच्छादन करना, ढकना, मृद्-म्रद = चूर्ण करना, कोमल बनाना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **स्तृणामि** (स्तृ = आच्छादित करना, ढकना)। **स्वासस्थाम्** (सु-उत्तम, सुष्ठु, अच्छा, सुन्दर, आसस्थाम्, स्व + आसस्थाम्, सस् = सोना, विश्राम करना, आस् = बैठना, उपस्थित होना, जीना, होना)। **देवेभ्यः** (दिव्, देव् = तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। **भुवपतये** (भू = होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, पत् = ऐश्वर्य होना}। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **भुवनपतये** (भू = होना, = सृष्टि के ऐश्वर्य के लिए पत् = ऐश्वर्य होना)। **भूतानाम्** (भू = होना)। **पतये** (पत् = ऐश्वर्य होना)।2।।

34. गन्धर्वः त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्य अरिष्ट्यै, यजमानस्य परिधिः असि अग्निः इडः ईडितः।।
इन्द्रस्य बाहुः असि दक्षिणो, विश्वस्य अरिष्ट्यै, यजमानस्य परिधिः असि अग्निः इडः ईडितः।।
मित्रावरुणौ त्वा उत्तरतः परिधत्ताम्, ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्य अरिष्ट्यै,
यजमानस्य परिधिः असि अग्निः इडः ईडितः।।3।।

संहितापाठ

गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः।इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः।मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः।।

मन्त्रार्थ : विश्वावसुः विश्वावसु **गन्धर्वः** गन्धर्व **त्वा** तुमको **परिदधातु** धारण करे। **विश्वस्य** विश्व के **अरिष्ट्यै** अहिंसक **यजमानस्य** यजमान की **परिधिः** परिधि **असि** हो। **ईडितः** स्तुत **अग्निः** अग्नि **इडः** स्तुति करने वाला (है)। **इन्द्रस्य** इन्द्र के **दक्षिणो** दक्षिण **बाहुः** बाहु **असि** हो, **विश्वस्य** विश्व के **अरिष्ट्यै** अहिंसक **यजमानस्य** यजमान की **परिधिः** परिधि **असि** हो। **ईडितः** स्तुत **अग्निः** अग्नि **इडः** स्तुति करने वाला (है)। **मित्रावरुणौ** मित्रावरुण **त्वा** तुमको **उत्तरतः** उत्तर **ध्रुवेण** ध्रुव **धर्मणा** धर्म से **परिधत्ताम्** धारण करें। **विश्वस्य** विश्व के **अरिष्ट्यै** अहिंसक **यजमानस्य** यजमान की **परिधिः** परिधि **असि** हो। **ईडितः** स्तुत **अग्निः** अग्नि **इडः** स्तुति करने वाला (है)।

भावार्थ : विश्वावसु अर्थात् सबको बसाने वाले और सबमें बस जाने वाले और गन्धर्व अर्थात् गतिशीलता, विद्वता को धारण करने वाले। ऐसे गुण वाले तुमको सब ओर से धारण करें। इन गुणों से हम परमात्मा का ही स्मरण करते हैं। इससे यह भी सन्देश मिलता है कि समाज को धारण करने वाले अथवा नेतृत्व करने वाले में भी ऐसे गुण होने चाहिए। यजमान विश्व के लिए अहिंसक होता है, वह किसी मतभेद के कारण किसी के प्रति हिंसा की भावना नहीं रखता है। ऐसे अहिंसक उदार यजमान की परिधि या सीमा तो परमात्मा ही है। उसकी सीमा अथवा घेरा संकीर्ण नहीं होता है। वह परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा का दक्षिण बाहु है, दाहिना हाथ है। दक्षिण शब्द का अर्थ गतिशील, विद्वान् है तथा बाहु शब्द का अर्थ प्रयत्न करने वाला है। परमात्मा का दाहिना हाथ होने का श्रेय-सौभाग्य उसे ही मिल सकता है जो विद्वान् हो, गतिशील हो, प्रयत्न में लगा हो। मित्रावरुण अर्थात् व्यापक और वरणीय होना भी महत्वपूर्ण है। व्यापक दृष्टिकोण हो तो सभी अपने हैं, कोई पराया नहीं है, छोटा-बड़ा तो हो ही नहीं सकता। ऐसा व्यक्ति सबके लिए वरणीय होता है, सब उसे चाहते हैं। मित्रावरुण परमात्मा उत्तर ध्रुव धर्म से धारण करें। धर्म को उत्तर और ध्रुव होना चाहिए। उत्तर अर्थात् तैरकर पार जाने

वाला और ध्रुव अर्थात् स्थिरता के साथ गतिशीलता भी। ध्रुव शब्द का अर्थ अचल-स्थिर होने के साथ गति भी है। हमें अपने धर्म-कर्तव्य पर स्थिर-अचल रहना है परन्तु गतिशीलता भी जीवन में आवश्यक है। जड़, रूढ़िवादी, कट्टरपन्थी नहीं हो जाना चाहिए। अग्नि शब्द का अर्थ है ऊर्ध्वगामी, अग्रणी तेजस्वी। हम ऐसे परमात्मा की स्तुति करते हैं। हमें भी ऐसा बनना चाहिए॥ 3॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : गन्धर्वः (गम् + धृ, गम् = जाना, जानना, पाना, धृ = धारण करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **विश्वावसुः** (विश्वा = विश्व, सभी, सब, वस् = निवास करना, स्नेह करना)। **परिदधातु** (परि = परे, सभी ओर, साथ, दधातु, धा = धारण करना)। **विश्वस्य** (सर्वनाम)। **अरिष्ट्यै** (अ- नहीं, रिष् = हिंसा करना)। **यजमानस्य** (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **परिधिः** (परि = परे, सभी ओर, धि = धारण करना)। **असि** (अस् = होना)। **अग्निः** (अग् = ऊपर जाना, जानना, पाना, तेजस्वी होना)। **इडः** (ईड् = स्तुति करना)। **ईडितः** (ईड् = स्तुति करना)। **इन्द्रस्य** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **बाहुः** (बह-बाह् = भुजायाम्)। **दक्षिणो** (दक्ष् = गति करना, जानना, पाना)। **मित्रावरुणौ** (मिद- प्रीति करना, मृदुल होना, वृ = वरण करना, अपनाना)। **उत्तरतः** = उत्तर से। **परिधत्ताम्** (परि- परे, सभी ओर, धा = धारण करना)। **ध्रुवेण** (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, जानना, पाना)। **धर्मणा** (धृ = धारण करना)। **3।**

(10) सूक्त 2

35. वीतिहोत्रम् त्वा कवे, द्युमन्तम् सम् इधीमहि। अग्ने बृहन्तम् अध्वरे॥4॥

संहितापाठ

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳसमिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे॥4॥

मन्त्रार्थ : कवे हे कवि **अग्ने** अग्नि! **त्वा** तुमको **वीतिहोत्रम्** वीतिहोत्र **द्युमन्तम्** तेजस्वी अग्रगामी को **बृहन्तम्** महान् **अध्वरे** अहिंसा में **सम्** सम्यक् **इधीमहि** प्रकाशित करते हैं।

भावार्थ : परमात्मा तेजस्वी अग्रणी है, कवि है। वीतिहोत्र का अर्थ है व्यापक आदान-प्रदान। परमात्मा की सृष्टि में व्यापक आदान-प्रदान चलता रहता है। प्रकृति में सभी परस्पर आदान-प्रदान करते हैं। मानव समाज में भी ऐसा होना ही चाहिए। परमात्मा तेजस्वी प्रकाशमान है, उसे हम अपने हृदय में भलीभाँति प्रकाशित करते हैं अर्थात् उसके प्रकाश को अपने हृदय में अनुभव करते हैं। स्वयम् को अपने हृदय में द्युमन्त या प्रकाशवान् करते हैं, समिधीमहि अर्थात् प्रकाशित करते हैं॥ 4॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : वीतिहोत्रम् (वी = जाना, व्याप्त होना, कान्ति होना, हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **कवे** (कु, कव् = शब्द करना)। **द्युमन्तम्** (द्यु = आगे जाना, समीप जाना)। **समिधीमहि** (सम्= सम्यक् रूप से, भली भाँति, इध् = तेज होना, प्रकाश होना)। **अग्ने** (अग् = ऊर्ध्वगति करना, तेजस्वी होना)। **बृहन्तम्** (बृह् = बढ़ना)। **अध्वरे** (अ-नहीं, ध्वृ = हिंसा करना)।**4**॥

36. समित् असि सूर्यः त्वा पुरस्तात्, पातु कस्याः चित् अभिशस्त्यै॥
सवितुः बाहू स्थः ऊर्ण-म्रदसम् त्वा स्तृणामि, स्वासस्थम् देवेभ्यः आ त्वा,
वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु॥5॥

संहितापाठ

समिदसि सूर्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै। सवितुर्बाहू स्थऽऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्याऽआ त्वा वसवो रुद्राऽआदित्याः सदन्तु॥5॥

मन्त्रार्थ : समित् सम्यक् प्रकाशमान **असि** हो, सृष्टिकर्ता **सूर्यः** सूर्ये, **त्वा** तुमको **अभिशस्त्यै** स्तुति के लिए **कस्याश्चित्** किसी भी स्थिति में **पुरस्तात्** पहले **पातु** रक्षा करें। **सवितुः** उत्पन्नकर्ता के **बाहू** हाथों में **स्थः** स्थित **त्वा** तुमको **ऊर्ण-म्रदसम्** कोमल आच्छादन से **स्तृणामि** आच्छादित करता हूँ। **देवेभ्य**: तेजस्वी विद्वानों के लिए **स्वासस्थम्** सुखपूर्वक रहो। **त्वा** तुमको **वसवो** आवास देने वाले, **रुद्रा** करुणाशील, **आदित्याः** अविनाशी से उत्पन्न (सहचर उपासक) **सदन्तु** प्राप्त

हों।

भावार्थ : अध्यात्म का प्रकाश हमारे जीवन में हो, परमात्मा की स्तुति करते रहें तो सृष्टिकर्ता स्वयम् हमारी रक्षा करता है। परमात्मा हमें उत्पन्न करने वाला है। उसके हाथों में हम अपना जीवन समर्पित कर दें तो वह हमें कोमल आच्छादन से सुरक्षित कर देता है। तेजस्वी विद्वानों की सहायता-सेवा की भावना हो तो जीवन में सुख शान्ति बनी रहती है। जीवन की मौलिक आवश्यकताएँ, आवास आदि देने वाले तथा हमारे लिए रोने वाले, आँसू बहाने वाले करुणाशील सज्जन तथा अविनाशी परमात्मा से सम्बद्ध रहने वाले उपासक हमें प्राप्त होते हैं।। 5।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : समित् (सम् = भलीभाँति, इत् = ही, इन्ध = प्रकाशित होना, तेजस्वी होना, चमकना)। **असि** (अस् = होना)। **सूर्यः** (सु = उत्पन्न करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **पुरस्तात्** (अव्यय)। **पातु** (पा = पालन करना, बचाना, रक्षा करना)। **कस्याश्चित्** (सर्वनाम)। **अभिशस्त्यै** (अभिशस् = विनती करना, प्रार्थना करना, शस् = हिंसा करना, शंस् = चाहना, स्तुति करना)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना)। **बाहू** (बह-बाह् = भुजायाम्)। **स्थ** (स्था - स्थित होना, ठहरना)। **ऊर्ण-म्रदसम्** (ऊर्णु = आच्छादन करना, ढकना, मृद्-म्रद् = चूर्ण करना, कोमल बनाना)। **स्तृणामि** (स्तृ = आच्छादित करना, ढकना)। **स्वासस्थम्** (सु + आसस्थाम्, आस् = बैठना, उपस्थित होना, जीना, होना)। **देवेभ्यः** (दिव्, देव् = तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। **आ** (उपसर्ग)। **वसवो** (वस् = निवास करना, स्नेह करना)। **रुद्राः** (रुद् = रुदन करना, रुलाना)। **आदित्याः** (अ + दी, दी = क्षय होना, नष्ट होना)। **आ सदन्तु** (आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम सद् = जाना)। 5।।

37. घृताची असि जुहूः नाम्ना सा इदम्, प्रियेण धाम्ना प्रियम् सदः आ सीद।
घृताची असि उपभृत् नाम्ना सा इदम्, प्रियेण धाम्ना प्रियम् सदः आ सीद।
घृताची असि ध्रुवा नाम्ना सा इदम्, प्रियेण धाम्ना प्रियम् सदः आ सीद।
प्रियेण धाम्ना प्रियम् सदः आ सीद॥
ध्रुवा असदन् ऋतस्य योनौ ता विष्णो पाहि, पाहि यज्ञम् पाहि यज्ञपतिम् पाहि माम् यज्ञन्यम्॥6॥

संहितापाठ

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद। ध्रुवाऽअसदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम्॥6॥

मन्त्रार्थ : जुहूः जूहू **नाम्ना** नाम वाली **घृताची** घृताची **असि** हो, **सा** वह **इदम्** इस **प्रियेण** प्रिय **धाम्ना** धाम द्वारा **प्रियम्** प्रिय **सदः** निवास पर **आ सीद** आओ। **उपभृत्** उपभृत् **नाम्ना** नाम वाले **घृताची** घृताची **असि** हो, **सा** वह **इदम्** इस **प्रियम्** प्रिय **धाम्ना** धाम द्वारा **प्रियम्** प्रिय **सदः** निवास पर **आ सीद** आओ। **ध्रुवा** ध्रुवा **नाम्ना** नाम वाले **घृताची** घृताची **असि** हो, **सा** वह **इदम्** इस **प्रियेण** प्रिय **धाम्ना** धाम द्वारा **प्रियम्** प्रिय **सदः** निवास पर **आ सीद** आओ। **प्रियेण** प्रिय **धाम्ना** धाम द्वारा **प्रियम्** प्रिय **सदः** निवास पर **आ सीद** आओ। **ऋतस्य** ऋत की **योनौ** योनि में **ध्रुवा** ध्रुवा **असदन्** पहुँचे। **विष्णो** हे विष्णु **ता** उसकी **पाहि** रक्षा करो, **यज्ञम्** यजन की **पाहि** रक्षा करो, **यज्ञपतिम्** यजनपति की **पाहि** रक्षा करो, **माम्** मुझ **यज्ञन्यम्** यजनकर्ता की **पाहि** रक्षा करो।

भावार्थ : घृताची का अर्थ है ज्योति स्वरूप परमात्मा का पूजन-ध्यान करने वाला। वह जुहू है, उपभृत् है, ध्रुवा है। जुहू का अर्थ है दान तथा आदान-प्रदान करने वाला, उपभृत् का अर्थ है भरण-पोषण करने वाला तथा ध्रुवा का अर्थ है गतिशील, अविचल विद्वान्। परमात्मा के उपासक में ये गुण स्वाभाविक रूप से होते हैं। वह अपने प्रिय को धारण करता हुआ प्रिय स्थान पर आता है। वह ध्रुवा होकर ऋत की योनि बन जाता है। ऋत कहते हैं सार्वभौम प्राकृतिक नियम को। सृष्टि का संचालन गुरुत्व आदि व्यापक प्राकृतिक नियमों से होता है, यही व्यवस्था ऋत है। इस ऋत का मूल केन्द्र परमात्मा ही है, वही ऋत की योनि है। योनि का अर्थ है, मिलाने तथा अलग करने वाला। ऋत व्यवस्था ही प्रकृति में संयोग-वियोग का कारण है। जो कुछ भी घटित होता है, सब कुछ ऋत अर्थात् व्यापक नियमों के अनुसार ही होता है, उसका उल्लंघन

कर कुछ भी नहीं हो सकता है। परमात्मा की कृपा से सब कुछ सम्भव है, ऋत के माध्यम से ही हमें परमात्मा की कृपा से सब कुछ मिल सकता है।। 6 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : घृताची (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। **असि** (अस् = होना)। **जुहूः** (हू = आदान-प्रदान करना)। **नाम्ना** (नम् = नमन करना, सम्मान करना, शब्द करना)। **सा** (सर्वनाम)। **इदम्** (सर्वनाम)। **प्रियेण** (प्री = प्रेम करना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना, कामना करना)। **धाम्ना** (धा = धारण करना)। **प्रियम्** (प्री = प्रेम करना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना, कामना करना)। **सदः** (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। **आसीद** (आ + सीद, सद् = जाना)। **उपभृत्** (उप + भृत्, भृ = भरण-पोषण करना)। **ध्रुवा** (ध्रुव् = अचल होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। **नाम्ना** (नम् = नमन करना, सम्मान करना, शब्द करना)। **असदन्** (सद् = जाना, पाना, जानना, पहुँचना। भूतकाल, बहुवचन)। **ऋतस्य** (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। **योनौ** (यु = मिलाना, अलग करना)। **ता** (सर्वनाम)। **विष्णो** (विष्ण्–विष् = व्यापना, व्यापक होना)। **पाहि** (पा = रक्षा करना)। **यज्ञम्** (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **यज्ञपतिम्** (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **माम्** (सर्वनाम)। **यज्ञन्यम्** (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)।।

(11) सूक्त 3

38. अग्ने वाजजित् वाजम् त्वा, सरिष्यन्तम् वाजजितम् सम् मार्ज्मि।।
नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम्।।7।।

संहितापाठ

अग्ने वाजजिद् वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि। नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम्।। 7।।

मन्त्रार्थ : वाजजित् हे वाजजित् **अग्ने** अग्ने! **वाजम्** विद्या को **सरिष्यन्तम्** ले जाने वाले **त्वा** तुम **वाजजितम्** वाजजित् को **सम् मार्ज्मि** शुद्ध करता हूँ, तुम्हारे प्रति सुवचन बोलता हूँ। **देवेभ्यः** विद्वानों के लिए **नमो** नमन्, **पितृभ्यः** अग्रजों के लिए **स्वधा** अपनत्व, आत्मीयता (हो), **मे** मेरा **सुयमे** अच्छा पोषण, अच्छा नियमन-नियन्त्रण **भूयास्तम्** हो।

भावार्थ : अग्नि अर्थात् तेजस्वी ऊर्ध्वगामी विद्वान् विद्याजयी तथा गतिजयी होता है। ऐसे देवजन को भलीभाँति शुद्ध किया जाता है। विद्या तथा संस्कार उसे शुद्ध करते हैं। अग्नि नाम परमात्मा का भी है। अग्नि परमात्मा के लिए हम सम्यक् वाणी बोलते हैं अर्थात् प्रार्थना, स्तुति करते हैं। इस प्रकार श्लेष के कारण एक मन्त्र के कई भावार्थ हो सकते हैं। श्लेष का अर्थ है एक शब्द के अनेक अर्थ होना। अग्नि को वाजजित् के साथ वाजम् सरिष्यन्तम् भी कहा गया है। वह विद्याजयी है तो विद्या ले जाने वाला तथा पहुँचाने वाला भी है। विद्या प्रचार-प्रसार में ही उसकी सार्थकता है। विद्वानों को नमन करें, अग्रजों के प्रति अपनत्व हो, हमें उनके सुन्दर नियन्त्रण-अनुशासन में रहना चाहिए तो अच्छा पोषण भी मिलेगा ही।। 7 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अग्ने (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना, पहुँचना, पाना)। **वाजजित्** (वाज् = जानना, जाना, पहुँचना, पाना, तैयार करना)। **वाजम्** (वाज् = जानना, जाना, पहुँचना, पाना, तैयार करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सरिष्यन्तम्** (सृ = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। **वाजजितम्** (वाज् = जानना, जाना, पहुँचना, पाना)। **सम्मार्ज्मि** (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति, मर्ज् = शब्द करना, मृज् = शुद्ध करना)। **नमो** (नम् = नमन करना, सम्मान करना, शब्द करना)। **देवेभ्यः** (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। **स्वधा** (स्व + धा, स्व = अपना, धा = धारण करना)। **पितृभ्यः** (पा - रक्षा करना, पालन करना, पि-जाना, स्थानान्तर करना)। **सुयमे** (सु + यमे, सु = अच्छा यम् = रोकना, पोषण करना)। **मे** (सर्वनाम)। **भूयास्तम्** (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)।। 7 ।।

39. अस्कन्नम् अद्य देवेभ्यः, आज्यम् सम् भ्रियासम्,
अंघ्रिणा विष्णो मा त्वा, अव क्रमिषम् वसुमतीम्,
अग्ने ते छायाम् उप स्थेषम्, विष्णो स्थानम् असि,
इत इन्द्रो वीर्यम् अकृणोत्, ऊर्ध्वो अध्वरः आ अस्थात्।।8।।

संहितापाठ

अस्कन्नमद्य देवेभ्यऽआज्यꣳ संभ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते च्छायामुपस्थेषं, विष्णो स्थानमसीतऽ इन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वरऽ आस्थात् ॥8॥

मन्त्रार्थ : अस्कन्नम् अक्षुब्धकारी **आज्यम्** विद्या को **अद्य** आज **देवेभ्यः** विद्वानों के लिए **सम् भ्रियासम्** धारण करें। **विष्णो** हे विष्णु! **त्वा** तुमको **अंघ्रिणा** शीघ्रता के कारण **मा** नहीं **अव क्रमिषम्** अवक्रमित करें। **अग्ने** हे अग्नि! **ते** तुम्हारी **वसुमतीम्** आवासयोग्य **छायाम्** छाया में **उप स्थेषम्** स्थित रहें। (तुम) **विष्णो** विष्णु के **स्थानम्** स्थान **असि** हो, **इत** इससे **इन्द्रो** इन्द्र ने **वीर्यम्** पराक्रम **अकृणोत्** किया। **ऊर्ध्वो** ऊर्ध्वगामी (उच्चस्तरीय) **अध्वरः** अहिंसा **आ अस्थात्** प्रतिष्ठित रहे।

भावार्थ : विद्वानों के लिए विद्या वही है जो किसी को क्षुब्ध न करे। किसी को दुःखी अपमानित करने के लिए विद्वता का प्रयोग करना उचित नहीं है। विद्वानों के लिए यह उचित नहीं है कि दूसरों की कमियाँ खोजकर उनकी निन्दा करें और विवाद उत्पन्न करें। किसी कार्य में इतनी भी शीघ्रता उचित नहीं है कि सर्वव्यापक परमात्मा की अवहेलना करने लगें। ईश्वर का स्मरण कर सोच-विचार करके ही कार्य करने चाहिए। ऊर्ध्वगामी अग्रणी परमात्मा की छाया में जीवन बितायें, उससे विमुख न हों। परमात्मा विष्णु अर्थात् सर्वव्यापक है तो सब कुछ विष्णु का ही स्थान है। हम भी परमात्मा के स्थान हैं, परमात्मा हममें भी व्याप्त हैं। हमारे माध्यम से ही परमात्मा पराक्रम करता है, प्रमुख कार्य करता है। सर्वव्यापी परमात्मा विशेष कार्यों के लिए विशेष उपासकों को माध्यम बनाता है, वे ही दिव्यजन कहे जाते हैं। परमात्मा की इस व्यापकता को अनुभव करते रहें तो हमारे जीवन में उच्च अहिंसा की प्रतिष्ठा होगी। सबमें परमात्मा की व्यापकता को अनुभव करेंगे तो किसी को कष्ट देने की भावना ही उत्पन्न नहीं होगी॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अस्कन्नम् (स्कन् = क्षुब्ध होना)। **अद्य** (अव्यय)। **देवेभ्यः** (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। **आज्यम्** (अज् = जानना, जाना, पहुँचना)। **सम् भ्रियासम्** (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति, भ्री = धारण करना)। **अंघ्रिणा** (अंघ् = आरम्भ करना, गति करना, शीघ्रता करना)। **विष्णो** (विष्ण् = व्याप्त होना)। **मा** (सर्वनाम)। **त्वा** (सर्वनाम)। **अवक्रमिषम्** (अव + क्रम् = अवक्रमण करना, अतिक्रमण करना)। **वसुमतीम्** (वस् = निवास करना, दया करना)। **अग्ने** (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना)। **ते** (सर्वनाम)। **छायाम्** (छद् - आच्छादित करना, ढकना, हटाना, छिपाना, बचाना, बलवान् होना या करना, छा-छो - छाया करना, कतरना, काटना)। **उपस्थेषम्** (स्था = रहना, स्थित होना)। **विष्णोः** (विष्ण-विष् - व्यापना, फैलना, प्रसृत होना)। **स्थानम्** (स्था - स्थित होना, ठहरना)। **असि** (अस् = होना)। **इतः** (सर्वनाम)। **इन्द्रो** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **वीर्यम्** (वीर् = पराक्रम करना)। **अकृणोत्** (कृ = करना)। **ऊर्ध्वो** (सर्वनाम)। **अध्वरः** (ध्वर् = हिंसा करना)। **आ अस्थात्** (अस् = होना, स्था = ठहरना)॥ 8॥

40. अग्ने वेः होत्रम् वेः दूत्यम्, अवताम् त्वाम् द्यावा-पृथिवी,
अव त्वम् द्यावा-पृथिवी स्विष्टकृत् देवेभ्यः, इन्द्रः आज्येन हविषा भूत्,
स्वाहा सम् ज्योतिषा ज्योतिः ॥9॥

संहितापाठ

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यमवतां त्वां द्यावापृथिवीऽअव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्यऽ इन्द्रऽ आज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥

मन्त्रार्थ : अग्ने हे अग्रणी! **होत्रम्** आदान-प्रदान, तृप्त करने वाले को **वेः** जानते हो, बनाते हो। **दूत्यम्** गतिशीलता (दूत्यकर्म) को **वेः** जानते हो, बनाते हो। **द्यावापृथिवी** द्यावापृथिवी **त्वाम्** तुम्हारी **अवताम्** रक्षा करे, **त्वम्** तुम **द्यावापृथिवी** द्यावापृथिवी की **अव** रक्षा करो। **स्विष्टकृत्** अच्छी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यवान्, **देवेभ्यः** विद्वानों के लिए **आज्येन** विद्या द्वारा, **हविषा** दान तथा आदान-प्रदान द्वारा, **स्वाहा** व्यापकता द्वारा, **सम्** सम्यक् **ज्योतिषा** ज्योति द्वारा **ज्योतिः** ज्योति **भूत्** हो जाये।

भावार्थ : अग्नि अग्रणी परमात्मा आदान-प्रदान, दान, तृप्त करने की व्यवस्था को बनाता है और वही गतिशीलता के विधान को भी बनाता और जानता है। द्यावापृथिवी की हम रक्षा करें तो वह हमारी रक्षा करे। यदि हम पृथ्वी, जल, वायु के पर्यावरण की रक्षा करेंगे तो हमारी भी रक्षा हो सकेगी। यदि हम प्रदूषण फैलाएँगे तो हमारी भी रक्षा नहीं हो सकेगी,

पृथ्वी से जीवन ही नष्ट हो जायेगा। परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा अच्छी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है। अच्छी इच्छाएँ, जनहितकारी इच्छाएँ पूर्ण होंगी, परन्तु दूसरों का अहित करने की बुरी इच्छाएँ परमात्मा पूरी नहीं करता है। विद्या, दान, आदान-प्रदान, व्यापकता द्वारा परमात्मा की ज्योति हमारे जीवन में भी प्रकाश भर सकती है।। 9।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अग्ने (अग् = ऊर्ध्व गति करना, जानना)। **वेः** (वे = बुनना, वी = जानना, पाना)। **होत्रम्** (हु = दान करना, आदान करना, लेना)। **दूत्यम्** (दु = जाना)। **अवताम्** (अव् = रक्षा करना)। **त्वाम्** (सर्वनाम)। **द्यावापृथिवी** (द्यु = आगे जाना, प्रकाश होना. पृथु = विस्तार होना)। **अव** (अव् = रक्षा करना)। **त्वम्** (सर्वनाम)। **स्विष्टकृत्** (सु = अच्छा, इष् = पाना, चाहना, इच्छा करना)। **देवेभ्यः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **इन्द्रः** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **आज्येन** (ज्ञा - जानना, समझना)। **हविषा** (हु = दान-आदान करना, देना)। **भूत्** (भू - होना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना)। **सम्** (उपसर्ग)। **ज्योतिषा** (ज्युत - चमकना, प्रकाशित होना)। **ज्योतिः** (ज्युत - चमकना, प्रकाशित होना)।। 9।।

41. मयि इदम् इन्द्रः इन्द्रियम् दधातु, अस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्।।
अस्माकम् सन्तु आशिषः सत्या, नः सन्तु आशिषः उपहूता,
पृथिवी माता उप माम्, पृथिवी माता ह्वयताम्, अग्निः आग्नीध्रात् स्वाहा।।10।।

संहितापाठ

मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्।अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषऽउपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा।।10।।

मन्त्रार्थ : मयि मुझमें **इदम्** यह **इन्द्रः** (परम ऐश्वर्यवान्) इन्द्र **इन्द्रियम्** अपनी शक्तियों (इन्द्रियों) को **दधातु** धारण करें। **अस्मान्** हमारी **रायो** विद्या को **मघवानः** भूषित, विद्वान् **सचन्ताम्** अभिसिञ्चित करें। **अस्माकम्** हमारी **आशिषः** विशेषताएँ, आशीष **सत्या** सत्य सन्तु हों। **नः** हमारी **आशिषः** विशेषताएँ **उपहूता** पुकारी गयीं **सन्तु** हों जाएँ। **पृथिवी** पृथिवी **माता** माता **उप** समीप **माम्** मुझको (रखें), **पृथिवी** पृथिवी **माता** माता **ह्वयताम्** पुकारें, **अग्निः** अग्नि (ऊर्ध्वगामी अग्रणी विद्वान्) **आग्नीध्रात्** ऊर्ध्वगति धारण करने से **स्वाहा** आत्मविस्तार हो।

भावार्थ : मुझमें यह इन्द्र इन्द्रियों को धारण करे। इन्द्र का अर्थ परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा है। इन्द्रियाँ उसी की शक्तियाँ हैं। इन्द्र और इन्द्रिय शब्दों के बीच ध्वनि सौन्दर्य ध्यान देने योग्य है।। 10।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : मयि (सर्वनाम)। **इदम्** (सर्वनाम)। **इन्द्रः** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **इन्द्रियम्** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **दधातु** (दध - धारण करना)। **अस्मान्** (सर्वनाम)। **रायः** (रय् = जाना, जानना)। **मघवानः** (मघि-मंघ् = भूषित करना, जाना, जानना, पाना)। **सचन्ताम्** (सच् = सिञ्चन करना, सेवा करना) **अस्माकम्** (सर्वनाम)। **सन्तु** (अस् - होना)। **आशिषः** (आ + शिष् = विशेषता होना)। **सत्याः** (सत् = सत्य होना, अस्तित्व होना)। **नः** (सर्वनाम)। **उपहूता** (उप = समीप, ह्वे = बुलाना)। **पृथिवी** (पृथ् = विस्तार होना, फेंकना, प्रेरणा करना)। **माता** (मा - माने, सम्मान करना, मापना, समानता दर्शाना)। **उप** (उपसर्ग)। **माम्** (सर्वनाम)। **ह्वयताम्** (ह्वे = बुलाना, पुकारना)। **अग्निः** (अग् = ऊर्ध्वगति करना)। **आग्नीध्रात्** (अग् = ऊर्ध्वगति करना, धृ = धारण करना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्यापक होना)।। 10।।

42. उपहूतो द्यौः पिता उप माम्, द्यौः पिता ह्वयताम्, अग्निः आग्नीध्रात् स्वाहा।।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्।।
प्रति गृह्णामि अग्नेः त्वा आस्येन प्र अश्नामि।।11।।

संहितापाठ

उपहूतो द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा।देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।प्रतिगृह्णाम्यग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि।।11।।

मन्त्रार्थ : उपहूतो आह्वान् किया गया **द्यौः** प्रकाशरूप **पिता** पिता **माम्** मुझे **उप** समीप (रखे)। **द्यौः** प्रकाशरूप **पिता**

पिता **ह्वयताम्** पुकारें, **अग्निः** अग्नि (ऊर्ध्वगामी अग्रणी विद्वान्) **आग्नीध्रात्** ऊर्ध्वगति धारण करने से **स्वाहा** आत्मविस्तार हो, आत्मविस्तार करे। **देवस्य** देव को **सवितुः** उत्पन्न करने वाला (परमात्मा) **त्वा** तुमको **अश्विनोः** व्यापक **बाहुभ्याम्** बाहुओं से, **पूष्णो** पोषण करने वाले **हस्ताभ्याम्** हाथों से **प्रसवे** उत्पन्न करे। **अग्नेः** अग्नि (ऊर्ध्वगामी) के **आस्येन** मुख से **त्वा** तुमको **प्रतिगृह्णामि** ग्रहण करता हूँ, **अश्नामि** आत्मसात् करता हूँ।

भावार्थ : हम परमात्मा का आह्वान करते हैं, पुकारते हैं, स्तुति उपासना करते हैं तो वह अपने निकट रखता है। उसके निकट रहने से हम आत्मविस्तार कर सकते हैं। परमात्मा के मुख से भोजन ग्रहण करें अर्थात् भोजन इस भावना से ग्रहण करें कि इसे हम परमात्मा के मुख में अर्पित कर रहे हैं तो हम पवित्र, सात्विक, शुद्ध भोजन ही ग्रहण करेंगे। यह भोजन हमारे लिए पावन प्रसाद होगा और स्वास्थ्य के लिए उत्तम होगा।।11।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : उपहूतः (ह्वे = आह्वान करना)। **द्यौः** (द्युः = प्रकाश होना, जानना)। **पिता** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **उप** (उपसर्ग)। **माम्** (सर्वनाम)। **ह्वयताम्** (ह्वे = बुलाना, पुकारना)। **अग्निः** (अग् = ऊर्ध्वगति करना)। **आग्नीध्रात्** (अग् = ऊर्ध्वगति करना, धृ = धारण करना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना)। **देवस्य** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना)। **प्रसवे** (सु = उत्पन्न करना)। **अश्विनो** = व्यापक (अशु = व्यापक होना)। **बाहुभ्याम्** (बह -बाहुः, बाहा - भुजायाम्)। **पूष्णो** (पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। **हस्ताभ्याम्** (हस्त - देना, लेना, ग्रहण करना)। **प्रतिगृह्णामि** (गृह् = ग्रहण करना)। **अग्नेः** (अग् = ऊर्ध्वगति करना)। **आस्येन** (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीवित रहना, होना)। **प्र अश्नामि** (प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक अश्नामि, अश् = भोजन करना)।। 11।।

(12) सूक्त 4

43. एतम् ते देव सवितः यज्ञम् प्र आहुः बृहस्पतये ब्रह्मणे।।
तेन यज्ञम् अव तेन यज्ञपतिम् तेन माम् अव।।12।।

संहितापाठ

एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे। तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव।।

मन्त्रार्थ : एतम् इस **यज्ञम्** यजन को **ते** तुम्हारे लिए **देव** देव **सवितः** उत्पत्तिकर्ता ने **बृहस्पतये** बृहस्पति **ब्रह्मणे** ब्रह्मा के लिए **प्र आहुः** कहा। **तेन** उससे, उस कारण से **यज्ञम्** यजन की **अव** रक्षा करो, **तेन** उससे, उस कारण से **यज्ञपतिम्** यजनपति की **अव** रक्षा करो, **तेन** उससे, उस कारण से **माम्** मुझे, मेरी **अव** रक्षा करो।।

भावार्थ : यजन का अर्थ है देवपूजा, संगतिकरण तथा दान। इस यजन सृष्टिकर्ता ने ब्रह्मा के लिए, बृहस्पति के लिए कहा है। परमात्मा का आदेश है कि जो ब्रह्मा अर्थात् बड़े हैं और जो बृहस्पति अर्थात् बड़ों के स्वामी, बड़ों में भी बड़े हैं, उन्हें यजन करना ही चाहिए। जो विद्या, धन, बल आदि में बड़े हैं, यजन करना उनका कर्तव्य है। देवपूजा अर्थात् विद्वानों की सेवा-सहायता साधन सम्पन्न लोग भलीभाँति कर सकते हैं। संगतिकरण और दान भी सम्पन्न लोग कर सकेंगे। साधनहीन लोग प्रतीकात्मक रूप से कुछ दान दे सकते हैं परन्तु सम्पन्न लोग पर्याप्त दान कर सकते हैं। इसके महत्व को समझकर यजन की रक्षा करो, यजनपति की रक्षा करो और अन्त में मेरी भी रक्षा करो। यदि वास्तविक यजन होता रहे तो प्रत्येक उपासक की रक्षा हो सकती है, सबका हित हो सकता है।।12।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : एतम् (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **देव** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकन)। **सवितः** (सू = जन्म देना, उत्पन्न करना)। **यज्ञम्** (यज - देवपूजा करना)। **प्र आहुः** (ह्वे = बुलाना, पुकारना)। **बृहस्पतये** (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना)। **ब्रह्मणे** (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना)। **तेन** (सर्वनाम)। **अव** (अव् = रक्षा करना)। **यज्ञपतिम्** (यज - देवपूजा करना, पत् - श्रीमान् होना, शक्तिमान् होना)। **माम्** (सर्वनाम)।। 12।।

44. मनो जूतिः जुषताम् आज्यस्य, बृहस्पतिः यज्ञम् इमम् तनोतु, अरिष्टम् यज्ञम् सम् इमम् दधातु।।
विश्वे देवासः इह मादयन्ताम् ओ3म् प्रतिष्ठ।।13।।

संहितापाठ

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳसमिमं दधातु। विश्वे देवासऽइह मादयन्तामोऽ३म्प्रतिष्ठ॥

मन्त्रार्थ : जूतिः वेगवान् चंचल **मनो** मन **आज्यस्य** यजनीय (परमात्मा) की **जुषताम्** उपासना करो। **बृहस्पतिः** विराट (परमात्मा) **इमम्** इस **यज्ञम्** यज्ञ को (जीवन रूपी यज्ञ) **तनोतु** विस्तृत करे। **इमम्** इस **अरिष्टम्** निर्मल **यज्ञम्** यज्ञ को (यज्ञमय जीवन को) **सम्** भलीभाँति **दधातु** धारण करें। **विश्वे** सभी **देवासः** देवगण (विद्वान् जन) **मादयन्ताम्** आनन्द प्राप्त करें, **ओ३म्** ओ३म् को (हम अपने जीवन में) **प्र तिष्ठ** प्रतिष्ठित करें तथा ओ३म् हमें प्रतिष्ठा प्रदान करे।

भावार्थ : मन बहुत शक्तिशाली है, वेगवान् है, चंचल है। मन ही मस्तिष्क की चेतना शक्ति है, वही हमारे सभी कर्मों का संचालनकर्ता तथा उत्तरदायी है। मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। अतः मन श्रेष्ठ, सुन्दर कल्याणकारी होना आवश्यक है। इसके लिए मन को यजनीय परमात्मा की उपासना करनी चाहिए। यज् धातु के तीन अर्थ हैं, 1. देवपूजा, 2. संगतिकरण, 3. दान। देवपूजा का अर्थ है दिव्यगुण सम्पन्न का सम्मान, सेवा, सहयोग करना। समाज के परोपकारी वेद प्रचारक विद्वान् ही देव हैं। शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार विद्वांसो हि देवाः अर्थात् विद्वान् ही देव हैं। उनका सम्मान करें, सेवा करें, सहयोग करें जिससे वे वेद तथा वैदिक संस्कृति का प्रचार-प्रसार करते रह सकें। संगतिकरण-संगठन भी आवश्यक हैं क्योंकि एकाकी प्रयास सफल नहीं हो सकते। दान तो देते ही रहना है अन्यथा सामाजिक कार्य हो ही नहीं सकेंगे। परमात्मा यजनीय है। यजन या यज्ञ परमात्मा के लिए तथा उसके ज्ञान वेद के लिए करना चाहिए। परमात्मा यज्ञमय है। वह तो सृष्टि यज्ञ कर ही रहा है, हमें उसके लिए, उसके वेद ज्ञान के लिए, उसके सुतों के लिए तथा दिव्य प्रकृति के लिए यज्ञ करना चाहिए। हमें प्रार्थना करनी चाहिए कि वह बृहस्पति अर्थात् विराट् और महान् परमात्मा हमारे इस यज्ञ को फैलायें, विस्तार दें। हम इस विराट सामाजिक दायित्व को समझें तथा वेद प्रचार यज्ञ को विस्तृत करें। इस निर्मल यज्ञ को धारण करें जिससे सभी देवशक्तियाँ इस महायज्ञ में आनन्दित हों। हम अपने जीवन में ओ३म् को प्रतिष्ठित करें तथा ओ३म् हमें प्रतिष्ठा प्रदान करे॥ 13॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : **मनो** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **जूतिः** (जु - जाना, जल्दी जाना, भागना)। **जुषताम्** (जुष - सेवा करना, सन्तुष्ट करना)। **आज्यस्य** (जि- जीतना, सर्वोत्कर्ष से रहना)। **बृहस्पतिः** (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना)। **यज्ञम्** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना)। **इमम्** (सर्वनाम)। **तनोतु** (तन - फैलाना, बढ़ाना)। **अरिष्टम्** (रिष- हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, मारने का यत्न करना)। **सम्** (उपसर्ग)। **दधातु** (दध - धारण करना, पालन करना)। **विश्वे** (सर्वनाम)। **देवासः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, आनन्द करना)। **इह** (सर्वनाम)। **मादयन्ताम्** (मद - तृप्त करना, समाधान करना)। **ओ३म्** = परमात्मा। **प्रतिष्ठ** (तिष्ठ - स्था - स्थित होना, ठहरना, प्रतीक्षा करना)॥ 13॥

45. एषा ते अग्ने समित् तया, वर्धस्व च आ च प्यायस्व॥
वर्धिषीमहि च वयम् आ च प्यासिषीमहि॥
अग्ने वाजजित् वाजम् त्वा, ससृवांसम् वाजजितम् सम् मार्ज्मि॥ 14॥

संहितापाठ

एषा ते अग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व। वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि। अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवांसम् वाजजितꣳसम्मार्ज्मि॥

मन्त्रार्थ : अग्ने हे अग्ने! **एषा** यह **ते** तुम्हारा (है)। **तया** उससे **समित्** सम्यक् ही **वर्धस्व** वाणी बोलो, बढ़ो **च** और **प्यायस्व** बढ़ाओ। **वयम्** हम **वर्धिषीमहि** बढ़ें **च** और **प्यासिषीमहि** बढ़ायें। **वाजजित्** हे वाजजित् **अग्ने** अग्नि! **त्वा** तुमको, **वाजम्** विद्या को, **ससृवांसम्** गतिशीलों को, **वाजजितम्** विद्वानों को, गतिजयी को **सम् मार्ज्मि** शुद्ध करता हूँ, सम्यक् स्तुति करता हूँ।

भावार्थ : ऊर्ध्वगामी तेजस्वी अग्नि परमात्मा के प्रति समर्पण की भावना महत्वपूर्ण है। यह उपासक तुम्हारा ही है। इसलिए तुम ही सम्यक् प्रवचन, मार्गदर्शन करो और आगे बढ़ाओ। हमारी कामना है कि हम बढ़ें और सबको बढ़ाएँ।

परमात्मा की सम्यक् स्तुति करते हैं तथा उसकी कृपा से विद्या को शुद्ध करते हैं, अपनी जानकारी की न्यूनताएँ दूर करते हैं। 14 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : एषा (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **अग्ने** (अग् - अगि = गति करना, आगे जाना)। **समित्** (सम् = भलीभाँति, इत् = ही)। **तया** (सर्वनाम)। **वर्धस्व** (वृध् = बढ़ना, चमकना, बोलना)। **च** (अव्यय)। **आ** (उपसर्ग)। **प्यायस्व** (प्याय् = बढ़ना)। **वर्धिषीमहि** (वृध् = बढ़ना, चमकना, बोलना)। **वयम्** (सर्वनाम)। **प्यासिषीमहि** (प्यास् = बढ़ाना)। **वाजजित्** (वाज् = जाना, जानना, तैयार करना, जि = जीतना)। **वाजम्** (वाज् = जाना, जानना, तैयार करना, जि = जीतना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **ससृवांसम्** (सृ = गति करना, जानना)। **वाजजितम्** (वाज् = जाना, जानना, जि = जीतना)। **सम् मार्ज्मि** (मार्ज् = शब्द करना, मृज् = शुद्ध करना)।। 14 ।।

46. अग्नीषोमयोः उत् जितिम् अनु उत् जेषम् वाजस्य मा प्र सवेन प्र ऊहामि ।।
अग्नीषोमौ तम् अप नुदताम्, यो अस्मान् द्वेष्टि यम् च वयम् द्विष्मो,
वाजस्य एनम् प्र सवेन अप ऊहामि ।।
इन्द्राग्न्योः उत् जितिम् अनु उत् जेषम् वाजस्य मा प्र सवेन प्र ऊहामि ।।
इन्द्राग्नी तम् अप नुदताम्, यो अस्मान् द्वेष्टि यम् च वयम् द्विष्मो
वाजस्य एनम् प्र सवेन अप ऊहामि ।। 15 ।।

संहितापाठ

अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि।अग्नीषोमौ तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैन प्रसवेनापोहामि।इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि।इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ।। 15 ।।

मन्त्रार्थ : अग्नीषोमयोः अग्नि और सोम के **उत्** उत्कृष्ट **जितिम्** विजय के अनुसार **अनु-उत्-जेषम्** उत्कृष्ट विजय के लिए **मा-माम्** = मुझको **वाजस्य** विद्या के **प्र सवेन** ऐश्वर्य द्वारा **प्र ऊहामि** विचार करता हूँ। **अग्नीषोमौ** अग्नि और सोम **तम्** उनको **अप** दूर **नुदताम्** भेजें **यो** जो **अस्मान्** हमसे **द्वेष्टि** द्वेष करते हैं **च** और **यम्** जिनसे **वयम्** हम **द्विष्मो** द्वेष करते हैं। **वाजस्य** विद्या के **प्र सवेन** ऐश्वर्य से **एनम्** इसको **अप** दूर (करने के लिए) **ऊहामि** विचार करता हूँ। **इन्द्राग्न्योः** इन्द्र और अग्नि के **उत्** उत्कृष्ट **जितिम्** विजय के **अनु** अनुसार **उत्** उत्कृष्ट **जेषम्** विजय के लिए **वाजस्य** विद्या के **प्र सवेन** ऐश्वर्य द्वारा **प्र ऊहामि** विचार करता हूँ। **इन्द्राग्नी** इन्द्र और अग्नि **तम्** उनको **अप** दूर **नुदताम्** भेजें **यो** जो **अस्मान्** हमसे **द्वेष्टि** द्वेष करते हैं **च** और **यम्** जिनसे **वयम्** हम **द्विष्मो** द्वेष करते हैं। **वाजस्य** विद्या के **प्र सवेन** ऐश्वर्य द्वारा **एनम्** इनको **अप** दूर करने के लिए **ऊहामि** विचार करता हूँ।

भावार्थ : अग्नि का अर्थ है ऊर्ध्वगामी विद्वान् अग्रणी तथा सोम का अर्थ है, उत्पादन, ऐश्वर्य। उत्तम विद्या, उच्चगति के साथ उत्पादकता, ऐश्वर्य भी हो तो उत्कृष्ट विजय होगी ही। इसी तरह विद्या के ऐश्वर्य से उत्तम विजय के विचार होने चाहिए। जब हम उत्तम विचारों के साथ महत्वपूर्ण कार्य करने का प्रयास करते हैं तो द्वेष करने वाले बाधा डालते हैं। उन बाधाओं को विद्या और ऐश्वर्य, रचनात्मकता द्वारा दूर करने का विचार करना है। विद्या और विचार-विमर्श से उनके द्वेषभाव को दूर करना है, विवाद या हिंसक विरोध में अपनी आध्यात्मिक ऊर्जा तथा रचनात्मक शक्ति व्यय नहीं करनी है। इन्द्र का अर्थ है परम ऐश्वर्यवान्। इन्द्र व अग्नि के साथ से भी इसी तरह उत्कृष्ट विजय अर्थात् उत्तम सफलताएँ प्राप्त होती हैं।। 15 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अग्नीषोमयोः (अग् - अगि = गति करना, आगे जाना, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **उज्जितम्** (जि = जीतना)। **अनुज्जेषम्** (अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल, जि = जीतना)। **वाजस्य** (वाज् = जाना, जानना)। **मा-माम्** (सर्वनाम)। **प्रसवेन** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **प्रोहामि** (प्र + ऊहामि, ऊह् = परिकल्पना करना, तर्क करना)। **तम्** (सर्वनाम)। **अप** (उपसर्ग)। **नुदताम्** (नुद् = भेजना, प्रेरणा करना, जाना)। **यो** (सर्वनाम)। **अस्मान्** (सर्वनाम)। **द्वेष्टि** (द्विष् = द्वेष करना)। **यम्** (सर्वनाम)। **च** (अव्यय)। **वयम्** (सर्वनाम)। **द्विष्मः** (द्विष् = द्वेष करना)। **एनम्** (सर्वनाम)।

इन्द्राग्न्योः (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, अग् = गति करना, आगे जाना)। **प्रसवेन** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **ऊहामि** (ऊह् = परिकल्पना करना, तर्क करना)॥ 15॥

सरलपाठ

47. वसुभ्यः त्वा रुद्रेभ्यः त्वा आदितेभ्यः त्वा सम् जानाथाम्
द्यावा-पृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्या अवताम्॥
व्यन्तु वयोक्तम् रिहाणा मरुताम् पृषतीः गच्छ,
वशा पृश्निः भूत्वा दिवम् गच्छ, ततो नो वृष्टिम् आ वह॥
चक्षुष्पाः अग्ने असि चक्षुः मे पाहि॥ 16॥

संहितापाठ

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। व्यन्तु वयोक्तꣳरिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्पाऽअग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि॥16॥

मन्त्रार्थ : **त्वा** तुमको **वसुभ्यः** वसुओं के लिए, **त्वा** तुमको **रुद्रेभ्यः** रुद्रों के लिए, **त्वा** तुमको **आदितेभ्यः** आदित्यों के लिए **सम् जानाथाम्** सम्यक् रूप से, भलीभाँति जानते हैं। **द्यावा-पृथिवी** द्यावा-पृथिवी (तथा) **मित्रावरुणौ** मित्रावरुण **वृष्ट्या** उच्च पराक्रम से **त्वा** तुम्हारी **अवताम्** रक्षा करें। **रिहाणा** स्तुति, दान करने वाले **व्यन्तु** प्राणवान् हों, समर्थ हों, विद्वान् हों। **मरुताम्** मरुतों का, मरणशीलों का **वयोक्तम्** विद्या का उपदेश **पृषतीः** सींचने अभिसिञ्चन करने वाले के निकट **गच्छ** जाओ। **वशा** इच्छाएँ **पृश्निः** जिज्ञासु तेजस्वी **भूत्वा** होकर **दिवम्** दिव लोक को **गच्छ** जाओ। **ततः** उससे **नो** हमारे लिए **वृष्टिम्** उच्च पराक्रम को, वर्षा को **आवह** ले आओ। **अग्ने** हे अग्नि **चक्षुष्पाः** नेत्रों की रक्षा करने वाले **असि** हो। **मे** मेरे **चक्षुः** आँख की **पाहि** रक्षा करो।

भावार्थ : वसुओं-बसाने वालों के लिए, रुद्रों-करुणाभाव वालों के लिए आदित्यों-अविनाशी चिन्तन करने वालों के लिए जानते हैं। परमात्मा को हम इन गुणों के लिए स्मरण करते हैं, उपासकों में भी ऐसे गुण होने चाहिए। ऐसे उपासकों की रक्षा के लिए दिव्य शक्तियाँ तत्पर रहती हैं। मरुत् का अर्थ है मरणशील अर्थात् मनुष्य जैसे प्राणी। मृत्यु को स्मरण रखेंगे तो अच्छे कर्म करते रहेंगे। विद्वानों से अच्छी विद्या सीखें और दूसरों तक पहुंचाएँ। हमारी दृष्टि अच्छी रहे। परमात्मा हमारी दृष्टि की रक्षा करे, उसे दूषित न होने दे॥ 16॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : वसुभ्यः (वस - निवास करना, वस्त्र धारण करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **रुद्रेभ्य**ः (रुद् - रोना, रोते रोते कहना)। **आदितेभ्यः** (अद - खाना, नष्ट करना)। **संजानाथाम्** (ज्ञा-जा = जानना)। **द्यावापृथिवी** (द्यु = आगे जाना, समीप जान, पृथ- व्याप्त होना, प्रकट होना)। **मित्रावरुणौ** (मिद- प्रीति करना, मृदुल होना, वृ -वरण करना, पसन्द करना)। **वृष्ट्या** (वृष् = उच्च पराक्रम् करना, वर्षा होना, सींचना)। **अवताम्** (अव् = रक्षा करना)। **व्यन्तु** (वि = विशेष, विविध, विना, विलोम, अन् = जीना, प्राणवान् होना, समर्थ होना, जाना, जानना, पाना)। **वयोक्तम्** (वय + उक्तम्, वय् = जाना, जानना, पाना, उक्तम् = कहा गया)। **रिहाणा** (रिह् = कहना, प्रशंसा करना, दान करना)। **मरुताम्** (मृ = मरना)। **पृषतीः** (पृष् = सींचना)। **गच्छ** (गम्-गच्छ = जाना)। **वशा** (वश् = इच्छा करना, चाहना)। **पृश्निः** (पृश् = प्रश्न करना, पूंछना)। **भूत्वा** (भू = होना)। **दिवम्** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, जानना)। **ततः** (सर्वनाम)। **नो** (सर्वनाम)। **वृष्टिम्** (वृष् = उच्च पराक्रम करना, बरसना)। **आवह** (वह् = वहन करना, ले जाना)। **चक्षुष्पाः** (चक्ष् = देखना, पा = पालन करना, रक्षा करना)। **अग्ने** (अग् - अगि = गति करना, आगे जाना)। **असि** (अस् = होना)। **चक्षुः** (चक्ष् - साफ बोलना, कहना, देखना)। **मे** (सर्वनाम)। **पाहि** (पा - रक्षा करना, पालन करना)॥ 16॥

(13) सूक्त 5

48. यम् परिधिम् परि अधत्थाः, अग्ने देव पणिभिः गुह्यमानः॥
तम् ते एतम् अनु जोषम् भरामि एष न इत् त्वत् अप चेतयाता, अग्नेः प्रियम् पाथो अपीतम्॥17॥

संहितापाठ

यं परिधिं पर्यधत्थाऽअग्ने देवपणिभिर्गुह्यमानः। तं तऽएतमनु जोषं भराम्येष नेत्त्वदपचेतयाताऽअग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम्॥17॥

मन्त्रार्थ : अग्ने हे अग्नि! **पणिभिः** उद्योग-स्तुतियों से **गुह्यमानः** आच्छादित **देव** देव ने **यम्** जिस **परिधिम्** परिधि को **परि अधत्थाः** सब ओर से धारण किया है। **तम्** उसको **ते** तुम्हारे लिए **एतम्** इसको **अनु** पीछे **जोषम्** विचारपूर्वक **भरामि** धारण करता हूँ। **एष** यह **त्वत्** तुमसे **अप** दूर **न इत्** नहीं **चेतयाता** विचार करें। **अग्नेः** अग्नि के **प्रियम्** प्रिय **पाथो** मार्ग पर **अपीतम्** जाता हूँ।

भावार्थ : देव शक्तियाँ स्तुतियों से आच्छादित हैं, उन्होंने दिव्य परिधि को सब ओर धारण किया है। देव अर्थात् विद्वान् स्तुतियों से आच्छादित रहते हैं। परमात्मा की स्तुति उनके लिए आच्छादन बन जाती है, सुरक्षा कवच का कार्य करती है। अतः स्तुति निरन्तर करते रहना चाहिए। उन देव तेजस्वी विद्वानों की परिधि अर्थात् घेरा विचारपूर्वक धारण करना आवश्यक है, परन्तु विचार को परमात्मा से दूर नहीं जाना चाहिए। परमात्मा का ध्यान रखकर ही चिन्तन, विचार-विमर्श, तर्क-वितर्क होना चाहिए। अग्नि अर्थात् ऊर्ध्वगामी तेजस्वी परमात्मा के मार्ग पर चलने का प्रयास सदैव करना चाहिए॥ 17॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : यम् (सर्वनाम)। **परिधिम्** (परि = सब ओर, धा = धारण करना)। **पर्यधत्था** (परि = सब ओर, धा = धारण करना)। **अग्ने** (अग् - अगि = गति करना, आगे जाना)। **देव** (दिव् = तेज होना, चमकना, जानना)। **पणिभिः** (पण् = उद्योग करना, स्तुति करना)। **गुह्यमानः** (गुह् = ढकना, संवरण करना)। **तम्** (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **एतम्** (सर्वनाम)। **अनु** (उपसर्ग)। **जोषम्** (जुष् = विचार करना)। **भरामि** (भृ = धारण, पोषण करना)। **एषः** (सर्वनाम)। **न** (अव्यय)। **इत्** (अव्यय)। **त्वत्** (सर्वनाम)। **अप** (उपसर्ग)। **चेतयाता** (चित्, चेत् = विचार करना, चिन्तन करना)। **अग्नेः** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **प्रियम्** (प्री - प्रीति करना, दुलारना)। **पाथः** (पथ् = जाना, जानना, पाना)। **अपीतम्** (अपि + इतम्, इ = जाना, जानना, पाना)॥ 17॥

49. सम् स्रवभागाः स्थ इषा बृहन्तः, प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाः च देवाः॥
इमाम् वाचम् अभि विश्वे गृणन्तः, आ सद्य अस्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्, स्वाहा वाट्॥18॥

संहितापाठ

संस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः। इमां वाचमभि विश्वे गृणन्तऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वस्वाहा वाट्॥18॥

मन्त्रार्थ : देवाः देवगण (तेजस्वी, विद्वान्) **सम्** सम्यक् **स्रवभागाः** विद्या देने वाले, **इषा** विद्या से **बृहन्तः** बढ़ने वाले, **प्रस्तरेष्ठाः** प्रकृष्ट आच्छादन में स्थित, **च** और **परिधेयाः** सभी प्रकार से धारण करने योग्य **स्थ** हैं। **इमाम्** इस **वाचम्** वाणी को **विश्वे** विश्व में **गृणन्तः** प्रवचन करते हुए **अस्मिन्** इस **अभि** अभिवृद्धिकारक **बर्हिषि** कर्म में **आ सद्य** आकर **मादयध्वम्** आनन्द पायें, **स्वाहा** व्यापक **वाट** सुख पायें।

भावार्थ : विद्वान् लोग समाज के लिए सब प्रकार से उपयोगी हैं। इस बात को स्वयम् जानें और सबको बतायें। इस कार्य से आनन्द और व्यापक सुख प्राप्त होगा॥ 18॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : सम् (उपसर्ग)। **स्रवभागाः** (स्रु = जाना, जानना, पाना, भज् = दान करना)। **स्थ** (स्था - स्थित होना, ठहरना)। **इषा** (इष् = जाना, जानना, पाना)। **बृहन्तः** (बृह् = बढ़ना)। **प्रस्तरेष्ठा** (प्र + स्तर + स्थ, प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक, स्तृ = आच्छादित करना, ढकना, स्थ = स्थित)। **परिधेयाः** (परि = परे, सभी ओर, साथ, धा = धारण करना)। **च** (अव्यय)। **देवाः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **इमाम्** (सर्वनाम)। **वाचम्** (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना)। **अभि** (उपसर्ग)। **विश्वे** (सर्वनाम)। **गृणन्तः** (गृ-गृण् = शब्द करना)। **आसद्य** (सद् = जाना, आसद् = आना)। **अस्मिन्** = (सर्वनाम)। **बर्हिषि** (बृह् = बढ़ना)। **मादयध्वम्** (मद् = तृप्त करना, हर्षित होना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्यापक होना)। **वाट्** (वात् = सुखी होना, आनन्द करना)॥

50. घृताची स्थो धुर्यौ पातम्, सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम्॥
यज्ञ नमः च ते उप च, यज्ञस्य शिवे सम् तिष्ठस्व, स्विष्टे मे सम् तिष्ठस्व॥19॥

संहितापाठ

घृताची स्थो धुर्यौ पातꣳ सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम्।यज्ञ नमश्च तऽउप च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे सन्तिष्ठस्व॥19॥

मन्त्रार्थ : घृताची परमात्मा के उपासक (अभिसिञ्चन करने वाले, प्रकाशमय की ओर जाने वाले, आदर करने वाले, मांगने वाले) **स्थो** हो, **धुर्यौ** धुरी की **पातम्** रक्षा करने वाले **सुम्ने** सत् चिन्तन में **स्थः** स्थित हो, **मा** मुझे **सुम्ने** सत् विचार में **धत्तम्** धारण करो। **यज्ञ** यजन **च** और **नमः** नमन **ते** तुम्हारे **उप** समीप **च** और **यज्ञस्य** यजन के **शिवे** कल्याण में **सम्** सम्यक् रूप से **तिष्ठस्व** स्थित रहें, **मे** मेरी **स्विष्टे** रचनात्मक इच्छाओं में **सम्** सम्यक् **तिष्ठस्व** स्थित रहो।

भावार्थ : परमात्मा के उपासक का चिन्तन धुरी की रक्षा करने वाला होता है। धुरी का अर्थ है व्यापक और मुख्य। धुरी ही मुख्य है, उसके आधार पर ही चक्र घूमता है। वह चक्रों या पहियों में व्याप्त रहता है, उनके भीतर केन्द्र में मुख्य आधार बना रहता है। ऐसे कार्य, परम्पराएँ, लोग जो समाज की धुरी हैं, उनकी रक्षा करनी चाहिए। यह स्वभाव उपासकों का है। ऐसा सत् चिन्तन से सम्भव है। ऐसी लोकहित भावना के बिना उपासना हो नहीं सकती है। उपासना में लगे रहने से सत् चिन्तन भी विकसित होता रहता है। अतः यथासम्भव उपासना करते रहना चाहिए॥19॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : घृताची (अभिसिञ्चन करने वाले, प्रकाशमय की ओर जाने वाले, आदर करने वाले, मांगने वाले)। **स्थो** (स्था - स्थित होना, ठहरना)। **धुर्यौ** (धुर् = मुख्य होना, धुरी होना, व्याप्त होना)। **पातम्** (पा = रक्षा करना)। **सुम्ने** (सु + म्ना, सु = उत्पन्न करना, म्ना = अभ्यास करना, विचार करना, मनन करना)। **स्थः** (स्था - स्थित होना, ठहरना)। **मा (माम्)** (सर्वनाम)। **धत्वम्** (धा = धारण, पोषण, रक्षण, दान करना)। **यज्ञ** (यज = देवपूजा, संगतिकरण, दान)। **नमः** (नम- नमस्कार करना, सम्मान देना)। **च** (अव्यय)। **ते** (सर्वनाम)। **उप** (उपसर्ग)। **यज्ञस्य** (यज्ञ = देवपूजा, संगतिकरण, दान)। **शिवे** (शिव - कल्याण करना)। **सम्** (उपसर्ग)। **तिष्ठस्व** (तिष्ठ् = ठहरना)। **स्विष्टे** (इष-इच्छा करना, चाहना)। **मे** (सर्वनाम)। **तिष्ठस्व** (तिष्ठ् = ठहरना)॥19॥

51. अग्ने अदब्धायो अशीतम पाहि मा दिद्योः,
पाहि प्र सित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्या, अविषम् नः पितुम् कृणु॥
सुषदा योनौ स्वाहा वाट्, अग्नये संवेशपतये स्वाहा, सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा॥20॥

संहितापाठ

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा॥20॥

मन्त्रार्थ : अशीतम परम व्यापक **अदब्धायो** अहिंसक आयु **अग्ने** अग्नि! **मा** मुझे **दिद्योः** विनाश, कष्ट से **पाहि** बचाओ, **प्र सित्यै** बन्धन से **पाहि** बचाओ, **दुरिष्ट्यै** कुमार्ग से, बुरी इच्छाओं से **दुरद्मन्या** कुभोजन से **पाहि** बचाओ। **नः** हमारे **पितुम्** विद्या को **अविषम्** विषहीन **कृणु** करो। **संवेशपतये** सम्यक् विस्तार के स्वामी **अग्नये** अग्नि के लिए **स्वाहा** व्यापकता हो, **सुषदा** सद्विद्या, सुपथ, **योनौ** मिलकर रहने के लिए **वाट्** संगठन-प्रवचन हो। **सरस्वत्यै** सरस्वती के लिए, **यशोभगिन्यै** यशगामी के लिए **स्वाहा** व्यापक भावना हो।

भावार्थ : ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, सर्वविद् परमात्मा अग्नि सर्वव्यापी और अहिंसक है, वही हमें अवांछनीय परिस्थितियों से बचा सकता है। इसके लिए विद्या का विषहीन होना आवश्यक है। यदि जानकारी अशुद्ध है तो जीवन में विष घुल सकता है। अतः सत्संग-प्रवचन की व्यवस्था बनाये रखें। अनन्त विस्तार के स्वामी परमात्मा के लिए हमारे विचारों तथा कार्यों में भी व्यापकता होनी चाहिए। सद्विद्या, सुपथ, एकता, सरसता, यश के लिए आवश्यक है कि हम व्यापकता की भावना अपनाएं, संकीर्ण न बनें॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : अग्ने (अग् = गति करना, आगे जाना)। **अदब्धायो** (दम्भु = तोड़ना, हिंसा करना) (आयुस्-जीवनम्)। **अशीतम** (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)। **पाहि** (पा = रक्षा करना)। **मा (माम्)** (सर्वनाम)। **दिद्योः** (दी = क्षय होना, ह्रास होना, दु = दुःख भोगना, दिव् = पीड़ा देना)। **प्रसित्यै** (सि = बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। **दुरिष्ट्यै** (दुः + इष्ट्यै, दु = दुःख भोगना, इष् = जाना, इच्छा करना)। **दुरद्मन्या** (दुः + अद्मन्या,दु = दुःख भोगना, अद् = खाना)। **अविषम्** (अ-नहीं, विष - उपयोग न होने से अलग करना या निकाल देना)। **नः** (सर्वनाम)। **पितुम्** (पि = गति करना, जाना, जानना, पाना)। **कृणु** (कृ = करना)। **सुषदा** (सु + सदा, सु = अच्छा, सद् = जाना, जानना)। **योनौ** (यु = मिलाना, अलग करना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **वाट्** (वट् = एकत्र करना, परिभाषण करना, ग्रन्थ बनाना, गूंथना)। **अग्नये** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **संवेशपतये** (विश् = फैलना, पत् - श्रीमान् होना)। **सरस्वत्यै** (सृ = जाना, जानना, पाना, पहुंचना)। **यशोभगिन्यै** (भक्-भग्-भज् = देना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना)॥ 20॥

52. वेदो असि येन त्वम् देव वेद, देवेभ्यो वेदो अभवः, तेन मह्यम् वेदः भूयाः॥
देवा गातुविदो गातुम् वित्वा गातुम् इत॥ मनसः पते इमम् देव यज्ञम् स्वाहा वाते धाः॥21॥

संहितापाठ

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः। देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पतऽइमं देव यज्ञस्वाहा वाते धाः॥21॥

मन्त्रार्थ : देव हे देव (परमात्मा, विद्वान् मनुष्य) **त्वम्** तुम **वेदो** वेद **असि** हो, **येन** जिससे **वेद** (तुम) जानते हो। **देवेभ्यो** देवों के लिए (तुम) **वेदो** वेद **अभवः** हो गये। **तेन** उससे (तुम) **मह्यम्** मेरे लिए **वेदः** वेद **भूयाः** हो जाओ। **गातुविदो** स्तुति को जानने वाले **देवा** विद्वान् **गातुम्** स्तुति को **वित्वा** जानकर **गातुम्** स्तुतियों को **इत** पा गये। **मनसः** मन के **पते** स्वामी **देव** देव! **इमम्** इस **यज्ञम्** यजन को **स्वाहा** व्यापक करो, **वाते** विद्या के लिए **धाः** धारण करो।

भावार्थ : परमात्मा वेद स्वरूप में हमें प्रत्यक्ष है। उपासक की भावना है कि निराकार परमात्मा वेद के रूप में हमें प्रत्यक्ष रूप में उपलब्ध होता है। वह वेद से जानता है, इसका भाव यही है कि परमात्मा की उपासना की कसौटी वेद ही है। वेद के अनुसार चलने वाले ही उसके सच्चे उपासक हैं। वह विद्वानों के लिए वेद के रूप में प्रत्यक्ष उपलब्ध हो गया है। जो विद्वान् हैं, वे वेद का स्वाध्याय कर तथा उसके निर्देशों का पालन कर परमात्मा की अनुभूति कर सकते हैं। वह मेरे लिए भी वेद हो जाये अर्थात् हम भी वेद का महत्व समझें तथा उसके माध्यम से परमात्मा की अनुभूति कर सकें। स्तुतियों को जानकर स्तुतियों को पाया जा सकता है। स्वाध्याय कर वेद को समझना है, उसके मूल भाव को अनुभव करना है। परमात्मा को पाने और जीवन को सफल बनाने का यही राजमार्ग है। यही वास्तविक यजन है। अतः प्रार्थना है कि मन के स्वामी देव परमात्मा इस यजन को व्यापक बन लें, विद्या व गतिशीलता के लिए इसी यजन को धारण करना है॥ 21॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : वेदः (विद् = जानना, समझना, विद्यमान होना)। **असि** (अस् = होना)। **येन** (सर्वनाम)। **त्वम्** (सर्वनाम)। **देव** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **वेद** (विद् = जानना, समझना, विद्यमान होना)। **देवेभ्यः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **अभवः** (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **तेन** (सर्वनाम)। **मह्यम्** (सर्वनाम)। **भूयाः** (भू = होना, रहना, उत्पन्न होना)। **गातुविदः** (गा = स्तुति करना, जाना, जानना, विद् = जानना)। **वित्वा** (विद् = जानना)। **गातुम्** (गा = स्तुति करना, जाना, जानना)। **इत** (इ = जाना, जानना पाना)। **मनसस्पते** (मनसः + पते, मन -विचार करना, मनन करना, पा - रक्षा करना)। **इमम्** (सर्वनाम)। **यज्ञम्** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **वाते** (वा = जाना, जानना, पाना, गन्ध लेना)। **धाः** (धा - धारण करना, पहनना, पोषण करना)।21॥

(14) सूक्त 6

53. सम् बर्हिः अंक्ताम् हविषा घृतेन, सम् आदित्यैः वसुभिः सम् मरुद्भिः॥
सम् इन्द्रो विश्वदेवेभिः अंक्ताम्, दिव्यम् नभो गच्छतु यत् स्वाहा॥22॥

संहितापाठ

सं बर्हिरङ्क्तांहविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः।समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङक्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा॥22॥

मन्त्रार्थ : सम् बर्हिः संवृद्धि को **हविषा** आदान-प्रदान, **घृतेन** अभिसिञ्चन, **सम् आदित्यैः** सम्यक् आदित्यों, (सम्यक्) **वसुभिः** वसुओं, **सम् मरुद्भिः** सम्यक् मरुतों द्वारा **अंक्ताम्** अपनाओ। **सम् इन्द्रो** सम्यक् परम् ऐश्वर्यवान् **विश्वदेवेभिः** विश्वदेवों द्वारा **अंक्ताम्** अपनायें। **दिव्यम्** दिव्य **नभो** नभ को **गच्छतु** जाओ **यत्** जो **स्वाहा** व्यापक (है)।

भावार्थ : भलीभाँति वृद्धि पाने के लिए आदान-प्रदान आवश्यक है। वसुओं-बसाने वालों, आदित्यों-प्रकाशमान तेजस्वी लोगों, मरुतों-मरणशील मनुष्यों के सम्यक् होने से सम्यक् वृद्धि होती है। हमारा जीवन सम्यक् अर्थात् भलीभाँति व्यवस्थित होना चाहिए। परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा विश्वदेवों-विद्वानों द्वारा अपनायें, यही कामना है। इससे हम दिव्य व्यापक आकाश तक जा सकते हैं॥22॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : सम् (उपसर्ग)। **बर्हिः** (बृह = बढ़ना)। **अंक्ताम्** (अंक् = गिनना, गोद में लेना)। **हविषा** (हु = दान-आदान करना)। **घृतेन** (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। **आदित्यैः** (अद - खाना, नष्ट करना)। **वसुभिः** (वस् = रहना, निवास करना, दया करना, प्रीति करना)। **मरुद्भिः** (मृ = मरना)। **इन्द्रो** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **विश्वदेवेभिः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **दिव्यम्** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **नभो** (नभ् = हिंसा करना)। **गच्छतु** (गम्, गच्छ् = जाना)। **यत्** (सर्वनाम)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥22॥

54. कः त्वा विमुञ्चति, सः त्वा विमुञ्चति॥कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति॥
पोषाय रक्षसाम् भागो असि॥23॥

संहितापाठ

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति।पोषाय रक्षसां भागोऽसि॥23॥

मन्त्रार्थ : कः कौन **त्वा** तुमको **वि मुञ्चति** कहता है, छोड़ता है? **सः** वह **त्वा** तुमको **वि मुञ्चति** कहता है, छोड़ता है। **कस्मै** किसलिए **त्वा** तुमको **वि मुञ्चति** कहता है, छोड़ता है? **तस्मै** उसके लिए **त्वा** तुमको **वि मुञ्चति** कहता है, छोड़ता है। **रक्षसाम्** रक्षकों के **पोषाय** पोषण के लिए **भागो** भाग **असि** हो।

भावार्थ : वह परमात्मा या विद्वान् हमसे कहते हैं, हमारा मार्गदर्शन करते हैं। यदि हम नहीं सुनते हैं तो वे हमें छोड़ देते हैं। विमुञ्चति का अर्थ छोड़ने के साथ ही कहना भी है। जो हमारी रक्षा करने वाले हैं, उन सज्जन देवजनों के पोषण के लिए हमें अंशदान देना चाहिए॥23॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : कः (सर्वनाम)। **त्वा** (सर्वनाम)। **वि मुञ्चति** (वि - विशेष, मुंच् = बोलना, कहना, त्याग करना)। **स** (सर्वनाम)। **कस्मै** (सर्वनाम)। **तस्मै** (सर्वनाम)। **पोषाय** (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना)। **रक्षसाम्** (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। **भागः** (भज् = भजना, भाग करना)। **असि** (अस् = होना)॥23॥

55. सम् वर्चसा पयसा सम् तनूभिः, अगन्महि मनसा सम् शिवेन॥
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायः, अनु मार्ष्टु तन्वो यत् वि लिष्टम्॥24॥

संहितापाठ

सं वर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा सꣳशिवेन।त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥24॥

मन्त्रार्थ : सम् सम्यक् **वर्चसा** तेज, **पयसा** व्यापकता, **सम्** सम्यक् **शिवेन** कल्याणकारी **मनसा** मन, **तनूभिः** वाणी द्वारा **अगन्महि** जाते हैं। **त्वष्टा** प्रकाशक **सुदत्रो** अच्छा दानी **रायः** विद्या **विदधातु** धारण कराये। **यत्** जो **वि लिष्टम्** विलिष्ट है, **तन्वो** वह तुम्हारा **मार्ष्टु** शोधन करे॥

भावार्थ : हमारा जीवनपथ सम्यक् तेज, व्यापकता, कल्याणकारी मन, वाणी से युक्त हो। सुदानी प्रकाशक परमात्मा ऐसे उपासक को सद्विद्या प्रदान करता है तथा न्यूनताओं-आच्छादनों, प्रेरणाओं को शुद्ध करता है॥24॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : सम् (उपसर्ग)। **वर्चसा** (वर्च् = प्रकाशित होना)। **पयसा** (पयस् = विस्तार करना, फैलाना)। **तनूभिः** (तन = विस्तार करना, फैलाना, शब्द करना)। **अगन्महि** (गम् = जाना, जाना, पाना)। **मनसा** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **शिवेन** (शिव् = कल्याण करना)। **त्वष्टा** (त्विष् = प्रकाशित होना)। **सुदत्रो** (सु = अच्छा, दा, दद् = देना)। **विदधातु** (वि = विशेष, विविध, विना, विलोम, दध - धारण करना, पालन करना)। **रायः** (रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। **अनु** (उपसर्ग)। **मार्ष्टु** (मृज् = शुद्ध करना, मार्ज् = शब्द करना)। **तन्वः** (तनु = विस्तार करना)। **यत्** (सर्वनाम)। **वि लिष्टम्** (वि = विशेष, विविध, विना, विलोम, लिश् = कम करना, न्यून करना, जाना, जानना, पाना)॥ 24॥

56. दिवि विष्णुः वि अक्रंस्त जागतेन छन्दसा, ततो निः भक्तो यो अस्मान् द्वेष्टि, यम् च वयम् द्विष्मः। अन्तरिक्षे विष्णुः वि अक्रंस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा, ततो निः भक्तो यो अस्मान् द्वेष्टि, यम् च वयम् द्विष्मः। पृथिव्याम् विष्णुः वि अक्रंस्त गायत्रेण छन्दसा, ततो निः भक्तो यो अस्मान् द्वेष्टि, यम् च वयम् द्विष्मः। अस्मात् अन्नात् अस्यै प्रतिष्ठाया, अगन्म स्वः सम् ज्योतिषा अभूम॥25॥

संहितापाठ

दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रꣳस्त त्रैष्टुभेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रꣳस्त गायत्रेण च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठायाऽअगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम॥25॥

मन्त्रार्थ : निर्भक्तः भक्तो असेवित (निर्भक्त - अभक्त) **यो** जो **अस्मान्** हमसे **द्वेष्टि** द्वेष करते हैं, **च** और **यम्** जिनसे **वयम्** हम **द्विष्मः** द्वेष करते हैं, **ततो** उससे **विष्णुः** सर्वव्यापी ने **जागतेन** जगती **छन्दसा** छन्द से **दिवि** दिव में **वि अक्रंस्त** रक्षा की, **त्रैष्टुभेन** त्रिष्टुभ **छन्दसा** छन्द से **अन्तरिक्षे** अन्तरिक्ष में **वि अक्रंस्त** रक्षा की, **गायत्रेण** गायत्री **छन्दसा** छन्द से **पृथिव्याम्** पृथिवी पर **वि अक्रंस्त** रक्षा की। **अस्मात्** इस **अन्नात्** अन्न से **अस्यै** इसकी **प्रतिष्ठाया** प्रतिष्ठा **अगन्म** पायी, **सम्** सम्यक् **ज्योतिषा** ज्योति से **स्वः** सुखी **अभूम** हुए।

भावार्थ : सर्वव्यापी परमात्मा सर्वत्र हमारी रक्षा करता है। हम जगती, त्रिष्टुभ, गायत्री छन्दों को आत्मसात् कर, इन मन्त्रों से उपासना कर सुरक्षित हो जाते हैं। इससे हमें प्रतिष्ठा तथा सुख प्राप्त होता है॥ 25॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : दिवि (दिव् = तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। **विष्णुः** (विष्ण्–विष् = व्याप्त होना)। **व्यक्रंस्त** (वि = विशेष, विविध, विना, विलोम, क्रम् = निर्भयता से चलना, रक्षा करना)। **जागतेन** (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। **छन्दसा** (छन्द् - ढकना, आच्छादन करना, लपेटना)। **ततः** (सर्वनाम)। **निर्भक्तः** (भज् = सेवा, भजन, उपभोग करना, देना, पकाना, अलग करना)। **यो** (सर्वनाम)। **अस्मान्** (सर्वनाम)। **द्वेष्टि** (द्वेष् = द्वेष करना, विरोध करना)। **यम्** (सर्वनाम)। **च** (अव्यय)। **वयम्** (सर्वनाम)। **द्विष्मः** (द्वेष् = द्वेष करना, विरोध करना)। **अन्तरिक्षे** = अन्तरिक्ष में (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, ईक्ष् -देखना)। **त्रैष्टुभेन** (त्रै - संरक्षण करना, पोषण करना)। **ततः** (सर्वनाम)। **पृथिव्याम्** (पृथृ -व्याप्त होना, विस्तार होना)। **गायत्रेण** (गा - प्रशंसा करना, सराहना)। **अस्मात्** (सर्वनाम)। **अन्नात्** (अन - जीना, समर्थ होना, जाना)। **अस्यै** (सर्वनाम)। **प्रतिष्ठाया** (तिष्ठ-स्था - स्थित होना, ठहरना)। **अगन्म** (गम् = जाना, पाना)। **स्वः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **सम्** (उपसर्ग)। **ज्योतिषा** (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना)। **अभूम** (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)॥ 25॥

(15) सूक्त 7

57. स्वयम्भूः असि श्रेष्ठः रश्मिः, वर्चोदा असि वर्चः मे देहि॥ सूर्यस्य आ वृतम् अनु आ वर्ते॥26॥

संहितापाठ

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि। सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते॥

मन्त्रार्थ : स्वयम्भूः स्वयम्भू, **श्रेष्ठः** श्रेष्ठ, **रश्मिः** रश्मि, **असि** हो, **वर्चोदा** प्रकाश देने वाले **असि** हो, **मे** मुझे **वर्चः** प्रकाश

देहि दो। **सूर्यस्य** सूर्य के **आ वृतम्** प्रकाश को **अनु आ** पूर्णतः **वर्ते** वरण करता हूँ।

भावार्थ : प्रकाश स्वरूप परमात्मा हमें प्रकाश प्रदान करता है। हम उसे वरण करें, जीवन में धारण कर लें। वर्चस् का अर्थ आध्यात्मिक प्रकाश है, परमात्मा की दिव्य चेतन ज्योति है। साधना-उपासना की यही प्रमुख उपलब्धि है जिससे जीवन आनन्दमय, प्रकाशमय हो जाता है।। 26।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : स्वयम्भूः (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **असि** (अस् = होना)। **श्रेष्ठः** (श्रि - सेवा करना)। **रश्मिः** (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। **वर्चोदा** (वर्च = प्रकाशित होना)। **वर्चः** (वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। **मे** (सर्वनाम)। **देहि** (दा = देना)। **सूर्यस्य** (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। **आवृतम्** (आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम, वृत् = रहना, होना, चमकना, बोलना)। **अनु** (उपसर्ग)। **आवर्ते** (आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम, वृत् = वरण करना, चमकना, बोलना)।। 26।।

58. अग्ने गृहपते सुगृहपतिः त्वया, अग्ने अहम् गृहपतिना भूयासम्,
सु गृहपतिः त्वम् मया, अग्ने गृहपतिना भूयाः ।।
अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतम् हिमाः, सूर्यस्य आ वृतम् अनु आ वर्ते ।।27 ।।

संहितापाठ

अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेऽहं गृहपतिना भूयासꣳसुगृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने गृहपतिना भूयाः ।अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतꣳहिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ।।27 ।।

मन्त्रार्थ : अग्ने अग्ने! **गृहपते** गृहपति! **त्वया** तुम्हारे द्वारा **गृहपतिना** गृहपति द्वारा **अहम्** मैं **सुगृहपतिः** अच्छा गृहपति **भूयासम** हो जाऊँ। **अग्ने** अग्ने! **त्वम्** तुम **मया** मुझ **गृहपतिना** गृहपति द्वारा **सु गृहपतिः** अच्छे गृहपति **भूयाः** हो जाओ। **णौ** हम दोनों **गार्हपत्यानि** गृहकर्मों को **शतम्** सौ **हिमाः** शीतकाल (वर्षों) तक **अस्थूरि** करने वाले **सन्तु** हों। **सूर्यस्य** सूर्य के **आ वृतम्** प्रकाश को **अनु आ वर्ते** पूर्णतः वरण करूँ।

भावार्थ : अग्नि का अर्थ है ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, अग्रणी। इसका भाव परमात्मा या श्रेष्ठ व्यक्ति है। परमात्मा की उपासना से तथा तेजस्वी विद्वानों के मार्गदर्शन से हम अच्छे गृहस्थ बन सकते हैं। गृहस्थों के सहयोग से तेजस्वी विद्वान् भी अपने गृहकार्यों के लिए साधन प्राप्त कर सकते हैं। परस्पर सहयोग से गृहस्थ तथा तेजस्वी विद्वान्, ऋषि, संन्यासी सैकड़ों वर्षों तक कर्तव्य का निर्वाह कर सकते हैं।। 27।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : अग्ने (अग् = गति करना, आगे जाना)। **गृहपते** (गृह - लेना, स्वीकार करना, पत- श्री मान् होना, अमानवी पराक्रम करना)। **सुगृहपतिः** (सु = अच्छा, गृह - लेना, स्वीकार करना, पत- श्री मान् होना, अमानवी पराक्रम करना)। **त्वया** (सर्वनाम)। **अहम्** (सर्वनाम)। **गृहपतिना** (गृह - लेना, स्वीकार करना, पत- श्री मान् होना, अमानवी पराक्रम करना)। **भूयासम्** (भू = होना)। **सुगृहपतिः** (गृह - लेना, स्वीकार करना, पत- श्री मान् होना, अमानवी पराक्रम करना)। **त्वम्** (सर्वनाम)। **मया** (सर्वनाम)। **अस्थूरि** (अस् = फेंकना, बिखेरना, उड़ाना, स्था = ठहरना)। **णौ (नौ)** (सर्वनाम)। **गार्हपत्यानि** (गृह - लेना, स्वीकार करना, पत- श्री मान् होना, अमानवी पराक्रम करना)। **सन्तु** (अस् - होना)। **शतम्** (शत् - सौ)। **हिमाः** (हिम् = शीत)। **सूर्यस्य** (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। **आवृतम्** (आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम, वृत् = रहना, होना, वर्ताव करना, वरण करना, चमकना, बोलना)। **अनु** (उपसर्ग)। **आवर्ते** (आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम, वृत् = रहना, चमकना, बोलना, वरण करना)।। 27।।

59. अग्ने व्रतपते व्रतम् अचारिषम्, तत् अशकम् तत् मे अराधि इदम्।
अहम् यः एव अस्मि सो अस्मि ।।28 ।।

संहितापाठ

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीदमहं यऽएवाऽस्मि सोऽस्मि ।।28 ।।

मन्त्रार्थ : अग्ने अग्ने! **व्रतपते** व्रतपते **व्रतम्** व्रत का (मैंने) **अचारिषम्** पालन किया, **तत्** वह **अशकम्** कर सका, **तत्**

वह **मे** मेरा **इदम्** यह **अराधि** पूर्ण हुआ। **इदम्** यह **अहम्** मैं **यः** जो **एव** ही हूँ, **सो** वह **अस्मि** हूँ।

भावार्थ : परमात्मा की कृपा से व्रत पूर्ण हुआ। मैं तो वही हूँ, जो कुछ भी हूँ। भाव यह है कि परमात्मा के प्रति विश्वास तथा समर्पण की भावना बनी रहनी चाहिए। हमारी सीमित क्षमता जितनी भी है, हमें उसके अनुसार सत्कर्म का प्रयास करना चाहिए। परमात्मा की कृपा से वह पूर्ण होगा।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अग्ने (अग् - अगि = गति करना, आगे जाना)। **व्रतपते** (वृत् = रहना, होना, वर्ताव करना, वरण करना, चमकना, बोलना)। **व्रतम्** (वृत् = रहना, होना, वर्ताव करना, वरण करना, चमकना, बोलना)। **अचारिषम्** (चर् = जाना, खाना, आचरण करना)। **तत्** (सर्वनाम)। **अशकम्** (शक - सहना, सहन करना)। **मे** (सर्वनाम)। **अराधि** (रध् = पूरा करन)। **इदम्** (सर्वनाम)। **अहम्** (सर्वनाम)। **यः** (सर्वनाम)। **एव** (अव्यय)। **अस्मि** (सर्वनाम)। **सः** (सर्वनाम)।। 28 ।।

60. अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा, सोमाय पितृमते स्वाहा ।। अपहताः असुराः रक्षांसि वेदिषदः ।। 29 ।।

संहितापाठ

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा। अपहताऽअसुरा रक्षांसि वेदिषदः ।। 29 ।।

मन्त्रार्थ : कव्यवाहनाय विद्वानों का पालन करने वाले **अग्नये** अग्नि के लिए **स्वाहा** व्यापक हों। **पितृमते** पितृमान् **सोमाय** सोम के लिए **स्वाहा** व्यापक हों। **असुराः** प्राणवान् **रक्षांसि** रक्षक **वेदिषदः** विद्वान् **अपहताः** प्राप्त हुए।

भावार्थ : व्यापक दृष्टिकोण तथा विद्वानों का पालन महत्वपूर्ण है।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अग्नये (अग् = गति करना, आगे जाना)। **कव्यवाहनाय** (कु = शब्द करना, वह् = वहन करना, ले जाना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **सोमाय** (सु - उत्पन्न करना, अद्भुत सामर्थ, अमानवी पराक्रम होना)। **पितृमते** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **अपहताः** (अप = दूर, नीचे, अपकार, हन् = जाना, जानना, पाना, मारना, हिंसा करना)। **असुराः** (अस् होना, रहना)। **रक्षांसि** (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। **वेदिषदः** (विद् = जानना)।। 29 ।।

(16) सूक्त 8

61. ये रूपाणि प्रति मुञ्चमाना, असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति।।
परापुरः निपुरः ये भरन्ति, अग्निः तान् लोकात् प्रणुदाति अस्मात् ।। 30 ।।

संहितापाठ

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाऽसुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात्।30 ।।

मन्त्रार्थ : **ये** जो **रूपाणि** रूप को **प्रति मुञ्चमाना** छोड़ने वाले **असुराः** प्रक्षेपक (असुर, अस् = फेंकना) **स्वधया** स्वधा के साथ **सन्तः** सन्त **चरन्ति** विचरण करते हैं। **ये** जो **परापुरः** मुख्यतः **निपुरः** अग्रसर होकर **भरन्ति** धारण-पोषण करते हैं, **अग्निः** ऊर्ध्वगामी तेजस्वी (अग्नि) **तान्** उनको **अस्मात्** हमारी **लोकात्** लोक से **प्रणुदाति** प्रेरित करता है, दूर भेजता है।। 30 ।।

भावार्थ : परमात्मा की प्रेरणा से हम सज्जनों को प्रेरणा दें, उनका सहयोग कर उत्साह बढ़ायें।। 30 ।।

विशेष : असुर का अर्थ है फेंकने वाला अर्थात् संग्रह न करने वाला अपरिग्रही त्यागी। श्वास-प्रश्वास में वायु को फेंकने के कारण प्राण का पर्याय असुर भी होता है। अतः असुर का अर्थ प्राणवान् होता है। प्राण का प्रसार करने वाले प्राणदाता परमात्मा को भी वेद में असुर कहा गया है। इसी तरह मेघ का भावार्थ पर्याय भी असुर होता है। परमात्मा की प्रेरणा से हम सज्जनों को प्रेरणा दें, उनका सहयोग कर उत्साह बढ़ायें।। 30 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : ये (सर्वनाम)। **रूपाणि** (रूप - आकार बनाना, रचना करना, मन में रूपाकृति लाना)। **प्रति** (उपसर्ग)। **मुंचमानाः** (मुंच् = बोलना, कहना, छोड़ना, प्रसन्न होना, देना)। **असुराः** (अस् = फेंकना, सुर - अद्भुत सामर्थ्य अमानवी पराक्रम होना)। **सन्तः** (सन- सेवा करना, दान करना, सत्कार करना)। **स्वधया** (स्व = निज, अपना, धि - पास रखना या होना, युक्त होना)। **चरन्ति** (चर - जाना, खाना, आचरण करना)। **परापुरः** (पुर् = मुख्य होना, आगे जाना)।

निपुरः (पुर् = मुख्य होना, आगे जाना)। **भरन्ति** (भृ = धारण-पोषण करना, पूर्ण करना)। **अग्निः** (अग् - गति करना, आगे जाना)। **तान्** (सर्वनाम)। **लोकात्** (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। **प्रणुदाति** (प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक, णुद् - नुद् = प्रेरणा करना, भेजना, जाना)। **अस्मात्** (सर्वनाम)।। 30।।

62. अत्र पितरो मादयध्वम्, यथाभागम् आवृषायध्वम्।।
अमीमदन्त पितरो, यथाभागम् आवृषायिषत।।31।।

संहितापाठ

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्।अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत।।31।।

मन्त्रार्थ : अत्र यहाँ **पितरो** पितर **मादयध्वम्** आनन्द पायें। **यथाभागम्** भाग के अनुसार **आवृषायध्वम्** पराक्रम करें। **पितरो** पितरों ने **अमीमदन्त** वाणी से आनन्द प्रदान कर **यथाभागम्** भाग के अनुसार **आवृषायिषत** पराक्रम किया।

भावार्थ : पितर अर्थात् पालन करने वाले माता-पिता, आचार्य विद्वान् यहाँ आनन्द प्राप्त करें, पराक्रम करें, स्नेह सद्भाव की वर्षा करें। हम उन्हें सेवा-सहयोग से आनन्द दें तो उनका स्नेह मिलेगा ही। उन्होंने अपने भाग के अनुसार अर्थात् अपने हिस्से का पराक्रम कर दिया है, अब हम उनको सेवा से आनन्द दें, स्नेह पायें।। 31।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अत्र (सर्वनाम)। **पितरः** (पा = पालन करना)। **मादयध्वम्** (मद् = तृप्त करना, हर्षित होना)। **यथाभागम्** (भग्-भज् = देना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना)। **आवृषायध्वम्** (वृष् = पराक्रम करना, वर्षा करना)। **अमीमदन्त** (अम्न् = शब्द करना, बोलना, सेवा करना, खाना, जाना, जानना, पाना)। **आवृषायिषत** (वृष् = पराक्रमी होना, पराक्रम करना, विशिष्ट होना)।। 31।।

(17) सूक्त 9

63. नमो वः पितरः रसाय, नमो वः पितरः शोषाय।नमो वः पितरः जीवाय, नमो वः पितरः स्वधायै।
नमो वः पितरः घोराय, नमो वः पितरः मन्यवे।नमो वः पितरः, पितरो नमो वः, गृहान् नः पितरः दत्त।
सतो वः पितरः देष्म, एतत् वः पितरः वासः।।32।।

संहितापाठ

नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वासः।।32।।

मन्त्रार्थ : वः तुम सब **पितरः** पितरों को **रसाय** रस के लिए **नमो** नमन, **वः** तुम सब **पितरः** पितरों को **शोषाय** शुष्कता के लिए **नमो** नमन, **वः** तुम सब **पितरः** पितरों को **जीवाय** जीवन के लिए **नमो** नमन, **वः** तुम सब **पितरः** पितरों को **स्वधायै** स्वधा के लिए **नमो** नमन, **वः** तुम सब **पितरः** पितरों को **घोराय** घोर के लिए **नमो** नमन, **वः** तुम सब **पितरः** पितरों को **मन्यवे** मन्यु के लिए **नमो** नमन, **वः** तुम सब **पितरः** पितरों को **नमो** नमन, **वः** तुम सब **पितरः** पितरों को **नमो** नमन। **पितरः** पितरों ने **नः** हमको **गृहान्** घर दिये। **वो** तुम सब **पितरः** पितरों को (हम) **सतो** सत्य **देष्म** देते हैं। **एतत्** यह **वासः** वास (घर) **वः** तुम सब **पितरः** पितरों का (है)।

भावार्थ : पितर अर्थात् माता, पिता, आचार्य, विद्वान् हमें सब कुछ देते हैं। हम इसके लिए उनको नमन करते हैं, आदर-सत्कार, सम्मान करते हैं। हम उनको सत्य के पालन का विश्वास देते हैं और हम अपना घर उनको इस भावना के साथ समर्पित करते हैं कि इस घर में आपके संस्कारों का पालन होता रहेगा।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : नमः (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। **वः** (सर्वनाम)। **पितरः** (पा = पालन करना)। **रसाय** (रस् = चखना, प्यार करना, शब्द करना)। **शोषाय** (शुष् = सूखना, सुखाना)। **जीवाय** (जीव् = प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **स्वधायै** (स्व = अपना, धा = धारण, पोषण, रक्षण करना)। **घोराय** (घुर् = भयंकर होना, चमकना, घोर् = चतुराई से चलना)। **मन्यवे** (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना)। **गृहान्** (गृह्

= ग्रहण करना)। **नः** (अव्यय)। **दत्त** (दा, दद्, दत् = देना)। **सतः** (सत् = सत्य होना, अस्तित्व होना)। **देष्म** (दा, दद् = देना)। **एतत्** (सर्वनाम)। **वासः** (वस् = रहना, निवास करना)॥ 32॥

64. आ धत्त पितरः गर्भम्, कुमारम् पुष्कर-स्रजम्॥ यथा इह पुरुषः असत्॥ 33॥

संहितापाठ

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषोऽसत्॥ 33॥

मन्त्रार्थ : पितरः पितरों ने **पुष्कर-स्रजम्** पुष्ट रचना वाले **कुमारम्** कुमार को **गर्भम्** गर्भ में **आ धत्त** धारण किया **यथा** जिससे **इह** यहाँ **पुरुषः** पुरुष **असत्** हो जाये॥

भावार्थ : अच्छे संस्कार वाले स्वस्थ कुमार विद्वान् आचार्यों के संरक्षण में रहकर उत्तम मनुष्य बनते हैं॥ 33॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : आ-धत्त (धा = धारण करना)। **पितरः** (पा = पालन करना)। **गर्भम्** = गर्भ में (गृ = सींचना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना)। **कुमारम्** = कुमार को (कम्-कुम् = चाहना, इच्छा करना)। **पुष्कर-स्रजम्** (पुष्कर + स्रजम्, पुष् = पोषण करना, पालन करना, धारण करना, सृज् = रचना करना)। **यथा** (सर्वनाम)। **इह** (सर्वनाम)। **पुरुषः** (पुर् = मुख्य होना, अग्रसर होना)। **असत्** (अस् = होना)॥ 33॥

65. ऊर्जम् वहन्तीः अमृतम् घृतम्, पयः कीलालम् परिस्रुतम्॥ स्वधाः स्थ तर्पयत मे पितॄन्॥ 34॥

संहितापाठ

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयःकीलालं परिस्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्॥ 34॥

मन्त्रार्थ : ऊर्जम् ऊर्जा **वहन्तीः** वहन करने वाले, **अमृतम्** अमृत, **घृतम्** ज्योति, **कीलालम्** बाँध लेने वाले, **पयः** गतिशील, प्रवाहमान। **परिस्रुतम्** विद्वान्, **स्वधाः** आत्मनिर्भर **स्थ** हो। **मे** मेरे **पितॄन्** पितरों को **तर्पयत** तृप्त करो॥ 34॥

भावार्थ : पालन करने वाले विद्वान् अग्रज हमारे पूज्य पितर हैं। उनको तृप्त, सन्तुष्ट प्रसन्न रखना हमारा कर्तव्य है। ये हमारे पितर ऊर्जा देते हैं, वे अमृत ज्योति स्वरूप हैं। अपने इन गुणों से हमको सामाजिक एकता में बाँधे रहते हैं। वे विद्वान् हैं, स्वयम् को धारण करने वाले, आत्मतत्व को जानने वाले (स्वधा = स्व + धा, स्व = अपना, धा = धारण करना) हैं, और इस प्रेरणा से हमको भी आत्म-निर्भर बनाने वाले हैं। उनका सदा सम्मान करो॥ 34॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : ऊर्जम् (ऊर्ज् = बल होना, प्राणवान् होना)। **वहन्तीः** (वह् = वहन करना ले जाना)। **अमृतम्** (मृ = मरना)। **घृतम्** (घृ = सींचना, प्रकाशित होना)। **पयः** (पय् = जाना, बहना)। **कीलालम्** (कील् = बाँधना, कील लगाना, किल् = श्वेत होना, भेजना, खेलना)। **परिस्रुतम्** (स्रु = जाना, बहना, जानना, पाना)। **स्वधाः** (धा = धारण करना)। **स्थ** (अस् - हो)। **तर्पयत** (तृप् = तृप्त होना, तृप्त करना)। **मे** (सर्वनाम)। **पितॄन्** (पा = पालन करना)॥ 34॥

इति द्वितीयो अध्यायः

ॐ

तृतीयो अध्यायः

(18) सूक्त 1

66. सम् इधा अग्निम् दुवस्यत, घृतैः बोधयत अतिथिम् ॥ आ अस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ 1 ॥

संहितापाठ

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥

मन्त्रार्थ : सम् इधा सम्यक् प्रकाशमान **अग्निम्** ऊर्ध्वगामी विद्वान् की **दुवस्यत** सेवा करो। **अतिथिम्** सतत गतिशील को **घृतैः** अभिसिञ्चितों प्रकाशितों द्वारा **बोधयत** जानो, समझो। **आ अस्मिन्** इसमें **हव्या** दान योग्य का **जुहोतन** दान करो, आदान-प्रदान करो।

भावार्थ : विद्वानों की सेवा आवश्यक है। सतत गतिशील संसार तथा जीवन को विद्या से प्रकाशित विद्वानों से ही जाना जा सकता है। इस जीवन में, इस संसार में दान तथा ग्रहणयोग्य विचारों, वस्तुओं का दान तथा आदान-प्रदान करते रहना चाहिए॥ 1॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : समिधा (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति, इधा, इन्धी - इन्ध, प्रकाशित होना)। **अग्निम्** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **दुवस्यत** (दुवस् = सेवा करना)। **घृतैः** (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। **बोधयत** (बुध् = जानना, समझना)। **अतिथिम्** (अत् = सतत गमन करना, निरन्तर चलना)। **आस्मिन** (सर्वनाम)। **हव्या** (हु = देना, आदान-प्रदान करना)। **जुहोतन** (हु = देना आदि)॥ 1॥

67. सु सम् इद्धाय शोचिषे, घृतम् तीव्रम् जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥ 2 ॥

संहितापाठ

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥ 2 ॥

मन्त्रार्थ : **सु सम्** सम्यक् **इद्धाय** प्रकाशमान, **शोचिषे** पवित्रकर्ता **जातवेदसे** विद्वान् **अग्नये** अग्नि के लिए **तीव्रम्** तीव्र, स्थूल **घृतम्** प्रकाशमान को **जुहोतन** दान करो।

भावार्थ : अग्नि अर्थात् अग्रणी ऊर्ध्वगामी तेजस्वी परमात्मा तथा उसके उपासक विद्वान् भी सम्यक् प्रकाशमान, पवित्रकर्ता होते हैं। स्थूल अर्थात् सांसारिक भौतिक प्रकाशमान पदार्थों को अर्थात् जीवन की आवश्यकताओं, स्वाध्याय के साधनों तथा सुविधाओं का दान अग्नि स्वरूप परमात्मा के प्रति समर्पण भाव से उसके उपासक विद्वानों के लिए करते रहना चाहिए॥ 2॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : सुसमिद्धाय (सु = अच्छा, सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति, इद्धाय, इन्धी = प्रकाशित होना)। **शोचिषे** (शुच् = पवित्र होना, पवित्र करना)। **घृतम्** (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। **तीव्रम्** (तीव् = मोटा, स्थूल होना)। **जुहोतन** (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। **अग्नये** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **जातवेदसे** (जन् = उत्पन्न होना, विद् = जानना)॥ 2॥

68. तम् त्वा सम् इद्भिः अंगिरो, घृतेन वर्द्धयामसि । बृहत् शोचा यविष्ठ्य ॥ 3 ॥

संहितापाठ

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ 3 ॥

मन्त्रार्थ : अंगिरो हे अंगिरः (गतिशील विद्वान्) **तम्** उस **त्वा** तुमको **सम् इद्भिः** सम्यक् प्रकाशमानों द्वारा **घृतेन** अभिसिञ्चन द्वारा **वर्द्धयामसि** बढ़ाते हैं। **यविष्ठ्य** अत्यधिक मिलाने व अलग करने योग्य **बृहत्** बृहत् **शोचा** शुद्ध करो, पवित्र करो।

भावार्थ : अंगिरः का भावार्थ परमात्मा तथा उपासक विद्वान् है। उसे प्रकाशमान लोग अभिसिञ्चन कर बढ़ा सकते हैं। सिंचाई से पौधे बढ़ते हैं, उसी तरह साधन तथा साधना से उपासना और विद्वान् बढ़ते हैं। यु धातु का अर्थ मिलाना तथा पृथक् करना दोनो ही है। उपासक विद्वान् अपने जीवन में मिलाने योग्य हैं तथा साधारणजनों से अलग दृष्टि भी उनके प्रति होनी चाहिए। वे समाज को पावन करते हैं।। 3 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : तम् (सर्वनाम)। **त्वा** (सर्वनाम)। **समिद्भिः** (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति, इदि-इन्द् = परम् ऐश्वर्य होना, इन्धी = प्रकाशमान होना)। **अंगिरः** (अंग् = चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। **घृतेन** (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। **वर्द्धयामसि** (वृध् = बढ़ना)। **बृहत्** (बृह = बड़ा होना)। **शोचा** (शुच् = शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना)। **यविष्ठ्य** (यु = मिलाना, अलग करना)।।

69. उप त्वा अग्ने हविष्मतीः, घृताचीः यन्तु हर्यत। जुषस्व सम् इधो मम ।। 4 ।।

संहितापाठ

उप त्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत। जुषस्व समिधो मम ।। 4 ।।

मन्त्रार्थ : हविष्मतीः दानी **घृताचीः** प्रकाशमान **अग्ने** अग्नि! **उप** समीप में **त्वा** तुम **यन्तु** पोषण, **हर्यत** प्रकाश करो। **मम** मेरे **सम् इधो** सम्यक् प्रकाश को **जुषस्व** सन्तुष्ट करो।

भावार्थ : दानी प्रकाशमान परमात्मा या उपासक के निकट पोषण और प्रकाश प्राप्त होता है। उपासक की इच्छाएँ (हर्य् = इच्छा करना) भी प्रकाश के लिए होती हैं, समाज के हित में होती हैं। परमात्मा उन इच्छाओं को सन्तुष्ट करता है।। 4 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : उप (उपसर्ग)। **त्वा** (सर्वनाम)। **अग्ने** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **हविष्मतीः** (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। **घृताचीः** (घृ = सींचना, प्रकाशित करना)। **यन्तु** (यम् = रोकना, स्वाधीन रखना, पोषण करना)। **हर्यत** (हर्य् = प्रकाशित होना)। **जुषस्व** (जुष् = विचार करना, सन्तुष्ट करना)। **समिधः** (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति, इन्धी = प्रकाशित करना, होना)। **मम** (सर्वनाम)।। 4 ।।

(19) सूक्त 2

70. भूः भुवः स्वः, द्यौः इव भूम्ना, पृथिवी इव वरिम्णा ।।
तस्याः ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठे, अग्निम् अन्नादम् अन्नाद्याय आ दधे ।। 5 ।।

संहितापाठ

भूर्भुवः स्वर् द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ।। 5 ।।

मन्त्रार्थ : भूः भू **भुवः** भुवः **स्वः** स्वः **द्यौः** प्रकाश के **इव** समान **भूम्ना** होने वाले (तथा) **पृथिवी** पृथिवी के **इव** समान **वरिम्णा** वरणयोग्य (हैं)। **ते** तुम्हारे **तस्याः** उस **देवयजनि** देवयजन वाली **पृथिवि** पृथ्वी के **पृष्ठे** तल पर **अन्नाद्याय** खाद्यान्न के लिए **अन्नादम्** अन्नदाता (तथा) अन्नसेवी **अग्निम्** अग्नि को **आ दधे** धारण करते हैं।

भावार्थ : अग्नि अर्थात् परमात्मा तथा उपासक अन्न का सेवन करने वाले तथा देने वाले हैं। उनको पृथ्वी पर धारण करना सबके लिए हितकर है। भूः, भुवः, स्वः का धातुज शब्दार्थ अभी विद्वानों के शोध का विषय है।।। 5 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : भूः (भू = होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना)। **भुवः** (भू = होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना)। **स्वः** (स्वर् = शब्द करना, सु = उत्पन्न करना)। **द्यौः** (द्यु, द्यौ = आगे जाना, प्रकाश होना)। **इव** (अव्यय)। **भूम्ना** (भू = होना)। **पृथिवी** (पृथृ -व्याप्त होना, विस्तार होना, फैलना)। **वरिम्णा** (वृ = वरण करना, पालन करना)। **तस्याः** (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **देवयजनि** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **पृष्ठे** (पृष = जाना, सरल होना)। **अग्निम्** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **अन्नादम्** (अद् = खाना)। **अन्नाद्याय** (अन्न + अद्याय)। **आदधे** (दध - धारण करना, पालन करना)।। 5 ।।

71. आ अयम् गौः पृश्निः अक्रमीत्, असदन् मातरम् पुरः। पितरम् च प्रयन् स्वः ।। 6 ।।

संहितापाठ

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः।पितरं च प्रयन्त्स्वः॥

मन्त्रार्थ : अयम् यह **गौः** गतिशील, **पृश्निः** सहनशील, सींचने वाला, **अक्रमीत्** चला, (विचरण किया अथवा पराक्रम किया)। **पुरः** पहले **मातरम्** माता के पास **असदन्** गया। **च** और **पितरम्** पिता के पास **प्रयन्** जाते हुए **स्वः** ऐश्वर्य को **अक्रमीत्** गया (पाया)।

भावार्थ : माता-पिता का सम्मान करते हुए शुभ गुणों को अपनाने वाला ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। 6॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : आयम् (सर्वनाम)। **गौः** (गम्, गा = जाना)। **पृश्निः** (पृश्, पृष् = सींचना, सहन करना)। **अक्रमीत्** (क्रम् = जाना, बढ़ना, रक्षा करना, जानना, पाना)। **असदन्** (सद् = जाना)। **मातरम्** (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करन)। **पुरः** (पुर् = आगे जाना)। **पितरम्** (पा = पालन करना)। **च** (अव्यय)। **प्रयन्** (या = जाना)। **स्वः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)॥ 6॥

72. अन्तः चरति रोचना अस्य प्राणात् अपानती।वि अख्यन् महिषो दिवम्॥7॥

संहितापाठ

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती।व्यख्यन् महिषो दिवम्॥

मन्त्रार्थ : रोचना प्रकाश **प्राणात्** प्राण से **अपानती** अपान तक **महिषो** पूजित, सम्मानित **दिवम्** प्रकाशमान को **वि अख्यन्** कहता हुआ **अन्तः** भीतर **चरति** विचरण करता है।

भावार्थ : प्राण अर्थात् चेतना शक्ति तथा ऊर्ध्वगामी श्वास-प्रश्वास से अपान अर्थात् अधोगामी वायु तक शरीर में व्याप्त पंच प्राणों के भीतर परमपिता परमात्मा का दिव्य प्रकाश ही विचरण करता है। वह दिव्य स्तुतियों का व्याख्यान भी करता है। अर्थात् पंच प्राण के संचरण के साथ परमात्मा की स्तुति करते रहें॥ 7॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। **चरति** (चर - जाना, आचरण करना)। **रोचना** (रुच् = रुचना, प्रकाशित होना)। **अस्य** (सर्वनाम)। **प्राणात्** (अन- चेतन होना, जीवन होना)। **अपानती** (अप - पालन करना, अन - जीना, समर्थ होना, जाना)। **व्यख्यन्** (वि + अख्यन्, ख्या = कहना, व्याख्यान करना)। **महिषो** (महि = पूजा करना, सम्मान करना)। **दिवम्** (दिव् = प्रकाशित होना, स्तुति करना)॥ 7॥

73. त्रिंशत् धाम वि राजति, वाक् पतङ्गाय धीयते।प्रति वस्तोः अह द्युभिः॥8॥

संहितापाठ

त्रिꣳशद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते।प्रति वस्तोरह द्युभिः॥

मन्त्रार्थ : त्रिंशत् तीस **धाम** धाम **वि राजति** प्रकाशित होता है। **पतङ्गाय** ऐश्वर्य के लिए **वाक्** वाणी **धीयते** धारण करता है। **प्रति** प्रति (प्रत्येक या सभी) **वस्तोः** प्रातःकाल **द्युभिः** प्रकाश द्वारा **अह** व्यापक हो।

भावार्थ : तीस धाम का आशय मानव जीवन या शरीर ही प्रतीत होता है। तीस संख्या से किन गुणों आदि का संकेत है, यह विचारणीय है। हमारी वाणी ही ऐश्वर्य तथा यश का कारण होती है। वाणी में स्नेह, मधुरता हो, स्तुति करें, वेदमन्त्रों का पाठ तथा स्वाध्याय करें तो प्रत्येक प्रभात प्रकाश से व्याप्त होगा। प्रातःकाल सूर्य का प्रकाश तो फैलता ही है, उसी तरह परमात्मा की कृपा, आनन्द, उल्लास का प्रकाश भी व्यापक हो, यही भावना है॥ 8॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : त्रिंशत् (संख्या)। **धाम** (धा = धारण करना, पोषण करना)। **विराजति** (राज् = प्रकाशित होना, शोभित होना, चमकना)। **वाक्** (वच, वद - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। **पतंगाय** (पत् = ऐश्वर्य होना)। **धीयते** (धी = धारण करना)। **प्रति** (उपसर्ग)। **वस्तोः** (वस्त = प्रातः)। **अह** (अह् = व्याप्त होना)। **द्युभिः** (द्युः = प्रकाश होना)॥ 8॥

(20) सूक्त 3

74. अग्निः ज्योतिः, ज्योतिः अग्निः स्वाहा॥सूर्यः ज्योतिः, ज्योतिः सूर्यः स्वाहा॥
अग्निः वर्चो, ज्योतिः वर्चः स्वाहा॥सूर्यः वर्चो, ज्योतिः वर्चः स्वाहा॥

ज्योतिः सूर्यः, सूर्यः ज्योतिः स्वाहा॥9॥

संहितापाठ

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥9॥

मन्त्रार्थ : अग्निः अग्नि **ज्योतिः** ज्योति (है), **ज्योतिः** ज्योति **अग्निः** अग्नि (है), **स्वाहा** व्यापक है। **सूर्यः** सूर्य **ज्योतिः** ज्योति (है), **ज्योतिः** ज्योति **सूर्यः** सूर्य (है), **स्वाहा** व्यापक है। **अग्निः** अग्नि **वर्चो** वर्चस् (है), **ज्योतिः** ज्योति **वर्चः** वर्चस् (है), **स्वाहा** व्यापक है। **सूर्यः** सूर्य **वर्चो** वर्चस् (है), **ज्योतिः** ज्योति **वर्चः** वर्चस् (है), **स्वाहा** व्यापक है। **ज्योतिः** ज्योति **सूर्यः** सूर्य (है), **सूर्यो** सूर्य **ज्योतिः** ज्योति (है) **स्वाहा** व्यापक है।

भावार्थ : वर्चः का भाव आध्यात्मिक प्रकाश, चेतन शक्ति है। जो भी प्रकाश हमें तेजस्वी विद्वान्, उपासक, ज्योति, सूर्य, अग्नि आदि के रूप में मिलता है वह वास्तव में परमात्मा की चेतना शक्ति ही है॥9॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अग्निः (अग् = ऊर्ध्वगामी होना, जानना, पाना)। **ज्योतिः** (ज्युत - चमकना, प्रकाशित होना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **सूर्यः** (सुर - अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना)। **वर्चः** (वर्च = प्रकाशित होना)॥9॥

75. सजूः देवेन सवित्रा, सजूः रात्र्या इन्द्रवत्या॥जुषाणो अग्निः वेतु स्वाहा॥
सजूः देवेन सवित्रा, सजूः उषसा इन्द्रवत्या॥जुषाणः सूर्यः वेतु स्वाहा॥10॥

संहितापाठ

सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या। जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा। सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या। जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा॥10॥

मन्त्रार्थ : सजूः विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला (उपासक) **देवेन** देव (तेजस्वी विद्वान्) द्वारा **सवित्रा** सृजनकर्ता ऐश्वर्यवान् (सविता) द्वारा, **सजूः** विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला (उपासक) **रात्र्या** रात्रि द्वारा **इन्द्रवत्या** परम ऐश्वर्यशाली (इन्द्रवती) द्वारा **जुषाणो** विचारशील, सेवाभावी **अग्निः** अग्निः, **ऊर्ध्वचेता** विद्वान् **वेतु** जानें, व्याप्त हों, **स्वाहा** व्यापक हो। **सजूः** विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला (उपासक) **देवेन** तेजस्वी विद्वान् द्वारा **सवित्रा** सृजनकर्ता ऐश्वर्यवान् (सविता) द्वारा, **सजूः** विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला **उषसा** उषा द्वारा **इन्द्रवत्या** परम ऐश्वर्यशाली द्वारा **जुषाणो** विचारशील, सेवाभावी **सूर्यः** ऐश्वर्यशाली, प्रकाशवान्, सूर्य **वेतु** जानें, व्याप्त हों **स्वाहा** व्यापक हो।

भावार्थ : सृजन की तेजस्विता से विचारशील सेवाभावी, परम ऐश्वर्यवान् रात्रि से विचारशील, सेवाभावी, विचारपूर्वक सेवा करता हुआ ऊर्ध्वगामी विद्वान् व्यापक हो, आत्मविस्तार करे। सृजन की तेजस्विता से विचारशील सेवाभावी परम ऐश्वर्यवान् उषा से विचारशील सेवाभावी, विचारपूर्वक सेवा करता हुआ ऐश्वर्य प्रकाशयुक्त व्यापक हो, आत्मविस्तार करे॥10॥

विशेष : दिन-रात रचनात्मकता, चिन्तनशीलता, सेवाभावना जैसे सद्गुणों को धारण किये रहें, व्यापक दृष्टिकोण अपनायें, आत्मविस्तार करें तो ऐश्वर्यवान् भी बने रहेंगे। भौतिक ऐश्वर्य के बिना भी दिव्य ऐश्वर्य पाकर जीवन में सुख-शान्ति पा सकते हैं॥10॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : सजूः (संज्-सज् = गले लगाना, सम्बन्धी होना, स + जूः, जुष् = विचार करना, सेवा करना, प्रसन्न करन)। **देवेन** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना)। **सवित्रा** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना) **। रात्र्या** (रा - देना, मिल जाना)। **इन्द्रवत्या** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **जुषाणः** (जुष् = विचार करना, सेवा करना)। **अग्निः** (अग् = ऊर्ध्वगामी होना, जानना, पाना)। **वेतु** (वे = बुनना, वी-वे = जाना, जानना, व्याप्त होना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्यापक होना)। **उषसा** (उषस् = प्रभात होना)॥10॥

76. उप प्रयन्तो अध्वरम्, मन्त्रम् वोचेम अग्नये। आरे अस्मे च शृण्वते॥11॥

संहितापाठ

उपप्रयन्तोऽअध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये।आरेऽअस्मे च शृण्वते॥11॥

मन्त्रार्थ : अध्वरम् अहिंसक अवर्णनीय के **उप** समीप **प्रयन्तो** जाते हुए **अग्नये** अग्नि (ऊर्ध्वगामी विद्वान्) के लिए **च** और **अस्मे** हमारे **आरे** सम्यक् दानी विद्वान् **शृण्वते** श्रोता के लिए **मन्त्रम्** मन्त्र को **वोचेम** हम उच्चारित करें।

भावार्थ : परमात्मा की उपासना करते हुए दानी श्रोताओं के लिए मन्त्र का उच्चारण करने का निर्देश है। उपासना के समय परमात्मा से सज्जनों, विद्वानों के लिए प्रार्थना करें तथा वेदमन्त्रों का पाठ स्वाध्याय करें॥ 11॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : उप (उपसर्ग)। **प्रयन्तो** (या = जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। **अध्वरम्** (ध्वृ = वर्णन करना, हिंसा करना)। **मन्त्रम्** (मन्त्र = गुप्त भाषण करना)। **वोचेम** (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना)। **अग्नये** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **आरे** (रि = जानना, पाना)। **अस्मे** (सर्वनाम)। **च** (अव्यय)। **शृण्वते** (श्रु-शृण् = सुनना)॥ 11॥

77. अग्निः मूर्द्धा दिवः ककुत्, पतिः पृथिव्याः अयम्।अपाम् रेतांसि जिन्वति॥12॥

संहितापाठ

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम्।अपारेतासि जिन्वति॥

मन्त्रार्थ : अयम् यह **दिवः** प्रकाशमानों में **मूर्द्धा** उच्च, **पृथिव्याः** पृथिवी का **ककुत्** महान् **पतिः** स्वामी ऐश्वर्यवान् **अग्निः** अग्नि **रेतांसि** प्राणशक्ति का **जिन्वति** संचार करता है।

भावार्थ : अग्नि का भाव परमात्मा तथा उपासक विद्वान् दोनो है। दोनों ही सृष्टि तथा समाज में उच्च और उपयोगी स्थान रखते हैं॥ 12॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अग्निः (अग् = गति करना, आगे जाना)। **मूर्द्धा** (मूर्द्ध = उच्च होना)। **दिवः** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना)। **ककुत्** (कक् = गर्व करना)। **पतिः** (पत् = ऐश्वर्य होना)। **पृथिव्याः** (पृथृ - व्याप्त होना, विस्तार करना, फैलना)। **अयम्** (सर्वनाम)। **अपाम्** (अप -पालन करना)। **रेतांसि** (रि = जाना, जानना, पाना)। **जिन्वति** (जिन्व् = सन्तुष्ट करना, प्रकाशित होना, बोलना)॥ 12॥

(21) सूक्त 4

78. उभा वाम् इन्द्राग्नी आहुवध्या, उभा राधसः सह मादयध्यै॥
उभा दातारौ इषाम् रयीणाम्, उभा वाजस्य सातये हुवे वाम्॥13॥

संहितापाठ

उभा वामिन्द्राग्नीऽआहुवध्याऽउभा राधसः सह मादयध्यै।उभा दातारविषारयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम्॥13॥

मन्त्रार्थ : इन्द्राग्नी हे इन्द्र और अग्नि! **उभा वाम्** तुम दोनों को **आहुवध्या** आह्वान करते हैं। **उभा** दोनों **राधसः** वृद्धि के **सह** साथ **मादयध्यै** प्रसन्न हों। **उभा** दोनों **दातारौ** दानी **इषाम्** ईष्ट **रयीणाम्** विद्या गतिशीलता के लिए, **वाजस्य** सिद्धि की **सातये** सतत गतिशीलता के लिए **उभा वाम्** तुम दोनों को **हुवे** आह्वान करते हैं।

भावार्थ : इन्द्र और अग्नि के साथ उपासना ईष्ट सिद्धि प्रदायक है। इन्द्र का अर्थ परम ऐश्वर्यवान् तथा अग्नि का अर्थ अग्रगामी ऊर्ध्वगामी है। ऐश्वर्य तथा ऊर्ध्वगति का संयोग सफलता का कारक है। संसाधनों के साथ उच्च भावना तथा गतिशीलता अर्थात् सक्रिय कर्मशीलता हो तो कार्य सिद्ध होते हैं॥ 13॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : उभा (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना)। **वाम्** (सर्वनाम)। **इन्द्राग्नी** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **आहुवध्या** (ह्वे = शब्द करना, बुलाना)। **राधसः** (राध् = पूरा करना, बढ़ना)। **सह** (सर्वनाम)। **मादयध्यै** (मदी-माद् = हर्ष होना)। **दातारौ** (दा - देना)। **इषाम्** (इष् = जाना, जानना, पाना)। **रयीणाम्** (रय् = जाना, जानना, पाना)। **वाजस्य** (वज् = जाना, जानना)। **सातये** (स + अत् = सतत् गति करना)। **हुवे** (ह्वे = शब्द करना, बुलाना)॥ 13॥

79. अयम् ते योनिः ऋत्वियो, यतो जातो अरोचथा॥
तम् जानन् अग्ने आ रोह, अथा नो वर्द्धया रयिम्॥

संहितापाठ

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः। तं जानन्नग्नऽआरोहाथा नो वर्द्धया रयिम्॥14॥

मन्त्रार्थ : अयम् यह **ते** तुम्हारे लिए **ऋत्वियो** ऋतु-सम्बन्धी **योनिः** बन्ध है **यतो** जिससे **अरोचथा** प्रकाश **जातो** उत्पन्न हुआ। **अग्ने** हे अग्नि! **तम्** उसको **जानन्** जानते हुए **आ रोह** ऊपर चढ़ो, **अथा** अब **नो** हमारे लिए **रयिम्** विद्या को **वर्द्धया** बढ़ाओ।

भावार्थ : ऊर्ध्वचेता विद्वान् (अग्नि) के लिए प्रकाश को उत्पन्न करने वाला ही ऋतुबन्ध है। ऋतु के अनुसार उसी प्रकाशजनक के बन्धन में रहो अर्थात् सभी ऋतुओं में यथोचित उपासना करते रहें। इस प्रकाश के मूल परमात्मा को जानते हुए उपासना करने से उन्नति करें तथा समाज में विद्या का प्रसार करें॥ 14॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अयम् (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **योनिः** (युञ् = बन्धन होना)। **ऋत्वियो** (ऋ = जाना, जानना, ऋतु)। **यतः** (सर्वनाम)। **जातः** (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **अरोचथा** (रुच् = प्रकाश होना)। **तम्** (सर्वनाम)। **जानन्** (ज्ञा - जानना, समझना)। **अग्ने** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **आरोह** (रुह् = ऊपर चढ़ना)। **अथा** (अव्यय)। **नो** (नः) (सर्वनाम)। **वर्द्धया** (वृध - बढ़ना)। **रयिम्** (रय् = जाना, जानना, पाना)॥ 14॥

80. अयम् इह प्रथमः धायि धातृभिः, होता यजिष्ठो अध्वरेषु ईड्यः।
यम् अप्नवानो भृगवो वि रुरुचुः, वनेषु चित्रम् विभ्यम् विशेविशे॥15॥

संहितापाठ

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः। यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे॥15॥

मन्त्रार्थ : अयम् यह **इह** यहाँ **अध्वरेषु** अहिंसकों में **ईड्यः** स्तुत्य **यजिष्ठो** यजनशील, **होता** दानी, **धातृभिः** धाताओं द्वारा **प्रथमः** पहले **धायि** धारण किया गया। **अप्नवानो** व्यापक **भृगवो** पोषकों ने **वनेषु** वाणी में **यम्** जिस **चित्रम्** चित्र (अद्भुत चेतना) को, **विभ्यम्** विशिष्ट चिन्तन को **विशेविशे** प्रत्येक कार्य में **वि रुरुचुः** प्रकाशित किया।

भावार्थ : परमात्मा उसके उपासक, उसकी वाणी वेद अहिंसक लोगों तथा अहिंसक कर्मों में स्तुत्य है। परपीडक हिंसक लोग परमात्मा की स्तुति उपासना नहीं कर सकते हैं, वे उपासक होने का दिखावा कर सकते हैं। इस भावना, उपासना को धारण करने वाले लोगों ने यहाँ अर्थात् इस जीवन में, इस संसार में पहले धारण किया है। जीवन की सफलता-सार्थकता के लिए परमात्मा को तथा उपासना को सबसे पहले धारण करें। वह यजनशील दानी है, हमें भी देवपूजा, संगतिकरण, दान को जीवन में अपनाना है। उस अद्भुत चेतना, विशिष्ट चिन्तन को व्यापक भावना वाले, समाज का पोषण करने वाले लोगों ने वाणी में और प्रत्येक कर्म में प्रकाशित किया है। चित् धातु का अर्थ चेतन होना तथा चित्र धातु का अर्थ चित्रीकरण या चित्र बनाना भी है। देवचित्र तथा भावचित्र हमें सद्प्रेरणा देते हैं। सद्गुणों को वाणी से व्यक्त करें, लोगों को प्रेरणा दें तथा प्रत्येक कार्य में भी वे सद्गुण प्रकाशित हों, तभी प्रभाव पड़ेगा॥ 15॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अयम् (सर्वनाम)। **इह** (सर्वनाम)। **प्रथमः** (संख्या)। **धायि** (धा = धारण करना)। **धातृभिः** (धा = धारण करना)। **होता** (हु = दान करना)। **यजिष्ठः** (यज् = देवपूजा, संगतिकरण)। **अध्वरेषु** (वृ-ध्वर् = हिंसा करना)। **ईड्यः** (ईड् = स्तुति करना)। **यम्** (सर्वनाम)। **अप्नवानः** (आप् = व्याप्त होना)। **भृगवः** (भृ = भरण-पोषण)। **वि** (उपसर्ग)। **रुरुचुः** (रुच् = प्रकाशित होना)। **वनेषु** (वन् = शब्द करना, सेवा करना)। **चित्रम्** (चित्र् = चित्र बनाना)। **विभ्यम्** (भू = चिन्तन करना)। **विशेविशे** (शेव - कार्य करना, सेवा करना)॥ 15॥

81. अस्य प्रत्नाम् अनु द्युतम्, शुक्रम् दुदुह्रे अह्रयः॥पयः सहस्रसाम् ऋषिम्॥16॥

संहितापाठ

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रेऽअह्रयः। पयः सहस्रसामृषिम्॥

मन्त्रार्थ : अह्रयः व्यापकों ने **अस्य** इसके **शुक्रम्** पवित्र **प्रत्नाम्** प्रसिद्ध **द्युतम्** प्रकाश के **सहस्रसाम्** हजारों **पयः**

प्रवाह **ऋषिम्** ऋषि का **दुदुह्रे** दोहन किया।

भावार्थ : परमात्मा का प्रसिद्ध पवित्र प्रकाश हजारों प्रवाहों के रूप में सर्वत्र व्याप्त है। वही मूलतः ऋषि है। व्यापक दृष्टिकोण वाले लोग उसका दोहन कर पाते हैं। वह संकीर्ण स्वार्थी लोगों को उपलब्ध नहीं हो पाता है। ऋषि शब्द का अर्थ है गति। जो परमात्मा की परम चेतना में सहज स्वाभाविक गति वाले उपासक हैं, वे ही ऋषि कहे जाते हैं। इसी ऋषि भाव का दोहन करना है, प्राप्त करना है, अपनाना है॥ 16॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अस्य (सर्वनाम)। **प्रत्नाम्** (प्रथ् = प्रसिद्ध होना)। **अनु** (उपसर्ग)। **द्युतम्** (द्युत् = प्रकाशित होना)। **शुक्रम्** (शुच्, शुध् = शुद्ध होना, पवित्र होना)। **दुदुह्रे** (दुह् = दुहना)। **अह्रयः** (अह् = व्यापक होना)। **पयः** (पय् = जाना, जानना, पाना)। **सहस्रसाम्** (सहस्र = हजार)। **ऋषिम्** (ऋष - जाना, पाना, जानना)॥ 16॥

(22) सूक्त 5

82. तनूपा अग्ने असि तन्वम् मे पाहि, आयुर्दाः अग्ने असि आयुः मे देहि॥
वर्चोदाः अग्ने असि वर्चः मे देहि, अग्ने यत् मे तन्वाः ऊनम् तत् मे आ पृण॥ 17॥

संहितापाठ

तनूपाऽअग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दाऽअग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदाऽअग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण॥

मन्त्रार्थ : अग्ने हे अग्नि! **तनूपा** विस्तार, वृद्धि के पालनकर्ता **असि** हो, **मे** मेरे **तन्वम्** विस्तार की **पाहि** रक्षा करो। **अग्ने** हे अग्नि! **आयुर्दाः** आयुदाता **असि** हो, **मे** मुझे **आयुः** आयु **देहि** दो। **अग्ने** हे अग्नि! **वर्चोदाः** प्रकाश देने वाले **असि** हो, **मे** मुझे **वर्चः** प्रकाश **देहि** दो। **अग्ने** हे अग्नि! **मे** मेरे **तन्वाः** विस्तार, वृद्धि में **यत्** जो **ऊनम्** न्यूनता है, **तत्** उसे **मे** मेरे लिए **आ पृण** पूर्ण करो।

भावार्थ : जीवन में विस्तार, आयु, प्रकाश महत्वपूर्ण है। विस्तार, व्यापकता की न्यूनता दूर हो जाये तो जीवन में सफलता मिलना सरल हो जायेगा॥ 17॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : तनूपा (तनु = विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना, पा = पालन करना, रक्षा करना)। **अग्ने** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **असि** (अस् = होना)। **तन्वम्** (तनु = विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना)। **मे** (सर्वनाम)। **पाहि** (पा = पालन करना, रक्षा करना)। **आयुर्दाः** (अय-अयुस् जीवनम्)। **देहि** (दा = देना)। **आयुः** (अय-आयुस् - जीवनम्)। **वर्चोदाः** (वर्च् = प्रकाश होना, दा = देना)। **वर्चः** = प्रकाश (वर्च् = प्रकाश होना)। **यत्** (सर्वनाम)। **तन्वाः** (तनु = विस्तार करना)। **ऊनम्** (ऊन् = अल्प करना, घटाना, नापना, गिनना)। **तत्** (सर्वनाम)। **आपृण** (पृ = पूर्ण करना, तृप्त करना)॥ 17॥

83. इन्धानाः त्वा शतम् हिमा, द्युमन्तम् सम् इधीमहि। वयस्वन्तो वयस्कृतम्, सहस्वन्तः सहस्कृतम्॥
अग्ने सपत्नदम्भनम्, अदब्धासो अदाभ्यम्। चित्रावसो स्वस्ति, ते पारम् अशीय॥ 18॥

संहितापाठ

इन्धानास्त्वा शतꣳहिमा द्युमन्तꣳसमिधीमहि। वयस्वन्तो वयस्कृतꣳ सहस्वन्तः सहस्कृतम्। अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासोऽअदाभ्यम्। चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय॥ 18॥

मन्त्रार्थ : इन्धानाः प्रकाशित करने वाले **द्युमन्तम्** प्रकाशमान **त्वा** तुमको **शतम्** सौ **हिमा** हेमन्त तक **सम्** सम्यक् **इधीमहि** प्रकाशित करते हैं। **वयस्वन्तो** आयुष्मान् **वयस्कृतम्** आयुकर्ता को, **सहस्कृतम्** सहनशीलकर्ता को **सहस्वन्तः** सहनशील (इधीमहि सम्यक् प्रकाशित करते हैं) **अग्ने** हे अग्नि! **अदब्धासो** अहिंसक, अनिन्दक **अदाभ्यम्** अहिंसनीय अनिन्दनीय को (सम्यक् प्रकाशित करते हैं।) **ते** तुम्हारा **स्वस्ति** कल्याण **चित्रावसो** चित्रावसु (निश्चल चेतना) **पारम्** पार तक **अशीय** व्यापक करे।

भावार्थ : परमात्मा को तथा दिव्य सद्गुणों को सौ वर्षों तक जीवन में धारण करने की भावना है॥ 18॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : इन्धानाः (इन्ध् = प्रकाश होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **शतम्** (शत् - सौ)। **हिमा** (हिम - शीत होना)। **द्युमन्तम्** (द्युत् = चमकना, प्रकाशित होना)। **समिधीमहि** (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति, इन्धी = प्रकाश होना)। **वयस्वन्तः** (वयः = आयु)। **वयस्कृतम्** (वयः = आयु, कृ - करना)। **सहस्वन्तः** (सह् = सहन करना)। **सहस्कृतम्** (सह् = सहन करना, कृ - करना)। **अग्ने** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **सपत्नदम्भनम्** (पत् = ऐश्वर्य होना, निम्नगति करना, गिरना, दम्भ = निन्दा करना, आज्ञा करना, उड़ाना)। **अदब्धासः** (दभ = निन्दा करना, आज्ञा देना)। **अदाभ्यम्** (दभ = निन्दा करना, आज्ञा देना)। **चित्रावसो** (चित्र = चित्र बनाना, आश्चर्य करना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना, वसु = निश्चल होना)। **स्वस्ति** (अव्यय)। **ते** (सर्वनाम)। **पारम्** (पार - कार्य पूर्ण करना)। **अशीय** (अश् = व्याप्त होना)।।18।।

84. सम् त्वम् अग्ने सूर्यस्य वर्चसा, अगथाः सम् ऋषीणाम् स्तुतेन।।
सम् प्रियेण धाम्ना सम् अहम् आयुषा, सम् वर्चसा सम् प्रजया सम् रायस्पोषेण ग्मिषीय।।19।।

संहितापाठ

सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः समृषीणास्तुतेन। सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया सꣳरायस्पोषेण ग्मिषीय।।19।।

मन्त्रार्थ : अग्ने हे अग्ने! **त्वम्** तुम **सूर्यस्य** (ऐश्वर्यवान् प्रकाशमान) सूर्य के **वर्चसा** तेज से, **ऋषीणाम्** ऋषियों की **स्तुतेन** स्तुतियों से **अगथाः** प्राप्त हुए। **अहम्** मैं (तुमको) **प्रियेण** प्रिय **धाम्ना** धाम से, **आयुषा** आयु से, **वर्चसा** प्रकाश से, **प्रजया** प्रजा से, **रायस्पोषेण** गतिशीलता के पोषण से **ग्मिषीय** जानूँ, प्राप्त करूँ।

भावार्थ : अग्नि अर्थात् परमात्मा को आध्यात्मिक ऐश्वर्य तथा दिव्य ज्योति सम्पन्न ऋषियों की स्तुतियों से जाना और पाया जा सकता है। मनुष्य की साधना तथा क्षमता सीमित है। सामान्य मनुष्य को सम्यक् प्रिय धाम अर्थात् समुचित निवास स्थान, स्वस्थ जीवन, वर्चस् अर्थात् दिव्य आध्यात्मिक विद्या का प्रकाश, प्रजा अर्थात् सहयोगी परिजन, सक्रिय प्रयास के लिए समुचित संसाधन की आवश्यकता होती है। इनके सदुपयोग से उचित साधना-उपासना कर परमात्मा की कृपा से ही जीवन सफल हो सकता है।। 19 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : सम् (उपसर्ग)। **त्वम्** (सर्वनाम)। **अग्ने** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **सूर्यस्य** (सुर् = ऐश्वर्य, प्रकाश होना)। **वर्चसा** (वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। **अगथाः** (गम् = जाना)। **ऋषीणाम्** (ऋष - जाना, आना)। **स्तुतेन** (स्तु = स्तुति, पूजा, सेवा करना)। **प्रियेण** (प्री - प्रीति करना, दुलारना)। **धाम्ना** (धा - धारण करना, पहनना, पोषण करना, रक्षण करना)। **अहम्** (सर्वनाम)। **आयुषा** (आयुस् - जीवनम्)। **वर्चसा** (वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। **प्रजया** (जन - जन्म होना, उत्पन्न करना)। **रायस्पोषेण** (रय् - जाना, हिलना, पा- पालन करना, पोषण करना)। **ग्मिषीय** (गम् = जाना, जानन, पाना)।। 19 ।।

85. अन्धः स्थ अन्धो वो भक्षीय, मह स्थ महो वो भक्षीय,
ऊर्ज स्थ ऊर्जम् वो भक्षीय, रायस्पोष स्थ रायस्पोषम् वो भक्षीय।।20।।

संहितापाठ

अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीयोर्ज स्थोर्जं वो भक्षीय रायस्पोष स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय।।20।।

मन्त्रार्थ : अन्धः नेत्र बन्द करने में **स्थ** स्थित हो, **अन्धो** नेत्र मूँदने को **वो** तुम सबके लिए **भक्षीय** आत्मसात् करें। **मह** महानता में **स्थ** स्थित हो, **महो** महानता को **वो** तुम सबके लिए **भक्षीय** आत्मसात् करूँ। **ऊर्ज** ऊर्जा में **स्थ** स्थित हो, **ऊर्जम्** ऊर्जा को **वो** तुम सबके लिए **भक्षीय** आत्मसात् करूँ। **रायस्पोष** विद्यापोषण में **स्थ** स्थित हो, **रायस्पोषम्** विद्यापोषण को **वो** तुम सबके लिए **भक्षीय** आत्मसात् करूँ।

भावार्थ : परमात्मा को नेत्र बन्द कर ध्यान करने से अनुभव किया जा सकता है। वह महानता, ऊर्जा, विद्यापोषण में स्थित है। हम इन गुणों को केवल अपने लिए नहीं, सभी के लिए अपनायें। इन गुणों का भक्षण करने के लिए कहा गया है, अर्थात् जैसे भोजन का भक्षण कर हम उसे अपना शरीर का भाग बनाते हैं, उसी तरह गुणों को जीवन का अंग बना लें। ऐसा तुम सबके लिए करना है अर्थात् सबको परमात्मा का ही स्वरूप मानकर इन गुणों का लाभ समाज को देना है।।

20 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अन्धः (अन्ध् = अन्धा होना, आँख मूँदना)। **स्थ** (अस् - होना)। **वो** (सर्वनाम)। **भक्षीय** (भक्ष = खाना)। **महः** (मह- सम्मान करना, पूजा करना)। **ऊर्ज** (ऊर्ज - शक्तिमान होना, पराक्रमी होना)। **ऊर्जम्** (ऊर्ज - शक्तिमान होना, पराक्रमी होना)। **रायस्पोषः** (रय् = जाना, जानना, पाना, पुष् = पोषण करना)। **रायस्पोषम्** (रय् - जाना, हिलना, पा- पालन करना, पोषण करना)।। 20 ।।

(23) सूक्त 6

86. रेवती रमध्वम् अस्मिन् योनौ, अस्मिन् गोष्ठे, अस्मिन् लोके अस्मिन् क्षये।
इह एव स्त मा अप गात।।21 ।।

संहितापाठ

रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिँल्लोकेऽस्मिन् क्षये।इहैव स्त मापगात।।

मन्त्रार्थ : रेवती हे रेवती! **अस्मिन्** इस **योनौ** योनि में, **अस्मिन्** इस **गोष्ठे** गोष्ठी में, **अस्मिन्** इस **लोके** लोक में, **अस्मिन्** इस **क्षये** निवास में **रमध्वम्** रमो। **इह** यहाँ **एव** ही **स्त** रहो, **अप** दूर **मा** मत **गात** जाओ।

भावार्थ : रेवती शब्द का अर्थ गतिशील, विद्वान्, उड़ने, तैरने में समर्थ आदि होता है। इन गुणों से युक्त देवमानव समाज के लिए उपयोगी है। हमारी कामना है कि वह हमसे दूर न जाये। हमारे निवास, गोष्ठी, ग्राम, देश में ही रहे। विद्वान् सदाचारी लोगों को अपने निकट रखने का प्रयास करना चाहिए।। 21।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : रेवती (रिव् = उड़ना, तैरना, बहना)। **रमध्वम्** (रम् = रमना, क्रीडा करना)। **अस्मिन्** (सर्वनाम)। **योनौ** (यु = मिलाना, अलग करना)। **गोष्ठे** (गोष्ठ - मिलकर रहना, बटोरना)। **लोके** (लोक् = देखना)। **क्षये** (क्षि = निवास करना, जाना, जानना)। **इह** (सर्वनाम)। **एव** (अव्यय)। **स्त** (अस् - होना)। **मा** (अव्यय)। **अप** (उपसर्ग)। **गात** (गा - जाना, गमन करना)।। 21।।

87. सम् हिता असि विश्वरूपी, ऊर्जा मा आ विश गौ-पत्येन ।।
उप त्वा अग्ने दिवे दिवे, दोषावस्तः धिया वयम् ।। नमो भरन्तः एमसि ।। 22 ।।

संहितापाठ

सꣳहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन।उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।नमो भरन्तऽएमसि।।22 ।।

मन्त्रार्थ : **सम् हिता** संहिता (सम्यक् हित करने वाले अथवा सामूहिकताभावयुक्त) **असि** हो, **विश्वरूपी** विश्वरूपी **ऊर्जा** ऊर्जा को **गौ** वाणी के **पत्येन** ऐश्वर्य द्वारा **आ विश** प्रवेश कराओ, फैलाओ। **अग्ने** हे अग्नि परमात्मन्! **वयम्** हम **दिवे दिवे** प्रतिदिन **दोषावस्तः** प्रातः-सायम् अथवा दिन तथा रात्रि में **त्वा** तुम्हारे **उप** समीप **धिया** बुद्धि से **नमो** नमन करते हैं। तुम **भरन्तः** भरण **एमसि** करते हो।

भावार्थ : संहिता का भावार्थ परमात्मा तथा विद्वान् दोनों हैं। वाणी के ऐश्वर्य द्वारा सभी प्रकार की ऊर्जा को फैलाने की प्रार्थना है। हम प्रतिदिन प्रातः-सायम् परमात्मा के समीप बुद्धि से नमन करते हैं, अर्थात् बुद्धिपूर्वक परमात्मा की उपासना करते हैं। उपासना प्रातः-सायम् करनी चाहिए तथा बुद्धिपूर्वक करनी चाहिए एवम् प्रतिदिन करनी चाहिए। तीनों बातें महत्वपूर्ण हैं। प्रतिदिन नियमित उपासना आवश्यक है, किसी भी परिस्थिति में नियमितता बनी रहनी चाहिए। प्रातः-सायम् नियमपूर्वक उपासना करें, अन्यथा दिन में तथा रात में किसी भी समय दो बार अवश्य उपासना करें। सबसे महत्वपूर्ण है कि उपासना बुद्धिपूर्वक करें, अर्थात् परमात्मा के स्वरूप को, उपासना के विज्ञान को समझकर वेदमन्त्रों का अर्थ समझते हुए उपासना करें। यदि हम इस प्रकार उपासना करते हैं तो परमात्मा हमारा भरण-पोषण करता है। केवल आस्था-श्रद्धा-भावना से उपासना के नाम पर कुछ भी करते रहने से उसका पूरा लाभ नहीं मिल पाता है।। 22 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : संहिता (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति, हि = जाना, जानना, पाना, प्रेरणा करना)। **असि** (अस् - होना)। **विश्वरूपी** (रूप - बनाना, आकार बनाना, रचना करना)। **ऊर्जा** (ऊर्ज - शक्तिमान होना, पराक्रमी

होना, जीना, जिलाना)। **मा (माम्)** (सर्वनाम)। **आविश** (विश् = प्रवेश करना, फैलना)। **गौपत्येन** (गु = शब्द करना, पत् = ऐश्वर्य होना)। **उप** (उपसर्ग)। **त्वा** (सर्वनाम)। **अग्ने** (अग् - अगि = गति करना, आगे जाना)। **दिवे दिवे** (अव्यय)। **दोषावस्तः** (अव्यय)। **धिया** (धी = आधारे, अनादरे बुद्धि, प्रज्ञा होना)। **वयम्** (सर्वनाम)। **नमो** (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना)। **भरन्तः** (भृ = पूर्ण करना, भरना)। **एमसि** (इ - जाना, जानना, पाना, प्रेरित करना)॥ 22॥

88. राजन्तम् अध्वराणाम्, गोपाम् ऋतस्य दीदिविम्। वर्धमानम् स्वे दमे॥23॥

संहितापाठ

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्द्धमानस्वे दमे॥23॥

मन्त्रार्थ : अध्वराणाम् अहिंसक कार्यों में **राजन्तम्** प्रकोशमान, **गोपाम्** रक्षा करने वालों को **ऋतस्य** ऋत का **दीदिविम्** प्रकाश (प्रदान) करने वाले, **वर्धमानम्** वृद्धि करते हुए (परमात्मा) से **स्वे** अपने लिए (हम) **दमे** सन्धि करते हैं।

भावार्थ : परमात्मा का दिव्य तेज अहिंसक कार्यों में ही प्रकाशित होता है। अतः धर्म के नाम पर हिंसा महापाप है। परमात्मा पृथ्वी की रक्षा करने वाले लोगों को ऋत का प्रकाश देते हैं। ऋत कहते हैं सार्वभौम प्राकृतिक नियमों को। जिन नियमों के आधार पर सृष्टि का संचालन होता है, वे नियम ही ऋत हैं जैसे गुरुत्वाकर्षण आदि। जो लोग पृथ्वी की रक्षा करने वाले हैं, इन नियमों का ज्ञान उनके लिए ही है। ऋत के आधार पर ही विज्ञान का विकास होता है। ऋत तथा उसके आधार पर विकसित विज्ञान पृथ्वी के रक्षकों के लिए है। इसका ज्ञान उन्हें नहीं मिलना चाहिए जो इसका दुरुपयोग कर विनाश करना चाहते हैं। परमात्मा तो व्यक्त (प्रकट साकार) सृष्टि के रूप में निरन्तर वृद्धि कर रहा है। वृद्धि हमें भी करनी है, अतः हम परमात्मा से सन्धि कर लेते हैं, उससे जुड़ जाते हैं। दमे क्रिया की धातु दमु उपशमे है। अतः दमु धातु का अर्थ मुख्य उपशमन करना है। इसके अन्य अर्थ शान्त करना, दमन करना, जीतना, स्वाधीन करना तथा सन्धि करना भी है। स्वयम् को शान्त करना है, अपने दोषों का दमन करना है, दुर्गुणों को जीतना है तथा मन को दोषों-दुर्गुणों से स्वाधीन-मुक्त करना है तथा परमात्मा से तो सन्धि ही करना है जिससे दिव्य चेतना का लाभ हमें मिल सके॥ 23॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : राजन्तम् (राज् = चमकना, प्रकाशित-शोभित होना)। **अध्वराणाम्** (अ - नहीं, ध्वृ-ध्वर् = हिंसा करना, टेढ़ा करना, झुकाना, मार डालना, वर्णन करना)। **गोपाम्** (गुप् = रक्षा करना)। **ऋतस्य** (ऋत- गति करना, सञ्चालित करना)। **दीदिवम्** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **वर्धमानम्** (वृध - बढ़ना, अधिक होना)। **स्वे** (सर्वनाम)। **दमे** (दम् = सन्धि करना, दमन करना)॥ 23॥

89. स नः पितेव सूनवे, अग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥24॥

संहितापाठ

स नः पितेव सूनवेऽअग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥

मन्त्रार्थ : स वह (परमात्मा) **सूनवे** पुत्र के लिए **पितेव** पिता के समान ही **नः** हमारे लिए है। **अग्ने** हे अग्ने (गतिस्वरूप, परमात्मन्) **सूपायनो** सूपायन अर्थात् अच्छे उपाय (सद्ज्ञान के रूप में हमें प्राप्त होकर, समीप रहकर) **स्वस्तये** कल्याण के लिए **नः** हमको (उसमें) **सचस्वा** संयुक्त करो।

भावार्थ : परमात्मा हमारे लिए उसी तरह है जैसे सन्तान के लिए पिता। हम ऐसे परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि आप सद्ज्ञान, सदुपाय, सत् मार्ग के भण्डार के रूप में हमें प्राप्त हों जिससे हम भी सद्ज्ञान प्राप्त कर सकें। आप हमारे कल्याण के लिए हमारे निकट रहें तथा हमको उस सद्ज्ञान के भण्डार से संयुक्त करें॥ 24॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : स (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **पितेव** (पिता + इव, पा - रक्षा करना, पालन करना)। **सूनवे** (सू = जन्म देना)। **सूपायनो** (सु - सुन्दर, अच्छा, सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, अय = चलना, जाना, ध्वनि करना)। **भव** (भू = होना)। **सचस्वा** (सच - पूरा समझना, अच्छी तरह जानना, सम्बन्धी होना, संसर्गी होना)। **स्वस्तये** (सु - अच्छा, अस् - होना, स्वस्ति = कल्याण)॥ 24॥

(24) सूक्त 7

90. अग्ने त्वम् नो अन्तमः उत, त्राता शिवो भवा वरूथ्यः॥

वसुः अग्निः वसुश्रवा अच्छा, नक्षि द्युमत्तमम् रयिम् दाः ॥25॥

संहितापाठ

अग्ने त्वं नोऽअन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳरयिं दाः ॥25॥

मन्त्रार्थ : अग्ने हे अग्नि! **त्वम्** तुम **नो** हमारे लिए **अन्तमः** जीवनदाता, **त्राता** रक्षक, पालक, **शिवो** कल्याणकारी, **वरूथ्यः** वरणीय **भवा** हो। **वसुः** निश्चल, वासस्थान, दयालु, **अग्निः** ऊर्ध्वगामी, **वसुश्रवा** वसु को श्रवण करने वाला, निश्चलश्रुति, अच्छा श्रेष्ठ **नक्षि** गति, **द्युमत्तमम्** अतिशय अग्रगति **रयिम्** विद्या **दाः** प्रदान करो।

भावार्थ : अग्नि परमात्मा ही जीवनदाता, रक्षक तथा वरण करने योग्य है। उपासना से श्रेष्ठ विद्या, सद्गुण तथा सुख-साधन प्राप्त होते हैं॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अग्ने (अग् = गति करना, आगे जाना)। **त्वम्** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **अन्तमः** (अन् = प्राणवान् होना)। **उत** (अव्यय, निपात)। **त्राता** (त्रै = पालन करना, रक्षा करना, पोषण करना)। **शिवः** (शिव् = कल्याण करना)। **भव** (भू = होना)। **वरूथ्यः** (वृ = वरण करना)। **वसुः** (वस् = निवास करना, वसु = निश्चल होना, निःछल होना)। **अग्निः** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **वसुश्रवाः** (वसु = निश्चल होना, निःछल होना, श्रु = सुनना)। **अच्छा** (अच् - जाना, चलना, आदर करना, मांगना)। **नक्षि** (नक्ष = जाना, पहुँचना, जानना)। **द्युमत्तमम्** (द्यु = आगे जाना, समीप जाना)। **रयिम्** (रय् = जाना, जानना)। **दाः** (दा, दद् = देना)।॥25॥

(25) सूक्त 8

91. तम् त्वा शोचिष्ठ दीदिवः, सुम्नाय नूनम् ईमहे सखिभ्यः॥
सः नो बोधि श्रुधी हवम्, उरुष्या णो अघायतः समस्मात्॥26॥

संहितापाठ

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः।स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णोऽअघायतः समस्मात्।॥26॥

मन्त्रार्थ : शोचिष्ठ पवित्रतम **दीदिवः** तेजस्वी! **त्वा** तुमको **सखिभ्यः** मित्रों के **सुम्नाय** ऐश्वर्य के लिए **नूनम्** निश्चय ही **ईमहे** जानते हैं। **सः** वह **नो** हमको **उरूष्या** गतिशील **हवम्** दान के **बोधि** बोध को **श्रुधी** सुनाता है। **णो** हमको **अघायतः** पापों से **समस्मात्** घबराने नहीं देता।

भावार्थ : हम जानते हैं कि परमात्मा मित्रभाव वालों के लिए ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह हमें दान तथा उसकी गति का बोध कराता है। हमको पापों से घबराने नहीं देता। मित्रभाव तथा दान की प्रवृत्ति हो तो पाप के लिए कोई स्थान ही नहीं रहेगा, घबराने का अवसर ही नहीं आयेगा॥ 26॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : तम् (सर्वनाम)। **त्वा** (सर्वनाम)। **शोचिष्ठ** (शुच् = पवित्र करना)। **दीदिवः** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना)। **सुम्नाय** (सु = उत्पन्न कराना, ऐश्वर्य होना)। **नूनम्** (अव्यय)। **ईमहे** (ई = जाना, जानना, पाना, व्यापना)। **सखिभ्यः** (सख् = मित्र होना)। **सः** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **बोधि** (बुध् = जानना, समझना)। **श्रुधी** (श्रु = सुनना)। **हवम्** (हु = देना, आदान-प्रदान करना)। **उरूष्य** (उर् = चलना, जाना)। **णो (नः)** (सर्वनाम)। **अघायतः** (अघ् = पाप करना)। **समस्मात्** (सम् = न घबराना, परिणाम होना)॥ 26॥

92. इड आ इहि अदित आ इहि काम्या आ इत॥मयि वः कामधरणम् भूयात्॥27॥

संहितापाठ

इडऽएह्यदितऽएहि काम्याऽएत।मयि वः कामधरणं भूयात्॥27॥

मन्त्रार्थ : इड हे स्तुत्य! **आ इहि** आओ, **अदित** अविनाशी! **आ इहि** आओ, **काम्या** कामनाएँ **आ इहि** आओ। **मयि** मुझमें **वः** तुम सबके लिए **कामधरणम्** कामनाओं का धारण **भूयात्** हो।

भावार्थ : स्तुत्य अविनाशी परमात्मा को पुकारें, कामनाएँ पूर्ण होंगी। कामनाएँ सबके हित के लिए हों, केवल अपने स्वार्थ के लिए नहीं। 27॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : इड (ईड् = स्तुति करना)। **एहि** (आ + इहि, इ = जाना)। **अदित** (अ + दित्, अ - नहीं, अद् = खाना, दी = नष्ट होना)। **काम्याः** (कम - चाहना, इच्छा करना)। **एत** (इ = जाना, पाना)। **मयि** (सर्वनाम)। **वः** (सर्वनाम)। **कामधरणम्** (कम - चाहना, इच्छा करना)। **भूयात्** (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)।

93. सोमानम् स्वरणम् कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तम् यः औशिजः ॥28॥

संहितापाठ

सोमानस्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं यऽऔशिजः ॥28॥

मन्त्रार्थ : ब्रह्मणस्पते हे महान् ऐश्वर्यशाली! **यः** जो **औशिजः** प्रभातजन्य **कक्षीवन्तम्** गर्वित प्यासे (हैं), (उनको) **सोमानम्** सृजनशील, ऐश्वर्यशाली, प्रेरक, **स्वरणम्** उपदेशक **कृणुहि** करो (बनाओ)।

भावार्थ : जो प्रभातजन्य प्रकाशपुत्र हैं, उनको दिव्य विद्या, प्रकाश का गर्व तो है, साथ ही विद्या की प्यास भी है। वे सृजनशील, प्रेरक उपदेशक बनते हैं। अध्यात्म और विद्या का ऐश्वर्य उनको प्राप्त होता है॥ 28॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : सोमानम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। **स्वरणम्** (स्वृ = शब्द करना)। **कृणुहि** (कृ = करना)। **ब्रह्मणस्पते** (ब्रह् = बढ़ना, पत् = ऐश्वर्य होना)। **कक्षीवन्तम्** (कक् = गर्व करना, प्यास होना)। **यः** (सर्वनाम)। **औशिजः** (उषस् = प्रभात होना)॥ 28॥

94. यो रेवान् यो अमीवहा, वसुवित् पुष्टिवर्द्धनः ॥ सः नः सिषक्तु यः तुरः ॥29॥

संहितापाठ

यो रेवान् योऽअमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्द्धनः। स नः सिषक्तु यः तुरः ॥29॥

मन्त्रार्थ : यो जो **रेवान्** विद्वान् **यो** जो **अमीवहा** गति विद्या सेवा का वाहक, **वसुवित्** वसु को जानने वाला **पुष्टिवर्द्धनः** पुष्टि को बढ़ाने वाला, **यः** जो **तुरः** शीघ्रकारी (है), **सः** वह **नः** हमको **सिषक्तु** अभिसिञ्चित करें।

भावार्थ : मन्त्र में कहे गये गुणों से युक्त परमात्मा है तथा विद्वान् उपासक भी इन गुणों से युक्त होता है। हमारी कामना है कि वे हमें अभिसिञ्चित करें अर्थात् इन गुणों को हमें भी प्रदान करें॥ 29॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : यो (सर्वनाम)। **रेवान्** (रै = शब्द करना)। **अमीवहा** (अमि-अमी = सेवा करना, वह् = वहन करना, ले जाना)। **वसुवित्** (वसु = निश्चल, सीधा होना, वस् = आच्छादन, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना)। **पुष्टिवर्द्धनः** (पुष् = पुष्ट करना)। **सः** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **सिषक्तु** (षच्-सच् = सींचना, सेवा करना, अच्छी तरह जानना, सम्बन्धी होना)। **तुरः** (तुर् = शीघ्रता करना)॥ 29॥

95. मा नः शंसो अररुषो, धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य। रक्षा णो ब्रह्मणस्पते॥30॥

संहितापाठ

मा नः शꣳसोऽअररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य। रक्षा णो ब्रह्मणस्पते॥

मन्त्रार्थ : मर्त्यस्य मरणशील का **प्रणङ्** नमन, **शंसो** प्रशंसा **नः** हमारे लिए **अररुषो** विनाशकारी, **धूर्तिः** हिंसक **मा** न हो। **ब्रह्मणस्पते** महान् ऐश्वर्यवान् **णो** हमारी **रक्षा** रक्षा करें।

भावार्थ : मरणशील मनुष्य का कर्तव्य है कि वह विद्वान् उपासक के प्रति नमन् - प्रशंसा का भाव रखे। परन्तु विद्वान् उपासक जानता है कि लोगों की प्रशंसा अहंकार उत्पन्न कर सकती है तथा साधना से विचलित कर सकती है। अतः परमात्मा से प्रार्थना है कि वह हमारी रक्षा करें॥ 30॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : मा (माम्) (अव्यय, सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **शंसः** (शंसः = प्रशंसा करने वाला)। **अररुषः** (अरर् = आरे से काटना, नष्ट करना)। **धूर्तिः** (धूर् = हिंसा करना, गति करना)। **प्रणङ्** ((प्र + नम्) नम- नमस्कार करना, नमना)। **मर्त्यस्य** (मृ = मरना, देहत्याग करना)। **रक्षा** (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। **णो (नः)** (सर्वनाम)। **ब्रह्मणःस्पते** (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना)॥ 30॥

96. महि त्रीणाम् अवो अस्तु, द्युक्षम् मित्रस्य अर्यम्णः। दुराधर्षम् वरुणस्य॥31॥

संहितापाठ

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः।दुराधर्षं वरुणस्य॥31॥

मन्त्रार्थ : मित्रस्य मित्र, **वरुणस्य** वरुण, **अर्यम्णः** अर्यमन् **त्रीणाम्** तीनों का **दुराधर्षम्** दुर्जेय **द्युक्षम्** अग्र **महि** पूज्य **अवो** संरक्षण **अस्तु** हो।

भावार्थ : उपासक को परमात्मा की कृपा से मित्रों, सज्जनों, श्रेष्ठ लोगों का संरक्षण प्राप्त होता है जिससे उन्हें दुष्ट लोग हानि नहीं पहुँचा पाते हैं॥31॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : महि (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। **त्रीणाम्** (त्रि - तीन)। **अवः** (अव् = रक्षा करना)। **अस्तु** (अस् = होना)। **द्युक्षम्** (द्यु = आगे जाना, क्षि = क्षय होना, नष्ट होना, हिंसा करना, निवास करना, जाना, चलना, जानना, पाना)। **मित्रस्य** मिद- स्नेह करना, प्रीति करना)। **अर्यम्णः** (ऋ = जाना, पाना, मिलाना)। **दुराधर्षम्** (दुः = बुरा, अनुचित, कठिन, धृष् = जीतना)। **वरुणस्य** (वृ - पसन्द करना, नियोजित करना, वरण करना)॥31॥

97. न हि तेषाम् अमा चन, न अध्वसु वारणेषु।ईशे रिपुः अघशंसः॥32॥

संहितापाठ

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु।ईशे रिपुरघशꣳसः॥32॥

मन्त्रार्थ : **न हि** न ही **तेषाम्** उनकी **अमा** अतुल्य वाणी में **चन** ही (और) **न** न **अध्वसु** अकम्पन सेवा **वारणेषु** वरण में **अघशंसः** पापी **रिपुः** हिंसक **ईशे** अधिकार कर पाते हैं।

भावार्थ : अतुल्य मधुर वाणी तथा मन्त्रपाठ करने वालों पर, और अविचल अकम्पन सेवाभाव का वरण करने वालों पर पापी हिंसक अधिकार नहीं कर सकते हैं। हिंसक पापी लोगों तथा पाप और हिंसा की भावना से बचे रहने के लिए मन्त्रपाठ तथा स्वाध्याय, मधुर वाणी तथा सेवाभाव बनाये रखना चाहिए। 32॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : न (अव्यय)। **हि** (अव्यय)। **तेषाम्** (सर्वनाम)। **अमा** (अम् = गति, शब्द, सेवा करना)। **चन** (अव्यय)। **अध्वसु** (अ - नहीं, धू = कम्पन करना, अधु = चलना, विचरण करना)। **वारणेषु** (वृ = वरण करना)। **ईशे** (ईश - अधिकार होना)। **रिपुः** (रि = हिंसा करना, जानना)। **अघशंसः** (अघ् = पाप करना)॥32॥

98. ते हि पुत्रासो अदितेः, प्र जीवसे मर्त्याय।ज्योतिः यच्छन्ति अजस्रम्॥33॥

संहितापाठ

ते हि पुत्रासोऽअदितेः प्र जीवसे मर्त्याय।ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम्॥

मन्त्रार्थ : ते वे **हि** ही **अदितेः** अविनाशी के **पुत्रासो** पुत्र **मर्त्याय** मरणशील के **जीवसे** जीवन के लिए **अजस्रम्** निरन्तर **ज्योतिः** प्रकाश **यच्छन्ति** देते हैं।

भावार्थ : सभी प्राणी मरणशील हैं, सबकी मृत्यु होनी है। उनके जीवन के लिए ज्योति अर्थात् ऊर्जा, शक्ति, प्रेरणा, अविनाशी परमात्मा के पुत्र ही प्रदान करते हैं। परमात्मा के पुत्र उसके उपासक ऋषि ही हैं॥33॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : ते (सर्वनाम)। **हि** (अव्यय)। **पुत्रासः** (पु-पा रक्षा करना, पालन करना)। **अदितेः** (अ - नहीं, दी = नष्ट होना, ह्रास होना)। **प्रजीवसे** (जीव = जीना)। **मर्त्याय** (मृ = मरना, देहत्याग करना)। **ज्योतिः** (ज्युत - प्रकाशित होना)। **यच्छन्ति** (यच्छ = देना)। **अजस्रम्** (सर्वनाम, अव्यय)॥33॥

(26) सूक्त 9

99. कदा चन स्तरीः असि, न इन्द्र सश्चसि दाशुषे॥
उप उप इत् नु मघवन् भूयः, इत् नु ते दानम् देवस्य पृच्यते॥34॥

संहितापाठ

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।उपोपेन्नु मघवन् भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते॥34॥

मन्त्रार्थ : इन्द्र हे परम ऐश्वर्यवान्! **स्तरीः** आच्छादन, विस्तार **असि** हो। **कदा चन** कभी **दाशुषे** दानी के लिए **न**

नहीं **सश्चसि** जाते हो **मघवन्** हे मघवन्! **भूयः** पुनः **उप उप** निकट होकर **ते** तुम्हारे लिए (दिया गया) **दानम्** दान **देवस्य** देव-विद्वान् का **पृच्यते** स्पर्श करता है।

भावार्थ : परमात्मा परम ऐश्वर्यवान् सर्वव्यापी है। दानी के लिए वह स्वयम् नहीं खाता है और उसके लिए दिया गया दान भी दानी विद्वान् के निकट जाकर उसको ही प्राप्त होता है॥ 34॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : कदाचन (सर्वनाम)। **स्तरीः** (स्तृ = आच्छादित करना, विस्तार करना)। **असि** (अस् = होना)। **न** (अव्यय)। **इन्द्र** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **सश्चसि** (सश्च् = पाना, जानना, जाना)। **दाशुषे** (दा = देना)। **उप उप** (उपसर्ग)। **इत्** (अव्यय)। **नु** (निपात, अव्यय)। **मघवन्** (मघ् = धन होना)। **भूयः** (अव्यय)। **ते** (सर्वनाम)। **दानम्** (दा - देना, सौंपना)। **देवस्य** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना)। **पृच्यते** (पृच् = स्पर्श करना)॥ 34॥

100. तत् सवितुः वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ 35॥

संहितापाठ

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

मन्त्रार्थ : तत् उस **सवितुः** उत्पन्न करने वाले **वरेण्यम्** वरणीय **भर्गो** भरण पोषण करने वाले **देवस्य** देव का **धीमहि** ध्यान करते हैं, **धियो** धारण करते हैं। **यो** जो **नः** हमें **प्रचोदयात्** प्रेरणा दे।

भावार्थ : परमात्मा सबको उत्पन्न करने वाला है। वही वरण करने योग्य है। वही सृष्टि को धारण करता है, सबका भरण-पोषण करता है। हम उस देव का ध्यान कर उसे अपने हृदय में धारण करते हैं। हृदय में बसाया हुआ परमात्मा हमें प्रेरणा देता है। यदि परमात्मा को हृदय में धारण कर लें, उसे सदा अपने साथ अनुभव करते रहें तो हमें दिव्य आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त होती रहेगी और हमारे सभी कार्य सुचारु रूप से सही दिशा में होंगे॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : तत् (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु - उत्पन्न करना)। **वरेण्यम्** (वृ - पसन्द करना, वरण करना)। **भर्गो** (भृ = भरण, पोषण)। **देवस्य** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **धीमहि** (धि = धारण करना)। **धियो** (धि = धारण करना)। **यो** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **प्रचोदयात्** (चुद् = प्रेरणा देना)॥ 35॥

101. परि ते दूडभो रथो, अस्मान् अश्नोतु विश्वतः। येन रक्षसि दाशुषः॥ 36॥

संहितापाठ

परि ते दूडभो रथोऽस्माँऽश्नोतु विश्वतः। येन रक्षसि दाशुषः॥

मन्त्रार्थ : ते तुम्हारा **दूडभो** दुर्जेय **रथो** रथ **अस्मान्** हमको **परि** सब ओर **अश्नोतु** ले जाये **येन** जिससे **दाशुषः** दानियों की **रक्षसि** रक्षा करते हो।

भावार्थ : परमात्मा के रथ पर बैठकर हम कहीं भी जा सकते हैं, किसी भी लक्ष्य को पा सकते हैं। वह दुर्जेय है, परमात्मा के रथ को कौन जीत सकता है, कोई भी नहीं। उस रथ से दानियों की रक्षा होती है। हम दानी बनें तो परमात्मा का रथ हमारी रक्षा कर सकता है॥ 36॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : परि (उपसर्ग)। **ते** (सर्वनाम)। **दूडभः** (दू + डभः, दू = दुःख में जर्जर होना, दुःख देना)। **रथः** (रथ् = जाना, ले जाना)। **अस्मान्** (सर्वनाम)। **अश्नोतु** (अश् = पहुँचाना)। **विश्वतः** (सर्वनाम)। **येन** (सर्वनाम)। **रक्षसि** (रक्ष - रक्षण करना)। **दाशुषः** (दश् = देना)॥ 36॥

(27) सूक्त 10

102. भूः भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम्, सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः॥
नर्य प्रजाम् मे पाहि, शंस्य पशून् मे पाहि, अथर्य पितुम् मे पाहि॥ 37॥

संहितापाठ

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳसुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः। नर्य प्रजां मे पाहि शꣳस्य पशून् मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि॥ 37॥

मन्त्रार्थ : प्रजाभिः प्रजाओं-सन्तानों से **सुप्रजाः** अच्छे सन्तानवाले **वीरैः** वीरों से **सुवीरो** अच्छे वीर हों, **पोषैः** पोषण से **सुपोषः** अच्छा पोषण **स्याम्** हो। **नर्य** जनहितैषी प्रेरक! **मे** मेरे **प्रजाम्** सन्तान-प्रजा की **पाहि** रक्षा करो, **शंस्य** स्तुत्य! **मे** मेरे **पशून्** पशुओं की **पाहि** रक्षा करो, **अथर्य** अविचलित-अहिंसक! **मे** मेरे **पितुम्** पिता, गति-विद्या की **पाहि** रक्षा करो।

भावार्थ : प्रजा-सन्तान तो सभी परिवारों में होती है, उन्हें अच्छा बनाना महत्वपूर्ण है। वीरता भी बहुत लोगों में होती है, उन्हें विवेकशील तथा जनहितैषी अच्छा वीर बनाना है। वीर अपराधी पापी भी होते हैं। पोषण के साधन अन्न आदि तो धन से सभी पा सकते हैं, परन्तु पोषण स्वास्थ्य तथा सात्विकता का रक्षक हो। पश् धातु का अर्थ जाना, जानना, पाना, बांधना है। पशु का अर्थ गतिशीलता, विद्या, विद्वान् होता है। गति तथा बन्धन के कारण गाय, घोड़ा, हाथी भी पशु कहे जाते हैं। परमात्मा अच्छे लोगों की रक्षा करता है॥ 37॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : सुप्रजाः (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **प्रजाभिः** (जन् = उत्पन्न करना)। **स्याम्** (अस् = होना)। **सुवीरो** (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना)। **वीरैः** (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना)। **सुपोषः** (पुष - पोषण करना)। **पोषैः** (पुष - पोषण करना)। **नर्य** (नृ = ले जाना)। **प्रजाम्** (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **मे** (सर्वनाम)। **पाहि** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **शंस्य** (शंस = स्तुति, प्रशंसा करने वाला)। **पशून्** (पश- बांधना, जाना)। **अथर्य** (थर्व = अहिंसक, अविचलितहिंसा करना)। **पितुम्** (पा = रक्षा करना, पालन करना)॥ 37॥

103. आ अगन्म विश्ववेदसम्, अस्मभ्यम् वसुवित्तमम्॥
अग्ने सम्राट् अभि द्युम्नम्, अभि सहः आ यच्छस्व॥ 38॥

संहितापाठ

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम्।अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व॥ 38॥

मन्त्रार्थ : अग्ने अग्रगामी अग्नि। **विश्ववेदसम्** सर्वज्ञ, **वसुवित्तमम्** अतिशय वसुवेत्ता के पास **आ अगन्म** आयें। **अस्मभ्यम्** हमारे लिए **सम्राट्** सम्यक् मुख्य वाणी, शोभा, प्रकाश, **अभि** मुख्य **द्युम्नम्** अग्रगति **अभि** मुख्य **सहः** साथ, सहनशक्ति, क्षमता **आ यच्छस्व** दो।

भावार्थ : अग्रणी अग्नि परमात्मा सर्वज्ञ है, सब कुछ जानने वाला है। इस भावना के साथ उपासना करें तो अनुचिति कर्म नहीं हो सकते हैं। ऐसे साधक को सम्यक् मुख्य वाणी अर्थात् उत्तम विद्या, मधुर सम्भाषण के साथ जीवन में सफलता, यश, शोभा के रूप में दिव्य-प्रकाश प्राप्त होता है॥ 38॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : आगन्म (गम् = जाना, आगम् = आना)। **विश्ववेदसम्** (विद् = जानना)। **अस्मभ्यम्** (सर्वनाम)। **वसुवित्तमम्** (वसु - मन से या शरीर से सीधा होना, निश्चल होना)। **अग्ने** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **सम्राट्** (रट् = बोलना, सम्भाषण करना, राज् - शोभित होना, प्रकाशित होना)। **अभि** (उपसर्ग)। **द्युम्नम्** (द्यु - आगे जाना)। **सहः** (सर्वनाम)। **आयच्छस्व** (यच्छ् = देना)॥ 38॥

104. अयम् अग्निः गृहपतिः, गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः॥
अग्ने गृहपते अभि द्युम्नम्, अभि सहः आ यच्छस्व॥ 39॥

संहितापाठ

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः।अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व॥ 39॥

मन्त्रार्थ : अयम् यह **अग्निः** अग्रगामी **गृहपतिः** गृहपति, **गार्हपत्यः** गृहपति की **प्रजाया** सन्तान (प्रजा) का **वसुवित्तमः** अतिशय वसुवेत्ता (है)। **गृहपते** हे गृहपति **अग्ने** अग्रणी! **अभि** मुख्य **द्युम्नम्** अग्रगामी को **अभि** मुख्यता के **सहः** साथ **आ यच्छस्व** प्रदान करो।

भावार्थ : गृहपति को अपने सन्तानों के विषय में सम्पूर्ण जानकारी, पूरा ध्यान रखना चाहिए। परमात्मा से उनके लिए प्रार्थना करनी चाहिए। गृहपति को प्रत्येक अवसर पर अग्रणी अग्रगामी होना चाहिए॥ 39॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अयम् (सर्वनाम)। **अग्निः** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **गृहपतिः** (गृह - लेना, स्वीकार

करना)। **गार्हपत्यः** (गृह - लेना, स्वीकार करना)। **प्रजाया** (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **वसुवित्तमः** (वस - वस्त्र पहनना, निवास करना, दया करना, प्रीति करना)। **अग्ने** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **गृहपते** (गृह - लेना, स्वीकार करना)। **अभि** (उपसर्ग)। **द्युम्नम्** (द्यु = आगे जाना)। **सहः** (सर्वनाम)। **आ** (उपसर्ग)। **यच्छस्व** (यच्छ् = देना)।

105. अयम् अग्निः पुरीष्यो, रयिमान् पुष्टिवर्धनः ॥
अग्ने पुरीष्य अभि द्युम्नम्, अभि सहः आ यच्छस्व ॥40॥

संहितापाठ

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्धनः।अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ॥40॥

मन्त्रार्थ : अयम् यह **अग्निः** अग्नि **पुरीष्यो** पुरीष्य **रयिमान्** विद्वान् **पुष्टिवर्धनः** पुष्टि को बढ़ाने वाला (है)। **अग्ने** हे अग्रणी! **पुरीष्य** पुरीष्य **अभि द्युम्नम्** अग्रगामी **अभि सहः** सक्षमता के साथ **आ यच्छस्व** प्रदान करो।

भावार्थ : अग्नि अर्थात् अग्रणी परमात्मा उपासक को समस्त सद्गुण-सम्पदा प्रदान करता है। पुरीष्य शब्द बहुत ही सारगर्भित बहुअर्थी है। पुर् तथा पृ धातु के अनेक अर्थ इसमें समाहित हैं। इतने गुण परमात्मा में ही हो सकते हैं या उसकी कृपा से उपासक को प्राप्त हो सकते हैं॥ 40॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अयम् (सर्वनाम)। **अग्निः** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **पुरीष्यो** (पुर् = मुख्य होना, आगे जाना)। **रयिमान्** (रय् = गति करना, जानना)। **पुष्टिवर्धनः** (पुष = पालन करना, पोषण करना)। **अग्ने** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **पुरीष्य** (पुर् = मुख्य होना, आगे जाना)। **अभि** (उपसर्ग)। **द्युम्नम्** (द्यु = आगे जाना)। **सहः** (सर्वनाम)। **आयच्छस्व** (यच्छ् = देना)॥ 40॥

106. गृहाः मा बिभीत मा वेपध्वम्, ऊर्जम् बिभ्रतः आ इमसि ॥
ऊर्जम् बिभ्रत् वः सुमनाः सुमेधा, गृहान् आ एमि मनसा मोदमानः ॥41॥

संहितापाठ

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रतऽएमसि।ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥41॥

मन्त्रार्थ : गृहाः हे गृहस्थ! **बिभीत** डरो **मा** नहीं, **वेपध्वम्** काँपो **मा** नहीं, **ऊर्जम्** ऊर्जा को **बिभ्रतः** धारण करते हुए **आ इमसि** जाते हो। **ऊर्जम्** ऊर्जा को **बिभ्रत्** धारण करते हुए **वः** तुम्हारे **सुमनाः** अच्छे मन, **सुमेधा** अच्छे मेधा वाले, **मनसा** मन से **मोदमानः** प्रसन्न होते हुए **गृहान्** घरों को **आ एमि** प्राप्त हो जाता हूँ।

भावार्थ : गृहस्थ जीवन में समस्याएँ तथा कठिनाइयाँ आती हैं, परन्तु साहस, शक्ति, बुद्धि के साथ उनका समाधान करना चाहिए, भयभीत नहीं होना चाहिए।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : गृहाः (गृह - लेना, स्वीकार करना)। **मा** (अव्यय)। **बिभीत** (भी = भय होना, डरना)। **वेपध्वम्** (वेप् = काँपना)। **ऊर्जम्** (ऊर्ज - शक्तिमान होना, पराक्रमी होना)। **बिभ्रत्** (भृ- धारण करना)। **एमसि** (इ- जाना)। **वः** (सर्वनाम)। **सुमनाः** (मन - जानना, समझना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **सुमेधाः** (मेधा = शीघ्र समझना)। **गृहान्** (गृह - लेना, स्वीकार करना)। **ऐमि** (इ - जाना)। **मनसा** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, विचार करना, मानना)। **मोदमानः** (मुद् = आनन्द होना, एकत्र करना)॥ 41॥

107. येषाम् अध्येति प्रवसन्, येषु सौमनसो बहुः ॥ गृहान् उप ह्वयामहे, ते नो जानन्तु जानतः ॥42॥

संहितापाठ

येषामद्ध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः।गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥

मन्त्रार्थ : प्रवसन् प्रवास करता हुआ **येषाम्** जिनका **अध्येति** अध्ययन करता है, **येषु** जिनमें **बहुः** बहुत **सौमनसो** सद्भाव हैं, **गृहान्** गृहों (गृहस्थ परिवारों) का **उप ह्वयामहे** हम आह्वान् करते हैं, **ते** वे **जानतः** विद्वान् **नो** हमको **जानन्तु** जानें।

भावार्थ : उत्तम् गृहस्थ वे हैं, जिनमें बहुत सद्भाव होता है, उनके साथ प्रवास करने वाला उनका अध्ययन करता

है, उनके सद्गुणों, विचारों, संस्कारों, जीवनशैली को जानने समझने का प्रयास करता है। हम ऐसे गृहस्थों का आह्वान करते हैं क्योंकि वे समाज के लिए प्रेरणास्त्रोत बन सकते हैं। वे विद्वान् गृहस्थ हमको जानें, हमारे मित्र हों। 42 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : येषाम् (सर्वनाम)। **अध्येति** (अधि + इ = अध्ययन करना)। **प्रवसन्** (वस् = रहना, निवास करना)। **येषु** (सर्वनाम)। **सौमनसः** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना)। **बहुः** (सर्वनाम)। **गृहान्** (गृह - लेना, स्वीकार करना)। **उप** (उपसर्ग)। **ह्वयामहे** (ह्वे = पुकारना, बुलाना, आह्वान् करना)। **ते** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **जानन्तु** (ज्ञा - जानना, समझना)। **जानतः** (ज्ञा - जानना, समझना)। 42 ।।

(28) सूक्त 11

108. उपहूताः इह गावः, उपहूताः अजावयः। अथो अन्नस्य कीलालः, उपहूतो गृहेषु नः।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये, शिवम् शग्मम् शंयोः शंयोः ।।43 ।।

संहितापाठ

उपहूताऽइह गावऽउपहूतोऽअजावयः। अथोऽअन्नस्य कीलालऽउपहूतो गृहेषु नः। क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳशग्मꣳशंयोःशंयोः ।।

मन्त्रार्थ : इह यहाँ **गावः** गाय-बैल, **उपहूताः** तृप्त किये गये हैं। **अजावयः** बकरी, भेड़ **उपहूताः** तृप्त किये गये हैं। **अथो** इसके पश्चात् **नः** हमारे **गृहेषु** घरों में **अन्नस्य** अन्न के **कीलालः** बन्ध **उपहूतो** तृप्त हुए हैं। **वः** तुम सबके **क्षेमाय** क्षेम **शान्त्यै** शान्ति के लिए **शिवम्** कल्याण, **शग्मम्** सामर्थ्य को **प्रपद्ये** जाता हूँ, **शंयोः शंयोः** कल्याण, हो कल्याण हो।

भावार्थ : उपयोगी पालतू पशुओं की उचित देखभाल कर उनको तृप्त रखें तो उनका उचित उपयोग कर अन्न-भण्डार भी तृप्त होंगे, अर्थात् भर जायेंगे। कल्याणकारी परमात्मा, विद्वानों, कार्यों का अनुगमन करते रहें तो सुख-शान्ति, सामर्थ्य, कल्याण प्राप्त होता रहेगा।। 43 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : उपहूताः (उप = समीप, हु = तृप्त करना, दान करना, लेना)। **इह** (सर्वनाम)। **गावः** गा - जाना, गमन करना)। **अजावयः** (अजाः + अवयः, अज - जाना, हांकना, दौड़ाना)। **अथो** (अव्यय)। **अन्नस्य** (अद - खाना)। **कीलालः** (कील् = बांधना)। **गृहेषु** (गृह - लेना, स्वीकार करना)। **नः** (सर्वनाम)। **क्षेमाय** (क्षेम् = कल्याण होना)। **वः** (सर्वनाम)। **शान्त्यै** (शान्त्व - सान्त्वना करना, समाधान करना)। **प्रपद्ये** (पद् = जाना)। **शिवम्** (शिव् = कल्याण करना)। **शग्मम्** (शक् = समर्थ होना)। **शंयोः** (शम् =शान्त होना, स्वस्थ होना, कल्याण होना)।। 43 ।।

109. प्र घासिनो हवामहे, मरुतः च रिशादसः। करम्भेण सजोषसः ।।44 ।।

संहितापाठ

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः। करम्भेण सजोषसः ।।44 ।।

मन्त्रार्थ : करम्भेण कर्मशीलता (करम्भ) द्वारा **सजोषसः** विचारवान् सेवाभावी **रिशादसः** हिंसानाशक **च** और **प्र घासिनो** उत्तम भोजी **मरुतः** मरणशीलों (प्राणियों, मनुष्यों) का **हवामहे** आह्वान करते हैं।

भावार्थ : सत्पुरुषों को कर्मशीलता से बुला सकते हैं। मरुत् का धातुज शब्दार्थ मरणशील होता है। इसका भावार्थ प्राणी, विशेषकर मनुष्य ही लिया जाता है। मृत्यु तो होनी ही है। जो इसका ध्यान रखते हैं, वे उत्तम कर्म करने वाले होते हैं। ऐसे सत्पुरुषों को मरुत् कहते हैं।। 44 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : प्रघासिनः (घस् = खाना)। **हवामहे** (ह्वे = बुलाना, आह्वान करना)। **मरुतः** (मृ = मरना)। **च** (अव्यय)। **रिशादसः** (रिश् = हिंसा करना, अद् = नष्ट करना, खाना)। **करम्भेण** (कृ - करना)। **सजोषसः** (जुष् = विचार करना, चाहना, सेवा करना)।। 44 ।।

110. यत् ग्रामे यत् अरण्ये, यत् सभायाम् यत् इन्द्रिये ।।
यत् एनः चकृमा वयम्, इदम् तत् अव यजामहे, स्वाहा ।।45 ।।

संहितापाठ

यद् ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये।यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ॥45॥

मन्त्रार्थ : यत् जो **ग्रामे** ग्राम में, **यत्** जो **अरण्ये** अरण्य में, **यत्** जो **सभायाम्** सभा में, **यत्** जो **इन्द्रिये** इन्द्रिय में, **यत्** जो **एनः** यह (कार्य) **वयम्** हमने **चकृमा** किया, **इदम्** यह **तत्** वह (उस कार्य की) **अव** रक्षा करो। (मैं) **स्वाहा** व्यापक भाव से **यजामहे** यजन करता हूँ।

भावार्थ : परमात्मा का दिया जो कुछ भी हमारे पास है, उसकी रक्षा तथा व्यापक भावना से यजन करना चाहिए॥ 45॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : यत् (सर्वनाम)। **ग्रामे** (गृ - समझना, जानना, समझाना, जताना)। **अरण्ये** (ऋण - जाना, गमन करना, रण - शब्द करना, जाना)। **सभायाम्** (स - सहित, साथ, भा-चमकना, प्रकाशित होना)। **इन्द्रिये** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **एनः** (सर्वनाम)। **चकृमा** (कृ = करना)। **वयम्** (सर्वनाम)। **इदम्** (सर्वनाम)। **तत्** (सर्वनाम)। **अव** (अव = रक्षा करना)। **यजामहे** (यज् = पूजा करना, देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह-व्याप्त होना, व्यापना)॥ 45॥

111. मो षू ण इन्द्र अत्र पृत्सु देवैः, अस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन् अवयाः॥
महः चित् यस्य मीढुषो यव्या, हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः॥46॥

संहितापाठ

मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः।महस्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः॥46॥

मन्त्रार्थ : शुष्मिन् हे शुष्मिन् **इन्द्र** इन्द्र! **अत्र** यहाँ **देवैः** देवों द्वारा **ण (नः)** हमारी **पृत्सु** पूर्णता में, जीवन में **षू** प्रेरणा **मो** बन्धन **हि** ही **ते** तुम्हारा **अवयाः** संरक्षण **अस्ति** है। **महः चित्** पूज्यवत् महान् **यस्य** जिस **मीढुषो** विद्वान् **मरुतो** मनुष्य की **यव्या** यव्य **हविष्मतो** हविष्मती **गीः** वाणी **वन्दते** वन्दना करती है।

भावार्थ : परमात्मा की प्रेरणा का बन्धन अनुशासन स्वीकार कर ही हम संरक्षण प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे मरुत् अर्थात् मनुष्य की वन्दना विद्वान् करते हैं॥ 46॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : मो (मू = बाँधना)। **षू** (सु = प्रेरणा देना)। **नः** (सर्वनाम)। **इन्द्र** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **अत्र** (अव्यय)। **पृत्सु** (पृत् = जीवन होना, पृ = पूर्ण करना)। **देवैः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **अस्ति** (अस् - होना)। **हि** (अव्यय)। **स्म** (अस् - होना)। **ते** (सर्वनाम)। **शुष्मिन्** (शुष् = सूखना, शुष्क होना)। **अवयाः** (अव् = रक्षा करना)। **महः** (मह-सम्मान करना, पूजा करना)। **चित्** (चित - विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। **यस्य** (सर्वनाम)। **मीढुषः** (मी = जाना, जानना)। **यव्या** (या = जाना, जानना, पाना, यु = मिलाना, अलग करना, बाँधना)। **हविष्मतः** (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। **मरुतः** (मृ = मरना, देहत्याग करना)। **वन्दते** (वन्द् - प्रशंसा करना, स्तुति करना, वन्दना करना)। **गीः** (गु = शब्द करना)॥ 46॥

112. अक्रन् कर्म कर्मकृतः, सह वाचा मयोभुवा॥देवेभ्यः कर्म कृत्वा, अस्तम् प्र इत सचाभुवः॥47॥

संहितापाठ

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा।देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः॥

मन्त्रार्थ : मयोभुवा विद्यायुक्त **वाचा** वाणी के **सह** साथ **कर्मकृतः** कर्मशीलों ने **कर्म** कर्म **अक्रन्** किया। **देवेभ्यः** देवों द्वारा **कर्म** कर्म **कृत्वा** करके **सचाभुवः** सेवाभावी बुद्धिमान् साथी **अस्तम्** प्रकाशमान को **प्र इत** प्राप्त हुए।

भावार्थ : हमारा कर्म सार्थक फलीभूत तभी हो सकता है जब विद्या का साथ हो। देवों-विद्वानों के मार्गदर्शन में कर्म करने पर उनके सेवाभावी साथ प्रकाशमान परमात्मा तथा दिव्य जीवन को प्राप्त कर सकते हैं। 47॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अक्रन् (कृ = करना)। **कर्म** (कृ - करना)। **कर्मकृतः** (कृ - करना)। **सह** (सर्वनाम)। **वाचा** (वच - बोलना, कहना, समझाना)। **मयोभुवः** (मय् = जाना, जानना)। **देवेभ्यः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति

करना)। **कर्मकृत्वा** (कृ - करना)। **अस्तम्** (अस् = प्रकाशित होना, जानना)। **प्रेत** (इ - जाना)। **सचाभुवः** (सच् = सम्बन्धी होना, साथी होना)।47 ।।

(29) सूक्त 12

113. अवभृथ निचुम्पुण निचेरुः असि निचुम्पुणः।
अव देवैः देवकृतम् एनो अयासिषम्, अव मर्त्यैः मर्त्यकृतम्, पुरुराव्णो देव रिषः पाहि।।48।।

संहितापाठ

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः।अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि।।48।।

मन्त्रार्थ : निचुम्पुण हे मन्दगति वाले **अवभृथ** अवभृथ! **निचुम्पुणः** मन्दगति का **निचेरुः** चयन करने वाले **असि** हो। **देव** हे देव! **एनः** यह **अयासिषम्** प्रयत्न किया। **देवैः** देवों द्वारा **देवकृतम्** देवकृत की **अव** रक्षा करो, **मर्त्यैः** मरणशीलों (मनुष्यों) द्वारा **मर्त्यकृतम्** मानवकृत की **अव** रक्षा करो, **पुरुराव्णो** अग्रगामी प्रमुख दानी! **रिषः** हिंसकों से **पाहि** रक्षा करो।

भावार्थ : अवभृथ परमात्मा को सम्बोधित किया गया है। वह मन्दगति का चयन करने वाला है। बहुत तीव्र भागमभाग-आपाधापी उचित नहीं है। देवकार्य की रक्षा देव करें और मनुष्य कर्म की रक्षा मनुष्य करे, यही नियम है। परमात्मा दयालु और प्रमुख दानी है, हिंसक से उपासक की रक्षा करता है। हमें सत्पथ पर चलते हुए उपासना करनी चाहिए।। 48।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अवभृथ (अव् = रक्षा करना, जानना, भृ = शरण-पोषण-पालन करना)। **निचुम्पुण** (नि + चुम्पुण, चुप् = धीरे चलना)। **निचेरुः** (नि + चेरुः, चि = चुनना, चयन करना)। **असि** (अस् = होना)। **अव** (अव् = रक्षा करना)। **देवैः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना)। **देवकृतम्** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, कृ - करना)। **एनः** (सर्वनाम)। **अयासिषम्** (यस् = प्रयत्न करना)। **मर्त्यैः** (मृ = मरना, देहत्याग करना)। **मर्त्यकृतम्** (मृ = मरना, देहत्याग करना, कृ - करना)। **पुरुराव्णो** (पुर् = आगे जाना, रा = दान करना)। **देव** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना)। **रिषः** (रिष् = हिंसा करना)। **पाहि** (पा - रक्षा करना, पालन करना)।48 ।।

114. पूर्णा दर्वि परापत, सुपूर्णा पुनः आ पत।।वस्ना इव वि क्रीणावहा, इषम् ऊर्जम् शतकृतो।।49।।

संहितापाठ

पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत।वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्जꣳशतक्रतो।।49।।

मन्त्रार्थ : पूर्णा पूर्ण **दर्वि** विद्वान् **परापत** ऐश्वर्यवान् हो, (विद्वान् पूर्ण ऐश्वर्यवान् हों, पूर्ण ऐश्वर्यवान् विद्वान् आयें। आ + पत् = जाना)। **सुपूर्णा** अच्छी तरह पूर्ण **पुनः** फिर **आ पत** आयें, ऐश्वर्यवान् हों।(अच्छी तरह पूर्ण ऐश्वर्यवान् हो आयें।) **शतकृतो** हे शतक्रतो! **इषम्** विद्या, इच्छा, **ऊर्जम्** ऊर्जा को **वस्ना** वस्ना की **इव** तरह **वि क्रीणावहा** आदान-प्रदान करते हैं।

भावार्थ : जो ऐश्वर्यवान् हैं, वे विद्वान् बनें। जो विद्वान् हैं, वे ऐश्वर्यवान् बनें। विद्या और ऐश्वर्य से युक्त लोग बार-बार आयें। दया, प्रीति, सरलता, युक्त लोगों के समान विद्या, इच्छा, ऊर्जा का आदान-प्रदान करते रहें। अच्छे समाज की सुन्दर भावना है।। 49।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : पूर्णा (पृ - पूर्ण करना, भरना)। **दर्वि** (दर्व् = जाना, जानना)। **परा** (उपसर्ग)। **पत्** (पत् = जाना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **सुपूर्णा** (पृ - पूर्ण करना, भरना)। **पुनः** (अव्यय)। **आपत** (आ + पत् = जाना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **वस्ना** (वस् = निवास-दया-प्रीति करना, सरल-निश्चल होना)। **इव** (अव्यय)। **विक्रीणावहा** (क्री-खरीदना, बदले में लेना)। **इषम्** (इष् = जाना, जाना, दोहराना, इच्छा करना)। **ऊर्जम्** (ऊर्ज - शक्तिमान होना, पराक्रमी होना)। **शतकृतो** (कृ - करना)।। 49।।

115. देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।।निहारम् च हरासि मे निहारम् निहराणि ते।।50।।

संहितापाठ

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे। निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा॥50॥

मन्त्रार्थ : मे मुझे **देहि** दो, **ते** तुम्हें **ददामि** देता हूँ। **मे** मेरे लिए **धेहि** धारण करो, **ते** तुम्हारे लिए **दधे** धारण करूँ। **मे** मेरे लिए **निहारम्** निहार को **हरासि** ले जाते हो, **ते** तुम्हारे लिए **निहारम्** निहार को **निहराणि** ले जाऊँ। **स्वाहा** व्यापक हो।

भावार्थ : आदान-प्रदान सृष्टि की व्यापक व्यवस्था है। परमात्मा तथा उपासक के बीच भी आदान-प्रदान होता है तथा समाज में भी। अपनी क्षमता के अनुसार हम उपासना करते हैं, सत्यमार्ग पर चलते हैं तो हमें परमात्मा का दिव्य अनुदान प्राप्त होता है। समाज की व्यवस्था भी परस्पर आदान-प्रदान से ही चलती है॥ 50॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : देहि (दा - देना)। **मे** (सर्वनाम)। **ददामि** (दा - देना, सौंपना)। **ते** (सर्वनाम)। **नि** (उपसर्ग)। **धेहि** (धा - धारण करना, पहनना)। **दधे** (धा - धारण करना)। **निहारम्** (हृ = ले जाना, पहुँचाना)। **च** (अव्यय)। **हरासि** (हृ - हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। **निहराणि** (हृ - हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, आहा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥ 50॥

(30) सूक्त 13

116. अक्षन् अमीमदन्त हि, अव प्रिया अधूषत॥
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया, मती योजा नु इन्द्र ते हरी॥51॥

संहितापाठ

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाऽअधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी॥51॥

मन्त्रार्थ : अक्षन् हे व्यापक **अमीमदन्त** आनन्दमय! **हि** ही **अव** रक्षा करो। **प्रिया** प्रियजन **अधूषत** शोभित हुए। **स्वभानवो** स्वप्रकाश, **नविष्ठया** नवीनतम **मती** मति वाले, **विप्रा** पालन-पोषण प्रीति करने वाले लोगों ने **अस्तोषत** स्तुति की। **इन्द्र** हे परम ऐश्वर्यवान्! **नु** शीघ्र **हरी** ले जाने वाले **ते** तुम्हारे लिए, **योजा** समाधिस्थ होते हैं।

भावार्थ : अव् धातु के अनेक अर्थ हैं। रक्षा करना, जाना, जानना, कामना करना, प्यार करना, प्रिय होना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, आनन्दित करना, प्रवेश करना, सुनना, सुनाना, स्वामी होना, आदेश मानना, माँगना, कर्म करना, शोभित होना, प्रकाशित होना, मिलना, पाना, गले लगाना, हिंसा करना, लेना, होना, बढ़ना आदि अर्थों में अव् धातु का प्रयोग होता है। ये सभी गुण या क्षमता परमात्मा में ही सम्भव हैं। नविष्ठ अर्थात् अतिशय नवीन मति से स्पष्ट है कि रूढ़िवादी होना उचित नहीं है, नवीन विचारों को समझने स्वीकार करने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए। परमात्मा में स्थिति करें, उसी में समाधिस्थ हों॥ 51॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अक्षन् (अक्ष् = व्याप्त होना)। **अमीमदन्त** (मद् = आनन्द होना)। **हि** (अव्यय)। **अव** (अव् = रक्षा करना)। **प्रियाः** (प्री - प्रीति करना)। **अधूषत** (धूष् = शोभित होना)। **अस्तोषत** (स्तु = स्तुति-प्रशंसा करना)। **स्वभानवो** (भा = प्रकाश होना)। **विप्रा** (पृ = पूर्ण करना, पालन करना)। **नविष्ठया** (नव् = नवीन होना)। **मती** (मन् = जानना, समझना)। **योजा** (युज् = समाधि होना)। **नु** (निपात, अव्यय)॥ **इन्द्र** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **ते** (सर्वनाम)। **हरी** (हृ = ले जाना)॥

117. सुसन्दृशम् त्वा वयम्, मघवन् वन्दिषीमहि॥
प्र नूनम् पूर्णबन्धुरः, स्तुतो यासि वशान् अनु, योजा नु इन्द्र ते हरी॥52॥

संहितापाठ

सुसन्दृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि। प्र नूनं पूर्णबन्धुर स्तुतो यासि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी॥52॥

मन्त्रार्थ : मघवन् हे मघवन्! **वयम्** हम **सुसन्दृशम्** अच्छी सम्यक् दृष्टि वाले **त्वा** तुम्हारी **वन्दिषीमहि** वन्दना करते हैं। **प्र नूनम्** निश्चित ही **पूर्णबन्धुरः** पूर्णतः बाँध लेने वाले **स्तुतो** स्तुत्य, **वशान्** इच्छाओं को **अनु** पीछे **यासि** जाते हो, जानते हो। **इन्द्र** हे इन्द्र! हे परम ऐश्वर्यवान्! **हरी** ले जाने वाले, वाहक **ते** तुम्हारे लिए, **नु** शीघ्र **योजा** समाधिस्थ होते हैं।

भावार्थ : परमात्मा की सुन्दर सम्यक् दृष्टि है। वह हमारी इच्छाओं को जानता है। हमको उसने स्नेह में पूर्णतः बाँधे हुए है। उसकी व्यवस्था के वाहक उपासक उसके लिए समाधि-साधना करते हैं। समाधिस्थ होकर उसे प्राप्त करते हैं। हम सब उसकी वन्दना करते हैं।।। 52 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : सुसन्दृशम् (दृश् = देखना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **वयम्** (सर्वनाम)। **मघवन्** (मघ् = धन होना, धन देना)। **वन्दिषीमहि** (वन्द्- वन्दना करना)। **प्र** (उपसर्ग)। **नूनम्** (अव्यय)। **पूर्णबन्धुरः** (बन्ध = बाँधना)। **स्तुतो** (स्तु = स्तुति, पूजा)। **यासि** (या = जाना, जानना)। **वशान्** (वश् = इच्छा करना)। **अनु** (उपसर्ग)। **योजा** (युज् = समाधि होना)। **नु** (निपात, अव्यय)। **इन्द्र** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **ते** (सर्वनाम)। **हरी** (हृ = ले जाना)।।52 ।।

(31) सूक्त 14

118. मनो नु आ ह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन। पितृणाम् च मन्मभिः ।। 53 ।।

संहितापाठ

मनो न्वाह्वामहे नाराशꣳसेन स्तोमेन। पितृणां च मन्मभिः ।। 53 ।।

मन्त्रार्थ : नाराशंसेन नरों द्वारा प्रशंसित, **नु** निश्चय ही **स्तोमेन** स्तुतिकर्ता, **च** और **मन्मभिः** विद्या, विचार से **पितृणाम्** पितरों के **मनो** मन का **आ ह्वामहे** आह्वान करते हैं।

भावार्थ : मन का महत्व सबसे अधिक है। सभी कार्यों का मूल मन ही है। अतः परमात्मा को मन स्वरूप मानकर आह्वान किया गया है। मन के रूप में परमात्मा की चेतनशक्ति जीवों में सक्रिय है। परमात्मा की स्तुति करने वाले पितरों ने जो अनुभवजन्य विद्या तथा विचार हमें दिये हैं, उनका लाभ उठाकर हम मन और परमात्मा की साधना कर सकते हैं।।53 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : मनो (मन - जानना, समझना, विचार करना, मानना)। **नु** (निपात, अव्यय)। **आह्वामहे** (हू-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, पुकारना)। **नाराशंसेन** (शंस् = प्रशंसा करना)। **स्तोमेन** (स्तु - प्रशंसा करना, स्तुति करना, पूजा करना)। **पितृणाम्** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **च** (अव्यय)। **मन्मभिः** (मन् = जानना, समझना, विचार करना)।।

119. आ नः एतु मनः पुनः, क्रत्वे दक्षाय जीवसे। ज्योक् च सूर्यम् दृशे ।। 54 ।।

संहितापाठ

आ नऽएतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे। ज्योक् च सूर्यं दृशे।।54 ।।

मन्त्रार्थ : क्रत्वे कार्य, **दक्षाय** दक्षता, **जीवसे** जीवन **च** और **सूर्यम्** सूर्य को **ज्योक्** निरन्तर **दृशे** देखने के लिए **नः** हमको **पुनः** पुनः **मनः** मन **आ एतु** प्राप्त हो।

भावार्थ : मन भी परमात्मा की चेतना है और सूर्य भी उसी का स्वरूप है। मन अच्छा हो तो परमात्मा की उपासना भी मन से कर सकते हैं। इससे सब कुछ प्राप्त हो सकता है।। 54 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : आ (उपसर्ग)। **नः** (सर्वनाम)। **एतु** (इ = जाना)। **मनः** (मन - जानना, समझना, विचार करना, मानना)। **पुनः** (अव्यय)। **क्रत्वे** (कृ = करना)। **दक्षाय** (दक्ष - समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर, दक्ष होना)। **जीवसे** (जीव - प्राण धारण करना)। **ज्योक्** (ज्यु = गति होना)। **च** (अव्यय)। **सूर्यम्** (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना)। **दृशे** (दृश्-पश्य -देखना)।। 54 ।।

120. पुनः नः, पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः। जीवम् व्रातम् सचेमहि ।। 55 ।।

संहितापाठ

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः। जीवं व्रातꣳसचेमहि ।। 55 ।।

मन्त्रार्थ : नः हमारे **दैव्यो** दिव्य **जनः** जन **पितरो** पितर **पुनः** पुनः **मनो** मन **ददातु** प्रदान करें। **व्रातम्** व्रात **जीवम्** जीव की **सचेमहि** सेवा करते हैं।

भावार्थ : विद्वान् पूर्वज अग्रज हमें पुनः-पुनः मन प्रदान करें, हमारे मन को सुन्दर सशक्त बनायें। व्रात का भाव है

व्रत धारण करने वाला उपासक। हम ऐसे व्रती जीवों की सेवा करें तो मन अच्छा रहेगा और हमारा जीवन प्रकाशमान होगा।। 55 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : पुनः (अव्यय)। **नः** (सर्वनाम)। **पितरः** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **मनः** (मन - जानना, समझना, विचार करना)। **ददातु** (दा - देना, सौंपना, लौटाना, रखना)। **दैव्यो** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **जनः** (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना)। **जीवम्** (जीव - प्राण धारण करना)। **व्रातम्** (वृ- पसन्द करना, नियोजित करना, नियमित करना)। **सचेमहि** (सच् = सेवा करना)।। 55 ।।

121. वयम् सोम व्रते तव, मनः तनूषु बिभ्रतः। प्रजावन्तः सचेमहि।। 56 ।।

संहितापाठ

वयꣳसोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः। प्रजावन्तः सचेमहि।। 56 ।।

मन्त्रार्थ : सोम हे सोम! **वयम्** हम **प्रजावन्तः** प्रजावान् **तव** तुम्हारे **तनूषु** विराट् **व्रते** व्रत में **तनूषु** विराट् **मनः** मन को **बिभ्रतः** धारण कर **सचेमहि** सेवा करते हैं।

भावार्थ : सृष्टिकर्ता ऐश्वर्यवान् परमात्मा सोम के व्रत में सपरिवार व्यापक भावना के साथ सेवा करें तो उपासना सफल होती है।। 56 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : वयम् (सर्वनाम)। **सोम** (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **व्रते** (वृ - पसन्द करना, नियोजित करना, नियमित करना)। **तव** (सर्वनाम)। **मनः** (मन - जानना, समझना, विचार करना, मानना)। **तनूषु** (तनु = विस्तार होना)। **बिभ्रतः** (भृ-बिभर्ति - धारण-पोषण करना)। **प्रजावन्तः** (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **सचेमहि** (सच - सेवा करना, सेवा करके सन्तुष्ट करना)।। 56 ।।

(32) सूक्त 15

122. एषः ते रुद्र भागः, सह स्वस्त्रा अम्बिकया तम्।।
जुषस्व स्वाहा, एषः ते रुद्र, भागः आखुः ते पशुः।। 57 ।।

संहितापाठ

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्त्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहैष ते रुद्र भागऽआखुस्ते पशुः।।

मन्त्रार्थ : रुद्र हे करुणाशील! **एषः** यह **ते** तुम्हारा **भागः** भाग है। **तम्** उसको **स्वस्त्रा** उत्तम विद्या, **अम्बिकया** उपदेश वाणी से **जुषस्व** विचार करो, सेवा करो। **स्वाहा** अच्छी व्यापकता आत्मविस्तार हो। **रुद्र** हे करुणाशील! **एषः** यह **ते** तुम्हारा **भागः** भाग है, **ते** तुम्हारा **पशुः** बन्धन **आखुः** वाणी है।

भावार्थ : करुणामय परमात्मा की उपासना के लिए उत्तम विद्या, वाणी, व्यापक दृष्टिकोण होना महत्वपूर्ण है।। 57 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : एषः (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **रुद्र** (रुद् = रोना, करुण होना)। **भागः** (भज् = सेवा करना, भजन करना, भाग करना)। **सह** (सर्वनाम)। **स्वस्त्रा** (अस् = फेंकना, होना, जाना, जानना, लेना, चमकना)। **अम्बिकया** (अम्ब् = शब्द करना, जाना, जानना)। **तम्** (सर्वनाम)। **जुषस्व** (जुष - विचार करना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, स्व + अहा)। **आखुः** (आ + खुः, खु = शब्द करना)। **पशुः** (पश् = बाँधना)।। 57 ।।

123. अव रुद्रम् अदीमहि, अव देवम् त्र्यम्बकम्।
यथा नो वस्यसः करत्, यथा नः श्रेयसः करत्, यथा नो वि अवसाययात्।। 58 ।।

संहितापाठ

अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम्। यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयस्करद्यथा नो व्यवसाययात्।। 58 ।।

मन्त्रार्थ : त्र्यम्बकम् तीन वाणी युक्त **अव** रक्षक **रुद्रम्** करुणाशील **अव** रक्षक **देवम्** विद्वान् को **अदीमहि** अपनाते हैं **यथा** जिस तरह **नो** हमको **वस्यसः** वास **करत्** प्रदान किया, **यथा** जिस तरह **नः** हमको **श्रेयसः** श्रेय **करत्** प्रदान किया, **यथा** जिस तरह **नो** हमको **अवसाययात्** व्यवसाय प्रदान किया।

भावार्थ : परमात्मा तथा विद्वान् उपासक तीन तरह की वाणी से युक्त हैं। उनसे ही हमको निवास, श्रेय, व्यवसाय प्राप्त होता है।। 58 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : अव (अव - रक्षा करना आदि)। **रुद्रम्** (रुद् = रोना, करुण होना)। **अदीमहि** (अद् = खाना, ग्रहण करना, आत्मसात् करना, नष्ट करना)। **देवम्** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **त्र्यम्बकम्** (अम्ब = शब्द करना, जाना, जानना)। **यथा** (अव्यय)। **नः** (सर्वनाम)। **वस्यसः** (वस् = वास करना, आच्छादन करना, स्नेह करना)। **करत्** (कृ - करना)। **श्रेयसः** (श्रि = सेवा करना)। **व्यवसाययात्** (व्यव + सिञ्, सि = उद्योग करना, व्यवसाय करना, सम्यक् कार्य करना)।। 58 ।।

124. भेषजम् असि भेषजम्, गवे अश्वाय पुरुषाय भेषजम्। सुखम् मेषाय मेष्यै ।। 59 ।।

संहितापाठ

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम्। सुखं मेषाय मेष्यै ।। 59 ।।

मन्त्रार्थ : भेषजम् भेषज **असि** हो, **भेषजम्** भेषज। **गवे** गौ, **अश्वाय** अश्व, **पुरुषाय** पुरुष के लिए **भेषजम्** भेषज (हो)। **मेषाय** मेष, **मेष्यै** मेषा के लिए **सुखम्** सुख (हो)।

भावार्थ : परमात्मा सभी प्राणियों पशुओं, मनुष्यों के लिए भेषज अर्थात् चिकित्सक तथा औषधि स्वरूप है। उपासक को भी ऐसा ही होना चाहिए।। 59 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : भेषजम् (भिषज् = चिकित्सा करना)। **असि** (अस् = होना)। **भेषजम्** (भिषज - चिकित्सा करना)। **गवे** (गु - शब्द करना, मनन करना)। **अश्वाय** (अश् - फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना)। **पुरुषाय** (पुर - अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना)। **भेषजम्** (भिषज - चिकित्सा करना)। **सुखम्** (सुख - प्रसन्न करना)। **मेषाय** (मिष- सींचना, प्रोक्षण करना)। **मेष्यै** (मिष- सींचना, प्रोक्षण करना)।।। 59 ।।

(33) सूक्त 16

125. त्र्यम्बकम् यजामहे, सुगन्धिम् पुष्टि-वर्धनम्। उर्वारुकम् इव बन्धनात्, मृत्योः मुक्षीय मा अमृतात्।।
त्र्यम्बकम् यजामहे, सुगन्धिम् पति-वेदनम्। उर्वारुकम् इव बन्धनात्, इतो मुक्षीय मा अमुतः ।। 60 ।।

संहितापाठ

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ।। 60 ।।

मन्त्रार्थ : त्र्यम्बकम् त्र्यम्बक (त्रिवाणी, वाक्त्रयी) **सुगन्धिम्** सुगन्धि, **पुष्टि-वर्धनम्** पुष्टि बढ़ाने वाले का **यजामहे** यजन करते हैं। **उर्वारुकम्** उर्वारुक **इव** के समान **मृत्योः** मृत्यु के **बन्धनात्** बन्धन से **मुक्षीय** छुड़ायें, **अमृतात्** अमृत से **मा** नहीं। **सुगन्धिम्** सुगन्धि **पति-वेदनम्** ऐश्वर्यवान् का बोध कराने वाले **त्र्यम्बकम्** त्र्यम्बक का **यजामहे** यजन करते हैं। **उर्वारुकम्** उर्वारुक **इव** के समान **इतो** इस **बन्धनात्** बन्धन से **मुक्षीय** छुड़ायें, **अमुतः** उससे **मा** नहीं।

भावार्थ : तीन प्रकार की वाणी का भाव वेदत्रयी भी है। व्याकरण तथा ध्वनि विज्ञान के अनुसार भी तीन प्रकार की ध्वनियाँ हैं। तीन प्रकार के स्वर तथा तीन प्रकार के व्यञ्जन होते हैं। ध्वनि की तीव्रता के तीन स्तर हैं। जो ध्वनि हम सुन पाते हैं, वह श्रव्य ध्वनि है। इसके अतिरिक्त कुछ ध्वनियों की तीव्रता इतनी अल्प होती है कि हम सुन नहीं पाते तथा कुछ ध्वनि इतनी उच्च तीव्रता की होती हैं जो हमारी श्रवणशक्ति से परे होती हैं। परमात्मा इन तीनों ध्वनियों का मूल त्र्यम्बक है। हम उसका यजन करते हैं। वह जीवन में सुगन्धि और पोषण को बढ़ाने वाला है। उर्वारुक का भाव है वाणी से भी हिंसा न करना, हिंसा से पूर्णतः दूर रहने वाला। उर्वारुक स्वभाव वाला व्यक्ति मृत्यु के भय से मुक्त होता है। वह अमृत से संयुक्त होता है। उपासना के अमृत से युक्त व्यक्ति को मृत्यु का भय नहीं हो सकता है।। 60 ।।

विशेष : त्र्यम्बकम् का अर्थ त्रिवाणी, वाक्त्रयी (तीन वाणी, तीन गति) है। (त्र्यम्बकम् = त्रि + अम्बकम्) अम्ब धातु का अर्थ शब्द करना, जाना, जानना है।। 60 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : त्र्यम्बकम् (त्रि - तीन, अम्ब = शब्द करना, जानना)। **यजामहे** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना)। **सुगन्धिम्** (गन्ध - गन्ध होना, शोभित करना)। **पुष्टिवर्धनम्** (पुष - पोषण करना, वृध-बढ़ना, अधिक होना)। **उर्वारुकम्** (उर्व = हिंसा करना, रु = बोलना)। **इव** (अव्यय)। **बन्धनात्** (बध = बांधना, बद्ध करना, हिंसा करना)। **मृत्योः** (मृ = मरना, देहत्याग करना)। **मुक्षीय** (मुक्ष = छूटना)। **मा** (अव्यय)। **अमृतात्** (मृ = मरना, देहत्याग करना)। **पति-वेदनम्** (पत् = ऐश्वर्य होना, विद् = जानना)। **इतः** (सर्वनाम)। **उतः** (सर्वनाम)। **मुक्षीया** (मुक्ष = छूटना)। **अमुतः** (अव्यय)।। 60 ।।

126. एतत् ते रुद्र अवसम् तेन, परो मूजवतो अति इहि ।।
अवततधन्वा पिनाकावसः, कृत्तिवासा अहिंसन् नः शिवो अति इहि ।। 61 ।।

संहितापाठ

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासाऽअहिꣳसन्नः शिवोऽतीहि ।। 61 ।।

मन्त्रार्थ : रुद्र हे करुणामय! **एतत्** यह **ते** तुम्हारा **तेन** उससे **परो** परे **मूजवतो** शब्दमय **अवसम्** संरक्षण **अति** सतत **इहि** प्राप्त हो। **अवततधन्वा** सृष्टिरक्षक विस्तारक **पिनाकावसः** जानने वाले **कृत्तिवासा** कर्माम्बर **अहिंसन्** अहिंसक **शिवो** कल्याणकारी **नः** हमें **अति इहि** प्राप्त हो।

भावार्थ : करुणामय परमात्मा का शब्दमय वेदस्वरूप संरक्षण हमें निरन्तर प्राप्त होता है। सृष्टि रक्षा तथा विस्तार, कर्म को ही अम्बर अर्थात् वसन, वस्त्र और वास स्थान बनाना, अहिंसक और कल्याणकारी होना जैसे सद्गुण हमको परमात्मा से प्राप्त होते हैं। इन गुणों को जीवन में धारण करना उपासक का कर्तव्य है।। 61।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : एतत् (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **रुद्र** (रुद् - रोना)। **अवसम्** (अव् = रक्षा करना)। **तेन** (सर्वनाम)। **परः** (अव्यय)। **मूजवतः** (मुज् = शब्द करना)। **अतीहि** (इ = जाना, जानना)। **अवततधन्वा** (अव = रक्षा करना, तन् = विस्तार करना)। **पिनाकावसः** (पि = जाना, जानना)। **कृत्तिवासा** (कृ - करना, वस - निवास करना)। **अहिंसन्** (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, हिंस् - मारना, बध करना)। **नः** (सर्वनाम)। **शिव** (शिव् = कल्याण करना)। **अतीहि** (अत् = सतत् गति होना, इ = जाना, जानना)।। 61।।

127. त्रि आयुषम् जमदग्नेः, कश्यपस्य त्रि आयुषम् ।।
यत् देवेषु त्रि आयुषम्, तत् नो अस्तु त्रि आयुषम् ।। 62 ।।

संहितापाठ

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् ।। 62 ।।

मन्त्रार्थ : जमदग्नेः जमदग्नि का **त्रि आयुषम्** त्र्यायुष, **कश्यपस्य** कश्यप का **त्रि आयुषम्** त्र्यायुष, **यत्** जो **देवेषु** देवों में **त्रि आयुषम्** त्र्यायुष, **तत्** वह **नो** हमारा **त्रि आयुषम्** त्र्यायुष **अस्तु** हो।

भावार्थ : त्रिविध आयु अर्थात् बाल्य, यौवन, वृद्ध अवस्थाएँ। हमारा सम्पूर्ण जीवन देवों अर्थात् तेजस्वी विद्वानों के समान हो। बाल्यकाल से ही देवत्व की साधना-उपासना करें तो देवों के समान जीवन प्राप्त होता है।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : त्रि-आयुषम् (अय-आयुस् - जीवनम्)। **जमदग्नेः** (जम् = खाना)। **कश्यपस्य** (कश - प्रकाश होना)। **यत्** (सर्वनाम)। **देवेषु** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **तत्** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **अस्तु** (अस् = होना)।62 ।।

128. शिवो नाम असि स्वधितिः ते पिता, नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ।।
नि वर्तयामि आयुषे, अन्नाद्याय प्रजननाय, रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ।। 63 ।।

संहितापाठ

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः। निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ।।

मन्त्रार्थ : शिवो शिव **नाम** नाम वाले **असि** हो, **स्वधितिः** स्वधिति **ते** तुम्हारे **पिता** पिता (हैं), **नमस्ते** नमस्ते **अस्तु**

हो, **मा मा** मत **हिंसीः** हिंसा करो। **आयुषे** आयु के लिए, **अन्नाद्याय** अन्न खाने के लिए, **प्रजननाय** प्रजनन के लिए, **रायस्पोषाय** रायस्पोष के लिए, **सुप्रजास्त्वाय** अच्छे सन्तान के लिए, **सुवीर्याय** उत्तम वीरता के लिए वरण करता हूँ।

भावार्थ : उत्तम गुण, श्रेष्ठ जीवन, सफल सामाजिक कर्तव्य निर्वाह के लिए शुभ कामना की गयी है। परमात्मा तथा उपासक दोनों को श्लेष अलंकार से एक साथ सम्बोधन किया गया है।। 63।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : शिवः (शिव् = कल्याण करना)। **नाम** (नम - नमना, नमस्कार करना)। **असि** (अस् = होना)। **स्वधितिः** (स्व + धिति, धि = धारण करना)। **ते** (सर्वनाम)। **पिता** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **नमस्ते** (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना, ते - तुमको)। **अस्तु** (अस् = होना)। **मा मा** (अव्यय)। **हिंसीः** (हिंस् - मारना, बध करना, दुःख देना, सताना)। **निवर्तयामि** (वृत् = रहना, होना, वर्ताव करना, चमकना, बोलना, वरण करना, सेवा करना)। **आयुषे** (अय - जाना, आयुस् - जीवनम्)। **अन्नाद्याय** (अद - खाना)। **प्रजननाय** (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **रायस्पोषाय** (रय् - जाना, हिलना, रा = दान करना)। **सुप्रजास्त्वाय** (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **सुवीर्याय** (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)।।

इति तृतीयो अध्यायः

ॐ

चतुर्थो अध्यायः

(34) सूक्त 1

129. आ इदम् अगन्म, देवयजनम् पृथिव्याः, यत्र देवासो अजुषन्त विश्वे॥
ऋक्सामाभ्याम् सम् तरन्तो, यजुर्भी रायस्पोषेण सम् इषा मदेम॥
इमाः आपः शमु मे सन्तु, देवीः ओषधे त्रायस्व, स्वधिते मा एनम् हिंसीः॥1॥

संहितापाठ

एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासोऽजुषन्त विश्वे। ऋक्सामाभ्यासन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम। इमाऽआपः शमु मे सन्तु देवीरोषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः॥1॥

मन्त्रार्थ : पृथिव्याः पृथ्वी के **देवयजनम्** देवयजन को **आ अगन्म** जाना, **यत्र** जहाँ **देवासो** देवों ने **विश्वे** सम्पूर्ण **अजुषन्त** चिन्तन किया। **ऋक्सामाभ्याम्** ऋक् और साम द्वारा **सम् तरन्तो** सम्यक् पार होते हुए **यजुर्भी** यजुः द्वारा **रायस्पोषेण** दान के पोषण (तथा) **सम् इषा** सम्यक् विद्या द्वारा **मदेम** आनन्द प्राप्त करते हैं। **इमाः** यह **आपः** व्यापक भावना **मे** मेरे लिए **शमु** कल्याणकारी, स्वास्थ्य, शान्ति प्रदायक **सन्तु** हो। **देवीः** दिव्य **औषधि** ओषधे **त्रायस्व** रक्षा करे, **स्वधिते** हे स्वधित! **एनम्** इसकी **मा** मत **हिंसीः** हिंसा करो।

भावार्थ : यजन का अर्थ देवपूजा, संगतिकरण, दान है। देवयजन कहकर देवत्व अर्थात् तेजस्विता-विद्वता पर विशेष बल दिया गया है। आनन्द पाने के लिए देवयजन, चिन्तनशीलता तथा सम्यक् विद्या आवश्यक है। ऋक्, साम, यजुः के स्वाध्याय तथा मार्गदर्शन से दान की भावना का पोषण होता है, उत्तम विद्या की प्राप्ति होती है जिससे आनन्द प्राप्त होता है। यही भावना, परमात्मा की उपासना ही दिव्य औषधि है, जो सदैव रक्षा करती है। स्वधित का अर्थ है स्वयम् को धारण किये हुए, अर्थात् आत्म-निर्भर, स्वावलम्बी। अमृत विद्या की हिंसा मत करो, इसे हानि मत पहुँचाओ। इस अमृत विद्या की रक्षा करेंगे तो हमारी रक्षा भी होगी॥1॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : एदम् (आ + इदम्, सर्वनाम)। **अगन्म** (गम् = जाना)। **देवयजनम्** (दिव् = तेजस्वी होना, जानना, यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान)। **पृथिव्याः** (पृथृ - व्याप्त होना, विस्तार करना, फैलना)। **यत्र** (सर्वनाम)। **देवासः** (दिव् = तेजस्वी होना, जानना)। **अजुषन्त** (जुष् = विचार करना, सेवा करना)। **विश्वे** (सर्वनाम)। **ऋक्-सामाभ्याम्** (ऋच - स्तुति करना, साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)। **सन्तरन्तः** (सम् + तरन्तः, तृ = तैरना, पार होना)। **यजुर्भीः** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। **रायस्पोषेण** (रा = दान करना, पा- पालन करना, पोषण करना)। **समिषा** (सम् + इषा, इष् = जाना, जानना, पाना, इच्छा करना)। **मदेम** (मद् = तृप्त करना, हर्ष होना)। **इमाः** (सर्वनाम)। **आपः** (आप् = व्याप्त होना, पाना)। **शमु** (शम् = प्रसिद्ध, स्पष्ट, सान्त्वना, शान्त, स्वस्थ, कल्याण करना)। **मे** (सर्वनाम)। **सन्तु** (अस् - होना)। **देवीः** (दिव् = तेजस्वी होना, जानना)। **ओषधे** (ओषध् - चिकित्सा करना, रोगमुक्त करना)। **त्रायस्व** (त्रै = पालन, रक्षा, पोषण करना)। **स्वधिते** (स्व+धिते, स्व = निज, अपना, धा = धारण करना, पहनना, पोषण करना, रक्षण करना, पास रखना या होना, युक्त होना)। **मा** (अव्यय)। **एनम्** (सर्वनाम)। **हिंसीः** (हिंस् - मारना, बध करना, दुःख देना, सताना)॥1॥

130. आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु, घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु॥
विश्वम् हि रिप्रम् प्र वहन्ति देवीः, उत् इत् आभ्यः शुचिः आ पूतः एमि॥
दीक्षा-तपसोः तनूः असि ताम् त्वा, शिवाम् शग्माम् परि दधे भद्रम् वर्णम् पुष्यन्॥2॥

संहितापाठ

आपोऽअस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्वꣳहि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूतऽएमि। दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाशग्मां परिदधे भद्रं वर्ण पुष्यन्॥2॥

मन्त्रार्थ : आपो व्यापक **मातरः** माताएँ अस्मान् हमको **शुन्धयन्त** शुद्ध करें। **घृतप्वः** अभिसिञ्चन से पवित्र करने वाले **नो** हमें **घृतेन** प्रकाश अभिसिञ्चन से **पुनन्तु** पवित्र करें। **देवीः** दिव्यताएँ **विश्वम् हि** सम्पूर्ण **रिप्रम्** श्रुति को **प्र वहन्ति** प्रवाहित कर रही हैं। **आभ्यः** उससे **उत् इत्** वही **शुचिः** शुद्धता **आ पूतः** पवित्रता **एमि** प्राप्त करता हूँ। **दीक्षा-तपसोः** दीक्षा और तप का **तनूः** विस्तार **असि** हो। **ताम्** उसको **शिवाम्** कल्याणकारी **शग्माम्** शक्ति, **त्वा** तुमको **भद्रम्** भद्र **वर्णम्** वर्ण का **पुष्यन्** पोषण करते हुए **परि दधे** धारण करते हैं।

भावार्थ : व्यापक प्रकृति, दिव्य शक्तियाँ, व्यापक भाव विचार माता की तरह हमें शुद्ध पवित्र करते हैं। दिव्य श्रुति वेद वाणी, परमात्मा तथा प्रकृति का सन्देश निरन्तर प्रवाहित हो रहा है, उसे सुनें, समझें, आचरण करें तो पवित्रता प्राप्त होगी। उपासक दीक्षा और तप साधना का साकार विस्तार स्वरूप होता है। कल्याणकारी वरणीय का पोषण करते हुए उसे धारण करने का भाव है कि उपासकों को सहयोग संरक्षण प्रदान करें। वह भद्र अर्थात् कल्याणकारी और वरण करने योग्य है॥ 2॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : आपः (आप् = व्याप्त होना, पाना)। **अस्मान्** (सर्वनाम)। **मातरः** (मा - मान करना, मापना)। **शुन्धयन्तु** (शुन्ध् = शुद्ध-पवित्र होना, करना)। **घृतेन** (घृ = सींचना, प्रकाशित होना)। **नो** (सर्वनाम)। **घृतप्वः** (घृ = सींचना, प्रकाशित होना,पू = पवित्र करना)। **पुनन्तु** (पू = पवित्र करना)। **विश्वम्** (सर्वनाम)। **हि** (अव्यय)। **रिप्रम्** (री = सुनना)। **प्रवहन्ति** (वह् = वहन करना, ले जाना)। **देवीः** (दिव् = तेजस्वी होना, जानना)। **उदित्** (उत् + इत्, सर्वनाम)। **आभ्यः** (सर्वनाम)। **शुचिः** (शुच् = पवित्र होना, करना)। **आ पूतः** (आ - सम्यक्, समन्तात्, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **एमि** (ई - जाना)। **दीक्षा-तपसोः** (दीक्ष - दीक्षा देना, उपदेश देना, तप - तप्त होना)। **तनूः** (तन् = विस्तार होना)। **असि** (अस् = होना)। **ताम्** (सर्वनाम)। **त्वा** (सर्वनाम)। **शिवाम्** (शिव् = कल्याण करना)। **शग्माम्** (शक् = शक्तिमान्, समर्थ होना)। **परिदधे** (परि + दध = धारण करना)। **भद्रम्** (भदि-भन्द् = सुख, कल्याण होना)। **वर्णम्** (वृ = वरण करना)। **पुष्यन्** (पुष् = पोषण करना)॥

131. महीनाम् पयो असि, वर्चोदा असि, वर्चो मे देहि॥
वृत्रस्य असि कनीनकः, चक्षुर्दा असि, चक्षुः मे देहि॥3॥

संहितापाठ

महीनां पयोऽसि वर्चोदाऽसि वर्चो मे देहि। वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दाऽअसि चक्षुर्मे देहि॥3॥

मन्त्रार्थ : महीनाम् पूजनीयों की **पयो** विद्या, प्रवाह, विस्तार **असि** हो, **वर्चोदा** ज्योतिप्रद **असि** हो, **मे** हमें **वर्चो** प्रकाश **देहि** दो। **वृत्रस्य** प्रकाश, वाणी के **कनीनकः** प्रकाशक, **स्नेही** विद्वान् **असि** हो, **चक्षुर्दा** स्पष्ट वाणी, **दृष्टि** दाता **असि** हो, **मे** मुझे **चक्षुः** स्पष्ट वाणी, दृष्टि **देहि** प्रदान करो।

भावार्थ : पूजनीयों का विस्तार, परम पूजनीय परमात्मा ही है। वही वाणी, विद्या, प्रकाश, दृष्टि आदि सब कुछ देने वाला है॥ 3॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : महीनाम् (मही = पूजा, पूजनीय होना)। **पयः** (पय् = जाना, जानना, बहना, पयस् = विस्तार करना)। **असि** (अस् = होना)। **वर्चोदा** (वर्च् = प्रकाश होना, दा = देना)। **वर्चः** (वर्च् = प्रकाश होना)। **मे** (सर्वनाम)। **देहि** (दा - देना)। **वृत्रस्य** (वृत् = वरण करना, तय करना, सेवा करना, चमकना, बोलना)। **कनीनकः** (कन् = प्रकाश प्रीति, तृप्त होना, जाना, जानना)। **चक्षुर्दाः** (चक्ष् = कहना, देखना)। **चक्षुः** (चक्ष् = कहना, देखना)॥ 3॥

132. चित्पतिः मा पुनातु, वाक्पतिः मा पुनातु, देवो मा सविता पुनातु,
अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः॥
तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य, यत् कामः पुने तत् शकेयम्॥4॥

संहितापाठ

चित्पतिर्मा पुनातु वाक्यपतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥4॥

मन्त्रार्थ : चित्पतिः चेतना के स्वामी **मा** मुझे **पुनातु** पवित्र करें। **वाक्पतिः** वाणी के स्वामी **मा** मुझे **पुनातु** पवित्र करें। **देवो** देव **सविता** ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता **अच्छिद्रेण** निर्दोष **पवित्रेण** पवित्र **सूर्यस्य** सूर्य **रश्मिभिः** किरणों से **मा** मुझे **पुनातु** पवित्र करें। **पवित्रपते** हे पवित्रपति! **ते** तुम्हारे **तस्य** उस **पवित्रपूतस्य** पवित्रता से पवित्र की **यत्** जो **कामः** कामना **पुने** पवित्र होती है, **तत्** वह **शकेयम्** कर सकूं।

भावार्थ : समस्त गुणों तथा शक्तियों के स्वामी परमात्मा तथा उपासक परम पवित्र हैं। उनसे हम भी पवित्रता ग्रहण करें॥ 4॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : चित्पतिः (चित् = चेतना, विचार करना, स्मरण करना, पत् = ऐश्वर्य होना, स्वामी होना)। **मा** (सर्वनाम)। **पुनातु** (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **वाक्पतिः** (वच - बोलना, कहना, समझाना, पत् = ऐश्वर्य होना, स्वामी होना)। **देवो** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना)। **सविता** (सु - उत्पन्न करना, पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना)। **अच्छिद्रेण** (छिद्र - छेद करना)। **पवित्रेण** (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **सूर्यस्य** (सुर - अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना)। **रश्मिभिः** (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। **तस्य** (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **पवित्रपते** (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **पवित्रपूतस्य** (पु - पालन करना, रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **यत्** (सर्वनाम)। **कामः** (कम - चाहना, इच्छा करना)। **पुने** (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **तत्** (सर्वनाम)। **शकेयम्** (शक - सहन करना, शक्तिमान होना)॥ 4॥

133. आ वो देवास ईमहे, वामम् प्रयति अध्वरे ॥ आ वो देवास आशिषः, यज्ञियासः हवामहे ॥5॥

संहितापाठ

आ वो देवासऽईमहे वामं प्रयत्यध्वरे। आ वो देवासऽआशिषो यज्ञियासो हवामहे ॥5॥

मन्त्रार्थ : देवास हे देवगण! **वामम्** विद्या सुगन्धयुक्त **वो** तुम लोगों को **अध्वर** अहिंसक **प्रयति** प्रयत्न में **आ ईमहे** हम चाहते हैं। **देवास** हे देवगण! **आशिषः** हे आशेष **यज्ञियासः** यजनकर्ता, **वो** तुम लोगों का **आ हवामहे** हम आह्वान करते हैं।

भावार्थ : तेजस्वी विद्वान् देवगण विद्या की सुगन्ध से परिपूर्ण होते हैं। अहिंसक प्रयत्न में उनका संरक्षण-सहयोग प्राप्त होता है। वे संसाधन-सामर्थ्य शेष रहने तक यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण तथा दान जैसे उत्तम कर्म करते रहते हैं। ऐसे तेजस्वी विद्वानों को बुलाना, अपने बीच सम्मान देना कर्तव्य है॥ 5॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : आ (उपसर्ग)। **वो** (सर्वनाम)। **देवास** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना, प्रसन्न करना)। **ईमहे** (ई = गति करना, व्यापक होना, चाहना, इच्छा करना, चमकना, फेंकना, भेजना)। **वामम्** (वा = जाना, जानना, गन्ध होना)। **प्रयति** (यत् = यत्न करना, निश्चय करना)। **अध्वरे** (ध्वृ = हिंसा करना)। **आशिषः** (शिष् = बचा रहना, शेष रहना)। **यज्ञियासः** (यज देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। **हवामहे** (ह्वे = बुलाना)॥ 5॥

(35) सूक्त 2

134. स्वाहा यज्ञम् मनसः स्वाहा, उरोः अन्तरिक्षात् स्वाहा ॥
द्यावा-पृथिवीभ्याम् स्वाहा, वातात् आरभे स्वाहा ॥6॥

संहितापाठ

स्वाहा यज्ञं मनसः स्वाहोरोर्तरिक्षात् स्वाहा। द्यावापृथिवीभ्यास्वाहा वातादारभे स्वाहा ॥6॥

मन्त्रार्थ : स्वाहा हे सर्वव्यापी! **मनसः** मन से **यज्ञम्** यजन **स्वाहा** सर्वव्यापी हो, **उरोः** बहुत गति से, **अन्तरिक्षात्** अन्तरिक्ष से **स्वाहा** सर्वव्यापी हो, **द्यावा-पृथिवीभ्याम्** द्यावा और पृथ्वी से **स्वाहा** व्यापक, **वातात्** सुख, गति (वा = गति करना) से **आरभे** आरम्भ करता हूँ, **स्वाहा** सर्वव्यापी हो।

भावार्थ : यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान श्रेष्ठकर्म हैं। ये सर्वव्यापी हैं, बहुत व्यापक हैं। यजन का उच्च आदर्श पृथ्वी से आकाश तक व्यापक है, उससे भी अधिक व्यापक विस्तृत है। 6।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : स्वाहा (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना)। **यज्ञम्** (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **मनसः** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, विचार करना)। **उरोः** (उर् = जाना, जानना, बहुत)। **अन्तरिक्षात्** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **द्यावा-पृथिवीभ्याम्** (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, पृथृ - व्याप्त होना, विस्तार करना, फैलना)। **वातात्** (वात् = सुख, सेवा, गति होना या करना)। **आरभे** (रभ = आनन्दित होना, प्रसन्न होना, आ - प्रारम्भ करना, आनन्दित होना)।। 6।।

135. आकूत्यै प्रयुजे अग्नये स्वाहा, मेधायै मनसे अग्नये स्वाहा,
दीक्षायै तपसे अग्नये स्वाहा, सरस्वत्यै पूष्णे अग्नये स्वाहा।।
आपो देवीः बृहतीः विश्व-शम्भुवो, द्यावा-पृथिवी उरो अन्तरिक्ष।।
बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा।।7।।

संहितापाठ

आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा। आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवीऽउरोऽ अन्तरिक्ष। बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा।।7।।

मन्त्रार्थ : आकूत्यै सम्यक् वाणी **प्रयुजे** समाधि **अग्नये** अग्नि के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **मेधायै** मेधा **मनसे** मन **अग्नये** अग्नि के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **दीक्षायै** दीक्षा **तपसे** तप **अग्नये** अग्नि के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **सरस्वत्यै** सरस्वती **पूष्णे** पोषक **अग्नये** अग्नि के लिए **स्वाहा** व्यापकता हो। **आपो** हे सर्वव्यापी! व्यापक **देवीः** दिव्यता **बृहतीः** बृहत् **विश्व-शम्भुवो** विश्वकल्याण भावना, **द्यावा-पृथिवी** द्यावा-पृथ्वी, **उरो** विराट **अन्तरिक्ष** अन्तरिक्ष, **बृहस्पतये** बृहस्पति के लिए **हविषा** देय को **विधेम** धारण करें।

भावार्थ : अग्नि अर्थात् गतिशीलता तथा अग्रणी विद्वान् के विविध गुणों का उल्लेख करते हुए व्यापकता की कामना की गयी है। अग्निस्वरूप विद्वान् मार्गदर्शकों में ये गुण व्याप्त हों तथा समाज में उनके सदुपदेश से ये गुण सर्वव्यापी हों। अग्नि तथा सर्वव्यापी का आदर्श स्वरूप तो परमात्मा ही है। उसके लिए दान की भावना को व्यापक रूप से धारण करें।।7।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : आकूत्यै (कु, कू = शब्द करना)। **प्रयुजे** (युज् = समाधि होना)। **अग्नये** (अग् = गति करना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **मेधायै** (मेधृ - समझना, जानना, सङ्गति करना, मेल करना)। **मनसे** (मन - जानना, समझना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **दीक्षायै** (दीक्ष-दीक्षा देना, उपदेश देना)। **तपसे** (तप - तपना, तप करना, तप्त होना, ऐश्वर्ययुक्त होना)। **सरस्वत्यै** (सृ - जाना, सरकना)। **पूष्णे** (पुष् = पोषण करना, धारण करना)। **आपः** (आप् = व्याप्त होना, पाना)। **देवीः** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना, प्रसन्न करना)। **बृहतीः** (बृह् = बढ़ना, वृद्धि होना)। **विश्व-शम्भुवः** (शम् = शमन करना, शान्त होना, सुख होना, कल्याण होना)। **द्यावा-पृथिवी** (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, पृथृ - व्याप्त होना, विस्तार करना, फैलना)। **उरो** (उर् = जाना, चलना)। **अन्तरिक्ष** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **बृहस्पतये** (बृह - बढ़ना)। **हविषा** (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। **विधेम** (धा = धारण करना)।।7।।

136. विश्वो देवस्य नेतुः, मर्तो वुरीत सख्यम्।। विश्वो राय इषुध्यति, द्युम्नम् वृणीत पुष्यसे।। स्वाहा।।8।।

संहितापाठ

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम्। विश्वो रायऽइषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा।।8।।

मन्त्रार्थ : विश्वो सभी **देवस्य** देवों को **नेतुः** ले जाने वाला **मर्तो** मरणशील (मनुष्य) **सख्यम्** मित्रता का **वुरीत** वरण करे। **विश्वो** सभी **राय** विद्याएँ **द्युम्नम्** अग्रणी को **इषुध्यति** प्राप्त होती हैं। **पुष्यसे** पुष्टि के लिए **स्वाहा** सर्वव्यापी का **वृणीत**

वरण करो।

भावार्थ : मरणशील अर्थात् अल्पजीवी क्षणभंगुर मानव ही सभी देवों को ले जाने वाला है। देव का अर्थ तेजस्वी विद्वान् है तथा प्राकृतिक शक्तियाँ भी। साधारण मानव ही सबका पालक, पोषक, संरक्षक है। मानव में सबके प्रति सख्य या मैत्री भाव होना चाहिए। जिससे समाज तथा प्रकृति की देवशक्तियों का संरक्षण तथा विकास हो सके, विनाश न हो। रायः का शाब्दिक अर्थ दान, गति तथा जानना है। इसका भावार्थ बहुधा धन किया जाता है। गतिशीलता तथा विद्या ही वस्तुतः वास्तविक धन हैं, उत्तम आध्यात्मिक सम्पदा है। अग्रणी होने पर ही विभूतियाँ मिलती हैं। आगे बढ़कर पुरुषार्थ करें तथा पोषण, शक्ति प्राप्त करने के लिए सर्वव्यापी परमात्मा का वरण करें, उपासना करें।। 8।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : विश्वः (सर्वनाम)। **देवस्य** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना, प्रसन्न करना)। **नेतुः** (नी = ले जाना)। **मर्तो** (मृ = मरना)। **वुरीत** (वृ = वरण करना)। **सख्यम्** (सख् = मित्र होना)। **राये** (रय् = जाना, जानना, पाना)। **इषुध्यति** (इष् = जाना, जानना, पाना, बार-बार करना, चाहना)। **द्युम्नम्** (द्यु = आगे जाना)। **वृणीत** (वृ = वरण करना)। **पुष्यसे** (पुष् = पोषण करना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)।। 8।।

(36) सूक्त 3

137. ऋक्-सामयोः शिल्पे स्थः ते वाम् आरभे ते, मा पातम् आ अस्य यज्ञस्य उत् ऋचः।।
शर्म असि शर्म मे यच्छ, नमः ते अस्तु मा हिंसीः।।9।।

संहितापाठ

ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मा पातमास्य यज्ञस्योदृचः। शर्मासि शर्म मे यच्छ नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः।।9।।

मन्त्रार्थ : ऋक्-सामयोः ऋक् और साम के **शिल्पे** शिल्प में **स्थः** स्थित हो। **वाम्** तुम दोनों को, **ते** तुम दोनों के लिए **आरभे** आरम्भ करता हूँ। **अस्य** इस **यज्ञस्य** यजन की **उत् ऋचः** उत्कृष्ट ऋचाएँ **मा** मेरी **पातम्** रक्षा करें, पालन पोषण करें। **शर्म** सुख-सम्मान के हेतु **असि** तुम हो, **मे** मुझे **शर्म** सुख-सम्मान **यच्छ** प्रदान करो। **ते** तुम्हारे लिए **नमः** नमन **अस्तु** हो, **मा** मत **मा** मेरी हिंसीः हिंसा करो।

भावार्थ : इसमें द्विवचन का प्रयोग ध्यान देने योग्य है। ऋक् और साम दो प्रकार के मन्त्रों या दो वेदों का उल्लेख प्रमुख है। वेद दो हैं, स्वाध्याय करने में आचार्य तथा शिष्य दो हुए, यजन करने में याजक तथा यजमान दो हुए, उपासना में उपास्य परमात्मा तथा उपासक दो हुए। इन्हीं युगलों की ओर संकेत है। दोनों के लिए दोनों का आरम्भ किया जाता है। आचार्य तथा शिष्य ऋक् तथा साम का स्वाध्याय प्रारम्भ करते हैं। इसी प्रकार यजन को भी याजक तथा यजमान प्रारम्भ करते हैं। ऐसे उत्तम कार्य सुख-सम्मान प्राप्त होगा, नमन होगा तथा हिंसा तो होनी ही नहीं चाहिए।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : ऋक्-सामयोः (ऋच - स्तुति करना, साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)। **शिल्पे** (शिल - बीनना, उञ्छन करना, एक एक करके बीनना)। **स्थः** (स्था - स्थित होना, ठहरना)। **ते** (सर्वनाम)। **वाम्** (सर्वनाम)। **आरभे** (रभ - आनन्दित होना, आ - प्रारम्भ करना)। **मा** (सर्वनाम)। **पातम्** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **आ** (उपसर्ग)। **अस्य** (सर्वनाम)। **यज्ञस्य** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। **उत्** (अव्यय)। **ऋचः** (ऋच - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। **शर्म** (शर्म् = सुख होना, श्रीमान् होना, सम्मानित होना)। **असि** (अस् = होना)। **मे** (सर्वनाम)। **यच्छ** (दा-यच्छ् = देना)। **नमस्ते** (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। **अस्तु** (अस् = होना)। **मा मा** (अव्यय)। **हिंसीः** (हिंस् - मारना, बध करना, दुःख देना, सताना)।। 9।।

138. ऊर्क् असि आङ्गिः असि, ऊर्ण-म्रदा ऊर्जम् मयि धेहि।
सोमस्य नीविः असि, विष्णोः शर्म असि, शर्म यजमानस्य, इन्द्रस्य योनिः असि, सुसस्याः कृषीः कृधि।
उत् श्रयस्व वनस्पते ऊर्ध्वो मा पाहि अंहसः, आ अस्य यज्ञस्य उत् ऋचः।।10।।

संहितापाठ

ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदाऽऊर्जं मयि धेहि। सोमस्य नीविरसि विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषीस्कृधि। उच्छ्रयस्व वनस्पतऽऊर्ध्वो मा पाह्यꣳहसऽआस्य यज्ञस्योदृचः ॥10॥

मन्त्रार्थ : ऊर्क विद्या **असि** हो, **आङ्गिः** विद्वान् **असि** हो, **ऊर्ण-म्रदा** आवरणविनाशक **ऊर्जम्** ऊर्जा **मयि** मुझमें **धेहि** दो। **सोमस्य** सोम का **नीविः** विस्तार **असि** हो, **विष्णोः** विष्णु का **शर्म** सम्मान **असि** हो, **यजमानस्य** यजमान का **शर्म** शर्म, **इन्द्रस्य** इन्द्र का **योनिः** योनि (सम्मान, मिलाना, अलग करना, बन्धन) **असि** हो, **सुसस्याः** अच्छे स्वप्न का **कृषीः** विलेखन **कृधि** करो। **वनस्पते** हे विद्वान्! **उत् श्रयस्व** उत्कृष्ट सेवा करो। **आ अस्य** इस **यज्ञस्य** यजन की **उत्** उत्कृष्ट **ऊर्ध्वो** ऊर्ध्व **अंहसः** प्रकाशमान **उत्** उत्कृष्ट **ऋचः** ऋचाओं! **मा** मेरी **पाहि** रक्षा करो।

भावार्थ : परमेश्वर तथा उपासक में समस्त गुण तथा शक्तियाँ निहित हैं। वे समाज की उत्कृष्ट सेवा करते हैं। यजन अर्थात् देवपूजा में उच्चारित ऋचाएँ उपासक की रक्षा करती हैं॥ 10॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : ऊर्क (उर् = जाना, जानना)। **असि** (अस् = होना)। **आंगिः** (अंग् = गति करना, जानना)। **ऊर्ण-म्रदा** (ऊर्णु = आच्छादन को चूर्ण करने वाला, आवरण नष्ट करने वाला, आच्छादन करना, मृद्-म्रद् = चूर्ण करना, कोमल बनाना)। **ऊर्जम्** (ऊर्ज - बलवान् होना, पराक्रमी होना, जीना, जिलाना)। **मयि** (सर्वनाम)। **धेहि** (धि - धारण करना)। **सोमस्य** (सु - उत्पन्न करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। **नीविः** (नीव् = फैलना, पृथुल होना)। **विष्णोः** (विष्ण् = व्यापक होना)। **शर्म** (शर्म् = सुख होना, श्रीमान् होना, सम्मानित होना)। **यजमानस्य** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। **इन्द्रस्य** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **योनिः** (यु-युञ् = बन्धन होना, बाँधना, यु = मिलाना, अलग करना)। **सुसस्याः** (सस् = स्वप्न, सोना)। **कृषीः** (कृष् = विलेखन, कर्षण करना, रेखा करना)। **कृधि** (कृ = करना)। **उत्** (अव्यय)। **श्रयस्व** (श्रि-श्रय् = सेवा करना)। **वनस्पते** (वन् = सेवा करना, शब्द करना, सहायता करना)। **ऊर्ध्वः** (सर्वनाम)। **मा** (सर्वनाम)। **पाहि** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **अंहसः** (अंह् = प्रकाशित होना, चमकना, शब्द करना)। **आ** (उपसर्ग)। **अस्य** (सर्वनाम)। **यज्ञस्य** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। **उत्** (अव्यय)। **ऋचः** (ऋच - स्तुति करना, आच्छादित करना, ढकना, चमकना)॥ 10॥

139. व्रतम् कृणुत, अग्निः ब्रह्म, अग्निः यज्ञः, वनस्पतिः यज्ञियः।
दैवीम् धियम् मनामहे, सुमृडीकाम् अभिष्टये, वर्चोधाम् यज्ञ-वाहसम् सुतीर्था नो असत् वशे।
ये देवाः मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवः, ते नो अवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा॥11॥

संहितापाठ

व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः। दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवाहसꣳसुतीर्था नोऽअसद्वशे। ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा॥11॥

मन्त्रार्थ : व्रतम् व्रत **कृणुत** करो। **अग्निः** अग्नि, **ब्रह्म** ब्रह्म, **अग्निः** अग्नि **यज्ञः** यजन, **वनस्पतिः** विद्वान् **यज्ञियः** यजनकर्ता (है) **दैवीम्** दिव्य **धियम्** धारणा शक्ति का **मनामहे** मनन करते हैं। **अभिष्टय** अभीष्ट के लिए **सुमृडीकाम्** उत्तम सुख, **वर्चोधाम्** प्रकाशमान, **यज्ञ-वाहसम्** यजनवाहक, **सुतीर्था** उत्तम तीर्थ **नो** हमारे **वशे** वश में **असत्** हों। **ये** जो **देवाः** देवगण **मनोजाता** मनन से उत्पन्न, **मनोयुजो** मनन से युक्त, **दक्षक्रतवः** दक्षकर्मी (हैं) **ते** वे **नो** हमारी **अवन्तु** रक्षा करें, हमें प्रकाशित करें, **पान्तु** पालन करें, **तेभ्यः** उनके लिए **स्वाहा** सर्वव्यापी है।

भावार्थ : व्रत का अर्थ है वरण करना, अपनाना, स्वीकार करना, चुनना। हम किसी उत्तम कार्य को करना स्वीकार करते हैं, उसे व्रत करना कहते हैं। अग्नि अर्थात् अग्रणी विद्वान् साकार प्रत्यक्ष ब्रह्म स्वरूप होता है। ब्रह्म का अर्थ है बड़ा। सबसे बड़ा परमेश्वर है। अतः वह ब्रह्म है। वेदवाणी भी ब्रह्म है तथा विद्वान् भी ब्रह्म हैं। यजन अग्नि अर्थात् अग्रणी विद्वान् के लिए है, यजन उसके मार्गदर्शन तथा संरक्षण में ही सम्भव है। अतः अग्नि ही यजनस्वरूप है। वनस्पति का अर्थ है वाणी का अधिपति अर्थात् विद्वान्। वही यजनकर्ता हो सकता है। बिना विद्वान् के यजन सम्भव नहीं है। ये देवगण अर्थात् तेजस्वी विद्वान् मनन से उत्पन्न तथा मनन से युक्त होते हैं। वे ही समाज को विद्या का प्रकाश तथा मार्गदर्शन तथा संरक्षण प्रदान करते हैं। उनके लिए सर्वव्यापी परमेश्वर है, परमेश्वर ही उनका संरक्षक है॥ 11॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : व्रतम् (वृत - पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)। **कृणुत** (कृ - करना)। **अग्निः** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **ब्रह्म** (बृह् = बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। **यज्ञः** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। **वनस्पतिः** (वन् = शब्द करना)। **यज्ञियः** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। **दैवीम्** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रसन्न करना)। **धियम्** = धारण शक्ति को (धि, धी = धारण करना, आधारभूत होना)। **मनामहे** (मन् = जानना, मानना, विचार करना, समझना, बोध होना)। **सुमृडीकाम्** (मृड् = सुख देना, सुख होना)। **अभिष्टये** (इष् = चाहना)। **वर्चोधाम्** (वर्च् = प्रकाशित होना)। **यज्ञ-वाहसम्** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना, वह - बहना, झरना, ढोना, ढो ले जाना)। **सुतीर्था** (तीर् = पूर्ण करना, पार लगाना)। **नो** (सर्वनाम)। **असत्** (अस् = होना)। **वशे** (वश - इच्छा करना, चाहना)। **ये** (सर्वनाम)। **देवाः** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना, प्रसन्न करना)। **मनोजाता** (मन् = जानना, विचार करना, जन् = उत्पन्न होना)। **मनोयुजः** (मन् = जानना, विचार करना, युज - संयत करना, बांधना, वश में रखना)। **दक्षक्रतव** (दक्ष् = कार्य करना, दक्ष होना, जाना, जानना, कृ = करना)। **ते** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **अवन्तु** (अव् = रक्षा, प्रकाश आदि करना)। **पान्तु** (पा = रक्षा करना)। **तेभ्यः** (सर्वनाम)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥ 11॥

(37) सूक्त 4

140. श्वात्राः पीताः भवत यूयम् आपो, अस्माकम् अन्तः उदरे सुशेवाः॥
ता अस्मभ्यम् अयक्ष्मा अनमीवाः अनागसः, स्वदन्तु देवीः अमृताः ऋतावृधः॥12॥

संहितापाठ

श्वात्राः पीता भवत यूयमापोऽअस्माकमन्तरुदरे सुशेवा। ताऽस्मभ्यमयक्ष्माऽ अनमीवाऽअनागसः स्वदन्तु देवीरमृताऽऋतावृधः॥ 12॥

मन्त्रार्थ : यूयम् तुम सब **श्वात्राः** विद्या, वृद्धि, शुभ्रता को **पीताः** पी चुके **भवत** हो, **अस्माकम्** हमारे **अन्तः** भीतर **उदरे** उदर में **आपो** व्यापक **सुशेवाः** कल्याण सुख (हो)। **ता** वे **अस्मभ्यम्** हमारे लिए **अयक्ष्मा** यक्ष्मारहित **अनमीवाः** रोगरहित, **अनागसः** निष्पाप-निर्दोष (हों)। **देवीः** दिव्य **अमृताः** अमृत **ऋतावृधः** ऋतवर्धक **स्वदन्तु** खायें।

भावार्थ : सद्गुणों को पी लें, धारण करें, अपनायें तो वे हमारे भीतर। सुख-कल्याण के हेतु बनते हैं। सद्गुण हमें रोग-दोष से बचाते हैं। दिव्य ऋतवर्धक अमृत का सेवन करने का भाव है कि प्रकृति के अनुकूल जीवन हमें स्वस्थ रख सकता है। प्राकृतिक तत्वों वायु, जल, अग्नि आदि को देव माना जाता है तथा ऋत का भाव है व्यापक प्राकृतिक नियम। अपः का भावार्थ जल तथा प्राण भी किया जाता है। शरीर में प्राण के व्याप्त होने से ही जीवन है तथा जल भी जीवन का प्रमुख व्यापक तत्व है। शरीर में सर्वाधिक अंश जल ही होता है। आपः (व्यापक) शब्द का भावार्थ जल तथा प्राण बहुधा किया जाता है॥ 12॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : श्वात्राः (श्वि = जानना, जाना, बढ़ना)। **पीताः** (पी - पीना, प्राशन करना)। **भवत** (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **यूयम्** (सर्वनाम)। **आपः** (आप् = व्याप्त होना)। **अस्माकम्** (सर्वनाम)। **अन्तः** (उपसर्ग, सर्वनाम)। **उदरे** (उ - ही, उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, द्री - आदर करना, सम्मान करना, सत्कार करना, अर् - ऋ - जाना, फैलाना)। **सुशेवाः** (शिव् = कल्याण होना, सुख होना)। **ताः** (सर्वनाम)। **अस्मभ्यम्** (सर्वनाम)। **अयक्ष्मा** (यक्ष् - पूजा करना, सत्कार करना)। **अनमीवाः** (अम- बिमार होना, रोगग्रस्त होना)। **अनागसः** (अन्- नही, आग - दोष होना, अनुचित आचरण करना)। **स्वदन्तु** (सु + अदन्तु)। **देवीः** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना, प्रसन्न करना)। **अमृताः** (मृ = मरना, देहत्याग करना)। **ऋतावृधः** (ऋत - कृपा करना, दया करना, वृध - बढ़ना, अधिक होना)॥ 12॥

141. इयम् ते यज्ञिया तनूः, अपो मुञ्चामि न प्रजाम्॥
अंहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीम्, आ विशत पृथिव्या सम्भव॥13॥

संहितापाठ

इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुञ्चामिन प्रजाम्।अꣳहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविशत पृथिव्या सम्भव॥13॥

मन्त्रार्थ : ते तुम्हारे **इयम्** इस **तनूः** विस्तृत **यज्ञिया** यजनीय **अपो** प्रवाह को **मुञ्चामि** कहता हूँ, **प्रजाम्** प्रजा को **न** नहीं। **अंहोमुचः** विद्या, प्रकाश को कहने, देने वाले, **स्वाहाकृताः** व्याप्त करने वाले **पृथिवीम्** पृथ्वी पर **आ विशत** फैल जाओ, **पृथिव्या** पृथ्वी के **सम्भव** सम्यक् रूप से हो जाओ।

भावार्थ : परमेश्वर के विस्तृत यजन प्रवाह की स्तुति करें, अपने छोटे से परिवार की नहीं। विद्या तथा सद्गुणों का प्रकाश देने वाले व्यापक बनो और सम्पूर्ण संसार में फैलो, सम्यक् रूप से भलीभांति सम्पूर्ण पृथ्वी के हो जाओ, छोटे से क्षेत्र में सीमित न रहो॥ 13॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : इयम् (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **यज्ञिया** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। **तनूः** (तन् = विस्तार करना, होना)। **अपः** (अप पालने, अपस् - जलम्)। **मुंचामि** (मुंच् = बोलना, कहना, गर्व करना)। **न** (सर्वनाम)। **प्रजाम्** (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **अंहोमुचः** (अंह् = जाना, जानना, चमकना, प्रकाशित होना, मुच् = बोलना, कहना)। **स्वाहाकृताः** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, कृ = करना)। **पृथिवीम्** (पृथ फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना, व्याप्त होना, प्रकट होना)। **आविशत** (आ - सम्यक्, विश् = प्रवेश करना, फैलना)। **पृथिव्या** (पृथ फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना, व्याप्त होना, प्रकट होना)। **सम्भव** (भू = होना)॥ 13॥

142. अग्ने त्वम् सुजागृहि, वयम् सु मन्दिषीमहि॥रक्षा णो अप्रयुच्छन्, प्रबुधे नः पुनः कृधि॥14॥

संहितापाठ

अग्ने त्वꣳ सु जागृहि वयꣳ सु मन्दिषीमहि।रक्षा णोऽअप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि॥14॥

मन्त्रार्थ : अग्ने हे अग्रणी! **त्वम्** तुम **सुजागृहि** अच्छी तरह जागते हो, **वयम्** हम **सु मन्दिषीमहि** स्तुति करते हैं, आनन्द करते हैं, सोते हैं। **अप्रयुच्छन्** प्रमाद न करते हुए **णो** हमारी **रक्षा** रक्षा करो। **पुनः** पुनः **नः** हमारा **प्रबुधे** प्रबोध **कृधि** करो।

भावार्थ : सृष्टि में अग्रणी परमात्मा तथा समाज में अग्रणी विद्वान् उपासक तथा शासक-प्रशासक अच्छी तरह जागते हैं तो सभी लोग परमेश्वर की स्तुति करते हैं तथा आनन्द करते हुए चिन्तामुक्त होकर सोते हैं। समाज के अग्रणी लोग अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक रहें तो लोग आनन्दमय जीवन जी सकते हैं। जिस तरह परमेश्वर निरन्तर विराट सृष्टि का संचालन-संरक्षण कर रहा है, उसी तरह समाज के अग्रणी भी हमारी रक्षा करें तथा पुनः पुनः प्रबोध-सदुपदेश करते रहें॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अग्ने (अग् = गति करना, आगे जाना)। **त्वम्** (सर्वनाम)। **सुजागृहि** (जागृ - जगना, नींद न लेना)। **वयम्** (सर्वनाम)। **सु** (उपसर्ग)। **मन्दिषीमहि** (मन्द = स्तुति करना, तुष्ट करना, आनन्द करना, सोना, चाहना, चमकना, प्रकाशित होना)। **रक्षा** (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। **णो (नः)** (सर्वनाम)। **अप्रयुच्छन्** (युच्छ् = प्रमाद करना, असावधान होना)। **प्रबुधे** (बुध् = जानना, समझना)। **नः** (सर्वनाम)। **पुनः** (अव्यय)। **कृधि** (कृ = करना)॥

143. पुनः मनः पुनः आयुः मे आ अगन्, पुनः प्राणः पुनः आत्मा मे आ अगन्,
पुनः चक्षुः पुनः श्रोत्रम् मे आ अगन्।
वैश्वानरो अदब्धः तनूपा अग्निः, नः पातु दुरितात् अवद्यात्॥15॥

संहितापाठ

पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन्पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगन्पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मऽआगन्। वैश्वानरोऽअदब्धस्तनूपाऽअग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात्॥

मन्त्रार्थ : पुनः पुनः **मनः** मन, **पुनः** पुनः **आयुः** आयु **मे** मेरे लिए **आ अगन्** आ गये। **पुनः** पुनः **प्राणः** प्राण, **पुनः** पुनः **आत्मा** आत्मा **मे** मेरे लिए **आ अगन्** आ गये। **पुनः** पुनः **चक्षुः** आँख, **पुनः** पुनः **श्रोत्रम्** कान **मे** मेरे लिए **आ अगन्** आ

गये। **वैश्वानरो** विश्वनायक **अदब्धः** अहिंसक **तनूपा** विस्तृत पालक रक्षक **अग्निः** अग्रणी (परमात्मा) **दुरितात्** बुराई से, **अवद्यात्** न बोलने योग्य से **नः** हमारी **पातु** रक्षा करे।

भावार्थ : परमेश्वर से दूर होकर हम अपना सब कुछ खो देते हैं। उपासना से हमें सब कुछ पुनः प्राप्त होता है। मन, आयु, प्राण, आत्मा का पृथक् उल्लेख होने से स्पष्ट है कि ये सभी पृथक् तत्व हैं। इनके पुनः प्राप्त होने से यह भी स्पष्ट है कि जीव या प्राणी इन सभी से पृथक् है जिसे यह सब प्राप्त होता है। आत्मा के भी पुनः प्राप्त होने का स्पष्ट उल्लेख होने से स्पष्ट है कि आत्मा को मन, प्राण, आयु, देह नहीं प्राप्त होता है, अपितु आत्मा भी जीव को प्राप्त होने वाले तत्वों में एक है। इससे स्पष्ट है कि जीव या प्राणी की सत्ता या अस्तित्व आत्मा से पृथक है। यह सम्भव है कि जीव या प्राणी इन सभी का समूह, संयोग, समवाय हो। मन, आत्मा, प्राण, शरीर, आयु ये सभी जीव के अंग या भाग हो सकते हैं। शरीर भौतिक पदार्थ है यद्यपि वह भी जैविक द्रव्य है तथा निर्जीव वस्तुओं से भिन्न हैं। आत्मा परमेश्वर की चेतना शक्ति है। परमात्मा की चेतन शक्ति जीव में सक्रिय होकर आत्मा कही जाती है। मन भी आत्मा की चेतन शक्ति से कार्य करता है। मन ही शरीर तथा जीवन का संचालन करता है।। 15।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : पुनः (अव्यय)। **मनः** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **आयुः** (अय - जाना, आयुस् - जीवनम्)। **मे** (सर्वनाम)। **अ अगन्** (आ + अगन्, गम् = जाना)। **प्राणः** (अन- जीवन होना, चेतन होना। **आत्मा** (अत - जाना, निरन्तर गतिशील रहना)। **चक्षुः** (चक्ष् - साफ बोलना, कहना, देखना)। **श्रोत्रम्** (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। **वैश्वानरः** (विश्व = सभी, नृ = ले जाना)। **अदब्धः** (अद -नष्ट करना)। **तनूपा** (तन् = विस्तार करना, पा = रक्षा-पालन करना)। **अग्निः** (अग् - अगि = गति करना, आगे जाना)। **नः** (सर्वनाम)। **पातु** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **दुरितात्** (दु-दुन = दुःख भोगना, जलना, तप्त करना, जलाना)। **अवद्यात्** (वद् = बोलना)।। 15।।

(39) सूक्त 5

144. त्वम् अग्ने व्रतपा असि, देवः आ मर्त्येषु आ। त्वम् यज्ञेषु ईड्यः।
रास्व इयत् सोमा भूयो भर देवो नः, सविता वसोः दाता वसुः अदात्।। 16।।

संहितापाठ

त्वमग्ने व्रतपाऽअसि देवऽआ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः। रास्वेयत्सोमा भूयो भर देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वदात्।। 16।।

मन्त्रार्थ : अग्ने हे अग्नि! **त्वम्** तुम **व्रतपा** व्रत के रक्षक **असि** हो, **देवः** देव (तथा) **मर्त्येषु** मरणशीलों में, **त्वम्** तुम **यज्ञेषु** यजनों में **ईड्यः** स्तुत्य हो। **सोमा** हे सोम! **रास्व** दान दो, **भूयो** अतिशय **भर** भरण करो। **सविता** सृष्टिकर्ता **देवो** देव **वसोः** वसु के **दाता** देने वाले ने **नः** हमारे लिए **वसुः** वसु **अदात्** दिया है।

भावार्थ : प्राकृतिक दिव्य शक्तियों (देवों) तथा मरणशील मनुष्यों में अग्नि परमात्मा व्रत का रक्षक है। हम उत्तम व्रत लें तथा अपनी साधन क्षमता के अनुसार पूर्ण करने का प्रयास करें तो परमात्मा हमारे व्रत की रक्षा करता है, उसे पूर्ण करता है। यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण तथा दान जैसे उत्तम कर्मों में वह परमात्मा ही स्तुत्य है, उसकी ही स्तुति करने से यजन का व्रत पूर्ण होता है। उपासक को वह सब कुछ देता है।। 16।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : त्वम् (सर्वनाम)। **अग्ने** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **व्रतपा** (वृ - पसन्द करना, नियोजित करना, नियमित करना)। **असि** (अस् = होना)। **देवः** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न करना)। **आ** (उपसर्ग)। **मर्त्येषु** (मृ = मरना, देहत्याग करना)। **यज्ञेषु** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। **ईड्यः** (ईड - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। **रास्व** (रा = दान करना)। **इयत्** (इ = जाना, जानना, पाना)। **सोम** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **भूयः** (अव्यय)। **भर** (भृ - धारण करना, पोषण करना)। **नः** (सर्वनाम)। **सविता** (सु - उत्पन्न करना)। **वसोः** (वस - निवास करना)। **दाता** (दा - देना, सौंपना, लौटाना, रखना)। **वसु** (वस - निवास करना)। **अदात्** (दा - देना, सौंपना)।। 16।।

145. एषा ते शुक्र तनूः एतत् वर्चः, तया सम्भव भ्राजम् गच्छ॥जूः असि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे॥17॥

संहितापाठ

एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजङ्गच्छ।जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे॥18॥

मन्त्रार्थ : शुक्र हे पवित्रकर्ता! **एषा** यह **ते** तुम्हारा **तनूः** विस्तार वाणी, आश्रय, **एतत्** यह **वर्चः** प्रकाश है। **तया** उसके द्वारा **सम्भव** सम्भव **भ्राजम्** प्रकाश की ओर **गच्छ** जाओ। **विष्णवे** विष्णु (व्यापक) के लिए **जूः** गति विद्या, **मनसा** मन से **धृता** धारण किया हुआ, **जुष्टा** विचार, प्रीति सेवा किया हुआ **असि** हो।

भावार्थ : पवित्रकर्ता तथा व्यापक (शुक्र तथा विष्णु) परमेश्वर है। उसके उपासक भी ऐसे ही गुण तथा क्षमता वाले होते हैं। इनकी वाणी तथा प्रकाश अनन्त विस्तार के साथ सबको आश्रय देता है। उसके द्वारा अध्यात्म का प्रकाश सबको प्राप्त होता है॥17॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : एषा (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **शुक्र** (शुच् = शुद्ध-पवित्र होना)। **तनूः** (तनु = विस्तार करना, शब्द करना, सहायता करना, आश्रय देना)। **एतत्** (सर्वनाम)। **वर्चः** (वर्च = प्रकाशित होना)। **तया** (सर्वनाम)। **सम्भव** (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **भ्राजम्** (भ्राज् = चमकना, प्रकाश होना)। **गच्छ** (गम्, गच्छ् = जाना)। **जूः** (जु = जाना, जानना)। **असि** (अस् = होना)। **धृता** (धृ = धारण करना)। **मनसा** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **जुष्टा** (जुष् = विचार करना, प्रीति करना, सेवा करना)। **विष्णवे** (विष्ण = व्याप्त होना)॥

146. तस्याः ते सत्य-सवसः प्रसवे, तन्वो यन्त्रम् अशीय स्वाहा॥
शुक्रम् असि चन्द्रम् असि, अमृतम् असि वैश्वदेवम् असि॥18॥

संहितापाठ

तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा।शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि॥18॥

मन्त्रार्थ : ते तुम्हारे **तस्याः** उस **सत्य-सवसः** सत्य सृजन ऐश्वर्यवान् की **प्रसवे** सृष्टि में **यन्त्रम्** संकोचन को **तन्वो** विस्तार **अशीय** प्राप्त होता है, **स्वाहा** हे सर्वव्यापी! **शुक्रम्** पवित्र **असि** हो, **चन्द्रम्** आनन्द-प्रकाश **असि** हो, **अमृतम्** अमृत **असि** हो, **वैश्वदेवम्** विश्वदेव हो।

भावार्थ : परमेश्वर का ऐश्वर्य तथा सृजन सत्य है। उसकी सृष्टि में संकोचन को विस्तार होता है अर्थात् सूक्ष्म से विराट रूप प्राप्त होता है। वह सर्वव्यापी पवित्र, आनन्द-प्रकाश स्वरूप, अमृत तथा विश्वदेव है। समस्त देवशक्तियाँ उसमें ही निहित हैं॥18॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : तस्याः (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **सत्य-सवसः** (सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **प्रसवे** (सू = जन्म देना)। **तन्वः** (तन् = विस्तार होना)। **यन्त्रम्** (यन्त्र = संकुचित करना, अपने अधीन रखना)। **अशीय** (अश् = भोजन करना, व्यापना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **शुक्रम्** (शुच् = पवित्र, शुद्ध होना)। **असि** (अस् = होना)। **चन्द्रम्** (चन्द्र + आनन्द होना, चमकना)। **अमृतम्** (मृ = मरना, देहत्याग करना)। **वैश्वदेवम्** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न करना)।॥18॥

(39) सूक्त 6

147. चित् असि मना असि, धीः असि दक्षिणा असि,
क्षत्रिया असि यज्ञिय असि, अदितिः असि उभयतः शीर्ष्णी॥
सा नः सु प्राची सु प्रतीची एधि, मित्रः त्वा पदि बध्नीताम्,
पूषा अध्वनः पातु इन्द्राय अध्यक्षाय॥19॥

संहितापाठ

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्युभयतः शीर्ष्णी।सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि

मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां पूषाऽद्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय ॥19॥

मन्त्रार्थ : उभयतः शीर्ष्णी हे उभयतः शीर्षयुक्त! **चित् असि** चेतन हो, **मना** मननशील **असि** हो, **धीः** धारण शक्ति **असि** हो, **दक्षिणा** समृद्धि **असि** हो, **क्षत्रिया** रक्षक **असि** हो, **यज्ञिय** यजनीय **असि** हो, **अदितिः** अविनाशी **असि** हो। (दोनों ओर शीर्षयुक्त)! **सा** वह **नः** हमारे लिए **सु** सुन्दर **प्राची** पूर्व, **सु** सुन्दर **प्रतीची** पश्चिम **एधि** प्राप्त हो। **मित्रः** मित्र **त्वा** तुम्हारी **पदि** विद्या, गति में **बध्नीताम्** बन्धन हो। **पूषा** पोषणकर्ता **अध्वनः** मार्ग की **इन्द्राय** परमैश्वर्यवान **अध्यक्षाय** अध्यक्ष के लिए **पातु** रक्षा करें।

भावार्थ : परमेश्वर दोनों ओर से शीर्ष युक्त है। शीर्ष का भाव है। उच्च, श्रेष्ठ, उत्तम। परमेश्वर उभयतः सर्वतः शीर्ष्णी अर्थात् शीर्षयुक्त है। उसमें शीर्षत्व से न्यून कुछ हो ही नहीं सकता है। उसके अनेक गुणों की स्तुति करते हुए उपासक में उन गुणों को ग्रहण करने की प्रेरणा का भाव निहित है। पूर्व से पश्चिम तक सब कुछ सुन्दर ही प्राप्त हो। बन्धन हो तो विद्या में हो। विद्या से जीवन बँधा रहे, विद्या के अनुसार जीवन हो, विद्या का अर्जन करते हुए जीवन व्यतीत हो। परम ऐश्वर्यवान् प्रभु के मार्ग पर चलें तो उस मार्ग की रक्षा भी विश्वपोषक परमात्मा करता है।॥ 19॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : चित् (चित - चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। **मना** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **धीः** (धि = धारण करना)। **दक्षिणा** (दक्ष = समृद्ध होना)। **असि** (अस् = होना)। **क्षत्रिया** (क्षद्-क्षत् - रक्षा करना)। **यज्ञिय** (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान)। **अदितिः** (दी = क्षय होना, नाश होना, दो = खण्डन करना)। **उभयतः** (सर्वनाम)। **शीर्ष्णी** (शीर्ष = शीर्ष होना, मुख्य होना, उच्च होना)। **सा** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **सुप्राची** (सु - सुन्दर, अच्छा, प्राची - पूर्व, अव्यय)। **सुप्रतीची** = अच्छे पश्चिम वाला (सु - सुन्दर, अच्छा, प्रतीची - पश्चिम, अव्यय)। **एधि** = जाता है (इ - जाना)। **मित्रः** (मिद - प्रीति करना, मृदुल होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **पदि** (पद् = जाना, जानना)। **बध्नीताम्** (बध्-बन्ध् = बाँधना)। **पूषा** (पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना, पालन करना)। **अध्वनः** (अधु = चलना, विचरण करना)। **पातु** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **इन्द्राय** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **अध्यक्षाय** (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, अक्ष् = खेलना, देखना, व्याप्त होना)॥

148. अनु त्वा माता मन्यताम्, अनु पिता अनु भ्राता, सगर्भ्यः अनु सखा सयूथ्यः।
सा देवि देवम् अच्छ इहि, इन्द्राय सोमम् रुद्रः त्वा आ वर्तयतु, स्वस्ति सोमसखा पुनः आ इहि॥20॥

संहितापाठ

अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः।सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमꣳरुद्रस्त्वावर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि॥

मन्त्रार्थ : त्वा तुमको **माता** माता, **अनु पिता** पिता, **सगर्भ्यः** सहोदय **अनु भ्राता** भ्राता तथा **सयूथ्यः** सहचर **अनु सखा** सखा **मन्यताम्** स्वीकार करें, मानें। **सा** वह **देवि** देवी **देवम्** देव को **अच्छ** अच्छा **इहि** जाने। **रुद्रः** करुणामय **त्वा** तुम **सोमम्** सोम को **इन्द्राय** इन्द्र के लिए **आ वर्तयतु** वर्तमान करें। **स्वस्ति** कल्याणकारी **सोमसखा** सोमसखा **पुनः** पुनः **आ इहि** आएँ।

भावार्थ : परमात्मा तथा विद्वान् उपासक को माता-पिता भ्राता, मित्र मानें। यह दिव्य भावना दिव्य विद्या, वाणी, देवस्वरूप परमात्मा को अच्छी तरह जानें। सोम को परम ऐश्वर्यवान् (इन्द्र) के लिए करुणामय प्रभु बनाये रखें। कल्याण हो॥ 20॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : अनु (उपसर्ग)। **त्वा** (सर्वनाम)। **माता** (मा - मान करना, मापना)। **मन्यताम्** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **पिता** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **भ्राता** (भृ = भरण करना)। **सगर्भ्यः** (गृ-गीला करना, समझना, जानना)। **सखा** (सख् = मित्र होना)। **सयूथ्यः** (स - सहित, साथ, यू - मिलाना)। **सा** (सर्वनाम)। **देवि** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना, आनन्द करना)। **देवम्** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना, आनन्द करना)। **अच्छ** (अच्छ-सत्य होना, निर्मल होना)। **इहि** (इ = जाना, जानना, पाना)। **इन्द्राय** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **सोमम्** (सु - उत्पन्न करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। **रुद्रः** (रुद् = रुदन् करना, करुण

होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **वर्तयतु** (वृतु - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, होना)। **स्वस्ति** (स्तु - स्तुति करना, पूजा करना, अर्चा करना, सेवा करना, भजन करना)। **सोम** (सु - उत्पन्न करना, अद्‌भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। **सखा** (सख् = मित्र होना)। **पुनः** (अव्यय)। **एहि** (अ+इहि (अव्यय) = आओ)॥ 20॥

(40) सूक्त 7

149. वस्वी असि अदितिः असि आदित्या असि, रुद्रा असि चन्द्रा असि॥
बृहस्पतिः त्वा सुम्ने रम्णातु, रुद्रो वसुभिः आ चके॥21॥

संहितापाठ

वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि। बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिराचके॥21॥

मन्त्रार्थ : वस्वी वसुमय **असि** हो, **अदितिः** अविनाशी **असि** हो, **आदित्या** आदित्य **असि** हो, **रुद्रा** करुणामय **असि** हो, प्रकाशमान **असि** हो, **चन्द्रा** आनन्दमय **असि** हो, **बृहस्पतिः** महान् स्वामी **सुम्ने** ऐश्वर्य के लिए **त्वा** तुमको **रम्णातु** रम जाये। **रुद्रो** करुणामय **वसुभिः** वसुओं द्वारा **आ चके** तृप्त हो।

भावार्थ : परमात्मा के महान् गुणों की स्तुति की गयी है। ऐश्वर्य के लिए महान् स्वामी परमेश्वर की स्तुति करें, वह उपासक में रम जाये तो उसके गुण-वैभव प्राप्त हो जायें। वह करुणामय वसुओं और निश्चल, निश्छल, सरल भावों से तृप्त होता है॥ 21॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : वस्वी (वस = वास करना, सरल, निश्चल, निश्छल होना)। **असि** (अस् = होना)। **अदितिः** = अविनाशी (दी - क्षय होना, नष्ट होना)। **आदित्या** (दी - क्षय होना, नष्ट होना)। **रुद्रा** (रुद् = करुण होना)। **चन्द्रा** (चन्द् = चमकना, आनन्द होना)। **बृहस्पतिः** (बृह - बढना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सुम्ने** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **रम्णातु** (रम - रमना, क्रीडा करना, खेलना)। **वसुभिः** (वस = वास करना, सरल, निश्चल)। **आ चके** (चक् = तृप्त होना)॥ 21॥

150. अदित्याः त्वा मूर्द्धन् आ जिघर्मि देवयजने, पृथिव्या इडायाः पदम् असि घृतवत् स्वाहा।
अस्मे रमस्व अस्मे ते बन्धुः त्वे रायो मे रायो, मा वयम् रायस्पोषेण वि यौष्म तोतो रायः॥22॥

संहितापाठ

अदित्यास्त्वा मूर्द्धन्नाजिघर्मि देवयजने पृथिव्याऽइडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा। अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो मा वयꣳ रायस्पोषेण वियौष्म तोतो रायः॥22॥

मन्त्रार्थ : अदित्याः अदिति की **मूर्द्धन्** मूर्द्धा पर स्थित **त्वा** तुमको **देवयजने** देवयजन में **आ जिघर्मि** सम्यक् प्रकाशित करता हूँ। **पृथिव्या** पृथ्वी, **इडायाः** इडा के **पदम्** पद, **घृतवत्** प्रकाशमान की तरह **स्वाहा** व्यापक **असि** हो। **अस्मे** हममें **रमस्व** रम जाओ। **अस्मे** हममें **ते** तुम्हारा **बन्धुः** बन्धु, **त्वे** तुम्हारी **रायो** विद्या, **वयम्** हम **रायस्पोषेण** विद्यापोषण से **तोतो** विद्वान् **रायः** विद्या **मा** न **वि यौष्म** अलग हो।

भावार्थ : उच्च स्तरीय विद्वानों तथा विद्या के सम्मान की सुन्दर भावना है॥ 22॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अदित्याः (दी - क्षय होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **मूर्द्धन्** (मूर्द्ध- उच्च होना)। **आ-जिघर्मि** (जिघ्र् - गन्ध लेना, गन्ध ग्रहण करना, सूँघना, जिघृ - प्रकाश करना, नाश करना)। **देवयजने** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना)। **पृथिव्या** (पृथृ -व्याप्त होना, फैलना, विस्तार होना)। **इडायाः** (ईड् = स्तुति करना)। **पदम्** (पद - स्थानान्तर करना)। **असि** (अस् = होना)। **घृतवत्** (घृ - चमकना, प्रकाशित होना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **अस्मे** (सर्वनाम)। **रमस्व** (रम - रमना, क्रीडा करना, खेलना)। **ते** (सर्वनाम)। **बन्धुः** (बध - बांधना)। **त्वे** (सर्वनाम)। **रायः** (रय् = जाना, जानना, रै-राय् = शब्द करना)। **मे** (सर्वनाम)। **मा** (अव्यय)। **वयम्** (सर्वनाम)। **पोषेण** (पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। **वि यौष्म** (यु = मिलाना, अलग करना)। **तोतो** (तु = जानना)॥ 22॥

151. सम् अख्ये देव्या धिया, सम् दक्षिणया उरु चक्षसा॥

मा मे आयुः प्र मोषीः मो अहम् तव वीरम्, विदेय तव देवि सम् दृशि ॥ 23 ॥

संहितापाठ

समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा। मा मऽआयुः प्रमोषीर्मोऽअहं तव वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि ॥ 23 ॥

मन्त्रार्थ : देव्या दिव्य **धिया** धारणा (प्रज्ञा) द्वारा, **सम् दक्षिणया** सम्यक् दक्षिणा द्वारा, **उरु चक्षसा** बहुत दृष्टि, वाणी द्वारा **सम् अख्ये** सम्यक् कहता हूँ। **सम् दृशि** हे सम्यक् दृष्टियुक्त **देवि** देवि! **मे** मेरी **आयुः** आयु को **मा** नहीं **प्र मोषीः** चुरायें, न खण्डित करें। **अहम्** मैं **मो** न **विदेय** पाने, रहने योग्य **तव** तुम्हारे **वीरम्** वीर को (**प्र मोषीः** चुरायें, न खण्डित करें)।

भावार्थ : दिव्य प्रज्ञा-बुद्धि, सम्यक् दक्षिणा, सम्यक् वाणी, विशाल दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। इसे पूर्ण आयु प्राप्त होती है॥ 23॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : समख्ये (अख् = कहना)। **देव्या** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना)। **धिया** (धि = धारण करना)। **सम्** (उपसर्ग)। **दक्षिणया** (दक्ष = समृद्ध होना, दक्ष होना, जाना, जानना)। **उरु** (अव्यय, सर्वनाम)। **चक्षसा** (चक्ष् = स्पष्ट बोलना, देखना)। **मा** (अव्यय)। **मे** (सर्वनाम)। **आयुः** (अय - जाना, आयुस् - जीवनम्)। **प्र मोषीः** (मुष् = चुराना)। **अहम्** (सर्वनाम)। **तव** (सर्वनाम)। **वीरम्** (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। **विदेय** (विद् = जानना, विद्यमान होना, विचार करना)। **देवि** (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना)। **सन्दृशि** (दृश् - देखना)॥ 23॥

(41) सूक्त 8

सरलपाठ

152. एषः ते गायत्रः भागः इति मे सोमाय ब्रूतात्। एषः ते त्रैष्टुभः भागः इति मे सोमाय ब्रूतात्। एषः ते जागतः भागः इति मे सोमाय ब्रूतात्। छन्दोनामानाम् साम्राज्यम् गच्छ इति मे सोमाय ब्रूतात्। आस्माको असि शुक्रः ते ग्रह्यो, वि चितः त्वा वि चिन्वन्तु ॥ 24 ॥

संहितापाठ

एष ते गायत्रो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भागऽ इति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामानासाम्राज्यङ्गच्छेति मे सोमाय ब्रूतादास्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा विचिन्वन्तु।24 ॥

मन्त्रार्थ : एषः यह **ते** तुम्हारा **गायत्रः** गायत्र **भागः** भाग है, **इति** यह **मे** मेरा, **सोमाय** सोम के लिए **ब्रूतात** कहें। **एषः** यह **ते** तुम्हारा **त्रैष्टुभः** त्रैष्टुभ **भागः** भाग है, **इति** यह **मे** मेरा, **सोमाय** सोम के लिए **ब्रूतात** कहें। **एषः** यह **ते** तुम्हारा **जागतः** जागत **भागः** भाग है, **इति** यह **मे** मेरा, **सोमाय** सोम के लिए **ब्रूतात** कहें। **छन्दोनामानाम्** छन्दों के नामों के **साम्राज्यम्** साम्राज्य को **गच्छ** जानों, **इति** यह **मे** मेरा, **सोमाय** सोम के लिए **ब्रूतात** कहें। **आस्माको** हमारे **असि** हो, **ते** तुम्हारी **शुक्रः** पवित्र **ग्रह्यो** ग्रहणयोग्य **वि** विशेष **चितः** चेतना **त्वा** तुमको **वि चिन्वन्तु** बढ़ाये।

भावार्थ : वैदिक छन्दों वेदमन्त्रों के लिए तथा सोम के लिए अपना भाग अर्थात् अंशदान देने की प्रेरणा है। पवित्र तथा विशिष्ट चेतना को अपनायें, बढ़ायें तो हमारी भी अभिवृद्धि होगी॥ 24॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : एषः (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **गायत्रः** (गा - स्तुति करना)। **भागः** (भग्-भज् = देना, दान करना, अलग करना, भजन करना, उपभोग करना)। **इति** (सर्वनाम)। **मे** (सर्वनाम)। **सोमाय** (सु - उत्पन्न करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। **ब्रूतात्** (ब्रू - कहना, बोलना)। **त्रैष्टुभः** (त्रै - संरक्षण करना, पोषण करना, बचाना)। **भागः** (भज् = सेवा करना, भजन करना, भाग करना, अलग करना)। **सोमाय** (सु - उत्पन्न करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। **जागतः** (जागृ - जगना, नींद न लेना, जग आदाने - ग्रहणे)। **इति** (सर्वनाम)। **छन्दोनामानाम्** (छन्द् - आच्छादन करना)। **साम्राज्यम्** (सम् = सम्यक्, भलीभांति, राज् = चमकना, प्रकाशित शोभित होना)। **गच्छ** = जाओ (गम्, गच्छ् = जाना)। **आस्माकः** (सर्वनाम)। **असि** (अस् = होना)। **शुक्रः** (शुच् = पवित्र होना या करना)। **ग्रह्यः** (गृह - ग्रहण करना)। **विचितः** (चित - विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **वि** (उपसर्ग)। **चिन्वन्तु** (चिन्व् = बढ़ाना)॥

153. अभि त्यम् देवम् सवितारम् ओण्योः कविक्रतुम्, अर्चामि सत्यसवम् रत्नधाम् अभि प्रियम् मतिम् कविम्।
ऊर्ध्वा यस्य अमतिः भाः अदिद्युतत् सवीमनि, हिरण्यपाणिः अमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः।
प्रजाभ्यः त्वा प्रजाः त्वा अनुप्राणन्तु, प्रजाः त्वम् अनुप्राणिहि॥25॥

संहितापाठ

अभि त्यं देवꣳसवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भाऽअदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः।प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि॥

मन्त्रार्थ : देवम् देव **सवितारम्** सृष्टिकर्ता **ओण्योः** नायक **कविक्रतुम्** कवि **सत्यसवम्** सत्य को उत्पन्न करने वाले, सत्य ऐश्वर्य वाले **रत्नधाम्** रत्नधारक को **अभि प्रियम्** प्रिय **मतिम्** मति **ऊर्ध्वा** ऊर्ध्व **कविम्** कवि विद्वान् प्रकाशमान **त्यम्** तुमको **अभि अर्चामि** पूजता हूँ। **यस्य** जिसका **ऊर्ध्वा** ऊर्ध्व **अमतिः** सेवाभावी विद्वान् **भाः** प्रकाश **अदिद्युतत्** प्रकाशमान **सवीमनि** सृष्टिकर्ता की स्तुति की है। **हिरण्यपाणिः** प्रकाशमय **सुक्रतुः** सत्कर्म कर्ता **कृपा** कृपा, ऐश्वर्य, **प्रजाभ्यः** प्रजा के लिए **प्रजाः** प्रजा **त्वा** तुमको **अनुप्राणन्तु** प्राणवान् करें, **प्रजाः** प्रजा को **त्वम्** तुम **प्राणवान्** अनुप्राणिहि करो।

भावार्थ : परमात्मा के गुणों, ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए उपासना, स्तुति करने की प्रेरणा है। हम उपासना कर अपने जीवन में परमात्मा को प्राणवान् जीवन्त करते हैं तो परमात्मा हमें प्राणवान् करता है, जीवन्त ऊर्जावान् बनाता है॥25॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : अभि (उपसर्ग)। **त्यम्** (सर्वनाम)। **देवम्** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **सवितारम्** (सु = उत्पन्न करना)। **ओण्योः** (ओण् = दूर ले लाना, ले जाना)। **कविक्रतुम्** (कव् = वर्णन करना, कविता करना, चित्र बनाना)। **अर्चामि** (अर्च् = पूजन करना, सेवा करना, मान करना)। **सत्यसवम्** (सत् = सदा रहना, चिर अस्तित्व होना, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **रत्नधामभिः** (रत् = जुड़ना, धा = धारण करना)। **प्रियम्** (प्री - प्रीति करना, दुलारना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना)। **मतिम्** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **कविम्** (कु - शब्द करना)। **ऊर्ध्वा** (सर्वनाम)। **यस्य** (सर्वनाम)। **अमतिः** (अम् = जाना, जानना, शब्द करना, सेवा करना)। **भाः** (भा - चमकना, प्रकाशित होना, सुन्दर दीखना)। **अदिद्युतत्** (द्युत् = प्रकाश होना)। **सवीमनि** (सु = उत्पन्न करना)। **हिरण्यपाणिः** = प्रकाशमय (हिरण् = प्रकाश होना, पण् = स्तुति करना, व्यवहार करना)। **अमिमीत** (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, मीम् = जाना, जानना, शब्द करना)। **सुक्रतुः** (कृ - करना)। **कृपा** (कृप - कल्पना करना, विचार करना)। **स्वः** (सु = ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना)। **प्रजाभ्यः** (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **प्रजाः** (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **अनुप्राणन्तु** (अनु - धारणे, सहने)। **त्वम्** (सर्वनाम)। **अनुप्राणिहि** (अन - जीवन होना, चेतन होना)॥25॥

154. शुक्रम् त्वा शुक्रेण क्रीणामि, चन्द्रम् चन्द्रेण अमृतम् अमृतेन।
सग्मे ते गोः अस्मे ते, चन्द्राणि तपसः तनूः असि।
प्रजापतेः वर्णः परमेण पशुना, क्रीयसे सहस्त्रपोषम् पुषेयम्॥26॥

संहितापाठ

शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन।सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि।प्रजापतेर्वर्णः परमेण पशुना क्रीयसे सहस्त्रपोषं पुषेयम्॥26॥

मन्त्रार्थ : शुक्रम् शुक्र को **शुक्रेण** शुक्र से, **चन्द्रम्** चन्द्र को **चन्द्रेण** चन्द्र से, **अमृतम्** अमृत को **अमृतेन** अमृत से **क्रीणामि** क्रय करता हूँ। **सग्मे** आच्छादन, **गोः** उपदेशक, **चन्द्राणि** प्रसन्नताएं **ते** तुम्हारे लिए **तपसः** तप का **तनूः** विस्तार **असि** हों। **प्रजापतेः** प्रजापति का **वर्णः** वर्ण **परमेण** परम **पशुना** पशु द्वारा **सहस्त्रपोषम्** सहस्त्रों का पोषण करने वाले को **पुषेयम्** पुष्ट करने योग्य को **क्रीयसे** क्रय करते हो।

भावार्थ : कुछ भी पाने, क्रय करने के लिए उसके समतुल्य मूल्य आवश्यक होता है। हम परमात्मा के जिन गुणों को, जिन शक्तियों को पाना चाहते हैं, उनके अनुरूप गुणकर्म स्वभाव हमें जीवन में धारण करने होंगे। उपलब्धियां तप-

साधना का स्वाभाविक विस्तार हैं, मिलनी ही हैं। पशु का धातुज शाब्दिक अर्थ दृष्टिवान् तथा बन्धनमूल है, यहां परम पशु से आशय तो परमात्मा ही हो सकता है, कोई अन्य नहीं।। 26।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : शुक्रम् (शुक = जाना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **शुक्रेण** (शुक = जाना)। **क्रीणामि** (क्री - खरीदना, बदले में लेना, जीतना)। **चन्द्रम्** (चन्द् = चमकना, आनन्द होना)। **चन्द्रेण** (चन्द् = चमकना, आनन्द होना)। **अमृतम्** (अ + मृ = मरना)। **अमृतेन** (अ + मृ = मरना)। **सग्मे** (सग - आच्छादन करना)। **ते** (सर्वनाम)। **गोः** (गु = शब्द करना)। **अस्मे** (सर्वनाम)। **चन्द्राणि** (चन्द् = चमकना, आनन्द होना)। **तपसः** (तप् = तप्त होना, तप्त करना, तप करना, ऐश्वर्य होना)। **तनूः** (तन् = विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना)। **असि** (अस् = होना)। **प्रजापतेः** (जन् = उत्पन्न होना, पत् = ऐश्वर्य होना)। **वर्णः** (वर्ण - आज्ञा करना, प्रेरणा करना, भेजना, रंगना)। **परमेण** (पृ - पूर्ण करना, भरना)। **पशुना** (पश - बांधना)। **क्रीयसे** (क्री - खरीदना, बदले में लेना, जीतना)। **सहस्रपोषम्** (सहस्र = हजार, पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना)। **पुषेयम्** (पुष - पालन करना, पोषण करना)।। 26।।

155. मित्रो नः आ इहि सुमित्रध, इन्द्रस्य उरुम् आ विश दक्षिणम्, उशन् उशन्तम् स्योनः स्योनम्। स्वान भ्राज अङ्घारे बम्भारे, हस्त सुहस्त कृशानो, एते वः सोमक्रयणाः, तान् रक्षध्वम् मा वो दभन्।। 27।।

संहितापाठ

मित्रो नऽएहि सुमित्रधऽइन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमुशन्नुशन्तस्योनः स्योनम्। स्वान् भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तान्रक्षध्वं मा वो दभन्।।

मन्त्रार्थ : सुमित्रध अच्छे मित्र बनाने वाले **नः** हमारे **मित्रो** मित्र, **दक्षिणम्** दक्षिण (दक्ष-कुशल) को **आ इहि** आओ। **उशन्तम्** कामना करने वाले की **उशन्** कामना करते हुए, **स्योनः** सुखदेने वाले को **स्योनम्** सुख देने वाले **इन्द्रस्य** इन्द्र (परम ऐश्वर्यशाली) की **उरुम्** उरु (गतिशीलता या जंघा) में **आ विश** प्रतिष्ठित हो। **स्वान** स्वान (शब्दकर्ता) **भ्राज** भ्राज (प्रकाशमान) **अङ्घारे** अङ्घारे (गति अवरोध नाशक) **बम्भारे** बम्भारे (भरण पोषण करने वाले) **हस्त** हस्त (हंसने वाले, देने वाले, हाथ), **सुहस्त** सुहस्त (अच्छे हाथ वाले, अच्छा दान देने वाले) **कृशानो** कृशानो (कृश या दुर्बल को जीवन देने वाले), **एते** यह सब **वः** तुम्हारे लिए **सोमक्रयणाः** सोम क्रय करने के लिए है, **तान्** उनकी **रक्षध्वम्** रक्षा करो, **वो** तुम्हारी **मा** न **दभन्** हिंसा हो (अर्थात् तुम्हें कोई कष्ट न दे)।

भावार्थ :- मित्र को बुलाया गया है, ऐसा मित्र जो अच्छे मित्र बनाने वाला है। ऐसा मित्र तो परम ऐश्वर्यवान् इन्द्र की गतिशीलता में स्थित है, इन्द्र की गतिविधियों का भी आधार है। दूसरे रूप में कहें तो वह परम ऐश्वर्यवान् देवराज इन्द्र की जंघा या गोद में बैठने का अधिकारी है। उसके अनेक गुण बताये गये हैं तथा कहा गया है कि हमारे पास जो कुछ भी संसाधन हैं, वह तुम्हारे लिए सोम क्रय करने के लिए है। ऐसे मित्र को सोम उपलब्ध कराने के लिए हम अपने समस्त संसाधन प्रस्तुत कर देते हैं, करना भी चाहिए। ऐसा मित्र हमारे इन संसाधनों की रक्षा भी करता है जो स्वाभाविक भी है। हम कामना करते हैं कि ऐसे मित्र की हिंसा न हो अर्थात् उसे कोई कष्ट न हो।

विशेष :- सोम शब्द सु प्रसवैश्वर्ययोः धातु से बनता है जिसका अर्थ उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना आदि होते हैं। वेद में सोम महत्वपूर्ण अवधारणा है। सोम का अधिकार पाकर देवगण भी स्वयम् को धन्य मानते हैं। उत्तम आचरण से ही देव अर्थात् समाज के सम्मानित विद्वान् सोमपान के अधिकारी बनते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : मित्रो (मिद - प्रीति करना, प्यार करना)। **नः** (सर्वनाम)। **आ** (उपसर्ग)। **इहि** (इ = जाना, जानना, पाना)। **सुमित्रध** (मिद - प्रीति करना, प्यार करना)। **इन्द्रस्य** (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। **उरुम्** (उर् = जाना, चलना, उरु = गतिशील)। **विश** (विश - भीतर जाना, चारों ओर फैलना)। **दक्षिणम्** (दक्षिणा - दिक्, दानम्)। **उशन्** (वश - इच्छा करना, चाहना)। **उशन्तम्** (वश - इच्छा करना, चाहना)। **स्योनः** (स्योन् = सुख होना, सुख देना)। **स्योनम्** (स्योन् = सुख होना, सुख देना)। **स्वान** (स्वन - शब्द करना)। **भ्राज** (भ्राज् = चमकना, प्रकाशित होना)। **अङ्घारे** (अङ्घ् - गति अवरोध होना)। **बम्भारे** (भृ = भरण-पोषण, धारण करना)। **हस्त** (हस्त - आदाने, दाने, ग्रहणे च)। **सुहस्त** (सु - सुन्दर,

अच्छा, हस्त - आदान करना, लेना, दान करना, ग्रहण करना)। **कृशानो** (कृश - कृश होना, सूक्ष्म होना)। **एते** (सर्वनाम)। **वः** (सर्वनाम)। **सोमक्रयणाः** (सु - उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्‌भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, क्री - खरीदना, बदले में लेना, जीतना)। **तान्** (सर्वनाम)। **रक्षध्वम्** (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। **मा (मा - माम्)** (सर्वनाम, अव्यय)। **वो** (सर्वनाम)। **दभन्** (दभ - निन्दा करना, हिंसा करना)।।

(42) सूक्त 9

156. परि मा अग्ने दुश्चरितात् बाधस्व, आ मा सुचरिते भज।।
उत् आयुषा सु आयुषा, उत् अस्थाम् अमृतान् अनु।।28।।

संहितापाठ

परि माग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भज।उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ अनु।।28।।

मन्त्रार्थ : अग्ने हे अग्नि, **मा** मुझको **दुश्चरितात्** दुश्चरित से **बाधस्व** बचाओ, रोको, **मा** मुझे **सुचरिते** सुचरित में **आ भज** भजो।(हम) **उत्** उच्च स्तरीय **आयुषा** आयु से, **सु** अच्छी **आयुषा** आयु से **अमृतान्** अमृत के **अनु** पीछे **उत् अस्थाम्** उठ खड़े हों।

भावार्थ :- हम बुरे आचरण से बचकर तथा अच्छे आचरण को अपनाकर ही उच्चस्तरीय अच्छा जीवन प्राप्त कर सकते हैं तथा अमृत तत्वों को प्राप्त कर सकते हैं। परमात्मा अमृत है, उसकी वेदविद्या अमृत है, हमारे सत्कर्म अमृत हैं जो युगों-युगों तक समाज को प्रकाश प्रदान करते हैं।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : परि (उपसर्ग)। **मा (मा-माम्)** (सर्वनाम, अव्यय)। **अग्ने** (अग् = ऊर्ध्वगति करना, तेजस्वी होना)। **दुश्चरितात्** (दुः = बुरा, कठिन, चर = आचरण करना, जाना, खाना)। **बाधस्व** (बाध - बाधा देना, दुःख देना)। **आ** (उपसर्ग)। **सुचरिते** (सु = अच्छा, चर = आचरण करना, जाना, खाना)। **भज** (भज - भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। **उत्** (अव्यय)। **आयुषा** (अय - जाना, आयुस् - जीवनम्)। **सु** (उपसर्ग)। **उदस्थाम्** (उत् = ही, स्था - स्थित होना)। **अमृतान्** (अ - नहीं, मृ = मरना)। **अनु** (उपसर्ग)।। 28।।

157. प्रति पन्थाम् अपद्महि, स्वस्ति गाम् अनेहसम्।।येन विश्वाः परि द्विषो, वृणक्ति विन्दते वसु।।29।।

संहितापाठ

प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम्।येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु।।

मन्त्रार्थ : प्रति पन्थाम् प्रति पन्थ (विपरीत मार्ग) पर **अपद्महि** हम नहीं चलते हैं, (जो) **स्वस्ति** स्वस्ति (कल्याणकारी) **गाम्** मार्ग की **अनेहसम्** स्तुति की इच्छा (तथा) चेष्टा रहित (है)। **येन** जिससे **विश्वाः** सभी **द्विषो** द्वेष करने वालों को **वृणक्ति** दूर करते हैं (तथा) **वसु** वसु (वास स्थान, वास के संसाधन) को **विन्दते** प्राप्त करते हैं।

भावार्थ :- स्वस्ति पन्थ पर चलें, प्रति पन्थ पर नहीं। इसी तरह हम द्वेष करने वालों को दूर कर सकते हैं तथा संसाधन प्राप्त कर सकते हैं।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : प्रति (उपसर्ग)। **पन्थाम्** (पन्थ = गतौ, जाना, घूमना)। **अपद्महि** (पद - चलना, स्थानान्तर करना)। **स्वस्ति** (सु - उत्पन्न करना, पैदा करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्‌भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। **गाम्** (गा = स्तुति करना, जाना, जानना)। **अनेहसम्** (ईह - चेष्टा, इच्छा, प्रयत्न करना, उद्योग करना)। **येन** (सर्वनाम)। **विश्वाः** (विश् = भीतर जाना, सभी तरफ फैलना)। **परि** (उपसर्ग)। **द्विषो** (द्विष = द्वेष करना)। **वृणक्ति** (वृण - अपनयने, परित्यागे, आनन्द करना, उत्साह करना)। **विन्दते** (विन्द - लाभ होना, प्राप्त करना, सम्पादित करना)। **वसु** (वस - निवास करना, सीधा होना, निश्चल होना)।। 29।।

158. अदित्याः त्वक् असि, अदित्यै सदः आ सीद।
अस्तभ्नात् द्याम् वृषभो अन्तरिक्षम्, अमिमीत वरिमाणम् पृथिव्याः।
आसीदत् विश्वा भुवनानि सम्राट्, विश्वा इत् तानि वरुणस्य व्रतानि।।30।।

अदित्यास्त्वगस्यदित्यै सदऽआसीद।अस्तभ्नाद् द्यां वृषभोऽअन्तरिक्षममिमीत वरिमाणम्पृथिव्याः।आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि॥

मन्त्रार्थ :- अदित्याः अविनाशी की **त्वक्** त्वचा **असि** हो। **अदित्यै** अविनाशी के लिए **सदः** विद्वान्, गतिशील, गन्तव्य (हो)। **आ सीद** आओ, बैठो। **वृषभो** पराक्रमी ने **द्याम्** द्युलोक को **अस्तभ्नात्** स्तम्भित किया (तथा) **पृथिव्याः** पृथ्वी का वरण, पालन करने वाले **अन्तरिक्षम्** आकाश को **अमिमीत** नाप लिया। **विश्वा** विश्व **भुवनानि** भुवन के **सम्राट्** सम्राट (परमात्मा भी) **वरुणस्य** वरुण के **तानि** उन **विश्वा** सभी **इत्** ही **व्रतानि** व्रतों को **आसीदत्** स्थापित करते हैं।

भावार्थ :- मनुष्य भी परमात्मा का ही अंग या अंश है, यद्यपि वह उसकी त्वचा के समान है। त्वचा निश्चित रूप से हृदय या मस्तिष्क जैसा शरीर का संचालक तत्व नहीं है, वह शरीर के हृदय, मस्तिष्क आदि पर निर्भर है। तथापि उसे भी शरीर का अंग तो माना ही जायेगा। त्वचा का महत्व कम नहीं है, उसके विना शरीर के स्वरूप की कल्पना तो करके देखिये। परमात्मा का अंश होने के कारण मनुष्य में अद्भुत सामर्थ्य तथा पराक्रम है। पराक्रमी बहुत कुछ कर सकता है॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अदित्याः (दी = नष्ट होना)। **त्वक्** (त्वच - आच्छादित करना, लपेटना)। **असि** (अस् = होना)। **अदित्यै** (दी = नष्ट होना, ह्रास होना)। **सदः** (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। **आ सीद** (सद् = बैठना, जाना, चलना)। **अस्तभ्नात्** (स्तम्भ - दृढ़ होना, अचल होना, स्तब्ध होना)। **द्याम्** (द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना)। **वृषभो** (वृष - विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना)। **अन्तरिक्षम्** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **अमिमीत** (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, मा - नापना, तौलना, समाना)। **वरिमाणम्** (वृ = वरण करना, पालन करना)। **पृथिव्याः** (पृथ - व्याप्त होना, फैलना, विस्तार होना)। **आसीदत्** (सद् = बैठना, चढ़ाई करना, सूखना)। **विश्वा** (सर्वनाम)। **भुवनानि** (भू = होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **सम्राट्** (रट् = बोलना, सम्भाषण करना, राज् = शोभित होना, प्रकाशित होना, चमकना) **इत्** (अव्यय)। **तानि** (सर्वनाम)। **वरुणस्य** (वृ = वरण करना, पालन करना)। **व्रतानि** (वृ = वरण करना)॥

(43) सूक्त 10

159. वनेषु वि अन्तरिक्षम् ततान, वाजम् अर्वत्सु पय उस्रियासु।
हृत्सु क्रतुम् वरुणो विक्षु अग्निम्, दिवि सूर्यम् अदधात् सोमम् अद्रौ॥31॥

संहितापाठ

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयऽउस्रियासु।हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ॥31॥

मन्त्रार्थ : वरुणो वरुण ने **वनेषु** वनों पर **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष को, **वाजम्** वाज (गति) को **अर्वत्सु** अर्वतों (गतिशीलों, मनुष्यों या अश्वों) में, **पय** पय (गति, प्रवाह) को **उस्रियासु** उस्रियाओं (उषाकर्मों) में **वि ततान** विस्तृत किया। **हृत्सु** हृदयों में **क्रतुम्** कर्म को, **विक्षु** प्रजाओं में **अग्निम्** अग्नि को, **दिवि** दिवलोक में **सूर्यम्** सूर्य को, **अद्रौ** अद्रि (अहिंसक) में **सोमम्** सोम को **अदधात्** धारण किया।

भावार्थ :- वरुण का अर्थ वरण करने योग्य परमात्मा है। प्रकृति में गुण, क्षमताएं, रत्न तथा विभूतियां उसी ने स्थापित की हैं। भाव यह है कि सृष्टि में सबकुछ परमात्मा के बनाये नियमों के अनुकूल ही स्थापित है। वाज (वा - जाना, पवन सा चलना) का अर्थ गति है तथा अर्वत्सु (अर्व = गति करना) का अर्थ है गतिशीलों में। सोम महत्वपूर्ण वैदिक अवधारणा है, दिव्य विभूति है। सोम का शाब्दिक अर्थ (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना) उत्पत्ति, ऐश्वर्य, सिंचन, प्रेरणा की शक्ति, ऊर्जा और भावना है। यह दिव्य विभूति सोम को धारण करने की क्षमता तथा अधिकार अद्रि - अहिंसक में ही है। परपीड़क - परनिन्दक सोम के अधिकारी नहीं हैं॥ 31॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : वनेषु (वन् = शब्द करना, सेवा करना)। **वि** (उपसर्ग)। **अन्तरिक्षम्** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **ततान** (तन् =

विस्तार करना)। **वाजम्** (वा - जाना, पवन सा चलना)। **अर्वत्सु** (अर्व = गति करना)। **पय** (पय् = जाना, जानना, पाना)। **उस्त्रियासु** (उषस् - प्रभात होना, पौ फटना)। **हृत्सु** (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। **क्रतुम्** (कृ = करना)। **वरुणो** (वृ - वरण करना, वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना)। **विक्षु** (विक् - विवेक करना, तारतम्य देखना, पृथक् करना, पृथक् होना)। **अग्निम्** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **दिवि** (दिव् = तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। **सूर्यम्** (सुर् = ऐश्वर्य , प्रकाश होना)। **अदधात्** (दध - धारण करना, पालन करना)। **सोमम्** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। **अद्रौ** (दृ - हिंसा करना, सत्कार करना)॥ 31॥

160. सूर्यस्य चक्षुः आ रोह, अग्नेः अक्ष्णः कनीनकम्॥ यत्र एतशेभिः ईयसे, भ्राजमानो विपश्चिता॥ 32॥

संहितापाठ

सूर्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकम्। यत्रैतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता॥

मन्त्रार्थ : सूर्यस्य सूर्य की **चक्षुः** आँख (तथा) **अग्नेः** अग्नि की **अक्ष्णः** क्रीड़ा के **कनीनकम्** प्रकाश की ओर **आ रोह** बढ़ो, **यत्र** जहाँ **एतशेभिः** ज्ञान व गति से **ईयसे** जाते हैं, (जो) **विपश्चिता** विद्वानों से **भ्राजमानो** भ्राजमान या प्रकाशित है।

भावार्थ :- हमें प्रकाश की ओर बढ़ना है। उस प्रकाश तक ज्ञान व गतिशीलता से ही पहुँच सकते हैं, वह विद्वानों से ही प्रकाशित है। स्पष्ट है कि यह दीपक से मिलने वाला साधारण प्रकाश नहीं है। यहां दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश का उपदेश है। हम उसे लोकव्यवहार की बातों से ही समझ सकते हैं, अतः पहले कहा गया है कि उसे सूर्य की आंख या अग्नि की क्रीड़ा के प्रकाश रूपक से समझने का प्रयास करो॥ 32॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : सूर्यस्य (सुर् = ऐश्वर्य, प्रकाश होना)। **चक्षुः** (चक्ष् - साफ बोलना, देखना)। **आरोह** (आ + रुह - बीज का उगना, आ - आरूढ़ होना, ऊपर चढ़ना)। **अग्नेः** (अग् = गति करना, अग्रणी होना)। **अक्ष्णः** (अक्ष = खेलना)। **कनीनकम्** (कनी - चमकना, प्रकाशित होना, चाहना)। **यत्र** (सर्वनाम)। **एतशेभिः** (एत, आ + ईत्, ई = जाना, जानना, पाना, व्यापना)। **ईयसे** (ई = जाना, जानना, पाना, व्यापना)। **भ्राजमानो** (भ्राज् = चमकना, प्रकाशित होना)। **विपश्चिता** (वि = विशेष, विना, विलोम, पश् = देखना)॥ 32॥

161. उस्त्रौ आ इतम् धूः षाहौ युज्येथाम्, अनश्रू अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ॥
स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम्॥ 33॥

संहितापाठ

उस्त्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रूऽअवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ। स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम्॥ 33॥

मन्त्रार्थ : उस्त्रौ प्रकाशस्वरूप **धूः षाहौ** धुरा धारण करने में समर्थ **अनश्रू** अश्रुहीन, **अवीरहणौ** वीरों को न मारने वाले, **ब्रह्मचोदनौ** ब्रह्म की प्रेरणा देने वाले युगल, **आ इतम्** आओ और **युज्येथाम्** जुट जाओ। **स्वस्ति** कल्याणकारी **यजमानस्य** यजमान के **गृहान्** घर **गच्छतम्** जाओ।

भावार्थ :- उस्त्रौ (उषस् - प्रभात होना, पौ फटना) का अर्थ है प्रकाशस्वरूप, उषा-प्रभात की ऊर्जा तथा प्रकाशयुक्त। ऐसे युगल धुरे को धारण करने में समर्थ हैं, धूः का एक अर्थ हिंसा भी है, उसे भी सहन करने वाले युगल को पुकार रहे हैं कि कर्म में जुट जाओ और योग करो। वे कष्टों से विचलित नहीं होते, आँसू नहीं बहाते, वीरों की रक्षा करने वाले हैं, मारने वाले नहीं। वे ब्रह्म अर्थात् परमात्मा तथा वेदवाणी के लिए प्रेरित करने वाले हैं। वे कल्याणकारी हैं, उनका भी कल्याण हो। यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण दान करने वालों के गृहों को जाते हैं॥ 33॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : उस्त्रौ (उषस् - प्रभात होना, पौ फटना)। **आ इतम्** (इ = जाना, जानना पाना)। **धूः षाहौ** (धा - धारण करना, धूरी, सह- सहना, शक्तिमान करना)। **युज्येथाम्** (युज- योग करना, जुड़ना, मिलाप करना)। **अनश्रू** (अन् + अश्रु = आंसू)। **अवीरहणौ** (हन- मार डालना)। **ब्रह्मचोदना** (बृह् = बढ़ना, बड़ा होना, जानना, चुद - प्रेरणा करना)। **स्वस्ति** (सु - उत्पन्न करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। **यजमानस्य** (यज - देवपूजा करना, देना, संगति करना)। **गृहान्** (गृह् = ग्रहण करना)। **गच्छतम्** (गम्-गच्छ् = जाना)॥ 33॥

162. भद्रो मे असि प्र च्यवस्व, भुवस्पते विश्वानि अभि धामानि।

मा त्वा परि परिणः विदन्, मा त्वा परि पन्थिनो विदन्, मा त्वा वृकाः अघायवो विदन्।
श्येनो भूत्वा परापत, यजमानस्य गृहान् गच्छ, तत् नौ संस्कृतम्॥34॥

संहितापाठ

भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभि धामानि।मा त्वा परिपरिणो विदन्मा त्वा परिपन्थिनो विदन्मा त्वा वृकाऽअघायवो विदन्।श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान् गच्छ तन्नौ सँस्कृतम्॥34॥

मन्त्रार्थ :- भुवस्पते हे भुवस्पति (परमात्मा), **मे** हमारे लिए **भद्रो** कल्याण करने वाले, **विश्वानि** सभी **अभि धामानि** धामों में **असि** हो। **त्वा** तुमको **परि परिणः** परिपरिण **मा** नहीं **विदन्** जानते, **त्वा** तुमको **परि पन्थिनो** परिपन्थी **मा** नहीं **विदन्** जानते, **त्वा** तुमको **वृकाः** वृक **अघायवो** अघायव **मा** नहीं **विदन्** जानते। **श्येनो** श्येन **भूत्वा** होकर **परापत** परागति से ऊपर उठो, **यजमानस्य** यजमान के **गृहान्** घरों को **गच्छ** जाओ, **तत्** वह **नौ** हम दोनो के लिए **संस्कृतम्** संस्कार युक्त है।

भावार्थ :- परमात्मा कल्याण करने वाला है। वह सभी धामों अर्थात् धारण करने वालों के हृदय में प्राप्त होता है। परिपरिण (इधर-उधर भटकाने वाले), परिपन्थी (विभिन्न पन्थों वाले), अघ (पाप) करने वाले उसे नहीं जान पाते हैं। वह तीव्र गति से श्येन पक्षी की भांति उड़कर यजन करने वाले के संस्कारित घरों को जाता है। इसका भाव यह है कि संस्कारवान् सदाचारी लोगों के जीवन में परमात्मा की कृपा बनी रहती है॥ 34॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- भद्रो (भद - शुभ कर्म करना, सुखी होना)। **मे** (सर्वनाम)। **असि** (अस् = होना)। **प्र-च्यवस्व** (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, च्यु - जाना)। **भुवः** (भू = होना)। **पते** (पत् = ऐश्वर्य होना, रक्षक-स्वामी होना)। **विश्वानि** (सर्वनाम)। **अभि** (उपसर्ग)। **धामानि** (धा = धारण करना)। **मा** (अव्यय)। **त्वा** (सर्वनाम)। **परिपरिणः** (पृ- पूर्ण करना, भरना, पालन करना)। **विदन्** (विद - समझना, जानना)। **परि** (उपसर्ग)। **पन्थिनो** (पन्थ् - जाना, घूमना)। **वृकाः** (वृक - छीन लेना)। **अघायवो** (अघ् = पाप करना)। **श्येनो** (श्यै - जाना)। **भूत्वा** (भू = होना)। **परापत** (पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना, पाना, नीचे गति करना)। **यजमानस्य** (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **गृहान्** (गृह् = ग्रहण करना)। **गच्छ** (गम् - गच्छ् = जाना)। **तत्** (सर्वनाम)। **नौ** (सर्वनाम)। **संस्कृतम्** (सम् + कृ = करना)॥ 34॥

(44) सूक्त 11

163. नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे, महो देवाय तत् ऋतम् सपर्यत॥
दूरे दृशे देवजाताय केतवे, दिवः पुत्राय सूर्याय शंसत॥35॥

संहितापाठ

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतꣳसपर्यत।दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शꣳसत॥35॥

मन्त्रार्थ :- मित्रस्य मित्र **वरुणस्य** वरुण के **महो** पूज्य **देवाय** देव **चक्षसे** चक्ष (वाणी, दृष्टि) के लिए **नमो** नमन है। **तत्** उस **ऋतम्** ऋत की **सपर्यत** पूजा करो। **दूरे दृशे** दूरदृष्टि वाले, **देवजाताय** देव से उत्पन्न **केतवे** केतु (प्रज्ञा) के लिए, **दिवः** देव **पुत्राय** पुत्र **सूर्याय** सूर्य के लिए **शंसत** स्तुति करो।

भावार्थ :- मित्र, वरुण आदि देवशक्तियां परमात्मा की दिव्य चेतना के ही रूप हैं। प्रज्ञा के लिए हम उनका नमन करते हैं। इन गुणों से युक्त देवजन भी ऐसे ही पूज्य हैं॥ 35॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : नमो (नमः) (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना)। **मित्रस्य** (मिद - स्नेह करना)। **वरुणस्य** (वृ- वरण करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। **चक्षसे** (चक्ष् - साफ बोलना, देखना)। **महो** (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। **देवाय** (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान होना)। **तत्** (सर्वनाम)। **ऋतम्** (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। **सपर्यत** (सपर - पूजा करना, सेवा करना)। **दूरे** = दूर से (दु = दूर जाना, दुःख पाना, दुःख देना)। **दृशे** = दिखने वाले (दृश् = देखना)। **देवजाताय** (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, जन - उत्पन्न होना)। **केतवे** (कित - जानना)। **दिवः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **पुत्राय** (पु - जाना, रक्षा करना)। **सूर्याय** (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य

होना)। **शंसत** (शंस् - प्रशंसा करना, स्तुति करना)॥ 35॥

164. वरुणस्य उत्तम्भनम् असि, वरुणस्य स्कम्भ सर्जनी स्थो।
वरुणस्य ऋत सदनी असि, वरुणस्य ऋतसदनम् असि।वरुणस्य ऋतसदनम् आसीद॥36॥

संहितापाठ

वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्यऽऋतसदन्यसि वरुणस्यऽ ऋतसदनमसि वरुणस्यऽ ऋतसदनमासीद॥36॥

मन्त्रार्थ : वरुणस्य वरुण का **उत्तम्भनम्** उत्तम स्थान **असि** हो। **वरुणस्य** वरुण का **स्कम्भ** स्थान **सर्जनी** बनाने वाले **स्थो** हो। **वरुणस्य** वरुण का **ऋत सदनी** ऋत सदनी **असि** हो। **वरुणस्य** वरुण का **ऋतसदनम्** ऋत सदन **असि** बनो। **वरुणस्य** वरुण के **ऋतसदनम** ऋत सदन में **आसीद** बैठें।

भावार्थ :- परमात्मा वरुण अर्थात् वरण करने योग्य है। वह वरण करने वाला भी है। उपासक की भावना ही प्रभु का उत्तम स्थान है। उसका आवास अपने को ही बनाना है॥ 36॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : वरुणस्य (वृ - पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। **उत्तम्भनम्** (स्तम्भ - स्थित करना, रोकना)। **असि** (अस् = होना)। **स्कम्भ** (स्कम्भ - सक्रिय होना, क्रियाशील होना, रोकना, प्रतिबन्ध करना)। **सर्जनी** (सर्ज - उपार्जन करना)। **स्थो** (स्था (तिष्ठ) = स्थित होना, ठहरना)। **ऋत** (ऋ = जाना, जानना)। **सदनी** (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। **ऋतसदनम्** (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना, सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। **आसीद** (सीद - जाना, चलना)॥ 36॥

165. या ते धामानि हविषा यजन्ति, ता ते विश्वा परिभूः अस्तु यज्ञम्॥
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरो अवीरहा, प्र चरा सोम दुर्यान्॥37॥

संहितापाठ

या ते धामानि हविषा यजन्ति, ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्॥गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान्॥37॥

मन्त्रार्थ : या जो **ते** तुम्हारे लिए **धामानि** धामों में **हविषा** आदान-प्रदान द्वारा **यजन्ति** यजन करते हैं, **ता** वे **ते** तुम्हारे **यज्ञम्** यजन के **विश्वा** सब **परिभूः** तरफ (व्याप्त) **अस्तु** हों। **गयस्फानः** स्तुतियों का विस्तार करने वाले, **प्रतरणः** तारने वाले, **सुवीरो** अच्छे वीर, **अवीरहा** वीरों को नहीं, (अवीरों, कायरों) को मारने वाले **दुर्यान्** कठिन मार्गों पर **सोम** सोम का **प्र चरा** प्रचार करें।

भावार्थ :- यजन में आदान-प्रदान करें, परस्पर सहयोग करें, स्तुतियों का विस्तार करें। जटिल कर्मकाण्ड नहीं, सेवा सहयोग महत्वपूर्ण है। कठिन मार्ग पर भी साहस के साथ बढ़ें और सोम का प्रचार करें। प्रयास से ही वैदिक संस्कृति का विस्तार कर सकते हैं॥ 37॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : या (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **धामानि** (धा = धारण करना)। **हविषा** (हु = दान-आदान करना, देना)। **यजन्ति** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना)। **ता** (सर्वनाम)। **विश्वा** (सर्वनाम)। **परिभू** (परि = सभी तरफ, भू = होना)। **अस्तु** (अस् = होना)। **यज्ञम्** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना)। **गयस्फानः** (गा स्तुतौ - स्तुति करना, स्फायी - बढ़ना)। **प्रतरणः** (तॄ - पार जाना, तैरना, जीतना)। **सुवीरो** (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। **अवीरहा** (अ + वीर, हन हिंसागत्योः - मार डालना)। **प्रचरा** (प्र + चर = आचरण करना)। **सोम** (सु - उत्पन्न करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। **दुर्यान्** (दु = जाना, दुःख होना, तप्त करना, या = जाना)॥

इति चतुर्थो अध्यायः

ॐ

पञ्चमो अध्यायः

(45) सूक्त 1

166. अग्नेः तनूः असि विष्णवे त्वा, सोमस्य तनूः असि विष्णवे त्वा,
अतिथेः आतिथ्यम् असि विष्णवे त्वा, श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वा,
अग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा ॥1॥

संहितापाठ

अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वाऽतिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाऽग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा ॥1॥

मन्त्रार्थ : त्वा तुम **विष्णवे** विष्णु के लिए **अग्नेः** अग्नि का **तनूः** शरीर **असि** हो। **त्वा** तुम **विष्णवे** विष्णु के लिए **सोमस्य** सोम का **तनूः** शरीर **असि** हो। **त्वा** तुम **विष्णवे** विष्णु के लिए **अतिथेः** अतिथि का **आतिथ्यम्** आतिथ्य **असि** हो। **त्वा** तुम **श्येनाय** श्येन के लिए, **सोमभृते** सोम का भरण करने वाले के लिए, **विष्णवे** विष्णु के लिए **त्वा** तुम (हो), **त्वा** तुम **अग्नये** अग्नि के लिए, **रायस्पोषदे** विद्या-पोषण के लिए, **विष्णवे** विष्णु के लिए (हो)।

भावार्थ :- तनु शव्द का सामान्य अर्थ शरीर है। तन् धातु का अर्थ विस्तार, भरोसा, आश्रय, वाणी आदि होता है। तनु शब्द में ये सभी अर्थ हैं। शरीर कहने का यही भाव है। विष्णु का अर्थ व्यापक होता है। हमें दिव्य गुणों का विस्तार या शरीर बनना है, वह भी व्यापकता के लिए, सीमित उद्देश्य के लिए नहीं। 1॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अग्नेः (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना)। **तनूः** (तन् = विस्तार, भरोसा, आश्रय)। **असि** (अस् = होना)। **विष्णवे** (विष्ण् = व्याप्त होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सोमस्य** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **अतिथेः** (अत् = सतत गमन करना, निरन्तर चलना)। **आतिथ्यम्** (अत् = सतत गमन करना, निरन्तर चलना)। **श्येनाय** (श्यै - जाना)। **सोमभृते** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, भृ = भरण-पोषण)। **अग्नये** (अग् = ऊपर जाना, ऊर्ध्व गमन करना, आगे जाना)। **रायस्पोषदे** (रय् = जाना, जानना, पाना, पुष् = पोषण करना)।॥॥

167. अग्नेः जनित्रम् असि, वृषणौ स्थ, उर्वशी असि आयु असि पुरूरवा असि।
गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि, त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि, जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि ॥2॥

संहितापाठ

अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थऽउर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवाऽअसि। गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि ॥2॥

मन्त्रार्थ : अग्नेः अग्नि के **जनित्रम्** उत्पादक **असि** हो, **वृषणौ** वर्षा कराने वाले युगल **स्थ** हो, **उर्वशी** उर्वशी **असि** हो, **आयु** आयु **असि** हो, **पुरूरवा** पुरूरवा **असि** हो। **त्वा** तुमको **गायत्रेण** ग़ायत्री **छन्दसा** छन्द से **मन्थामि** मथता हूँ। **त्वा** तुमको **त्रैष्टुभेन** त्रिष्टुप् **छन्दसा** छन्द से **मन्थामि** मथता हूँ। **त्वा** तुमको **जागतेन** जगती छन्दसा छन्द से मन्थामि मथता हूँ।

भावार्थ :- अग्नि का अर्थ ऊर्ध्व गति तथा अग्रणी होना है। इसी अर्थ में यह परमात्मा का मुख्य नाम भी है। परमात्मा का उपासक भी अग्नि या अग्रणी है। वह वृक्षों को कटने और जलने से बचाकर पर्यावरण संरक्षण के उपाय करे तो समुचित वर्षा हो सकती है। उपासक उर्वशी होता है अर्थात् गतिशीलता तथा हिंसा पर उसका नियन्त्रण होता है। वह पुरूरवा है अर्थात् वह समाज में मुख्य और अग्रसर होता है तथा प्रकाशमान होता है। विभिन्न छन्दों के वेदमन्त्रों के मार्गदर्शन से विचार मन्थन करता है॥ 2॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : अग्नेः (अग् = गति करना, अग्रणी होना)। **जनित्रम्** (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना)। **असि** (अस् = होना)। **वृषणौ** (वृष - पराक्रमी होना, बरसना)। **स्थ** (अस् - होना)। **उर्वशी** (उर् = चलना, जाना, उर्व हिंसा करना, दुःख देना)। **पुरूरवा** (पुर् = मुख्य होना, अग्रसर होना, रव - चलना, प्रकाश करना)। **गायत्रेण** (गा - स्तुति करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **छन्दसा** (छन्द् - ढकना, आच्छादन करना)। **मन्थामि** (मन्थ - बिलोना, मथना)। **त्रैष्टुभेन** = त्रिष्टुप् से। **जागतेन** (जग-जाना, लेना, ग्रहण करना)॥ 2॥

168. भवतम् नः समनसौ, सचेतसौ अरेपसौ।
मा यज्ञम् हिंसिष्टम् मा यज्ञपतिम्, जातवेदसौ शिवौ भवतम् अद्य नः॥3॥

संहितापाठ

भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः॥3॥

मन्त्रार्थ : (तुम दोनो) **नः** हमारे लिए **समनसौ** समान मन वाले, **सचेतसौ** समान चित्त वाले, **अरेपसौ** अहिंसक **भवतम्** बनो (हो जाओ)। **यज्ञम्** यजन व **यज्ञपतिम्** यजनपति की **मा** न **हिंसिष्टम्** हिंसा करें। **अद्य** आज **नः** हमारे लिए **जातवेदसौ** ज़ातवेद (वेद से उत्पन्न) **शिवौ** शिव (कल्याणकारी) **भवतम्** होवें।

भावार्थ :- ईश्वर से हमारी यह प्रार्थना है और उपासकों से यही अपेक्षा भी है। मन, चित्त समान हों, अहिंसक हों, कल्याणकारी हों तो सभी सुखी हो सकते हैं॥ 3॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : भवतम् (भू = होना)। **नः** (सर्वनाम)। **समनसौ** (स + मनसौ, मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **सचेतसौ** (चित - विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना, याद करना)। **अरेपसौ** (रेप - जाना, शब्द करना, रि-हिंसा करना)। **मा** (अव्यय)। **यज्ञम्** (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **हिंसिष्टम्** (हिंस् = हिंसा करना, मारना)। **मा (मा-माम्)** (अव्यय, सर्वनाम)। **यज्ञपतिम्** (यज - देवपूजा करना, देना, संगति करना)। **जातवेदसौ** (जन् = उत्पन्न होना, विद् = जानना)। **शिवौ** (शिव् = कल्याण करना)। **भवतम्** (भू = होना)। **अद्य** (अव्यय)॥ 3॥

(46) सूक्त 2

169. अग्नौ अग्निः चरति प्रविष्टः, ऋषीणाम् पुत्रः अभिशस्ति–पावा।
स नः स्योनः सुयजा यज इह, देवेभ्यः हव्यम् सदम् अप्रयुच्छन्॥स्वाहा॥4॥

संहितापाठ

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टऽऋषीणां पुत्रोऽअभिशस्तिपावा। स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳसदमप्रयुच्छन्त्स्वाहा॥4॥

मन्त्रार्थ :- अग्नौ अग्नि में **प्रविष्टः** प्रविष्ट होकर **अग्निः** अग्नि **चरति** विचरण करता है। **ऋषीणाम्** ऋषियों का **पुत्रः** पुत्र **अभिशस्ति–पावा** हिंसा से रक्षा करने वाला है। **स** वह **नः** हमारे लिए **स्योनः** सुखकर **सुयजा** सुन्दर **यजन** करने वाला है। **इह** यहां **देवेभ्यः** देवों के लिए **यज** यजन करो, **अप्रयुच्छन्** प्रमादहीन होकर **सदम्** स्थान को **हव्यम्** हव्य को **स्वाहा** व्यापक बनाओ।

भावार्थ :- हम अग्नि स्वरूप अर्थात् तेजस्वी, ऊर्ध्वगामी बनें तो अग्नि परमात्मा हमारे हृदय में विचरण करता है। ऋषियों का पुत्र उपासक भी अग्नि स्वरूप होता है। उपासक ऋषियों के मार्गदर्शन से ही बनता है। उत्पन्न करने वाले ऋषि अनेक हो सकते हैं, उनका पुत्र एक उपासक हो सकता है। उसका यजन व्यापक होता है तथा सबके लिए सुखकर होता है॥ 4॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : अग्नौ (अग् = ऊपर जाना, जानना, पाना, तेजस्वी होना)। **अग्निः** (अग् = ऊपर जाना, जानना, पाना, तेजस्वी होना)। **चरति** (चर = जाना, खाना, आचरण करना)। **प्रविष्टः** (विश = घुसना, भीतर जाना, धंसना, चारो ओर फैलना)। **ऋषीणाम्** (ऋष - जाना, आना, ग्रहण करना, लेना, बहना)। **पुत्रः** (पु - रक्षा करना)। **अभिशस्तिपावा**

(शस् = हिंसा करना, पा - रक्षा करना)। **सः** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **स्योनः** (स्योन् = सुख होना, सुख देना)। **सुयजा** (यज- यजन करना, देवपूजा करना, अर्पण करना)। **इह** (सर्वनाम)। **देवेभ्यः** (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, जानना)। **हव्यम्** (हू = दान, आदान करना, लेना-देना)। **सदम्** (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। **अप्रयुच्छन्** (युच्छ् = प्रमाद करना, असावधान होना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥ 4॥

170. आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि, तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वने ओजिष्ठाय।
अनाधृष्टम् असि अनाधृष्यम् देवानाम् ओजो, अनभिशस्ति अभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यम्,
अञ्जसा सत्यम् उप गेषम् सु इते मा धाः॥5॥

संहितापाठ

आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वनऽ ओजिष्ठाय। अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽनभिशस्त्यभिशस्तिपाऽ अनभिशस्तेन्यमञ्जसा सत्यमुपगेष स्विते मा धाः॥5॥

मन्त्रार्थ :- **त्वा** तुमको **आपतये** आपति (सम्यक् पालन व रक्षा कर्ता) तथा **परिपतये** परिपति (सब ओर से पालन व रक्षा) के लिए **तनूनप्त्रे** शरीर या विस्तार देने वाले के लिए, **शाक्वराय** शक्तिदाता के लिए, **शक्वने** बल के लिए, **ओजिष्ठाय** ओजिष्ठ के लिए **गृह्णामि** ग्रहण करता हूँ। **अनाधृष्टम्** अविजित, **अनाधृष्यम्** निरभिमानी, अजेय, **देवानाम्** देवों के **ओजो** ओज, **अनभिशस्ति** अहिंसक, **अभिशस्तिपा** हिंसा से रक्षा करने वाले, **अनभिशस्तेन्यम्** अहिंसायोग्य को **अञ्जसा** स्वच्छता से, प्रकाश द्वारा **सत्यम्** सत्य की **उप गेषम्** खोज (खोजने की भावना) को **सु इते** अच्छी तरह **मा** मुझमें **धाः** धारण कराओ।

भावार्थ :- हम अनेक गुणों तथा पवित्र उद्देश्यों के लिए परमात्मा का ग्रहण करते हैं। ग्रहण करने का भाव है परमात्मा को हृदय में, अपने जीवन में आत्मसात् करना। हम परमात्मा की भक्ति को ग्रहण कर सकते हैं, उसकी कृपा प्राप्त कर सकते हैं। सत्य को खोजने की भावना को जीवन में धारण कर लें, किसी भी मान्यता को लेकर दुराग्रही न बनें, वेद और विवेक के प्रकाश में सत्य की खोज करते रहें॥ 5॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : आपतये (पत् - श्रीमान् होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **परि** (उपसर्ग)। **गृह्णामि** (गृह - लेना, स्वीकार करना)। **तनूनप्त्रे** (तन् = विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। **शाक्वराय** (शक् - शक्तिमान् होना, समर्थ होना, सकना)। **शक्वने** (शक् - शक्तिमान् होना, समर्थ होना, सकना) **ओजिष्ठाय** (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। **अनाधृष्टम्** (अन् + आ + धृष् = जीतना, अधीर होना, घबराना)। **असि** (अस् = होना)। **अनाधृष्यम्** (अन् + आ + धृष् = जीतना, अधीर होना, घबराना)। **देवानाम्** (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान होना)। **ओजो** (ओज् = बल होना)। **अनभिशस्ति** (अन् = नहीं (उपसर्ग), अभि = सभी ओर, शष - हिंसा करना)। **अभिशस्तिपा** (अभि = सभी ओर, 5शष - हिंसा करना, पा - रक्षा करना, पालन करना)। **अनभिशस्तेन्यम्** (अभि = सभी ओर, शष - हिंसा करना)। **अंजसा** (अंज - स्वच्छ करना, प्रकाशित होना)। **सत्यम्** (सत्-सत्य होना)। **उप** (उपसर्ग)। **गेषम्** (गेष - ढूँढ़ना, खोजना)। **सु** (उपसर्ग)। **इते** (अव्यय)। **मा** (सर्वनाम)। **धाः** (धा- धारण करना)॥ 5॥

171. अग्ने व्रतपाः त्वे व्रतपा या तव तनूः, इयम् सा मयि, यो मम तनूः एषा सा त्वयि॥
सह नौ व्रतपते व्रतानि अनु मे दीक्षाम् दीक्षापतिः, मन्यताम् अनु तपः तपस्पतिः॥6॥

संहितापाठ

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूरियꣳसा मयि यो मम तनूरेषा सा त्वयि। सह नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः॥6॥

मन्त्रार्थ : व्रतपाः व्रत का पालन करने वाले **अग्ने** हे अग्नि, **त्वे** तुम्हारे लिए **या** जो **व्रतपा** व्रत का पालन करने वाले **(हैं), तव** तुम्हारा ही **तनूः** शरीर या विस्तार हैं। **इयम्** यही (भावना) **मयि** मुझमें हो (और) **यो** जो **मम** मेरा **तनूः** शरीर या विस्तारक्षेत्र है, **एषा** यह **सा** वह **त्वयि** तुममें ही (समर्पित) है। **व्रतपते** हे व्रतपते, **व्रतानि** व्रतों के **अनु** पश्चात् **दीक्षापतिः**

दीक्षापति **नौ** हमें **सह** साथ-साथ **दीक्षाम्** दीक्षा (दें), **अनु तपः** तप के पश्चात् **तपस्पतिः** तपस्पति **मन्यताम्** मान (दें)।

भावार्थ :- व्रत का पालन करने की भावना हो और वह भी परमात्मा को समर्पित हो। उपासक के लिए यही सच्ची भक्तिभावना है।। 6।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अग्ने (अग् = ऊर्ध्वगति करना, तेजस्वी होना)। **व्रतपाः** (वृ = वरण करना, पा - रक्षा करना, पालन करना)। **त्वे** (सर्वनाम)। **या** (सर्वनाम)। **तव** (सर्वनाम)। **तनूः** (तन् = विस्तार करना, फैलाना)। **इयम्** (सर्वनाम)। **सा** (सर्वनाम)। **मयि** (सर्वनाम)। **मम** (सर्वनाम)। **एषा** (सर्वनाम)। **त्वयि** (सर्वनाम)। **सह** (सर्वनाम)। **नौ** (सर्वनाम)। **व्रतपते** (वृ = वरण करना, पा - रक्षा करना, पालन करना) **व्रतानि** (वृ = वरण करना)। **अनु** (उपसर्ग)। **मे** (सर्वनाम)। **दीक्षाम्** (दीक्ष - दीक्षा देना, उपदेश देना, आत्मनिग्रह करना, मानव धर्म सिखाना, आदेश देना)। **दीक्षापतिः** (दीक्ष - दीक्षा देना, उपदेश देना, आत्मनिग्रह करना, मानव धर्म सिखाना, आदेश देना, पत् = ऐश्वर्य होना)। **मन्यताम्** (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। **तपः** (तप - तप्त होना, जलना, जलाना)। **तपस्पतिः** (तप् = तप्त होना, तप्त करना, तप करना, ऐश्वर्य होना)।। 6।।

(47) सूक्त 3

172. अंशुः अंशुः ते देव सोम आ प्यायताम्, इन्द्राय एक-धनविदे।
आ तुभ्यम् इन्द्रः प्यायताम्, आ त्वम् इन्द्राय प्यायस्व।
आ प्यायय अस्मान् सखीन् सन्या मेधया, स्वस्ति ते देव सोम सुत्याम् अशीय।
एष्टा रायः प्र इषे भगाय ऋतम्, ऋतवादिभ्यो नमो द्यावा-पृथिवीभ्याम्।।7।।

संहितापाठ

अꣳशुरꣳशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे। आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व। आप्याययास्मान्त्सखीन्त्सन्त्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय। एष्टा रायः प्रेषे भगायऽऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्याम्।।7।।

मन्त्रार्थ :- देव हे देव **सोम** सोम, **ते** तुम्हारी **अंशुः अंशुः** सम्पूर्ण व्यापकता अथवा एक-एक अंश **एक-धनविदे** एकमात्र धन (परमात्मा) को ही जानने वाले **इन्द्राय** इन्द्र के लिए **आ प्यायताम्** सम्यक् रूप से बढ़े। **तुभ्यम्** तुम्हारे लिए **इन्द्रः** इन्द्र **आ** सम्यक् रूप से **प्यायताम्** बढ़े, **त्वम्** तुम **इन्द्राय** इन्द्र के लिए **आ** सम्यक् रूप से **प्यायस्व** बढ़ो। **सन्या** दान, सेवा, **मेधया** मेधा से **अस्मान्** हम **सखीन्** मित्रों को **आ** सम्यक् रूप से **प्यायय** बढ़ाओ। **देव** देव **सोम** सोम, **ते** तुम्हारा **स्वस्ति** कल्याण हो, **सुत्याम्** अभिषवन में **अशीय** व्याप्त हों। **एष्टा** अभीष्ट **रायः** धन (और) **प्र प्रकृष्ट,** अधिक **इषे** गति, अभ्यास, इच्छा के लिए **भगाय** ऐश्वर्य के लिए **ऋतम्** ऋत को (अपनायें)। **ऋतवादिभ्यो** ऋतवादियों के लिए **द्यावा-पृथिवीभ्याम्** द्यावापृथिवी के लिए **नमो** नमन।

भावार्थ :- एकमात्र परमात्मा ही धन है, सभी धन, सम्पदा, ऐश्वर्य उसी से हैं। अतः उसी को एकमात्र धन जानना चाहिए। यह धन मिल गया तो सबसे बड़ा धन मिल गया। दान, सेवा, मेधा से हम सभी मित्र बढ़ सकते हैं। एक अकेले नहीं, सभी मित्र एकसाथ बढ़ें, तभी जीवन में आगे बढ़ना सार्थक और स्थायी हो सकता है।। 7।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अंशुः (अंश् - विभाग करना, बाँटना, साथ होना)। **ते** (सर्वनाम)। **देव** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **सोम** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **आ** (उपसर्ग)। **प्यायताम्** (प्याय् = बढ़ना)। **इन्द्राय** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **एक** (संख्या)। **धनविदे** (धन - उत्पन्न करना, फलना, बौर लगना, विद - समझना, जानना)। **तुभ्यम्** (सर्वनाम)। **इन्द्रः** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **त्वम्** (सर्वनाम)। **प्यायस्व** (प्याय् = बढ़ना)। **प्यायय** (प्याय् = बढ़ना)। **अस्मान्** (सर्वनाम)। **सखीन्** (सख् = मित्र होना)। **सन्या** (सनु - देना, दान करना, सेवा करना)। **मेधया** (मेधा - शीघ्र समझना)। **स्वस्ति** (सु - उत्पन्न करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। **सुत्याम्** (सु - स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना)। **अशीय** (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)। **एष्टा** (एष - प्रयत्न करना, समीप जाना या आना, चाहना)। **रायः** (रय् = जाना, जानना, पाना)। **प्र** (उपसर्ग)। **इषे** (इष् = जाना, बार-बार करना, चाहिए)। **भगाय** (भज - दान करना, अलग

करना, भजन करना, ऐश्वर्य होना)। **ऋतम्** (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। **ऋतवादिभ्यो** (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। **नमो (नमः)** (नम- नमस्कार करना, आदर करना, उपासना- साधना करना)। **द्यावापृथिवीभ्याम्** (द्यु = आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)॥ 7॥

173. या ते अग्ने अयःशया, तनूः वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा।
उग्रम् वचो अप अवधीत्, त्वेषम् वचो अप अवधीत् स्वाहा॥
या ते अग्ने रजःशया, तनूः वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा।
उग्रम् वचो अप अवधीत्, त्वेषम् वचो अप अवधीत् स्वाहा॥
या ते अग्ने हरिशया तनूः, वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा।
उग्रम् वचो अप अवधीत् त्वेषम्, वचो अप अवधीत् स्वाहा॥8॥

संहितापाठ

या तेऽअग्नेऽयःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा। या तेऽअग्ने रजःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा। या तेऽअग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा॥8॥

मन्त्रार्थ :- अग्ने हे अग्नि, **या** जो **ते** तुम्हारा **अयःशया** गतिशीलता में विश्राम पाने वाला अथवा अयःशायी, **तनूः** शरीर या विस्तार है, (वह) **वर्षिष्ठा** परम पराक्रमी (तथा) **गह्वरेष्ठा** घने स्थानों (गुफाओं) में स्थित (है)। प्रकाश ने **उग्रम्** उग्र **वचो** वचन को **अप अवधीत** नष्ट कर दिया, **त्वेषम्** प्रकाश ने **स्वाहा** व्यापकता ने (उग्र) **वचो** वचन को **अवधीत्** नष्ट कर दिया। **अग्ने** हे अग्नि, **या** जो **ते** तुम्हारा **रजःशया** रजःशायी **तनूः** शरीर या विस्तार है, (वह) **वर्षिष्ठा** परम पराक्रमी (तथा) **गह्वरेष्ठा** घने स्थानों (गुफाओं) में स्थित (है)। प्रकाश ने **उग्रम्** उग्र **वचो** वचन को **अप अवधीत** नष्ट कर दिया, **त्वेषम्** प्रकाश ने **स्वाहा** व्यापकता ने (उग्र) **वचो** वचन को **अवधीत्** नष्ट कर दिया। **अग्ने** हे अग्नि, **या** जो **ते** तुम्हारा **हरिशया** हरिशायी **तनूः** शरीर या विस्तार है, (वह) **वर्षिष्ठा** परम पराक्रमी (तथा) **गह्वरेष्ठा** घने स्थानों (गुफाओं) में स्थित (है)। प्रकाश ने **उग्रम्** उग्र **वचो** वचन को **अप अवधीत** नष्ट कर दिया, **त्वेषम्** प्रकाश ने **स्वाहा** व्यापकता ने (उग्र) **वचो** वचन को **अवधीत्** नष्ट कर दिया।

भावार्थ :- अग्नि का तनू अर्थात् शरीर या विस्तार अयःशायी, रजःशायी (तथा) हरिशायी है। अय का अर्थ गतिशीलता है और इसका भावार्थ तथा रूढ़ार्थ लोहा माना जाता है। गतिशीलता में लोहे का महत्व हम सब जानते हैं। रजः का अर्थ प्रसन्न करना भी है। अग्नि का विस्तार प्रसन्नता में निहित है। हरि का अर्थ है हरण करने वाला। हम दुःखों को हरने वाले परमात्मा को हरि भी कहते हैं। ऐसे गुणों को अपनाकर उपासक अपवचनों से मुक्त हो सकता है॥ 8॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : या (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **अग्ने** (अग् = ऊर्ध्वगति करना, तेजस्वी होना)। **अयःशया** (अय - जाना, शी - सोना, शयन करना)। **तनूः** (तन् = विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना)। **वर्षिष्ठा** (वृष् = अति पराक्रम करना)। **गह्वरेष्ठा** (गह - घना होना, निबिड़ होना, स्था - स्थित होना, ठहरना)। **उग्रम्** (उग्र = क्रूर)। **वचो** (वच - बोलना, कहना, समझाना)। **अप**= दूर (उपसर्ग)। **अवधीत्** (वध-हन् - हिंसा करना)। **त्वेषम्** (त्विष - प्रकाशित होना, चमकना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **हरिशया** (हृ - चुराना, ले जाना, नष्ट करना)॥ 8॥

174. तप्तायनी मे असि, वित्तायनी मे असि, अवतात् मा नाथितात् अवतात् मा व्यथितात्॥
विदेत् अग्निः नभो नाम अग्ने, अंगिरः आयुना नाम्ना आ इहि,
यो अस्याम् पृथिव्याम् असि, यत् ते अनाधृष्टम् नाम यज्ञियम् तेन त्वा दधे।
विदेत् अग्निः नभो नाम अग्ने, अंगिरः आयुना नाम्ना आ इहि,
यो द्वितीयस्याम् पृथिव्याम् असि, यत् ते अनाधृष्टम् नाम यज्ञियम् तेन त्वा दधे।
विदेत् अग्निः नभो नाम अग्ने, अंगिरः आयुना नाम्ना आ इहि,

यः तृतीयस्याम् पृथिव्याम् असि, यत् ते अनाधृष्टम् नाम यज्ञियम् तेन त्वा दधे।
अनु त्वा देववीतये ॥9॥

संहितापाठ

तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात्। विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे। अनु त्वा देववीतये ॥9॥

मन्त्रार्थ : मे मेरे लिए **तप्तायनी** तप्तायनी (ऊर्जा प्रदान करने वाली) **असि** तुम हो, **मे** मेरे लिए **वित्तायनी** वित्तायनी (धन तथा विद्या देने वाली) **असि** तुम हो, **नाथितात्** नाथित से **मा** मेरी **अवतात्** रक्षा करो, **व्यथितात्** व्यथित से **मा** मेरी **अवतात्** रक्षा करो।

अग्निः अग्नि **विदेत्** जाने। **नभो** नभ **नाम** नाम वाले **अग्ने** हे अग्नि, **अंगिरः** अंगिरः **आयुना** आयु **नाम्ना** नाम से **आ इहि** आयें। (तुम) **यो** जो **अस्याम्** इस **पृथिव्याम्** पृथ्वी पर **असि** हो, **यत्** जो **ते** तुम्हारा **अनाधृष्टम्** अनाधृष्ट **नाम** नाम वाला **यज्ञियम्** यज्ञकर्म (है), **तेन** उससे **त्वा** तुम्हें **दधे** धारण किया है।

अग्निः अग्नि **विदेत्** जाने। **नभो** नभ **नाम** नाम वाले **अग्ने** हे अग्नि, **अंगिरः** अंगिरः **आयुना** आयु **नाम्ना** नाम से **आ इहि** आयें। (तुम) **यो** जो **द्वितीयस्याम्** दूसरी **पृथिव्याम्** पृथ्वी पर **असि** हो, **यत्** जो **ते** तुम्हारा **अनाधृष्टम्** अनाधृष्ट **नाम** नाम वाला **यज्ञियम्** यज्ञकर्म (है), **तेन** उससे **त्वा** तुम्हें **दधे** धारण किया है।

अग्निः अग्नि **विदेत्** जाने। **नभो** नभ **नाम** नाम वाले **अग्ने** हे अग्नि, **अंगिरः** अंगिरः **आयुना** आयु **नाम्ना** नाम से **आ इहि** आयें। (तुम) **यो** जो **तृतीयस्याम्** तीसरी **पृथिव्याम्** पृथ्वी पर **असि** हो, **यत्** जो **ते** तुम्हारा **अनाधृष्टम्** अनाधृष्ट **नाम** नाम वाला **यज्ञियम्** यज्ञकर्म (है), **तेन** उससे **त्वा** तुम्हें **दधे** धारण किया है। **देववीतये** देवों की संतुष्टि के लिए **त्वा** तुमको **अनु** पीछे **दधे** धारण किया है)।

भावार्थ :- हमको अपने जीवन में समस्त ऊर्जा विद्या, धन परमात्मा की कृपा से प्राप्त होता है। उसकी कृपा से ही हमारी रक्षा होती है। नाथित शब्द नाथृ धातु से बना है जिसका अर्थ याचना करना, रोगी होना, श्रीमान् होना, आशीर्वाद देना है। इस मन्त्र में याचना तथा रोगी होने से बचाने की प्रार्थना तो है ही, बहुत धनवान् होने तथा आशीर्वाद देने के प्रपंच से भी बचाने की प्रार्थना की गयी है। उपासक आरोग्य तथा आत्मनिर्भता चाहता है जिससे वह सेवा कार्य कर सके, परन्तु सम्पन्नता तथा दिखावे के सम्मान का आडम्बर नहीं चाहता है। नभ नाम वाली अग्नि का भाव नभ या अन्तरिक्ष में व्याप्त अग्नि माना गया है। नभ् धातु का अर्थ हिंसा भी होता है। नभ वही स्थान है जहां शून्य है, अर्थात् जीवन की हिंसा है। नभ का अर्थ न ही है भा अर्थात् प्रकाश भी किया गया है। अग्नि में सबकुछ नष्ट हो जाता है। परन्तु वही अग्नि जीवन का आधार भी है, आयु तथा अंगिरः नाम वाला भी है। हम अग्नि का जैसा उपयोग करें, वह वैसा ही प्रभाव देगा। यही बात अग्नि नाम वाले परमात्मा तथा अग्नि जैसे ऊर्जावान् सभी पदार्थो तथा लोगों के लिए भी है। हम ऐसे अग्नि तत्व को देवों की तृप्ति के लिए धारण करते हैं॥ 9॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : तप्तायनी (तप् = तप करना)। **मे** (सर्वनाम)। **असि** (अस् = होना)। **वित्तायनी** (वित्त - देना, दान करना, धर्म में व्यय करना)। **अवतात्** (अव् = रक्षा करना)। **मा** (सर्वनाम)। **नाथितात्** (नाथ - याचना करना, रोगी होना, श्रीमान् होना, आशीर्वाद देना, स्वस्ति-वाचन करना)। **व्यथितात्** (व्यथ - व्यथित होना, दुःखी होना)। **विदेत्** (विद् = जानना)। **अग्निः** (अग् = ऊपर जाना, जानना, पाना, तेजस्वी होना)। **नभो** (नभ् = हिंसा करना)। **नाम** (अव्यय)। **अग्ने** (अग् = ऊर्ध्वगति करना, तेजस्वी होना)। **अंगिरः** (अंग् = चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। **आयुना** (अय् = गति करना, यु = मिलना, अलग करना)। **नाम्ना** (नाम - नाम होना, नाम रखना, नम् = नमन करना, सम्मान करना, शब्द करना)। **आ** (उपसर्ग)। **इहि** (इ = जाना, जानना, पाना)। **यो** (सर्वनाम)। **अस्याम्** (सर्वनाम)। **पृथिव्याम्** (पृथु = फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना, व्यापक होना, विस्तृत होना, मोटा होना)। **यत्** (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **अनाधृष्टम्** (अन् + आ +

धृष् = जीतना, अधीर होना, घबराना, धृषा = गर्व करना, स्वयम् को बड़ा समझना)। **यज्ञियम्** (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **तेन** (सर्वनाम)। **त्वा** (सर्वनाम)। **दधे** (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **द्वितीयस्याम्** (द्वि = दो)। **तृतीयस्याम्** (संख्या)। **देववीतये** (देव + वीतये, दिव् = जानना, विशिष्ट होना, विद्वान होना, कान्ति, गति होना, खेलना, वी = व्याप्त होना, गति करना)॥ 9॥

(48) सूक्त 4

175. सिंही असि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व, सिंही असि सपत्नसाही देवेभ्यः शुन्धस्व, सिंही असि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भस्व॥10॥

संहितापाठ

सिह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सिह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुन्धस्व सिह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भस्व॥10॥

मन्त्रार्थ :- सपत्नसाही सपत्नसाही **सिंही** सिंही **असि** हो, **देवेभ्यः** देवों के लिए **कल्पस्व** समर्थ करो। **सपत्नसाही** सपत्नसाही **सिंही** सिंही **असि** हो, **देवेभ्यः** देवों के लिए **शुन्धस्व** शुद्ध, पवित्र करो। **सपत्नसाही** सपत्नसाही **सिंही** सिंही **असि** हो, **देवेभ्यः** देवों के लिए **शुम्भस्व** शोभित, प्रकाशित हो।

भावार्थ :- सपत्नसाही का अर्थ है सपत्न को सहन करने वाला। सपत्न का अर्थ ऐश्वर्ययुक्त है। पत् धातु का अर्थ ऐश्वर्य होना भी है, इसी से पति का अर्थ रक्षक या स्वामी होता है। सिंही का अर्थ हिंसक या सिंह के समान हो सकता है। हम अपने ऐश्वर्य को सहन कर सकें और अहंकारी न बनें तथा दूसरे के ऐश्वर्य को सहन कर सकें, ईर्ष्यालु न बनें। देवजनों के लिए समर्थ बनें, पवित्र बनें तथा शोभायमान हों॥ 10॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सिंही (सिंह = हिंसा करना, गति करना)। **असि** (अस् = होना)। **सपत्नसाही** (सह - सहना, सहन करना, शक्तिमान करना)। **देवेभ्यः** (दिव्, देव् = तेजस्वी होना, विद्वान होना)। **कल्पस्व** (कल्प् - शक्तिमान होना, समर्थ होना)। **शुन्धस्व** (शुन्ध - शुद्ध होना, शुद्ध करना, पवित्र करना)। **शुम्भस्व** (शुम्भ - चमकना, प्रकाशित होना, सुन्दर होना, खूबसूरत होना)॥ 10॥

176. इन्द्रघोषः त्वा वसुभिः पुरस्तात् पातु। प्रचेताः त्वा रुद्रैः पश्चात् पातु। मनोजवाः त्वा पितृभिः दक्षिणतः पातु। विश्वकर्मा त्वा आदित्यैः उत्तरतः पातु। इदम् अहम् तप्तम् वाः, बहिर्धा यज्ञात् निः सृजामि॥11॥

संहितापाठ

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पात्विदमहं तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निःसृजामि॥11॥

मन्त्रार्थ : इन्द्रघोषः इन्द्रघोष **त्वा** तुमको **वसुभिः** वसुओं द्वारा **पुरस्तात्** पहली दिशा (पूर्व) से **पातु** पालन करे, रक्षा करे। **प्रचेताः** प्रचेता **त्वा** तुमको **रुद्रैः** रुद्रों द्वारा **पश्चात्** पीछे की दिशा (पश्चिम) से **पातु** पालन करे, रक्षा करे। **मनोजवाः** मनोजव (मन के समान गति करने वाले) **त्वा** तुमको **पितृभिः** पितरों द्वारा **दक्षिणतः** दक्षिण से। **पातु** पालन करे, रक्षा करे। **विश्वकर्मा** विश्वकर्मा **त्वा** तुमको **आदित्यैः** आदित्यों द्वारा **उत्तरतः** उत्तर दिशा से **पातु** पालन करे, रक्षा करे। **अहम्** मैं **इदम्** इस **तप्तम्** तप्त **वाः** गतिशील (जल) को **यज्ञात्** यज्ञ से **बहिर्धा** बाहर **निः सृजामि** करता हूँ।

भावार्थ :- परमात्मा विभिन्न रूपों में अथवा विभिन्न देव शक्तियों के माध्यम से सभी दिशाओं से हमारी रक्षा करता है। मन्त्र के अन्त में विशेष सन्देश ध्यान देने योग्य है। जल का प्रमुख गुण शीतलता माना जाता है। यदि जल ही तप्त हो जाये तो उसे यजन से बाहर ही करना उचित है। व्यावहारिक जीवन में विशेष प्रयोजनों के लिए तप्त जल की आवश्यकता हो सकती है, परन्तु यहां आध्यात्मिक क्षेत्र में जल को शीतलता का प्रतीक मानते हुए बताया जा रहा है कि जिसका स्वाभाविक गुण शीतलता है, वह यदि तप्त हो जाये तो उचित नहीं है॥ 11॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : इन्द्रघोषः (इन्द = परम ऐश्वर्यवान् होना, घुष् - चुपके काम करना, घोषित करना, शब्द करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **वसुभिः** (वस् = रहना, निवास करना, दया करना, प्रीति करना)। **पुरस्तात्** (अव्यय)। **पातु** (पा = पालन करना, बचाना)। **प्रचेताः** (चेत् = विचार करना, चिन्तन करना)। **रुद्रैः** (रुद् - रोना, रोते रोते कहना)। **पश्चात्** (सर्वनाम)। **मनोजवाः** (मनो = मन, जल्दी जाना)। **पितृभिः** (पा = रक्षा करना, पालन करना)। **दक्षिणतः** (दक्ष- दक्ष होना, बढ़ना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना)। **पातु** (पा = पालन करना, बचाना, रक्षा करना)। **विश्वकर्मा** (कृ = करना)। **आदित्यैः** (आ + दीधी, दीधी = चमकना, प्रकाशित होना)। **उत्तरतः** (उत् + तृ, तृ = तैरना, पार जाना)। **इदम्** (सर्वनाम)। **अहम्** (सर्वनाम)। **तप्तम्** (तप् = तप करना)। **वाः** (वा - जाना, पवन सा चलना)। **बर्हिर्धा** (बर्हिः = बाहर, धा धारण करना, पहनना)। **यज्ञात्** (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **निः** (उपसर्ग)। **सृजामि** (सृज - त्याग करना, उत्पन्न करना, रचना करना)॥ 11॥

177. सिंही असि स्वाहा सिंही असि आदित्यवनिः स्वाहा। सिंही असि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा।
सिंही असि सुप्रजावनी, रायस्पोषवनिः स्वाहा।
सिंही असि आ वह देवान्, यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यः त्वा॥12।

संहितापाठ

सिह्यसि स्वाहा सिह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा सिह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा सिह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा सिह्यस्यावह देवान्यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा॥12॥

मन्त्रार्थ : सिंही सिंही **असि** हो, **स्वाहा** व्यापक **सिंही** सिंही, **आदित्यवनिः** आदित्यवनि **स्वाहा** व्यापक हो। **सिंही** सिंही **ब्रह्मवनिः** ब्रह्मसेवी, **क्षत्रवनिः** क्षत्रसेवी, **स्वाहा** व्यापक हो। **सिंही** सिंही, **सुप्रजावनी** सुप्रजासेवी, **रायस्पोषवनिः** रायस्पोषणसेवी, **स्वाहा** व्यापक हो। **सिंही** सिंहनी हो, **देवान्** देवों को **यजमानाय** यजमान के लिए **आ वह** वहन करो, ले चलो (तथा) **भूतेभ्यः** सभी भूतों (प्राणियों, तत्वों) के लिए **स्वाहा** व्यापक हो।

भावार्थ :- सुपात्रों के लिए व्यापक सेवाभावना होनी चाहिए॥ 12॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : सिंही (सिंह - हिंसा करना)। **असि** (अस् = होना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **आदित्यवनिः** (अदिति = अ + दी, दी = क्षय होना, नष्ट होना, वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना)। **ब्रह्मवनिः** (बृह् = बढ़ना, वन् = शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना)। **क्षत्रवनिः** (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना, वन् = शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, याचना करना)। **सुप्रजावनी** (जन = उत्पन्न होना, पैदा होना, उत्पन्न करना, पैदा करना)। **रायस्पोषवनिः** (रय् = जाना, जानना, पाना, पुष् = पोषण करना)। **आ वह** (वह् = ले जाना, वहन करना)। **देवान्** (दिव्, देव् = तेजस्वी होना आदि)। **यजमानाय** (यज = देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। **भूतेभ्यः** (भू = होना)। **त्वा** (सर्वनाम)॥ 12॥

(49) सूक्त 5

178. ध्रुवो असि पृथिवीम् दृंह, ध्रुवक्षित् असि अन्तरिक्षम् दृंह,
अच्युत् क्षित् असि दिवम् दृंह, अग्नेः पुरीषम् असि॥13॥

संहितापाठ

ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृꣳह ध्रुवक्षितस्यन्तरिक्षं दृꣳहाच्युतक्षितसि दिवं दृꣳहाग्नेः पुरीषमसि॥13॥

मन्त्रार्थ :- (तुम) **ध्रुवः** ध्रुव **असि** हो, **पृथिवीम्** पृथिवी को **दृंह** दृढ़ करो। (तुम) **ध्रुवक्षित्** ध्रुवक्षित् **असि** हो, **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष को **दृंह** दृढ़ करो, बढ़ाओ। (तुम) **अच्युत् क्षित्** अच्युत् क्षित् **असि** हो, **दिवम्** दिव को **दृंह** दृढ़ करो। (तुम) **अग्नेः** अग्नि के **पुरीषम्** पुरीष (पूरक, पूर्णकर्ता) **असि** हो।

भावार्थ :- परमात्मा में असीम सामर्थ्य है, उसी से सृष्टि दृढ़ता से संचालित है। उपासक में भी परमात्मा की सीमित

क्षमता होती है। उससे हम अपने समाज को उत्तम बना सकते हैं। उपासक को अग्नि अर्थात् परमात्मा का पूरक कहा गया है। समाज के लिए भक्त और प्रभु परस्पर पूरक ही हैं।। 13 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : ध्रुवः (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना)। **असि** (अस् = होना)। **पृथिवीम्** (पृथृ - व्याप्त होना, प्रेरणा करना)। **दृंह** (दृंह् - बढ़ना, वृद्धिगत होना)। **ध्रुवक्षित्** (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, क्षि - जाना, चलना, निवास करना)। **अन्तरिक्षम्** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **अच्युत्** (अ + च्युत, च्यु - गिरना, भटकना, जाना)। **दिवम्** (दिव् = तेज होना, चमकना, जानना)। **अग्नेः** (अग् = गति करना, अग्रणी होना)। **पुरीषम्** (पुर - अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)।।

179. युञ्जते मनः उत युञ्जते धियो, विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनावित् एक इत्, मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ।। स्वाहा ।। 14 ।।

संहितापाठ

युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ।। 14 ।।

मन्त्रार्थ :– बृहतो बड़े **विपश्चितः** मेधावी **विप्रा** विप्रगण **विप्रस्य** विप्र का **मनः** मन **युञ्जते** जोड़ते हैं, **उत** उसी तरह **धियो** धारणा शक्ति, बुद्धि को **युञ्जते** जोड़ते हैं। **वयुनावित्** गति (तथा) **उड्डयन** (विद्या) को जानने वाले **वि होत्रा** विशेष दानी **देवस्य** देव **सवितुः** सविता की **मही** महान् **परिष्टुतिः** परि-स्तुति को **स्वाहा** व्यापक रूप से **दधे** धारण करते हैं।

भावार्थ :- मेधावी, विद्वान्, दानी लोग समाज को जोड़ते हैं तथा सविता देव अर्थात् सर्वोत्पादक परमात्मा के गुणगान को व्यापक रूप से धारण करते हैं।।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : युञ्जते (युज् - जुड़ना, मिलाप करना, एकत्र करना)। **मनः** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **उत** (अव्यय)। **धियो** (धी = बुद्धि, प्रज्ञा होना, धि = धारण करना)। **विप्रो** (वि = विशेष, प्रा -पूर्ण करना, भरना)। **विप्रस्य** (वि = विशेष, प्रा -पूर्ण करना, भरना)। **बृहतो** (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना)। **विपश्चितः** (वि = विशेष, विना, विलोम, पश् = देखना)। **होत्रा** (हु = दान करना, आदान करना, लेना)। **दधे** (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **वयुनावित्** (वय - उड़ना, जाना)। **एक** (संख्या)। **इत्** (अव्यय)। **मही** (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। **देवस्य** (दिव् = तेज होना, चमकना, जानना)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। **परिष्टुतिः** (स्तु = स्तुति, पूजा, सेवा करना)। **स्वाहा** (अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)।। 14 ।।

180. इदम् विष्णुः विचक्रमे, त्रेधा नि दधे पदम्। सम् ऊढम् अस्य पांसुरे स्वाहा ।। 15 ।।

संहितापाठ

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे स्वाहा ।। 15 ।।

मन्त्रार्थ :- विष्णुः विष्णु ने **इदम्** इसकी **विचक्रमे** रचना की। **त्रेधा** तीन प्रकार से **पदम्** पद (ज्ञान, गति) को **नि दधे** धारण (स्थापित) किया। **अस्य** इसकी **सम्** सम्यक् **ऊढम्** वाणी **पांसुरे** पांसुल में **स्वाहा** व्यापक हो।

भावार्थ :- विष्णु का अर्थ है सर्वव्यापक अर्थात् परमात्मा। उन्होंने इस सृष्टि की रचना की। तीन प्रकार से पदस्थापित किया अर्थात् सृष्टि तीन रूपों में है। इसे चेतना, ऊर्जा, द्रव्य कह सकते हैं। सत्, रज, तम भी कहा जा सकता है।।15 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : इदम् (सर्वनाम)। **विष्णुः** (विष्ण् = व्याप्त होना)। **विचक्रमे** (वि = विशेष, चक-तृप्त होना, सन्तुष्ट होना)। **त्रेधा** (त्रि = तीन)। **नि** (उपसर्ग)। **दधे** (दध - धारण करना)। **पदम्** (पद - चलना, स्थानान्तर करना)। **सम्** (उपसर्ग)। **ऊढम्** (ऊ - शब्द करना)। **अस्य** (सर्वनाम)। **पांसुरे** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **स्वाहा** (अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)।। 15 ।।

181. इरावती धेनुमती हि भूतम्, सूयवसिनी मनवे दशस्या।

वि अस्कभ्ना रोदसी विष्णो एते, दाधर्थ पृथिवीम् अभितः मयूखैः ॥ स्वाहा ॥ 16 ॥

संहितापाठ

इरावती धेनुमती हि भूतꣳसूयवसिनी मनवे दशस्या। व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ॥ 16 ॥

मन्त्रार्थ : इरावती इरावती, **धेनुमती** धेनुमती, **सूयवसिनी** सूयवसनी ने **हि** ही **भूतम्** भूत (उत्पन्न सृष्टि) को **दशस्या** दानी **मनवे** मनु (मननशील) के लिए स्थापित किया। **विष्णो** हे विष्णु!, (सर्वव्यापी परमात्मन्, आपने) **एते** यह **रोदसी** रोदसी **पृथिवीम्** पृथिवी को **दाधर्थ** स्थापित किया, **अभितः** सभी तरफ **स्वाहा** व्यापकता से **मयूखैः** मयूखों से **वि अस्कभ्ना** धारण किया ॥

भावार्थ :- देव शक्तियों ने यह पृथ्वी, यह सम्पूर्ण सृष्टि अथवा महाभूत तत्व दानी तथा मननशील लोगों के लिए स्थापित किये हैं। व्यापकता तथा उदारता की भावना उपासकों से अपेक्षित है। ॥16 ॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : इरावती (इर् - ईर्ष्या करना, मत्सर करना)। **धेनुमती** (धेट् - पालना, पीना)। **हि** (अव्यय)। **भूतम्** (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **सूयवसिनी** (सू = गर्भ धारण करना, जन्म देना, उत्पन्न करना, गर्भ धारण करना)। **मनवे** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **दशस्या** (दाश - देना)। **वि** (उपसर्ग)। **अस्कभ्ना** (अ + स्कभ्ना = स्कभि - स्थापित होना)। **रोदसी** (रुद् - रोना, रोते-रोते कहना)। **विष्णो** (विष् = व्याप्त होना)। **एते** (सर्वनाम)। **दाधर्थ** (धृ - धारण करना)। **पृथिवीम्** (पृथ-व्याप्त होना, फेंकना, प्रकट होना)। **अभितः** (सर्वनाम)। **मयूखैः** (मय - जाना, स्थानान्तर करना)। **स्वाहा** (अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना) ॥

182. देवश्रुतौ देवेषु आ घोषतम्, प्राची प्रेतम् अध्वरम्,
कल्पयन्ती ऊर्ध्वम् यज्ञम्, नयतम् मा जिह्वरतम्।
स्वम् गोष्ठम् आ वदतम् देवी, दुर्ये आयुः मा निर्वादिष्टम्,
प्रजाम् मा निर्वादिष्टम्, अत्र रमेथाम् वर्ष्मन् पृथिव्याः ॥ 17 ॥

संहितापाठ

देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतं प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्तीऽऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम्। स्वं गोष्ठमावदतं देवी दुर्येऽआयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्या ॥ 17 ॥

मन्त्रार्थ :- देवश्रुतौ दिव्यवाणीयुक्त युगल, **देवेषु** देवों में **आ घोषतम्** घोषित करो (कि) **प्राची** प्राची (पूर्व) की ओर **प्रेतम्** जाने वाला, **अध्वरम्** अहिंसक, अवर्णनीय **कल्पयन्ती** समर्थ, रचनाशील **ऊर्ध्वम्** उच्च **यज्ञम्** यजन को **नयतम्** ले जाओ। **मा** मत **जिह्वरतम्** कुटिल बनो। **देवी** हे देवी, **स्वम्** अपने **गोष्ठम्** गोष्ठ को **आ वदतम्** बोलो (कि) **आयुः** आयु **दुर्ये** दुःख में **निर्वादिष्टम्** निन्दित न हो, **प्रजाम्** प्रजा को **मा** मत **निर्वादिष्टम्** निन्दित करो, **वर्ष्मन्** पराक्रमी बनो, **अत्र** यहाँ **पृथिव्याः** पृथ्वी पर। **रमेथाम्** रमण करो ॥

भावार्थ :- हिंसा, कुटिलता, निन्दा जैसे दुर्गुणों से बचने तथा पराक्रमी बनने का सुन्दर उपदेश है। ॥17 ॥

पदार्थः-मूल (निरुक्त)- देवश्रुतौ (दिव-तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **देवेषु** (दिव-तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **आ घोषतम्** (घुष-घोषित करना)। **प्राची** (सर्वनाम)। **प्रेतम्** (इ- जाना)। **अध्वरम्** (ध्रु-काँपना, हिलना, हिलाना)। **कल्पयन्ती** (कल्प-कल्पना करना, विचार करना)। **ऊर्ध्वम्** (सर्वनाम)। **यज्ञम्** (यज = देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। **नयतम्** (नृ- ले जाना)। **मा** (अव्यय)। **जिह्वरतम्** (जिह-जाना, जानना, पाना)। **देवी** (दिव-तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **स्वम्** (सर्वनाम)। **गोष्ठम्** (गोष्ठ- मिलकर रहना, बटोरना)। **आ वदतम्** (वद- कहना)। **आयुः** (अय-आयुस्-जीवनम्)। **दुर्ये** (दू- दुःख देना, दुःख सहन करना)। **निर्वादिष्टम्** (वद- कहना, समझाना)। **प्रजाम्** (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना) **निर्वादिष्टम्** (वद- कहना, समझाना)। **वर्ष्मन्** (वृष-पराक्रमी होना)। **अत्र** (अव्यय)। **पृथिव्याः** (पृथ-व्याप्त होना, फेंकना, प्रकट होना)। **रमेथाम्** (रम्- रमना, प्रिय होना, प्रसन्न करना) ॥ 17 ॥

(50) सूक्त 6

183. विष्णोः नु कम् वीर्याणि प्रवोचम्, यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायत् उत्तरम् सधस्थम्, विचक्रमाणः त्रेधा उरुगायो विष्णवे त्वा॥18॥

संहितापाठ

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजाँसि। योऽअस्कभायदुत्तरꣳसधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा॥18॥

मन्त्रार्थ :- हम **विष्णोः** विष्णु के **कम्** किसको **वीर्याणि** वीरकर्मो को **प्रवोचम्** कहें **यः** जिन्होंने **पार्थिवानि** पार्थिव **रजांसि** लोकों को **विममे** बनाया। **यो** जिन्होंने **उत्तरम्** उत्तर **सधस्थम्** सहस्थान को **अस्कभायत्** स्थिर किया। **त्रेधा** तीन प्रकार से **विचक्रमाणः** पराक्रम करने वाले **विष्णवे** विष्णु के लिए **उरुगायो** स्तुति (है)।

भावार्थ :- सर्वव्यापी परमात्मा की महिमा से ही सम्पूर्ण सृष्टि स्थित और संचालित है। हम उसकी ही स्तुति करते हैं। उरुगाय का अर्थ हृदय से की गयी स्तुति और तीव्रता तथा ज्ञान से की गयी स्तुति है॥18॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :– विष्णोः (विष्ण् = व्यापक होना)। **नु** (निपात, अव्यय)। **कम्** (सर्वनाम)। **वीर्याणि** (वीर् = पराक्रम करना)। **प्रवोचम्** (प्र + वोचम्, वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना)। **यः** (सर्वनाम)। **पार्थिवानि** (पृथ - फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना)। **विममे** (वि + मा - नापना, तौलना, समाना)। **रजांसि** (रंज - रजना, धूल)। **यो** (सर्वनाम)। **अस्कभायत्** (स्कभि-स्कम्भ् - रोकना)। **उत्तरम्** (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तृ, तृ = तैरना, पार जाना) **सधस्थम्** (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। **विचक्रमाणः** (चक-तृप्त होना, चकमा देना, सन्तुष्ट होना)। **त्रेधा** (त्रि = तीन)। **उरुगायो** (उर् = जाना, चलना, गा = स्तुति करना)। **विष्णवे** (विष्ण् = व्याप्त होना। **त्वा** (सर्वनाम)॥18॥

184. दिवो वा विष्णो उत वा पृथिव्या, महो वा विष्णो उरोः अन्तरिक्षात्।
उभा हि हस्ता वसुना पृणस्व, आ प्रयच्छ दक्षिणात् आ उत, सव्यात् विष्णवे त्वा॥19॥

संहितापाठ

दिवो वा विष्णऽउत वा पृथिव्या महो वा विष्णऽउरोरन्तरिक्षात्। उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा॥19॥

मन्त्रार्थ :- विष्णो हे विष्णु, **दिवो** दिवलोक **उत वा** अथवा **पृथिव्या** पृथ्वी **वा** अथवा **विष्णो** हे विष्णु, **महो** महान् **उरोः** विस्तृत **अन्तरिक्षात्** अन्तरिक्ष से, **उभा** दोनो **हि** ही **हस्ता** हाथ **वसुना** वसु से **पृणस्व** पूर्ण करो, **दक्षिणात्** दाहिने (और) **आ उत** उसी तरह **सव्यात्** बायें (हाथों) से **विष्णवे** विष्णु के लिए **प्रयच्छ** प्रदान करो।

भावार्थ :- विष्णु का अर्थ है व्यापक। सर्वव्यापी परमात्मा विष्णु है तथा उस व्यापकता को अपने जीवन में धारण करने वाला उपासक भी विष्णु या वैष्णव कहा जा सकता है। वसु का अर्थ निवास, निश्छल, दया, प्रीति आदि हैं तथा वसु का सामान्य अर्थ धन भी माना जाता है। आधिभौतिक अर्थ में अर्थात् जीवन निर्वाह की आवश्यकताओं के लिए निवास आदि सम्पत्ति तथा आध्यात्मिक अर्थ में गुण ही धन माने जाते हैं॥19॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : दिवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **वा** (अव्यय)। **विष्णोः** (विष्ण् = व्यापक होना)। **उत** (अव्यय, निपात)। **पृथिव्या** (पृथ - फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, व्याप्त होना)। **महो** (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। **उरोः** (उर् = विस्तार करना, जाना)। **अन्तरिक्षात्** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **उभा** (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना)। **हि** (अव्यय)। **हस्ता** (हस्त -देना, लेना, ग्रहण करना)। **वसुना** (वसु = निश्चल होना, निःछल होना)। **पृणस्व** (पृ - पूर्ण करना, भरना)। **आ** (उपसर्ग)। **प्रयच्छ** (यच्छ = देना, सौंपना, लौटाना, रखना)। **दक्षिणात्** (दक्ष् - बढ़ना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना, दक्ष होना, चलना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, मार डालना)। **सव्यात्** (सर्वनाम)। **विष्णवे** (विष्ण् = व्याप्त होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। 19॥

185. प्र तत् विष्णुः स्तवते वीर्येण, मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः॥

यस्य उरुषु त्रिषु वि क्रमणेषु, अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥20॥

संहितापाठ

प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥ 20॥

मन्त्रार्थ :- तत् वह **विष्णुः** विष्णु **वीर्येण** सामर्थ्य द्वारा **प्र स्तवते** स्तुत हैं। **मृगो** मृग **न** के समान **भीमः** भयंकर, **कुचरो** कुचर, **गिरिष्ठाः** पर्वतों पर स्थित (है), **यस्य** जिसके **उरुषु** विस्तृत **त्रिषु** तीन **वि क्रमणेषु** विक्रमों में **विश्वा** सभी **भुवनानि** भुवन **अधिक्षियन्ति** निवास करते हैं॥

भावार्थ :- परमात्मा की स्तुति समर्थ लोग करते हैं। असमर्थ होने पर ही स्तुति न करें, समर्थ होने पर स्तुति करें तभी सार्थकता है। कु धातु का अर्थ है शब्द करना, पुकारना। कुचर का अर्थ स्तुति की ओर चलने वाला। हृदय से पुकारो, स्तुति करो तो परमात्मा की कृपा अवश्य मिलती है॥ 20॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : प्र (उपसर्ग)। **तत्** (सर्वनाम)। **विष्णुः** (विष्ण् = व्याप्त होना)। **स्तवते** (स्तु = स्तुति, पूजा, सेवा करना)। **वीर्येण** (वीर् = पराक्रम करना)। **मृगो** (मृग - मृगया करना, शिकार करना, ढूँढ़ना)। **न** (अव्यय)। **भीमः** (भी - डरना)। **कुचरो** (कु - बुरा, चर - चलना, आचरण करना, शब्द करना)। **गिरिष्ठाः** (गिरि + स्थ = स्थित होना)। **यस्य** (सर्वनाम)। **उरुषु** (उर् = विस्तार करना, जाना)। **त्रिषु** (त्रि = तीन)। **विक्रमणेषु** (वि + क्रम = निर्भय से जाना, वृद्धि करना, बचाना)। **अधिक्षियन्ति** (क्षि - जाना, चलना, निवास करना)। **भुवनानि** (भू = होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **विश्वा** (सर्वनाम)।20।

186. विष्णो रराटम् असि, विष्णोः श्नप्त्रे स्थो, विष्णो स्यूः असि, विष्णोः ध्रुवो असि।
वैष्णवम् असि विष्णवे त्वा ॥21॥

संहितापाठ

विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि।वैष्णवमसि विष्णवे त्वा॥21॥

मन्त्रार्थ : त्वा तुम **विष्णो** विष्णु का **रराटम्** रराट **असि** हो, **विष्णोः** विष्णु की **श्नप्त्रे** वाणी या शुद्धता में **स्थो** स्थित **असि** हो, **विष्णोः** विष्णु का **स्यूः** बन्धन। **ध्रुवो** ध्रुव **असि** हो। **वैष्णवम्** वैष्णव **असि** हो, **विष्णवे** विष्णु के लिए (**असि** हो)।

भावार्थ :- रराट का अर्थ ललाट भी किया जाता है। ल के स्थान पर र तथा र के स्थान पर ल हो जाता है। रट् धातु से भी रराट शब्द माना जाता है जिसका अर्थ है वाणी। ध्रुव का अर्थ गतिशील तथा अविचल दोनो है। इसका भाव है अविचल स्थिर गतिशीलता अथवा गतिशीलता के साथ स्थायित्व। विष्णु अर्थात् व्यापक परमात्मा के भक्त वैष्णव से ऐसी ही अपेक्षा की जाती है। 21॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : विष्णोः (विष्ण् = व्यापक होना)। **रराटम्** (रट् = बोलना, सम्भाषण करना)। **असि** (अस् = होना)। **श्नप्त्रे** (स्ना - शुद्ध होना)। **स्थो** (स्था (तिष्ठ) = स्थित होना, ठहरना)। **स्यूः** (सि = बाँधना)। **ध्रुवो** (ध्रुव् = गति करना, स्थिर होना)। **वैष्णवम्** (विष्ण् = व्यापक होना, सींचना)। **विष्णवे** (विष्ण् = व्याप्त होना)। **त्वा** (सर्वनाम)॥ 21॥

(51) सूक्त 7

187. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्।
आददे नारी असि इदम् अहम्, रक्षसाम् ग्रीवा अपि कृन्तामि।
बृहन् असि बृहद्रवा बृहतीम् इन्द्राय वाचम् वद ॥22॥

संहितापाठ

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।आददे नार्यसीदमहꣳरक्षसां ग्रीवाऽअपि कृन्तामि। बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद॥

मन्त्रार्थ :- देवस्य देव को **सवितुः** उत्पन्न करने वाला (परमात्मा) **त्वा** तुम्हें **अश्विनोः** व्यापक (फैले हुए) **बाहुभ्याम्**

बाहुओं से, **पूष्णो** पोषण करने वाले **हस्ताभ्याम्** हाथों से **प्रसवे** उत्पन्न करे। (तुम) **नारी** नारी **असि** हो, **इदम्** यह **अहम्** मैंने **आददे** ग्रहण किया। **रक्षसाम्** रक्षसों की **ग्रीवा** ग्रीवा **अपि** भी **कृन्तामि** काटता हूँ। (तुम) **बृहन्** महान् **असि** हो, **बृहद्रवा** महान् वाणीयुक्त हो, **इन्द्राय** इन्द्र के लिए **बृहतीम्** महान् **वाचम्** वाणी **वद** बोलो।

भावार्थ :- देव का जनक (परमात्मा) तुमको व्यापक भुजाओं के लिए, पोषक हाथों के लिए उत्पन्न करता है। वह तुमको भी इन्ही गुणों से युक्त उत्पन्न करे। परमात्मा देवों को उत्पन्न करने वाला है। परमात्मा ने देव शक्तियों, सूर्य आदि दिव्यताओं को उत्पन्न किया है। इस बात का स्मरण कराते हुए कहा गया है कि हमारा जीवन व्यापक भुजाओं तथा पोषक हाथों के लिए है। अर्थात् हमारे कार्यों में व्यापकता होनी चाहिए। कर्म समाज का पोषण करने वाले होने चाहिए। नारी का अर्थ है ले जाने वाली। रक्ष धातु का अर्थ है रक्षा करना। समाज के रक्षक तो रक्षणीय हैं। यदि कोई अपने स्वार्थों की रक्षा की चिन्ता करे और स्वार्थ के लिए दूसरों का अहित करे तो वह रक्षक नहीं कहा जा सकता है। ऐसे रक्षस तो दण्डनीय हैं, उनका गला काटने का भी साहस समाज हित में करें। इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिए महान् वाणी बोलो, स्तुति करो॥ 22॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **प्रसवे** (प्र + सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **अश्विनोः** (अशू-अश् = व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना)। **बाहुभ्याम्** (बह,बाहु - भुजायाम् बहना, चलना)। **पूष्णो** (पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। **हस्ताभ्याम्** (हस्त -देना, लेना, ग्रहण करना)। **आ** (उपसर्ग)। **ददे** (दद-दा - दान करना, देना, त्याग करना)। **नारि** (नृ - ले जाना)। **असि** (अस् = होना)। **इदम्** (सर्वनाम)। **अहम्** (सर्वनाम)। **रक्षसाम्** (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। **ग्रीवा** (गृ = समझना, जानना, निगलना, बोलना, समझाना, बताना)। **अपि** (अव्यय)। **कृन्तामि** (कृन्त = घेरना, कतरना)। **बृहन्** (बृंह् = बढ़ना)। **बृहद्रवा** (बृंह् = बढ़ना)। **बृहतीम्** (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना)। **इन्द्राय** (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **वाचम्** (वच - बोलना, कहना, समझाना)। **वद** (वद - कहना, समझाना)॥ 22॥

188. रक्षोहणम् वलगहनम् वैष्णवीम्।
इदम् अहम् तम् वलगम् उत् किरामि, यम् मे निष्ट्यो यम् अमात्यो नि चखान।
इदम् अहम् तम् वलगम् उत् किरामि, यम् मे समानो यम् असमानो नि चखान।
इदम् अहम् तम् वलगम् उत् किरामि, यम् मे सबन्धुः यम् असबन्धुः नि चखान।
इदम् अहम् तम् वलगम् उत् किरामि, यम् मे सजातो यम् असजातो नि चखान।
उत् कृत्याम् किरामि॥23॥

संहितापाठ

रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि॥23॥

मन्त्रार्थ :– रक्षोहणम् रक्षोहण **वलगहनम्** वलगहन **वैष्णवीम्** वैष्णवी को (भजो)। **अहम्** मैं **इदम्** इस (और) **तम्** उस **वलगम्** वलग को **उत् किरामि** दूर करता हूँ, **यम्** जिसको **मे** मेरे **निष्ट्यो** निष्ट्य ने (और) **यम्** जिसको **अमात्यो** अमात्य ने **नि चखान** खोदा है।

अहम् मैं **इदम्** इस (और) **तम्** उस **वलगम्** वलग को **उत् किरामि** दूर करता हूँ **यम्** जिसको **मे** मेरे **समानो** समान ने (और) **यम्** जिसको **असमानो** असमान ने **नि चखान** खोदा है।

अहम् मैं **इदम्** इस (और) **तम्** उस **वलगम्** वलग को **उत् किरामि** दूर करता हूँ **यम्** जिसको **मे** मेरे **सबन्धुः** सबन्धु ने (और) **यम्** जिसको **असबन्धुः** असबन्धु ने **नि चखान** खोदा है।

अहम् मैं **इदम्** इस (और) **तम्** उस **वलगम्** वलग को **उत् किरामि** दूर करता हूँ **यम्** जिसको **मे** मेरे **सजातो** सजात

ने (और) **यम्** जिसको **असजातो** असजात ने **नि चखान** खोदा है। **उत्** उत्तम **कृत्याम्** कृत्य **किरामि** करता हूँ।

भावार्थ :- इस मन्त्र में वलगहनम् पद एक बार तथा वलगम् पद अनेक बार आया है। वलगहनम् शब्द को वल-गहनम् तथा वलग-हनम् के रूप समझा जा सकता है। इस प्रकार इसका अर्थ गहनवल तथा वलग का हनन करने वाला हो सकता है। वलगम् पद अनेक बार आने से स्पष्ट है कि वलग-हनम् पद अधिक उपयुक्त है। वल का अर्थ आच्छादन या घेरा है, अतः वलग-हनम् का अर्थ घेरा तोड़ना होगा। हमें अपने संकीर्ण पूर्वाग्रहों के घेरे तो तोड़ने ही होंगे। विभिन्न लोगों द्वारा खोदे जाने से वलग का भाव आच्छादित गर्त अर्थात् ढके हुए गड्ढे लिया जाता है। संकीर्ण पूर्वाग्रहों, अन्धविश्वासों के लिए यह उपमा उचित ही है।।23।।

विशेष : वलगहनम् शब्द का अर्थ करते हुए कहीं-कहीं इसका भाव हिंसा के गुप्त प्रयोगों को नष्ट करना भी माना गया है। कुछ प्रकाशनों में इसके स्थान पर बलगहनम् पद का प्रयोग किया गया है। बलगहनम् का अर्थ बलों की थाह लेना अथवा गहन बल माना जाता है।। 23।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : रक्षोहणम् (रक्ष् = बचाना)। **वलगहनम्** (वल - आच्छादित करना, घेरना, जाना)। **वैष्णवीम्** (विष्ण् = व्यापक होना, सींचना)। **इदम्** (सर्वनाम)। **अहम्** (सर्वनाम)। **तम्** (सर्वनाम)। **वलगम्** (वल - आच्छादित करना, ढकना, घेरना, जाना)। **उत्** (अव्यय, निपात)। **किरामि** (कृ - फेंक देना)। **यम्** (सर्वनाम)। **मे** (सर्वनाम)। **निष्ट्यो** (निष - प्राप्त करना, ले जाना, स्त्यै - शब्द करना, आवाज करना)। **अमात्यो** (अम - जाना, शब्द करना, मा = मापना, नापना, तौलना)। **नि** (उपसर्ग)। **चखान** (खन् - दुःख देना, खोदना)। **समानो** (सम = न घबराना, एक समान रहना)। **असमानो** (अ + सम = न घबराना, एक समान रहना)। **सबन्धुः** (बन्ध - बांधना)। **असबन्धुः** (अ + स + बन्ध - बांधना)। **सजातो** (सज्, संज = सम्बन्धी होना, आलिंगन करना)। **असजातो** (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, जन-उत्पन्न होना, जन्म होना)। **कृत्याम्** (कृ = करना)।।23।।

189. स्वराट् असि सपत्नहा, सत्रराट् असि अभिमातिहा।
जनराट् असि रक्षोहा, सर्वराट् असि अमित्रहा।।24।।

संहितापाठ

स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा।।

मन्त्रार्थ :- स्वराट् स्वयं प्रकाशमान, (तुम) **सपत्नहा** सपत्नघाती **असि** हो। **सत्रराट्** सत्रराट् (सत्र में या विस्तृत प्रकाशमान), (तुम) **अभिमातिहा** अभिमान नष्ट करने वाले **असि** हो। **जनराट्** जनराट् (जनता में प्रकाशमान), (तुम) **रक्षोहा** रक्षस् का हनन करने वाले **असि** हो। **सर्वराट्** सर्वराट् (सब में प्रकाशित), (तुम) **अमित्रहा** अमित्र का हनन करने वाले **असि** हो।

भावार्थ :- इस मन्त्र में सुन्दर ढंग से बताया गया है कि किस प्रकार हम आत्मपरिष्कार कर सकते हैं। स्वयं प्रकाशमान होकर हम सपत्नघाती हो सकते हैं। सपत्न का अर्थ शत्रु माना गया है। इसका शाब्दिक अर्थ है (स-पत्-न) पतन सहित। जिसके साथ होने से पतन हो वह शत्रु ही माना जायेगा। स्वयम् को अध्यात्म के प्रकाश से जोड़कर हम ऐसे निकट रहने वाले शत्रुओं से बच सकते हैं। इस प्रकाश का विस्तार कर हम अभिमान को नष्ट कर सकते हैं। इसी प्रकार यदि यह प्रकाश जनता में विस्तृत कर सकें तो स्वार्थी रक्षस् अर्थात् सबकुछ अपने लिए रख लेने वालों से भी छुटकारा मिल सकता है। जो सब में प्रकाशित है उसका कोई अमित्र हो ही कैसे सकता है, उसके सभी मित्र ही होंगे। फिर भी समाज में स्वार्थी रक्षस् होते ही हैं जो अकारण सबके शत्रु होते हैं, उनसे बचने का उपाय जनजागरण ही है।। 24।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : स्वराट् (स्व + राज् = चमकना, प्रकाशित शोभित होना)। **असि** (अस् = होना) **सपत्नहा** (सप् = पूर्ण ज्ञान होना, पत् = ऐश्वर्य होना, निम्नगति करना, गिरना, हन - मार डालना, प्राप्त करना)। **सत्रराट्** (सत्र - फैलाना, विस्तार करना, राज् = चमकना, प्रकाशित, शोभित होना) **अभिमातिहा** (मा = मान करना, मापना, हन - मार डालना, प्राप्त करना, जाना)। **जनराट्** (जन् = उत्पन्न करना, राज् = चमकना, प्रकाशित, शोभित होना)। **रक्षोहा** (रक्षो = रक्षा करने, बचाने वाला, हन - मार डालना, प्राप्त करना, जाना)। **सर्वराट्** (सर्व- सभी, राज् = चमकना, प्रकाशित

शोभित होना)। **अमित्रहा** (अ + मित्र + मिद-प्रीति करना, स्नेह करना, हा, हन - मार डालना)।।

190. रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान्, रक्षोहणो वो वलगहनः अव नयामि वैष्णवान्
रक्षोहणो वो वलगहनः अव स्तृणामि वैष्णवान्, रक्षोहणौ वाम् वलगहनौ उप दधामि वैष्णवी
रक्षोहणौ वाम् वलगहनौ परि ऊहामि वैष्णवी, वैष्णवम् असि वैष्णवाः स्थ ।।25।।

संहितापाठ

रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो वलगहनोऽवनयामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो वलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान्रक्षोहणौ वां वलगहनाऽउपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवाः स्थ ।।25।।

मन्त्रार्थ : वो तुम्हारे लिए **रक्षोहणो** रक्षोहण वलगहनः वलगहन **वैष्णवान्** वैष्णवों का **प्रोक्षामि** प्रोक्षण करता हूँ। **वो** तुम्हारे लिए **रक्षोहणो** रक्षोहण **वलगहनः** वलगहन **वैष्णवान्** वैष्णवों का **अव नयामि** अवनयन करता हूँ। **वो** तुम्हारे लिए **रक्षोहणो** रक्षोहण **वलगहनः** वलगहन **वैष्णवान्** वैष्णवों का **अव स्तृणामि** अवस्तरण करता हूँ। **वो** तुम्हारे लिए **रक्षोहणो** रक्षोहण **वलगहनः** वलगहन **वैष्णवी** वैष्णवों का **उप दधामि** समीप धारण करता हूँ। **वो** तुम्हारे लिए **रक्षोहणो** रक्षोहण **वलगहनः** वलगहन **वैष्णवी** वैष्णवों का **परि ऊहामि** परिकल्पित करता हूँ। **वैष्णवाः** वैष्णवों में **स्थ** स्थित **वैष्णवम्** वैष्णव **असि** हो।

भावार्थ :- सर्वव्यापी परमात्मा विष्णु के उपासक वैष्णव अपने समान वैष्णवों के समाज में स्थित होने के लिए सभी तरह से वैष्णव अर्थात् व्यापकता के गुण को धारण करते हैं।। 25।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- रक्षोहणो (रक्ष् = बचाना, हन - मार डालना, प्राप्त करना, जाना, किसी प्रकार समाप्त करना)। **वो** (सर्वनाम)। **वलगहनः** (वल - आच्छादित करना, ढकना, घेरना, जाना, हन - मार डालना, प्राप्त करना, जाना, किसी प्रकार समाप्त करना)। **प्रोक्षामि** (प्र + उक्ष् = खींचना, स्वच्छ करना)। **वैष्णवान्** (विष्ण् = व्यापक होना, सींचना)। **अव** (अव्यय)। **नयामि** (नी = ले जाना)। **स्तृणामि** (स्तृ = आच्छादित करना, ढकना)। **वाम्** (सर्वनाम)। **वलगहनौ** (वल - आच्छादित करना, ढकना, घेरना, जाना, हन - मार डालना, प्राप्त करना)। **उप** (उपसर्ग)। **दधामि** (दध - धारण करना)। **वैष्णवी** (विष्ण् = व्यापक होना, सींचना)। **परि ऊहामि** (परि = परे, सभी ओर, साथ (उपसर्ग), ऊह - ऊहापोह करना, विचार करना, कल्पना करना, तर्क करना)। **वैष्णवम्** (विष्ण् = व्यापक होना, सींचना)। **वैष्णवाः** (विष्ण् = व्यापक होना, सींचना)। **स्थ** (स्था (तिष्ठ) = स्थित होना, ठहरना)।। 25।।

191. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम् ।।
आ ददे नारी असि इदम् अहम्, रक्षसाम् ग्रीवा अपि कृन्तामि ।।
यवो असि यवय अस्मत् द्वेषो यवय अरातीः, दिवे त्वा अन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा
शुन्धन्ताम् लोकाः पितृषदनाः पितृसदनम् असि ।।26।।

संहितापाठ

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।आददे नार्यसीदमहꣳरक्षसां ग्रीवाऽअपिकृन्तामि। यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ।। 26 ।।

मन्त्रार्थ :- देवस्य देव को **सवितुः** उत्पन्न करने वाला (परमात्मा) **त्वा** तुम्हें **अश्विनोः** व्यापक (फैले हुए) **बाहुभ्याम्** बाहुओं से, **पूष्णो** पोषण करने वाले **हस्ताभ्याम्** हाथों से **प्रसवे** उत्पन्न करे। (तुम) **नारी** नारी **असि** हो, **इदम्** यह **अहम्** मैंने **आददे** ग्रहण किया। **रक्षसाम्** रक्षसों की **ग्रीवा** ग्रीवा **अपि** भी **कृन्तामि** काटता हूँ। (तुम) **यवो** यव (पृथक् करने वाले) **असि** हो, **अस्मत्** मुझसे **द्वेषो** द्वेष को **यवय** पृथक् करो, **अरातीः** अदानियों को **यवय** पृथक् करो। **दिवे** दिवलोक के लिए, **अन्तरिक्षाय** अन्तरिक्ष के लिए, **पृथिव्यै** पृथिवी के लिए **पितृषदनाः** पितृसदन **लोकाः** लोकों को **शुन्धन्ताम्** शुद्ध करो, (तुम)

पितृसदनम् पितृसदन असि हो।

भावार्थ :- देव का जनक (परमात्मा) तुमको व्यापक भुजाओं के लिए, पोषक हाथों के लिए उत्पन्न करता है। वह तुमको भी इन्ही गुणों से युक्त उत्पन्न करे। परमात्मा देवों को उत्पन्न करने वाला है। परमात्मा ने देव शक्तियों, सूर्य आदि दिव्यताओं को उत्पन्न किया है। इस बात का स्मरण कराते हुए कहा गया है कि हमारा जीवन व्यापक भुजाओं तथा पोषक हाथों के लिए है। अर्थात् हमारे कार्यों में व्यापकता होनी चाहिए। कर्म समाज का पोषण करने वाले होने चाहिए। नारी का अर्थ है ले जाने वाली। रक्ष धातु का अर्थ है रक्षा करना। समाज के रक्षक तो रक्षणीय हैं। यदि कोई अपने स्वार्थों की रक्षा की चिन्ता करे और स्वार्थ के लिए दूसरों का अहित करे तो वह रक्षक नहीं कहा जा सकता है। ऐसे रक्षस् तो दण्डनीय हैं, उनका गला काटने का भी साहस समाज हित में करें। कुछ पृथक् करना है तो द्वेष भाव को करो, दान न देने की कृपणता तो पृथक् करो। स्वयम् को तथा सभी लोकों को, सभी स्थानों को, पूरे समाज को शुद्ध करो।। 26 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। **प्रसवे** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **अश्विनोः** (अशु = व्यापक होना)। **बाहुभ्याम्** (बह, बाहु - भुजायाम्, चलना, बहना)। **पूष्णो** (पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। **हस्ताभ्याम्** (हस्त - आदाने, दाने, ग्रहणे च)। **आ ददे** (दद - देना, त्याग करना)। **नारि** (नृ - ले जाना)। **असि** (अस् = होना)। **इदम्** (सर्वनाम)। **अहम्** (सर्वनाम)। **रक्षसाम्** (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। **ग्रीवा** (गृ = सींचना, जानना, निगलना, शब्द करना, बोलना, समझना)। **अपि** (अव्यय)। **कृन्तामि** (कृत-कतरना, काटना)। **यवो** (यु = मिलाना, अलग करना)। **यवय** (यु - मिश्रित करना, पृथक्-पृथक् करना)। **अस्मत्** (सर्वनाम)। **द्वेषो** (द्विष् = द्वेष करना)। **अरातीः** (अ + रा = देना)। **दिवे** (अव्यय)। **अन्तरिक्षाय** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **पृथिव्यै** (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना)। **शुन्धन्ताम्** (शुन्ध - शुद्ध होना, पवित्र होना)। **लोकाः** (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। **पितृषदनाः** (पा = रक्षा करना, पालन करना)। **पितृसदनम्** (पा = रक्षा करना, पालन करना)।।। 26 ।।

192. उत् दिवम् स्तभान, आ अन्तरिक्षम् पृण, दृंहस्व पृथिव्याम्,
द्युतानः त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा ।।
ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि परि ऊहामि,
ब्रह्म दृंह क्षत्रम् दृंह आयुः दृंह प्रजाम् दृंह ।। 27 ।।

संहितापाठ

उद्दिवस्तभानान्तरिक्षं पृण दृꣳहस्व पृथिव्यां द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा।ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि।ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ।। 27 ।।

मन्त्रार्थ :- दिवम् दिव को **स्तभान** स्तम्भित (स्थिर) करो। **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष को **पृण** पूर्ण करो। **पृथिव्याम्** पृथ्वी को **दृंहस्व** दृढ़ करो। **द्युतानः** द्योतमान **मारुतो** मारुत **मित्रावरुणौ** मित्रावरुण **त्वा** तुमको **ध्रुवेण** ध्रुव **धर्मणा** धर्म द्वारा **मिनोतु** प्रक्षेपित करें। **ब्रह्मवनि** ब्रह्मवनि **क्षत्रवनि** क्षत्रवनि **रायस्पोषवनि** रायस्पोषवनि **त्वा** तुमको **परि ऊहामि** परि-ऊहित करता हूँ। **ब्रह्म** ब्रह्म को **दृंह** दृढ़ करो, **क्षत्रम्** क्षत्र को **दृंह** दृढ़ करो, **आयुः** आयु को **दृंह** दृढ़ करो, **प्रजाम्** प्रजा को **दृंह** दृढ़ करो।

भावार्थ :- धर्म का पालन करते हुए प्रकृति संरक्षण तथा समाज की दृढ़ता, स्थिरता का प्रयास करना चाहिए।। 27 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : उत् (अव्यय)। **दिवम्** (दिव् = तेज होना, चमकना, जानना, तेजस्वी होना)। **स्तभान** (स्तम्भ - अवरोध करना, दृढ़ होना, खम्भे के समान, स्तब्ध होना)। **आ** (उपसर्ग)। **अन्तरिक्षम्** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **पृण** (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना)। **दृंहस्व** (दृंह् - बढ़ना, वृद्धिगत होना)। **पृथिव्याम्** (पृथ = फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना, व्यापक होना, विस्तृत होना)। **द्युतानः** (द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना, द्युत् = चमकना,

प्रकाशित होना)। **मारुतो** (मा = मान करना, मापना, मृ = मरना, रु - शब्द करना)। **मिनोतु** (मि - फेंकना, फैलाना)। **मित्रावरुणौ** (मिद-प्रीति करना, स्नेह करना, वृ = वरण करना, अपनाना, पसन्द करना)। **ध्रुवेण** (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, जानना, पाना)। **धर्मणा** (धृ = धारण करना)। **ब्रह्मवनि** (बृह् = बढ़ना, वन् = शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, याचना करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **क्षत्रवनि** (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। **रायस्पोषवनि** (रय् = जाना, जानना, पाना, पुष् = पोषण करना)। **परि** (उपसर्ग)। **ऊहामि** (ऊह - ऊहापोह करना, कल्पना करना, तर्क करना)। **ब्रह्म** (बृह् = बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। **दृंह** (दृंह् - बढ़ना, वृद्धिगत होना)। **क्षत्रम्** (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। **आयुः** (अय - जाना, आयुस् - जीवनम्)। **प्रजाम्** (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। । 27 ।।

(52) सूक्त 8

193. ध्रुवा असि ध्रुवो अयम् यजमानः, अस्मिन् आयतने प्रजया पशुभिः भूयात् ।।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथाम्, इन्द्रस्य छदिः असि विश्वजनस्य छाया ।। 28 ।।

संहितापाठ

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात् । घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ।। 28 ।।

मन्त्रार्थ :- (तुम) **ध्रुवा** ध्रुव **असि** हो, **अयम्** यह **यजमानः** यजमान **अस्मिन्** इस **आयतने** आयतन में **प्रजया** प्रजा (तथा) **पशुभिः** पशुओं के साथ **ध्रुवो** ध्रुव **भूयात्** रहे। **घृतेन** घृत से **द्यावापृथिवी** द्यावा-पृथिवी **पूर्येथाम्** पूर्ण करो। (तुम) **इन्द्रस्य** इन्द्र के **छदिः** आच्छादन (तथा) **विश्वजनस्य** विश्वजन की **छाया** छाया **असि** हो।

भावार्थ :- परमात्मा ध्रुव है और उसका यजन करने वाला भी उसी की भांति ध्रुव है। उपासक का ध्रुव होना इसी से सार्थक होता है कि वह भी परमात्मा की तरह द्युलोक तथा पृथ्वी को घृत अर्थात् प्रकाश - अभिसिंचन से भर दे। तभी वह इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा का आच्छादन पाने तथा विश्वजन की छाया कहलाने का गौरव प्राप्त कर सकता है।। 28 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- ध्रुवा (ध्रुव् = अचल होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। **असि** (अस् = होना)। **ध्रुवो** (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। **अयम्** (सर्वनाम)। **यजमानः** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना)। **अस्मिन्** (सर्वनाम)। **आयतने** (आ + ई - जाना, यत - यत्न करना, उद्योग करना, निश्चय करना, ठहराना)। **प्रजया** (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **पशुभिः** (पश - बांधना, बेड़ी डालना, गांठ बांधना, फांस लगाना, जाना)। **भूयात्** (भू - होना)। **घृतेन** (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। **द्यावापृथिवी** (द्यु = आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। **पूर्येथाम्** (पूर - तृप्त करना, आनन्द करना, पूर्ण करना, भरना, सन्तोष होना, आनन्द होना, पूर्ण होना)। **इन्द्रस्य** (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। **छदिः** (छद्-छन्द् - ढकना, आच्छादन करना)। **विश्वजनस्य** (विश्व = सब, जन् = उत्पन्न करना)। **छाया** (छद् - आच्छादित करना, ढकना, हटाना, छिपाना, बचाना, बलवान् होना या करना, छा-छो - छाया करना, कतरना, काटना)।। 28 ।।

194. परि त्वा गिर्वणो गिरः इमा भवन्तु विश्वतः । वृद्धायुम् अनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ।। 29 ।।

संहितापाठ

परि त्वा गिर्वणो गिरऽइमा भवन्तु विश्वतः । वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ।।

मन्त्रार्थ :- गिर्वणो स्तुतिकर्ताओं की **इमा** ये **गिरः** स्तुतियां **त्वा** तुम्हारे **परि विश्वतः** सभी तरफ **भवन्तु** हों, **वृद्धायुम्** वृद्ध आयु वाले **अनु वृद्धयो** वृद्धि को प्राप्त हों, **जुष्टयः** सेवा-प्रीति से **जुष्टा** प्रसन्न **भवन्तु** हों।

भावार्थ :- परमात्मा की स्तुति करने तथा वृद्धजनों का सम्मान करने की प्रेरणा यह मन्त्र हमें देता है।। 29 ।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : परि (उपसर्ग)। **त्वा** (सर्वनाम)। **गिर्वणो** (गृ -समझना, जानना)। **गिरः** (गृ - सींचना, गीला करना, समझना, जानना)। **इमा** (सर्वनाम)। **भवन्तु** (भू - होना)। **विश्वतः** (सर्वनाम)। **वृद्धायुम्** (वृध - बढ़ना, अधिक होना)।

अनु (उपसर्ग)। **वृद्धयो** (वृध - बढ़ना, अधिक होना)। **जुष्टा** (जुष् = सेवा करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। **भवन्तु** (भू - होना)। **जुष्टयः** (जुष् = सेवा करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)॥ 29॥

195. इन्द्रस्य स्यूः असि इन्द्रस्य ध्रुवो असि। ऐन्द्रम् असि वैश्वदेवम् असि॥30॥

संहितापाठ

इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि। ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि॥30॥

मन्त्रार्थ : इन्द्रस्य इन्द्र का **स्यूः** स्यू **असि** हो। **इन्द्रस्य** इन्द्र का **ध्रुवो** ध्रुव **असि** हो। **ऐन्द्रम्** इन्द्र से उत्पन्न **असि** हो, **वैश्वदेवम्** विश्वदेव से उत्पन्न **असि** हो।

भावार्थ :- स्यू का अर्थ सिलना, बीजारोपण करना होता है। इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा ने ही हमारा बीजारोपण किया है, हम सब परमात्मा की ही उपज हैं, उससे ही उत्पन्न हैं॥ 30॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। **स्यूः** (सिव - सीना, सिलाई करना, बीजारोपण करना, बोना, रोपना)। **असि** (अस् = होना)। **ध्रुवो** (ध्रुव् = अचल होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। **ऐन्द्रम्** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **वैश्वदेवम्** (विश्व - सब, देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)॥ 30॥

196. विभूः असि प्रवाहणो, वह्निः असि हव्यवाहनः॥श्वात्रो असि प्रचेताः, तुथो असि विश्ववेदाः॥31॥

संहितापाठ

विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः। श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः॥

मन्त्रार्थ :- विभूः विभू **प्रवाहणो** प्रवाहण **असि** हो। **हव्यवाहनः** हव्यवाहन **वह्निः** वह्नि **असि** हो। **श्वात्रो** श्वात्र **प्रचेताः** प्रचेता **असि** हो। **विश्ववेदाः** विश्ववेद **तुथो** तुथ **असि** हो।

भावार्थ :- परमात्मा विभू है, स्वयम्भू है, शेष सबकुछ उससे ही उत्पन्न है। वह प्रवाहण अर्थात् प्रवाह करने वाला है। सबकुछ उसका ही सृजन है, और वह सबकुछ सबके लिए प्रवाहित करता है। वह हव्य अर्थात् देय-दातव्य को वहन करने वाला होने से ही वह्नि कहा जाता है। श्वात्र का अर्थ गतिशील तथा प्रचेता का अर्थ प्रकृष्ट चेतनायुक्त है। विश्ववेद अर्थात् सबकुछ जानने वाला अथवा सम्पूर्ण वेदविद्या भी है। तुथ का अर्थ स्तुति तथा स्तुतियोग्य है॥ 31॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- विभूः (वि + भू = होना, पाना, चिन्तन करना)। **असि** (अस् = होना)। **प्रवाहणो** (वह - बहना, वा - जाना, पवन सा चलना)। **वह्निः** (वह् = वहन करना, ले जाना)। **हव्यवाहनः** (हू = दान, आदान, करना, लेना-देना)। **श्वात्रो** (शि-तीक्ष्ण करना, पतला करना, सुनना)। **प्रचेताः** (प्र = अधिक, चित्, चेत् = विचार करना, चिन्तन करना)। **तुथो** (तुत्थ - आच्छादित करना, फैलाना, स्तुति करना)। **विश्ववेदाः** (विश्व = सभी, विद् = जानना)॥ 31॥

(53) सूक्त 9

197. उशिक् असि कविः, अङ्घारिः असि बम्भारिः,
अवस्यूः असि दुवस्वान्, शुन्ध्यूः असि मार्जालीयः।
सम्राट् असि कृशानुः, परिषद्यो असि पवमानो,
नभो असि प्रतक्वा, मृष्टो असि हव्यसूदन, ऋतधामा असि स्वः ज्योतिः॥32॥

संहितापाठ

उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदनऽऋतधामासि स्वर्ज्योतिः॥32॥

मन्त्रार्थ :- उशिक् उशिक् **कविः** कवि **असि** हो, **अङ्घारिः** अंघारि **बम्भारिः** बम्भारि **असि** हो, **अवस्यूः** अवस्यू **दुवस्वान्** दुवस्वान् **असि** हो, **शुन्ध्यूः** शुन्ध्यू **मार्जालीयः** मार्जालीय **असि** हो। **सम्राट्** सम्राट् **कृशानुः** कृशानु **असि** हो, **परिषद्यो** परिषद्य **पवमानो** पवमान **असि** हो, **नभो** नभ **प्रतक्वा** प्रतक्वा **असि** हो, **मृष्टो** मृष्ट **हव्यसूदन** हव्यसूदन **असि** हो, **ऋतधामा** ऋतधामा **स्वः** स्वः **ज्योतिः** ज्योति **असि** हो।

भावार्थ :- परमात्मा कामना करने योग्य उशिक् है और उपासक उसकी कामना करने वाला उशिक्। उपासक को भी ऐसा बनना है कि लोग उसकी कामना करें। वह कवि अर्थात् काव्यकर्ता है, क्रान्तदर्शी है। अंघ का अर्थ है पाप, निन्दा, कुटिलता। परमात्मा अंघ को नष्ट करने वाला अंगारि है। वह भरण करने वाला बम्भारि भी है। वह अवस्यू अर्थात् रक्षा करने वाला, दुवस्वान् अर्थात् सेवामय, शुन्ध्यू अर्थात् शोधक, मार्जलीय अर्थात् परिमार्जनकर्ता है। वह सम्यक् प्रकाशरूप सबका सम्राट है। परमात्मा कृश अर्थात् क्षीण तनु दुर्बल को जीवन देने वाला तथा उस दुर्बल के पास जाने वाला कृशानु है। परिषद् के योग्य परमात्मा तो है ही, मुख्य रूप से उपासक को होना चाहिए, यह महत्वपूर्ण है। वह पवित्रकर्ता पवमान। है, दुष्टों के लिए हिंसक नभ है तथा सभी को हँसाने वाला प्रतक्वा है। इसका एक भाव यह भी है कि वह दुर्बलों को जीवन देने वाला है, तो जो दूसरों पर हँसते हैं, उनके लिए नभ अर्थात् मारने वाला भी है। वह अत्यधिक सहनशील मृष्ट है, हम भी सहनशील हों। वह दानयोग्य को पवित्रकरने वाला हव्यसूदन तथा ऋतधाम तथा स्वः प्रकाश है।। 32।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- उशिक् (उश-वश् - कामना, इच्छा करना)। **असि** (अस् = होना)। **कविः** (कु-कव् = शब्द करना)। **अंघारिः** (अंघ् - निन्दा करना, अरर - काटना, नष्ट करना)। **बम्भारिः** (भृ = भरण-पोषण, धारण करना)। **अवस्यूः** (अव् = रक्षा करना)। **दुवस्वान्** (दुवस् = सेवा करना)। **शुन्ध्यूः** (शुन्ध - शुद्ध होना, पवित्र होना)। **मार्जालीयः** (मार्ज - शब्द करना)। **सम्राट्** (राज् = शोभित होना, प्रकाशित होना, चमकना)। **कृशानुः** (कृश - कृश होना, सूक्ष्म होना)। **परिषद्यो** (सद् = बैठना, चढ़ाई करना, सूखना)। **पवमानो** (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **नभो** (नभ-मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना)। **प्रतक्वा** (प्र + तक - हँसना, उपहास करना)। **मृष्टो** (मृष - सहन करना, क्षमा करना)। **हव्यसूदन** (हू = दान, आदान करना, लेना-देना, सूद - पवित्र करना, शुद्ध करना)। **ऋतधामा** (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना, धा = धारण करना)। **स्वः** (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **ज्योतिः** (ज्युत - प्रकाशित होना)।। 32।।

198. समुद्रो असि विश्वव्यचा, अजः असि एकपात्,
अहिः असि बुध्न्यो, वाक् असि ऐन्द्रम् असि सदः असि।
ऋतस्य द्वारौ मा मा सम् ताप्तम् अध्वनाम् अध्वपते,
प्र मा तिर स्वस्ति मे अस्मिन् पथि देवयाने भूयात्।। 33।।

संहितापाठ

समुद्रोऽसि विश्वव्यचाऽअजोऽस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोऽस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात्।। 33।।

मन्त्रार्थ :- (तुम) **विश्वव्यचा** सर्वव्यापी **समुद्रो** समुद्र **असि** हो, **अजः** अजन्मा **एकपात्** एकपाद **असि** हो। **अहिः** व्यापक **बुध्न्यो** बोधमय **असि** हो, **ऐन्द्रम्** इन्द्रमय **वाक्** वाक् **असि** हो, **सदः** आसन (आधार) **असि** हो। **अध्वपते** हे अध्वपति, **ऋतस्य** ऋत के **द्वारौ** द्वार पर **अध्वनाम्** अध्वों को **मा मा** मत **सम् ताप्तम्** संतप्त करो। **अस्मिन्** इस **देवयाने** देवयान **पथि** मार्ग में **मा** मुझको **प्र तिर** पार करो, **मे** मेरा **स्वस्ति** कल्याण **भूयात्** हो।

भावार्थ :- परमात्मा के सर्वव्यापी होने का अनुभव करें, देवपथ पर चलें, हृदय से स्तुति करें तो हमारा कल्याण है।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- समुद्रो (सम् = सम्यक्, भलीभांति, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना)। **असि** (अस् = होना)। **विश्वव्यचा** (व्यच - व्यापना, जाना)। **अजः** (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, जन् = उत्पन्न करना)। **एकपात्** (पद - स्थानान्तर करना)। **अहिः** (अह - विस्तृत होना, व्यापना)। **बुध्न्यो** (बुध्- बोध करना, समझना)। **वाक्** (वच - बोलना)। **ऐन्द्रम्** (आ + इन्द्रम्, इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **सदः** आसन (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। **ऋतस्य** (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। **द्वारौ** (द्वृ - आच्छादने, स्वस्थाने)। **मा** (अव्यय)। **सम्-ताप्तम्** (तप - ऐश्वर्ययुक्त होना)। **अध्वनाम्** (अध्व = मार्ग)। **अध्वपते** (अध्व = मार्ग)। **प्र** (उपसर्ग)। **मा** (अव्यय, सर्वनाम)। **तिर** (तृ - पार जाना, पर तीर को जाना, जल पर तैरना, जीतना, जल के पार जाना)। **स्वस्ति** (अव्यय)। **मे** (सर्वनाम)। **अस्मिन्** (सर्वनाम)। **पथि** (पथ, पन्थ् - जाना, घूमना)। **देवयाने** (देव, दिव् = खेलना, तेजस्वी होना, चमकना, या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। **भूयात्** (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)।। 33।।

199. मित्रस्य मा चक्षुषा ईक्षध्वम्, अग्नयः सगराः सगराः स्थ।
सगरेण नाम्ना रौद्रेण अनीकेन, पात मा अग्नयः पिपृत मा।
अग्नयो गोपायत मा, नमो वो अस्तु, मा मा हिंसिष्ट॥34॥

संहितापाठ

मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः सगराः सगरा स्थ सगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पात माग्नयः पिपृत माग्नयो गोपायत मा नमो वोऽस्तु मा मा हिꣳसिष्ट॥34॥

मन्त्रार्थ :- **मा** मुझे **मित्रस्य** मित्र की **चक्षुषा** दृष्टि से **ईक्षध्वम्** देखो, **अग्नयः** अग्नियां **सगराः** स्तुतिमय (हैं, तुम) **सगराः** स्तुतिमय **स्थ** रहो। **सगरेण** सगर (स्तुतिमय) **नाम्ना** नाम से **रौद्रेण** रुद्र **अनीकेन** अनीक द्वारा **मा** मेरी **पात** रक्षा तथा पालन करो। **अग्नयः** अग्नियां **मा** मुझे **पिपृत** पूर्ण करें। **अग्नयो** अग्नियां **मा** मेरी **गोपायत** रक्षा करें, **वो** तुमको **नमो** नमन है, **मा मा** मत **हिंसिष्ट** हिंसा करो।

भावार्थ :- मित्र की दृष्टि रखें, ईर्ष्या-द्वेषभाव न रहे। अग्नियां अर्थात् तेजस्वी नेतृत्व स्तुतियों से युक्त हो। रौद्र रूप भी स्तुतियों से युक्त हो अर्थात् आवश्यक होने पर कठोर उपाय भी करने पड़ें तो भी स्तुतियों का मार्गदर्शन तथा संयम न त्यागें। परमात्मा को नमन करें, भावनापूर्वक स्मरण करें तथा हिंसा न करें तो परमात्मा की कृपा से अग्नियों के माध्यम से हमारी रक्षा तथा पालन सहजता से होता रहता है। 34॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : मित्रस्य (मिदा - स्नेह करना, स्निग्ध होना)। **मा** (अव्यय)। **चक्षुषा** (चक्ष् = देखना, साफ करना)। **ईक्षध्वम्** (ईक्ष - देखना, अवलोकन करना)। **अग्नयः** (अग् = आगे जाना, गति करना)। **सगराः** (सग - आच्छादन करना)। **स्थ** (स्था (तिष्ठ) = स्थित होना, ठहरना)। **सगरेण** (सग - आच्छादन करना)। **नाम्ना** (नम - नमस्कार करना, नमना)। **रौद्रेण** (रुद् - रोना, रुलाना)। **अनीकेन** (अन - जीना, समर्थ होना, जाना)। **पात** (पा = रक्षा करना)। **पिपृत** (पृ- पूर्ण करना, भरना)। **अग्नयो** (अग् = आगे जाना, गति करना)। **गोपायत** (गुप् = रक्षा करना, चमकना, बोलना)। **नमो (नमः)** (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना)। **वो** (सर्वनाम)। **अस्तु** (अस् = होना)। **हिंसिष्ट** (हिंस् = हिंसा करना, मारना)॥ 34॥

200. ज्योतिः असि विश्वरूपम्, विश्वेषाम् देवानाम् सम् इत्।
त्वम् सोम तनूकृद्भ्यः द्वेषोभ्यः, अन्यकृतेभ्यः उरु यन्ता असि।
वरूथम् स्वाहा, जुषाणो अप्तुः, आज्यस्य वेतु स्वाहा॥35॥

संहितापाठ

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानां समित्। त्वꣳसोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यऽउरु यन्तासि वरूथ स्वाहा जुषाणोऽअप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा॥35॥

मन्त्रार्थ :- (तुम) **विश्वेषाम्** सभी **देवानाम्** देवों का **सम् इत्** सम्यक् **विश्वरूपम्** विश्वरूप **ज्योतिः** प्रकाश **असि** हो। **त्वम्** तुम **सोम** सोम **अन्यकृतेभ्यः** अन्यकृत **तनूकृद्भ्यः** शरीरछेदी **द्वेषोभ्यः** द्वेषों से **उरु** महान् **यन्ता** संयमन करने वाले **असि** हो। **स्वाहा** व्यापक **वरूथम्** वरूथ, **अप्तुः** व्यापक **जुषाणो** सेवाभावी **आज्यस्य** आज्य की **स्वाहा** व्यापकता **वेतु** जानें, प्राप्त करें।

भावार्थ :- दिव्य गुणों का विश्वरूप व्यापक प्रकाश जीवन में आयें। सोम अर्थात् सौम्यगुण से हम द्वेष आदि हानिकारक विचारों का समन कर सकते हैं॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : ज्योतिः (ज्युत - चमकना, प्रकाशित होना)। **असि** (अस् = होना)। **विश्वरूपम्** (रूप - आकार बनाना, रचना करना)। **विश्वेषाम्** (सर्वनाम)। **देवानाम्** (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान होना)। **सम्** (उपसर्ग)। **इत्** (अव्यय)। **त्वम्** (सर्वनाम)। **सोम** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना)। **तनूकृद्भ्यः** (तन् = विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना)। **द्वेषोभ्यः** (द्विष् = द्वेष करना)। **अन्यकृतेभ्यः** (कृ = करना)। **उरु** (अव्यय, सर्वनाम)।

यन्ता (यम - प्रतिबन्ध करना, रोकना, अवरोध करना, रोकना, स्वाधीन रखना, पोषण करना)। **वरूथम्** (वर् = इच्छा करना, चाहना, आशा करना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **जुषाणो** (जुष् = विचार करना, सेवा करना)। **अप्तुः** (अप् = व्याप्त होना,फैलना)। **आज्यस्य** (अज = जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना)। **वेतु** (विद् - जानना, वी-वे = जाना, जानना, व्यापना)॥ 35॥

(54) सूक्त 10

201. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्, विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्॥
युयोधि अस्मत् जुहुराणम् एनो, भूयिष्ठाम् ते नम उक्तिम् विधेम॥36॥

संहितापाठ

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम॥36॥

मन्त्रार्थ : विश्वानि सभी **राये** विद्याओं के **वयुनानि** रचनाशील, ज्ञानमार्गी **विद्वान्** विद्वान् **देव** देव! **अग्ने** हे अग्नि! **अस्मान्** हमको **सुपथा** सुपथ पर **नय** ले जाओ। **अस्मत्** मुझसे **एनो** इस **जुहुराणम्** जुहुराण को **युयोधि** दूर करो। **ते** तुम्हारे लिए **भूयिष्ठाम्** बार-बार **नम** नमन **उक्तिम्** कथन **विधेम** करते हैं।

भावार्थ :- हम सबको सत्य पथ पर चलना चाहिए। हु धातु का अर्थ दान तथा आदान-प्रदान करना है। जुहुराण का अर्थ हवन के कर्मकाण्ड का आडम्बर है। हवन अर्थात् दान तथा आदान-प्रदान तो आवश्यक है, परन्तु उसका दिखावा करना, आडम्बर करना उचित नहीं है। वेद में सुपथ पर चलने का निर्देश है, कर्मकाण्ड के आडम्बर के लिए कोई स्थान नहीं है। विद्वानों ने जुहुराण का अर्थ कुटिलता माना है। इसी प्रकार एनम् का अर्थ पाप भी माना गया है। इस प्रकार कुटिलता तथा पाप को दूर करने की कामना की गयी है॥ 36॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अग्ने (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना)। **नय** (नी = ले जाना)। **सुपथा** (सु + पथा, पथि - जाना, मार्ग)। **राये** (रै = शब्द करना, रा - दान करना)। **अस्मान्** (सर्वनाम)। **विश्वानि** (सर्वनाम)। **देव** (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **वयुनानि** (वय् = जाना, जानना, पाना)। **विद्वान्** (विद् = जानना)। **युयोधि** (यु- पृथक् पृथक् करना)। **अस्मत्** (सर्वनाम)। **जुहुराणम्** (हू = दान करना, त्याग करना)। **एनो** (सर्वनाम)। **भूयिष्ठाम्** (अव्यय)। **ते** (सर्वनाम)। **नम** (नम - नमस्कार करना, नमना)। **उक्तिम्** (वद-उक् - कहना)। **विधेम** (धी-धारण करना)॥ 36॥

202. अयम् नो अग्निः वरिवः कृणोतु, अयम् मृधः पुरः एतु प्रभिन्दन्।
अयम् वाजान् जयतु वाजसातौ, अयम् शत्रून् जयतु जर्हृषाणः॥स्वाहा॥37॥

संहितापाठ

अयं नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन्। अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳशत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा॥37॥

मन्त्रार्थ : अयम् यह **अग्निः** अग्नि **नो** हमारे लिए **वरिवः** वरणीय (उत्पन्न या प्रदान) **कृणोतु** करे। **अयम्** यह **मृधः** योद्धा **प्रभिन्दन्** भेदन करते हुए **पुरः** आगे **एतु** चले। **अयम्** यह **वाजान्** वाजों को **वाजसातौ** सेवन के लिए **जयतु** जीतें। **अयम्** यह **स्वाहा** सर्वव्यापी (अग्नि) **जर्हृषाणः** हर्षित होता हुआ **शत्रून्** शत्रुओं को **जयतु** जीते।

भावार्थ :- परमात्मा हमारे लिए श्रेष्ठ साधन उपलब्ध कराता है। उस पर विश्वास करते हुए हम भी योद्धा की तरह दुर्गुणों को नष्ट करते हुए आगे चलते रहें। परिश्रम से अपनी आवश्यकताएं पूर्ण करें। सर्वव्यापी परमात्मा का ध्यान करते हुए व्यापक भावना रखकर प्रसन्न रहें तथा जो गुण-कर्म-स्वभाव हमारे लिए तथा समाज के लिए अहितकर हैं, उन पर विजय प्राप्त करें॥ 37॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अयम् (सर्वनाम)। **नो** (सर्वनाम)। **अग्निः** (अग् = जाना, जानना, पाना, आगे जाना,

ऊर्ध्वगति करना, तेजस्वी होना)। **वरिवः** (वृ = वरण करना, पालन करना)। **कृणोतु** (कृ = करना) **मृधः** (मृध - नष्ट करना, युद्ध करना)। **पुरः** (पुर् = आगे जाना)। **एतु** (आ + इ - जाना)। **प्रभिन्दन्** (प्र + भिन्द् - भाग करना, हिस्सा करना)। **वाजान्** = वाजों को (वज् = जाना, जानना, तैयार करना)। **जयतु** (जि - सर्वोत्कर्ष होना, जीतना)। **वाजसातौ** (वाज् = जानना, जाना, पहुँचना, पाना, तैयार करना)। **शत्रून्** (शद् - जीर्ण होना, मुरझाना, गिरना, जाना, नीचे गिराना)। **जयतु** (जि - सर्वोत्कर्ष से रहना, सबसे बढ़ के होना, जीतना, पराभव करना)। **जर्हृषाणः** (हृष - सन्तुष्ट होना, प्रसन्न होना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥ 37॥

203. उरु विष्णो विक्रमस्व, उरु क्षयाय नः कृधि। घृतम् घृतयोने पिब, प्र प्र यज्ञपतिम् तिर॥ स्वाहा॥ 38॥

संहितापाठ

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि। घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा॥ 38॥

मन्त्रार्थ :- विष्णो हे विष्णु, **उरु** विस्तृत **विक्रमस्व** पराक्रम करो। **नः** हमारे **उरु** विस्तृत **क्षयाय** निवास के लिए **कृधि** करो। **घृतयोने** हे घृतयोनि, **घृतम्** घृत **पिब** पी लो। **स्वाहा** व्यापक **यज्ञपतिम्** यजनपति को **प्र प्र तिर** पार उतारो।

भावार्थ :- विष्णु का अर्थ व्यापक परमात्मा है, उससे भी यही सीखना है कि वह भी पराक्रमी है, आलसी नहीं। हमारे निवास के लिए सुन्दर संसार की रचना उसने की है। अपना निवास बनाने के लिए हमें भी पराक्रम करना होगा। इसके बाद ही हम घृत पी सकते हैं। ऐसे परिश्रमी पराक्रमी उपासक को परमात्मा पार उतारता है। घृत का शाब्दिक अर्थ है प्रकाशित, अभिसिंचित। परमात्मा और उपासक दोनो ही घृतयोनि अर्थात् घृत स्वरूप हैं। परमात्मा तो स्वयं प्रकाशरूप है ही, उपासक भी उससे उत्पन्न तथा प्रकाशित प्रकाशपुत्र है॥ 38॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : उरु (अव्यय)। **विष्णो** (विष्ण् = व्यापक होना)। **विक्रमस्व** (वि = विशेष, विना, विलोम, क्रम = निर्भय से जाना, वृद्धि करना, बचाना)। **क्षयाय** (क्षि - जाना, चलना, निवास करना, रहना, बसना)। **नः** (सर्वनाम)। **कृधि** (कृ = करना)। **घृतम्** (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। **घृतयोने** (घृ - सींचना, प्रकाशित होना)। **पिब** (पिब्-पा - पीना)। **प्र** (उपसर्ग)। **यज्ञपतिम्** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना, पत-श्री मान् होना, शक्तिमान होना)। **तिर** (तॄ-पार जाना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥ 38॥

(55) सूक्त 11

204. देव सवितः एष ते सोमः, तम् रक्षस्व मा त्वा दभन्।
एतत् त्वम् देव सोम, देवो देवान् उप अगाः, इदम् अहम् मनुष्यान्,
सह रायस्पोषेण स्वाहा, निः वरुणस्य पाशान् मुच्ये॥ 39॥

संहितापाठ

देव सवितरेष ते सोमस्तꣳरक्षस्व मा त्वा दभन्। एतत्त्वं देव सोम देवो देवाँ2ऽउपागाऽइदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये।ß9॥

मन्त्रार्थ :- देव हे देव **सवितः** सविता, **एष** यह **सोमः** सोम **ते** तुम्हारे लिए है, **तम्** उसकी **रक्षस्व** रक्षा करो, **त्वा** तुम्हारी **मा** न **दभन** निन्दा या हिंसा हो। **देव** हे देव **सोम** सोम, **त्वम्** तुम **एतत्** ऐसे **देवो** देव **देवान्** देवों के **उप अगाः** समीप गये हैं। **इदम्** यह **अहम्** मैं **मनुष्यान्** मनुष्यों के **सह** साथ **स्वाहा** व्यापक **रायस्पोषेण** दान के पोषण (रायस्पोषण) द्वारा **वरुणस्य** वरुण के **पाशान्** पाशों को **निः मुच्ये** खोलता हूँ।

भावार्थ :- उपासक का सोम अर्थात् सौम्यभाव भी परमात्मा के लिए है। हमारी प्रार्थना है कि हमारे इस गुण की रक्षा परमात्मा करे। सौम्य होना अच्छा है, उसका गर्व अच्छा नहीं है। मानना चाहिए कि यह गुण भी परमात्मा का दिया हुआ है, पूरी तरह सोम आ सकेगा। इतना विनम्र भाव रहेगा तो हम निन्दा से बच सकते हैं। ऐसे सोमयुक्त उपासक तो देवतुल्य होते हैं, देवों की निकटता के अधिकारी होते हैं। इस सोम को पाने के व्यापक दान द्वारा लिए वरुण अर्थात् श्रष्ठता के बन्धन को खोल सकते हैं, फिर वरुण अर्थात् वरणीय परमात्मा के बन्धन भी मुक्त हो सकते हैं। ऐसे उपासक को कोई

बन्धन या भय अनुभव नहीं होता है, वे जीवनमुक्त होते हैं।। 39।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **सवितः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **एषः** (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **सोमः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **तम्** (सर्वनाम)। **रक्षस्व** (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। **मा** (अव्यय, सर्वनाम)। **त्वा** (सर्वनाम)। **दभन्** (दभ - निन्दा करना, आज्ञा देना)। **एतत्** (सर्वनाम)। **त्वम्** (सर्वनाम)। **देवो** (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **देवान्** (दिव्, देव् = तेजस्वी होना आदि)। **उप** (उपसर्ग)। **अगाः** (अग् = गति करना, आगे जाना)। **इदम्** (सर्वनाम)। **अहम्** (सर्वनाम)। **मनुष्यान्** (मन - विचार करना)। **सह** (सर्वनाम)। **रायस्पोषेण** (रा-देना, पा-पोषण करना)। **स्वाहा** (अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **निः** (उपसर्ग)। **वरुणस्य** (वृ - पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। **पाशान्** (पश् = बन्धन करना, बाँधना, जाना)। **मुच्ये** (मुच - मुक्त करना, छोड़ना, त्याग करना)।। 39।।

सरलपाठ

205. अग्ने व्रतपाः ते व्रतपा, या तव तनूः मयि अभूत्, एषा सा त्वयि,
यो मम तनूः त्वयि अभूत्, इयम् सा मयि।।
यथायथम् नौ व्रतपते व्रतानि, अनु मे दीक्षाम् दीक्षापतिः, अमंस्त अनु तपः तपस्पतिः ।।40।।

संहितापाठ

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳसा मयि। यथायथं नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमꣳस्तानु तपस्तपस्पतिः ।।

मन्त्रार्थ :- व्रतपाः हे व्रतों के पालक **अग्ने** अग्नि! **ते** तुम्हारे **व्रतपा** व्रतों के पालन का **मयि** मुझमें **या** जो **तव** तुम्हारा **तनूः** विस्तार **अभूत्** हुआ था, **सा** वह **एषा** यह **त्वयि** तुम में (है)। (तुमसे ही यह मुझे मिला था और तुमको ही समर्पित है।) **यो** जो **मम** मेरा **तनूः** विस्तार **त्वयि** तुझमें **अभूत्** हुआ था, **सा** वह **इयम्** यह **मयि** मुझमें (है)। **व्रतपते** हे व्रतों के पति! **यथायथम्** जैसे-जैसे **नौ** हम **व्रतानि** व्रतों को (करते हैं), **दीक्षापतिः** दीक्षापति **अनु दीक्षाम्** दीक्षा दें, **तपस्पतिः** तपस्पति **तपः** तप का **अनु अमंस्त** अनुदान दें।

भावार्थ :- परमात्मा के व्रत का पालन करें, उसकी उपासना का क्रम बनायें, उसके अनुकूल आचरण करें। इस भाव तथा कर्म को भी उसे ही समर्पित कर दें। उसके बाद उसका फल दीक्षा तथा तप भी उसकी कृपा से प्राप्त हो जायेगा।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अग्ने (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना)। **व्रतपाः** (वृ = वरण करना, पा - रक्षा करना, पालन करना)। **ते** (सर्वनाम)। **या** (सर्वनाम)। **तव** (सर्वनाम)। **मयि** (सर्वनाम)। **एषा** (सर्वनाम)। **सा** (सर्वनाम)। **यो** (सर्वनाम)। **मम** (सर्वनाम)। **तनूः** (तन् = विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना)। **त्वयि** (सर्वनाम)। **अभूत्** (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **इयम्** (सर्वनाम)। **यथायथम्** (अव्यय)। **नौ** (सर्वनाम)। **व्रतपते** (वृ = वरण करना)। **व्रतानि** (वृ = वरण करना)। **मे** (सर्वनाम)। **दीक्षाम्** (दीक्ष - दीक्षा देना, उपदेश देना)। **दीक्षापतिः** (दीक्ष - दीक्षा देना, उपदेश देना, पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना, पाना, नीचे गति करना)। **अमंस्त** (अम् = गति, शब्द, सेवा करना)। **अनु** (उपसर्ग)। **तपः** (तप् = तप करना)। **तपस्पतिः** (तप् = तप्त होना, तप करना, ऐश्वर्य होना, पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना)।। 40।।

206. उरु विष्णो विक्रमस्व, उरु क्षयाय नः कृधिः ।।
घृतम् घृतयोने पिब, प्र प्र यज्ञपतिम् तिर स्वाहा ।।41।।

संहितापाठ

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि। घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ।।41।।

मन्त्रार्थ :- विष्णो हे विष्णु, **उरु** विस्तृत **विक्रमस्व** पराक्रम करो। **नः** हमारे **उरु** विस्तृत **क्षयाय** निवास के लिए **कृधि** करो। **घृतयोने** हे घृतयोनि, **घृतम्** घृत **पिब** पी लो। **स्वाहा** व्यापक **यज्ञपतिम्** यजनपति को **प्र प्र तिर** पार उतारो।

भावार्थ :- विष्णु का अर्थ व्यापक परमात्मा है, उससे भी यही सीखना है कि वह भी पराक्रमी है, आलसी नहीं। हमारे निवास के लिए सुन्दर संसार की रचना उसने की है। अपना निवास बनाने के लिए हमें भी पराक्रम करना होगा। इसके बाद ही हम घृत पी सकते हैं। ऐसे परिश्रमी पराक्रमी उपासक को परमात्मा पार उतारता है। घृत का शाब्दिक अर्थ है प्रकाशित, अभिसिंचित। परमात्मा और उपासक दोनो ही घृतयोनि अर्थात् घृत स्वरूप हैं। परमात्मा तो स्वयं प्रकाशरूप है ही, उपासक भी उससे उत्पन्न तथा प्रकाशित प्रकाशपुत्र है।। 41।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : उरु (अव्यय)। **विष्णो** (विष्ण् = व्यापक होना)। **विक्रमस्व** (क्रम = निर्भय से जाना, वृद्धि करना, बचाना)। **क्षयाय** (क्षि - जाना, चलना, निवास करना, रहना)। **नः** (सर्वनाम)। **कृधि** (कृ = करना)। **घृतम्** (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। **घृतयोने** (घृ - सींचना, प्रकाशित होना)। **पिब** (पिब्-पा - पीना, प्राशन करना)। **प्र** (उपसर्ग)। **यज्ञपतिम्** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, पत-श्री मान् होना, शक्तिमान होना)। **तिर** (तृ-पार जाना)। **स्वाहा** (सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)।। 41।।

(56) सूक्त 12

207. अति अन्यान् अगाम्, न अन्यान् उप अगाम्, अर्वाक् त्वा परेभ्यः, अविदम् परो अवरेभ्यः ।।
तम् त्वा जुषामहे देव, वनस्पते देव-यज्यायै, देवाः त्वा, देव-यज्यायै, जुषन्ताम् विष्णवे त्वा ।।
ओषधे त्रायस्व स्वधिते, मा एनम् हिंसीः ।।42 ।।

संहितापाठ

अत्यान्याँ2ऽअगां नान्याँ2ऽउपागामर्वाक् त्वा परेभ्योऽविदं परोऽवरेभ्यः ।तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा ।ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः ।।42 ।।

मन्त्रार्थ :- अन्यान् अन्य को **अति** अतिक्रम कर **अगाम्** गया, **अन्यान्** अन्यों के **उप** समीप **न** नहीं **अगाम्** गया हूँ। **परेभ्यः** दूसरों से **अर्वाक्** पहले **त्वा** तुमको **अविदम्** पा लिया है, **अवरेभ्यः** अश्रेष्ठ लोगों से **परो** परे (अविदम् जान लिया है)। **देव** हे देव **वनस्पते** वनस्पति, **देवयज्यायै** देवयजन के लिए **तम् त्वा** तुम्हारी **जुषामहे** सेवा करते हैं। **देवाः** देवगण **देव-यज्यायै** देवयजन के लिए **विष्णवे** विष्णु के लिए **त्वा** तुम्हारी **जुषन्ताम्** सेवा करें। **स्वधिते** हे स्वधिति **ओषधे** ओषधि, **त्रायस्व** रक्षा करो, **एनम्** इसकी **मा** न **हिंसीः** हिंसा करो।

भावार्थ :- हमारे लक्ष्य उच्च हैं। किसी के आसपास पहुँचना भर पर्याप्त नहीं है, अन्यों का अतिक्रम कर सबसे आगे जाना है। सांसारिक सुखों में नहीं, देवत्व को जानने में, अपनाने में सबसे आगे रहने का प्रयास करें। छल-कपट से सुख-साधन तथा सम्पत्ति जुटा लेने की जोड़-तोड़ में आगे रहने का निर्देश नहीं है। स्पष्ट किया गया है कि देवयजन के लिए सेवा करनी है, वनस्पति तथा ओषधि की रक्षा करनी है, किसी की हिंसा नहीं करनी है।। 42।।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : अति (अत - चलना, निरन्तर चलना)। **अन्यान्** (सर्वनाम)। **अगाम्** (गम् = जाना)। **उप** (उपसर्ग)। **न** (अव्यय)। **अर्वाक्** (अव्यय)। **त्वा** (सर्वनाम)। **परेभ्यः** (सर्वनाम)। **अविदम्** (विद - समझना, जानना, वास करना)। **परो** (अव्यय)। **अवरेभ्यः** (वर-इच्छा करना, आशा करना)। **तम्** (सर्वनाम)। **जुषामहे** (जुष् = विचार करना, सेवा करना)। **देव** (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **वनस्पते** (वन - शब्द करना, सेवा करना, चाकरी करना, पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना)। **देव-यज्ञायै** (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, यज - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **देवाः** (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **जुषन्ताम्** (जुष् = विचार करना, सेवा करना)। **विष्णवे** (विष्ण् = व्याप्त होना)। **ओषधे** (उषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। **त्रायस्व** (त्रै = पालन करना, रक्षा करना, पोषण करना)। **स्वधिते** (स्व = अपना, धा = धारण, पोषण, रक्षण करना)। **मा** (अव्यय, सर्वनाम)। **एनम्** (सर्वनाम)। **हिंसीः** (हिंस् = हिंसा करना, मारना)।। 42।।

208. द्याम् मा लेखीः, अन्तरिक्षम् मा हिंसीः, पृथिव्या सम्भव ।
अयम् हि त्वा स्वधितिः तेतिजानः, प्रणिनाय महते सौभगाय ।
अतः त्वम् देव वनस्पते, शतवल्शो विरोह, सहस्रवल्शा वि वयम् रुहेम ।।43 ।।

द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिꣳसीः पृथिव्या सम्भव।अयꣳहि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय। अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्त्रवल्शा वि वयꣳरुहेम॥43॥

मन्त्रार्थ :- **द्याम्** द्युलोक में **मा** मत **लेखीः** लिखो, **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष को **मा** मत **हिंसीः** मारो, **पृथिव्या** पृथ्वी पर (ही कार्य करना) **सम्भव** सम्भव है। **अयम्** यह **हि** ही **स्वधितिः** स्वधिति **तेतिजानः** तेतिजान **महते** महान् **सौभगाय** सौभाग्य के लिए **प्रणिनाय** ले जाता है। **अतः** अतः **त्वम्** तुम **देव** देव **वनस्पते** वनपालक, **शतवल्शो** सौ आच्छादनों से **विरोह** रोहण करो। **सहस्त्रवल्शा** सहस्त्र आच्छादनों से **वयम्** हम लोग **रुहेम** बढ़ें।

भावार्थ :- अव्यावहारिक कल्पनाओं से कोई कार्य नहीं हो सकता है, जैसे द्युलोक या चमकते सूर्य आदि नक्षत्रों पर कुछ लिखने का प्रयास व्यर्थ है। आकाश की हिंसा करना भी सम्भव नहीं है। जो कुछ करना सम्भव है, वह इस पृथ्वी पर ही हो सकता है। ठोस धरातल पर प्रयास करके ही सफलता मिल सकती है। स्व-धिति का अर्थ है स्वयम् धारण करना। सु-अधिति का अर्थ हुआ अच्छी तरह अध्ययन। भलीभांति अध्ययन कर विद्या को स्वयम् धारण करें तथा उसका प्रकाश अन्यों तक भी विस्तारित करें। तेतिजान का अर्थ है तीक्ष्ण। अध्ययन से प्राप्त तीक्ष्ण बुद्धि से सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं॥ 43॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : द्याम् (द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना)। **मा** (अव्यय, सर्वनाम)। **लेखीः** (लिख - लिखना)। **अन्तरिक्षम्** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **हिंसीः** (हिंस् = हिंसा करना, मारना)। **पृथिव्या** (पृथृ - व्याप्त होना, विस्तार होना)। **सम्भव** (सम् = सम्यक् रूप से, भलीभांति, भू = होना)। **अयम्** (सर्वनाम)। **हि** (अव्यय)। **त्वा** (सर्वनाम)। **स्वधितिः** (स्व = अपना, धि-धा = धारण, पोषण, रक्षण करना)। **तेतिजानः** (तिज्, तेज् = चमकना, चमकाना, पैना करना)। **प्रणिनाय** (नी - पहुँचाना, प्राप्त होना, मिलना, ले जाना)। **महते** (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। **सौभगाय** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना)। **अतः** (अव्यय)। **त्वम्** (सर्वनाम)। **देव** (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **वनस्पते** (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना)। **शत-वल्शो** (शत = सौ, वल - आच्छादित करना, ढकना, घेरना, जाना)। **विरोह** (वि = विशेष, विना, विलोम, रुह - बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना)। **सहस्त्रवल्शा** (सहस्त्र = हजार, वल - आच्छादित करना, ढकना, घेरना, जाना)। **वि** (उपसर्ग)। **वयम्** (सर्वनाम)। **रुहेम** (रुह - बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)॥ 43॥

इति पञ्चमो अध्यायः

ॐ

अथ षष्ठो अध्यायः

(59) सूक्त 1

209. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्।
आददे नारि तत् असि, इदम् अहम् रक्षसाम् ग्रीवाः अपि कृन्तामि।
यवो असि यवय अस्मत् द्वेषो, यवय अरातीः दिवे त्वा,
अन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताम्, लोकाः पितृषदनाः पितृषदनम् असि॥1॥

संहितापाठ

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवाऽअपिकृन्तामि। यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीर् दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि॥1॥

मन्त्रार्थ :- देवस्य देव को **सवितुः** उत्पन्न करने वाला (परमात्मा) **त्वा** तुम्हें **अश्विनोः** व्यापक (फैले हुए) **बाहुभ्याम्** बाहुओं से, **पूष्णो** पोषण करने वाले **हस्ताभ्याम्** हाथों से **प्रसवे** उत्पन्न करे। (तुम) **तद्** वह। **नारी** नारी **असि** हो, **इदम्** यह **अहम्** मैंने **आददे** ग्रहण किया। **रक्षसाम्** रक्षसों की **ग्रीवा** ग्रीवा **अपि** भी **कृन्तामि** काटता हूँ। (तुम) **यवो** यव (पृथक् करने वाले) **असि** हो, **अस्मत्** मुझसे **द्वेषो** द्वेष को **यवय** पृथक् करो, **अरातीः** अदानियों को **यवय** पृथक् करो। **दिवे** दिवलोक के लिए, **अन्तरिक्षाय** अन्तरिक्ष के लिए, **पृथिव्यै** पृथिवी के लिए **पितृषदनाः** पितृसदन **लोकाः** लोकों को **शुन्धन्ताम्** शुद्ध करो, **पितृसदनम्** पितृसदन असि (तुम) हो॥ 01॥

भावार्थ :- देव का जनक (परमात्मा) तुमको व्यापक भुजाओं के लिए, पोषक हाथों के लिए उत्पन्न करता है। वह तुमको भी इन्ही गुणों से युक्त उत्पन्न करे। परमात्मा देवों को उत्पन्न करने वाला है। परमात्मा ने देव शक्तियों, सूर्य आदि दिव्यताओं को उत्पन्न किया है। इस बात का स्मरण कराते हुए कहा गया है कि हमारा जीवन व्यापक भुजाओं तथा पोषक हाथों के लिए है। अर्थात् हमारे कार्यों में व्यापकता होनी चाहिए। कर्म समाज का पोषण करने वाले होने चाहिए। नारी का अर्थ है ले जाने वाली। रक्ष धातु का अर्थ है रक्षा करना। समाज के रक्षक तो रक्षणीय हैं। यदि कोई अपने स्वार्थों की रक्षा की चिन्ता करे और स्वार्थ के लिए दूसरों का अहित करे तो वह रक्षक नहीं कहा जा सकता है। ऐसे रक्षस् तो दण्डनीय हैं, उनका गला काटने का भी साहस समाज हित में करें। कुछ पृथक् करना है तो द्वेष भाव को करो, दान न देने की कृपणता तो पृथक् करो। स्वयम् को तथा सभी लोकों को, सभी स्थानों को, पूरे समाज को शुद्ध करो॥ 01॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। **प्रसवे** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **अश्विनोः** (अशु = व्यापक होना)। **बाहुभ्याम्** (बह, बाहु - भुजायाम्, चलना, बहना)। **पूष्णो** (पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। **हस्ताभ्याम्** (हस्त - लेना, आदान करना, दान करना, ग्रहण करना)। **आ ददे** (दद - देना, त्याग करना, आ-दद - लेना, ग्रहण करना)। **नारि** (नृ - ले जाना)। **तद्** (सर्वनाम)। **असि** (अस् = होना)। **इदम्** (सर्वनाम)। **अहम्** (सर्वनाम)। **रक्षसाम्** (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। **ग्रीवा** (गृ = सींचना, जानना, निगलना, शब्द करना, बोलना, समझना)। **अपि** (अव्यय)। **कृन्तामि** (कृत-कतरना, काटना)। **यवो** (यु = मिलाना, अलग करना)। **यवय** (यु - मिश्रित करना, पृथक्-पृथक् करना)। **अस्मत्** (सर्वनाम)। **द्वेषो** (द्विष् = द्वेष करना)। **अरातीः** (अ - नहीं, रा = देना)। **दिवे** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **अन्तरिक्षाय** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **पृथिव्यै** (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना)। **शुन्धन्ताम्** (शुन्ध - शुद्ध होना, पवित्र होना)। **लोकाः** (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। **पितृषदनाः** (पा = रक्षा करना, पालन करना, सद्-सीद्-षद् - बैठना, जाना, जानना, पाना,

पहुँचना)। **पितृसदनम्** (पा = रक्षा करना, पालन करना, सद्-सीद्-षद् - बैठना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)।। 01।।

210. अग्रेणीः असि स्वावेश उन्नेतृणाम्, एतस्य वित्तात् अधि त्वा स्थास्यति देवः,
त्वा सविता मध्वा अनक्तु, सुपिप्पलाभ्यः त्वा ओषधीभ्यः।
द्याम् अग्रेण अस्पृक्ष, आ अन्तरिक्षम् मध्येन अप्राः, पृथिवीम् उपरेण अदृंहीः ॥2॥

संहितापाठ

अग्रेणीरसि स्वावेशऽउन्नेतृणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः। द्यामाग्रेणास्पृक्षऽआन्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृंहीः ॥।2॥

मन्त्रार्थ :- अग्रेणीः - अग्रणी असि - हो, उन्नेतृणाम् - उन्नति कराने वालों में, ऊपर ले जाने वालों में स्वावेशः - **अच्छी तरह प्रवेश करो।** एतस्य - इसके वित्तात् वित्त, ज्ञान से त्वा - तुमको देव - देव अधि = ऊपर स्थास्यति - स्थापित करेगा। त्वा - तुमको सविता उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् मध्वा मधु से अनक्तु जीवन दे, प्राणवान् करे, स्वच्छ करे, विख्यात करे। त्वा - तुमको, सुपिप्पलाभ्यः - सुन्दर गति, ज्ञान, ओषधीभ्यः ओषधियों से (अनक्तु - जीवन दे, प्राणवान् करे, स्वच्छ करे, विख्यात करे।) द्याम् - सबसे बढ़कर, विशिष्ट को अग्रेण - अग्र द्वारा अस्पृक्षः - स्पर्श किया। अन्तरिक्षम् - अन्तरिक्ष को मध्येन - मध्य से आ समन्तात्, अप्राः पूर्ण किया, भर दिया। पृथिवीम् - पृथिवी को उपरेण - उपदान द्वारा, उत्पन्न करने या बुनने से अदृंहीः - दृढ़ किया।

भावार्थ :- परमात्मा तथा उसके उपासक अग्रणी हैं। उन्नति की ओर ले जाने वालों में प्रवेश करना है। इसके वित्त से ही देव तुमको ऊपर स्थापित करते हैं। वित्त का अर्थ अर्थ विद् - ज्ञान होना धातु से ज्ञान है तथा वित्त धातु का अर्थ त्याग करना, अच्छे कार्य में धन व्यय करना होता है। वित्त का यह अर्थ भी स्वीकार्य है तथा विचारणीय है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : - अग्रेणी (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना)। असि (अस् - होना)। स्वावेशः (स्व = निज, अपना, सु - अच्छा, सुन्दर, आ - समन्तात्, विश् - प्रवेश करना, अन्तर्गमन करना, सूचना करना, प्रेरणा करना)। उन्नेतृणाम् (उत् - ऊपर, नी - ले जाना)। एतस्य (सर्वनाम)। वित्तात् (विद् = जानना)। अधि (उपसर्ग)। त्वा (सर्वनाम)। स्थास्यति (स्था - स्थित होना, मार्ग प्रतीक्षा करना, विनती करना, अभिप्राय समझाना)। देवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, ऐश्वर्य करना)। मध्वा (मध-मधु = मीठा होना)। अनक्तु (अन - जीना, समर्थ होना, जाना, अञ्ज्-अनक् - स्वच्छ करना, स्पष्ट करना, विख्यात करना)। सुपिप्पलाभ्यः (सु = अच्छा, पिप्पल - चलना, भ्रमण करना, जानना, पाना)। ओषधीभ्यः से (उषध् = पीड़ा निवारण करना, जानना, चिकित्सा करना)। द्याम् (द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना, द्यै = तिरस्कार करना)। अग्रेण (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, अग्रे = आगे)। अस्पृक्षः (स्पृश् - स्पर्श करना, छूना, अस् = फेंकना, बिखेरना, उड़ाना, पृक् - मिलना)। आ (उपसर्ग)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। मध्येन (सर्वनाम)। अप्राः (प्रा - पूर्ण करना, भरना, तृप्त करना)। पृथिवीम् (पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। उपरेण (उप - समीप, रा - देना, दान करना, उप्-वप् - बोना, उत्पन्न करना, बुनना, बाल काटना)। अदृंहीः (दृह - बढ़ना, बढ़ाना, दृढ़ होना या करना)।। 02।।

सरलपाठ

211. या ते धामानि उशमसि गमध्यै, यत्र गावो भूरि-शृङ्गा अयासः।
अत्र अह तत् उरु गायस्य विष्णोः, परमम् पदम् अव भारि भूरि।
ब्रह्म-वनि त्वा क्षत्रवनि परि ऊहामि। ब्रह्म दृंह क्षत्रम् दृंह, आयुः दृंह प्रजाम् दृंह ॥3॥

संहितापाठ

या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गाऽअयासः। अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभारि भूरि। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि। ब्रह्म दृंह क्षत्रं दृंहायुर्दृंह प्रजां दृंह ॥3॥

मन्त्रार्थ :- या जो ते तुम्हारे धामानि धामों को गमध्यै गमन के लिए, उशमसि चाहते हैं, यत्र जहाँ गावो शब्द भूरि-शृङ्गा बहुश्रुत अयासः अनायास, प्राप्त होते हैं। अत्र यहाँ तत् वह अह व्यापक उरु-गायस्य बहुगतिशील, बहु-स्तुत, विष्णोः विष्णु का भूरि बहुत भारि प्रकाशमान परमम् परम पदम् पद को अव रक्षित करो। त्वा तुमको ब्रह्म-वनि ब्रह्म-सेवी क्षत्रवनि क्षत्र-सेवी परि-ऊहामि परिकल्पित करता हूँ। ब्रह्म ब्रह्म को दृंह दृढ़ करो, क्षत्रम् क्षत्र को दृंह दृढ़ करो, आयुः आयु को दृंह दृढ़ करो, प्रजाम् प्रजा को दृंह दृढ़ करो॥ 3॥

भावार्थ :- हमारे गमन का लक्ष्य, हमारे जीवन का उद्देश्य परमात्मा के परम धाम को प्राप्त करना है। यहाँ धाम का प्रयोग बहुवचन में हुआ है, अर्थात् धाम एक नहीं अनेक हैं। ऐसा नहीं है कि परमात्मा किसी एक स्थान पर है तथा उस स्थान तक चलकर पहुँच जाना है। अनेक स्थानों पर उसके धाम हो सकते हैं, कह सकते हैं कि प्रत्येक स्थान पर उसका धाम हो सकता है। परमात्मा तो सर्वत्र व्याप्त है। उसको या उसके धामों को प्राप्त करने का अर्थ उन स्थितियों को प्राप्त करना है जिसे परमात्मा का धाम कह सकें। इसी मन्त्र में यह भी बताया गया है कि वह धाम कैसा होता है। वहाँ शब्द, वाणी, स्तुतियाँ बहुश्रुत हैं। जिस समाज में परमात्मा की वाणी बहुश्रुत है, उसकी स्तुतियाँ बहुश्रुत हैं, वह परमात्मा का धाम है। विष्णु अर्थात् व्यापक परमात्मा का वह धाम अथवा उसका वह परम पद बहुत प्रकाशमान है। इन सब भावनाओं, कार्यों, वातावरण का संरक्षण करने का निर्देश भी हमें यह मन्त्र दे रहा है। जो ऐसा कर सकता है, वही ब्रह्म-विद्या तथा क्षत्र-धर्म का सेवी हो सकता है। वही समाज के लिए श्रेष्ट उपयोगी हो सकता है। वही ब्रह्म-विद्या तथा क्षत्र-धर्म को दृढ़ कर सकता है, वही आयु को तथा प्रजा को भी दृढ़ कर सकता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : - या (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। धामानि (धा = धारण करना)। उश्मसि (उश-वश - इच्छा करना, चाहना)। गमध्यै (गम् = जाना, जानना, पाना)। यत्र (सर्वनाम)। गावः (गु - शब्द करना)। भूरिशृङ्गा (भूरि = बहुत, शृ - सुनना, जाना, जानना, पाना)। अयासः (अय - जाना, अ - नहीं, यस् - प्रयास करना)। अत्र (अव्यय)। अह (अह् = व्याप्त होना)। तत् (सर्वनाम)। उरुगायस्य (उरु = बहुत, गा = स्तुति करना, जाना, जानना)। विष्णोः (विष्-विविष् - व्याप्त होना, अभिषेक करना, सींचना, अलग करना)। परमम् (सर्वनाम)। पदम् (पद् - चलना, भूषित होना)। अव (अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। भारि (भा - चमकना, प्रकाश होना, भृ - भरण करना)। भूरि (अव्यय, सर्वनाम)। ब्रह्मवनि (बृह् = बढ़ना, वन् = शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, याचना करना)। त्वा (सर्वनाम)। क्षत्रवनि (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। परि (उपसर्ग)। ऊहामि (ऊह = तर्क करना, विचार करना)। ब्रह्म (बृह् = बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। दृंह (दृंह - दृढ़ होना, दृढ़ करना, बढ़ना)। क्षत्रम् (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। आयुः (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। प्रजाम् (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)।3॥

(60) सूक्त 2

212. विष्णोः कर्माणि पश्यत, यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥4॥

संहितापाठ

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥4॥

मन्त्रार्थ :- विष्णोः = विष्णु का कर्माणि कर्मों को पश्यत देखो, यतो जिससे व्रतानि व्रतों को पस्पशे बाँधते हैं। इन्द्रस्य इन्द्र का युज्यः योग्य सखा मित्र (है)॥ 4॥

भावार्थ :- विष्णु अर्थात् व्यापक परमात्मा के कर्मों को देखें। परमात्मा निरन्तर कर्मरत है। वह कर्म करने के लिए बाध्य नहीं है, फिर भी निरन्तर कर्म करता है। स्वाभाविक है कि हमसे भी यही अपेक्षा है। सभी व्रत-संकल्प उसी परमात्मा से तथा उसकी तरह कर्म करते रहेने से ही सम्भव हो पाते हैं। वह परमात्मा तथा निरन्तर कर्मशीलता ही इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्य का योग्य सखा है, मित्र है, साथी है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- विष्णोः (विष्-विविष् - व्याप्त होना, अभिषेक करना, सींचना, अलग करना)। कर्माणि (कृ - करना)। पश्यत (पश् = देखना)। यतः (सर्वनाम)। व्रतानि (वृ = वरण करना)। पस्पशे (पश-पष-स्पश - बांधना, एकत्र करना, संयुक्त करना)। इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। युज्यः (युज - जोड़ना)। सखा (सख् = मित्र होना) **॥4॥**

213. तत् विष्णोः परमम् पदम्, सदा पश्यन्ति सूरयः।दिवि इव चक्षुः आ ततम्॥5॥

संहितापाठ

तद्विष्णोः परमं पदꣳसदा पश्यन्ति सूरयः।दिवीव चक्षुराततम्॥5॥

मन्त्रार्थ :- तत् - वह, विष्णोः विष्णु के परमम् परम पदम् पद को सदा - सर्वदा, सर्वकाल, दिवि दिवलोक इव के समान ततम् विस्तृत चक्षुः दृष्टि वाले सूरयः सूरगण आ समन्तात्, सम्यक् पश्यन्ति देखते हैं॥5॥

भावार्थ :- विष्णु अर्थात् व्यापक परमात्मा के व्यापक दृष्टि तथा विचार वाले उपासक उसके परम पद अथवा मूल स्वरूप का अनुभव करते हैं।**॥5॥**

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- तत् (सर्वनाम)। विष्णोः (विष्-विविष् = सींचना, व्याप्त होना)। परमम् (सर्वनाम)। पदम् (पद - चलना, स्थानान्तर करना)। सदा (अव्यय)। पश्यन्ति (पश् = देखना)। सूरयः (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। दिवि (दिव् = तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। इव (अव्यय)। चक्षुः (चक्ष् - देखना)। आ-ततम् (तन् = विस्तार, फैलाना, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, भरोसा करना, आश्रय देना, सहाय करना, शब्द करना)।

214. परि वी असि परि त्वा दैवीः विशो व्यन्ताम्, परि इमम् यजमानम् रायो मनुष्याणाम्।
दिवः सूनुः असि एष ते पृथिव्याम्, लोक आरण्यः ते पशुः॥6॥

संहितापाठ

परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमानꣳरायो मनुष्याणाम्।दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्याँल्लोकऽआरण्यस्ते पशुः॥6॥

मन्त्रार्थ :- परि वी - परिव्याप्त असि - हो, त्वा - तुम्हारे इमम् - इस दैवीः - दिव्य विशो - विश, प्रवेश करने वाले (उपासक) यजमानम् -यजमान को रायो - गति, विद्या, वाणी परि मनुष्याणाम् - मनुष्यों के सब ओर अर्थात् मनुष्यों के समाज में परि व्यन्ताम् - परिव्याप्त हो। दिवः - दिव्य सूनुः - सन्तान असि - हो, एष - यह ते - तुम्हारे पृथिव्याम् - पृथ्वी पर आरण्यः - सम्यक् गति, वाणी योग्य ते - तुम्हारे पशुः - पशु, दृष्टा, लोक - लोक (है)॥6॥

भावार्थ :- परमात्मा सर्वत्र परिव्याप्त है, सबको उत्पन्न करने वाला है, प्रकाशस्वरूप है। उसके दिव्य भावना वाले यजमान अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान में रत रहने वाले उपासक को परमात्मा के दिव्य अनुदान प्राप्त होते हैं। वह मानव समाज में परिव्याप्त होता है। इसी पृथ्वी पर उसके लिए आरण्य पशु लोक है अर्थात् सम्यक् गति, वाणी योग्य सम्यक् दिव्य दृष्टि-सम्पन्न लोगों का समाज है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : - परि (उपसर्ग)। वी (वी - व्याप्त होना, उत्पन्न करना, प्रकाश होना)। असि (अस् - होना)। त्वा (सर्वनाम)। दैवीः (देव् = जानना, विशेष गुण होना, खेलना)। विशः (विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना)। व्यन्ताम् (वी - व्याप्त होना, वि = विशेष, विना, विलोम, अन् = प्राणवान् होना)। इमम् (सर्वनाम)। यजमानम् (यज - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। रायः (रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। मनुष्याणाम् (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। दिवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना आदि)। सुनुः (सु = उत्पन्न करना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। पृथिव्याम् (पृथु = फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना, व्यापक होना, विस्तृत होना, मोटा होना)। आरण्यः (रण - शब्द करना, जाना, जानना, पाना)। पशुः (पश - बांधना, जाना, पश-दृश - देखना) **॥6॥**

215. उपावीः असि उप देवान् दैवीः विशो, प्र अगुः उशिजो बह्नि-तमान्।
देव त्वष्टः वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम्॥7॥

संहितापाठ

उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान्।देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम्॥7॥

मन्त्रार्थ :- उप - निकट, अवीः - रक्षक, असि - हो। उप - समीप देवान् - देवों को दैवीः - दिव्य, विशो विश, प्रवेशी, प्र - प्रकृष्ट अगुः गमनीय, उशिजो - कामनाजन्य बह्नि-तमान् - अत्यन्त वहन करने वाले। देव - देव, दिव्य-शक्ति, त्वष्टः - प्रकाशक, प्रकाशवान्, वसु - निवास, वासयोग्य, रम - रमो, रमण करो। ते - तुम्हारा हव्या हव्य अर्थात् दानयोग्य,

आदान-प्रदानयोग्य का स्वदन्ताम् - आस्वादन करें।। 7।।

भावार्थ :- परमात्मा ही हमारा निकट रक्षक है। वही हमारा गमनीय तथा प्राप्य लक्ष्य अर्थात् गन्तव्य है। हमारी दिव्य कामनाओं का वहन परमात्मा की कृपा से ही सम्भव है। हमारे निवास-निर्वाह की व्यवस्था वही करता है। वह सर्वत्र रमण करता है, हमें उसमें ही रमण करना है। हव्य का अर्थ दान तथा आदान-प्रदान है। हमें जो कुछ मिला है, वह उसका ही दान है, अतः हमें भी सबकुछ उसे ही समर्पित कर आस्वादन करना चाहिए।

विशेष :- वस (वसति, वसते) धातु का अर्थ निवास करना है। वस (वस्ते) धातु का अर्थ आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना है। वस (वासयति, वासयते) धातु का अर्थ दया करना, प्रीति करना आदि है। वसु शब्द में ये सभी अर्थ समाहित हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- उप (उपसर्ग)। अवीः (अव् = रक्षा करना)। असि (अस् - होना)। देवान् (दिव्, देव् = तेजस्वी होना आदि)। दैवीः (दिव्, देव् = तेजस्वी होना आदि)। विशः (विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना)। प्र (उपसर्ग)। अगुः (अग - जाना)। उशिजः (उश-वश - इच्छा करना, चाहना)। वह्नितमान् (वह् = वहन करना, ले जाना)। देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। त्वष्टः (त्विष - प्रकाश करना)। वसु (वस् = निवास करना, दया-प्रीति करना, निश्चल होना, निःछल होना}। रम (रम - रमना, क्रीडा करना)। हव्या (हु = देना, आदान-प्रदान करना)। ते (सर्वनाम)। स्वदन्ताम् (स्वद - स्वाद लेना, चखना, तुष्ट होना, प्रसन्न होना)।। 7।।

216. रेवती रमध्वम् बृहस्पते धारय वसूनि।
ऋतस्य त्वा देव-हविः, पाशेन प्रति मुञ्चामि धर्षा मानुषः ।।8।।

संहितापाठ

रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि।
ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षा मानुषः ।।8।।

मन्त्रार्थ :- रेवती - गतिशील, उपदेशक रमध्वं - रमण करो, बृहस्पते - हे बृहस्पति वसूनि - वसुओं को धारया - धारण करो। धर्षा - आकर्षक, आकर्षित करने वाले देवहविः - देव-हवि मानुषः - मनुष्य त्वा तुमको ऋतस्य - ऋत के पाशेन - पाश द्वारा प्रतिमुञ्चामि प्रतिमुक्त करता हूँ। ।।8।।

भावार्थ :- परमात्मा गतिमय है, वेदों का उपदेशक है। वह सदा सर्वत्र रम रहा है। वह बृहस्पति है, सबसे बड़ा है, बड़ों का भी पति अर्थात् रक्षक, स्वामी है। वही वसुओं अर्थात् वसने के लिए आवश्यक प्रकृति को धारण करने वाला है। उसके उपासक भी इसी प्रकार गतिशील, विचरण करने वाले उपदेशक हैं। वे उपासक आकर्षित करने वाले हैं। उनको ऋत के पाश द्वारा प्रतिमुक्त किया जाता है। ऋत कहते हैं सृष्टि का परिचालन करने वाली सार्वभौम नियम-व्यवस्था को। इस ऋत पाश अर्थात् बन्धन द्वारा प्रतिमुक्त किया जाता है। मुक्त होने के लिए ऋत के बन्धन को स्वीकार करना होगा। प्रतिमुक्त का अर्थ कुछ विद्वान् बांधना करते हैं। वास्तव में मुक्त करने का अर्थ स्वछन्दता, अराजकता नहीं है। ऋत व्यवस्था को तो मानना ही है। ऋत के बन्धन में रहकर ही हम मुक्त होते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- रेवतीः (री = गति करना, शब्द करना, रेव - तैरना, उड़ना)। रमध्वम् (रम् - रमना, रमण करना)। बृहस्पते (बृह् = बढ़ना, पा - पालन करना, रक्षा करना, पत् - ऐश्वर्य होना)। धारय (धा = धारण करना)। वसूनि (वस् = निवास करना, आच्छादन, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, निश्चल, सीधा होना)। ऋतस्य (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। त्वा (सर्वनाम)। देवहविः (दिव - दिव्य होना, हु - दान करना, आदान-प्रदान करना)। पाशेन (पश् = बन्धन करना, बाँधना, जाना)। प्रति (उपसर्ग)। मुञ्चामि (मुञ्च - शब्द करना, कहना, मुक्त करना, त्याग करना)। धर्षा (धृष = धारण करना, कर्षण करना, जीतना, गर्व करना)। मानुषः (मन - मनन करना, मानना, मान - सत्कार करना, मनाना)।। 8।।

(61) सूक्त 3

217. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्।अग्नीषोमाभ्याम् जुष्टम् नि युनज्मि।

अद्भ्यः त्वा ओषधीभ्यो अनु त्वा माता मन्यताम्, अनु पिता अनु भ्राता सगर्भ्यो अनु सखा सयूथ्यः।
अग्नीषोमाभ्याम् त्वा जुष्टम् प्र उक्षामि॥9॥

संहितापाठ

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि।अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः।अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥9॥

मन्त्रार्थ :- देवस्य देव को **सवितुः** उत्पन्न करने वाला (परमात्मा) **त्वा** तुम्हें **अश्विनोः** व्यापक (फैले हुए) **बाहुभ्याम्** बाहुओं से, **पूष्णो** पोषण करने वाले **हस्ताभ्याम्** हाथों से **प्रसवे** उत्पन्न करे। अग्नीषोमाभ्याम् - अग्नि-सोम के लिए जुष्टम् प्रिय, सेवित, सन्तुष्ट को। नि युनज्मि - नियुक्त करता हूँ, निबन्धित करता हूँ। त्वा - तुमको अद्भ्यः - संचरणशील, खाद्य, ग्रहणयोग्य ओषधीभ्यो - ओषधियों द्वारा त्वा - तुमको अनु माता - माँ, अनु पिता - पिता, अनु भ्राता - भाई सगर्भ्यो समान गर्भवाले, सहोदर, अनु सखा - मित्र सयूथ्यः समान यूथ, समूह वाले मन्यताम् - मानें, मान्य करें। अग्नीषोमाभ्याम् अग्नि-सोम के लिए त्वा - तुमको जुष्टम् प्रिय, सेवित, सन्तुष्ट को प्र उक्षामि - प्रोक्षित करता हूँ॥9॥

भावार्थ :- परमात्मा व्यापकता की भावना से दिव्यता को उत्पन्न करता है। सभी सम्बन्धी संचरणशील, ग्रहणयोग्य ओषधियों द्वारा मान्य करें। अत धातु का अर्थ सतत गमन करना, निरन्तर गतिशील होना तथा अद् धातु का अर्थ खाना, ग्रहण करना है। अद्भ्यः में दोनो ही अर्थ स्वीकार्य हैं। इस भावना से हम स्वयम् को, अपनों को तथा सम्पूर्ण समाज को प्रोक्षित, अभिसिंचित करते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। **प्रसवे** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **अश्विनोः** (अशु = व्यापक होना)। **बाहुभ्याम्** (बह, बाहु - भुजायाम्, चलना, बहना)। **पूष्णो** (पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। **हस्ताभ्याम्** (हस्त - लेना, आदान करना, दान करना, ग्रहण करना)। अग्नीषोमाभ्याम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। जुष्टम् (जुष् = सेवा करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। नि-युनज्मि (यु - बांधना, बन्धन करना, गूंथना)। अद्भ्यः (अत् - सतत गमन करना, अद् = खाना, आत्मसात् करना)। ओषधीभ्यः (उषध् = पीड़ा निवारण करना, जानना, चिकित्सा करना)। अनु (उपसर्ग)। माता (मन - मनन करना, मानना, मा = मान करना, मापना)। मन्यताम् (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। पिता (पा - पालन करना)। भ्राता (भृ -भरण करना)। सगर्भ्यः-सगर्भ्यो (सग - संवरण करना, आच्छादन करना, ओढ़ना, स - सहित, साथ, गृभ्-गर्भ - भीतर धारण करना, गर्भ होना, गृह् - गृहण करना, गृ - गीला करना, समझना, जानना)। सखा (सख् = मित्र होना)। सयूथ्यः (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, पृथक् पृथक् करना)। जुष्टम् (जुष् = सेवा करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। प्र (उपसर्ग)। उक्षामि (उक्ष - निर्मल करना, स्वच्छ करना, गीला करना, प्रोक्षण करना, सींचना, भेजना)॥9॥

218. अपाम् पेरुः असि, आपो देवीः स्वदन्तु, स्वात्तम् चित् सत् देवहविः।
सम् ते प्राणः वातेन गच्छताम्, सम् अङ्गानि यजत्रैः, सम् यज्ञपतिः आशिषा॥10॥

संहितापाठ

अपां पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित्सद्देवहविः।
सं ते प्राणो वातेन गच्छताꣳ समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा॥10॥

मन्त्रार्थ :- अपाम् - अपों के, पेरुः - पीने वाले, असि - हो। आपो - आपः, देवीः - देवी, स्वदन्तु - प्रसन्न हों, स्वात्तम् - सन्तुष्टि, प्रसन्नता, चित् - ही, सत् - सत्य, देवहविः - दिव्य हवि (है)। सम् - सम्यक् ते - तुम्हारा प्राणः - प्राण, वातेन - वात द्वारा, सम् सम्यक्, अङ्गानि - अंग, यजत्रैः - यजनकर्ताओं द्वारा, सम् सम्यक्, यज्ञपतिः - यजन का स्वामी,पालक, रक्षक, आशिषा - आशीष द्वारा, गच्छताम् - चले॥10॥

भावार्थ :- यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान तथा यजनपति होने का भाव है इनका पालन, रक्षण करना।

हवि का अर्थ दान है, देवहवि का अर्थ दिव्यदेय वस्तु, भावना आदि होता है। हम देवहवि स्वरूप हो जायें, इससे यजन करें तथा यजनपति होकर देवशक्तियों का आशीष प्राप्त करें, उसके अनुसार जीवन-यापन करें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अपाम् (अप - पालन करना)। पेरुः (पा-पिब् - पीना)। असि (अस् = होना)। आपः (आप् = व्याप्त होना, अवलम्ब होना)। देवीः (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना)। स्वदन्तु (स्वद - स्वाद लेना, चखना, तुष्ट होना, प्रसन्न होना)। स्वात्तम् (स्वाद - स्वाद लेना, चखना, मधुर होना, मीठा होना, सुखदायक होना)। चित् (चित् - चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। सत् (सत् - सत्य होना, अस्तित्व होना)। देवहविः (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना, हु - दान करना, आदान-प्रदान करना)। सम् (उपसर्ग)। ते (सर्वनाम)। प्राणः (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। वातेन (वा = जाना, जानना, पाना, गन्ध लेना)। गच्छताम् (गम्, गच्छ् = जाना)। अङ्गानि (अङ्ग् = चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। यजत्रैः (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। यज्ञपतिः (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना, पा - पालन करना, रक्षा करना, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, उतरना, गिरना, शक्तिमान् होना, श्रीमान् होना, पराक्रम करना)। आशिषा (आ - समन्तात्, शिष् = शेष रहना, अधिक होना, विशेषता होना)॥ 10॥

219. घृतेन अक्तौ पशून् त्रायेथाम्, रेवति यजमाने प्रियम् धा आ विश।
उरोः अन्तरिक्षात् सजूः देवेन वातेन, अस्य हविषः आत्मना यज, सम् अस्य तन्वा भव।
वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञ-पतिम् धाः स्वाहा, देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा॥11॥

संहितापाठ

घृतेनाक्तौ पशूंस्त्रायेथाꣳरेवति यजमाने प्रियं धाऽआविश।

उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव।वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा॥11॥

मन्त्रार्थ :- घृतेन - घृत द्वारा, प्रकाश द्वारा, अभिसिञ्चत द्वारा, अक्तौ - प्राप्त, ज्ञात, ज्ञानी, पशून् - देखने वालों को, दृष्टि सम्पन्न लोगों को, बन्धुओं को, त्रायेथाम् - पालन करो, रक्षा करो, रेवति - प्रवचन में, सुनने में, यजमाने - यजमान में, प्रियम् - प्रिय को, धा - धारण करो, आ विश - प्रवेश करो। उरोः - उरु, विस्तृत, अन्तरिक्षात् - अन्तरिक्ष से, सजूः - विवेक-प्रीति सहित, देवेन - देव द्वारा, देव के साथ, वातेन - वात द्वारा, वात के साथ, अस्य - इसका, हविषः - हविष् का, आत्मना - आत्मा से, यज - यजन करो, अस्य - इसका, तन्वा - विस्तार, सम् - सम्यक्, भव - हो, बनो। वर्षो - हे वर्ष, वर्षा करने वाले, यज्ञे - यजन में, वर्षीयसि - वर्षा करो, यज्ञ-पतिम् - यजनपति को, धाः - धारण करो, स्वाहा - व्याप्त हो, देवेभ्यो - देवों के लिए, देवेभ्यः - देवों के लिए, स्वाहा - व्याप्त हो॥ 11॥

भावार्थ :- परमात्मा के प्रकाश से दीप्त विद्वान् बन्धुओं का पालन, संरक्षण करें। विस्तृत अन्तरिक्ष के समान दिव्यता के साथ आत्मा से यजन करें। यजन एक भावना है, इसमें आत्मतत्व-भावतत्व प्रधान है, सामग्री नहीं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- घृतेन (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। अक्तौ (अक् - जाना, जानना, पाना)। पशून् (पश् = देखना, बांधना)। त्रायेथाम् (त्रै = पालन करना, रक्षा करना, पोषण करना)। रेवति (री-रै - सुनना, शब्द करना, रि = जाना, जानना, पाना, रेव् = उड़ना, तैरना, बहना)। यजमाने (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। प्रियम् (प्री - प्रेम करना, तृप्त करना)। धाः (धा - धारण करना)। आ विशः (विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना)। उरोः (उर् = जाना, चलना)। अन्तरिक्षात् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। सजूः (सञ्ज्-सज् = गले लगाना, सम्बन्धी होना, स + जूः, जुष् = विचार करना, सेवा करना, प्रसन्न करना, सन्तुष्ट करना, चाहना)। देवेन = तेजस्वी विद्वान् द्वारा (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। वातेन (वा = जाना, जानना, पाना, गन्ध लेना)। अस्य (सर्वनाम)। हविषः (हु - दान करना, आदान-प्रदान करना), आत्मना (आत् - होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन होना)। यज्ञ (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। सम् (उपसर्ग)। तन्वा (तन् = विस्तार करना)। भव (भू = होना)। वर्षो (वर्ष् = बरसना, हिंसा करना, वृष् = अति पराक्रम करना)। वर्षीयसि (वर्ष् = बरसना, हिंसा करना, वृष् = अति पराक्रम करना)। यज्ञे (यज् - देवपूजा, सङ्गतिकरण तथा दान करना)।

यज्ञपतिम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना, पा - पालन करना, रक्षा करना, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, उतरना, गिरना, शक्तिमान् होना, श्रीमान् होना, पराक्रम करना)। धाः (धा - धारण करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। देवेभ्यः (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥ 11॥

(62) सूक्त 4

220. मा अहिः भूः मा पृदाकुः, नमः त आतान अनर्वा प्र इहि।
घृतस्य कुल्या उप ऋतस्य पथ्या अनु॥12॥

संहितापाठ

माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्तऽआतानानर्वा प्रेहि।
घृतस्य कुल्याऽउपऽऋतस्य पथ्याऽअनु॥12॥

मन्त्रार्थ :- मा - मुझे, अहिः - व्यापक, भूः - हो, बनो, मा मुझे पृदाकुः - पूर्णता दायक, प्रीतिदायक, (भूः - हो), नमः - नमन, ते तुम्हारे लिए, आतान - महाविस्तृत, अनर्वा - अहिंसक, प्र - प्रकृष्ट, बहुत, अधिक, इहि - जायें, जानें, पायें। घृतस्य - घृत का, प्रकाश का, कुल्या - आवरण, गणना, बन्धुता, कुल-भावना (भूः - हो), उप - समीप, ऋतस्य - ऋत का, पथ्या - पथ्य, मार्ग, अनु - पीछे, (भूः - हो)॥ 12॥

भावार्थ :- परमात्मा से प्रार्थना है, हमारी भावना है, कामना है कि परमात्मा मुझे व्यापकता प्रदान करे, पूर्णता-प्रीति प्रदान करे तथा प्रदान करने वाला बनाये। इसके लिए हम नमन करते हैं। नमन कर ही हम कुछ प्राप्त कर सकते हैं। आतान का शाब्दिक अर्थ है, जहां तक विस्तार है। यह सृष्टि असीम विस्तार वाली है। परमात्मा तो उससे भी कहीं अधिक विराट-विस्तृत है। अनर्वा, अहिंसक होना तो आवश्यक है ही, तभी घृत, प्रकाश का कुल प्राप्त हो सकेगा, वह भी ऋत के समीप, उसके पीछे मार्ग पर चलकर। भूः अर्थात् हो, बने, हो जाये क्रिया एक बार ही आयी है। इसका प्रयोग सभी वाक्यांशों में है।

विशेष :- मा शब्द विचारणीय है। संस्कृत में मा (अव्यय) का अर्थ नकारात्मक (नहीं) है। वैदिक भाषा में माम् (सर्वनाम) का एक रूप मा भी बहुलता से प्रयोग होता है। मा-मान धातु भी व्यापक अर्थ वाली है। मापना, समाना, मान्य करना, मान करना, आदर करना आदि अर्थों में इस धातु का प्रयोग होता है। अतः मा शब्द का अर्थ करने में विशेष सावधानी अपेक्षित है। मन्त्र के सम्पूर्ण भाव तथा वेद की अर्थ-गरिमा को ध्यान में रखते हुए इसका अर्थ अवसर के अनुसार करना चाहिए।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- मा (अव्यय, सर्वनाम)। अहिः (अह् = फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, अर्पण करना, समर्पण करना)। भूः (भू = होना)। पृदाकुः (पृ - पूर्ण करना, पालन करना, प्रेम करना, तृप्त करना, व्यायाम होना, किसी कृत्य में आसक्त रहना)। नमः (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। ते (सर्वनाम)। आतान (तान् = उनको, उन सबको)। अनर्वा (अन् - नहीं, अर्व - हिंसा करना, अ - नहीं, नृ - ले जाना)। प्र (उपसर्ग)। इहि (इ = जाना, जानना, पाना)। घृतस्य (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। कुल्याः (कुल - आवरण होना, गणना करना, बन्धुता से रहना, कुल-भावना होना)। उप (उपसर्ग)। ऋतस्य (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। पथ्याः (पथ - स्थानान्तर करना, जाना, जानना, पाना, त्यागना)। अनु (उपसर्ग)॥12॥

221. देवीः आपः शुद्धा, वोढ्वम् सुपरिविष्टा। देवेषु सुपरिविष्टा वयम्, परिवेष्टारो भूयास्म॥13॥

संहितापाठ

देवीरापः शुद्धा वोहद्ध्वꣳ सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म॥13॥

मन्त्रार्थ :- देवीः - दिव्य, आपः = आप, व्यापक, शुद्धा - शुद्ध, सुपरिविष्टा - अच्छी तरह परिविष्ट, वोढ्वम् - वहन करें। वयम् - हम, देवेषु - देवों में, सुपरिविष्टा - अच्छी तरह परिविष्ट (हैं), परिवेष्टारो - परिविष्ट करने वाले, भूयास्म - हों॥ 13॥

भावार्थ :- परिविष्ट का अर्थ है सभी ओर से व्याप्त, व्यापक। दिव्यता अपने शुद्ध स्वरूप में सभी ओर अच्छी तरह परिव्याप्त है। हमें उसे वहन करना है, सदा उसे अपने जीवन में अपनाना है। हम देवों में सुपरिविष्ट हैं, कामना है कि हम इस भावना को संसार में परिव्याप्त करने वाले बनें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- देवीः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। आपः (आप् = व्याप्त होना, अवलम्ब होना)। शुद्धाः (शुच-शुध - शुद्ध होना, पवित्र होना)। वोढ्वम् (वह् - वहन करना)। सुपरिविष्टाः (सु = अच्छा, परि = सभी तरफ, विष - सींचना, प्रोक्षण करना, व्याप्त होना)। देवेषु (दिव्, देव् = चमकना, जानना)। वयम् (सर्वनाम)। परिवेष्टारः (परि = सभी तरफ, वेष्ट - लपेटना, घेरना, विष - सींचना, प्रोक्षण करना, व्याप्त होना)। भूयास्म (भू = होना) ॥ 13 ॥

222. वाचम् ते शुन्धामि, प्राणम् ते शुन्धामि, चक्षुः ते शुन्धामि, श्रोत्रम् ते शुन्धामि, नाभिम् ते शुन्धामि, मेढ्रम् ते शुन्धामि, पायुम् ते शुन्धामि, चरित्रान् ते शुन्धामि ॥ 14 ॥

संहितापाठ

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि ॥ 14 ॥

मन्त्रार्थ :- वाचम् - वाणी को, ते - तुम्हारी, शुन्धामि - शुद्ध करता हूँ, प्राणम् - प्राण को, ते - तुम्हारे, शुन्धामि - शुद्ध करता हूँ, चक्षुः - नेत्र, ते - तुम्हारे, शुन्धामि - शुद्ध करता हूँ, श्रोत्रम् - श्रवण को, ते - तुम्हारे, शुन्धामि - शुद्ध करता हूँ, नाभिम् - नाभि को, ते - तुम्हारे, शुन्धामि - शुद्ध करता हूँ, मेढ्रम् - सेचन को, सिंचक को, ते - तुम्हारे, शुन्धामि - शुद्ध करता हूँ, पायुम् - पालन, रक्षण को, ते - तुम्हारे, शुन्धामि - शुद्ध करता हूँ, चरित्रान् - चरित्रों को, ते - तुम्हारे, शुन्धामि - शुद्ध करता हूँ॥ 14 ॥

भावार्थ :- शरीर के सभी अंगों को शुद्ध करना है, सभी ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को शुद्ध करना है। जीवन में शुद्धता का अभ्यास करते रहेंगे तो अन्ततः चरित्र भी शुद्ध हो सकेगा।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- वाचम् (वच् - कहना, बोलना)। ते (सर्वनाम)। शुन्धामि (शुन्ध् - शुद्ध होना, शुद्ध करना)। प्राणम् (प्र - अधिक, अन् - जीवन होना)। चक्षुः (चक्ष् - कहना, देखना)। श्रोत्रम् (श्रु - सुनना)। नाभिम् (नभ् - केन्द्र होना, मध्य में स्थित होना)। मेढ्रम् (मिह्-मीढ् - सेचन करना)। पायुम् (पा = पालन करना, बचाना, रक्षा करना)। चरित्रान् (चर = आचरण करना, जाना, खाना)।॥14 ॥

223. मनः ते आ प्यायताम्, वाक् ते आ प्यायताम्, प्राणः ते आप्यायताम्, चक्षुः ते आप्यायताम्, श्रोत्रम् ते आप्यायताम्। यत् ते क्रूरम् यत् आस्थितम्, तत् ते आप्यायताम् निस्त्यायताम्, तत् ते शुध्यतु शम् अहोभ्यः। ओषधे त्रायस्व स्वधिते मा एनम् हिंसीः ॥ 15 ॥

संहितापाठ

मनस्तऽआप्यायतां वाक् तऽआप्यायतां प्राणस्तऽआप्यायतां चक्षुस्तऽआप्यायताꣳ श्रोत्रं तऽआप्यायताम्। यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्तऽआप्यायतां निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः। ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः ॥ 15 ॥

मन्त्रार्थ :- ते - तुम्हारा, मनः - मन, आप्यायताम् - बढ़े, ते - तुम्हारा, वाक् - वाणी, आप्यायताम् - बढ़े, ते - तुम्हारा, प्राणः - प्राण, आप्यायताम् - बढ़े, ते - तुम्हारा, चक्षुः - दृष्टि, नेत्र, आप्यायताम् - बढ़े, ते - तुम्हारा, श्रोत्रम् - श्रवण, कर्ण, आप्यायताम् - बढ़े। यत् - जो, ते - तुम्हारा, क्रूरम् - क्रूर, यत् - जो, आस्थितम् - विनत है, स्थिर या सीमित है, तत् - वह, ते - तुम्हारा, आप्यायताम् - बढ़े, निस्त्यायताम् - शब्द करे अर्थात् प्रभावी हो, चर्चित हो, फैले, तत् - वह, ते - तुम्हारा, शुध्यतु - शुद्ध हो, शम् -शान्त हो, अहोभ्यः - व्यापकता द्वारा। ओषधे - हे ओषधि, त्रायस्व - त्राण करो, स्वधिते - हे स्वधिति, मा - नहीं, एनम् - इसको, हिंसीः - हिंसा करो, मारो॥ 15 ॥

भावार्थ :- मन, प्राण, दृष्टि, श्रवण आदि की क्षमता बढ़े, हमारे कर्म महत्वपूर्ण हों, शुद्ध हों, जिससे वे चर्चित हों। प्रकृति हमारी रक्षा करे, हिंसा न करे। क्रूर शब्द विचारणीय है। प्राचीन धातुपाठों में कृ धातु ही मिलती है, जिससे इस शब्द

की व्युत्पत्ति मान सकते हैं। इसका अर्थ करना है। दीर्घ ऋकार वाले कृ धातु का अर्थ विकीर्ण करना होता है। इससे भी आधुनिक क्रूरता-कठोरता का अर्थ देने वाला भाव लेना कठिन ही प्रतीत होता है। अतः वेद में क्रूर का अर्थ कृत्य या कर्म ही प्रतीत होता है। इस प्रकार यत् ते क्रूरम् यत् आस्थितम् तत् ते आप्यायताम् निस्त्यायताम् का अर्थ तुम्हारे कर्म को, जो स्थिर है, वह तुम्हारा बढ़े, शब्द करे अर्थात् प्रभावी हो, चर्चित हो, फैले होगा। इसी मन्त्र में हिंसा न करने की बात कही गयी है, अतः क्रूरता-कठोरता अर्थात् एक प्रकार से हिंसा को स्थिरता देने की बात संगत नहीं है। क्रू, क्रूर् = निर्दय होना, निर्दयता करना धातु का उल्लेख प्राचीन धातुकोशों में नहीं मिलता है, यद्यपि आधुनिक प्रयोगों में क्रूर तथा क्रूरता शब्द का प्रयोग निर्दयता, कठोरता के अर्थ में बहुलता से होता है। यदि इसका अर्थ क्रूरता-कठोरता करना हो तो क्रूरता-कठोरता अर्थात् हिंसा को स्थिरता देने का भावार्थ उसे एक स्थान पर स्थिर कर देने अर्थात् रोक देने, सीमित कर देने के रूप में ले सकते हैं। स्था धातु का अर्थ स्थित होना, ठहरना के साथ ही मार्ग प्रतीक्षा करना, विनती करना, गिड़गिड़ाना, अपना अभिप्राय दूसरे को समझाना भी होता है। अतः यत् ते क्रूरम् यत् आस्थितम् का अर्थ तुम्हारे क्रूर को विनती करने, गिड़गिड़ाने दे अर्थात् उसे दयनीय स्थिति में रखे, प्रबल न होने दे के रूप में कर सकते हैं। यह भावना आप्यायताम् - बढ़े, निस्त्यायताम् - शब्द करे अर्थात् प्रभावी हो, चर्चित हो, फैले, यह कामना की गयी है।

विशेष :- स्त्यै धातु का अर्थ शब्द करना, एकत्र होना, घेरना, फैलना है। निस्त्यायताम् - शब्द करे अर्थात् प्रभावी हो, चर्चित हो, फैले किया गया है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : - मनः (मन् - मनन करना, विचार करना)। ते (सर्वनाम)। आप्यायताम् (प्याय् = बढ़ना)। वाक् (वच् - बोलना)। प्राणः (प्र-अधिक, अन् - जीवन होना, प्राण होना)। चक्षुः (चक्ष् - देखना)। श्रोत्रम् (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। यत् (सर्वनाम)। क्रूरम् (क्रू, क्रूर् = निर्दय होना, निर्दयता करना)। आस्थितम् (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, अस् = होना, स्था = ठहरना)। तत् (सर्वनाम)। नि (उपसर्ग)। स्त्यायताम् (त्यै - शब्द करना, एकत्र होना, घेरना, फैलना)। शुध्यतु (शुध - शुद्ध होना, पवित्र होना)। शम् (शम् - प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना)। अहोभ्यः (अह् = व्याप्त होना)। औषधे (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। त्रायस्व (त्रै = पालन करना, रक्षा करना, पोषण करना)। स्वधिते (स्व = अपना, धा = धारण, पोषण, रक्षण करना)। मा (अव्यय)। एनम् (सर्वनाम)। हिंसीः (हिंस् = हिंसा करना, मारना, सताना)॥ 15॥

(63) सूक्त 5

224. रक्षसाम् भागो असि निरस्तम् रक्ष, इदम् अहम् रक्षो अभि तिष्ठामि,
इदम् अहम् रक्षो अव बाध, इदम् अहम् रक्षो अधमम् तमो नयामि।
घृतेन द्यावापृथिवी प्र ऊर्णुवाथाम्, वायो वेः स्तोकानाम् अग्निः आज्यस्य वेतु स्वाहा,
स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसम् मारुतम् गच्छतम्॥16॥

संहितापाठ

रक्षसां भागोऽसि निरस्तꣳरक्षऽइदमहꣳरक्षोऽभितिष्ठामीदमहꣳ रक्षोऽवबाधऽइदमहꣳरक्षोऽधमं तमो नयामि। घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वे स्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृतेऽऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम्॥16॥

मन्त्रार्थ :- रक्षसाम् - रक्षकों के, भागो - भाग, असि - हो, निरस्तम् - निरस्त की, प्रक्षिप्त, फेके हुए की, रक्ष - रक्षा करो, इदम् - यह, अहम् - मैं, रक्षो - रक्षक को, अभि तिष्ठामि - अभितिष्ठित, प्रतिष्ठित, प्रतिस्थापित करता हूँ। इदम् - यह, अहम् - मैं, रक्षो रक्षक, अव-बाधे - अवबाधित-पीड़ित, दुःखी होता हूँ, इदम् - यह, अहम् - मैं, रक्षो - रक्षक, अधमम् अधम को तमो अन्धकार को, नयामि - ले जाता हूँ। द्यावापृथिवी - द्यावापृथिवी, घृतेन - घृत से, प्रकाश से, प्र-ऊर्णुवाथाम् - आच्छादित करो। वायो - हे वायु, वेः - बुनो, रचो, जानो। स्तोकानाम् - स्तोकों का, स्तुतियों का, अग्निः - अग्नि, आज्यस्य - आज्य का, वेतु - बुनो, रचो। स्वाहा - व्यापक हो, स्वाहाकृते - व्यापक के लिए, ऊर्ध्वनभसम् - ऊर्ध्व-नभ को, मारुतम् - मारुत को, गच्छतम् - जाओ, प्राप्त हो॥ 16॥

भावार्थ :- समाज के रक्षकों का भाग उन्हें प्राप्त होता रहे, यह आवश्यक है। रक्षक को बाधा पहुँचती है तो उसके

उत्तरदायी अधम को अन्धकार में धकेल देना चाहिए। द्यावा-पृथिवी अर्थात् भूमि से आकाश तक प्रकाश छा जाये, कहीं अन्धकार न रहे, ऐसी कामना है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- रक्षसाम् (रक्ष् = रक्षा करना, बचाना)। भागः (भज् = भजना, उपभोग करना, सेवा करना, देना, पकाना, अलग करना, भाज् = अलग करना, भाग करना)। असि (अस् - होना)। निरस्तम् (निः-अस्तम्, अस् - फेकना, प्रक्षेपित करना)। रक्षः (रक्ष् = रक्षा करना, बचाना)। इदम् (सर्वनाम)। अहम् (सर्वनाम)। रक्षः (रक्ष् = रक्षा करना, बचाना)। अभि तिष्ठामि (तिष्ठ् = ठहरना)। रक्षः (रक्ष् = रक्षा करना, बचाना)। अव-बाधे (बाध - रोकना, अटकाव करना, बाधा देना, दुःख देना)। अधमम् (अधः = नीचे)। तमः (तम - इच्छा करना, चाहना, अन्धकार होना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। नयामि (नी = ले जाना)। घृतेन (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। द्यावापृथिवी (द्युत् - प्रकाश होना, चमकना, द्यु = आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। प्र-ऊर्णुवाथाम् (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, ऊर्ण = बुनना, आच्छादन करना, ढकना, वात् = सुखी होना, सेवा करना, जाना, वा = गति करना, पवन की भाँति बहना, जाना, जानना, पाना, गन्ध होना)। वायो (वे = बुनना, वी = जाना, व्यापना, जानना, पाना)। वेः (वे = बुनना, वी = जाना, व्यापना, जानना, पाना)। स्तोकानाम् (स्तु - स्तुति करना)। अग्निः (अग् = ऊपर जाना, जानना, पाना, तेजस्वी होना)। आज्यस्य (अज- जाना, गति करना, स्थापना करना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना, जि - जीतना, ज्या - वृद्ध होना)। वेतु (वे = बुनना, वी-वे = जाना, जानना, व्यापना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। स्वाहाकृते (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना, कृ = करना)। ऊर्ध्व-नभसम् (ऊर्ध्वः = उच्च, नभ् - केन्द्र होना)। मारुतम् (मा = मान करना, मापना, मृ = मरना, रु - शब्द करना)। गच्छतम् (गम्-गच्छ् = जाना, जानना, पाना)॥ 16॥

225. इदम् आपः प्र वहत, अवद्यम् च मलम् च यत्।
यत् च अभिदुद्रोह अनृतम्, यत् च शेपे अभीरुणम्।
आपो मा तस्मात् एनसः, पवमानः च मुञ्चतु॥ 17॥

संहितापाठ

इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत्। यच्चाभिदुद्रोहनृतं यच्च शेपेऽअभीरुणम्। आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु॥ 17॥

मन्त्रार्थ :- इदम् - यह, आपः - आप, प्र-वहत - प्रवाहित हो, यत् - जो, अवद्यम् - अवद्य, अकथनीय, च - और, मलम् - मल, च - और। च - और, यत् - जो, जिसने, अनृतम् - अनृत को, ऋत-विरोधी को, अभिदुद्रोह - द्रोह किया, च - और, यत् - जो, जिसने, अभीरुणम् - अभीरुण को, शेपे - शाप दिया। च - और, आपो - हे आप, मा - मुझको, तस्मात् - उससे, एनसः -एनस से, पाप से, पवमानः - पवित्र करते हुए, मुञ्चतु - मुक्त करो॥ 17॥

भावार्थ :- आप का अर्थ है व्यापक। इसका भावार्थ व्यापक भावना तथा सर्वव्यापक परमात्मा लिया जाता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : - इदम् (सर्वनाम)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। प्र-वहत (वह् = ले जाना, वहन करना)। अवद्यम् (अ - नहीं, वद् - बोलना, कहना)। च (अव्यय)। मलम् (मल - पहनना, धारण करना, धरना, पकड़ना, चिपकाना, लटकाना)। यत् (सर्वनाम)। अभिदुद्रोह (द्रुह - द्वेष करना, मारने के लिए प्रयत्न करना)। अनृतम् (अ - नहीं, नृ - ले जाना, अन् - नहीं, ऋत - गति करना, सञ्चालित करना, व्यवस्था बनाना)। शेपे (शप - शपथ करना, सौगन्ध खाना, प्रतिज्ञा करना, शाप देना, गाली देना)। अभीरुणम् (अ - नहीं, भी - डरना, घबराना)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। मा (अव्यय, सर्वनाम)। तस्मात् (अपादान, अलग होना, सर्वनाम)। एनसः (एन - मिलाना, अलग करना, पाप करना, दूषित होना, दुष्टाचरण करना)। पवमानः (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। मुञ्चतु (मुञ्च् - मुक्त करना, त्याग करना, बोलना, कहना, पीसना, कूटना, ठगना, फंसाना, दुराचरणी होना, गर्व करना)॥ 17॥

226. सम् ते मनो, मनसा सम्, प्राणः प्राणेन गच्छताम्।

रेट् असि अग्निः त्वा श्रीणातु, आपः त्वा सम् अरिणन् वातस्य त्वा,
ध्राज्यै पूष्णो रंह्या ऊष्मणो, व्यथिषत् प्रयुतम् द्वेषः ॥18॥

संहितापाठ

सं ते मनो मनसा सं प्राणः प्राणेन गच्छताम् रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रꣳह्याऽऊष्मणो व्यथिषत्प्रयुतं द्वेषः ॥18॥

मन्त्रार्थ :- ते = तुम्हारा, सम् - सम्यक्, मनो - मन, मनसा - मन के साथ, सम् - सम्यक्, प्राणः - प्राण, प्राणेन - प्राण के साथ, गच्छताम् - जाये। रेट् - सम्भाषण, याचना, असि - हो, अग्निः - अग्नि, त्वा - तुमको, श्रीणातु - श्रीयुक्त करे। त्वा - तुमको, आपः - आपः ने, सम् - सम्यक्, अरिणन् - शब्द किया, वाणी दी, वातस्य - वात का, त्वा - तुमको, ध्राज्यै - गति के लिए, पूष्णो - पूषा, पोषण करने वाले का, रंह्या - शीघ्र गति, शीघ्र वाचन का, ऊष्मणो - ऊष्मा का, व्यथिषत् - भय हुआ, दुःख हुआ, प्रयुतम् - पृथक्, अलग, द्वेषः - द्वेष।18॥

भावार्थ :- कामना है कि तुम्हारा सम्यक् मन, मन के साथ, सम्यक् प्राण, प्राण के साथ जाये। इसका भाव यह है कि हमारे मन-प्राण परमात्मा के परम मानस तथा महाप्राण चेतना के साथ एकाकार हो जायें। हम सम्यक् भाषण करें, याचना करें, तो अग्नि स्वरूप परमात्मा हमको श्रीयुक्त करे, श्रेय-सौभाग्य प्रदान करे, यह स्वाभाविक है। आपः अर्थात् सर्व व्यापक परमात्मा ने हमको सम्यक् वाणी प्रदान की है, इसका भाव हमारी स्पष्ट बोलने की क्षमता है, साथ ही दिव्य वेद वाणी भी इसका आध्यात्मिक भाव है। हम दोनो का लाभ उठाना चाहिए, सदुपयोग करना चाहिए। वात का अर्थ गति, सुख, आनन्द, सेवा है। वात का भावार्थ दिव्य शक्ति, परमात्मा लिया जाता है। हमको वात की गति के लिए पूषा अर्थात् पोषण करने वाले परमात्मा का तथा उसके शीघ्र गति, शीघ्र वाचन तथा ऊष्मा का भय हुआ, जिससे द्वेष से पृथक् हुए। यदि परमात्मा का भय हो तो द्वेष जैसे दोषों-दुर्गुणों से मुक्त रह सकते हैं। परमात्मा का भय हो तो किसी अन्य का भय नहीं होता है॥18॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सम् (उपसर्ग)। ते (सर्वनाम)। मनः (मन् - मनन करना, विचार करना)। मनसा (मन् - मनन करना, विचार करना)। प्राणः (प्र-अधिक, अन् - जीवन होना, प्राण होना)। प्राणेन (प्र-अधिक, अन् - जीवन होना, प्राण होना)। गच्छताम् (गम्, गच्छ् = जाना)। रेट् (रेट - बोलना, सम्भाषण करना, याचना करना)। असि (अस् - होना)। अग्निः (अग् = ऊपर जाना, जानना, पाना, तेजस्वी होना)। त्वा (सर्वनाम)। श्रीणातु (श्री - श्रेय होना, पकाना, रांधना)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। अरिणन् (री - जाना, शब्द करना)। वातस्य (वात् = सुखी होना, सेवा करना, जाना)। ध्राज्यै (धृज-धृजि-धृञ्ज् - जाना, स्थानान्तर होना)। पूष्णः (पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। रंह्यै (रंह - वेग से चलना, चमकना, प्रकाशित होना, बोलना, सम्भाषण करना)। ऊष्मणः (ऊष - ऊष्मा होना, ताप देना, एकत्र होना)। व्यथिषत् (व्यथ - डरना, क्षुब्ध होना, सन्तप्त होना, दुःख भोगना)। प्रयुतम् (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, पृथक् पृथक् करना)। द्वेषः (द्विष् = द्वेष करना)॥18॥

227. घृतम् घृत-पावानः पिबत, वसाम् वसा-पावानः पिबत, अन्तरिक्षस्य हविः असि स्वाहा।
दिशः प्रदिश आदिशो विदिश, उत् दिशो दिग्भ्यः स्वाहा॥19॥

संहितापाठ

घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा।दिशः प्रदिशऽआदिशो विदिशऽउद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा॥19॥

मन्त्रार्थ :- घृतम् - घृत को, घृत-पावानः - घृत पीने वाले, पिबत - पीते हैं, वसाम् - वसा को, वसा-पावानः - वसा पीने वाले, पिबत - पीते हैं। अन्तरिक्षस्य - अन्तरिक्ष के, हविः - हवि, असि - हो, स्वाहा - व्याप्त हो, व्यापक बनो। दिशः - दिशा, प्रदिश - प्रदिशा, आदिशो - आदिशा, विदिश - विदिशा, उत्-दिशो - उत्-दिशा, दिग्भ्यः दिशाओं के लिए स्वाहा - व्याप्त हो, व्यापक बनो॥19॥

भावार्थ :- घृत का अर्थ प्रकाशित, प्रकाशमान है। जो प्रकाश का पान करने वाले हैं, वे उसका ही पान करेंगे, प्रकाशमय रहेंगे। जो वसा अर्थात् वसने में उपयोगी द्रव्य का सेवन करने के इच्छुक हैं, वे उसका पान कर सकते हैं। ज्योति

स्वरूप परमात्मा तथा चेतना, विद्या, उपासना आदि का प्रकाश जिनके लिए महत्वपूर्ण है, वे उसकी साधना करते हैं। यह भी सत्य है कि वास आदि आवश्यकताएं पूर्ण न हो सकें तो प्रकाश की साधना भी कठिन हो जाती है, अतः उसका भी महत्व है। हमारा दृष्टिकोण, हमारी भावना अन्तरिक्ष के समान व्यापक होनी चाहिए, दिशा-दिशान्तर में व्यापक होना चाहिए, तभी जीवन की सार्थकता है। वसा का अर्थ स्नेह भी होता है। स्नेह का जीवन में महत्व तो सर्वोपरि है, स्नेह-शून्य जीवन की तो कल्पना भी कठिन है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- घृतम् (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। घृत-पावानः (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना, पा-पिब् - पान करना, पीना)। पिबत (पा-पिब् = पान करना, पीना)। वसाम् (वस् = निवास करना, स्नेह करना)। वसा-पावानः (वस् = निवास करना, स्नेह करना, पा-पिब् = पान करना, पीना)। अन्तरिक्षस्य (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। हविः (हू = दान करना, लेना, तृप्त करना)। असि (अस् = होना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। दिशः (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना)। प्रदिशः (प्र = अधिक, दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना)। आदिशः (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना)। विदिशः (वि = विशेष, विना, विलोम, दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना)। उद्दिशः (उत् = ऊपर, उच्च, दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना)। दिग्भ्यः (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना) **॥ 19 ॥**

228. ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे नि-दीध्यत्, ऐन्द्र उदानो अङ्गे अङ्गे नि-धीतः।
देव त्वष्टः भूरि ते सम् सम् एतु, सलक्ष्म आ यत् विषु-रूपम् भवाति।
देवत्रा यन्तम् अवसे सखायो, अनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥ 20 ॥

संहितापाठ

ऐन्द्रः प्राणोऽअङ्गेऽअङ्गे निदीध्यदैन्द्रऽउदानोऽअङ्गेऽअङ्गे निधीतः।
देव त्वष्टर्भूरि ते सꣳसमेतु सलक्ष्मा यद्विपुरूषं भवाति।
देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥ 20 ॥

मन्त्रार्थ :- ऐन्द्रः - इन्द्र का, प्राणो - प्राण, अङ्गे-अङ्गे - अंग-अंग में, निदीध्यत् - धारण किया, ऐन्द्र - इन्द्र का, उदानो - उदान, अङ्गे-अङ्गे - अंग-अंग में, नि-धीतः - धारण किया। देव - देव, त्वष्टः - त्वष्ट, प्रकाशमान, काट-छांट करने वाला, भूरि - पुनः, ते - तुम्हारा, सम् - सम्यक्, सम् - सम्यक्, एतु - जाये, जानें, प्राप्त करे। सलक्ष्म - लक्ष्म के साथ, आ यत् - जो, विषु-रूपम् - विषुरूप, भवाति - होता है। देवत्रा - देवों के पालक, रक्षक, यन्तम् - नियमन को, अवसे - रक्षा करें। त्वा - तुम्हारे, अनु - पीछे, सखायो - मित्रगण, माता - माता, पितरो - पितर, मदन्तु - आनन्दित हों ॥ 20 ॥

भावार्थ :- इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा की प्राण शक्ति को अंग-अंग में धारण करें। परम चेतना को धारण करें, अनुभव करें तो देव शक्तियों का सानिध्य प्राप्त होगा, उनका संरक्षण मिलेगा। इससे हमारे पीछे हमारे मित्रगण, माता-पिता आदि सम्बन्धी भी आनन्दित होंगे।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- ऐन्द्रः (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। प्राणः (प्र-अधिक, अन् - जीवन होना, प्राण होना)। अङ्गे-अङ्गे (अङ्ग् = अंग होना, भाग होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। निदीध्यत् (दीधी - चमकना, प्रकाशित होना, खेलना, क्रीडा करना)। ऐन्द्रः (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। उदानः (उत्-आनः, अन् - जीवन होना, प्राण होना)। निधीतः (नि = निश्चित, धी = धारण करना)। देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। त्वष्टः (त्वक्ष् = छीलना, रेतना, त्विष् = प्रकाशित होना)। भूरि (अव्यय, भू = होना)। ते (सर्वनाम)। सम् (उपसर्ग)। एतु (आ + इ - जाना)। सलक्ष्म (लक्ष् - देखना, चिह्न लगाना, लक्ष्म् - चमकना, प्रकाश होना)। यत् (सर्वनाम)। विषु-रूपम् (विष्-विविष् - व्याप्त होना, व्यापक

होना, विष् - सींचना, प्रोक्षण करना)। भवाति (भू = होना)। देवत्रा (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, त्रै - रक्षा करना)। यन्तम् (यम् = रोकना, स्वाधीन रखना, पोषण करना)। अवसे (अव् = रक्षा करना)। त्वाम् (सर्वनाम)। सखायः (सख् = मित्र होना)। अनु (उपसर्ग)। त्वा (सर्वनाम)। माता (मा = मान करना, मापना)। पितरः (पा = पालन करना)। मदन्तु (मद - आनन्द होना, हर्ष होना, तृप्त करना, समाधान करना)॥ 20॥

229. समुद्रम् गच्छ स्वाहा, अन्तरिक्षम् गच्छ स्वाहा, देवम् सवितारम् गच्छ स्वाहा,
मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहा, अहोरात्रे गच्छ स्वाहा, छन्दांसि गच्छ स्वाहा,
द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा, यज्ञम् गच्छ स्वाहा, सोमम् गच्छ स्वाहा,
दिव्यम् नभो गच्छ स्वाहा, अग्निम् वैश्वानरम् गच्छ स्वाहा।
मनो मे हार्दि यच्छ दिवम्, ते धूमो गच्छतु स्वः ज्योतिः, पृथिवीम् भस्मना आ पृण स्वाहा॥21॥

संहितापाठ

समुद्रं गच्छ स्वाहान्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवꣳसवितारं गच्छ स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहाहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दाꣳसि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहाग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मनापृण स्वाहा॥21॥

मन्त्रार्थ :- समुद्रम् - समुद्र को, गच्छ - जाओ, स्वाहा - व्याप्त हो, अन्तरिक्षम् - अन्तरिक्ष को, गच्छ - जाओ, स्वाहा - व्याप्त हो, देवम् - देव, सवितारम् - सविता को, गच्छ - जाओ, स्वाहा - व्याप्त हो, मित्रावरुणौ - मित्र-वरुण को, गच्छ - जाओ, स्वाहा - व्याप्त हो, अहोरात्रे - दिन-रात, गच्छ - जाओ, स्वाहा - व्याप्त हो, छन्दांसि - छन्दों को, आच्छादन को, गच्छ - जाओ, स्वाहा - व्याप्त हो, द्यावापृथिवी - द्यावापृथिवी को, गच्छ - जाओ, स्वाहा - व्याप्त हो, यज्ञम् - यजन को, गच्छ - जाओ, स्वाहा - व्याप्त हो, सोमम् - सोम को, गच्छ - जाओ, स्वाहा - व्याप्त हो, दिव्यम् - दिव्य, नभो - नभ को, गच्छ - जाओ, स्वाहा - व्याप्त हो, अग्निम् - अग्निम्, वैश्वानरम् - वैश्वानर को, गच्छ - जाओ, स्वाहा - व्याप्त हो। मनो - मन, मे - मेरा, हार्दि - हृदय, यच्छ - प्रदान करो, दिवम् -दिव को, दिव्यता को, ते - तुम्हारा, धूमो - धूम, गच्छतु - जाओ, स्वः - सृजन, सृष्टि, ज्योतिः - ज्योति, प्रकाश, पृथिवीम् - पृथिवी को, भस्मना - प्रकाश से, आ पृण - पूर्ण करो, भर दो, आनन्द करो, सन्तुष्ट रहो, स्वाहा - व्याप्त हो॥ 21॥

भावार्थ :- समुद्र से आकाश तक सर्वत्र जाओ, सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त हो जाओ। संकीर्णता से तथा निष्क्रियता से निकलकर, ऊपर उठकर, प्रगति करो, विकास करो, विस्तृत हो, व्यापक बनो, यही भावना है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- समुद्रम् (सम् - सम्यक्, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना)। गच्छ (गम्, गच्छ् = जाना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। देवम् (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। सवितारम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। मित्रावरुणौ (मित्र + वरुण, मिद- प्रीति करना, मृदुल होना, वृ = वरण करना, अपनाना, आच्छादन करना)। अहोरात्रे (अह - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, रा - दान करना)। छन्दांसि (छन्द् - ढकना, आच्छादन करना, लपेटना)। द्यावापृथिवी (द्यु = आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। यज्ञम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। सोमम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। दिव्यम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रकाशित होना)। नभः (नभ् = हिंसा करना, नष्ट होना, दुःख देना या मार डालना, मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, ग्रहण करना)। वैश्वानरम् (विश्व - सब, नृ - चलना, ले जाना, विनय होना)। मनः (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। मे (सर्वनाम)। हार्दि (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। यच्छ (यच्छ - देना)। दिवम् (दिव् = तेज होना, चमकना, जानना)। ते (सर्वनाम)। धूमः (धू = कम्पित करना, काँपना)। गच्छतु (गम्, गच्छ् = जाना)। स्वः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। पृथिवीम् (पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)।

भस्मना (भस - चमकना, खाना, दोष लगाना, निन्दा करना)। आ पृण (पृ - पूर्ण करना, भरना, पृण - आनन्द करना, सन्तोष पाना)।। 21।।

(64) सूक्त 6

230. मा अपो मा ओषधीः हिंसीः, धाम्नोः धाम्नो राजन् ततो वरुण नो मुञ्च।
यत् आहुः अघ्न्या इति वरुण, इति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च।
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु, दुर्मित्रियाः तस्मै सन्तु, यो अस्मान् द्वेष्टि यम् च वयम् द्विष्मः ।।22।।

संहितापाठ

मापो मौषधीर्हिꣳ सीर्धाम्नोधाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च।यदाहुरघ्न्याऽइति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च।सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ।।22।।

मन्त्रार्थ :- मा - नहीं, अपो - अपः को, मा - नहीं, ओषधीः - ओषधियों को, हिंसीः - हिंसा करो, नष्ट करो, धाम्नोः - धाम का, धाम्नो - धाम का, राजन् - प्रकाशमान, ततो - उससे, वरुण - हे वरुण, नो - हमको, मुञ्च - मुक्त करो। यत् - जो, आहुः - कहा, अघ्न्या - अहिंसनीय, इति - ऐसा, वरुण - हे वरुण, वरणीय, इति - ऐसा, शपामहे - शाप देता हूँ, ततो - उससे, वरुण - हे वरुण, नो हमको, मुञ्च - कहो, मुक्त करो। सुमित्रिया - अच्छे मित्र, नः - हमारे, आपः - आपः, ओषधयः - ओषधियाँ, सन्तु - हों, दुर्मित्रियाः - दुर्मित्र, तस्मै - उनके लिए, सन्तु - हों, यो - जो, अस्मान् - हमको, द्वेष्टि - द्वेष करता है, च - और, यम् - जिसे, वयम् - हम, द्विष्मः - द्वेष करते हैं।

भावार्थ :- प्रकृति की हिंसा न करें, उसे नष्ट न करें। प्रकृति जीवनदायी है, अतः अघ्न्या है, अहिंसनीय है। हम स्वार्थवश कभी-कभी यह भूल कर देते हैं, अहिंसनीय को शापित-निन्दित करने लगते हैं, अतः प्रार्थना करते हैं कि हे वरुण, वरणीय परमात्मन्, हमें इस पाप-भावना से मुक्त करो। जीवन-दायिनी, आरोग्यकारी प्रकृति हमारे लिए अच्छे मित्रा बनकर रहें। जो द्वेष-भाव रखते हैं, उनके लिए वे दुर्मित्र हो सकते हैं। ध्यान देने योग्य है कि प्रकृति स्वभावतः मित्र है, वह कभी किसी की शत्र तो हो ही नहीं सकती है। इतना ही हो सकता है कि किसी के लिए सुमित्र हो, अच्छा मित्र हो तथा किसी के लिए दुर्मित्र हो, अर्थात् बहुत सहायक न हों, परन्तु रहेंगे मित्र ही, शत्रु नहीं होंगे। इसमें कहा गया है कि जो हमसे द्वेष करता है तथा जिससे हम द्वेष करते हैं, यह सन्देश भी ध्यान देने योग्य है। व्यावहारिक जीवन में ऐसा सम्भव नहीं है कि कोई हमसे द्वेष न करे। इसी प्रकार यह भी सम्भव नहीं है कि हमको किसी से कभी द्वेष हो ही नहीं। परन्तु महत्वपूर्ण यह जो हमसे द्वेष करता है, उसके लिए यो अर्थात् जो शब्द एकवचन में आया है तथा वह हमसे अर्थात् हम सबसे अर्थात् हम बहुत लोगों से द्वेष करता है। इसी प्रकार कहा गया है कि हम सब जिसे अर्थात् किसी एक से द्वेष करते हैं। स्वाभाविक है कि हम वैदिक संस्कृति केअनुयायी उपासक हैं, हम सामान्यतः किसी से द्वेष नहीं करते हैं। जो एक व्यक्ति हम सभी से द्वेष करता है, स्वाभाविक रूप से उसके विचार दूषित होंगे। इसी प्रकार यदि हम सब लोग किसी एक व्यक्ति से द्वेष करते हैं, तो स्वाभाविक रूप से माना जाना चाहिए कि उसके विचारों में ही द्वेष-भाव होगा। हम सभी लोग किसी एक से अकारण तो द्वेष नहीं करेंगे।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- मा (अव्यय)। अपः (अप् - पालन करना)। ओषधीः (उषध्- ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा करना)। हिंसीः (हिंस् = हिंसा करना, मारना, सताना)। धाम्नोः (धा = धारण करना)। धाम्नः (धा = धारण करना)। राजन् (राज् = चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना)। ततः (सर्वनाम)। वरुण (वृ - वरण करना, वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना)। नः (सर्वनाम)। मुञ्च (मुच् - मुक्त करना, छोड़ना, मुञ्च् - बोलना, कहना, गर्व करना)। यत् (सर्वनाम)। आहुः (ह्वे = शब्द करना)। अघ्न्याः (हन् = गति करना, हिंसा करना, मार डालना, ज्ञान होना, प्राप्ति होना)। इति (अव्यय)। वरुण (वृ - वरण करना, वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना)। शपामहे (शप - शपथ करना, सौगन्ध खाना, प्रतिज्ञा करना, शाप देना, गाली देना)। ततः (सर्वनाम)। वरुण (वृ - वरण करना, वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना)। नः (सर्वनाम)। मुञ्च (मुच् - मुक्त करना, छोड़ना, मुञ्च् - बोलना, कहना, गर्व करना)। सुमित्रियाः (सु - अच्छा, मिद -स्नेह करना, प्रीति करना)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। ओषधयः (उषध्- ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा करना)। सन्तु (अस् - होना)। दुर्मित्रियाः (दुः -

बुरा, दु - दुःख भोगना, जलना, तप्त करना, जलाना, मिद -स्नेह करना, प्रीति करना)। तस्मै (सर्वनाम)। यः (सर्वनाम)। अस्मान् (सर्वनाम)। द्वेष्टि (द्विष् = द्वेष करना)। यम् (सर्वनाम)। च (अव्यय)। वयम् (सर्वनाम)। द्विष्मः (द्विष् = द्वेष करना)।। 22 ।।

231. हविष्मतीः इमा आपो, हविष्मान् आ विवासति। हविष्मान् देवो अध्वरो, हविष्मान् अस्तु सूर्यः ।।23 ।।

संहितापाठ

हविष्मतीरिमाऽआपो हविष्माँ2 ।ऽआविवासति। हविष्मान्देवोऽअध्वरो हविष्माँ2 ।ऽअस्तु सूर्यः ।।23 ।।

मन्त्रार्थ :- हविष्मतीः - दानी, इमा - यह, आपो - आपः, हविष्मान् - दानी, आ विवासति - वास करता है। हविष्मान् - दानी, देवो - देव, अध्वरो - अहिंसक, हविष्मान् - दानी, सूर्यः - सूर्य अस्तु - हो।। 23 ।।

भावार्थ :- परमात्मा, प्रकृति, देव-शक्तियाँ हविष्मान् हैं। हमारे समाज में भी लोग हविष्मान् तथा हविष्मती हों। हविष्मान् तथा हविष्मती शब्दों का अर्थ दान तथा आदान-प्रदान करने वाला है। हविष्मान् शब्द पुल्लिंग है तथा हविष्मती शब्द स्त्रीलिंग है। समाज में सभी नर-नारी दान तथा आदान-प्रदान करने वाले हों, स्वार्थी न हों।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- हविष्मतीः (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। इमाः (सर्वनाम)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। हविष्मान् (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। आविवासति (आ - समन्तात्, वि = विशेष, विना, विलोम, वस् - रहना, निवास करना, वास - वासित करना, सुगन्धित करना, धूपित करना, धूप देना)। हविष्मान् (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। देवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अध्वरः (ध्वर् = हिंसा करना)। हविष्मान् (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। अस्तु (अस् - होना)। सूर्यः (सुर् = ऐश्वर्य, प्रकाश होना)।। 23 ।।

232. अग्नेः वो अपन्नगृहस्य सदसि सादयामि,
इन्द्राग्न्योः भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोः भागधेयी स्थ, विश्वेषाम् देवानाम् भागधेयी स्थ।
अमूः या उप सूर्ये, याभिः वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्तु अध्वरम् ।।24 ।।

संहितापाठ

अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ।अमूर्याऽउप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ।।24 ।।

मन्त्रार्थ :- वो - तुमको, अग्नेः - अग्नि के, अपन्नगृहस्य - अपतित गृह के, सदसि - सदस् में, सदन में, गृह में, सादयामि - स्थापित करता हूँ। इन्द्राग्न्योः - इन्द्र तथा अग्नि का, भागधेयी - भाग धारण करने वाले, स्थ - हो, मित्रावरुणयोः - मित्र-वरुण का, भागधेयी - भाग धारण करने वाले, स्थ - हो, विश्वेषाम् - सभी, देवानाम् - देवों के, भागधेयी - भाग धारण करने वाले, स्थ - हो। अमूः - यह, या - जो, सूर्ये - सूर्य के, उप - समीप, याभिः - जिसके, सह - साथ, सूर्यः - सूर्य, वा - चले। ता - वे, नो - हमारे, अध्वरम् - अहिंसक को हिन्वन्तु - तृप्त करें, शान्ति प्रदान करें।।24 ।।

भावार्थ :- उपासना-स्थल, वेद-ग्रन्थ स्थापना अथवा पूज्य विद्वान् अतिथि को इस भावना से प्रतिष्ठित करना चाहिए। आवास में एक उपासना स्थल हो, वहाँ वेद-स्थापना हो तो उत्तम है। वास्तव में इसे अनिवार्य माना जाना चाहिए। ऐसे आवास को ही वास्तव में अग्नि का अपन्नगृह अर्थात् अपतित गृह कहा जा सकता है।

विशेष :- अमूः सर्वनाम शब्द का अर्थ यह होता है। अम् (अमति, अमिति, अमीति) धातु का अर्थ शब्द करना, बोलना, सेवा करना, खाना, जाना, जानना, पाना है। अम् (अमयति, आमयति) धातु का अर्थ भूख लगना, रोग होना, पीड़ा होना भी होता है। आवश्यकता के अनुसार उचित अर्थ ग्रहण कर सकते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अग्नेः (अग् = गति करना, अग्रणी होना)। वः (सर्वनाम)। अपन्नगृहस्य (अ-पन्न, अ - नहीं, पत् - गिरना, गृह - लेना, स्वीकार करना)। सदसि (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। सादयामि (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। इन्द्राग्न्योः (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना)। भागधेयी (भज् = भजना, उपभोग करना, सेवा करना, देना, पकाना, अलग करना, भाज् = अलग

करना, भाग करना)। स्थ (स्था-तिष्ठ् - ठहरना, स्थित होना)। मित्रावरुणयोः (मित्र + वरुण, मिद् = प्रीत होना, वृ = वरण करना, अपनाना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। विश्वेषाम् (विश् = भीतर जाना, सभी ओर फैलना)। देवानाम् (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। अमूः (सर्वनाम)। या (सर्वनाम)। उप (उपसर्ग)। सूर्ये (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। याभिः (सर्वनाम)। वा (वा - गति करना, बहना)। सूर्यः (सुर् = ऐश्वर्य, प्रकाश होना)। सह (सर्वनाम)। ताः (सर्वनाम)। नः (सर्वनाम)। हिन्वन्तु (हिन्व - तृप्त करना, शान्त करना)। अध्वरम् (ध्वृ = वर्णन करना, हिंसा करना)।।24।।

233. हृदे त्वा मनसे त्वा, दिवे त्वा सूर्य्याय त्वा। ऊर्ध्वम् इमम् अध्वरम्, दिवि देवेषु होत्रा यच्छ।।25।।

संहितापाठ

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा। ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ।।25।।

मन्त्रार्थ :- हृदे - हृदय के लिए, त्वा - तुमको, मनसे - मन के लिए, त्वा - तुमको, दिवे - दिव के लिए, त्वा - तुमको, सूर्य्याय - सूर्य के लिए, त्वा - तुमको, इमम् - इस, अध्वरम् - अहिंसक को, ऊर्ध्वम् - ऊर्ध्व, ऊपर, दिवि - दिव में, देवेषु - देवों में, होत्रा - दानी, यच्छ - दे, दान करे।। 25।।

भावार्थ :- होत्रा अर्थात् दान करने वाले तथा आदान-प्रदान करने वाले लोग वास्तव में समाज के पूज्य अग्रणी लोग हैं। वे अहिंसक को ऊपर उठाते हैं, देवों में अर्थात् तेजस्वी विद्वानों में प्रतिष्ठित करते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- हृदे (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। त्वा (सर्वनाम)। मनसे (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। दिवे (दिव्, देव् = चमकना, जानना)। सूर्य्याय (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। ऊर्ध्वम् (सर्वनाम)। इमम् (सर्वनाम)। अध्वरम् (ध्वृ = वर्णन करना, हिंसा करना)। दिवि (दिव् = तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। देवेषु (दिव्, देव् = चमकना, जानना)। होत्रा (हु = दान करना, आदान करना, लेना)। यच्छ (यच्छ = देना)।। 25।।

(65) सूक्त 7

234. सोम राजन् विश्वाः त्वम् प्रजा उपावरोह, विश्वाः त्वाम् प्रजा उपावरोहन्तु।
शृणोतु अग्निः समिधा हवम् मे, शृण्वन्तु आपो धिषणाः च देवीः।
श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञम् शृणोतु, देवः सविता हवम् मे स्वाहा।।26।।

संहितापाठ

सोम राजन्विश्वास्त्वं प्रजाऽउपावरोह विश्वास्त्वां प्रजाऽउपावरोहन्तु। शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः। श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञꣳशृणोतु देवः सविता हवं मे स्वाहा।।26।।

मन्त्रार्थ :- सोम - हे सोम, ऐश्वर्यवान्, सृष्टिकर्ता, राजन् - हे राजन्, त्वम् - तुम, विश्वाः - सब, प्रजा - प्रजा, प्रकृष्ट उत्पन्न, सन्तान, उपावरोह - निकट हों, नीचे आयें, उतरें, प्राप्त हों, विश्वाः - सभी, प्रजा - प्रजा, प्रकृष्ट उत्पन्न, सन्तान, त्वाम् - तुमको, उपावरोहन्तु - निकट हों, नीचे आयें, उतरें, प्राप्त हों। समिधा - समिधा, समानता तथा परिणाम को धारण करने वाला, अग्निः - अग्नि, शृणोतु - सुने। हवम् - दान को, आह्वान को, मे - मेरा, आपो - आपः, धिषणाः - वाणी, च - और, देवीः - देवी, शृण्वन्तु - सुनें। ग्रावाणो - स्तुतियाँ, स्तुतिकर्ता, श्रोता - सुनने वाला, विदुषो न - विद्वान् की भाँति, यज्ञम् - यज्ञ को, शृणोतु - सुनें, जानें। देवः - देव, सविता - उत्पन्नकर्ता, हवम् - दान को, आह्वान को, मे - मेरा, स्वाहा - व्याप्त हो।। 26।।

भावार्थ :- सोम शब्द सामान्यतः सु धातु से निष्पन्न माना जाता है। सु धातु का अर्थ उत्पन्न, होना, उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना होता है। इस प्रकार सोम शब्द का अर्थ ऐश्वर्यवान्, सृष्टिकर्ता होता है। सो धातु का अर्थ विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना है। परमात्मा सृष्टिकर्ता होने के साथ ही हमारे दुःखों-कष्टों का विनाशक भी है। परमात्मा के सोम नाम में ये भाव समाहित हैं। सभी प्रजाजन परमात्मा के निकट हों, उपासनीय हों, प्राप्त हों। उपावरोह शब्द महत्वपूर्ण है। इसका भाव है निकट हों, नीचे आयें, उतरें, प्राप्त हों। गति अर्थ वाली सभी धातुओं में ज्ञान, गमन, प्राप्ति अर्थ होते हैं,

अतः प्राप्त होना भी इसका अर्थ है। निकट जाने तथा प्राप्त होने के अर्थ में अन्य धातु भी हो सकती थी। उप का अर्थ निकट स्पष्ट है। अव उपसर्ग के साथ रुह् धातु का अर्थ उतरना, नीचे आना होता है। परमात्मा के निकट जाने के लिए हमें उतरना होगा, सांसारिक पद-वैभव के कारण स्वयम् को ऊँचा मानने की भावना से नीचे आना होगा। इस भाव को स्पष्ट करने के लिए ही उपावरोह तथा उपावरोहन्तु पदों का प्रयोग किया गया है। परमात्मा समिधा है, उपासक को भी समिधा अर्थात् समानता तथा परिणाम को धारण करने वाला होना चाहिए। जो स्तुति करने वाले हैं, वे विद्वान् की भाँति सुनते हैं क्योंकि वे विद्वान् हो ही जाते हैं। सबको उत्पन्न करने वाला परमात्मा हमारी इस भावना को, दानशीलता को, हमारी पुकार को सुने तथा उसे व्यापकता प्रदान करे, यही भावना है।

विशेष :- सम् धातु का अर्थ समान होना, परिणाम होना, रूपान्तर होना आदि हैं। समिम् धारयति, दधाति इति समिधा। अर्थात् समिधा शब्द का अर्थ समानता तथा परिणाम को धारण करने वाला है। हु धातु का अर्थ दान करना तथा आदान-प्रदान करना होता है, अतः हवम् का अर्थ दान होगा। विद्वानों ने हवम् शब्द में ह्वे - बुलाना, आह्वान करना, धातु मानकर इसका अर्थ आह्वान भी किया है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सोम (सु - उत्पन्न, होना, उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। राजन् (राज् = चमकना, प्रकाशित-शोभित होना)। विश्वाः (विश्व - सब, सभी, विश् = भीतर जाना, सभी तरह फैलना)। त्वम् (सर्वनाम)। प्रजा (प्र + जा, प्र - प्रकृष्ट, अधिक, जन् = उत्पन्न होना)। उपावरोह (उप = समीप, अव-रुह् = नीचे आना, उतरना)। विश्वाः (विश्व - सब, सभी, विश् = भीतर जाना, सभी तरह फैलना)। त्वाम् (सर्वनाम)। प्रजा (प्र + जा, प्र - प्रकृष्ट, अधिक, जन् = उत्पन्न होना)। उपावरोहन्तु (उप = समीप, अव-रुह् = नीचे आना, उतरना)। अग्निः (अग् = ऊपर जाना, जानना, पाना, तेजस्वी होना)। समिधा (सम् - समान होना, परिणाम होना, रूपान्तर होना, सम् + इत् + आ, सम् + इधा, इन्धी - इन्ध्, प्रकाशित होना)। हवम् (हु = देना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना, बुलाना)। मे (सर्वनाम)। शृणोतु (श्रु-शृण् = सुनना)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। धिषणाः (धिष् = शब्द करना, बोलना)। च (अव्यय)। देवीः (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। शृण्वन्तु (श्रु-शृण् = सुनना)। श्रोता (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। ग्रावाणो (गृ = सींचना, समझना, जानना, निगलना, शब्द करना, बोलना, समझाना, बताना)। विदुषो न (विद - जानना, न - समान, की भाँति)। यज्ञम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। देवः (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। सविता (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। हवम् (हु = देना, आदान-प्रदान करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)।।

235. देवीः आपो अपाम् नपात् यो व ऊर्मिः, हविष्य इन्द्रियावान् मदिन्तमः।
तम् देवेभ्यो देवत्रा दत्त, शुक्रपेभ्यो येषाम् भाग स्थ स्वाहा।।27।।

संहितापाठ

देवीरापोऽअपान्नपाद्यो वऽऊर्मिर्हविष्यऽइन्द्रियावान् मदिन्तमः।तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा।।27।।

मन्त्रार्थ :- वो - तुम्हारा, देवीः - दिव्य, आपो - आपः, व्यापकता, अपाम् - पालनकर्ता, ऊर्मिः - ऊर्मि, गति, ज्ञान, प्राप्ति, शब्द, विश्वास, हविष्य - हवियोग्य, दानयोग्य, देय, इन्द्रियावान् - ऐश्वर्यवान्, मदिन्तमः - अत्यधिक आनन्द देने वाला, यो - जो, न-पात् - अपतित (न - नहीं, पात् - पतित हुआ), तम् - उसको, देवेभ्यो देवों के लिए, देवत्रा - देवों का त्राण करने वाले ने, शुक्रपेभ्यो - शुक्र-पालकों के लिए, शुक्र-पान करने वालों के लिए, दत्त - दिया, येषाम् - जिनका, भाग - भाग, सेवा, स्थ - स्थित, स्वाहा - व्याप्त हो।। 27 ।।

भावार्थ :- दिव्य गुण श्रेष्ठ लोगों को प्राप्त होते हैं। उनका भी दायित्व है कि दिव्य गुणों, दिव्य शक्तियों को अपने तक सीमित न रखें, व्यापक बनायें, सभी को उनका लाभ मिले।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- देवीः (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। अपाम् (न - नहीं, पात् - पतित हुआ)। यः

(सर्वनाम)। वः (सर्वनाम)। ऊर्मिः (उर्-ओर् = जाना, चलना, जानना, पाना, ऊ = शब्द करना, विश्वास करना)। हविष्य (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। इन्द्रियावान् (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। मदिन्तमः (मन्द् - स्तुति करना, तुष्ट करना, आनन्द करना, उन्मत्त होना, सोना, चाहना, चमकना, प्रकाशित होना)। तम् (सर्वनाम)। देवेभ्यः (दिव्, देव् = तेजस्वी होना, विद्वान होना)। देवत्रा (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना,त्रै - त्राण करना, रक्षा करना)। दत्त (दा, दद्, दत् = देना)। शुक्रपेभ्यो (शुच्, शुक् = पावन होना, शुद्ध होना, शुद्ध करना)। येषाम् (सर्वनाम)। भागः (भज् = भजना, उपभोग करना, सेवा करना, देना, पकाना, अलग करना, भाज् = अलग करना, भाग करना)। स्थ (स्था-तिष्ठ - ठहना, स्थित होना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)।। 27 ।।

236. कार्षिः असि समुद्रस्य, त्वा अक्षित्या उत् नयामि।
सम् आपो अद्भिः अग्मत, सम् ओषधीभिः ओषधीः ।।28 ।।

संहितापाठ

कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्याऽउन्नयामि।
समापोऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ।।28 ।।

मन्त्रार्थ :- समुद्रस्य - समुद्र के, कार्षिः - आकर्षित करने वाले असि - हो, त्वा - तुमको, अक्षित्या - अक्षिति अर्थात् व्याप्त होने के लिए, अथवा अ-क्षिति, अक्षय के लिए, उत् - ऊपर, नयामि - ले जाता हूँ। सम् - सम्यक्, आपो - व्यापक, अद्भिः - सतत गति से, खाने से, सम् - सम्यक्, ओषधीभिः - ओषधियों से, ओषधीः - ओषधियाँ, अग्मत - गये, प्राप्त किया।। 28 ।।

भावार्थ :- परमात्मा सर्वशक्तिमान है, उसके उपासकों में भी समुद्र को आकर्षित करने या खींचने की क्षमता है। उपासक परमात्मा को व्यापकता तथा अक्षय होने के लिए स्वयम् में धारण करता है। परमात्मा भी उपासक को इन भावनाओं तथा गुणों के होने पर ऊपर ले जाता है। सम्यक् व्यापकता अर्थात् व्यापक-विस्तृत प्रयासों से ओषधियों द्वारा ही ओषधियाँ प्राप्त होती हैं। हमें जो कुछ पाना है, उसके अनुरूप गुण, साधन, भावना भी होनी चाहिए।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- कार्षिः (कृष् - खींचना, आकर्षित करना)। असि (अस् = होना)। समुद्रस्य (सम् - सम्यक्, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना)। त्वा (सर्वनाम)। अक्षित्या (अक्ष - खेलना, देखना, व्याप्त होना, क्षि - क्षय होना)। उत् (अव्यय)। नयामि (नी = ले जाना)। सम् (उपसर्ग)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। अद्भिः (अत् - सतत गति करना, अद् = खाना, आत्मसात् करना)। अग्मत (गम् - जाना, अग् = गति करना, अग्रणी होना)। ओषधीभिः (उषध्- ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा करना, उष् = हिंसा करना, दाह होना, दाह करना, धि = धारण करना, पास रख लेना)। ओषधीः (उषध्- ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा करना, उष् = हिंसा करना, दाह होना, दाह करना, धि = धारण करना, पास रख लेना)।28 ।।

237. यम् अग्ने पृत्सु मर्त्यम्, अवा वाजेषु यम् जुनाः। स यन्ता शश्वतीः इषः स्वाहा ।।29 ।।

संहितापाठ

यम् अग्ने पृत्सु मर्त्यम् अवा वाजेषु यम् जुनाः।
स यन्ता शश्वतीः इषः स्वाहा ।।29 ।।

मन्त्रार्थ :- अग्ने - हे अग्नि, **यम्** - जिस, **मर्त्यम्** - मरणशील को, **पृत्सु** - व्यापक बलों में, बलपूर्वक ले जाने में, **अवा** - रक्षा करते हो, **यम्** - जिसको, **वाजेषु** - बल, गति, ज्ञान, सिद्धियों में, **जुनाः** - जाते हो, जानते हो, प्राप्त होते हो। **स** - वह, **यन्ता** - नियमन करने वाला, **शश्वतीः** - शश्वत, अविनाशी, **इषः** - इच्छा, गति, निरन्तर दर्शन करने वाला, **स्वाहा** - व्याप्त हो।। 29 ।।

भावार्थ :- मनुष्य मरणशील है, उसे भय स्वाभाविक है। अग्नि अर्थात् परमात्मा का संरक्षण हमें प्राप्त है। हम उस अविनाशी की कामना करते हैं। यही भावना सर्वत्र व्याप्त हो।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- यम् (सर्वनाम)। **अग्ने** (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना, पहुंचना, पाना)। **पृत्सु** (पृत - व्याप्त होना, बल होना, बलपूर्वक निकालना)। **मर्त्यम्** (मृ = मरना)। **अवा** (अव् = रक्षा करना)। **वाजेषु** (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना, सिद्ध करना)। **जुनाः** (जुन - जाना, जानना, पाना, हिलना, कांपना)। **सः** (सर्वनाम)। **यन्ता** (यम् = रोकना, स्वाधीन रखना, पोषण करना)। **शश्वतीः** (शश - फुदकते हुए चलना, कूदते हुए जाना)। **इषः** (इष् = इच्छा करना, गति करना, निरन्तर देखना, जाना, जानना, पाना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥ 29॥

238. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्याम्, पूष्णो हस्ताभ्याम्।
आददे रावा असि, गभीरम् इमम् अध्वरम्, कृधि इन्द्राय सुषूतमम्।
उत्तमेन पविना, ऊर्जस्वन्तम् मधुमन्तम्, पयस्वन्तम् निग्राभ्या स्थ, देवश्रुतः तर्पयत मा॥30॥

संहितापाठ

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे रावासि गभीरमिममध्वरम् कृधीन्द्राय सुषूतमम्। उत्तमेन पविनोर्जस्वन्तं मधुमन्तं पयस्वन्तं निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा॥30॥

मन्त्रार्थ :- देवस्य देव को **सवितुः** उत्पन्न करने वाला (परमात्मा) **त्वा** तुम्हें **अश्विनोः** व्यापक (फैले हुए) **बाहुभ्याम्** बाहुओं से, **पूष्णो** पोषण करने वाले **हस्ताभ्याम्** हाथों से **प्रसवे** उत्पन्न करे। आददे - आदान के लिए, रावा - दानी, असि - हो, इमम् - इस, गभीरम् - गहन, गम्भीर, सुषूतमम् - भलीभाँति उत्पन्न करने वाले, अध्वरम् - अहिंसक को, इन्द्राय - परम ऐश्वर्यवान् के लिए, कृधि - करो। उत्तमेन - उत्तम, पविना - पवित्र कर्ता द्वारा, ऊर्जस्वन्तम् - ऊर्जावान्, मधुमन्तम् - मधुयुक्त, पयस्वन्तम् - पयःयुक्त, निग्राभ्या - नितराम् ग्राह्य, ग्रहणयोग्य, स्थ - हो। देवश्रुतः - देवश्रुत, देवों को सुनने वाले, देव जिनको सुनते हैं, मा - मुझको, तर्पयत - तृप्त करें॥ 30॥

भावार्थ :- परमात्मा व्यापकता की भावना से दिव्यता को उत्पन्न करता है। परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिए महान्, अहिंसक, रचनात्मक कर्म करो। उत्तम पवित्रकर्ता परमात्मा ने हमें ऊर्जावान्, मधुमान् बनाया है, हमें समाज में निरन्तर ग्राह्य बने रहना है। देवश्रुत का अर्थ है, देवों को सुनने वाले तथा देव जिनको सुनते हैं, वे लोग। ऐसे महान् सज्जन ही हमको तृप्त कर सकते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। **प्रसवे** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **अश्विनोः** (अशु = व्यापक होना)। **बाहुभ्याम्** (बह, बाहु - भुजायाम्, चलना, बहना)। **पूष्णो** (पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। हस्ताभ्याम् (हस्त - लेना, आदान करना, दान करना, ग्रहण करना)। **आ ददे** (दद - देना, त्याग करना, आ-दद - लेना, ग्रहण करना)। रावा (रा - देना, मिल जाना)। असि (अस् - होना)। गभीरम् (गह् - गहन होना, घना होना, डराना, हिंसा करना, जाना, जानना, पाना)। इमम् (सर्वनाम)। अध्वरम् (ध्वृ = वर्णन करना, हिंसा करना)। कृधि (कृ = करना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। सुषूतमम् (सु = अच्छा, सू = जन्म देना)। उत्तमेन (उत् = ऊपर, उच्च, तम् - इच्छा करना)। पविना (पू - पुनीते - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। ऊर्जस्वन्तम् (ऊर्ज् = बल होना, प्राण होना)। मधुमन्तम् (मध - मधुर होना, मीठा होना)। पयस्वन्तम् (पयस् = फैलाना, विस्तार करना)। निग्राभ्या (निः = नितराम्, विना, बाहर, निश्चित, गृभ् = भीतर धारण करना, गर्भ होना)। स्थ (अस् - होना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना)। देवश्रुतः (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना, श्रु - सुनना)। तर्पयत (तृप् = तृप्त होना, तृप्त करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, प्रकाशित करना)। मा (अव्यय, सर्वनाम)॥

(66) सूक्त 8

239. मनो मे तर्पयत वाचम् मे तर्पयत, प्राणम् मे तर्पयत चक्षुः मे तर्पयत,
श्रोत्रम् मे तर्पयत आत्मानम् मे तर्पयत, प्रजाम् मे तर्पयत पशून् मे तर्पयत,
गणान् मे तर्पयत गणा मे मा वि तृषन्॥31॥

संहितापाठ

मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत चक्षुर्मे मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयतात्मानं मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून्मे तर्पयत गणान्मे तर्पयत गुणा मे मा वितृषन् ॥ 31 ॥

मन्त्रार्थ :- मे - मेरा, मनो - मन, तर्पयत - तृप्त करो, मे - मेरा, वाचम् - वाणी, तर्पयत, मे - मेरा, प्राणम् - प्राण को, तर्पयत, मे - मेरा, चक्षुः - दृष्टि को, तर्पयत, मे - मेरा, श्रोत्रम् - श्रवण को, तर्पयत, मे - मेरा, आत्मानम् - आत्मा को, तर्पयत, मे - मेरा, प्रजाम् - प्रजा को, तर्पयत, मे - मेरा, पशून् पशुओं को, तर्पयत, मे - मेरा, गणान् - गणों को, तर्पयत, मे - मेरा, गणा - मेरा समूह, मा - नहीं, वि - विशेष, तृषन् - तृषित करे ॥ 31 ॥

भावार्थ :- मन, वाणी, प्राण, नेत्र, कर्ण, आत्मा को तृप्त करने की कामना है। परमात्मा से तो हम यह प्रार्थना करते ही हैं, इससे पूर्व के मन्त्र में कहा गया है कि हमें देवश्रुत लोग तृप्त करें। उन देवश्रुत लोगों से भी इस प्रकार तृप्त करने की कामना की गयी है। इसमें महत्वपूर्ण है कि मेरा मन, मेरी वाणी, मेरे कर्ण, में नेत्र की भाँति ही मेरा आत्मा भी कहा गया है। इसमें मेरे आत्मा को तृप्त करने की प्रार्थना भी की गयी है। विचारणीय है कि आत्मा क्या है, तथा वह कौन है जो आत्मा को मेरा कह रहा है। अर्थात् यह बात कहने वाला आत्मा नहीं है, आत्मा से पृथक् कोई अन्य है। वेद में आत्मा-परमात्मा का भेद नहीं है। वेद में परमात्मा को आत्मा ही कहा गया है। हमें आचरण से परमात्मा को ही तृप्त, प्रसन्न करना है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- मनो (मन् - मनन करना, विचार करना)। मे (सर्वनाम)। तर्पयत (तृप् = तृप्त होना, तृप्त करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, प्रकाशित करना)। वाचम् (वच - बोलना, कहना, समझाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। प्राणम् (अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। चक्षुः (चक्ष- साफ बोलना, कहना, देखना)। श्रोत्रम् (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। आत्मानम् (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। प्रजाम् (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। पशुः (पश् - देखना, पश - बांधना, बेड़ी डालना, गांठ बांधना, फांस लगाना, जाना)। गणान् (गण् - गिनना, शब्द करना, नापना, मानना, समझाना, समूह बनाना)। गणाः (गण् - गिनना, शब्द करना, नापना, मानना, समझाना, समूह बनाना)। मा (अव्यय, सर्वनाम)। वि (उपसर्ग)। तृषन् (तृष - प्यास लगना, इच्छा करना, उत्कण्ठित होना, चाहना) ॥ 31 ॥

240. इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवत, इन्द्राय त्वा आदित्यवत, इन्द्राय त्वा अभिमातिघ्ने।
श्येनाय त्वा सोमभृते, अग्नये त्वा रायस्पोषदे ॥ 32 ॥

संहितापाठ

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवतऽइन्द्राय त्वादित्यवतऽइन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने। श्येनाय त्वा सोमभृतेऽअग्नये त्वा रायस्पोषदे ॥ 32 ॥

मन्त्रार्थ :- त्वा - तुमको, वसुमते - वसुमान् के लिए, रुद्रवते - रुद्रवान् के लिए, इन्द्राय - इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् के लिए, त्वा - तुमको, आदित्यवते - आदित्यवान् के लिए, इन्द्राय - इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् के लिए, त्वा - तुमको, अभिमातिघ्ने - अभिमान के हनन के लिए इन्द्राय - इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् के लिए, त्वा - तुमको, श्येनाय - अतिशय गतिशीलता के लिए, सोमभृते - सोम का भरण करने वाले के लिए, त्वा - तुमको, रायस्पोषदे - वाणी को पोषण देने वाले के लिए। अग्नये - अग्नि के लिए ॥ 32 ॥

भावार्थ :- इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा को हम विभिन्न गुणों के लिए स्तुति करते हैं, उपासना करते हैं, स्वीकार करते हैं। परमात्मा तथा समाज की ओर भी कहा जा सकता है कि हमसे भी इन्हीं गुणों की अपेक्षा की जाती है, तभी हम भी स्वीकार्य हो सकते हैं।

विशेष :- इस मन्त्र में कोई क्रियापद नहीं आया है। मन्त्र से स्पष्ट होता है कि जिन गुणों का उल्लेख किया गया है, उनके लिए परमात्मा की स्तुति करते हैं, उपासना करते हैं, स्वीकार करते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- इन्द्राय (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। वसुमते (वस् = निवास करना, दया करना, प्रीति करना, आच्छादन करना, कतरना, लेना)। रुद्रवते (रुद् = रुदन करना, रुलाना)। इन्द्राय (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। आदित्यवते (अदिति = अ + दी, दी = क्षय होना, नष्ट होना, अद् = खाना)। अभिमातिघ्ने (अभि =

सभी ओर, मा = मान करना, मापना)। श्येनाय (श्यै - जाना)। सोमभृते (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना, भृ - भरण-पोषण करना)। अग्नये (अग् = ऊपर जाना, ऊर्ध्व गमन करना, आगे जाना)। रायस्पोषदे (रय् = जाना, जानना, पाना, पुष् = पोषण करना)॥ 32॥

241. यत् ते सोम दिवि ज्योतिः, यत् पृथिव्याम् यत् उरौ अन्तरिक्षे।
तेन अस्मै यजमानाय, उरु राये कृधि अधि दात्रे वोचः॥33॥

संहितापाठ

यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे।तेनास्मै यजमानायोरु राये कृध्यधि दात्रे वोचः॥33॥

मन्त्रार्थ :- सोम - हे सोम, यत् - जो, ते - तुम्हारा, दिवि - दिव्यता में, ज्योतिः - प्रकाश, (है), यत् - जो, पृथिव्याम् - पृथिवी पर, यत् - जो, उरौ - विस्तृत, अन्तरिक्षे - अन्तरिक्ष में (है)। तेन - उससे, अस्मै - इस (के लिए), यजमानाय - यजमान के लिए, उरु - बहुत, विस्तृत, राये - शब्द, वाणी, कृधि - करो, अधि - अधिक, दात्रे - दाता के लिए, वोचः - बोलो॥ 33॥

भावार्थ :- सोम का अर्थ है उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान्। सोम परमात्मा को कहा गया है। उसका ही प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यत् (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। सोम (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। दिवि (दिव् = तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। पृथिव्याम् (पृथु = फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना, व्यापक होना, विस्तृत होना, मोटा होना)। उरौ (उर् = विस्तार करना, जाना, चलना)। अन्तरिक्षे (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। तेन (सर्वनाम)। अस्मै (सर्वनाम)। यजमानाय (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। उरु (उर् = विस्तार करना, जाना, चलना)। राये (रै = शब्द करना, रय् = गति करना, जाना)। कृधि (कृ = करना)। अधि (उपसर्ग)। दात्रे (दा = देना)। वोचः (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना) **॥ 33 ॥**

242. श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो, राधोगूर्ता अमृतस्य पत्नीः।
ता देवीः देवत्रा इमम् यज्ञम् नयत, उपहूताः सोमस्य पिबत॥34॥

संहितापाठ

श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्त्ताऽअमृतस्य पत्नीः।ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं नयतोपहूताः सोमस्य पिबत॥34॥

मन्त्रार्थ :- श्वात्राः = गति, वृद्धि करने वाले, विद्या, वृद्धि, शुभ्रता, **द्रुतगामी,** वृत्रतुरो = शीघ्र शुभकर्म करने वाले, सेवा, वरण में शीघ्रता करने वाले, राधोगूर्ता - सिद्धि को उद्यम करने वाले, अमृतस्य - अमृत का, पत्नीः - ऐश्वर्यकारी, स्थ - हो। ता - वह, देवत्रा - देवों की रक्षक, देवीः - देवी, इमम् - इस, यज्ञम् - यजन को, नयत - ले चले अर्थात् चलाये, उपहूताः - समीप बुलाये गये, सोमस्य - सोम का, पिबत - पान करें॥ 34॥

भावार्थ :- वैदिक संस्कृति यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान की भावना से ओतप्रोत है। सुयोग्य, गुणवान्, सक्षम लोग यजन को संचालित करते हैं, आगे बढ़ाते हैं। वे सोम अर्थात् ऐश्वर्य, उत्पन्न करने की क्षमता, रचनाशीलता, अभिसवन अर्थात् प्रकृति से सारभूत उपयोगी रस को निचोड़ने-निकालने की योग्यता से सम्पन्न होते हैं, इस प्रकार के महत्वपूर्ण कार्यों, दायित्वों का निर्वाह करने की क्षमता रखते हैं, उसके उचित अधिकारी पात्र होते हैं। इसी को सोमपान करना तथा सोमपान का अधिकारी होना कहा जाता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- श्वात्राः (शव-श्वा - जाना, भागना, दौड़ना, श्वि = जानना, जाना, बढ़ना, श्वित - श्वेत होना, शुभ्र होना, शो - तीक्ष्ण करना, पैना करना, शान धरना, छील के पैना करना)। स्थ (स्था- स्थित होना, ठहरना) वृत्रतुरो (वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना, तुर् = शीघ्र जाना, त्वरा करना)। राधोगूर्ताः (रध - शुद्ध होना, निदोष होना, राध - बढ़ना, निर्णय करना, सिद्ध होना, गुर् प्रयास करना, उद्यम करना)। अमृतस्य (अ - नहीं, मृ = मरना)। पत्नीः (पत् = ऐश्वर्य होना,

जाना, जानना, पाना, नीचे गति करना)। ताः (सर्वनाम)। देवीः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। देवत्रा (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, त्रै - रक्षा करना, त्राण करना)। इमम् (सर्वनाम)। यज्ञम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। नयत (नी = ले जाना)। उपहूताः (उप - समीप, हूता, हु = दान-आदान करना, दान करना, ह्वे = बुलाना)। सोमस्य (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। पिबत (पा-पिब् =पीना, पान करना)।। 34 ।।

243. मा भेः मा सम् विक्था ऊर्जम्, धत्स्व धिषणे वीड्वी सती,
वीडयेथाम् ऊर्जम् दधाथाम्। पाप्मा हतो न सोमः ।। 35 ।।

संहितापाठ

मा भेर्मा संविक्थाऽऊर्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम्। पाप्मा हतो न सोमः ।। 35 ।।

मन्त्रार्थ :- मा - नहीं, भेः - भय करो, मा - नहीं, सम् विक्था - टूटो, ऊर्जम् - ऊर्जा को, धत्स्व - धारण करो। धिषणे - हे शब्दकर्ता, वीड्वी - विद्वान्, प्रकाशमान, सती - होकर, वीडयेथाम् - विद्वान्, प्रकाशमान बनाओ, ऊर्जम् - ऊर्जा को, दधाथाम् - धारण करो। पाप्मा - पापी, हतो - मारे गये, सोमः - सोम, न - नहीं।। 35 ।।

भावार्थ :- इस मन्त्र में अतीव सुन्दर उत्साहवर्धक प्रेरणा है। भय मत करो, टूटो नहीं, ऊर्जावान् बनो। तुम शब्दकर्ता हो, वाणी के धनी हो, विद्वान्, प्रकाशमान होकर अन्य लोगों को भी विद्वान्, प्रकाशमान बनाओ, ऊर्जा को धारण करो। यह ईश्वर का आश्वासन है कि पापी ही मारे गये हैं, सोम नहीं मारे जाते हैं, उनकी रक्षा तो परमात्मा करते हैं। सोम का अर्थ उत्पन्न करने वाले, सृजनशील, रचनात्मक कार्य करने वाले तथा आध्यात्मिक ऐश्वर्यवान् होता है। ऐसे लोग मारे नहीं जाते हैं, वे तो मरकर भी अमर हो जाते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : - मा (अव्यय)। भेः (भी - भय होना, डरना)। सम् (उपसर्ग)। विक्थाः (विच्, विज् = अलग होना, टूटना, डरना)। धत्स्व (धा = धारण, पोषण, रक्षण, दान करना)। धिषणे (धिष् = शब्द करना, बोलना)। वीड्वी (वी = जाना, जानना, पाना, व्याप्त होना, कान्ति होना)। सती (अस् = होना)। वीडयेथाम् (वी = जाना, व्याप्त होना, कान्ति होना)। ऊर्जम् (ऊर्ज् = बल होना, प्राण होना, प्राणवान् करना)। दधाथाम् (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। पाप्मा (पाप् - पाप करना, दुष्ट आचरण करना)। हतो (हन् - मारना)। न (अव्यय)। सोमः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)।। 35 ।।

244. प्राक् अपाक् उदक् अधराक्, सर्वतः त्वा दिश आ धावन्तु। अम्ब निः पर समरीः विदाम् ।। 36 ।।

संहितापाठ

प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिशऽआधावन्तु। अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ।। 36 ।।

मन्त्रार्थ :- प्राक् - पूर्व दिशा, अपाक् - पश्चिम, उदक् - उत्तर, अधराक् - दक्षिण, सर्वतः - सभी ओर से, दिशः - दिशायें, त्वा - तुमको, तुम्हें, तुम्हारे लिए, आ-धावन्तु - दौड़कर आयें। अम्ब - हे अम्ब, शब्दकर्ता, गतिशील, विद्वान्, समरीः - समानता का प्रसार करने वाले, विदाम् - विद्वान् को निः-पर - नितराम्, निरन्तर, निश्चित रूप से पूर्ण करो।। 36 ।।

भावार्थ :- इस मन्त्र में उत्साहवर्धक प्रेरणा है। इससे पूर्व के मन्त्र की प्रेरणा से इतनी ऊर्जा प्राप्त करो कि दिशाएं तुम्हारे लिए सभी ओर से भागकर आयें। तुमको किसी दिशा में न भागना पड़े। सम् धातु का अर्थ समान होना, समान विभाग करना है। प्रसार के अर्थ में र प्रत्यय होता है। समरीः शब्द का अर्थ समानता का प्रसार-विस्तार करने वाले है। ऐसे विद्वानों का भरण-पोषण करना चाहिए, ऐसा सन्देश है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- प्राक् (अव्यय)। अपाक् (अव्यय)। उदक् (अव्यय), अधराक् (अव्यय)। सर्वतः (अव्यय)। त्वा (सर्वनाम)। दिशः (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना)। आ धावन्तु (धाव् = दौड़ना, धोना)। अम्ब (अम् = शब्द करना, बोलना, सेवा करना, खाना, जाना, जानना, पाना)। निः (अव्यय)। पर (अव्यय)। समरीः (सम - समान होना, री - जाना, पुकारना, पीड़ा करना, दुःख देना)। विदाम् (विद - समझना, जानना)।। 36 ।।

245. त्वम् अङ्ग प्र शंसिषो, देवः शविष्ठ मर्त्यम्।

न त्वत् अन्यो मघवन् अस्ति, मर्डिता इन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥37॥

संहितापाठ

त्वमङ्ग प्रशꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्। न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥37॥

मन्त्रार्थ :- त्वम् - तुम, **मर्त्यम्** - मरणशील को, **अङ्ग** - अंग, अंकुर, गतिशील, समीप जाने वाला, ज्ञानी, **प्र-शंसिषो** - प्रशंसनीय, प्रशंसक, **देवः** - देव, **शविष्ठ** - अतिशय प्रत्युपकार करने वाले, समीप आने वाले, (हो)। **त्वत्** - तुमसे, **अन्यो** - अन्य, **मघवन्** - धनवान्, **मर्डिता** - सुखी, सुख देने वाला, **न** - नहीं, **अस्ति** - है। **इन्द्र** - हे इन्द्र, परम ऐश्वर्यवान्, **ते** - तुम्हारे लिए, **वचः** - वचन, वाणी, **ब्रवीमि** - बोलता हूँ॥ 37॥

भावार्थ :- हम मरणशील हैं। हमारे लिए इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई भी निकट आने वाला नहीं है। केवल परमात्मा ही हमें सुख प्रदान कर सकता है। अतः हम उसके लिए ही वाणी बोलते हैं, उससे ही प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- त्वम् (सर्वनाम)। **अङ्ग** (अंग् = चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। **प्र** (उपसर्ग)। **प्र-शंसिषो** (शंस - प्रशंसा करना)। **देवः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **शविष्ठ** (शव - जाना, समीप जाना या आना, बदले में देना)। **मर्त्यम्** (मृ = मरना)। **न** (अव्यय)। **त्वत्** (सर्वनाम)। **अन्यः** (सर्वनाम)। **मघवन्** (मघ् = धन होना)। **अस्ति** (अस् - होना)। **मर्डिता** (मृड - सुख देना)। **इन्द्र** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **ब्रवीमि** (ब्रू - कहना, बोलना)। **ते** (सर्वनाम)। **वचः** (वच - बोलना, कहना, समझाना, पढ़ना, अध्ययन करना)॥ 37॥

इति षष्ठो अध्यायः

ॐ

अथ सप्तमो अध्यायः

(67) सूक्त 1

246. वाचः पतये पवस्व वृष्णो, अंशुभ्याम् गभस्तिपूतः।
देवो देवेभ्यः पवस्व, येषाम् भागो असि ॥1॥

संहितापाठ

वाचस्पतये पवस्व वृष्णोऽअꣳशुभ्यां गभस्तिपूतः।
देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोऽसि ॥1॥

मन्त्रार्थ :- गभस्तिपूतः - गभस्तिपूत, गभस्ति अर्थात् किरणों से पवित्र, वृष्णो - पराक्रमी या बलवान्, वाचः - वाणी के, पतये - पति के लिए अंशुभ्याम् - अंशुओं द्वारा, पवस्व - पवित्र करो। देवो - हे देव, देवेभ्यः देवों के लिए, पवस्व - पवित्र करो, येषाम् - जिसका, प्रयत्न का, सेवा का, भागो - भाग, असि - हो॥1॥

भावार्थ :- परमात्मा की चेतन शक्ति की किरणों से पवित्र देवजन वाणी के पति अर्थात् पालक-रक्षक के लिए अपनी साधना के अंश से सुपात्रों को पवित्र करते हैं। देवगण देवों के ही भाग हैं। इसका अर्थ है कि समाज के देवजन परमात्मा की दिव्यशक्तियों के ही भाग हैं। वे देवों के लिए देवजनों को पवित्र करते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- वाचः (वद्-वच् = बोलना)। पतये (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। पवस्व (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। वृष्णो (वृष् = उच्च पराक्रम् करना, वर्षा होना, सींचना)। अंशुभ्यां (अंश् - विभाग करना, बाँटना, साथ होना)। गभस्तिपूतः (गभ् = विकरण होना, किरण निकलना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। देवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। देवेभ्यः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। पवस्व (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। येषाम् (येष - प्रयत्न करना, आग्रह करना, चिपक के रहना)। भागः (भज् = भजना, उपभोग करना, सेवा करना, देना, पकाना, अलग करना, भाज् = अलग करना, भाग करना)। असि (अस् - होना)॥1॥

247. मधुमतीः नः इषः कृधि, यत् ते सोम अदाभ्यम् नाम जागृवि,
तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा, स्वाहा उरु अन्तरिक्षम् अनु एमि ॥2॥

संहितापाठ

मधुमतीर्नऽइषस्कृधि यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाह स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥2॥

मन्त्रार्थ :- सोम - हे सोम, ऐश्वर्यवान्, सृष्टिकर्ता, नः - हमको, मधुमतीः - मधुयुक्त, इषः - गतिमय, इच्छायुक्त, कृधि - करो, यत् - जो, ते - तुम्हारा, अदाभ्यम् - अहिंसनीय, अनिन्दनीय, नाम - नामक, नाम वाला, जागृवि - जाग्रत, जागरूक, (है), सोम - हे सोम, ऐश्वर्यवान्, सृष्टिकर्ता, तस्मै - उस, ते - तुम्हारे, सोमाय - सोम के लिए, स्वाहा - अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, आत्म विस्तार, (है)। स्वाहा - अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, आत्म विस्तार द्वारा, उरु - बहुत, विस्तृत, अन्तरिक्षम् - अन्तरिक्ष को, अनु - पीछे, एमि - जाता हूँ, आता हूँ, प्राप्त करता हूँ॥2॥

भावार्थ :- सोम अर्थात् ऐश्वर्यवान्, सृष्टिकर्ता परमात्मा हमें मधुरता प्रदान करते हैं, हमारी इच्छायें पूर्ण करते हैं। हम परमात्मा के लिए आत्म-विस्तार करते हैं, परमात्मा की सर्वव्यापकता का अनुभव करते हुए अपना दृष्टिकोण व्यापक बनाते हैं। स्वयम् को इतना व्यापक-विस्तृत करना है कि अन्तरिक्ष की व्यापकता-विस्तार को प्राप्त कर लें, अन्तरिक्ष के समान, उतने ही व्यापक हो जायें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- मधुमतीः (मध् = मधुर होना, मीठा होना, मध्य होना, मद- आनन्द होना, हर्षित होना, तृप्त होना)। नः (सर्वनाम)। इषः (इष् = जाना, बार-बार करना, इच्छा करना)। कृधि (कृ = करना)। यत् (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)।

सोम (सु = उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, आसवन करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। अदाभ्यम् (अद - नष्ट करना, दभ = निन्दा करना, आज्ञा देना)। नाम (अव्यय)। जागृवि (जागृ - जगना, नींद न लेना)। तस्मै (सर्वनाम)। सोम (सु = उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, आसवन करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। सोमाय (सु = उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, आसवन करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, स्व - अपना, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। उरु (उर् = जाना, चलना)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। अनु (उपसर्ग)।। एमि (इ = जाना, जानना पाना, आ-इ - आना)।। 2।।

248. स्वाङ्कृतो असि विश्वेभ्यः इन्द्रियेभ्यो, दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनः त्वा अष्टु स्वाहा, त्वा सुभव सूर्य्याय देवेभ्यः, त्वा मरीचिपेभ्यो देव अंशो, यस्मै त्वा ईडे तत् सत्यम् उपरिप्रुता, भङ्गेन हतो असौ, फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा।।3।।

संहितापाठ

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्यऽइन्दरियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवाꣳशो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरिप्रुता भङ्गेन हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा।।3।।

मन्त्रार्थ :- स्वाङ्कृतो - स्वयम्-कृत, स्वयम् किया हुआ, स्वयम्भू, असि - हो, विश्वेभ्यः - सभी, इन्द्रियेभ्यो - इन्द्रियों के लिए, दिव्येभ्यः - दिव्यों के लिए, पार्थिवेभ्यो - पार्थिवों के लिए, मनः - मन, त्वा - तुमको, अष्टु - व्याप्त हो, स्वाहा - अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, आत्म विस्तार द्वारा, त्वा - तुमको, सुभव - अच्छे बनो, सूर्य्याय - सूर्य के लिए, देवेभ्यः देवों के लिए, त्वा - तुमको, मरीचिपेभ्यो - शब्दकर्ता के पालक-रक्षक, मरणशीलों के पालक-रक्षक, देव - देव, दिव्य, अंशो - अंश, यस्मै - जिसके लिए, त्वा - तुमको, तुम्हारी, ईडे - स्तुति करते हैं, तत् - वह, सत्यम् - सत्य, उपरिप्रुता - उपरिगामी, उच्चता से अधिक, भङ्गेन - भंग करने से, हतो - हत, मारा गया, असौ - यह, फट् - विशरण, तोड़ने-काटने वाला, गतिशील, शब्दकर्ता, प्राणाय - प्राण के लिए, त्वा - तुमको, व्यानाय - व्यान के लिए, त्वा - तुमको।। 3।।

भावार्थ :- परमात्मा स्वयंकृत, स्वयम्भू है। सभी इन्द्रियों, दिव्यता, पार्थिव अर्थात् पृथ्वी के आचार-व्यवहार के लिए मन परमात्मा में व्याप्त हो, उसमें ही रमा रहे, यह कामना की गयी है। सर्वोच्च सत्य तो परमात्मा ही है, इसके लिए हम परमात्मा की स्तुति करते हैं। सम्पूर्ण सृष्टि ही मरणशील है। सबका पालन-रक्षण परमात्मा ही करता है। विशेष रूप से जो शब्दकर्ता हैं, वेदवाणी के वाचक, प्रवचनकर्ता हैं, उनको परमात्मा का संरक्षण विशेष रूप से प्राप्त होता है। उसकी व्यवस्था को भंग करने से मारे जाते हैं। अतः हम प्राण तथा व्यान की रक्षा के लिए परमात्मा को ही पुकारते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : - स्वाङ्कृतः (स्व - अपना, सु - अच्छा, कृ- करना)। असि (अस् = होना)। विश्वेभ्यः (सर्वनाम)। इन्द्रियेभ्यो (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। दिव्येभ्यः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रकाशित होना)। पार्थिवेभ्यो (पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। मनः (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। त्वा (सर्वनाम)। अष्टु (अश - खाना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। सुभव (सु - अच्छा, भू - होना, सुभ - बोलना, दुःख देना, मारना, सुन्दर होना)। सूर्य्याय (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। देवेभ्यः (दिव्, देव् = तेजस्वी होना, विद्वान होना)। मरीचिपेभ्यो (मृ = मरना, देहत्याग करना, मर्च - शब्द करना)। देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। अंशो (अंश् - विभाग करना, बाँटना, साथ होना)। यस्मै (सर्वनाम)। ईडे (ईड् = स्तुति करना)। तत् (सर्वनाम)। सत्यम् (सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना)। उपरिप्रुता (उपरि = ऊपर, प्रु - अधिक होना, जाना)। भङ्गेन (भञ्ज् - नष्ट करना। हतः (हन् - मारना)। असौ (सर्वनाम)। फट् (फण = गति करना, चलना, जाना, तेजोहीन करना, जल आदि डाल कर सान्द्रता अल्प करना, उष्ण जल में कुटी हुई वस्तु डालकर रस

निकालना, फाण्ट बनाना, शब्द करना, आश्रय लेना, फल - उत्पन्न करना, सफल करना, जाना, तोड़ना, चीरना, विभाग करना)। प्राणाय (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, अन् - प्राण होना, जीवन होना)। व्यानाय (वि - विशेष, अन् - प्राण होना, जीवन होना)॥ 3॥

(68) सूक्त 2

249. उपयाम-गृहीतो असि, अन्तः यच्छ मघवन् पाहि सोमम्। उरुष्य रायः आ इषो यजस्व॥4॥

संहितापाठ

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्यच्छ मघवन् पाहि सोमम्। उरुष्य राऽएषो यजस्व॥4॥

मन्त्रार्थ :- मघवन् - हे मघवन्, ऐश्वर्यवान्, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, अन्तः - भीतर, सोमम् - सोम को, यच्छ - दो, पाहि - रक्षा करो, पालन करो। उरुष्य - विस्तृत होकर, रायः - गतिशीलता, विद्या, वाणी, आ-इषो - समन्तात्, इष - इच्छा, गति, ज्ञान, दृष्टि का, यजस्व - यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान करो॥ 4॥

भावार्थ :- मघवन् अर्थात् ऐश्वर्यवान् परमात्मा उपयाम द्वारा ग्रहीत होता है। इसका अर्थ है कि उसके निकट यमन अर्थात् नियन्त्रण होना चाहिए। हम परमात्मा के निकट, उसके नियन्त्रण में रहें तो उसे ग्रहण कर सकते हैं अर्थात् पा सकते हैं। कहना चाहिए कि अपने जीवन में उसके संरक्षण को अनुभव कर सकते हैं। वह भीतर सोम को देता है, उसकी रक्षा करता है, पालन करता है। सोम का अर्थ है ऐश्वर्य, प्रेरणा, उत्पत्ति-क्षमता, रचनाशीलता। इसी भावना से परमात्मा को भी सोम कहा गया है। विस्तृत विद्या, वाणी द्वारा इष अर्थात् इच्छा, गति, ज्ञान, दृष्टि का यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान करना है। परमात्मा की व्यवस्था के नियन्त्रण में रहकर उसके दिव्य अनुदानों के स्नाथ सोम प्राप्त करते हुए इच्छाओं, कामनाओं का यजन करें, पूजन, संगठन, दान करें, इसी में जीवन की सार्थकता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, ग्रह - ग्रहण करना, लेना)। असि (अस् - होना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। यच्छ (यच्छ - देना)। मघवन् (मघ् = ऐश्वर्य होना, धन होना)। पाहि (पा - पालन, रक्षण करना)। सोमम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। उरुष्य (उर् = विस्तार करना, जाना, चलना, निरन्तर चलना)। रायः (रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। आ (उपसर्ग)। इषः (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। यजस्व (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)॥ 04॥

250. अन्तः ते द्यावा-पृथिवी दधामि, अन्तः दधामि उरु अन्तरिक्षम्।
सजूः देवेभिः अवरैः परैः च, अन्तः यामे मघवन् मादयस्व॥5॥

संहितापाठ

अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम्। सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व॥5॥

मन्त्रार्थ :- अन्तः - भीतर, ते - तुम्हारे, द्यावा-पृथिवी - द्यावा-पृथिवी को, दधामि - धारण करता हूँ, उरु - विस्तृत, अन्तरिक्षम् - अन्तरिक्ष को, अन्तः - भीतर, दधामि - धारण करता हूँ। मघवन् - हे मघवन्, ऐश्वर्यवान्, सजूः - विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला, देवेभिः - देवों द्वारा, अवरैः - अवरों, परैः - अन्यों के साथ, च - और, अन्तः - भीतर, यामे - याम में, मादयस्व - आनन्द करो॥ 5॥

भावार्थ :- हम अपनी चेतना का विस्तार कर द्यावा-पृथिवी तथा विस्तृत अन्तरिक्ष को भी अपने भीतर धारण कर सकते हैं। आत्म-चेतना का इतना विस्तार करने पर हम दिव्य ऐश्वर्य का अनुभव करते हैं, परमात्मा के उपासक के रूप में हम भी मघवन् अर्थात् ऐश्वर्यवान् हो जाते हैं। तब हम देवों - दिव्य शक्तियों, देवजनों के साथ नियमन में रहकर आनन्द का अनुभव कर सकते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। द्यावापृथिवी (द्यु = आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। दधामि (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। दधामि (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। उरु (उर् = विस्तार करना, जाना, चलना,

निरन्तर चलना)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। सजूः (संज्-सज् = गले लगाना, सम्बन्धी होना, स + जूः, जुष् = विचार करना, सेवा करना, प्रसन्न करना, सन्तुष्ट करना, चाहना)। देवेभिः (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना, देव् = जानना, विशेष गुण होना, खेलना)। अवरैः (अव् = रक्षा करना, अ - नहीं, वृ-वर्-वरण करना, इच्छा करना, आशा करना)। परैः (सर्वनाम)। च (अव्यय)। अन्तर्यामे (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, यम - आवरण करना, अपने अधीन रखना, पोषण करना, नियमन करना, प्रतिबन्ध करना, रोकना, अवरोध करना, नाश करना, अन्त करना)। मघवन् (मघ् = ऐश्वर्य होना, धन होना)। मादयस्व (मद् = तृप्त करना, हर्षित होना)।। 5।।

251. स्वाङ्कृतो असि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो, दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनः त्वा अष्टु स्वाहा,
त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यः, त्वा मारीचिपेभ्यः उदानाय त्वा।।6।।

संहितापाठ

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्यऽइन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यऽउदानाय त्वा।6।।

मन्त्रार्थ :- स्वाङ्कृतो - स्वयम्-कृत, स्वयम् किया हुआ, स्वयम्भू, असि - हो, विश्वेभ्यः - सभी, इन्द्रियेभ्यो - इन्द्रियों के लिए, दिव्येभ्यः - दिव्यों के लिए, पार्थिवेभ्यो - पार्थिवों के लिए, मनः - मन, त्वा - तुमको, अष्टु - व्याप्त हो, स्वाहा - अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, आत्म विस्तार द्वारा, त्वा - तुमको, सुभव - अच्छे बनो, सूर्य्याय - सूर्य के लिए, देवेभ्यः देवों के लिए, त्वा - तुमको, मरीचिपेभ्यः - शब्दकर्ता के पालक-रक्षक, मरणशीलों के पालक-रक्षक, उदानाय - उदान के लिए, त्वा - तुमको।। 6।।

भावार्थ :- परमात्मा स्वयंकृत, स्वयम्भू है। सभी इन्द्रियों, दिव्यता, पार्थिव अर्थात् पृथ्वी के आचार-व्यवहार के लिए मन परमात्मा में व्याप्त हो, उसमें ही रमा रहे, यह कामना की गयी है। सर्वोच्च सत्य तो परमात्मा ही है, इसके लिए हम परमात्मा की स्तुति करते हैं। सम्पूर्ण सृष्टि ही मरणशील है। सबका पालन-रक्षण परमात्मा ही करता है। विशेष रूप से जो शब्दकर्ता हैं, वेदवाणी के वाचक, प्रवचनकर्ता हैं, उनको परमात्मा का संरक्षण विशेष रूप से प्राप्त होता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- स्वाङ्कृतः (स्व - अपना, सु - अच्छा, कृ- करना)। असि (अस् = होना)। विश्वेभ्यः (सर्वनाम)। इन्द्रियेभ्यो (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। दिव्येभ्यः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रकाशित होना)। पार्थिवेभ्यो (पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। मनः (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। त्वा (सर्वनाम)। अष्टु (अश - खाना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। सुभव (सु - अच्छा, भू - होना, सुभ - बोलना, दुःख देना, मारना, सुन्दर होना)। सूर्य्याय (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। देवेभ्यः (दिव्, देव् = तेजस्वी होना, विद्वान होना)। मरीचिपेभ्यो (मृ = मरना, देहत्याग करना, मर्च - शब्द करना)। उदानाय (उत् - ऊपर, अन् - प्राण होना, जीवन होना)।। 6।।

252. आ वायो भूष शुचिपा उप नः, सहस्रम् ते नियुतो विश्व-वार।
उपो ते अन्धो मद्यम् अयामि, यस्य देव दधिषे पूर्व-पेयम् वायवे त्वा।।7।।

संहितापाठ

आ वायो भूष शुचिपाऽउप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार।उपो तेऽअन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवे त्वा।।7।।

मन्त्रार्थ :- वायो - हे वायो, शुचिपा - पवित्रता के पालक-रक्षक, आ भूष - भूषित करो। नः - हमारा, उप - समीप, सहस्रम् - सहस्र, हजार, ते - तुम्हारे लिए, विश्व-वार - सबके वरणीय, सबका वरण करने वाले नियुतो - नियुक्त (हैं)। अन्धो - प्राणधारक, मद्यम् - आनन्दमय, ते - तुम्हारा, उपो - समीप, अयामि - जाता हूँ, देव - हे देव, यस्य - जिसका,

पूर्व-पेयम् - पूर्व पेय को, वायवे - वायु के लिए, त्वा - तुम दधिषे - धारण करते हो।। 07।।

भावार्थ :- वायु अर्थात् प्रगतिशील, रचनाशील विद्वान् परमात्मा तो है ही, समाज के दिव्य गुणवान् मनुष्य, परमात्मा के उपासक भी वायु शब्द से सम्बोधित किये गये हैं। परमात्मा तथा उसके उपासक तो पवित्र हैं ही, पवित्रता के पालक-रक्षक भी हैं। उसके लिए हमारे समीप सहस्त्रों विश्व वरणीय लोग नियुक्त किये गये हैं। उसके समीप आनन्द प्राप्त होता है, वह देव ऐसे वायु जैसे विद्वान् गुणवान् उपासकों के लिए आनन्दप्रद पेय धारण करते हैं।। 7।।

विशेष :- यहाँ अन्ध शब्द को अधिकांश विद्वानों ने अन् (जीवन होना, प्राण होना) धातु से मानकर प्राणधारक किया है। बहुधा इसका भावार्थ अन्न भी किया गया है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- आ (उपसर्ग)। वायो (वा = गति करना, जानना, पाना, वे = बुनना)। भूष (भूष - संवारना, अलंकृत करना)। शुचिपाः (शुच्-शुक्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। उप (उपसर्ग)। नः (सर्वनाम)। सहस्रम् (संख्या)। ते (सर्वनाम)। नियुतः (नि - निश्चित रूप से, निरन्तर, यु - मिलाना, युक्त करना, जोड़ना, अलग करना)। विश्ववार (विश्व - सब, वृ - वरण करना)। उपो (उपसर्ग)। अन्धः (अन् - जीवन होना, प्राणवान् होना, समर्थ होना, जाना, अद् = खाना)। मद्यम् (मद् - हृष्ट होना, हर्षित होना, आनन्द होना)। अयामि (अय - जाना)। यस्य (सर्वनाम)। देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। दधिषे (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। पूर्व-पेयम् (पूर्व = पहले, पा-पिब् - पीना)। वायवे (वे = बुनना, वा = गति करना)। त्वा (सर्वनाम)।। 7।।

253. इन्द्रवायू इमे सुता, उप प्रयोभिः आ गतम्। इन्दवो वाम् उशन्ति हि।
उपयामगृहीतो असि, वायवे इन्द्रवायुभ्याम् त्वा, एष ते योनिः सजोषोभ्याम् त्वा ॥8॥

संहितापाठ

इन्द्रवायूऽइमे सुताऽउप प्रयोभिरागतम्। इन्दवो वामुशन्ति हि। उपयामगृहितोऽसि वायवऽइन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यां त्वा ॥8॥

मन्त्रार्थ :- इमे - ये, सुता - उत्पन्न, ऐश्वर्यवान्, इन्द्रवायू - इन्द्र और वायु, उप - समीप, प्रयोभिः - प्रयो द्वारा, मिलाने, अलग करने द्वारा, प्रयास द्वारा, आ-गतम् - आ गये (हैं)। इन्दवो - इन्दुगण, वाम् - तुमको, उशन्ति - चाहते हैं। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, वायवे - वायु के लिए, इन्द्र-वायुभ्याम् - इन्द्र और वायु के लिए, त्वा - तुमको, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - योनि, सजोषोभ्याम् - सजोष के लिए, त्वा - तुमको (उशन्ति - चाहते हैं)।8।।

भावार्थ :- इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् तथा वायु अर्थात् रचनाशील जैसे गुणों से सम्पन्न देवशक्तियाँ प्रयो अर्थात् मिलाने, गूँथने के प्रयास द्वारा आती हैं। इन्द्र तथा इन्दु समानार्थी हैं। इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा तथा देवशक्तियों को पाने के लिए हमें ऐसे ही दिव्य गुणों के परम ऐश्वर्य को धारण कर इन्दु अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् बनना होता है। यही तुम्हारी योनि अर्थात् संगठन, सहयोग की वह भावना, भावभूमि, स्थिति, स्थान है जिससे हम देव शक्तियों को पा सकते हैं। मिलाने तथा अलग करने के ऐसे ही विवेक तथा गुणों की आवश्यकता है।

विशेष :- यु धातु का अर्थ मिलाना, अलग करना, बाँधना, गूँथना, पृथक्-पृथक् करना होता है। अतः प्रयो का अर्थ है विवेक पूर्वक मिलाना, गूँथना तथा अलग करना। जहाँ जैसी आवश्यकता हो, मिलायें अथवा अलग करें। यह विवेक होना ही चाहिए। योनि शब्द भी यु धातु से बना है, अतः इसका भी यही अर्थ होता है। योनि का भावार्थ स्थान किया जाता है। जहाँ मिलते हैं, बंधते हैं, जहाँ से हम विभिन्न कार्यों के लिए अलग होकर जाते हैं तथा पुनः मिलते हैं, वह स्थान योनि है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- इन्द्रवायू (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। इमे (सर्वनाम)। सुताः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। उप (उपसर्ग)। प्रयोभिः (यु - मिलाना, अलग करना, बाँधना, गूँथना, यु- पृथक् पृथक् करना, यस् - प्रयास करना, प्रयत्न करना)। आ (उपसर्ग)। गतम् (गम् = जाना, जानना, पाना)। इन्दवः (इन्द - अमानवीय पराक्रम होना, ईश्वरीय शक्ति होना, ऐश्वर्ययुक्त होना)। वाम् (सर्वनाम)। उशन्ति (उश-वश - इच्छा करना, चाहना)। हि (अव्यय)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, ग्रह - ग्रहण करना, लेना)। असि (अस् - होना)। वायवे (वय =

जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा = गति करना, पवन की भाँति बहना, जाना, जानना, पाना, गन्ध होना, प्रवाहित होना, प्रवाहित करना)। इन्द्रवायुभ्याम् (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = बन्धन होना)। सजोषोभ्याम् (जुष् - विचार, विवेक-विवेचना करना, हिंसा करना, दुलार करना, प्रीति करना, सेवा करना)।। 8।।

254. अयम् वाम् मित्रावरुणा, सुतः सोम ऋतावृधा। मम इत् इह श्रुतम् हवम्।
उपयाम गृहीतो असि, मित्रावरुणाभ्याम् त्वा।।9।।

संहितापाठ

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोमऽऋतावृधा। ममेदिह श्रुतꣳहवम्। उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा।।9।।

मन्त्रार्थ :- मित्रा-वरुणा - हे मित्र और वरुण, अयम् - यह, सुतः - उत्पन्न, ऋता-वृधा - ऋत द्वारा वर्धित, ऋत को वर्धित करने वाले, सोम -- ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता, उत्पत्तिकर्ता, वाम् - तुमको, मम - मेरा, इत् - ही, इह - यहाँ, श्रुतम् - सुना हुआ, हवम् - आह्वान (है), उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, मित्रावरुणाभ्याम् - मित्र और वरुण द्वारा, - मित्र और वरुण के लिए, त्वा - तुमको।। 9।।

भावार्थ :- सोम अर्थात् रचनाशीलता, सृजन-शक्ति को सुत अर्थात् उत्पन्न किया जाता है। मित्र और वरुण अर्थात् स्नेही और वरणीय को मित्र और वरुण के द्वारा और मित्र और वरुण के लिए ही चाहते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अयम् (सर्वनाम)। वाम् (सर्वनाम)। मित्रावरुणा (मिद - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, नरम होना, मृदुल होना, वृ - वरण करना, आच्छादन करना)। सुतः (सु - उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। सोम (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। ऋतावृधा (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना, वृध - बढ़ना, अधिक होना)। मम (सर्वनाम)। इत् (अव्यय)। इह (सर्वनाम)। श्रुतम् (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। हवम् (ह्वे - आह्वान करना, पुकारना, शब्द करना, हु = देना, आदान-प्रदान करना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, ग्रह - ग्रहण करना, लेना)। असि (अस् - होना)। मित्रावरुणाभ्याम् (मिद - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, नरम होना, मृदुल होना, वृ - वरण करना, आच्छादन करना)। त्वा (सर्वनाम)।। 9।।

255. राया वयम् ससवांसो मदेम, हव्येन देवा यवसेन गावः।
ताम् धेनुम् मित्रावरुणा युवम् नो, विश्वाहा धत्तम् अनपस्फुरन्तीम्,
एष ते योनिः ऋतायुभ्याम् त्वा।।10।।

संहितापाठ

राया वयꣳससवासो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः। तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा।।10।।

मन्त्रार्थ :- वयम् - हम, ससवांसो - सुयोग्य, सेवाभावी, शक्तिमान, राया - गति, विद्या, वाणी से, हव्येन - हव्य या दान-आह्वान से, देवा - देवगण, यवसेन - यवस से, उपसंहार, समापन से, गावः - शब्दकर्ता, मननशील, मदेम - आनन्दित होते हैं। मित्रावरुणा - हे मित्रा-वरुण, युवम् - तुम दोनो ने, नो - हमारे लिए, ताम् - उस, धेनुम् - धेनु को, अनपस्फुरन्तीम् - अनन्यगामिनी, अविचल, विश्वाहा - सर्वदा, धत्तम् - धारण किया, दिया। एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - योनि, स्थान (है), ऋतायुभ्याम् - ऋत और आयु के लिए, त्वा - तुमको (धत्तम् - धारण किया, दिया)।। 10।।

भावार्थ :- अपने योग्य साधन, स्थिति से ही सज्जन प्रसन्न होते हैं। मित्र अर्थात् स्नेही तथा वरुण अर्थात् वरणीय लोग हमारे लिए उचित साधन प्रदान करते हैं। अतः हम भी मित्र तथा वरुण जैसे सज्जनों को उचित सम्मानजनक स्थान प्रदान करते हैं। उनको ऋत अर्थात् प्राकृतिक व्यवस्था तथा आयु अर्थात् उत्तम जीवन के लिए अपनाते हैं।

विशेष :- ससवांसो पद को विद्वानों ने **सन-षण** सम्भक्तौ - मिश्रणे धातु से निष्पन्न माना है। इस प्रकार इसका अर्थ सम्भक्ति होना, सेवा करना, योग्य होना माना गया है। सम्भक्ति का अर्थ अलग करना तथा सम्पन्न होना भी किया गया

है। सन (सनोति, सनुते) धातु का अर्थ देना, दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना होता है। **सण** धातु का अर्थ प्रकाश करना, शब्द करना होता है। यहाँ ध्यातव्य है कि **षण धातु** शास्त्रीय धातु-पाठ में केवल पढ़ा जाता है, व्यवहार में ष के स्थान पर स ही प्रयोग होता है। **सस्** धातु का अर्थ सोना होता है तथा **सष्** धातु का अर्थ शक्ति होना, सामर्थ्य होना, गणना करना होता है। ससवांसो पद में ये सभी अर्थ समाहित हैं। **योनि** शब्द का अर्थ स्थान किया जाता है। यु धातु का अर्थ मिलाना, अलग करना, बन्धन होना होता है। स्था धातु का अर्थ ठहरना होता है। जहां हम ठहरते हैं, मिलते हैं, अलग होते हैं, बंधते हैं, उसे स्थान या योनि कहते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- राया (रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। वयम् (सर्वनाम)। ससवांसो (सस - सोना, सन-षण - सम्भक्ति होना, सेवा करना, योग्य होना, अलग करना, सम्पन्न होना, सन - देना, दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना, सण - प्रकाश करना, शब्द करना)। मदेम (मद - तृप्त करना, समाधान करना)। हव्येन (हू = दान, आदान, करना, लेना-देना)। देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। यवसेन (यु = मिलाना, अलग करना, यव = समाप्त करना, उपसंहार करना)। गावः (गु - शब्द करना, मनन करना)। ताम् (सर्वनाम)। धेनुम् (धे - प्राशन करना, पालना, पीना)। मित्रावरुणा (मिद - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, नरम होना, मृदुल होना, वृ - वरण करना, आच्छादन करना)। युवम् (सर्वनाम)। नः (सर्वनाम)। विश्वाहा (सर्वनाम)। धत्तम् (धा = धारण, पोषण, रक्षण, दान करना)। अनपस्फुरन्तीम् (अन् - नहीं, अपः - दूर, स्फुर् - चलना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = बन्धन होना, मिलाना, अलग करना)। ऋतायुभ्याम् (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। त्वा (सर्वनाम)॥ 10॥

256. या वाम् कशा मधुमती, अश्विना सूनृतावती। तया यज्ञम् मिमिक्षतम्।
उपयाम गृहीतो असि अश्विभ्याम् त्वा, एष ते योनिः माध्वीभ्याम् त्वा॥11।

संहितापाठ

या वां कृशा मधुमत्यश्विना सूनृतावृती। तया यज्ञं मिमिक्षतम्॥ उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा॥11॥

मन्त्रार्थ :- अश्विना - हे अश्विन् युगल, तीव्र गति युक्त, व्यापक, या - जो, वाम् - तुम दोनो, कशा - प्रकाश द्वारा, मधुमती- मधुयुक्त, सूनृतावती -सुनृतायुक्त, उत्पत्ति-सृजन को ले जाने वाले से युक्त (है), तया - उससे, यज्ञम् - यजन को, मिमिक्षतम् - सिंचन करें। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, अश्विभ्याम् - अश्विन् द्वारा, अश्विन् के लिए, त्वा - तुमको, (मिमिक्षतम् - सिंचन करें)। एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - योनि, बन्धन, स्थान (है), माध्वीभ्याम् - माध्वी के लिए, मधुयुक्त के लिए, त्वा- तुमको (मिमिक्षतम् - सिंचन करें)॥ 11॥

भावार्थ :- प्रकाश, मधुरता के साथ सृजनशीलता बनाये रखें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- या (सर्वनाम)। वाम् (सर्वनाम)। कशा (कश - प्रकाश करना, दण्ड देना, शासन करना)। मधुमती (मधु = मीठा)। अश्विना (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, तीव्रता से पहुँचना)। सूनृतावती (सू - जन्म देना, उत्पन्न करना, नृ = ले जाना)। तया (सर्वनाम)। यज्ञम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। मिमिक्षतम् (मिह - गीला करना, सींचना, प्रोक्षण करना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, ग्रह - ग्रहण करना, लेना)। असि (अस् - होना)। अश्विभ्याम् (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, तीव्रता से पहुँचना)। त्वा (सर्वनाम)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। माध्वीभ्याम् (मध् = मधुर होना, मीठा होना)॥ 11॥

(69) सूक्त 3

257. तम् प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथा इमथा, ज्येष्ठ-तातिम् बर्हि-सदम् स्वः विदम्।
प्रतीचीनम् वृजनम् दोहसे धुनिम्, आशुम् जयन्तम् अनु यासु वर्द्धसे।
उपयाम गृहीतो असि शण्डाय त्वा, एष ते योनिः वीरताम् पाहि,

अपमृष्टः शण्डो देवाः त्वा, शुक्रपाः प्र नयन्तु अनाधृष्टा असि॥12॥

संहितापाठ

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदस्वर्विदम्।प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे।उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि॥12॥

मन्त्रार्थ :- तम् - उसको, प्रत्नथा - प्राचीन, प्रसिद्ध के समान, पूर्वथा - पूर्व के समान, विश्वथा - सभी के समान, इमथा - इसके समान, ज्येष्ठ-तातिम् - ज्येष्ठ-विस्तार, ज्येष्ठ-प्रशंसा, बर्हि-सदम् - बढ़ा हुआ, विराट, महान् बैठने वाला, स्वर्विदम् - शब्द को जानने वाले, शब्दज्ञानी, विद्वान्, प्रतीचीनम् - प्रतिकूल, पीछे, पश्चिम, वृजनम् - त्याग, वर्जना, दोहसे - दोहन करते हो, धुनिम् - कम्पन को, कम्पन करने वाले को, कंपाने वाले को, आशुम् - आशु को, तीव्र गति युक्त, व्यापक को, जयन्तम् - जीतने वाले को, अनु - पीछे, यासु - जिनमें, वर्द्धसे - बढ़ते हो। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, शण्डाय - शण्ड के लिए, दानी, विद्वान् के लिए, त्वा - तुमको, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - स्थान, वीरताम् - वीरता को, पाहि - पालन-रक्षण करो, अपमृष्टः - असत्य को दूर करने वाले, असत्य से दूर रहने वाले, शण्डो - दानी, विद्वान्, देवाः - देवगण, त्वा - तुमको, शुक्रपाः - शुक्र के पालक-रक्षक, प्र नयन्तु - प्रकृष्टता से ले जायें, अनाधृष्टा - निरभिमानी, अजेय, असि - हो॥ 12॥

भावार्थ :- पूर्व के समान वर्तमान तथा भविष्य में भी साधना करने पर दिव्य अनुदान प्राप्त हो सकते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- तम् (सर्वनाम)। प्रत्नथा (प्रत्न - पुराण, पुराना, प्राचीन, प्रथ् = प्रसिद्ध होना, फैलना, फैलाना)। पूर्वथा (पूर्व = पहले)। विश्वथा (विश्व = सभी)। इमथा (अव्यय)। ज्येष्ठ-तातिम् (ज्या - वृद्ध होना, बड़ा होना, बर्द्धित होना, जि - जीतना, जेष् - जाना, चलना, जानना, पाना, जिष् - सेवा करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना, तन् - विस्तार करना, ताति प्रत्यय का प्रयोग प्रशंसित के अर्थ में)। बर्हिषदम् (बर्ह् - श्रेष्ठ होना, प्रधान होना, प्रयास करना, उद्यम-व्यवसाय करना, खेलना, बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, षद्-सद् - बैठना)। स्वर्विदम् (स्वर् - शब्द करना, दोष लगाना, निन्दा करना)। प्रतीचीनम् (सर्वनाम)। वृजनम् (वृज् = छोड़ना, त्याना, वर्जित करना)। दोहसे (दुह - दुहना, दोहन करना)। धुनिम् (धुञ् - काँपना, हिलना, हिलाना)। आशुम् (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, अश् = भोजन करना)। जयन्तम् (जि - सब से बढ़ कर होना, जीतना)। अनु (उपसर्ग)। यासु (सर्वनाम)। वर्द्धसे (वृध् = बढ़ना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, ग्रह - ग्रहण करना, लेना)। असि (अस् - होना)। शण्डाय (शण् - देना, दान करना, जाना, शब्द करना, तीक्ष्ण करना)। त्वा (सर्वनाम)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। वीरताम् (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। पाहि (पा - पालन करना, रक्षा करना)। अपमृष्टः (अप = निम्नता, बुराई, दूर, मृष् - सहन करना, प्रोक्षण करना, सिंचन करना, क्षमा करना, असत्य बोलना, हर्ष होना, हँसना)। शण्डः (शण् - देना, दान करना, जाना, शब्द करना, तीक्ष्ण करना)। देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। शुक्रपाः (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। प्र (उपसर्ग)। नयन्तु (नय - जाना, हिलना, पहुँचना, संरक्षण करना)। अनाधृष्टा (अन् + आ + धृष् = जीतना, अधीर होना, घबराना, धृषा = गर्व करना, स्वयम् को बड़ा समझना)। असि (अस् - होना)॥ 12॥

258. सुवीरो वीरान् प्रजनयन् परि इहि, अभि रायः पोषेण यजमानम्।
सम् जग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः, शुक्र-शोचिषा निरस्तः शण्डः, शुक्रस्य अधिष्ठानम् असि॥13॥

संहितापाठ

सुवीरो वीरान् प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम्।सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि॥13॥

मन्त्रार्थ :- सुवीरो - अच्छे वीर, वीरान् - वीरों को, प्रजनयन् - उत्पन्न करते हुए, परि-इहि - सभी ओर प्राप्त हों,

अभि रायः - गति, विद्या, वाणी, पोषेण - पुष्टि द्वारा, पुष्टिकर्ता द्वारा, यजमानम् - यजमान को। सम् -जग्मानो - सम्यक् रूप से, भलीभाँति गतिशील, विद्वान्, दिवा - दिव्य, दिव्यता में, पृथिव्या - पृथिवी, शुक्रः - शुक्र, शुक्र-शोचिषा - शुक्र-शुचि द्वारा, निरस्तः - निरस्त, प्रिय, बाहर फेंका गया, बहिष्कृत, शण्ड - दानी, विद्वान्, शुक्रस्य - शुक्र का, अधिष्ठानम् - अधिष्ठान, स्थान, असि - हो (अस् - होना)॥ 13॥

भावार्थ :- हम वीर बनें तथा वीर-पराक्रमी समाज का निर्माण करें। पवित्रता को अपनायें, समाज को पवित्र बनायें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सुवीरः (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। वीरान् (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। प्रजनयन् (प्र + जा, जन् = उत्पन्न करना, उत्पन्न होना)। परि (उपसर्ग)। इहि (इ - जाना, जानना, पाना, प्राप्त होना)। अभि (उपसर्ग)। रायः (रा-देना, रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। पोषेण (पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। यजमानम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। संजग्मानः (सम् -सम्यक्, जग् - गति करना, घर्षण करना, ग्रहण करना, गम् - जाना, जानना)। दिवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। पृथिव्याः (पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। शुक्रः (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। शुक्र-शोचिषा (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। निरस्तः (नि = निश्चित, रस् = शब्द करना, स्वाद लेना, चखना, प्यार करना, निः-निर् - विना, बाहर, निश्चित, अस् - होना, फेंकना)। शण्डः (शण् - देना, दान करना, जाना, शब्द करना, तीक्ष्ण करना)। शुक्रस्य (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। अधिष्ठानम् (अधि - अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, पा लेना, स्था-तिष्ठ् - ठहरना, स्थित होना)। असि (अस् - होना)॥ 13॥

259. अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य, रायः पोषस्य ददितारः स्याम।
सा प्रथमा संस्कृतिः विश्व-वारा, स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः॥14॥

संहितापाठ

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम। सा प्रथमा सँस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रोऽअग्निः॥14॥

मन्त्रार्थ :- देव - तेजस्वी, देव, सोम - ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता, सोम, ते - तुम्हारा, अच्छिन्नस्य - अछिन्न का, अखण्ड का, सुवीर्यस्य - उत्तम वीरता का, रायः - गतिशीलता, विद्या, वाणी, पोषस्य - पोषक का, पोषण का, पोषण करने वाले का, ददितारः - देने वाले, स्याम - हों। सा - वह, प्रथमा - प्रथम, पहली, संस्कृतिः - संस्कृति, संस्कार, विश्व-वारा - विश्व के लिए वरणीय, स - वह, प्रथमो - प्रथम, पहला, वरुणो - वरुण, वरणीय, मित्रो - मित्र, स्नेही, अग्निः - अग्नि, अग्रणी (है)॥ 14॥

भावार्थ :- अखण्ड ऐश्वर्यवान् दिव्य परमात्मा तथा उसके मार्ग पर चलने वाले उपासकों की उत्तम वीरता की गति और वाणी पोषकों को देय है। हमारी वीरता, शक्ति, सामर्थ्य पोषकों के पक्ष में है, शोषकों पक्ष में नहीं। हमारी यही विश्व में वरणीय विश्ववारा वैदिक संस्कृति है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : - अच्छिन्नस्य (छिद्-छिन - छेदना, काटना, टुकड़े करना)। ते (सर्वनाम)। देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। सोम (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। सुवीर्यस्य (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। रायः (रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। पोषस्य (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। ददितारः (दा-दद - दान करना, देना, त्याग करना)। स्याम (अस् - होना)। सा (सर्वनाम)। प्रथमा (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। संस्कृतिः (सम् - सम्यक् रूप से, कृ - करना)। विश्व-वारा (विश्व - सब, वृ - वरण करना)। सः (सर्वनाम)। प्रथमः (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। वरुणः (वृ -वृ - वरण करना, वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना)। मित्रः (मिद् - स्नेह करना)। अग्निः (अग् = ऊपर जाना, जानना, पाना, तेजस्वी होना)॥ 14॥

260. स प्रथमो बृहस्पतिः चिकित्वान्, तस्मा इन्द्राय सुतम् आ जुहोत।
तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः, सु-प्रीताः सु-हुता यत् अयाट् अग्नीत्॥15॥

संहितापाठ

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्माऽइन्द्राय सुतमाजुहोत स्वाहा। तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहायाडग्नीत्॥15॥

मन्त्रार्थ :- स - वह, प्रथमो - प्रथम, बृहस्पतिः - बृहस्पति, चिकित्वान् - चेतन हुआ, जाना, चेतनावान्, विद्वान्, जानने वाला, तस्मा - उस, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, सुतम् - सुत को, उत्पन्न ऐश्वर्यवान् को, आ जुहोत - दिया, आदान-प्रदान किया। होत्रा - दानी, मध्वो - मधुर, याः - जो, स्विष्टा - स्विष्ट, याः - जो, सु-प्रीताः - सुन्दर प्रीति वाले, सु-हुता - उत्तम दानी, यत् - जो, अग्नीत् - अग्नि से, अयाट् - गये, जाना, प्राप्त किया, तृम्पन्तु - तृप्त हों, शान्त हों, प्रिय हों।॥15॥

भावार्थ :- बृहस्पति अर्थात् बड़े, महान् के पालक, रक्षक ही सर्वप्रथम सत्य को जान पाते हैं, क्षुद्रता संकीर्णता से ग्रस्त लोग परम सत्य के प्रति चेतन, सजग हो ही नहीं पाते हैं, जानना तो सम्भव हो ही नहीं पाता है। वृहस्पति होकर हम अपने ऐश्वर्य का तथा जो कुछ हम उत्पन्न करते हैं, परिजन तथा साधन आदि को समाज तथा सत्कर्म के लिए हवन अर्थात् दान कर पाते हैं। हवन में दान के साथ ही आदान-प्रदान का भी भाव है, अतः सत्कार्य के लिए देने की उदारता के साथ ही लेने की विनम्रता भी होनी चाहिए। ऐसे उत्तम दानी तृप्त, प्रसन्न होने ही चाहिए।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सः (सर्वनाम)। प्रथमः (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। बृहस्पतिः (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। चिकित्वान् (चिकित् = जानना, रोग दूर करना)। तस्मै (सर्वनाम)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। सुतम् (सु - उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। आ (उपसर्ग)। जुहोत (हू = दान करना, आदान-प्रदान करना)। तृम्पन्तु (तृम्प - तृप्त होना या करना)। होत्रा (हु = दान करना, आदान- प्रदान करना)। मध्वो (मधु = मधुर होना, मीठा होना)। याः (सर्वनाम)। स्विष्टाः (सु + इष्ट, सु = अच्छा, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, इष् = जाना, इच्छा करना)। सुप्रीताः (सु = अच्छा, प्री - प्रीति करना, तृप्त करना, कामना करना)। सुहुताः (सु = अच्छा, हू = दान करना, आदान-प्रदान करना)। यत् (सर्वनाम)। अयाट् (अय - जाना)। अग्नीत् (अग् = ऊर्ध्वगामी होना, आगे जाना, जानना, पाना)।॥15॥

261. अयम् वेनः चोदयत् पृश्नि-गर्भा, ज्योतिः जरायू रजसो विमाने।
इमम् अपाम् सङ्गमे सूर्यस्य, शिशुम् न विप्रा मतिभिः रिहन्ति।
उपयाम गृहीतो असि मर्काय त्वा॥16॥

संहितापाठ

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने। इममपासङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति। उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा॥16॥

मन्त्रार्थ :- अयम् - यह, वेनः - विद्वान्, कान्तिमान्, चोदयत् – प्रेरित किया, पृश्नि-गर्भा - - अपने गर्भ में प्रश्न, अभिसिञ्चन को धारण करने वाले, ज्योतिः - प्रकाश, जरायू - जीर्ण, वृद्ध या परिपक्व आयु वाले, रजसो विमाने। इमम् अपाम् सङ्गमे सूर्यस्य, शिशुम् न विप्रा मतिभिः रिहन्ति। उपयाम गृहीतो असि मर्काय त्वा॥16॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अयम् (सर्वनाम)। वेनः (वेन - मिलाना, अलग करना, रक्षा करना, जाना, समझना, जानना, स्मरण करना, सारासार विचार करना, तारतम्य देखना, वाद्य यन्त्र बजाना, बाजा हाथ में लेना)। चोदयत् (चुद - प्रेरणा करना, पूछना, प्रश्न करना, प्रार्थना करना)। पृश्निगर्भाः (पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = सींचना, सहन करना)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। जरायुः (जृ - वृद्ध होना, जीर्ण होना, अय - जाना, जानना, पाना)। रजसः (रज - रज होना, धूल होना, सूक्ष्म होना, रंग देना, रंगना, लीन होना)। विमाने (वि = विशेष, विना, विलोम, मान - मान करना, पूजा करना, ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा करना, शोध करना, सत्कार करना, मनाना, तोलना, तुलना

करना, मापना)। इमम् (सर्वनाम)। अपाम् (अप - पालन करना)। सङ्गमे (सम् - सम्यक्, गम् - जाना, सम्-गम्, सङ्गम् - मिलना, साथ चलना)। सूर्यस्य (सुर - अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। शिशुम् (शि = तेज करना, तीक्ष्ण करना, कल्याण करना, शिष् - शेष रखना, बचाना, प्रयोजन करना)। न (अव्यय)। विप्राः (वि - विशेष, प्रा - पूर्ण करना)। मतिभिः (मन् = मानना, विचार करना, मनन करना)। रिहन्ति (रिह - कहना, प्रशंसा करना, दान करना, युद्ध करना, निन्दा करना, हिंसा करना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, ग्रह - ग्रहण करना, लेना)। असि (अस् - होना)। मर्काय (मर्क - आदान करना, ग्रहण करना, लेना)। त्वा (सर्वनाम)।। 16 ।।

(70) सूक्त 4

262. मनो न येषु हवनेषु तिग्मम्, विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता।
आ यः शर्याभिः तुवि-नृम्णो अस्य, अश्रीणीत आ-दिशम् गभस्तौ।
एष ते योनिः प्रजाः पाहि अपमृष्टो, मर्को देवाः त्वा मन्थिपाः, प्र नयन्तु अनाधृष्टा असि ।। 17 ।।

संहितापाठ

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता।आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णोऽअस्याश्रीणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ।। 17 ।।

मन्त्रार्थ :- येषु - जिनमें, हवनेषु - हवनों में, दान व आदान-प्रदान में, मनो - मन के, न - समान, तिग्मम् - ज्ञानी, कूटनीतिज्ञ, विपः - विशेष अर्चना करने वाले, विशेष रक्षक, पालक, द्रवन्ता - गतिशील, शच्या - उत्तम वाणी द्वारा, वनुथो - शब्द करते हैं, सेवा करते हैं। आ - समन्तात्, पूर्णतः, यः - जो, शर्य्याभिः - शर्याओं द्वारा, घातक अस्त्रों द्वारा, युद्ध-विद्या द्वारा, तुविनृम्णो - बहुत ले जाने वाले, बहुत धन वाले, आ-दिशम् - सम्पूर्ण दिशाओं में, गभस्तौ - ज्ञानी, साहसी लोगों ने, अस्य - इसका, अश्रीणीत - सेवा की, आश्रय किया, परिपक्व किया। एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः बन्धन, स्थान, प्रजाः - प्रजाओं को, पाहि - पालन करो, रक्षा करो। अपमृष्टो - अपमृष्ट, मर्को - लेने वाला, ग्राही, देवाः - देवगण, त्वा - तुमको, मन्थिपाः - मन्थन करने वालों का पालन करने वाले, प्र-नयन्तु - प्रष्टता से ले चलें। अनाधृष्टा - निरभिमानी, अजेय, असि - हो।। 17 ।।

भावार्थ :- मन का शब्दार्थ है विचार करना, मनन करना। विचार, मनन, चिन्तन, ज्ञान मन से ही होते हैं। अतः कहा गया है, मन के समान ज्ञानी। तिग्म का अर्थ गति करने वाले कूटचाल चलने वाले होता है। गति अर्थ वाली धातुओं में ज्ञान, गमन, प्राप्ति के अर्थ माने जाते हैं। अतः इसका अर्थ ज्ञानी किया गया है। कूटचाल चलना भी इसका अर्थ है, अतः कूटनीतिज्ञ भी इसका अर्थ है। शर्याओं का अर्थ है घातक अस्त्रों द्वारा, युद्ध-विद्या द्वारा, रणकौशल द्वारा। साहसी योद्धा सभी दिशाओं में सुरक्षा प्रदान करते हैं तो इसके लिए कूटनीति, युद्धकौशल तथा शस्त्रार्थ-ज्ञान की आवश्यकता होती है। तभी हम अपने स्थान की, राष्ट्र की सुरक्षा कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- मनः (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। न (अव्यय)। येषु (येष - प्रयत्न करना, आग्रह करना, चिपक के रहना)। हवनेषु (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। तिग्मम् (तिग् = जाना, जानना, पाना, कूटचाल चलना)। विपः (वि = विशेष, पा - पालन करना, पन - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। शच्या (शच- स्पष्ट बोलना)। वनुथो (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना, वनु - याचना करना, मांगना)। द्रवन्ता (दृ - जाना)। आ (उपसर्ग)। यः (सर्वनाम)। शर्य्याभिः (शृ - मार डालना या दुःख देना, पीड़ा करना)। तुविनृम्णः (तु - जाना, बढ़ना, दुःख देना, हिंसा करना, पूर्ण करना, नृ - ले जाना, विनम्र होना)। अस्य (सर्वनाम)। अश्रीणीत (श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना)। आ-दिशम् (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना,

बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। गभस्तौ (गह् - गहन होना, घना होना, डराना, हिंसा करना, जाना, जानना, पाना, गल्भ - ज्ञान, चातुर्य, धैर्य, साहस होना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = बन्धन होना, मिलाना, अलग करना)। प्रजा (प्र + जा, जन् = उत्पन्न होना)। पाहि (पा - पालन, रक्षण करना)। अपमृष्टः (अप = निम्नता, बुराई, दूर, मृष - सहन करना, क्षमा करना)। मर्कः (मर्क - लेना, ग्रहण करना, कूदना)। देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। त्वा (सर्वनाम)। मन्थिपाः (मन्थ - बिलोना, मथना, पीड़ा देना, हिंसा करना)। प्र (उपसर्ग)। नयन्तु (नय - जाना, हिलना, पहुँचना, संरक्षण करना)। अनाधृष्टा (अन् + आ + धृष् = जीतना, अधीर होना, घबराना, धृषा = गर्व करना, स्वयम् को बड़ा समझना)। असि (अस् - होना)॥ 17॥

263. सुप्रजाः प्रजाः प्र-जनयन् परि इहि, अभि रायः पोषेण यजमानम्।
सम् जग्मानो दिवा पृथिव्या, मन्थी मन्थि-शोचिषा निः अस्तो, मर्को मन्थिनो अधिष्ठानम् असि॥18॥

संहितापाठ

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम्। सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोऽधिष्ठानमसि॥18॥

मन्त्रार्थ :- सुप्रजाः - अच्छी प्रजा वाले, प्रजाः - प्रजा को, प्र-जनयन् - उत्पन्न करते हुए, परि इहि - सभी ओर चलें, अभि सब ओर, रायः - गति, विद्या, वाणी, पोषेण - पोषण द्वारा, यजमानम् - यजमान को। सम् जग्मानो - सम्यक् रूप से, भलीभाँति गतिशील, विद्वान्, दिवा - दिव्य, पृथिव्या - पृथिवी के, मन्थी - मन्थन करने वाले, मन्थि-शोचिषा - मन्थन से पवित्र द्वारा, निः अस्तो - प्रक्षेपित हुए, फेके गये, मर्को - लेने वाला, ग्राही, मन्थिनो - मन्थन करने वालों का, अधिष्ठानम् - अधिष्ठान, प्रमुख स्थान, असि - हो॥ 18॥

भावार्थ :- जो सुप्रजा हैं, अच्छे लोग हैं, वे अपने समान अच्छे लोगों को उत्पन्न करते हैं। विचार-मन्थन से पवित्र तथा प्रबुद्ध हो गये मार्ग-दर्शक समाज का कल्याण करते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सुप्रजाः (सु = अच्छा, जन् = उत्पन्न होना)। प्रजा (प्र + जा, जन् = उत्पन्न होना)। प्रजनयन् (प्र + जा, जन् = उत्पन्न होना, नय - जाना, हिलना, पहुँचना, संरक्षण करना)। परि (उपसर्ग)। इहि (इ = जाना, जानना, पाना)। अभि (उपसर्ग)। रायः (रा-देना, रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। पोषेण (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। यजमानम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। सञ्जग्मानः-संजग्मानः (सम् -सम्यक्, जग् - गति करना, घर्षण करना, ग्रहण करना, गम् - जाना, जानना)। दिवा (दिव् = प्रकाशित होना, स्तुति करना)। पृथिव्याः (पृथु = फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना, व्यापक होना, विस्तृत होना, मोटा होना)। मन्थी (मन्थ - बिलोना, मथना, पीड़ा देना, हिंसा करना)। मन्थिशोचिषा (मन्थ - बिलोना, मथना, पीड़ा देना, हिंसा करना, शुच् = शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना)। निरस्तः (नि = निश्चित, रस् = शब्द करना, स्वाद लेना, चखना, प्यार करना, निः-निर् - विना, बाहर, निश्चित, अस् - होना, फेंकना)। मर्कः (मर्क - लेना, ग्रहण करना, कूदना)। मन्थिनः (मन्थ - बिलोना, मथना, पीड़ा देना, हिंसा करना)। अधिष्ठानम् (अधि = ऊपर, अधिक, पूर्णतः, पा लेना, स्था - ठहरना)। असि (अस् - होना)॥ 18॥

264. ये देवासो दिवि एकादश स्थ, पृथिव्याम् अधि एकादश स्थ।
अप्सु-क्षितो महिना एकादश स्थ, ते देवासो यज्ञम् इमम् जुषध्वम्॥19॥

संहितापाठ

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ। अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥19॥

मन्त्रार्थ :- ये - जो, देवासो - देवगण, दिवि - दिव में, दिव्यता में, एकादश - ग्यारह, स्थ - स्थित हैं, पृथिव्याम् - पृथिवी पर, अधि - ऊपर, अधिकृत कर, एकादश - ग्यारह, स्थ - स्थित हैं। अप्सु-क्षितो महिना -महिमा से, एकादश - ग्यारह, स्थ - स्थित हैं, ते - वे, देवासो - देवगण, यज्ञम् - यजन को, इमम् - इसको, जुषध्वम् - विचार करो, सेवा

करो, सन्तुष्ट करो।। 19।।

भावार्थ :- देवगण एकादश दिव्यता में स्थित हैं। इसका अर्थ है कि एकादश दिव्य सद्गुणों में देवशक्तियाँ स्थित होती हैं। दिव्यता की प्राप्ति के लिए एकादश दिव्य सद्गुणों को धारण करना चाहिए। वे एकादश या ग्यारह गुण कौन से हैं, यह विचारणीय है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- ये (सर्वनाम)। देवासः (दिव् = तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। दिवि - दिव में दिव्यता में (दिव् = तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। एकादश (संख्या)। पृथिव्याम् (पृथु = फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना, व्यापक होना, विस्तृत होना, मोटा होना)। अधि (उपसर्ग)। स्थ (स्था - स्थित होना, ठहरना)। अप्सु-क्षितो (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना, रक्षण करना, क्षि-क्षय् - निवास करना)। महिना (मह = पूज्य होना, महान् होना)। एकादश (संख्या)। स्थ (स्था - स्थित होना, ठहरना)। ते (सर्वनाम)। देवासो (दिव् = तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। यज्ञम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। इमम् (सर्वनाम)। जुषध्वम् (जुष् = विचार करना, सेवा करना, सन्तुष्ट करना)।।19।।

265. उपयामगृहीतो असि आग्रयणः असि स्वग्रयणः।
पाहि यज्ञम् पाहि यज्ञपतिम्, विष्णुः त्वाम् इन्द्रियेण पातु विष्णुम्,
त्वम् पाहि अभि सवनानि पाहि।।20।।

संहितापाठ

उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः।पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि।।20।।

मन्त्रार्थ :- उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, आग्रयणः - आग्रयण, अग्रगामी, स्वग्रयणः - अच्छे, सुन्दर अग्रगामी, असि - हो। पाहि - पालन करो, यज्ञम् - यजन को, पाहि - पालन करो, यज्ञपतिम् - यजन-पालक को, विष्णुः - व्यापक, त्वाम् तुमको, इन्द्रियेण - इन्द्रिय से, पातु - पालनकरो, रक्षा करो, विष्णुम् - विष्णु को, त्वम् - तुम, पाहि - पालन करो, अभि - सब ओर, सवनानि - सवनों को पाहि - पालन करो।। 20।।

भावार्थ :- समाज के अग्रगण्य महानुभाव यजन तथा व्यापकता के भावों, विचारों, कार्यों का पालन-रक्षण करें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, ग्रह - ग्रहण करना, लेना)। असि (अस् - होना)। आग्रयणः (अग् = अग्रगामी होना, ऊर्ध्वगति करना)। असि (अस् - होना)। स्वग्रयणः (सु = सुन्दर, अग्रगामी, अग् = अग्रगामी होना, ऊर्ध्वगति करना)। पाहि (पा - पालन करना, रक्षा करना)। यज्ञम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। पाहि (पा - पालन करना, रक्षा करना)। यज्ञपतिम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। विष्णुः (विष् = व्याप्त होना)। त्वाम् (सर्वनाम)। इन्द्रियेण - इन्द्रिय द्वारा (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। पातु (पा - पालन करना, रक्षा करना)। विष्णुम् (विष् = व्याप्त होना, व्यापक होना)। त्वम् (सर्वनाम)। पाहि (पा - पालन करना, रक्षा करना)। अभि (उपसर्ग)। सवनानि (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। पाहि (पा - पालन करना, रक्षा करना)।। 20।।

(71) सूक्त 5

266. सोमः पवते सोमः पवते, अस्मै ब्रह्मणे अस्मै क्षत्राय, अस्मै सुन्वते यजमानाय
पवत इष ऊर्ज्जे पवते अद्भ्यः ओषधीभ्यः, पवते द्यावापृथिवीभ्याम् पवते सु-भूताय,
पवते विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्यः, एष ते योनिः विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्यः।।21।।

संहितापाठ

सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवतऽइषऽऊर्जे पवतेऽद्भ्यऽओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः।। 21।।

मन्त्रार्थ :- सोमः - सोम, उत्पन्न करने वाला, सृष्टिकर्ता ऐश्वर्यवान्, पवते - पवित्र करता है, सोमः - सोम, उत्पन्न करने वाला, सृष्टिकर्ता ऐश्वर्यवान्, पवते - पवित्र करता है, अस्मै - इस, ब्रह्मणे - ब्रह्म के लिए, अस्मै - इस, क्षत्राय -

क्षत्र के लिए, अस्मै - इसके लिए, सुन्वते - ऐश्वर्यवान् होता है, उत्पन्न होता है, यजमानाय - यजमान के लिए, पवत - पवित्र करो, इष - इष के लिए, ऊर्ज्जे - ऊर्जा के लिए, पवते - पवित्र करता है, अद्भ्यः - अदों के लिए, ओषधीभ्यः - ओषधियों के लिए, पवते - पवित्र करता है, द्यावा-पृथिवीभ्याम् - द्यावा-पृथिवी के लिए, पवते - पवित्र करता है, सु-भूताय - सुन्दर उत्पन्न अथवा प्राणी के लिए, पवते - पवित्र करता है, विश्वेभ्यः - सभी, त्वा - तुमको, देवेभ्यः - देवों के लिए, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - स्थान, विश्वेभ्यः - सभी, त्वा - तुमको, देवेभ्यः - देवों के लिए।। 21।।

भावार्थ :- सोम अर्थात् उत्पन्न करने वाला, सृष्टिकर्ता ऐश्वर्यवान् परमात्मा हम सबको तथा हम सबके लिए आवश्यक साधनों को पवित्र करता है, पालन करता है, रक्षा करता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सोमः (सु - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू - प्रेरणा देना)। पवते (पु - पालन करना, रक्षा करना)। सोमः (सु - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू - प्रेरणा देना)। पवते (पु - पालन करना, रक्षा करना)। ब्रह्मणे (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। अस्मै (सर्वनाम)। क्षत्राय (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। सुन्वते (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। यजमानाय (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। पवते (पु - पालन करना, रक्षा करना)। इषे (इष् - जाना, बार-बार करना, चाहिए)। ऊर्ज्जे (ऊर्ज् - प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। अद्भ्यः (अ - नहीं, दा - देना, अद् - खाना)। ओषधीभ्यः (उषध्-ओषध् - चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। पवते (पु - पालन करना, रक्षा करना)। द्यावा-पृथिवीभ्याम् (द्यु - आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु - विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। सुभूताय (सु - अच्छा, सुन्दर, भू - होना)। विश्वेभ्यः (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम)। देवेभ्यः (देव्, दिव् - चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु - मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)।।21।।

267. उपयाम गृहीतो असि इन्द्राय त्वा, बृहत् वते वयस्वते उक्थाव्यम् गृह्णामि।
यत् ते इन्द्र बृहत् वयः, तस्मै त्वा विष्णवे त्वा, एष ते योनिः उक्तेभ्यः त्वा,
देवेभ्यः त्वा देवाव्यम् गृह्णामि, यज्ञस्य आयुषे गृह्णामि।। 22 ।।

संहितापाठ

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वतऽउक्थाव्यं गृह्णामि।
यत्तऽइन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि।। 22 ।।

मन्त्रार्थ :- उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, बृहद्वते - वृहद्-युक्त के लिए, वयस्वते - वययुक्त के लिए, गति, ज्ञान, प्राप्ति के लिए, उक्थाव्यम् - कथनीय को, गृह्णामि - ग्रहण करता हूँ। यत् - जो, ते - तुम्हारा, इन्द्र - हे इन्द्र, बृहत्-वयः - बड़े वय वाला, दीर्घवययुक्त, गतिशील, ज्ञानी, तस्मै - उसके लिए, त्वा - तुमको, विष्णवे - विष्णु के लिए, त्वा - तुमको, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - स्थान, उक्तेभ्यः - कथनों द्वारा, त्वा - तुमको, देवेभ्यः - देवों के लिए, त्वा - तुमको, देवाव्यम् - देवाव्य को, गृह्णामि - ग्रहण करता हूँ, यज्ञस्य - यजन का, आयुषे - आयुष् के लिए, गृह्णामि - ग्रहण करता हूँ।। 22।।

भावार्थ :- दिव्य गुणों तथा दिव्य शक्तियों के लिए हम परमात्मा की उपासना को तथा दिव्य चेतना को अपने जीवन में ग्रहण करते हैं।

विशेष :- गृह तथा ग्रह धातुओं के अर्थ समान हैं। दोनो ही ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना अर्थ में प्रयोग होती हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। बृहद्वते (बृह् = बढ़ना)। वयस्वते (वय = गति करना, उड़ना, जाना, जानना, पाना)। उक्थाव्यम् (उक्-उच्-वद् - कहना, बोलना)। गृह्णामि

(गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। यत् (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। इन्द्र (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। बृहत् (बृह् = बढ़ना)। वयः (वय = गति करना, उड़ना, जाना, जानना, पाना)। तस्मै (सर्वनाम)। विष्णवे (विष् = व्याप्त होना)। त्वा (सर्वनाम)। एषः (सर्वनाम)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। उक्तेभ्यः (उक्-उच्-वद् - कहना, बोलना)। देवेभ्यः (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। देवाव्यम् (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। यज्ञस्य (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। आयुषे (अय् = गति करना, यु = मिलाना, अलग करना)। गृह्णामि (गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)॥ 22॥

268. मित्रा-वरुणाभ्याम् त्वा देवाव्यम्, यज्ञस्य आयुषे गृह्णामि, इन्द्राय त्वा देवाव्यम्, यज्ञस्य आयुषे गृह्णामि, इन्द्राग्निभ्याम् त्वा देवाव्यम्, यज्ञस्य आयुषे गृह्णामि, इन्द्रावरुणाभ्याम् त्वा देवाव्यम्, यज्ञस्य आयुषे गृह्णामि, इन्द्रावृहस्पतिभ्याम् त्वा देवाव्यम्, यज्ञस्य आयुषे गृह्णामि, इन्द्राविष्णुभ्याम् त्वा देवाव्यम्, यज्ञस्य आयुषे गृह्णामि॥23॥

संहितापाठ

मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यां त्वा देव्याव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावृहस्पतिभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि॥23॥

मन्त्रार्थ :- मित्रावरुणाभ्याम् - मित्र तथा वरुण के लिए, त्वा - तुमको, देवाव्यम् - देवाव्य को, यज्ञस्य- यजन के, आयुषे - आयु के लिए, गृह्णामि - लेता हूँ, स्वीकार करता हूँ, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, देवाव्यम् - देवाव्य को, यज्ञस्य- यजन के, आयुषे - आयु के लिए, गृह्णामि - लेता हूँ, स्वीकार करता हूँ, इन्द्राग्निभ्याम् - इन्द्र तथा अग्नि के लिए, त्वा - तुमको, देवाव्यम् - देवाव्य को, यज्ञस्य- यजन के, आयुषे - आयु के लिए, गृह्णामि - लेता हूँ, स्वीकार करता हूँ, इन्द्रावरुणाभ्याम् - इन्द्र तथा वरुण के लिए, त्वा - तुमको, देवाव्यम् - देवाव्य को, यज्ञस्य- यजन के, आयुषे - आयु के लिए, गृह्णामि - लेता हूँ, स्वीकार करता हूँ, इन्द्रावृहस्पतिभ्याम् त्वा - तुमको, देवाव्यम् - देवाव्य को, यज्ञस्य- यजन के, आयुषे - आयु के लिए, गृह्णामि - लेता हूँ, स्वीकार करता हूँ, इन्द्राविष्णुभ्याम् त्वा - तुमको, देवाव्यम् - देवाव्य को, यज्ञस्य- यजन के, आयुषे - आयु के लिए, गृह्णामि - लेता हूँ, स्वीकार करता हूँ॥ 23॥

भावार्थ :- हम दिव्यता को विभिन्न दिव्य शक्तियों के लिए ग्रहण करते हैं, उन दिव्य गुणों को अपने आचरण में स्वीकार करते हैं, अपनाते हैं। इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्य तो सभी चाहते हैं, परन्तु वह अकेले नहीं, वरुण, अग्नि, आदि अन्य गुणों के साथ ही हमारे जीवन में सुशोभित होता है, अन्यथा ऐश्वर्य हमको भटका भी सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- मित्रावरुणाभ्याम् (मिद् - स्नेह करना, वृ = वरण करना, अपनाना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। त्वा (सर्वनाम)। देवाव्यम् (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। यज्ञस्य (यज्ञ = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। आयुषे (अय् = गति करना, यु = मिलाना, अलग करना)। गृह्णामि (गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। इन्द्राय (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। देवाव्यम् (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। आयुषे (अय् = गति करना, यु = मिलना, अलग करना)। इन्द्राग्निभ्याम् (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, अग - गति करना, अग्रगामी होना, ऊर्ध्वगामी होना, जाना, जाना, जानना, पाना)। देवाव्यम् (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। इन्द्रावरुणाभ्याम् (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। देवाव्यम् (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। इन्द्राबृहस्पतिभ्याम (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, बृह - बढ़ना, पा = पालन करना, रक्षा करना, पत् - ऐश्वर्य होना)। देवाव्यम् (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। इन्द्राविष्णुभ्याम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, विष् - व्याप्त होना, व्यापक होना)॥ 23॥

(72) सूक्त 6

269. मूर्द्धानम् दिवो अरतिम् पृथिव्या, वैश्वानरम् ऋते आ जातम् अग्निम्।
कविम् सम्राजम् अतिथिम् जनानाम्, आसन् आ पात्रम् जनयन्त देवाः॥ 24॥

संहितापाठ

मूर्द्धानं दिवोऽअरितं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआजातमग्निम्। कविꣳसम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥24॥

मन्त्रार्थ :- मूर्द्धानम् - उच्च, दिवो - तेजस्वी, ज्योतिर्मय, अरतिम् - गतिशील, ज्ञानी, रति अर्थात् रमण से हीन, पृथिव्या - पृथिवी, वैश्वानरम् - वैश्वानर को, सभी नरों अर्थात् ले जाने वालों को अथवा विश्व हित की भावना वाले नर को, ऋते - ऋत में, आ-जातम् - उत्पन्न किया, अग्निम्। - अग्नि को, कविम् - कवि को, सम्राजम् - सम्यक् प्रकाशमान को, अतिथिम् - अतिथि को, जनानाम् - लोगों के, आसन् - थे, आ पात्रम् - पात्र को, जनयन्त - उत्पन्न करते हुए, देवाः - देवों ने॥ 24॥

भावार्थ :- परमात्मा ने ऋत के अन्तर्गत समस्त सृष्टि को उत्पन्न किया है। ऋत अर्थात् सार्वभौम सृष्टि नियमों का बोध करते हुए उनका पालन कर हम परमात्मा की व्यवस्था का लाभ पा सकते हैं।

विशेष :- विद्वानों ने पृथिव्या शब्द का अर्थ अन्तरिक्ष अथवा आकाश भी किया है। पृथ धातु का अर्थ विस्तार होना, फैलना होता है। इसी अर्थ में यह धरती भी पृथ्वी कही जाती है तथा आकाश भी अति विस्तृत होने के कारण पृथिवी कहा जा सकता है। मन्त्र का उपयुक्त अर्थ निष्पन्न हो सके तो इस प्रकार धातुज अर्थ वेद में सर्वत्र स्वीकार्य है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : - मूर्द्धानम् (मूर्द्ध = उच्च होना)। दिवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना आदि)। अरतिम् (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना, अ - नहीं, रम् - रमना, रमण करना, रति होना)। पृथिव्याः (पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। वैश्वानरम् (विश्व - सब, नृ - चलना, ले जाना, विनय होना)। ऋते (अव्यय) (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। आ (उपसर्ग)। जातम् (जन् - उत्पन्न करना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। कविम् (कु, कव् = शब्द करना, कविता करना, वर्णन करना, चित्र खींचना)। सम्राजम् (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति, राज् - चमकना, प्रकाशित होना। अतिथिम् (अत् = सतत गमन करना, निरन्तर चलना)। जनानाम् (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। आसन् (अस् - होना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीना, होना)। आ (उपसर्ग)। पात्रम् (पत् - ऐश्वर्य होना, निम्न गति होना, पा = पालन करना, बचाना, रक्षा करना)। जनयन्त (जन् = उत्पन्न करना)। देवाः (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)॥ 24॥

270. उपयाम गृहीतो असि, ध्रुवो असि, ध्रुवक्षितिः ध्रुवाणाम्, ध्रुवतमो,
अच्युतानाम् अच्युतक्षित्तमः, एष ते योनिः वैश्वानराय त्वा।
ध्रुवम् ध्रुवेण मनसा, वाचा सोमम् अव नयामि।
अथ न इन्द्र इत् विशो, असपत्नाः समनसः करत्॥25॥

संहितापाठ

उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तमऽ एष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा। ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि। अथा नऽइन्द्रऽइद्विशोऽसपत्नाः समनस्करत्॥25॥

मन्त्रार्थ :- उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, ध्रुवो - ध्रुव, असि - हो, ध्रुवक्षितिः - ध्रुवक्षिति, जिसका निवास ध्रुव हो, ध्रुव निवास वाला, ध्रुवाणाम् - ध्रुवों का, ध्रुवों के मध्य, ध्रुवतमो - अत्यन्त ध्रुव, सर्वाधिक ध्रुव, अच्युतानाम् - अपतितों का, अपतितों के मध्य, अच्युतक्षित्तमः - अपतितों में अतिशय निवास करने वाले, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - स्थान, वैश्वानराय - वैश्वानर के लिए, विश्वनायक के लिए, त्वा - तुमको। ध्रुवम् - ध्रुव को, ध्रुवेण - ध्रुव द्वारा, मनसा - मन से, वाचा - वाणी से, सोमम् सोम को, अव-नयामि - नीचे ले जाता हूँ। अथ - अब, नः - हमारा, इन्द्र - इन्द्र, इत् - ही, विशो - प्रवेशी, असपत्नाः - होने वाले ऐश्वर्य को, ऐश्वर्य में साथ न होने वालों को, समनसः - समान मन वाले, सम्यक् प्राणवान्, करत् - किया, करते हैं॥ 25॥

भावार्थ :- परमात्मा के समान समर्पित उपासक भी श्रेष्ठ विश्वनायक की भूमिका निभाते हैं। वे विवेकपूर्ण मार्गदर्शन

से भटके हुए लोगों को भी सद्मार्ग पर ले आते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, या - जाना, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। ध्रुवः = ध्रुव (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। ध्रुवक्षितिः (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना, क्षि - जाना, चलना, निवास करना)। ध्रुवाणाम् (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। ध्रुवतमो (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। अच्युतानाम् (अ + च्युत, च्यु - गिरना, भटकना, जाना)। अच्युतक्षित्तमः (अ + च्युत, च्यु - गिरना, भटकना, जाना, क्षि - जाना, चलना, निवास करना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। वैश्वानराय (विश्व - सब, नृ - चलना, ले जाना, विनय होना)। त्वा (सर्वनाम)। ध्रुवम् (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। ध्रुवेण (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। मनसा (मन् - विचार करना, मनन करना, मानना)। वाचा (वच् = बोलना)। सोमम् (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। अव-नयामि (अव - नीचे, नी = ले जाना)। अथ (अव्यय)। नः (सर्वनाम)। इन्द्रः (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। इत् (अव्यय)। विशः (विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना)। असपत्नाः (अस् = होना, पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना, पाना, नीचे गति करना)। समनसः (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति, अन - प्राण होना, अन् = नहीं, अस् = फेंकना, बिखेरना, उड़ाना)। करत् (कृ = करना)।। 25 ।।

271. यः ते द्रप्स स्कन्दति, यः ते अंशुः ग्रावच्युतो, धिषणयोः उपस्थात्।
अध्वर्य्योः वा परि वा, यः पवित्रात् तम् ते जुहोमि,
मनसा वषट्कृतम् स्वाहा, देवानाम् उत् क्रमणम् असि ।।26 ।।

संहितापाठ

यस्ते द्रप्स स्कन्दति यस्तेऽअꣳशुर्ग्रावच्युतो धिषणयोरुपस्थात्। अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतस्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ।।26 ।।

मन्त्रार्थ :- यः - जो, ते - तुम्हारा, द्रप्स - गति, स्कन्दति - जाता है, सूखता है, यः - जो, ते - तुम्हारा, अंशुः - अंश, विभाग, साथ, ग्रावच्युतो - ग्राव से च्युत, धिषणयोः - धिषणा का, वाणी का, उपस्थात् - समीप स्थित से, अध्वर्य्योः - अध्वर्य का, वा - अथवा, परि - सब ओर, वा - अथवा, यः - जो, पवित्रात् - पवित्र से, तम् - उसको, ते - तुम्हारा, तुम्हारे लिए, जुहोमि - दान करता हूँ, मनसा - मन से, वषट्कृतम् - वषट्कृत को, स्वाहा - व्यापकता से, देवानाम् - देवों का, उत्-क्रमणम् - उत्क्रम करने वाले, उच्च गति वाले, असि - हो (अस् - होना)।। 26 ।।

भावार्थ :- हमारे पास जो कुछ भी है, जैसा भी है, उसको परमात्मा के लिए समर्पित कर दें। वह परमात्मा ही समस्त देवशक्तियों का अतिक्रमण करने वाला है। अतः इस प्रकार समर्पण तथा व्यापकता की भावना से हम भी दिव्यता को अतिक्रम करते हैं, दिव्य गुण तथा दिव्य शक्तियाँ प्राप्त कर सकते हैं।

विशेष :- द्रम, द्रा, द्रु धातुओं के अर्थ गति करना हैं। अतः द्रप्स शब्द का अर्थ गति होगा। सभी गति अर्थ वाली धातुओं में ज्ञान, गमन, प्राप्ति के अर्थ माने जाते हैं, अतः द्रप्स का अर्थ विद्वान् हो सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। द्रप्सः (द्रम, द्रा, द्रु - गति करना)। स्कन्दति (स्कन् = तिरस्कार करना, स्कन्द् = जाना, जानना, पाना, सूखना)। अंशुः (अंश् - विभाग करना, बाँटना, साथ होना)। ग्रावच्युतो (गृ = सींचना, समझना, जानना, निगलना, शब्द करना, बोलना, समझाना, बताना)। धिषणयोः (धिष् = शब्द करना, बोलना)। उपस्थात् (उप = समीप, स्था = स्थित होना)। अध्वर्य्योः (अ - नहीं, ध्वृ-ध्वर् = हिंसा करना)। वा (अव्यय)। परि (उपसर्ग)। पवित्रात् (पु - पालन करना, रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना)। तम् (सर्वनाम)। जुहोमि (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। मनसा (मन् - मनन करना, विचार करना, मानना, मान्य करना)। वषट्कृतम् (वष - मार डालना, पीड़ा करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। देवानाम् (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान होना)। उत्-क्रमणम् (उत् = ऊपर, उच्च, क्रम = निर्भय से

जाना, वृद्धि करना, बचाना)। असि (अस् - होना)।।26।।

272. प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व, व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व, उत् आनाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व, वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व, क्रतूदक्षाभ्याम् मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व, श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व, चक्षुर्भ्याम् मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम्।।27।।

संहितापाठ

प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम्।।27।।

मन्त्रार्थ :- प्राणाय - प्राण के लिए, मे - मेरे, वर्चोदा - वर्चस् को देने वाले, वर्चसे - वर्चस् के लिए, पवस्व - पवित्र करो। व्यानाय - व्यान के लिए, मे - मेरे, वर्चोदा - वर्चस् को देने वाले, वर्चसे - वर्चस् के लिए, पवस्व - पवित्र करो। उदानाय - उदान के लिए, मे - मेरे, वर्चोदा - वर्चस् को देने वाले, वर्चसे - वर्चस् के लिए, पवस्व - पवित्र करो। वाचे - वाणी के लिए, मे - मेरे, वर्चोदा - वर्चस् को देने वाले, वर्चसे - वर्चस् के लिए, पवस्व - पवित्र करो। क्रतूदक्षाभ्याम् - क्रतूदक्ष के लिए, मे - मेरे, वर्चोदा - वर्चस् को देने वाले, वर्चसे - वर्चस् के लिए, पवस्व - पवित्र करो। श्रोत्राय - श्रोत्र, सुनने, कानों के लिए, मे - मेरे, वर्चोदा - वर्चस् को देने वाले, वर्चसे - वर्चस् के लिए, पवस्व - पवित्र करो। चक्षुर्भ्याम् - देखने, आँखों के लिए, मे - मेरा, वर्चोदसौ - वर्चस् को देने वाले, वर्चसे - वर्चस् के लिए, पवेथाम् - पवित्र करो।।27।।

भावार्थ :- परमात्मा की उपासना तथा समर्पण की भावना से हमारे सभी अंग-प्रत्यंग, इन्द्रियाँ, विचार पवित्र होते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- प्राणाय (अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। मे (सर्वनाम)। वर्चोदा (वर्च् = प्रकाश होना, दा = देना)। वर्चसे (वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। पवस्व (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। व्यानाय (अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। उदानाय (अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। वाचे (वद्-वच् = बोलना)। पवस्व (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। क्रतूदक्षाभ्याम् (कृ = करना, दक्ष - दक्ष होना, कुशल होना, जाना, मार डालना)। श्रोत्राय (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। चक्षुर्भ्याम् (चक्ष् = कहना, देखना)। वर्चोदसौ (वर्च् = प्रकाश होना, दा = देना)। पवेथाम् (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)।।27।।

273. आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व, ओजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व, आयुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व, विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो, वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम्।।28।।

संहितापाठ

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम्।।28।।

मन्त्रार्थ :- आत्मने - आत्मा के लिए, मे - मेरे, वर्चोदा - वर्चस् को देने वाले, वर्चसे - वर्चस् के लिए, पवस्व - पवित्र करो। ओजसे - ओज के लिए, मे - मेरे, वर्चोदा - वर्चस् को देने वाले, वर्चसे - वर्चस् के लिए, पवस्व - पवित्र करो। आयुषे - आयु के लिए, मे - मेरे, वर्चोदा - वर्चस् को देने वाले, वर्चसे - वर्चस् के लिए, पवस्व - पवित्र करो। विश्वाभ्यो - सभी के लिए, विश्व के लिए, मे - मेरा, प्रजाभ्यो - प्रजाओं के लिए, वर्चोदसौ - वर्चस् को देने वाले, वर्चसे - वर्चस् के लिए, पवेथाम् - पवित्र करो।।28।।

भावार्थ :- परमात्मा की उपासना तथा समर्पण की भावना से हमारे सभी अंग-प्रत्यंग, इन्द्रियाँ, विचारों के साथ ही ओज, आत्मा तक पवित्र हो जाते हैं। हमारी आयु अर्थात् सम्पूर्ण जीवन ही नहीं, हमारी प्रजा अर्थात् सन्तति तथा परिजन भी पवित्र हो जाते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- आत्मने (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। मे (सर्वनाम)। वर्चोदा (वर्च् = प्रकाश होना, दा = देना)। वर्चसे (वर्च -

प्रकाशित होना, चमकना)। पवस्व (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। ओजसे (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। आयुषे (अय् = गति करना, यु = मिलना, अलग करना)। विश्वाभ्यो (विश् = भीतर जाना, सभी ओर फैलना)। प्रजाभ्यः (प्र + जा, जन् = उत्पन्न होना)। वर्चोदसौ (वर्च् = प्रकाश होना, दा = देना)। पवेथाम् (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)।। 28 ।।

(73) सूक्त 7

274. को असि कतमो असि, कस्य असि को नाम असि।
यस्य ते नाम अमन्महि, यम् त्वा सोमेन अतीतृपाम्।
भूः भुवः स्वः सुप्रजाः, प्रजाभिः स्याम् सुवीरो, वीरैः सुपोषः पोषैः ।।29।।

संहितापाठ

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि।यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम।भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्यासुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ।।29।।

मन्त्रार्थ :- को - कौन, असि - हो, कतमो - कैसे, असि - हो, कस्य - किसके, असि - हो, को -कौन, नाम - नाम वाले, असि - हो। यस्य - जिसका, ते - तुम्हारा, तुम्हारे लिए, नाम - नाम, अमन्महि - मानते हैं, यम् - जिसको, त्वा - तुमको, सोमेन - सोम द्वारा, अतीतृपाम् - अतितृप्त करते हैं। भूः - भू, अस्तित्व, भुवः - होने वाला, भावी, स्वः - सृजन, ऐश्वर्य, सुप्रजाः - अच्छी प्रजा, प्रजाभिः - प्रजाओं द्वारा, स्याम् - हों, सुवीरो - अच्छे वीर, वीरैः - वीरों द्वारा, सुपोषः - सुन्दर पोषण, पोषैः - पोषण द्वारा।। 29 ।।

भावार्थ :- हमें विचार करना चाहिए कि हम मूलतः कौन हैं, कैसे हैं, किसके हैं, हमारा वास्तविक नाम अथवा परिचय क्या है। अपने वास्तविक स्वरूप को जानकर ही हम सोम द्वारा तृप्त हो सकते हैं तथा अन्य को भी तृप्त कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- कः (सर्वनाम)। असि (अस् = होना)। कतमः (सर्वनाम)। कस्य (सर्वनाम)। नाम (अव्यय)। यस्य (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। अमन्महि (मन् = जानना, मानना, विचार करना)। यम् (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम)। सोमेन (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। अतीतृपाम् (अति - अत्यन्त, तृप् - तृप्त होना, तृप्त करना)। भूः (भू = होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। भुवः = भुवः (भू = होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। स्वः (स्वर् = शब्द करना, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। सुप्रजाः (सु - उत्तम, उपसर्ग, जन् = उत्पन्न करना)। प्रजाभिः (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, जन् = उत्पन्न करना)। स्याम् (अस् - होना)। सुवीरः (वीर - वीर होना, पराक्रम करना)। वीरैः (वीर - वीर होना, पराक्रम करना)। सुपोषः (पुष् - पोषण करना)। पोषैः (पुष् - पोषण करना)।। 29 ।।

275. उपयाम-गृहीतो असि मधवे त्वा, उपयाम-गृहीतो असि माधवाय त्वा,
उपयाम-गृहीतो असि शुक्राय त्वा, उपयाम-गृहीतो असि शुचये त्वा,
उपयाम-गृहीतो असि नभसे त्वा, उपयाम-गृहीतो असि नभस्याय त्वा,
उपयाम-गृहीतो असि इषे त्वा, उपयाम-गृहीतो असि ऊर्ज्जे त्वा,
उपयाम-गृहीतो असि सहसे त्वा, उपयाम-गहीतो असि सहस्याय त्वा,
उपयाम-गृहीतो असि तपसे त्वा, उपयाम-गृहीतो असि तपस्याय त्वा,
उपयाम-गृहीतो असि अंहसः पतये त्वा।।30।।

संहितापाठ

उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसीषे

त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यꣳहसस्पतये त्वा ॥ 30 ॥

मन्त्रार्थ :- उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, मधवे - मधु के लिए, त्वा - तुमको, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, माधवाय - माधव के लिए, त्वा - तुमको, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, शुक्राय - शुक्र के लिए, त्वा - तुमको, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, शुचये - शुचि के लिए त्वा - तुमको, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, नभसे - नभः के लिए, त्वा - तुमको, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, नभस्याय - नभस्य के लिए, त्वा - तुमको, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इषे - इष के लिए, गति, अभ्यास, इच्छा के लिए, त्वा - तुमको, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, ऊर्ज्जे - ऊर्जा के लिए, त्वा - तुमको, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, सहसे - सहः, सहनशीलता, सामर्थ्य के लिए, त्वा - तुमको, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, सहस्याय - सहस्य के लिए, त्वा - तुमको, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, तपसे - तपः के लिए, त्वा - तुमको, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, तपस्याय - तपस्य के लिए, त्वा - तुमको, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, अंहसः - अंहः के, पतये - पालक, रक्षक, ऐश्वर्य के लिए, त्वा - तुमको ॥ 30 ॥

भावार्थ :- उपयाम-गृहीत का अर्थ समीप गमन से ग्रहण किया हुआ होता है। उप का अर्थ समीप, या धातु का अर्थ जाना, गृह् धातु का अर्थ ग्रहण करना, लेना होता है। मधुरता आदि सद्गुणों तथा श्रेष्ठ उद्देश्यों के लिए परमात्मा के निकट जाकर अर्थात् उसकी उपासना कर हम सद्गुणों तथा दिव्य शक्तियों को ग्रहण करते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। मधवे (मध्-मधु = मधुर होना, मीठा होना)। त्वा (सर्वनाम)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। माधवाय (मध्-मधु = मधुर होना, मीठा होना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। शुक्राय (शुच्, शुक् = पावन होना, शुद्ध होना, शुद्ध करना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। शुचये (शुच - पवित्र करना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। नभसे (नभ् = मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना, नष्ट होना, हिंसा करना)। असि (अस् - होना)। नभस्याय (नभ् = मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना, नष्ट होना, हिंसा करना)। इषे (इष् = जाना, बार-बार करना, चाहिए)। ऊर्ज्जे (ऊर्ज् = बल होना, प्राण होना, प्राणवान् करना)। सहसे (सह - सहना, सहन करना, शक्तिमान होना, करना, सन्तुष्ट होना)। सहस्याय (सह - सहना, सहन करना, शक्तिमान होना या करना, सन्तुष्ट होना)। तपसे (तप् = तप्त होना, तप्त करना, तप करना, ऐश्वर्य होना)। तपस्याय (तप् = तप्त होना, तप्त करना, तप करना, ऐश्वर्य होना)। अंहसः (अंह् - प्रकाशित होना, चमकना)। पतये (पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना, पाना, नीचे गति करना)॥ 30 ॥

(74) सूक्त 8

276. इन्द्राग्नी आ गतम् सुतम्, गीर्भिः नभो वरेण्यम्। अस्य पातम् धिया इषिता।
उपयाम गृहीतो असि इन्द्राग्निभ्याम् त्वा, एष ते योनिः इन्द्राग्निभ्याम् त्वा ॥ 31 ॥

संहितापाठ

इन्द्राग्नीऽआगतꣳसुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्। अस्य पातं धियेषिता। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥ 31 ॥

मन्त्रार्थ :- इन्द्राग्नी - इन्द्र और अग्नि, आ-गतम् - आ गये, सुतम् - उत्पन्न किया हुआ, ऐश्वर्यवान्, गीर्भिः - वाणियों द्वारा, वचनों द्वारा, नभो - नभ, वरेण्यम् - वरणीय, वरण करने योग्य। अस्य - इसका, पातम् - पालित, रक्षित, धिया - बुद्धि द्वारा, इषिता - इच्छित, प्राप्त, ज्ञानी। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इन्द्राग्निभ्याम् - इन्द्र और अग्नि के लिए, त्वा - तुमको, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - स्थान, बन्धन, इन्द्राग्निभ्याम् - इन्द्र और अग्नि

के लिए, त्वा - तुमको।। 31।।

भावार्थ :- इन्द्र और अग्नि अर्थात् ऐश्वर्य तथा गति, ज्ञान, अग्रता, उच्चता हमारे लिए दिव्य गुण भी हैं तथा दिव्य शक्तियाँ भी। सुत अर्थात् सुन्दर ऐश्वर्य-प्रद वाणी से आते हैं। वे हमारे लिए वरेण्य हैं, वरणीय हैं, अपनाने योग्य हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- इन्द्राग्नी (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना)। आगतम् (आ - उपसर्ग, गम् - जाना, आ-गम् - आना)। सुतम् (सु - उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। गीर्भिः (गृ - सिञ्चन करना, घर्षण करना, जानना, समझना, निगलना, बहिर्गमन करना, गृ - शब्द करना)। नभो (नभ् = मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना, नष्ट होना, हिंसा करना)। वरेण्यम् (वृ - वरण करना)। अस्य (सर्वनाम)। पातम् (पा = रक्षा करना)। धिया (धी = धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना, बुद्धि , प्रज्ञा होना, धि = धारण करना, युक्त होना)। इषिता (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। इन्द्राग्निभ्याम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना)। त्वा (सर्वनाम)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। इन्द्राग्निभ्याम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना)।। 31।।

277. आ घा ये अग्निम् इन्धते, स्तृणन्ति बर्हिः आनुषक्। येषाम् इन्द्रो युवा सखा।
उपयाम गृहीतो असि अग्नीन्द्राभ्याम् त्वा, एष ते योनिः अग्नीन्द्राभ्याम् त्वा।। 32।।

संहितापाठ

आ घा येऽअग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्। येषामिन्द्रो युवा सखा। उपयामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा।। 32।।

मन्त्रार्थ :- आ - समन्तात्, पूर्णतः, घा - ही, ये - जो, अग्निम् -अग्नि को, इन्धते - प्रदीप्त करते हैं, प्रकाशित करते हैं, स्तृणन्ति - आच्छादित करते हैं, बर्हिः - बढ़ा हुआ, विराट, महान्, बाहर, आनुषक् - अनुकूलतया, क्रमशः,। येषाम् - जिनका, इन्द्रो - इन्द्र, युवा - युक्त, सखा - मित्र। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, अग्नीन्द्राभ्याम् - इन्द्र और अग्नि के लिए, त्वा - तुमको, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - स्थान, बन्धन, अग्नीन्द्राभ्याम् - इन्द्र और अग्नि के लिए, त्वा - तुमको।। 32।।

भावार्थ :- जो अपने जीवन में अग्नि अर्थात् परमात्मा की चेतना को प्रकाशित करते हैं तथा बाह्य आचरण को भी उस अनुशासन से आच्छादित करते हैं, उनके लिए इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा युवा सखा बन जाता है। परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा जिनका मित्र हो, सखा हो, उनको सुख - शान्ति स्वतः अनुभव होती है, यह स्वाभाविक है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- आ (उपसर्ग)। घा (अव्यय)। ये (सर्वनाम)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना)। इन्धते (इन्ध् = प्रकाश होना)। स्तृणन्ति (स्तृ = आच्छादित करना, ढकना)। बर्हिः (बृह् = बढ़ना)। आनुषक् (नु - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। येषाम् (सर्वनाम)। इन्द्रः (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। युवा (सर्वनाम)। सखा (सख् = मित्र होना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। इन्द्राग्निभ्याम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना)। त्वा (सर्वनाम)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। इन्द्राग्निभ्याम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना)।।

278. ओम् आसः चर्षणी-धृतो, विश्वे देवास आ गत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम्।
उपयाम गृहीतो असि, विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्य, एष ते योनिः विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्यः।। 33।।

संहितापाठ

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवासऽआगत।दाश्वासो दाशुषः सुतम्।उपयामगहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥33॥

मन्त्रार्थ :- ओम् - परमात्मा, रक्षक, आसः - आसीन, चर्षणी-धृतो - आनन्द, चेतना, विचार को धारण करने वाला, गतिशील तथा गति को धारण करने वाले, विश्वे - सभी, देवासः - देवगण, आ-गत - आ गये।दाश्वांसो - दानी, दाशुषः - दानी का, सुतम् - सुत को।उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, विश्वेभ्यः - विश्व के लिए, सबके लिए, त्वा - तुमको, देवेभ्य - देवों के लिए, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - स्थान, बन्धन, विश्वेभ्यः - विश्व के लिए, सबके लिए, त्वा - तुमको, देवेभ्य - देवों के लिए॥33॥

भावार्थ :- ओम् परमात्मा चर्षणी-धृत है, वह आनन्द, चेतना, विचार को धारण करने वाला है, वह गति, गतिशीलता, गतिशील प्राणियों को भी धारण करने वाला है।चर्षणी का अर्थ विद्वानों ने मनुष्य भी किया है।मनुष्य में इन गुणों की अपेक्षा की जाती है।वह दानियों के लिए महादानी है।परमात्मा का अनुदान पाने के लिए हममें भी अपनी क्षमता के अनुसार सेवा-सहयोग की भावना होनी चाहिए।

विशेष :- ओम् शब्द परमात्मा का वाचक है।ओम् अव्यय है, परमात्मा का मुख्य नाम है।ओमासः पद (ओम् - आसः) का अर्थ है ओम् अर्थात् परमात्मा सर्वदा सर्वत्र उपस्थित, विद्यमान है।ओमासः पद में अव (रक्षा करना) धातु मानकर विद्वानों ने इसका अर्थ रक्षक किया है।परमात्मा ही हम सबका रक्षक है।संस्कृत भाषा में ओम् शब्द अनुमति के अर्थ में भी प्रयोग होता है।परमात्मा का नाम लेकर अनुमति का संकेत देने की परम्परा उत्तम ही है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- ओमासः (ओम् - आसः, ओम् - परमात्मा, अस् - होना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीवित रहना, होना)।चर्षणीधृतो (चृष्-चर्ष - आनन्द होना, चेतन होना, विचार करना, धृ - धारण करना)। विश्वे (सर्वनाम)।देवासः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)।आ-गत (आ = समन्तात्, पूर्णतः, उपसर्ग, गम् = जाना, जानना, पाना, आ-गम् - आना)।दाश्वांसः (दश् = देना)।दाशुषः (दश् = देना)।सुतम् (सु - उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)।उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)।असि (अस् - होना)।विश्वेभ्यः (सर्वनाम)।देवेभ्यः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। विश्वेभ्यः (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम)॥33॥

279. विश्वे देवास आ गत, शृणुता मे इमम् हवम्।आ इदम् बर्हिः नि सीदत।
उपयाम गृहीतो असि, विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्य, एष ते योनिः, विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्यः॥34॥

संहितापाठ

विश्वे देवासऽआगत शृणुता म इमꣳहवम्।एदं बर्हिर्निषीदत।उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥34॥

मन्त्रार्थ :- विश्वे - सभी, देवासः - देवगण, आ-गत - आ गये।शृणुता - सुनें, मे - मेरा, इमम् - यह, हवम् - आह्वान।आ - समन्तात्, पूर्णतः, इदम् - यह, बर्हिः - वृद्धि, नि-सीदत - बैठे, स्थित हो।उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, विश्वेभ्यः - विश्व के लिए, सबके लिए, त्वा - तुमको, देवेभ्य - देवों के लिए, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - स्थान, बन्धन, विश्वेभ्यः - विश्व के लिए, सबके लिए, त्वा - तुमको, देवेभ्यः - देवों के लिए॥34॥

भावार्थ :- सभी देवगण आ गये हैं, वे हमारा यह आह्वान सुनें कि यहाँ स्थित हों।इस स्थान में उनकी उपस्थिति से वृद्धि हो, समृद्धि हो, श्रीवृद्धि हो।देवों का यह स्थान केवल हमारे लिए नहीं, विश्व के लिए है, सभी के लिए है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- विश्वे (सर्वनाम)।देवासः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)।आ-गत (आ = समन्तात्, पूर्णतः, उपसर्ग, गम् = जाना, जानना, पाना, आ-गम् - आना)। शृणुता (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)।मे (सर्वनाम)।इमम् (सर्वनाम)।हवम् (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान

करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। आ (उपसर्ग)। इदम् (सर्वनाम)। बर्हिः (बृह् = बढ़ना)। नि (उपसर्ग)। सीदत (सद् - जाना, चलना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। विश्वेभ्यः (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम)। देवेभ्यः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। विश्वेभ्यः (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम)। देवेभ्यः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)॥ 34॥

(75) सूक्त 9

280. इन्द्र मरुत्वः इह पाहि सोमम्, यथा शार्याते अपिबः सुतस्य।
तव प्रणीती तव शूर शर्म्मन्, आ विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः।
उपयाम गृहीतो असि, इन्द्राय त्वा मरुत्वते, एष ते योनिः इन्द्राय त्वा मरुत्वते॥35॥

संहितापाठ

इन्द्र मरुत्वऽइह पाहि सोमं यथा शार्य्यातेऽअपिबः सुतस्य। तव प्रणीती तव शूर शर्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते॥35॥

मन्त्रार्थ :- इन्द्र - हे इन्द्र, मरुत्वः - मरुत्, मरणशील का, इह - यहाँ, पाहि - पालन करो, रक्षा करो, सोमम् - सोम को, यथा - जैसे, शार्याते - शार्यात में, अपिबः - पान किया, सुतस्य - सुत का। तव - तुम्हारा, प्रणीती - ले जाने वाला, तव - तुम्हारा, शूर - शूर, वीर, पराक्रमी, शर्म्मन् - सुख, आ - समन्तात्, पूर्णतः, विवासन्ति - विशेष वास करते हैं, कवयः - कविगण, सुयज्ञाः - सुन्दर यजन करने वाले। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, मरुत्वते - मरुत्वत् के लिए, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - स्थान, बन्धन, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, मरुत्वते - मरुत्वत् के लिए॥ 35॥

भावार्थ :- इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा मरुत् अर्थात् मरणशील प्राणियों के साथ है, उनका पालक है, रक्षक है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- इन्द्र (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। मरुत्वः (मृ = मरना)। इह (सर्वनाम)। पाहि (पा = पालन करना, रक्षा करना)। सोमम् (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। यथा (सर्वनाम)। शार्य्याते (शृ - सुनना, जाना, जानना, पाना, शृ - मार डालना या दुःख देना, पीड़ा करना)। अपिबः (पा-पिब् पीना, पान करना)। सुतस्य (सु - उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। तव (सर्वनाम)। प्रणीती (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, नी - पहुँचाना, प्राप्त होना, मिलना, ले जाना)। शूर (शूर - पराक्रमी होना, शूरवीर होना, वीरता दिखाना)। शर्म्मन् (शर्म् = सुख होना, श्रीमान् होना, सम्मानित होना)। आ (उपसर्ग)। विवासन्ति (वि = विशेष, विना, विलोम, वास - वासित करना, सुगन्धित करना, धूपित करना, धूप देना, वस - निवास करना)। कवयः (कु, कव् = शब्द करना)। सुयज्ञाः (सु - उत्तम, उपसर्ग, यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। मरुत्वते (मृ = मरना, देहत्याग करना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। मरुत्वते (मृ = मरना, देहत्याग करना)॥ 35॥

281. मरुत्वन्तम् वृषभम् वावृधानम्, अकवारिम् दिव्यम् शासम् इन्द्रम्।
विश्वा-साहम् अवसे नूतनाय, उग्रम् सहो-दाम् इह तम् हुवेम।
उपयाम गृहीतो असि, इन्द्राय त्वा मरुत्वते, एष ते योनिः इन्द्राय त्वा मरुत्वते।
उपयाम गृहीतो असि, मरुताम् त्वा ओजसे॥36॥

संहितापाठ

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यꣳशासमिन्द्रम्। विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रꣳसहोदामिह तꣳहुवेम। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते। उपयामगृहीतोऽसि मरुतां त्वौजसे।36॥

मन्त्रार्थ :- मरुत्वन्तम् - मरुत्वान्, वृषभम् - वृषभ, वर्षा करने वाले, वावृधानम् - वृद्धि करने वाले, अकवारिम् - अकवारि, दिव्यम् - दिव्य, शासम् - शासन करने वाले, इन्द्रम् - इन्द्र को। विश्वा-साहम् - विश्व को सहन करने में समर्थ, अवसे - रक्षा के लिए, नूतनाय - नूतन के लिए, उग्रम् - उग्र, सहो-दाम् - साथ देने वाले, इह - यहाँ, तम् - उसको, हुवेम - अहवान करते हैं। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, मरुत्वते - मरुत्वत् के लिए, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - स्थान, बन्धन, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, मरुत्वते - मरुत्वत् के लिए। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, मरुताम् - मरुतों का, त्वा - तुमको, ओजसे - ओज के लिए॥ 36॥

भावार्थ :- इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा के दिव्य गुणों का स्मरण करते हुए आह्वान किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- मरुत्वन्तम् (मृ = मरना, देहत्याग करना)। वृषभान् (वृष - वर्षा होना, सिंचन करना, गर्भवती होना, अमानवी पराक्रम होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने में समर्थ होना)। वावृधानम् (वृध - बढ़ना, अधिक होना)। अकवारिम् (अक् - जाना, टेढ़ा जाना, कव - कविता करना, वर्णन करना, तस्वीरें खींचना, वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ = संवरण करना, नियोजित करना, आच्छादित करना, सेवा करना, परिचर्या करन, चुनना, छांटना, रंगना, पसन्द करना, नियोजित करना, नियमित करना, आच्छादित करना, हटाना, ढकना, घेरना)। दिव्यम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रकाशित होना)। शासम् (शास् = शासन करना, आशा करना)। इन्द्रम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। विश्वा-साहम् (विश्व = सभी, सह् = सहन करना, समर्थ होना)। अवसे (अव् = रक्षा करना)। नूतनाय (नु = स्तुति करना, प्रशंसा करना, निश्चय करना, नया करना, नवीन करना, नूतन होना)। उग्रम् = क्रूर को (उग् - उग्र - उग्र होना, तेज होना)। सहो-दाम् (सह - साथ, सह् = सहन करना, दा - देना)। इह (सर्वनाम)। तम् (सर्वनाम)। हुवेम (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। मरुत्वते (मृ = मरना, देहत्याग करना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। मरुत्वते (मृ = मरना, देहत्याग करना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। मरुताम् (मृ = मरना, देहत्याग करना)। ओजसे (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)॥ 36॥

282. सजोषाः इन्द्र स-गणो मरुद्भिः, सोमम् पिब वृत्र-हा शूर विद्वान्।
जहि शत्रून् अप मृधो नुदस्व, अथ अभयम् कृणुहि विश्वतो नः।
उपयाम गृहीतो असि, इन्द्राय त्वा मरुत्वते, एष ते योनिः इन्द्राय त्वा मरुत्वते॥37॥

संहितापाठ

सजोषाऽइन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्। जहि शत्रूँ1।ऽरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते॥37॥

मन्त्रार्थ :- सजोषाः - जोष सहित, विचार, सेवा, कामना युक्त, इन्द्र - हे इन्द्र, स-गणो - गणों के साथ, मरुद्भिः - मरुतों के साथ, सोमम् - सोम को, पिब - पान करो, वृत्र-हा - वृत्र का हनन करने वाले, शूर - शूर, विद्वान् - विद्वान्। जहि - हनन करो, शत्रून् - शत्रुओं को, अप - निम्न, मृधो - मारने वाले, आद्र करने वाले, मरण को धारण करने वाले, नुदस्व - प्रेरित करो, अथ - अब, इस प्रकार, अभयम् - अभय, भय-हीन, निर्भय, कृणुहि - करो, विश्वतो - विश्व से, सबसे, नः - हमको। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, मरुत्वते - मरुत्वत् के लिए, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - स्थान, बन्धन, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, मरुत्वते - मरुत्वत् के लिए॥ 37॥

भावार्थ :- इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा हम सबका साथी है, सबके साथ सदैव रहता है। उसका साथ अनुभव करते हुए हम अभय रहते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सजोषाः (स - साथ, जुष् = विचार करना, सेवा करना, प्रसन्न करना, सन्तुष्ट करना, चाहना)। इन्द्र (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। सगणः (स- साथ, सहित, गण - गणना करना)। मरुद्भिः (मृ = मरना, देहत्याग करना)। सोमम् (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। पिब (पा-पिब् पीना, पान करना)। वृत्रहा (वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना, हन् - हिंसा करना)। शूर (शूर - पराक्रमी होना, शूरवीर होना, वीरता दिखाना)। विद्वान् (विद् = जानना)। जहि (जह - हिंसा करना, चलना, फैलना, जहा – परित्याग करना, छोड़ना)। शत्रून् (शी-शद्-शत् - जीर्ण होना, गिरना, गिराना)। अप (उपसर्ग)। मृधो (मृध - मार डालना या दुःख देना, आर्द्र करना, गीला करना, गीला होना)। नुदस्व (नुद् = भेजना, प्रेरणा करना, जाना)। अथ (अव्यय)। अभयम् (अ - नहीं, भी = भय होना, डरना, घबराना)। कृणुहि (कृ = करना)। विश्वतः (सर्वनाम)। नः (सर्वनाम)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। मरुत्वते (मृ = मरना, देहत्याग करना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। मरुत्वते (मृ = मरना, देहत्याग करना)।। 37 ।।

283. मरुत्वान् इन्द्र वृषभो रणाय, पिबा सोमम् अनु स्वधम् मदाय।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिम्, त्वम् राजा असि प्रति-पत् सुतानाम्।
उपयाम गृहीतो असि, इन्द्राय त्वा मरुत्वते, एष ते योनिः इन्द्राय त्वा मरुत्वते।। 38 ।।

संहितापाठ

मरुत्वाँ2 ।ऽइन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय।आसिञ्चस्व जठरे मध्वऽऊर्मिं त्वꣳराजासि प्रतिपत्सुतानाम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते।। 38 ।।

मन्त्रार्थ :- मरुत्वान् - मरुतों से युक्त, मरणशील से युक्त, मरुतों वाला, इन्द्र - हे इन्द्र, वृषभो - वृषभ, वर्षा करने वाला, रणाय - रण के लिए, शब्द-वाणी के लिए, पिबा - पान करो, सोमम् - सोम को, अनु - पीछे, स्वधम् - स्वधा को, मदाय - हर्ष के लिए, तृप्ति के लिए। आ - समन्तात्, पूर्णतः, सिञ्चस्व - सिञ्चन करो, जठरे - जठर में, मध्व - मधुर करो, ऊर्मिम् - ऊर्मियों को, त्वम् - तुम, राजा - राजा, असि - हो, प्रति-पत् - प्रत्येक पद में, पद-पद में, प्रत्येक ऐश्वर्य, सुतानाम् - सुतों के। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, मरुत्वते - मरुत्वत् के लिए, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - स्थान, बन्धन, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, मरुत्वते - मरुत्वत् के लिए।। 38 ।।

भावार्थ :- परमात्मा इन्द्र का साथ, सानिध्य अनुभव कर हमें आनन्द प्राप्त होता है। हमारे लिए वही राजा है, वही प्रकाशपुञ्ज है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : - मरुत्वान् - मरुत्वान्, मरुतों से युक्त, मरणशील से युक्त (मृ = मरना, देहत्याग करना)। इन्द्र (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। वृषभः (वृष - गर्भवती होना, अमानवी पराक्रम होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। रणाय (रण - शब्द करना, जाना)। पिबा (पा = पीना, पान करना)। सोमम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। अनु (उपसर्ग)। स्वधम् (स्व = निज, अपना, धा = धारण करना, पहनना, पोषण करना, रक्षण करना, धि - पास रखना या होना, युक्त होना)। मदाय (मद - हर्षित होना, तृप्त करना, समाधान करना)। आसिञ्चस्व (आ - समन्तात्, पूर्णतः, सिञ्च् - सिञ्चन करना)। जठरे (जठ - धारण करना)। मध्वः (मधु = मीठा)। ऊर्मिम् (ऊ - शब्द करना, विश्वास करना, उर् = जाना, चलना)। त्वम् (सर्वनाम)। राजा (राज् = चमकना, प्रकाशित-शोभित होना)। असि (अस् = होना)। प्रति-पत् (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, पद् - चलना, जाना, जानना, पाना, पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना, पाना, नीचे गति करना)। सुतानाम् (सु - उत्पन्न करना,

ऐश्वर्य होना, आसवन करना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। मरुत्वते (मृ = मरना, देहत्याग करना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। मरुत्वते (मृ = मरना, देहत्याग करना)॥ 38॥

284. महान् इन्द्रो नृवत् आ चर्षणिप्रा, उत द्विबर्हो अमिनः सहोभिः।
अस्मद्-द्र्यक् वावृधे वीर्याय उरुः, पृथुः सुकृतः कर्तृभिः भूत्।
उपयाम गृहीतो असि महेन्द्राय त्वा, एष ते योनिः महेन्द्राय त्वा॥ 39॥

संहितापाठ

महाँ2 ।ऽइन्द्रो नृवदाचर्षणिप्राऽउत द्विबर्हाऽअमिनः सहोभिः।अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्। उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा॥39॥

मन्त्रार्थ :- महान् - महान्, बड़ा, पूज्य, इन्द्रो - इन्द्र, परम ऐश्वर्यवान्, नृवत् - ले जाने वाला, आ - समन्तात्, पूर्णतः, चर्षणिप्रा - आनन्द, चेतना, विचार को पूर्ण करने वाला, उत - ही, द्विबर्हो - दोगुणा प्रयास करने वाला, श्रेष्ठ, अमिनः - शब्द, गति, सेवा युक्त, सहोभिः - सहन, सामर्थ्य, बल द्वारा।अस्मद्-द्र्यक् - हमारी दृष्टि, वावृधे - वृद्धि के लिए, वीर्याय - पराक्रम के लिए, उरुः - बहुत, पृथुः - विस्तार, सुकृतः - सुन्दर कर्म करने वाला, कर्तृभिः - कर्ता द्वारा, भूत् - हुआ। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, महेन्द्राय - महेन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - स्थान, बन्धन, महेन्द्राय - महेन्द्र के लिए, त्वा - तुमको॥ 39॥

भावार्थ :- हम महान् ऐश्वर्यवान् परमात्मा की चेतना से संयुक्त होकर दो गुना प्रयास करें, पराक्रम करें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- महान् (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। इन्द्रो (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। नृवत् (नृ - ले जाना)। आ (उपसर्ग)। चर्षणिप्रा (चृष्-चर्ष - आनन्द होना, चेतन होना, विचार करना)। उत (अव्यय)। द्विबर्हाः (द्वि = दो, बर्ह - श्रेष्ठ होना, प्रयास करना)। अमिनः (अम् = गति, शब्द, सेवा करना, रोग होना, अ + मा, अ - नहीं, मा = मापना, नापना, तौलना)। सहोभिः (सह् = सहन करना)। अस्मद्-द्र्यक् (अस्मद् = मैं, हम, दृश् - देखना)। वावृधे (वृध - बढ़ना, अधिक होना)। वीर्याय (वीर् = पराक्रम करना)। उरुः (उर् = जाना, चलना)। पृथु (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। सुकृतः (सु = अच्छा, कृ = करना)। कर्तृभिः (कृ = करना)। भूत् (भू - होना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। महेन्द्राय (मह - सम्मान करना, पूजा करना, इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। महेन्द्राय (मह - सम्मान करना, पूजा करना, इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)॥ 39॥

285. महान् इन्द्रो यः ओजसा, पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव।स्तोमैः वत्सस्य वावृधे।
उपयाम गृहीतो असि महेन्द्राय त्वा, एष ते योनिः महेन्द्राय त्वा॥40॥

संहितापाठ

महाँ2 ।ऽइन्द्रो यऽओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ2 ।ऽइव।स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे।उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा॥40॥

मन्त्रार्थ :- महान् - महान्, बड़ा, पूज्य, इन्द्रो - इन्द्र, परम ऐश्वर्यवान्, यः - जो, ओजसा - ओज द्वारा, पर्जन्यो - पर्जन्य, वृष्टिमाँ - वर्षा करते हुए, इव - के समान। स्तोमैः - स्तोमों द्वारा, वत्सस्य - वत्स का, बोलने वाले का, वावृधे - वृद्धि के लिए। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, महेन्द्राय - महेन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - स्थान, बन्धन, महेन्द्राय - महेन्द्र के लिए, त्वा - तुमको॥ 40॥

भावार्थ :- पर्जन्य अर्थात् पोषण उत्पन्न करने वाले बादलों की भाँति परमात्मा की चेतना शक्ति सदैव हमारे लिए बरसती रहती है। स्तोम अर्थात् स्तुतियों से हम उसके अधिकारी बनते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- महान् (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। इन्द्रो (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। यः (सर्वनाम)। ओजसा (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। पर्जन्यो (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, तृप्त करना, जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। वृष्टिमान् - वृष्टिमाँ (वृष् = उच्च पराक्रम करना, बरसना)। इव (अव्यय)। स्तोमैः (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना, आत्मश्लाघा करना)। वत्सस्य (वद् = बोलना)। वावृधे (वृध - बढ़ना, अधिक होना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। महेन्द्राय (मह - सम्मान करना, पूजा करना, इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। महेन्द्राय (मह - सम्मान करना, पूजा करना, इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)॥ 40॥

(76) सूक्त 10

286. उत् उ त्यम् जात वेदसम्, देवम् वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥41॥

संहितापाठ

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यस्वाहा॥41॥

मन्त्रार्थ- केतवः - केतुगण, विद्वान्, ज्ञानीजन, उ - ही, त्यम् - तुम, जातवेदसम् - जातवेद, जिससे वेद, ज्ञान उत्पन्न हुआ, वेद को उत्पन्न करने वाला, देवम् - देव, सूर्यम् - सूर्य को, विश्वाय - विश्व, दृशे - देखने के लिए, उत् - उच्च, उत्तम, वहन्ति - वहन करते हैं॥ 31॥

भावार्थ - परमात्मा जातवेद है अर्थात् वेद तथा ज्ञान को उत्पन्न करने वाला है। उस देव को केतवः अर्थात् ज्ञानी ही वहन करते हैं। सूर्य का अर्थ है उत्पन्न करने वाला तथा ऐश्वर्यवान्। जातवेद, देव, सूर्य मूलतः परमात्मा के ही विशेषण हैं। इन गुणों को आत्मसात् करने वाले उपासक को भी इन विशेषणों से भूषित किया जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- उत् (उपसर्ग)। उ (अव्यय)। त्यम् (सर्वनाम)। जातवेदसम् (जन् = उत्पन्न होना, विद् = जानना)। देवम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। वहन्ति (वह् = वहन करना ले जाना)। केतवः (कित - जानना)। दृशे (दृश्-पश्य -देखना)। विश्वाय (सर्वनाम)। सूर्यम् (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना)॥ 41॥

287. चित्रम् देवानाम् उत् अगात् अनीकम्, चक्षुः मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः।
आ अप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्, सूर्य आत्मा जगतः तस्थुषः च॥42॥

संहितापाठ

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षꣳसूर्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥42॥

मन्त्रार्थ :- चित्रम् - चित्र, चेतना, देवानाम् - देवों का, उत् - उच्च, उत्तम, अगात् - गया, अनीकम् - अनीक को, प्राणवानों को, चक्षुः - दृष्टि, नेत्र, मित्रस्य - मित्र का, वरुणस्य - वरुण का, अग्नेः - अग्नि का। आ - समन्तात्, पूर्णतः, अप्रा - पूर्ण किया, द्यावापृथिवी - द्यावा और पृथिवी, अन्तरिक्षम् - अन्तरिक्ष को, सूर्य - सूर्य, आत्मा - आत्मा, जगतः - जगत् का, तस्थुषः - स्थापित का, च - और॥ 42॥

भावार्थ :- देवों के चित्र तथा चेतना हमको प्राणवान् बनाते हैं। मित्रता तथा वरणीय का ध्यान रखने वाली दृष्टि अग्नि अर्थात् अग्रगामी, ऊर्ध्वगामी बनाती है। इससे पृथ्वी से द्युलोक तथा अन्तरिक्ष तक पूर्णता प्राप्त होती है। परमात्मा की चेतना ही सर्वत्र व्याप्त है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- चित्रम् (चित्र् = चित्र बनाना, आश्चर्य करना, चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। देवानाम् (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान (विद्वान) होना)। उत् (अव्यय)। अगात् (गम् - जाना)। अनीकम् (अन् = स्पन्दन करना, हलचल करना)। चक्षुः (चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)। मित्रस्य (मिद् - स्नेह करना)। वरुणस्य (वृ - वरण करना)। अग्नेः (अग् = गति करना, अग्रणी होना)। आ (उपसर्ग)। अप्राः (प्रा = पूर्ण

करना, भरना)। द्यावापृथिवी (द्यु = आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना, सद् - बैठना, चलना)। सूर्य (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। आत्मा (अत् = सतत गमन करना, निरन्तर चलना)। जगतः (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। तस्थुषः (तस - स्थापित होना, स्थापना करना, फेंकना, उड़ा देना, भेजना, खोदना, कुम्हलाना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना)। च (अव्यय)॥ 42॥

288. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्, विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोधि अस्मत् जुहुराणम् एनो, भूयिष्ठाम् ते नम उक्तिम् विधेम॥ 43॥

संहितापाठ

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा॥43॥

मन्त्रार्थ :- अग्ने हे अग्नि (परमात्मन्), **अस्मान्** हमें **सुपथा** अच्छे मार्ग पर **नय** ले चलो। **विश्वानि** सभी **देव** दिव्य शक्तियाँ, **वयुनानि** रचनाशील **विद्वान्** विद्वान् **एनो** यह **जुहुराणम्** आदान- प्रदान (करने का वैदिक गुण) सिखाने के लिए **अस्मत्** हमसे **युयोधि** युद्ध किया, बद्ध किया, अलग किया, **ते** तुमको **भूयिष्ठाम्** पुनः पुनः **नम** नमन **उक्तिम्** कथन **विधेम** (हम) विधान करते हैं, विशेष रूप से धारण करते हैं॥ 43॥

भावार्थ :- हमें ऐश्वर्य तथा सफलतायें प्राप्त करनी हैं तो श्रेष्ठमार्ग पर चलना होगा। अच्छे मार्ग पर चलते रहने के लिए दिव्य शक्तियों अर्थात् विशेष क्षमतावान् साधन - सम्पन्न लोगों तथा रचनाशील विद्वानों के सहयोग की आवश्यकता है। वेद से दूर होने पर हम इतने अज्ञानी और स्वार्थी होते हैं कि समाज में आदान- प्रदान करते रहने का सद्गुण सिखाने के लिए रचनाशील विद्वानोंको हमारी दुष्प्रवृत्तियों से युद्ध करने जैसा कठिन प्रयास करना पड़ता है। परमात्मा की कृपा से ऐसे धैर्यशील परोपकारी विद्वानों का सहयोग मिलता है, इसके लिए हम परमात्मा को पुनः पुनः नमन करते हैं॥43॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अग्ने (अग् = गति करना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति होना, अग्रणी होना)। नय (नी = ले जाना)। सुपथा (सु - अच्छा, सुन्दर, पथ - चलना)। राये (रै = शब्द करना, रय् = गति करना, जाना, रा - देना, दान करना)। अस्मान् (सर्वनाम)। विश्वानि (सर्वनाम)। देव (दिव्= तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना)। वयुनानि (वे - बुनना, रचना करना, सृजन करना)। विद्वान् (विद् = जानना)। युयोधि (युध् = युद्ध करना, यु - मिलाना, अलग करना, बाँधना, गूँथना)। अस्मत् (अपादान, बहुवचन)। जुहुराणम् (हू = आदान-प्रदान करना)। एनो (सर्वनाम)। भूयिष्ठाम् (अव्यय)। ते (सर्वनाम)। नम (नम् = नमन करना, सम्मान करना, शब्द करना)। उक्तिम् (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना)। विधेम (वि - विशेष, धा - धारण करना)॥

289. अयम् नो अग्निः वरिवः कृणोतु, अयम् मृधः पुर एतु प्रभिन्दन्।
अयम् वाजान् जयतु वाजसातौ, अयम् शत्रून् जयतु जर्हृषाणः॥44॥

संहितापाठ

अयं नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन्। अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳशत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः॥44॥

मन्त्रार्थ : अयम् यह **अग्निः** अग्नि **नो** हमारे लिए **वरिवः** वरणीय (उत्पन्न या प्रदान) **कृणोतु** करे। **अयम्** यह **मृधः** योद्धा **प्रभिन्दन्** भेदन करते हुए **पुरः** आगे **एतु** चले। **अयम्** यह **वाजान्** वाजों को **वाजसातौ** सेवन के लिए **जयतु** जीतें। **अयम्** यह **जर्हृषाणः** हर्षित होता हुआ **शत्रून्** शत्रुओं को **जयतु** जीते॥ 44॥

भावार्थ :- परमात्मा हमारे लिए श्रेष्ठ साधन उपलब्ध कराता है। उस पर विश्वास करते हुए हम भी योद्धा की तरह दुर्गुणों को नष्ट करते हुए आगे चलते रहें। परिश्रम से अपनी आवश्यकताएं पूर्ण करें। सर्वव्यापी परमात्मा का ध्यान करते हुए व्यापक भावना रखकर प्रसन्न रहें तथा जो गुण-कर्म-स्वभाव हमारे लिए तथा समाज के लिए अहितकर हैं, उन पर विजय प्राप्त करें॥ 44॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अयम् (सर्वनाम)। **नो** (सर्वनाम)। **अग्निः** (अग् = जाना, जानना, पाना, आगे जाना,

ऊर्ध्वगति करना, तेजस्वी होना)। **वरिवः** (वृ = वरण करना, पालन करना)। **कृणोतु** (कृ = करना)। **मृधः** (मृध - नष्ट करना, युद्ध करना)। **पुरः** (पुर् = आगे जाना)। **एतु** (आ + इ - जाना)। **प्रभिन्दन्** (प्र + भिन्द् - भाग करना, हिस्सा करना)। **वाजान्** (वज् = जाना, जानना, तैयार करना)। **जयतु** (जि - सर्वोत्कर्ष होना, जीतना)। **वाजसातौ** (वाज् = जानना, जाना, पहुँचना, पाना, तैयार करना)। **शत्रून्** (शद् - जीर्ण होना, मुरझाना, गिरना, जाना, नीचे गिराना)। **जयतु** (जि - सर्वोत्कर्ष से रहना, सबसे बढ़ के होना, जीतना, पराभव करना)। **जर्हृषाणः** (हृष - सन्तुष्ट होना, प्रसन्न होना)॥ 44॥

290. रूपेण वो रूपम् अभि आ अगाम्, तुथो वो विश्ववेदा वि भजतु।
ऋतस्य पथा प्र इत चन्द्रदक्षिणा, वि स्वः पश्य वि अन्तरिक्षम्, यतस्व सदस्यैः॥45॥

संहितापाठ

रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु। ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः॥45॥

मन्त्रार्थ :- रूपेण - रूप द्वारा, वो - तुम्हारे, रूपम् - रूप को, अभि - सब ओर से, आ - समन्तात्, पूर्णतः, अगाम् - गये, प्राप्त किया, तुथो - गति, वृद्धि, हिंसा करने वाला, वो - तुम्हारा, विश्ववेदा - सबकुछ जानने वाला, सर्वज्ञ, वि-भजतु - विशेष सेवन करे। ऋतस्य - ऋत का, पथा - पथ, मार्ग, प्र-इत - प्रकृष्ट गमन करे, चन्द्र-दक्षिणा - आनन्दमय दक्षता के साथ, वि - विशेष, स्वः - ऐश्वर्य, सृजन, पश्य - देखो, वि - विशेष, अन्तरिक्षम् - अन्तरिक्ष को, यतस्व - यत्न करो, सदस्यैः - सदस्यों के साथ॥ 45॥

भावार्थ :- रूप द्वारा रूप प्राप्त होता है। परमात्मा गति, वृद्धि, हिंसा करने वाला है अर्थात् वही सृष्टि की रचना, संचालन, सम्बर्धन का नियामक है। वही विश्ववेद है अर्थात् सबकुछ जानने वाला, सर्वज्ञ है, उसका ही भजन करें। भजन का अर्थ सेवा करना है। परमात्मा की सेवा का व्यावहारिक अर्थ प्रकृति का संरक्षण तथा सज्जनों की सेवा-सहायता करना है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- रूपेण (रूप - रूप बनाना, आकार बनाना, रचना करना, मन में रूपाकृति लाना)। वः (सर्वनाम)। रूपम् (रूप - रूप बनाना, आकार बनाना, रचना करना, मन में रूपाकृति लाना)। अभि (उपसर्ग)। आ (उपसर्ग)। अगाम् (गम् - जाना)। तुथः (तु - गति, वृद्धि, हिंसा करना)। विश्ववेदा (विश्व = सभी, विद् = जानना)। वि (उपसर्ग)। वि-भजतु (भज - भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। ऋतस्य (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। पथा (पथ - जाना, फेंकना, त्यागना)। प्र-इत (प्र = अधिक, प्रकृष्ट, इ = जाना, जानना पाना)। चन्द्र-दक्षिणा (चन्द् = चमकना, आनन्द होना, दक्ष - दक्ष होना, कुशल होना)। स्वः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। पश्य (पश् = देखना)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। यतस्व (यत् = यत्न करना)। सदस्यैः (सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)॥ 45॥

291. ब्राह्मणम् अद्य विदेयम् पितृमन्तम्, पैतृमत्यम् ऋषिम्, आर्षेयम् सुधातुदक्षिणम्।
अस्मत् राता देवत्रा गच्छत, प्रदातारम् आ विशत॥46॥

संहितापाठ

ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳसुधातुदक्षिणम्। अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत॥46॥

मन्त्रार्थ :- ब्राह्मणम् - ब्राह्मण को, अद्य - आज, विदेयम् - जानें, पितृमन्तम् -पितृमान्, पैतृमत्यम् - पैतृमत्य, ऋषिम् - ऋषि, आर्षेयम् - आर्षेय, सुधातु-दक्षिणम् - दक्षता को उत्तमता से धारण करने वाले, अस्मत् - हमसे, राता - दानी, देवत्रा - देवों का त्राण करने वाले, गच्छत जायें, प्राप्त करें, प्रदातारम् - प्रदान करने वाले, आ - समन्तात्, विशत - प्रवेश करें॥ 46॥

भावार्थ :- ब्रह्म-विद्या को आज ही जाने, प्राप्त करें। ऐसे कार्य को टालना नहीं चाहिए। हमारे पिता-पितामह आदि पूर्वज भी आर्षेय अर्थात् ऋषियों की सन्तान थे, हम भी हैं। हम सब देवों का त्राण करें तो देव शक्तियाँ हमारा भी त्राण करेंगी।

हमें सबकुछ प्रदान करने वाले देवगण हमारे मध्य प्रवेश करें, बने रहें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- ब्राह्मणम् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। अद्य (अव्यय)। विदेयम् (विद् = जानना)। पितृमन्तम् (पा = रक्षा करना, पालन करना, पि = जाना, जानना, पाना)। पैतृमत्यम् (पा = रक्षा करना, पालन करना, पि = जाना, जानना, पाना, मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। ऋषिम् (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। आर्षेयम् (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। सुधातु-दक्षिणम् (सु = अच्छा, धा = धारण करना)। अस्मत् (सर्वनाम)। राता (रा = देना)। देवत्रा (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। गच्छत (गम्-गच्छ - जाना)। प्रदातारम् (प्र - अधिक, दा - देना)। आ (उपसर्ग)। विशत (विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना)॥ 46॥

(77) सूक्त 11

292. अग्नये त्वा मह्यम् वरुणो ददातु, सो अमृतत्वम् अशीय आयुः दात्रे, एधि मयो मह्यम् प्रति-ग्रहीत्रे। रुद्राय त्वा मह्यम् वरुणो ददातु, सो अमृतत्वम् अशीय प्राणो दात्रे, एधि वयो मह्यम् प्रति ग्रहीत्रे। बृहस्पतये त्वा मह्यम् वरुणो ददातु, सो अमृतत्वम् अशीय त्वक् दात्रे, एधि मयो मह्यम् प्रति-ग्रहीत्रे। यमाय त्वा मह्यम् वरुणो ददातु, सो अमृतत्वम् अशीय हयो दात्रे, एधि वयो मह्यम् प्रति-ग्रहीत्रे।47।

संहितापाठ

अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीयायुर्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृत्वमशीय प्राणो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय त्वग्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय हयो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे॥47॥

मन्त्रार्थ :- अग्नये - अग्नि के लिए, त्वा - तुमको, मह्यम् - मेरे लिए, वरुणो - वरुण, ददातु प्रदान करे, सो - वह, अमृतत्वम् - अमरता को, अशीय - प्राप्त कर, आयुः - आयु, दात्रे - दाता के लिए, एधि - प्राप्त हो। मयो - मय, मह्यम् - मेरे लिए, प्रति-ग्रहीत्रे - प्रति ग्रहण करने वाले के लिए, रुद्राय - रुद्र के लिए, त्वा - तुमको, मह्यम् - मेरे लिए, वरुणो - वरुण, ददातु - प्रदान करे, सो - वह, अमृतत्वम् - अमरता को, अशीय - प्राप्त कर, प्राणो - प्राण, दात्रे - दाता के लिए, एधि - प्राप्त हो। मयो - मय, मह्यम् - मेरे लिए, प्रति-ग्रहीत्रे - प्रति ग्रहण करने वाले के लिए। बृहस्पतये - बृहस्पति के लिए, त्वा - तुमको, मह्यम् - मेरे लिए, वरुणो - वरुण, ददातु - प्रदान करे, सो - वह, अमृतत्वम् - अमरता को, अशीय - प्राप्त करे, त्वक् - त्वचा, दात्रे - दाता के लिए, एधि - प्राप्त हो। मयो - मय, मह्यम् - मेरे लिए, प्रति-ग्रहीत्रे - प्रति ग्रहण करने वाले के लिए। यमाय - यम के लिए, त्वा - तुमको, मह्यम् - मेरे लिए, वरुणो - वरुण, ददातु प्रदान करे, सो - वह, अमृतत्वम् - अमरता को, अशीय - प्राप्त कर, हयो - हय, दात्रे - दाता के लिए, एधि - प्राप्त हो। वयो - वय, मह्यम् - मेरे लिए, प्रति-ग्रहीत्रे - प्रति ग्रहण करने वाले के लिए॥ 47॥

भावार्थ :- हमारा जीवन, हमारा शरीर, हमारे सभी अंग-प्रत्यंग परमात्मा की कृपा से प्राप्त होते हैं। देने वाले ही प्रतिदान पाने तथा प्रतिग्रहण करने के अधिकारी होते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अग्नये (अग् = ऊपर जाना, ऊर्ध्व गमन करना, आगे जाना)। त्वा (सर्वनाम)। मह्यम् (सर्वनाम)। वरुणो (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। ददातु (दा-दद - दान करना, देना, त्याग करना)। सः (सर्वनाम)। अमृतत्वम् (अ - नहीं, मृ = मरना)। अशीय (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)। आयुः (अय = जाना, जानना, पाना,ग़ति करना, आयुस् - जीवनम्, यु = मिलना, अलग करना)। दात्रे (दा, दद् = देना)। एधि (इ - जाना, जानना, पाना, एध - बढ़ना)। मयो (मय - जाना, स्थानान्तर करना)। मह्यम् (सर्वनाम)। प्रति-ग्रहीत्रे (प्रति = सम्बन्ध में, ग्रह - लेना, स्वीकार करना)। रुद्राय (रुद् = रुदन करना, रुलाना)। मह्यम् (सर्वनाम)। वरुणो (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय

होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। ददातु (दा-दद - दान करना, देना, त्याग करना)। सः (सर्वनाम)। अमृतत्वम् (अ - नहीं, मृ = मरना)। अशीय (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)। प्राणः (प्र - अधिक, अन् - प्राण होना, जीवन होना, चेतन होना)। दात्रे (दा, दद् = देना)। एधि (इ - जाना, जानना, पाना, एध - बढ़ना)। वयः (वय् = जाना, जानना, पाना)। प्रति-ग्रहीत्रे (प्रति = सम्बन्ध में, ग्रह - लेना, स्वीकार करना)। बृहस्पतये (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। वरुणो (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। ददातु (दा-दद - दान करना, देना, त्याग करना)। सः (सर्वनाम)। अमृतत्वम् (अ - नहीं, मृ = मरना)। अशीय (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)। त्वक् (त्वच - आच्छादित करना, लपेटना, ढांकना)। दात्रे (दा, दद् = देना)। एधि (इ - जाना, जानना, पाना, एध - बढ़ना)। मयो (मय - जाना, स्थानान्तर करना, जानना, पाना)। प्रति-ग्रहीत्रे (प्रति = सम्बन्ध में, ग्रह - लेना, स्वीकार करना)। यमाय (यम - स्वाधीन रखना, नियन्त्रण में रखना, पोषण करना, खाने को देना)। वरुणो (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। ददातु (दा-दद - दान करना, देना, त्याग करना)। अमृतत्वम् (अ - नहीं, मृ = मरना)। अशीय (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)। हयो (हय - जाना, पूजा करना, सेवा करना, शब्द करना)। दात्रे (दा, दद् = देना)। एधि (इ - जाना, जानना, पाना, एध - बढ़ना)। प्रति-ग्रहीत्रे (प्रति = सम्बन्ध में, ग्रह - लेना, स्वीकार करना)॥ 47॥

293. को अदात् कस्मा अदात्, कामो अदात् कामाय अदात्।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता, काम एतत् ते॥ 48॥

संहितापाठ

कोऽदात्कस्माऽअदात्कामोऽदात्कामायादात्। कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते॥ 48॥

मन्त्रार्थ :- को - किसने, अदात् - दिया, कस्मा - किसके लिए, अदात् - दिया, कामो - कामना ने, अदात् - दिया, कामाय - कामना के लिए, अदात् - दिया। कामो - कामना, दाता - देने वाला है, कामः -काम प्रतिग्रहीता - प्रतिग्रहण करने वाला, कामः - कामना, एतत् - यह, ते -तुम्हारा॥ 48॥

भावार्थ :- काम अथवा कामना ही सभी कर्मों के मूल में होता है। कामना ही न हो तो कोई भी किसी तरह का कर्म करेगा ही नहीं। अतः काम महत्वपूर्ण है, इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। काम अथवा कामना को विवेकपूर्ण होना चाहिए। यह सर्वश्रेष्ठ मार्ग है कि काम को परमात्मा के प्राति समर्पित कर दिया जाये, हमारी कामना महान् उद्देश्य के प्राति समर्पित हों, उसी से प्रेरित हों तो निकृष्ट कामना तथा कर्मों तथा उसके दुष्परिणामों से बच सकते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- कः (सर्वनाम)। अदात् - दिया (दा = देना)। कस्मा (सर्वनाम)। अदात् (दा = देना)। कामः (कम् - कामना करना, इच्छा करना, चाहना)। अदात् (दा = देना)। कामाय (काम = कामनाएँ)। दाता (दा - दान करना, देना)। प्रतिग्रहीता (प्रति = सम्बन्ध में, ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। एतत् (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)॥ 48॥

इति सप्तमो अध्यायः

ॐ

अथ अष्टमो अध्यायः

(78) सूक्त 1

294. उपयाम गृहीतो असि आदित्येभ्यः त्वा।विष्णो उरुगाय एष ते सोमः, तम् रक्षस्व मा त्वा दभन्॥1॥

संहितापाठ

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा।विष्णऽउरुगायैष ते सोमस्तꣳरक्षस्व मा त्वा दभन्॥1॥

मन्त्रार्थ :- उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, आदित्येभ्यः - आदित्यों के लिए, अदिति से उत्पन्न के लिए, त्वा - तुमको, तुम्हें, तुम्हारा, तुम्हारे लिए। विष्णो - हे विष्णो, उरुगाय - उरुग के लिए, उरुगामी के लिए, एष - यह, ते - तुम्हारा, सोमः - सोम, (है)। तम् - उसको, रक्षस्व - रक्षा करो, मा - नहीं, त्वा - तुम्हारा, दभन् - हिंसा करें, निन्दा करें॥1॥

भावार्थ :- उपयाम-गृहीत का अर्थ समीप गमन से ग्रहण किया हुआ होता है। उप का अर्थ समीप, या धातु का अर्थ जाना, गृह् धातु का अर्थ ग्रहण करना, लेना होता है। व्यापकता, उरुगमन आदि सद्गुणों तथा श्रेष्ठ उद्देश्यों के लिए परमात्मा के निकट जाकर अर्थात् उसकी उपासना कर हम सद्गुणों तथा दिव्य शक्तियों को ग्रहण करते हैं। सोम अर्थात् सौम्यगुण, उत्पन्न करने की क्षमता, रचनाशीलता, ऐश्वर्य आदि भाव परमात्मा के लिए हैं। परमात्मा के लिए ग्रहण करने तथा समर्पित किये जाने वाले भावों को स्वभावतः हमें अपनाना होता है, जीवन में आत्मसात करना होता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : - उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। आदित्येभ्यः (अदिति = अ + दी, दी = क्षय होना, नष्ट होना, अद् = खाना)। त्वा (सर्वनाम)। विष्णो (विष्ण-विष् -विविष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना, व्यापना, फैलना, प्रसृत होना)। उरुगाय (उर् = जाना, चलना, उरु = गतिशील)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। सोमः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना, सो–स्य, सय - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। तम् (सर्वनाम)। रक्षस्व (रक्ष् = रक्षा करना, पालन करना, बचाना)। मा (सर्वनाम, अव्यय)। दभन् (दभ - हिंसा करना, निन्दा करना, आज्ञा देना)॥1॥

295. कदाचन स्तरीः असि, न इन्द्र सश्चसि दाशुषे॥
उप उप इत् नु मघवन् भूयः, इत् नु ते दानम् देवस्य पृच्यते, आदित्येभ्यः त्वा॥2॥

संहितापाठ

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।उपोपेन्नु मघवन् भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते आदित्येभ्यः त्वा॥

मन्त्रार्थ : इन्द्र हे परम ऐश्वर्यवान्! **स्तरीः** आच्छादन, विस्तार **असि** हो। **कदा चन** कभी **दाशुषे** दानी के लिए **न** नहीं **सश्चसि** खाते हो। **मघवन्** हे मघवन्! **भूयः** पुनः **उप उप** निकट होकर **ते** तुम्हारे लिए (दिया गया) **दानम्** दान **देवस्य** देव-विद्वान् का **पृच्यते** स्पर्श करता है। आदित्येभ्यः - आदित्यों के लिए, अदिति से उत्पन्न के लिए, त्वा - तुमको॥

भावार्थ : परमात्मा परम ऐश्वर्यवान् सर्वव्यापी है। दानी के लिए वह स्वयम् नहीं खाता है और उसके लिए दिया गया दान भी दानी विद्वान् के निकट जाकर उसको ही प्राप्त होता है॥2॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : कदाचन (सर्वनाम)। **स्तरीः** (स्तृ = आच्छादित करना, विस्तार करना)। **असि** (अस् = होना)। **न** (अव्यय)। **इन्द्र** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **सश्चसि** (स + चसि, चष् = खाना)। **दाशुषे** (दा = देना)। **उप-उप** = समीप-समीप। **इत्** (अव्यय)। **नु** (निपात, अव्यय)। **मघवन्** (मघ् = धन होना)। **भूयः** (अव्यय)। **इत्** (अव्यय)। **ते** (सर्वनाम)। **दानम्** (दा - देना, सौंपना)। **देवस्य** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना)। **पृच्यते** (पृच् = स्पर्श

करना, सम्पर्क करना)। **आदित्येभ्यः** (अदिति = अ + दी, दी = क्षय होना, नष्ट होना, अद् = खाना)। **त्वा** (सर्वनाम)।। 2।।

296. कदाचन प्र युच्छसि, उभे नि पासि जन्मनी।
तुरीय आदित्य सवनम्, त इन्द्रियम् आ तस्थौ, अमृतम् दिवि आदित्येभ्यः त्वा ॥3॥

संहितापाठ

कदाचन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी।तुरीयादित्य सवनं तऽ इन्द्रियमातस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥3॥

मन्त्रार्थ :- कदाचन - कभी, प्र - अधिक, युच्छसि - प्रमाद करते हो, उभे - दोनो, नि - निरन्तर, निश्चित, पासि - पालन, रक्षण करते हो जन्मनी - जन्म लेने वालों का। तुरीय - शीघ्रकारी, आदित्य - हे आदित्य, हे अविनाशी, अदिति अर्थात् अविनाशी से उत्पन्न, सवनम् - सवन को, उत्पत्ति को, ऐश्वर्य को, ते - तुम्हारा, इन्द्रियम् - इन्द्रिय को, आ - समन्तात, पूर्णतः, सम्यक्, तस्थौ - स्थित, अमृतम् - अमृत को, दिवि - दिव में, आदित्येभ्यः - आदित्य के लिए, त्वा - तुमको।। 3।।

भावार्थ :- परमात्मा सभी जन्म लेने वालों का पालन-रक्षण करता है तथा उसमें कभी प्रमाद नहीं करता है। हमें भी प्रमाद के विना निरन्तर सत्कर्म करना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- कदाचन (सर्वनाम)। प्र (उपसर्ग)। युच्छसि (युछ - दुर्लक्ष्य करना, असावधान रहना, प्रमाद करना)। उभे (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना)। नि (उपसर्ग)। पासि (पा = रक्षा करना)। जन्मनी (जन - जन्म लेना, उत्पन्न होना, प्रकट होना)। तुरीय (तुर् = शीघ्रता करना)। आदित्य (अदिति से उत्पन्न, अदिति = अ + दी, दी = क्षय होना, नष्ट होना, अद् = खाना)। सवनम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। ते (सर्वनाम)। इन्द्रियम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। आ (उपसर्ग)। तस्थौ (तस - स्थापित होना, स्थापना करना, फेंकना, उड़ा देना, भेजना, खोदना, कुम्हलाना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना)। अमृतम् (अ- नहीं, मृ = मरना)। दिवि (दिव् = तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। आदित्येभ्यः (अदिति से उत्पन्न, अदिति = अ + दी, दी = क्षय होना, नष्ट होना, अद् = खाना)। त्वा (सर्वनाम)।। 3।।

297. यज्ञो देवानाम् प्रति एति सुम्नम्, आदित्या सो भवता मृडयन्तः।
आ वो अर्वाची सु-मतिः ववृत्यात्, अंहोः चित् या वरिवोवित्तरा असत्, आदित्येभ्यः त्वा ॥4॥

संहितापाठ

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नामादित्यासो भवता मृडयन्तः। आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥4॥

मन्त्रार्थ- देवानाम् - देवों का, यज्ञो - यजन, सुम्नम् - सुविचार अथवा सृजन, रचनाशीलता को, प्रत्येति - प्राप्त होता है, आदित्यासो - आदित्यगण, मृडयन्तः - सुखकारी, भवता - हों। आ - समन्तात, पूर्णतः, सम्यक्, वो - तुम्हारा, अर्वाची - हिंसक, सुमतिः - सुमति, सुबुद्धि, ववृत्यात् - वर्तमान हो, प्राप्त करे। या - जो, अंहोः - कुटिल, चित् - भी, वरिवोवित्तरा - श्रेष्ठ वित्त (विद्या) वाला, असत् - हो गया।। 4।।

भावार्थ - यजन (यज् धातु) का अर्थ देवपूजा, संगतिकरण, दान करना है। दिव्य भावना वाले जन यदि यजन करेंगे तो सुविचार तथा सृजन ही होगा। किसी कार्य के यजन होने का यही प्रमाण है। इससे हिंसक स्वभाव वाले को भी सुमति प्राप्त होगी तथा कुटिल स्वभाव वाले भी श्रेष्ठ विद्या प्राप्त कर सकेंगे, उनका जीवन भी सुधर सकेगा।

विशेष - सुम्नम् पद में सु उपसर्ग मानें या सु धातु, दोनो स्वीकार्य हैं। मन का म्न रूप वैदिक प्रयोग है। सुमनम् के स्थान पर सुम्नम् पद का प्रयोग हुआ है। ववृत्यात् पद में वृत् धातु है, इसका अर्थ वर्तना, वर्तमान होना है। गति अर्थ वाली धातु होने से ज्ञान तथा प्राप्त करें अर्थ भी स्वीकार्य है। अंह् धातु के अर्थ प्रकाश होना, चमकना के साथ ही कुटिल गति करना, कलुष होना भी है। अतः अंहस् शब्द का अर्थ पाप भी होता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- देवानाम् (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना)। यज्ञो (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। सुम्नम् (मन - मनन करना, जानना, समझना, स्वीकार करना, अभ्यास करना, स्थिर

होना, गर्व होना)। प्रत्येति (प्रति एति, इ - जाना), आदित्यासो (अदिति, अ - नहीं, दी - क्षय होना), मृडयन्तः (मृड - सुखी होना, सुख देना)। भवता (भू - होना)। वो (सर्वनाम)। अर्वाची (अर्व - गति करना, जाना, चलना, जानना, पाना, पहुँचना, हिंसा करना) सुमतिः (सु - सुन्दर, अच्छा, मन - मनन करना, जानना, समझना, स्वीकार करना, अभ्यास करना, स्थिर होना, गर्व होना) आ ववृत्यात् (वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना)। या (सर्वनाम)। अंहोः (अंह् - प्रकाशित होना, चमकना, कुटिल गति करना, मथना)। चित् (अव्यय)। वरिवोवित्तरा (वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वित्त - दान करना, धर्म में व्यय करना)। असत् (अस् - होना)॥ 4॥

298. विवस्वन् आदित्य एष ते, सोम-पीथः तस्मिन् मत्स्व।
श्रत् अस्मै नरो वचसे दधातन, यत् आशीर्दा दम्पती वामम् अश्नुतः।
पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वसु, अधा विश्वाहा अरपः एधते गृहे॥5॥॥

संहितापाठ

विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व।श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः।पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारपऽएधते गृहे॥5॥

मन्त्रार्थ :- विवस्वन् - हे विवस्वन्, आदित्य - हे आदित्य, एष - यह, ते - तुम्हारा, सोम-पीथः - सोम-पीथ, तस्मिन् - उसमें, मत्स्व - आनन्द करो। श्रत् - सत्य, अस्मै - इसके लिए, नरो - नर, ले जाने वाला, वचसे - वाणी के लिए, वचस् के लिए, दधातन - धारण करे, यत् - जो, आशीर्दा - आशीर्वाद देने वाला, दम्पती - दम्पती, वामम् - वाम को, अश्नुतः - व्यापक। पुमान् - पवित्रकारी, पुत्रो - पुत्र, जायते - उत्पन्न होता है, विन्दते - प्राप्त होता है, वसु - वसु, अधा - अथ, अब, विश्वाहा - सर्वदा, अरपः - प्राप्त का रक्षक-पालक, गति-व्यवस्था का रक्षक, गृहे - घर में, एधते - बढ़ता है॥ 5॥

भावार्थ :- आदित्य अविनाशी परमात्मा की उपासना करें। सत्य का पालन करते हुए पवित्रता के साथ जीवन - यापन करें। इस प्रकार सुख-पूर्वक घर में निवास करते हुए वृद्धि करें, यही कामना है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- विवस्वन् (वि = विशेष, विना, विलोम, वास - वासित करना, सुगन्धित करना, धूपित करना, धूप देना, वस - निवास करना)। आदित्यः (अ - नहीं, अद् - खाना, नष्ट करना, दी = क्षय होना, नष्ट होना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। सोमपीथः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना, पी-पिब् - पीना, पान करना)। तस्मिन् (सर्वनाम)। मत्स्व (मद - तृप्त करना, समाधान करना, आनन्द करना)। श्रत् (उपसर्ग)। अस्मै (सर्वनाम)। नरः (नृ = ले जाना)। वचसे (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। दधातन (दध्-धा - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। यत् (सर्वनाम)। आशीर्दा (आ + शास् = आशीर्वाद देना, भला चाहना, आशा करना)। दम्पती (दम् - शान्त करना, दमन करना, जीतना, स्वाधीन करना, सन्धि करना)। वामम् (वा = गति करना)। अश्नुतः (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)। पुमान् (पु - गति करना, रक्षा करना, पू - पवित्र करना)। पुत्रः (पु - गति करना, रक्षा करना, पू - पवित्र करना)। जायते (जन् = उत्पन्न होना)। विन्दते (विन्द् = लाभ करना, प्राप्त होना)। वसुः (वस् = निवास करना, दया-प्रीति करना, वसु = निश्चल होना, निःछल होना)। अध - अधा (अव्यय)। विश्वाहा (सर्वनाम)। अरपः (ऋ - जाना, जानना, पाना, रम् - रमना, रमण करना, रम जाना, रत होना, क्रीडा करना, प्रिय होना, मूल्यवान होना)। एधते (एध - बढ़ना)। गृहे (गृह् = ग्रहण करना)॥ 5॥

299. वामम् अद्य सवितः वामम् उ श्वो, दिवे-दिवे वामम् अस्मभ्यम् सावीः।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेः, अया धिया वाम-भाजः स्याम॥6॥

संहितापाठ

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यꣳसावीः।वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम।6॥

मन्त्रार्थ :- वामम् - वाम को, अद्य - आज, सवितः - उत्पादक, ऐश्वर्यशाली, ऐश्वर्य युक्त, उत्पन्न करने वाले वामम् - वाम को, उ- ही, श्वो - कल, आगामी दिवस, दिवे-दिवे - प्रतिदिन, वामम् - वाम को, अस्मभ्यम् - हमारे लिए, सावीः - ऐश्वर्य देने वाले, उत्पन्न करने वाले, सवन करने वाले। वामस्य - वाम का, हि - ही, क्षयस्य - क्षय का, निवास का, देव - हे देव, भूरेः - बहुत, अया - इससे, धिया - बुद्धि से, धारणा शक्ति से, वाम-भाजः - वाम के भाजन, स्याम - हों।। 6।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- वामम् (वा = गति करना)। अद्य (अव्यय)। सवितः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्‌भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। उ (निपात, अव्यय)। श्वः (अव्यय)। दिवेदिवे (अव्यय)। अस्मभ्यम् (सर्वनाम)। सावीः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्‌भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। वामस्य (वा = गति करना, पवन की भाँति बहना, जाना, जानना, पाना, गन्ध होना, प्रवाहित होना, प्रवाहित करना)। हि (अव्यय)। क्षयस्य (क्षि - जाना, चलना, जानना, पाना, निवास करना, रहना, बसना, क्षय होना)। देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। भूरेः (सर्वनाम)। अया (सर्वनाम)। धिया (धी - धारण करना, बुद्धि होना)। वामभाजः (वा = गति करना, पवन की भाँति बहना, जाना, जानना, पाना, गन्ध होना, प्रवाहित होना, प्रवाहित करना, भज् - सेवा करना)। स्याम (अस् - होना)।। 6।।

(79) सूक्त 2

300. उपयाम गृहीतो असि, सावित्रो असि चनोधाः, चनोधा असि चनो मयि धेहि।
जिन्व यज्ञम् जिन्व यज्ञपतिम्, भगाय देवाय त्वा सवित्रे।।7।।

संहितापाठ

उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधाऽअसि चनो मयि धेहि।।7।।

मन्त्रार्थ :- उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, सावित्रो - सावित्र, चनोधाः - वाणी, विश्वास को धारण करने वाला, असि - हो, चनोधा - वाणी, विश्वास को धारण करने वाला, असि - हो, चनो - वाणी, विश्वास, मयि - मुझमें, धेहि - धारण करो। यज्ञम् - यजन को, जिन्व = प्रसन्न करो, यज्ञपतिम् - यजनपति को, भगाय - भग, सेवा, दान, ऐश्वर्य के लिए, देवाय - देव के लिए, त्वा - तुम, सवित्रे - सविता के लिए, जिन्व = प्रसन्न करो।। 7।।

भावार्थ :- वाणी के लिए अनेक पर्यायवाची शब्द हैं, परन्तु यहाँ पर चन का प्रयोग महत्वपूर्ण है। चन धातु का अर्थ वाणी तथा विश्वास दोनो है। हमारी वाणी में विश्वास होना चाहिए, विश्वसनीयता होनी चाहिए। इसी से हम लोगों को प्रसन्न कर सकते हैं तथा स्वयम् भी प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। सावित्रः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। चनोधाः (चन् - स्मरण करना, शब्द करना, विश्वास करना, मिलाना, अलग करना, हिंसा करना)। चनो (चन् - स्मरण करना, शब्द करना, विश्वास करना, मिलाना, अलग करना, हिंसा करना)। मयि (सर्वनाम)। धेहि (धि - धारण करना, धी - बुद्धि होना, धे - प्राशन करना, पालना, पीना)। जिन्व (जिन्व् = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, आनन्द होना, मुक्त करना, प्रकाशित होना, बोलना)। यज्ञम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। यज्ञपतिम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना, पा - पालन करना, रक्षा करना, पत् ऐश्वर्य होना)। भगाय (भग्-भज् = सेवा करना, सेवन करना, सेवित होना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। देवाय (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान होना)। त्वा (सर्वनाम)। सवित्रे (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)।। 7।।

301. उपयाम गृहीतो असि, सुशर्मा असि, सुप्रतिष्ठानो बृहद् उक्षाय नमः।

विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्य, एष ते योनिः विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्यः ॥8॥

संहितापाठ

उपयामगृहीतोऽसि सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥8॥

मन्त्रार्थ :- उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, सुशर्मा - सुख, सम्मान, समृद्धि, असि - हो, सुप्रतिष्ठानो - अच्छी प्रतिष्ठा युक्त, बृहद् - बड़ा, उक्षाय - उक्ष के लिए, नमः - नमन। विश्वेभ्यः - सभी, त्वा - तुम, देवेभ्यः देवों के लिए, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - योनि, विश्वेभ्यः - सभी, त्वा - तुम, देवेभ्यः देवों के लिए॥8॥

भावार्थ :- बड़ों को, देवजनों को नमन करें तो सुख - समृद्धि प्राप्त होगी। योनि का अर्थ है बन्धन, मिलन, वियोग। भाष्यकारों ने व्यवहार में अपने वास-स्थान को योनि कहा है। हम जिस स्थान से बंधे होते हैं, जो हमारा निश्चित स्थान होता है, जहाँ हम मिलते हैं, अलग होते हैं, उसे योनि कहना स्वाभाविक है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। सुशर्मा = सुख, सम्मान, समृद्धि (सु - अच्छा, शर्म् = सुख होना, श्रीमान् होना, सम्मानित होना)। सुप्रतिष्ठानो (सु = अच्छा, प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, तिष्ठ - स्था - स्थित होना, ठहरना, प्रतीक्षा करना)। बृहद् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। उक्षाय (उक्ष् - प्रोक्षण करना, सिञ्चन करना, स्वच्छ करना, दृढ़ करना, दृढ़ होना)। नमः (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। विश्वेभ्यः (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम)। देवेभ्यः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। विश्वेभ्यः (सर्वनाम)॥8॥

302. उपयाम गृहीतो असि, बृहस्पति-सुतस्य,
देव सोम ते इन्दोः इन्द्रियावतः, पत्नीवतो ग्रहान् ऋध्यासम्।
अहम् परस्तात् अहम् अवस्तात्, यत् अन्तरिक्षम् तत् उ मे पिता अभूत्।
अहम् सूर्य्यम् उभयतो ददर्श, अहम् देवानाम् परमम् गुहा यत्॥9॥

संहितापाठ

उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम तऽइन्दोरिन्द्रियावतः पत्नीवतो ग्रहाँ2।ऽऋध्यासम्। अहं परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षं तदु मे पिताभूत्। अहꣳसूर्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत्॥9॥

मन्त्रार्थ :- उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, बृहस्पति-सुतस्य - बृहस्पति-सुत का, देव - हे देव, सोम - हे सोम, ते -तुम्हारा, इन्दोः - इन्दु का, इन्द्रियावतः - इन्द्रियवान् का, पत्नीवतो - पत्नीवान् का, ग्रहान् - ग्रहों को, ऋध्यासम् - बढ़ाऊँ। अहम् - में, परस्तात् - ऊपर से, अहम् - मैं, अवस्तात् - नीचे से, यत् - जो, अन्तरिक्षम् - अन्तरिक्ष को, तत् - वह, उ - ही, मे - मेरा, पिता - पिता, पालक, रक्षक, अभूत् - हुआ। अहम् - मैंने, सूर्य्यम् - सूर्य को, उभयतो - दोनो ओर से, ददर्श - देखा, अहम् - मैं, देवानाम् - देनों का, परमम् - परम, गुहा - गुहा, गहन स्थान, यत् - जो, (ददर्श - देखा)॥9॥

भावार्थ :- सांसारिक जीवन में ऋद्धि-वद्धि करते हुए अन्तरिक्ष, सूर्य आदि को जानते हुए देवों, दिव्य-शक्तियों की परम गुहा अर्थात् परम सत्ता को भी देखें, जानें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। बृहस्पति-सुतस्य (बृह् = बढ़ना, पा - पालन करना, पत् - ऐश्वर्य होना)। देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। सोम (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। ते (सर्वनाम)। इन्दोः (इन्द् -

अमानवीय पराक्रम होना, ईश्वरी शक्ति होना, ऐश्वर्ययुक्त होना)। इन्द्रियावतः (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। पत्नीवतो (पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना, पाना, नीचे गति करना)। ग्रहान् (ग्रह - लेना, स्वीकार करना)। ऋध्यासम् (ऋध् - वृद्धि होना, वृद्धि करना, समृद्धि होना, ऐश्वर्य होना, आनन्दित करना, पूर्ण करना)। अहम् (सर्वनाम)। परस्तात् (सर्वनाम)। अवस्तात् (अव्यय)। यत् (सर्वनाम)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, ईक्ष् -देखना)। तत् (सर्वनाम)। उ (निपात)। मे (सर्वनाम)। पिता (पि - जाना, जानना, पाना, पा- पालन करना, रक्षा करना)। अभूत् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। सूर्य्यम् (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। उभयतः (सर्वनाम)। ददर्श (दृश् - देखना)। देवानाम् (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। परमम् (सर्वनाम)। गुहा (गुह् - आच्छादन करना, छिपाना, ढकना, गति करना, जाना, जानना, हिंसा करना)॥ 9॥

303. अग्ना इ पत्नीवन् सजूः, देवेन त्वष्ट्रा सोमम् पिब स्वाहा।
प्रजापतिः वृषा असि, रेतो-धा रेतो मयि धेहि, प्रजापतेः ते वृष्णो, रेतोधसो रेतोधाम् अशीय॥10॥

संहितापाठ

अग्ना3।ऽइ पत्नीवन्त्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहा।प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय॥10॥

मन्त्रार्थ :- अग्ना - हे अग्नि, इ - यह, पत्नीवन् - पत्नीयुक्त, सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। देवेन - देव द्वारा, त्वष्ट्रा = प्रकाशक, सूक्ष्म करने वाला, सोमम् - सोम को, पिब - पान करो, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, आत्म विस्तार, प्रजापतिः - प्रजापति, प्रजा के पालक, रक्षक, वृषा = पराक्रमी, असि - हो, रेतो-धा - रेतस् को धारण करने वाले, रेतो - रेतस् को, मयि - मुझमें, धेहि - धारण करो, प्रजापतेः - प्रजापति का, ते - तुम्हारा, तुम्हारे लिए, वृष्णो - पराक्रम, रेतोधसो - रेतस् को धारण करने वाले का, रेतोधाम् - रेतस् को धारण करने वाले को, अशीय - व्याप्त करो, व्यापक बनाओ॥ 10॥

भावार्थ :- सूक्ष्मता की उपासना से ही दिव्य प्रकाश की अनुभूति होती है। पराक्रम अर्थात् उच्चस्तरीय प्रयास सफलता के लिए आवश्यक है, अध्यात्म साधना के लिए भी यह महत्वपूर्ण है। सर्वव्यापी परमात्मा की अनुभूति के लिए व्यापकता को जीवन में उतारना तो महत्वपूर्ण है ही।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अग्ना (अग् = ऊपर जाना, ऊर्ध्व गमन करना, आगे जाना)। इ (अव्यय)। पत्नीवन् (पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना, पाना, नीचे गति करना)। सजूः (संज्-सज् = गले लगाना, सम्बन्धी होना, स + जूः, जुष् = विचार करना, सेवा करना, प्रसन्न करना, सन्तुष्ट करना, चाहना)। देवेन (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। त्वष्ट्रा (त्वक्ष् = छीलना, रेतना, त्विष् = प्रकाशित होना, चमकना)। सोमम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, आसवन करना, सू = प्रेरणा देना)। पिब (पा-पिब् - पीना, प्राशन करना, पान करना)। स्वाहा (सु = अच्छा, स्व - अपना, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना, सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। प्रजापतिः (प्र + जा, जन् = उत्पन्न होना, पत् = ऐश्वर्य होना)। वृषा (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना, वर्षा होना, सींचना)। असि (अस् = होना)। रेतोधा (रि - जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, री - गति करना, झरना-टपकना, लेना, शब्द करना, सुनना, धा - धारण करना)। रेतो (रि - जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, री - गति करना, झरना-टपकना, लेना, शब्द करना, सुनना)। मयि (सर्वनाम)। धेहि (धा - धारण करना)। प्रजापतेः (जन् = उत्पन्न होना, पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना, पाना, नीचे गति करना)। ते (सर्वनाम)। वृष्णो (वृष् = उच्च पराक्रम् करना, वर्षा होना, सींचना)। रेतोधसो (रि = जाना, जानना, पाना)। रेतोधाम् (रि = जाना, जानना, पाना)। अशीय (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)॥ 10॥

304. उपयाम गृहीतो असि, हरिः असि, हारियोजनो हरिभ्याम् त्वा।

हर्योः धाना स्थ सहसोमा इन्द्राय।11॥

संहितापाठ

उयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यां त्वा।हर्योर्धाना स्थ सहसोमाऽइन्द्राय॥11॥

मन्त्रार्थ :- उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, हरिः - हरि, असि - हो, हारियोजनो - हारियोजन, हरिभ्याम् - हरियुगल के लिए, त्वा - तुमको।हर्योः - हरियुगल का, सहसोमा - सोमसहित, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, धाना - धारण करने वाले, स्थ - हो॥11॥

भावार्थ :- हृ धातु का अर्थ है हरण करना, ले जाना।इससे व्युत्पन्न हरि शब्द का अर्थ है ले जाने वाला।परमात्मा हमें अपने मार्ग-दर्शन में ले चले, इस भावना के साथ हम उसे हरि कहते हैं।वह हरि हमको सत्कर्म में नियोजित करता है तो हम हरियोजन होते हैं।हमें हरि द्वारा नियोजित करने में महत्वपूर्ण मार्गदर्शन देने वाले विद्वान् उपासक भी हरियोजन हैं।हरियोजन से हारियोजन शब्द बना है।सामान्यतः यह अपत्यार्थक रूप है, अर्थात् इसका अर्थ है उससे उत्पन्न।परन्तु वैदिक भाषा में उसी अर्थ में यह रूप बनता है उसे कुछ विशेषता तथा महत्व देने के अर्थ में।इसी अर्थ में अदिति से आदित्य शब्द भी बनता है।सामान्यतः आदित्य का अर्थ होता है अदिति से उत्पन्न।परन्तु वेद में आदित्य का अर्थ अदिति अर्थात् अखण्डनीय अविनाशी भी होता है।वास्तव में अदिति अविनाशी तो परमात्मा ही है, उससे उत्पन्न सृष्टि को आदित्य कहा जा सकता है।स्व-अर्थ में अपत्यार्थक प्रयोग होने से आदित्य का अर्थ भी परमात्मा है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)।असि (अस् - होना)।हरिः (हृ - हरण करना, ले जाना)।हारियोजनः (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)।हरिभ्याम् (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)।त्वा (सर्वनाम)।हर्योः (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना, हर्य् = गति करना, इच्छा करना, प्रकाशित होना, जानना, पाना)।धाना (धा = धारण करना)।स्थ (स्था-तिष्ठ - ठहरना, स्थित होना)।सहसोमाः (सह - साथ, सहित, सह - सहना, सहन करना, शक्तिमान करना, सन्तुष्ट होना, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, आसवन करना, सू = प्रेरणा देना)।इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)।11॥

(80) सूक्त 3

305. यः ते अश्वसनिः भक्षो, यो गोसनिः तस्य ते, इष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य,
शस्तोक्थस्य उपहूतस्य, उपहूतो भक्षयामि॥12॥

संहितापाठ

यस्तेऽअश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य तऽइष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि॥12॥

मन्त्रार्थ :- यः - जो, ते - तुम्हारा, अश्वसनिः - अश्वसनि, भक्षो - भक्ष, यो - जो, गोसनिः - गोसनि, तस्य - उसका, ते - तुम्हारा, इष्टयजुष - इष्टयजुष, इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि का यजुष्, स्तुतस्तोमस्य - स्तुतस्तोम का, शस्तोक्थस्य - शस्तोक्थ का, उपहूतस्य - उपहूत का, उपहूतो - उपहूत, भक्षयामि - भक्षण करता हूँ॥12॥

भावार्थ :- हमारा भक्ष ही हमको अश्व तथा गो आदि प्रदान करता है।इसका भाव है कि हम जो कुछ ग्रहण करते हैं, उसके अनुसार ही हमको फल की प्राप्ति होती है।स्वस्थ रहने के लिए हमको स्वास्थ्य-प्रद भोजन ग्रहण करना चाहिए।इसी प्रकार हम जीवन में जो कुछ प्राप्त करना चाहते हैं, उसी के अनुसार हमको आचार-विचार-योग्यता ग्रहण करनी चाहिए।इष्टयजुष का भावार्थ है कि हम इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि का यजुष् ग्रहण करें।इसका अर्थ है कि इष्ट के अनुसार ही यजुष् अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान करते रहें।हमें फल हमारे प्रयासों के अनुरूप ही प्राप्त होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यः (सर्वनाम)।ते (सर्वनाम)।अश्वसनिः (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना, सन् - देना दान करना)।भक्षः (भक्ष = खाना)।गोसनिः (गु = शब्द करना, सन् - देना दान करना)।तस्य (सर्वनाम)।इष्टयजुषः (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना, यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)।स्तुतस्तोमस्य (स्तुञ् - प्रशंसा करना, स्तुति करना, पूजा करना, अर्चा करना, सेवा

करना, भजन करना)। शस्तोक्थस्य (शंस्-शस् - प्रशंसा करना, स्तुति करना, शस् - मारना, दुःख देना)। उपहूतस्य (उप + हूता, उप - समीप, हु = दान करना, आदान - प्रदान करना, ह्वे = बुलाना)। उपहूतः (उप + हूता, उप - समीप, हु = दान-आदान करना, दान करना, ह्वे = बुलाना)। भक्षयामि (भक्ष = खाना)।। 12 ।।

306. देव-कृतस्य एनसो, अव-यजनम् असि, मनुष्य-कृतस्य एनसो, अव-यजनम् असि,
पितृ-कृतस्य एनसो, अव-यजनम् असि, आत्म-कृतस्य एनसो, अव-यजनम् असि,
एनसा एनसो अवयजनम् असि।
यत् च अहम् एनो विद्वान्, चकार यत् च अविद्वान्, तस्य सर्वस्य एनसो, अव-यजनम् असि ।। 13 ।।

संहितापाठ

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्येनसऽ एनसोऽवयजनमसि। यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ।। 13 ।।

मन्त्रार्थ :- देव-कृतस्य - देव-कृत का, एनसो - = प्रकाशित करने वाले, अव-यजनम् - अवयजन, असि - हो, मनुष्य-कृतस्य मनुष्य-कृत का, एनसो = प्रकाशित करने वाले, अव-यजनम् - अवयजन, असि - हो, पितृ-कृतस्य - पितृ-कृत का, एनसो = प्रकाशित करने वाले, अव-यजनम् - अवयजन, असि - हो, आत्म-कृतस्य - आत्म-कृत का, एनसो = प्रकाशित करने वाले, अव-यजनम् - अवयजन, असि - हो, एनसा = प्रकाशित करने वाले, एनसो = प्रकाशित करने वाले, अवयजनम् - अवयजन, असि - हो। यत् - जो, च - और, अहम् - मैं, एनो = प्रकाशित करने वाले, विद्वान् - विद्वान्, चकार - किया, यत् - जो, च - और, अविद्वान् - अविद्वान्, तस्य - उसका, सर्वस्य - सबका, एनसो = प्रकाशित करने वाले, अव-यजनम् - अवयजन, असि - हो।। 13 ।।

भावार्थ :- देवकृत, मनुष्यकृत, पितरकृत तथा आत्मकृत का प्रकाशित करने वाला परमात्मा है। कोई व्यक्ति या प्रकृति किसी भी स्तर का हो, उन सबके कर्म को प्राकाशित करने वाला परमात्मा है। यहाँ मनुष्यों के स्ाथ ही देवों तथा पितरों अर्थात् पूर्वजों के कमों की चर्चा है, परन्तु पूर्व जन्मों के कर्मों का उल्लेख नहीं हैं। स्पष्ट है कि इसी जीवन के कर्म हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं, कल्पित किसी अन्य जन्म के कर्म को लेकर चिन्ता करना व्यर्थ है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : - देवकृतस्य (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। एनसः (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, इन-एन - प्रकाशित करना, मिश्रण करना, विभाजन करना, दूषण करना)। अव-यजनम् (अव - निम्न, नीचा, अव् = रक्षा करना, यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। असि (अस् - होना)। मनुष्य-कृतस्य मन् -मनन करना, विचार करना, कृ = करना)। पितृकृतस्य (पा = रक्षा (रक्षा) करना, पालन करना, पि = जाना, जानना, पाना, कृ = करना)। आत्मकृतस्य (अत् = सतत गमन करना, निरन्तर चलना, कृ = करना)। यत् (सर्वनाम)। च (अव्यय)। अहम् (सर्वनाम)। एनः (सर्वनाम)। विद्वान् (विद् = जानना)। चकार (कृ = करना)। अविद्वान् (विद् = जानना)। तस्य (सर्वनाम)। सर्वस्य (सर्वनाम)।।13 ।।

307. सम् वर्चसा पयसा सम् तनूभिः, अगन्महि मनसा सम् शिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायो, अनु मार्ष्टु तन्वो यत् विलिष्टम् ।। 14 ।।

संहितापाठ

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳशिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ।। 14 ।।

मन्त्रार्थ :- सम् - सम्यक्, वर्चसा - वर्चस् द्वारा, प्रकाश द्वारा, तेज द्वारा, पयसा - पयस् द्वारा, विस्तार द्वारा, सम् - सम्यक, तनूभिः - तनुओं द्वारा, विस्तार द्वारा, शव्द या वाणी द्वारा, अगन्महि - गये, जाना, पाया। मनसा - मन से, सम् - सम्यक, शिवेन - शिव द्वारा। त्वष्टा - त्वष्टा, प्रकाशक, सूक्ष्म करने वाला, सुदत्रो - सुदत्र, अच्छा दानी, वि - विशेष, दधातु - धारण करे, रायो - राय, तन्वो - तन्व, यत् - जो, विलिष्टम् - विलिष्ट को, अनु - पीछे, मार्ष्टु - मार्जन करे।।14 ।।

भावार्थ :- हम मन से प्रयास करें तो शिवत्व, प्रकाश, सम्यक् तेज, सम्यक् वाणी, सम्यक् विस्तार द्वारा जीवन लक्ष्य

को प्राप्त कर सकते हैं। परमात्मा त्वष्टा है, वह प्रकाशक, सूक्ष्म करने वाला, उत्तम दान करने वाला है। इन गुणों को धारण करें तो हम जीवन की न्यूनताओं का परिमार्जन हो सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सम् (उपसर्ग)। वर्चसा (वर्च् = प्रकाशित होना)। पयसा (पयस् = विस्तार करना, फैलाना)। तनूभिः (तन-तनु = विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना, सहायता करना, शब्द करना)। अगन्महि (गम् = जाना, जानना, पाना)। मनसा (मन् - मनन करना, विचार करना)। शिवेन (शिव् - कल्याण करना)। त्वष्टा (त्वक्ष् = छीलना, रेतना, त्विष् = प्रकाशित होना, चमकना)। सुदत्रो (दा, दद् = देना)। वि (उपसर्ग)। दधातु (धा-दध् - धारण करना)। रायः (रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। अनु (उपसर्ग)। मार्ष्टु (मृज् = शुद्ध करना, मार्ज् = शब्द करना)। तन्वः (तनु = विस्तार करना)। यत् (सर्वनाम)। विलिष्टम् (लिश् = न्यून करना, जाना, जानना, पाना, विल् = वस्त्र पहनना, ओढ़ना, छिद्र करना, चीरना, प्रेरणा करना, उड़ाना, फेंकना)॥ 14॥

308. सम् इन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः, सम् सूरिभिः मघवन् सम् स्वस्त्या।
सम् ब्रह्मणा देव-कृतम् यत् अस्ति, सम् देवानाम् सुमतौ यज्ञियानाम्॥15॥

संहितापाठ

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सꣳसूरिभिर्मघवन्त्सꣳस्वस्त्या। सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवानासुमतौ यज्ञियानास्वाहा॥15॥

मन्त्रार्थ :- इन्द्र - हे इन्द्र, णो - हमको, मनसा - मन से, सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, साथ, नेषि - ले जाते हो, गोभिः - गो द्वारा, सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, सूरिभिः - सूरियों द्वारा, मघवन् - हे मधवन्, सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, स्वस्त्या - स्वस्ति द्वारा। सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, ब्रह्मणा - ब्रह्म द्वारा, देव-कृतम् - देवकृत को, यत् - जो, अस्ति - है, सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, देवानाम् - देवों का, सुमतौ सुमति में, यज्ञियानाम् - यज्ञियों का॥ 15॥

भावार्थ :- परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा इन्द्र हमको मन, वाणी, कल्याण साधनों आदि द्वारा सम्यक् दिशा में ले जाता है, साथ ले जाता है। जीवन में सम्यक्, उचित तथा उत्तम मार्ग पर चलने एवम् साथ रहने का सन्देश है।

विशेष :- सम् उपसर्ग क्रियापद से पूर्व आने पर सम्यक् रूप से, भली भाँति साथ होने, संगत होने का भावार्थ भी देता है। वेद में उपसर्ग स्वतन्त्र शब्द के रूप में ही आते हैं अर्थात् शब्द या धातु से जुड़े नहीं रहते हैं। अतः जिस धातु या शब्द के साथ जुड़कर उनका अर्थ करना होता है, उससे दूर, पृथक् भी हो सकते हैं। सम्-नेषि पद मानकर अर्थ किया जाता है। परम्परागत संहिताओं में इस मन्त्र के अन्त में स्वाहा पद भी मिलता है। छन्द तथा अर्थ की दृष्टि से स्पष्ट है कि वह पद मन्त्र का भाग नहीं है। कर्मकाण्ड में विनियोग की दृष्टि से जोड़ दिया गया प्रतीत होता है। अनेक अन्य मन्त्रों में भी ऐसा मिलता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सम् (उपसर्ग)। इन्द्र (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। णः (सर्वनाम)। मनसा (मन् - मनन करना, विचार करना)। नेषि (निष - प्राप्त करना, ले जाना)। गोभिः (गु - अस्पष्ट बोलना, शब्द करना, मनन करना)। सूरिभिः (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। मघवन् (मघ् = धन होना)। स्वस्त्या (सु - अच्छा, अस् - होना, स्वस्ति - कल्याण)। ब्रह्मणा (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। देवकृतम् (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। यत् (सर्वनाम)। अस्ति (अस् = होना)। देवानाम् (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान होना)। सुमतौ (सु - सुन्दर, अच्छा, सु - उत्पन्न करना, पैदा करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, मन - मनन करना, जानना, समझना, स्वीकार करना, अभ्यास करना, स्थिर होना, गर्व होना)। यज्ञियानाम (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥ 15॥

(81) सूक्त 4

309. सम् वर्चसा पयसा सम् तनूभिः, अगन्महि मनसा सम् शिवेन।

त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायो, अनु मार्ष्टु तन्वो यत् विलिष्टम् ॥16॥

संहितापाठ

सम वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳशिवेन।त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्।॥16॥

मन्त्रार्थ :- सम् - सम्यक्, वर्चसा - वर्चस् द्वारा, प्रकाश द्वारा, तेज द्वारा, पयसा - पयस् द्वारा, विस्तार द्वारा, सम् - सम्यक, तनूभिः - तनुओं द्वारा, विस्तार द्वारा, शब्द या वाणी द्वारा, अगन्महि - गये, जाना, पाया। मनसा - मन से, सम् - सम्यक, शिवेन - शिव द्वारा। त्वष्टा - त्वष्टा, प्रकाशक, सूक्ष्म करने वाला, सुदत्रो - सुदत्र, अच्छा दानी, वि - विशेष, दधातु - धारण करे, रायो - राय, तन्वो - तन्व, यत् - जो, विलिष्टम् - विलिष्ट को, अनु - पीछे, मार्ष्टु - मार्जन करे।॥16॥

भावार्थ :- हम मन से प्रयास करें तो शिवत्व, प्रकाश, सम्यक् तेज, सम्यक् वाणी, सम्यक् विस्तार द्वारा जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। परमात्मा त्वष्टा है, वह प्रकाशक, सूक्ष्म करने वाला, उत्तम दान करने वाला है। इन गुणों को धारण करें तो हम जीवन की न्यूनताओं का परिमार्जन हो सकता है॥ 16॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सम् (उपसर्ग)। वर्चसा (वर्च् = प्रकाशित होना)। पयसा (पयस् = विस्तार करना, फैलाना)। तनूभिः (तन-तनु = विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना, सहायता करना, शब्द करना)। अगन्महि (गम् = जाना, जानना, पाना)। मनसा (मन् - मनन करना, विचार करना)। शिवेन (शिव् - कल्याण करना)। त्वष्टा (त्वक्ष् = छीलना, रेतना, त्विष् = प्रकाशित होना, चमकना)। सुदत्रो (दा, दद् = देना)। वि (उपसर्ग)। दधातु (धा-दध् - धारण करना)। रायः (रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। अनु (उपसर्ग)। मार्ष्टु (मृज् = शुद्ध करना, मार्ज् = शब्द करना)। तन्वः = विस्तार (तनु = विस्तार करना)। यत् (सर्वनाम)। विलिष्टम् (लिश् = न्यून करना, जाना, जानना, पाना, विल् = वस्त्र पहनना, ओढ़ना, छिद्र करना, चीरना, प्रेरणा करना, उड़ाना, फेंकना)॥ 16॥

310. धाता रातिः सविता इदम् जुषन्ताम्, प्रजापतिः निधिपा देवो अग्निः।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया सम् रराणा, यजमानाय द्रविणम् दधात स्वाहा॥17॥

संहितापाठ

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपा देवोऽअग्निः।त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳरराणा यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा॥17॥

मन्त्रार्थ :- धाता - धारण करने वाला, रातिः - दान, सविता - उत्पत्ति कर्ता, उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाला, इदम् - यह, जुषन्ताम् - तुष्ट करे, प्रजापतिः - प्रजा का रक्षक, स्वामी, निधिपा - निधि-पालक, देवो - देव, अग्निः - अग्नि। त्वष्टा - प्रकाशक, विष्णुः - विष्णु, प्रजया - प्रजा के साथ, सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, रराणा - शब्द करता हुआ, यजमानाय - यजमान के लिए, द्रविणम् - द्रविण को, दधात - धारण करे॥ 17॥

भावार्थ :- परमात्मा सर्वथा समर्थ है। वह हम विविध साधन-सुविधाएं देकर सन्तुष्ट करता है। वेद में किसी के लिए धा - धारण करना धातु का प्रयोग उसके लिए देने के अर्थ में होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- धाता (धा = धारण करना)। रातिः (रा - देना, मिल जाना)। सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। इदम् (सर्वनाम)। जुषन्ताम् (जुष् = विचार करना, सेवा करना, सन्तुष्ट करना)। प्रजापतिः (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, जन् = उत्पन्न होना, पत् = ऐश्वर्य होना, स्वामी होना)। निधिपाः (नि = निश्चित, धी = धारण करना, पा - पालन करना)। देवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, प्रीति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। अग्नि (अग् = ऊपर जाना, जानना, पाना, तेजस्वी होना)। त्वष्टा (त्वक्ष् = छीलना, रेतना, त्विष् = प्रकाशित होना)। विष्णुः (विष्ण-विष् -विविष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना)। प्रजया (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, जन् = उत्पन्न होना)। संरराणाः (सम् - सम्यक्, रण् - शब्द करना, जाना, जानना, पाना, पहुंचना)। यजमानाय (यजमानः= यजन करने वाला, यजन करता हुआ)। द्रविणम् (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। दधात (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)।॥17॥

311. सुगा वो देवाः सदना अकर्म यो, आजग्म इदम् सवनम् जुषाणाः।

भरमाणा वहमाना हवींषि, अस्मे धत्त वसवो वसूनि ॥ 18 ॥

संहितापाठ

सुगा वो देवाः सदनाऽअकर्म यऽआजग्मेदꣳसवनं जुषाणाः ।भरमाणा वहमाना हवीष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि ।॥18 ॥

मन्त्रार्थ :- वो - तुमको, सुगा - सुन्दर गतियुक्त, देवाः - देवगण, सदना - सदनयुक्त, अकर्म - किया। यो - जो, इदम् - यह, सवनम् - सवन को, जुषाणाः - तुष्ट करते हुए, भरमाणा - भरण करते हुए, हवींषि हवियों को, वहमाना - बहन करते हुए, आजग्म - गये, वसवो - वसुओं ने, वसूनि - वसुओं को, अस्मे - इसके लिए, धत्त - धारण किया।॥18 ॥

भावार्थ :- देवों ने हमें बहुत कुछ दिया है। वे इसी भाँति लोगों का भरण-पोषण करते हुए, उन्हें सन्तुष्ट करते हैं। उन्होंने हमारे लिए ही वसुओं को धारण किया है। हमें भी इसी प्रकार उदार रहना चाहिए।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सुगा (सु = अच्छा, गम् - जाना)। वः (सर्वनाम)। देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, प्रीति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। सदना (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। अकर्म (अ = नहीं, उपसर्ग, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, कृ - करना)। ये (सर्वनाम)। आजग्म (अज् - जानना, जाना, पहुंचना, पाना, फेंकना, हांकना, दौड़ाना, अञ्ज् = स्पष्ट बोलना)। इदम् = यह, इसको (सर्वनाम)। सवनम् (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। जुषाणाः (जुष् = विचार करना, सेवा करना)। भरमाणाः (भृ = धारण-पोषण करना, पूर्ण करना)। वहमानाः (वह् = वहन करना, ले जाना)। हवींषि (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। अस्मे (सर्वनाम)। धत्त (धा = धारण, पोषण, रक्षण, दान करना)। वसवः (वस् = निवास करना, स्नेह करना)। वसूनि (वसु = निश्चल, सीधा होना, वस् = आच्छादन, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥ 18 ॥

312. यान् आ अवह उशतो देव देवान्, तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे।
जक्षिवांस पपिवांस च विश्वे, असुम् घर्म्मम् स्वः आ तिष्ठत अनु ॥ 19 ॥

संहितापाठ

याँ2 ।ऽआवहऽउशतो देव देवाँस्तान् प्रेरय स्वेऽअग्ने सधस्थे।जक्षिवासः पपिवासश्च विश्वेऽसु घर्मस्वरातिष्ठानु स्वाहा ॥ 19 ॥

मन्त्रार्थ :- यान् - जिनको, आ - समन्तात्, पूर्णतः, अवह - वहन किया, उशतो - इच्छुक, देव - हे देव, देवान् - देवों को, तान् - उनको, प्रेरय - प्रेरित करो, स्वे - अपने, अग्ने - हे अग्नि, सधस्थे - स्थान पर। जक्षिवांस - खाने वाले, हँसने वाले, च - और, पपिवांस - पीने वाले, विश्वे - सभी, असुम् - असु को, असु को, ऐश्वर्यवान् को, उत्पन्न करने वाले को, घर्म्मम् - घर्म को, - प्रकाश को, स्वः - ऐश्वर्य, अनु - पीछे, पश्चात्, आ - समन्तात्, पूर्णतः, तिष्ठत - स्थित हो॥ 19 ॥

भावार्थ :- प्रसन्नता पूर्वक हँसते हुए खाने-पीने वाले देवजनों को अपने स्थान पर स्थित होने के लिए प्रेरित करने की भावना व्यक्त की गयी है। प्रकृति की दिव्य शक्तियाँ हों अथवा समाज के सुयोग्य, सज्जन देवजन, सभी को प्रासन्नता पूर्वक जीवन-यापन की समुचित व्यवस्था रहे, यही मानव समाज के हित में है। प्रकृति का संरक्षण - पोषण भी जीवन-रक्षा के लिए आवश्यक है तथा सज्जनों - विद्वानों का भी सहयोग करना महत्वपूर्ण है। सभी का स्वस्थान में पोषण होना आवश्यक है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- यान् (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। अवहः (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, वह - वहन करना, ले जाना)। उशतः (उश - वश - इच्छा करना, चाहना)। देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। देवान् (दिव्, देव् = तेजस्वी होना आदि)। तान् (सर्वनाम)। प्रेरय (प्र = अधिक, ईर - जाना, हांकना, प्रेरणा करना, फेंकना)। स्वे (सर्वनाम)। अग्ने (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना, पहुंचना, पाना)। सधस्थे (सध = सह, साथ, स्थ - स्थित होना)। जक्षिवांसः (जक्ष् - खाना, हँसना)। पपिवांसः (पी-पिब् - पीना)। च (अव्यय)। विश्वे (सर्वनाम)। असुम् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना,

विखेरना, सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। घर्मम् - प्रकाश (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। स्वः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। तिष्ठत (तिष्ठ् = ठहरना)। अनु (उपसर्ग)॥ 19॥

313. वयम् हि त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्, अग्ने होतारम् अवृणीमहि इह।
ऋधक् अया ऋधक् उत अशमिष्ठाः, प्रजानन् यज्ञम् उप याहि विद्वान्॥20॥

संहितापाठ

वयꣳहि त्वा प्रयति यज्ञेऽअस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह। ऋधगयाऽऋधगुताशमिष्ठाः प्रजानन् यज्ञमुपयाहि विद्वान्त्स्वाहा॥20॥

मन्त्रार्थ :- अग्ने - हे अग्नि, वयम् - हमने, हि - ही, इह - यहाँ, अस्मिन् - इसमें, प्रयति - प्रगति, यज्ञे - यजन में, त्वा - तुमको, होतारम् - होता को, अवृणीमहि - वरण किया है। विद्वान् - विद्वान् ने, अया - इससे, ऋधक् - समृद्धि, उत - ही, ऋधक् - समृद्धि, अशमिष्ठाः - शमन किया, प्रजानन् - जानते हुए, यज्ञम् - यजन को, उप - समीप, याहि - जाओ॥ 20॥

भावार्थ :- यजन का अर्थ है देवपूजा, संगतिकरण, दान। विद्वानों ने इस भावना को अपनाकर ही समृद्धि प्राप्त की है। इससे ही शमन किया है, शान्ति प्राप्त की है। अतः इस तथ्य को जानते हुए इसके स्मीप जाओ, अर्थात् इस भावना को अपनाओ, जीवन में उतारो।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- वयम् (सर्वनाम)। हि (अव्यय)। त्वा (सर्वनाम)। प्रयति (यत - यत्न करना, उद्योग करना, निश्चय करना, ठहराना)। यज्ञे (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान)। अस्मिन् (सर्वनाम)। अग्ने (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना, पहुंचना, पाना)। होतारम् (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। अवृणीमहि (वृ = वरण करना, अपनाना, नियोजित करना, आच्छादित करना, सेवा करना, परिचर्या करना)। इह (सर्वनाम)। ऋधक् (ऋध् -वृद्धि होना, वृद्धि करना, समृद्धि होना, ऐश्वर्य होना, आनन्दित करना, पूर्ण करना)। अया (सर्वनाम)। ऋधक् (ऋध् -वृद्धि होना, वृद्धि करना, समृद्धि होना, ऐश्वर्य होना, आनन्दित करना, पूर्ण करना)। उत (अव्यय)। अशमिष्ठाः (शम् - शमन करना, शान्त होना, कल्याण होना)। प्रजानन् (ज्ञा-जा - जानना)। यज्ञम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। उप (उपसर्ग)। याहि (या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। विद्वान् (विद्= जानना)॥ 20॥

314. देवा गातुविदो, गातुम् वित्वा गातुम् इत। मनसस्पते इमम् देव, यज्ञम् स्वाहा वाते धाः॥21॥

संहितापाठ

देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पतऽइमं देव यज्ञस्वाहा वाते धाः॥21॥

मन्त्रार्थ :- गातुविदो - गातुविद्, देवा - देवगण, गातुम् - गातु को, वित्वा - जानकर, गातुम् - गातु को, इत - जाएँ। मनसस्पते - हे मनसस्पते, मनस् के पति, मन के पालक, रक्षक, स्वामी, इमम् - इसको, देव - हे देव, यज्ञम् - यजन को, स्वाहा - व्यापक, वाते - वात में, धाः - धारण करो॥ 21॥

भावार्थ :- गातुविद् देवगण गातु को जानकर गातु को जाएँ, वाक्य में भाव-सौन्दर्य के साथ ही शब्द-सौन्दर्य तथा काव्य-सौन्दर्य दर्शनीय है। गातु का अर्थ है गान। वेद-मन्त्रों को विविध रूपों में गाया जाता रहा है। इस गान को ही गातु कहा गया है। जो देवगण विद्वान् इस गातु अर्थात् वेदगान को जानने वाले हैं, वे गातु को जाते हैं। इसका अर्थ है कि ऐसे वेद-ज्ञान-रसज्ञ जन ऐसे स्थानों पर जाते हैं, जहाँ वेदगान होता है। वे मनस् के पति अर्थात् स्वामी होते हैं। उनका मन विचलित नहीं होता है। वे इस प्रकार के गातु यजन को व्यापक बनाते हैं, विस्तार करते हैं, गातु अर्थात् वेदगान को वात में अर्थात् वायु-मण्डल में धारण करते हैं, स्थापित करते हैं। भाव यह है कि वेदगान को सर्वत्र प्रसारित करते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न

होना, खेलना)। गातुविदः (गा = स्तुति करना, गान करना, जाना, जानना, विद् = जानना)। गातुम् (गा = स्तुति करना, गान करना, जाना, जानना)। वित्त्वा (विद् = जानना)। इत (इ - जाना, जानना, पाना, इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। मनसस्पते (मनसः + पते, मन् - मनन करन, विचार करना, पत् - ऐश्वर्य होना, स्वामी होना, पा - पालन करना)। इमम् (सर्वनाम)। देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। यज्ञम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। वाते (वा = बहना, प्रवाह होना, जाना, जानना, पाना, गन्ध लेना)। धाः (धा = धारण करना)।। 21।।

315. यज्ञ यज्ञम् गच्छ, यज्ञपतिम् गच्छ, स्वाम् योनिम् गच्छ स्वाहा।
एष ते यज्ञो यज्ञपते, सहसूक्तवाकः सर्ववीरः, तम् जुषस्व स्वाहा।।22।।

संहितापाठ

यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनि गच्छ स्वाहा।एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्ववीरस्तं जुषस्व स्वाहा।।22।।

मन्त्रार्थ :- यज्ञ - हे यज्ञ, यज्ञम् - यज्ञ को, गच्छ - जाओ, यज्ञपतिम् - यजनपति को, गच्छ - जाओ, स्वाम् - अपने, योनिम् - स्थान को, गच्छ - जाओ, स्वाहा - व्यापक हो। एष - यह, ते - तुम्हारा, यज्ञो - यज्ञ, यज्ञपते - हे यजनपति, सहसूक्तवाकः - सूक्त-वचन के साथ, सर्ववीरः - सभी वीर, तम् - उसको, जुषस्व - सेवन करो, स्वाहा - व्यापक हो।। 22।।

भावार्थ :- यज्ञ अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान को वैदिक संस्कृति में बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। सामूहिक धार्मिक आयोजनों को भी यज्ञ या यजन कहा जाता है। विविध प्रकार के ज्ञान यज्ञ तथा दान यज्ञ बहुधा आयोजित होते रहते हैं। यजन की महत्ता इतनी अधिक मानी गयी है कि परमात्मा को यज्ञ नाम से सम्बोधित किया गया है। यहाँ कहा गया है कि हे यज्ञ, तुम यज्ञ को जाओ। यहाँ शब्द सौन्दर्य तथा अलंकार की छटा भी दर्शनीय है। यज्ञ को ही सम्बोधित किया गया है तथा उससे यज्ञ को जाने के लिए भी कहा गया है। यज्ञ स्वरूप परमात्मा को सम्बोधित करते हुए कहा जा रहा है कि यहाँ यजन हो, जो यजन की भावना के अनुरूप जीवन जीते हैं, उनको प्राप्त हो। इसी प्रकार से जो यज्ञ-भावना को झीवन में अपनाते हैं, ऐसे यज्ञ-पुरुषों से कहा गया है कि वे यज्ञ-स्वरूप परमात्मा को प्राप्त हों। उन्हें जीवन में सुख-सामर्थ्य प्राप्त हो, यह भी कामना की गयी है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- यज्ञ (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। यज्ञम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। यज्ञपतिम् (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना, पत् - ऐश्वर्य होना, स्वामी होना, पा - पालन करना)। गच्छ (गम्-गच्छ् - जाना)। स्वाम् (सर्वनाम)। योनिम् (यु = बन्धन होना, मिलाना, अलग करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। यज्ञपते (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। सहसूक्तवाकः (सह - साथ, सु - अच्छा, उच्-उक्-वच् - बोलना)। सर्ववीरः (सर्व - सभ, सभी, सर्वनाम, वीर् - वीरता दिखाना, शूरवीर होना)। तम् (सर्वनाम)। जुषस्व (जुष् = विचार करना, सेवा करना, सन्तुष्ट करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)।। 22।।

316. मा अहिः भूः मा पृदाकुः।उरुम् हि राजा वरुणः चकार, सूर्याय पन्थाम् अनु एतवै उ।
अपदे पादा प्रतिधातवे अकः, उत अपवक्ता हृदयाविधः चित्।
नमो वरुणाय अभिष्ठितो, वरुणस्य पाशः।।23।।

संहितापाठ

माहिर्भूर्मा पृदाकुः।उरुꣳहि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवाऽउ।अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्।नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः।।23।।

मन्त्रार्थ :- मा - नहीं, अहिः - अहि, मा - नहीं, पृदाकुः - पृदाकु, भूः - हो, बनो। उरुम् - विस्तृत, व्यापक, हि

- ही, राजा - राजा, प्रकाशमान, वरुणः - वरुण ने, सूर्याय - सूर्य के लिए, पन्थाम् - पन्थ को, अनु - पीछे, एतवै - गमन के लिए, उ - ही, अपदे - अपद में, पादा - पाद, प्रतिधातवे - प्रतिधारण करने के लिए, स्थापन के लिए, अकः - गतिशील, वक्रगामी, भ्रमणशील, उत - ही, अपवक्ता - अपवक्ता, हृदयाविधः - हृदय से आविध, चित् - ही, चकार - किया, बनाया। वरुणाय - वरुण के लिए, नमो - नमन, वरुणस्य - वरुण का, पाशः - पाश, अभिष्ठितो - अभिष्ठित (है)।।23।।

भावार्थ :- यहाँ कहा गया है कि अहि मत बनो, पृदाकु मत बनो। अह् धातु का अर्थ हिंसा करना, गति करना है। हमें हिंसक नहीं बनना है। जिसमें हिंसा हो ऐसी गति भी नहीं चाहिए, वह तो अधोगति है। अहि-अंह् धातु का अर्थ चमकना, कुटिल गति करना, मथना है। ऐसी चमक, ऐसा मन्थन उचित नहीं है जिसमें कुटिलता हो। पृत् धातु का अर्थ व्याप्त होना, बलपूर्वक निकालना है। इस तरह व्याप्त होना अनुचित है जिसमें स्वार्थ इतना व्यापक हो जाये कि अन्य लोगों को बलपूर्वक निकाला जाये। ऐसा बल, व्यापकता उचित नहीं है। पृथ धातु का अर्थ शासन करना, व्याप्त होना, उड़ाना, फेकना है। यह भी नकारात्मक व्यापकता है। हमें इससे भी बचना चाहिए। कहा गया है कि विस्तृत व्यापक राजा वरुण ही है। वरुण अर्थात् वरणीय, वरण करने योग्य राजा अर्थात् प्रकाशित, प्रकाशमान, प्रकाश करने वाला। वरणीय परमात्मा ही वास्तविक राजा है, अन्य कोई नहीं। वरुण ने सूर्य के अनुगमन के लिए पथ बनाया है। वह पथ भी वहाँ बनाया है, जहाँ अपद है, अगम है। अन्तरिक्ष में साधारणतः कोई पथ नहीं प्रतीत होता है, परन्तु सूर्य आदि नक्षत्र, गृह-उपगृह सभी निर्धारित पथ पर ही संचरण करते हैं। उस अन्तरिक्ष में परमात्मा ने ऋत व्यवस्था के अनुसार जो पथ निर्धारित किया है, उसकी महत्ता का संकेत किया गया है। वरुण अर्थात् वरणीय परमात्मा का पाश अर्थात् बन्धन या अनुशासन अभिष्ठित है, उस वरुण के लिए हमारा नमन है। वृ धातु बहुत अर्थ युक्त है। इसके अनेक अर्थ हैं। सभी महत्वपूर्ण है तथा परमात्मा के व्यापक स्वरूप का वर्णन करने वाले हैं। इसीलिए वेद में परमात्मा को बहुधा वरुण नाम से स्मरण किया गया है। इस मन्त्र का सन्देश है कि परमात्मा का अनुशासन सर्वत्र सर्वदा रहता है, इसका अनुभव करें, उसके अनुशासन में रहें तथा उसे नमन करें, यह हमारा कर्तव्य है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- मा (अव्यय)। अहिः (अह् - हिंसा करना, गति करना, अहि-अंह् - प्रकाशित होना, चमकना, कुटिल गति करना, मथना)। भूः (भू = होना)। पृदाकुः (पृ - किसी कृत्य में आसक्त रहना, पृत् - व्याप्त होना, बलपूर्वक निकालना, पृथ धातु का अर्थ शासन करना, व्याप्त होना, उड़ाना, फेकना)। उरुम् (उर् = जाना, चलना)। हि (अव्यय)। राजा (राज् = चमकना, प्रकाशित-शोभित होना)। वरुणः (वृ = वरण करना, पालन करना)। चकार (कृ - करना)। सूर्याय (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। पन्थाम् (पन्थ् - जाना, घूमना)। अनु (उपसर्ग)। एतवै (आ - समन्तात्, पूर्णतः, इ - जाना, जानना, पाना)। उ (निपात, अव्यय)। अपदे (अ = नहीं, पद् - चलना)। पादा (पद् - चलना)। प्रतिधातवे (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, धा = धारण करना)। अकः (अक् - वक्रगन्ता, वक्रगामी, टेढ़ा जाने वाला)। अपवक्ता (अप = दूर, नीचे, अपकार, वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। हृदयाविधः (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। चित् (अव्यय)। नमः (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। वरुणाय (वृ - वरण करना, वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना)। अभिष्ठितो (अभि = सभी ओर, स्था - स्थित होना, स्थापित होना)। वरुणस्य (वृ - वरण करना, वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना)। पाशः (पश् = बन्धन करना, बाँधना, जाना)।। 23।।

317. अग्नेः अनीकम् अप आ विवेश, अपाम् नपात् प्रति रक्षन् असुर्यम्।
दमे-दमे सम् इधम् यक्षि अग्ने, प्रति ते जिह्वा घृतम् उत् चरण्यत्।।24।।

संहितापाठ

अग्नेरनीकमपऽआविवेशापान्नपात् प्रतिरक्षन्नसुर्यम्। दमेदमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत्।।24।।

मन्त्रार्थ :- अग्नेः - अग्नि का, अनीकम् - स्पन्दनशील, चेतना, प्राण, अप - दूर, आ - समन्तात्, सम्पूर्ण, विवेश - प्रवेश किया, अपाम् - अपा को, पालकों का, नपात् - चले, प्राप्त किया, प्रति रक्षन् - प्रतिरक्षा करते हुए, असुर्यम् - असुर्य को, दमे-दमे - दयालु, शान्त, दमन, दया, सन्धि, शमन, जय में, सम् - सम्यक्, इधम् - इध को, प्रकाश को, यक्षि -

पूजन करो, सत्कार करो, अग्ने - हे अग्नि! ते - तुम्हारे, प्रति - प्रति, सम्बन्ध में, जिह्वा - जानने, पाने वाला, जीभ, घृतम् - प्रकाशमान को, उत् - ऊपर, उच्च, चरण्यत् - चला, गया।। 24 ।।

भावार्थ :- अग्नि परमात्मा के अनीक अर्थात् चेतना में प्रवेश करना है। इसके लिए अपा, अप आ अर्थात् नीचे आना है, अहंकार से, स्वयम् को उच्च होने की भावना से भुक्त होना है। अप का अर्थ है नीचे तथा अपा का अर्थ दूर करना है। असुर्य का प्रतिरक्षण करते हुए चलना, प्राप्त करना है। असुर्य अर्थात् असुर योग्य, अस्तित्व या प्राण योग्य, वर्तमान योग्य, ऐश्वर्यहीन, उत्पन्न-सृजन नहीं करने वाला, प्रकाश देने वाला। अ नकारात्मक उपसर्ग है, इसका अर्थ है नहीं। अस् धातु का अर्थ होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना है। सु धातु का अर्थ उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्‌भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना है। सू धातु का अर्थ प्रेरणा देना है। हे अग्नि परमात्मन्, हम दम-दम में प्रकाश की पूजा करते हैं, तुम्हारे लिए जिह्वा प्रकाश की ओर ऊपर चलती है। परमात्मा प्रकाश स्वरूप है, हमें प्रकाशमय होना चाहिए, प्रकाश की पूजा-उपासना करनी चाहिए।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अग्नेः (अग् = गति करना, अग्रणी होना)। अनीकम् (अन् = प्राण होना, चेतन होना, श्वास लेना, स्पन्दन करना, हलचल करना, जीवन होना, समर्थ होना, जाना)। अप (उपसर्ग)। आ (उपसर्ग)। विवेश (विश - प्रवेश करना, घुसना, भीतर जाना, धंसना, चारों ओर फैलना)। अपाम् (अप - पालन करना)। नपात् (न = नहीं, पा - पलन करना, रक्षा करना, नप - पहुंचना, जानना, पाना, शब्द करना, झंकार करना, चमकना)। प्रति (उपसर्ग)। रक्षन् (रक्ष् = रक्षा करना, बचाना)। असुर्यम् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना, सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्‌भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। दमे-दमे (दम् - शान्त करना, दमन करना, दया करना, शमन करना, सन्धि करना, जीतना)। समिधम् (सम् + इधः, इन्धी = प्रकाशित करना, होना)। यक्षि (यक्ष् - आराधना करना, पूजा करना, सत्कार करना)। अग्ने (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना, पहुंचना, पाना)। प्रति (उपसर्ग)। ते (सर्वनाम)। जिह्वा (जिह् = जाना, जानना, पाना)। घृतम् (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। उत् (अव्यय)। चरण्यत् (चरण - जाना)।।24 ।।

318. समुद्रे ते हृदयम् अप्सु, अन्तः सम् त्वा विशन्तु, ओषधीः उत आपः।
यज्ञस्य त्वा यज्ञपते, सूक्तोक्तौ नमोवाके, विधेम यत् स्वाहा ।।25 ।।।

संहितापाठ

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः। यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा ।।25 ।।

मन्त्रार्थ :- समुद्रे - समुद्र में, ते - तुम्हारे, हृदयम् - हृदय को, अप्सु - अपों में, अन्तः - भीतर, सम् - सम्यक्, त्वा - तुम, विशन्तु - प्रवेश करो, ओषधीः - ओषधि, उत - ही, आपः - आप, व्याप्त, व्यापक। यज्ञस्य - यज्ञ का, त्वा - तुमको, यज्ञपते - हे यज्ञपति, सूक्तोक्तौ - सूक्तोक्त, नमोवाके - नमोवाक् में, विधेम - धारण करें। यत् - जो, स्वाहा - व्यापक।। 25 ।।।

भावार्थ :- हृदय को समुद्र के भीतर प्रवेश करने के लिए कहा गया है। जितना भीतर प्रवेश करेंगे, उतना ही लाभ प्राप्त होगा।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- समुद्रे (सम् - सम्यक्, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना)। ते (सर्वनाम)। हृदयम् (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। अप्सु (अप् - पालन करना, रक्षा करना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। सम् (उपसर्ग)। त्वा (सर्वनाम)। विशन्तु (विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना, सब ओर फैलना)। ओषधीः (ओषध्-उषघ् = जानना, पीडा निवारण करना, चिकित्सा करना)। उत (अव्यय)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। यज्ञस्य (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। यज्ञपते (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण,

दान करना)। सूक्तोक्तौ (सु - अच्छा, उक्-वच् - बोलना, कहना, सू - प्रेरणा देना, भेजना, उड़ाना, कार्य में लगाना)। नमोवाके (नम् - नमन करना, वक्-वच = बोलना, कहना)। विधेम (विध - विधान करना)। यत् (सर्वनाम)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥ 25॥

319. देवीः आप एष वो गर्भः, तम् सु-प्रीतम् सु-भृतम् बिभृत।
देव सोम एष ते लोकः, तस्मिन् शम् च वक्ष्व परि च वक्ष्व॥ 26॥

संहितापाठ

देवीरापऽएष वो गर्भस्तꣳसुप्रीतꣳसुभृतं बिभृत। देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छञ्च वक्ष्व परि च वक्ष्व॥ 26॥

मन्त्रार्थ :- देवीः - देवी, दिव्य शक्ति, दिव्य सत्ता, आप - आप, व्याप्त, व्यापक, एष - यह, वो - तुम्हारा, गर्भः - गर्भ, तम् - उसको, सु-प्रीतम् - अच्छे प्रीत को, सु-भृतम् - अच्छे भरण करने वाले को, बिभृत -भरण किया। देव - हे देव, सोम - सोम, एष - यह, ते - तुम्हारा, लोकः - लोक, तस्मिन् - उसमें, शम् - शान्ति, कल्याण, च - और, वक्ष्व - एकत्र करो, परि - सभी ओर, च - और, वक्ष्व - एकत्र करो॥ 26॥॥

भावार्थ :- परमात्मा उनका भरण करता है जो अच्छा भरण करने वाले हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- देवीः (दिव् - दिव्यता होना, तेजस्वी होना)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। एषः (सर्वनाम)। वः (सर्वनाम)। गर्भः (गृ = सींचना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना)। तम् (सर्वनाम)। सुप्रीतम् (सु = अच्छा, प्री - तर्पण करना, प्रीति करना, तृप्त करना, कामना करना)। सुभृतम् (भृ = भरण-पोषण, धारण करना)। बिभृत (भृ = भरण-पोषण, धारण करना)। देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। सोम (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सो - अन्त करना, विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। ते (सर्वनाम)। लोकः (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। तस्मिन् (सर्वनाम)। शम् (शम् - शमन करना, शान्त करना, कल्याण करना, सान्त्वना देना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना)। च (अव्यय)। वक्ष्व (वक्ष् - क्रोध करना, एकत्र करना)। परि (उपसर्ग)। वक्ष्व (वक्ष् - क्रोध करना, एकत्र करना)।26॥

320. अवभृथ निचुम्पुण, निचेरु असि निचुम्पुणः।
अव देवैः देवकृतम्, एनो अयासिषम् अव,
मर्त्यैः मर्त्यकृतम् पुरुराव्णो देव रिषः पाहि।
देवानाम् समित् असि॥ 27॥

संहितापाठ

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः। अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि। देवानासमिदसि॥ 27॥

मन्त्रार्थ :- निचुम्पुण हे मन्दगति वाले **अवभृथ** अवभृथ! **निचुम्पुणः** मन्दगति का **निचेरुः** चयन करने वाले **असि** हो। **देव** हे देव! **एनः** यह **अयासिषम्** प्रयत्न किया। **देवैः** देवों द्वारा **देवकृतम्** देवकृत की **अव** रक्षा करो, **मर्त्यैः** मरणशीलों (मनुष्यों) द्वारा **मर्त्यकृतम्** मानवकृत की **अव** रक्षा करो, **पुरुराव्णो** अग्रगामी प्रमुख दानी! **रिषः** हिंसकों से **पाहि** रक्षा करो। देवानाम् - देवों का, समित् - सम्यक् प्रकाश, असि - हो॥ 27॥

भावार्थ :- अवभृथ परमात्मा को सम्बोधित किया गया है। वह मन्दगति का चयन करने वाला है। बहुत तीव्र भागमभाग-आपाधापी उचित नहीं है। देवकार्य की रक्षा देव करें और मनुष्य कर्म की रक्षा मनुष्य करे, यही नियम है। परमात्मा दयालु और प्रमुख दानी है, हिंसक से उपासक की रक्षा करता है। हमें सत्पथ पर चलते हुए उपासना करनी चाहिए॥ 27॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अवभृथ (अव् = रक्षा करना, जानना, भृ = शरण-पोषण-पालन करना)। **निचुम्पुण** (नि + चुम्पुण, चुप् = धीरे चलना)। **निचेरुः** (नि + चेरुः, चि = चुनना, चयन करना)। **असि** (अस् = होना)। **अव** (अव् = रक्षा करना)। **देवैः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना)। **देवकृतम्** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, कृ - करना)। **एनः** (सर्वनाम)। **अयासिषम्** (यस् = प्रयत्न करना)। **मर्त्यैः** (मृ = मरना, देहत्याग करना)। **मर्त्यकृतम्** (मृ =

मरना, देहत्याग करना, कृ - करना)। **पुरुराव्णो** (पुर् = आगे जाना, रा = दान करना)। **देव** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना)। **रिषः** (रिष् = हिंसा करना)। **पाहि** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **देवानाम्** (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। **समित्** (सम् - सम्यक्, सम् - न घबराना, एक समान रहना, सम् = भलीभांति, उपसर्ग, इत् = ही, अव्यय, इन्ध = प्रकाशित होना)॥ 27॥

321. एजतु दशमास्यो, गर्भो जरायुणा सह। यथा अयम् वायुः एजति, यथा समुद्र एजति।
एव अयम् दशमास्यो, अस्रत् जरायुणा सह॥28॥

संहितापाठ

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह। यथायं वायुरेजति यथा समुद्रऽएजति। एवायं दशमास्योऽअस्रज्जरायुणा सह॥28॥

मन्त्रार्थ :- एजतु - प्रकाशित हो, गतिमान हो, दशमास्यो - दशमास्य, गर्भो - गर्भ, जरायुणा - जरायु के, सह - साथ। यथा - जैसे, अयम् - यह, वायुः वायु, एजति - प्रकाशित होती है, गतिमान होती है,, यथा - जैसे, समुद्र - समुद्र, एजति - प्रकाशित होता है, गतिमान होता है। एव - ही, अयम् - यह, दशमास्यो - दशमास्य, अस्रत् - चला, गया, जरायुणा - जरायु के, सह -साथ॥ 28॥

भावार्थ :- जैसे प्रकृति प्रकाशमान गतिशील है, उसी प्रकार हम भी प्रकाशमान तथा गतिशील बनें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- एजतु (एज - प्रकाशित होना, चमकना, झलकना, कम्पन करना, चलना)। दशमास्यो (दश = दस, संख्या, मस् - रूपान्तर करना, मापना)। गर्भो (गृ = सींचना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना)। जरायुणा (जृ - वृद्ध होना, जीर्ण होना, अय - जाना, चलना, शब्द करना, ध्वनि करना, ऐ-आय् - शासन करना, शब्द करना, ध्वनि करना)। सह (सर्वनाम)। यथा (सर्वनाम)। अयम् (सर्वनाम)। वायुः (वा = गति करना, वे = बुनना)। एजति (एज् - कांपना, थरथराना, चलना, प्रकाशित होना, चमकना, झलकना)। यथा (सर्वनाम)। समुद्रः (सम् = सम्यक्, भलीभांति, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना, द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। एव (अव्यय)। दशमास्यो (दश = दस, संख्या, मस् - रूपान्तर करना, मापना)। अस्रत् (अस् = फेंकना, बिखेरना, उड़ाना, सृ - चलना, सरकना, जाना)॥ 28॥

(83) सूक्त 6

322. यस्यै ते यज्ञियो गर्भो, यस्यै योनिः हिरण्ययी। अङ्गानि अह्रुता यस्य, तम् मात्रा सम् अजीगमम्॥29॥

संहितापाठ

यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी। अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमस्वाहा॥29॥

मन्त्रार्थ :- यस्यै - जिसके लिए, ते - तुम्हारा, यज्ञियो - यजन-योग्य, गर्भो - गर्भ, यस्यै - जिसके लिए, योनिः - योनि, स्थान, हिरण्ययी - हिरण्य। अङ्गानि - अंग, अह्रुता - व्याप्त, यस्य - जिसका, तम् - उसको, मात्रा - माता द्वारा, सम् - सम्यक्, अजीगमम् - संगम किया॥ 29॥

भावार्थ :- हमारा सर्वस्व यजनीय है, देवपूजा, संगतिकरण, दान के लिए है, परमात्मा के लिए है। माता से हमें जो शरीर प्राप्त हुआ है, उसे परमात्मा तथा उसके उपासकों की सेवा में समर्पित करते हैं, यही जीवन की सार्थकता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- यस्यै (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। यज्ञियो (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। गर्भो (गृ = सींचना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। हिरण्ययी (हिरण् - शब्द करना, दीप्त होना, हि = गति करना, रण् = शब्द करना, जाना)। अङ्गानि (अङ्ग् = चलना, समीप जाना, अंग होना)। अह्रुता (अह् = व्याप्त होना)। यस्य (सर्वनाम)। तम् (सर्वनाम)। मात्रा (मा = मान करना, मापना)। सम् (उपसर्ग)। अजीगमम् (अज - जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना)॥

323. पुरुदस्मो विषुरूप इन्दुः, अन्तः महिमानम् आनञ्ज धीरः।
एकपदीम् द्विपदीम् त्रिपदीम् चतुष्पदीम्, अष्टापदीम् भुवना अनु प्रथन्ताम् स्वाहा॥30॥

संहितापाठ

पुरुदस्मो विषुरूपऽइन्दुरन्तर्महिमानमानञ्ज धीरः। एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीमष्टापदीं भुवनानु प्रथन्तास्वाहा।30॥

मन्त्रार्थ :- पुरुदस्मो - बहुरक्षक, विषुरूप - व्यापक रूप वाला, इन्दुः - परम ऐश्वर्यवान्, धीरः - धीर, अन्तः - भीतर, महिमानम् - महिमा को, आनञ्ज - सम्यक् जानता है। एकपदीम् - एकपदी को, द्विपदीम् - द्विपदी को, त्रिपदीम् - त्रिपदी को, चतुष्पदीम् - चतुष्पदी को,, अष्टापदीम् - अष्टपदी को, भुवना - भुवनों को, अनु - पीथे, प्रथन्ताम् - प्रसिद्ध करे, स्वाहा- व्यापक हो॥ 30॥

भावार्थ :- परमात्मा के व्यापक स्वरूप को उपासक अपने भीतर अन्तःकरण में सम्यक् रूप से पूर्णतः जानता है। इन्दु स्वरूप परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा सबके भीतर व्यापक होकर सब कुछ सम्यक् रूप से पूर्णतः जानता है। एकपदी, द्विपदी आदि से आशय है कि क्रमशः एक-एक पद बढ़ते हुए हम भुवनों को जान सकते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- पुरुदस्मो (पुरु - बहुत, पुर् = आगे जाना, दस् - रक्षा करना)। विषुरूपः (विष - व्याप्त होना, शेष रखना, सींचना, प्रोक्षण करना, रूप - रूप बनाना, आकार बनाना, रचना करना, मन में रूपाकृति लाना)। इन्दुः (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना, अमानवीय पराक्रम होना, ईश्वरीय शक्ति होना)। अन्तः (अन्तः = बीच में, अन्त् - अन्त होना, समाप्त होना, बाँधना, पाना, हिंसा करना)। महिमानम् (मह्-मंह् = पूजा करना, सम्मान करना)। आनञ्ज (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, नञ्ज् - गति करना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, विस्मरण करना, नाश होना)। धीरः (धी = धारण करना)। एकपदीम् (एक = एक, पद - स्थानान्तर करना, चलना, जाना)। त्रिपदीम् (त्रि = तीन, पद - स्थानान्तर करना, चलना, जाना)। चतुष्पदीम् (चतुः = चार, पद - स्थानान्तर करना, चलना, जाना)। भुवना (भू = होना)। अनु (उपसर्ग)। प्रथन्ताम् (प्रथ् = फैलना, प्रसिद्ध होना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥ 30॥

324. मरुतो यस्य हि क्षये, पाथ दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः॥31॥

संहितापाठ

मरुतो यस्य हि क्षये पाथ दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः॥31॥

मन्त्रार्थ :- मरुतो - मरुत, यस्य - जिसका, हि - ही, क्षये - क्षय में, निवास में, पाथ - जाते हैं, गये, दिवो - दिव्य, विमहसः - विशेष महान्, पूज्य। स - वह, सुगोपातमो - अच्छी तरह रक्षित, जनः - जन, (है)॥ 31॥

भावार्थ :- जिसके निवास में मरुत् अर्थात् मरणीय तथा दिव्य महान् लोग जाते हैं, वह जन सुरक्षित है। मरुत् का शब्दार्थ मरणशील होता है, बहुधा मरुत् का अर्थ मनुष्य किया जाता है। मन्त्र का आशय है कि साधारण मरुत् या मरणशील मनुष्य तथा दिव्य महान् पूज्य महापुरुष जिनके घरों में जाते हैं, वे लोग स्वभावतः अनेक समस्याओं तथा दोषों - दुर्गुणों से सुरक्षित रहते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- मरुतो (मृ = मरना)। यस्य (सर्वनाम)। हि (अव्यय)। क्षये (क्षि = निवास करना, जाना, जानना)। पाथ (पथ् = जाना, जानना, पाना, पा = रक्षा करना)। दिवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना आदि)। विमहसः (वि = विशेष, मह् - सम्मान करना, पूजा करना)। सः (सर्वनाम)। सुगोपातमो (सु = अच्छा, गुप् = रक्षा करना)। जनः (जन् = उत्पन्न करना)॥ 31॥

325. मही द्यौः पृथिवी च नः, इमम् यज्ञम् मिमिक्षताम्। पिपृताम् नो भरीमभिः॥32॥

संहितापाठ

मही द्यौः पृथिवी च नऽइमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः॥32॥

मन्त्रार्थ :- मही - महती, पूज्य, द्यौः - प्रकाशवान्, विद्वान्, प्रकाशयुक्त, अग्रगामी, पृथिवी - पृथ्वी, विस्तृत, च - और, नः - हमारा, इमम् - इस, यज्ञम् - यजन को, मिमिक्षताम् - सिंचन करें। नो - हमें, भरीमभिः - भरण करने वालों द्वारा, पिपृताम् - पूर्ण करें॥ 32॥

भावार्थ :- महती, पूज्य, प्रकाशवान्, अग्रगामी, विद्वान् हमारे इस यजन को अभिसिञ्चित करें। वैदिक जीवन यजनमय है। हमारा जीवन यज्ञ अग्रगामी, विद्वानों द्वारा अभिसिञ्चित है। इसका अर्थ है कि हमारे जीवन में अग्रणी विद्वानों का मार्गदर्शन प्राप्त होता रहता है। इससे जीवन में भरण-पोषण तथा पूर्णता प्राप्त होती है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- मही (मह् - सम्मान करना, पूजा करना)। द्यौः (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना, प्रकाश होना, जानना)। पृथिवी (पृथ् = विस्तार होना, फेंकना, प्रेरणा करना)। च (अव्यय)। नः (सर्वनाम)। इमम् (सर्वनाम)। यज्ञम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। मिमिक्षताम् (मिह - गीला करना, सींचना, प्रोक्षण करना)। पिपृताम् (पृ - पूर्ण करना, भरना)। भरीमभिः (भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)॥ 32॥

(84) सूक्त 7

326. आ तिष्ठ वृत्र-हन् रथम्, युक्ता ते ब्रह्मणा हरी। अर्वाचीनम् सु ते मनो, ग्रावा कृणोतु वग्नुना। उपयाम-गृहीतो असि, इन्द्राय त्वा षोडशिने, एष ते योनिः इन्द्राय त्वा षोडशिने॥ 33॥

संहितापाठ

आतिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी। अर्वाचीनꣳसु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने॥ 33॥

मन्त्रार्थ :- आ तिष्ठ - प्रतिष्ठित हो, वृत्र-हन् - वृत्र-हनन करने वाले, रथम् - रथ को, युक्ता - युक्त, ते - तुम्हारा, ब्रह्मणा - ब्रह्म द्वारा, हरी - हरि। अर्वाचीनम् - अर्वाचीन, सु - अच्छा, ते - तुम्हारा, मनो - मन, युक्ता = युक्त। ग्रावा - स्तुति, सिञ्चन, बोध, ज्ञान, शब्द करने वाले, कृणोतु - करो, वग्नुना - वाणीयुक्त द्वारा, विद्वान् द्वारा। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इन्द्राय - परम ऐश्वर्य के लिए, इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, षोडशिने - हे षोडषी, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - योनि, स्थान, इन्द्राय - परम ऐश्वर्य के लिए, इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, षोडशिने - हे षोडषी॥ 33॥

भावार्थ :- हिंसा-भावना का हनन करने वाले विद्वान् रथयुक्त होकर आयें, वे स्तुति-गान करें, हमारा बोध करें, विद्या-विचार के अमृत से हमारा अभिसिञ्चन करें। सोलह कलाओं से युक्त जन परम ऐश्वर्य के लिए तथा परम ऐश्वर्ययुक्त परमात्मा के लिए यहाँ प्रतिष्ठित होते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- आ (उपसर्ग)। तिष्ठ (तिष्ठ् = ठहरना, प्रतिष्ठित होना)। वृत्रहन् (वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना, हन् - हिंसा करना)। रथम् (रथ् = जाना, ले जाना)। युक्ता (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना)। ते (सर्वनाम)। ब्रह्मणा (बृह् = बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। हरी (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना, नष्ट करना)। अर्वाचीनम् (ऋ - जाना, सम्पादन करना, प्राप्त करना, मिलाना, पहुँचाना, अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, मिलाना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, अर्व - गति करना, जाना, चलना, जानना, पाना, पहुँचना, हिंसा करना)। सु (उपसर्ग)। मनः (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। ग्रावा (गृ = सींचना, समझना, जानना, निगलना, शब्द करना, बोलना, समझाना, बताना)। कृणोतु (कृ = करना)। वग्नुना (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। षोडशिने (षोडश = सोलह)। एषः (सर्वनाम)। योनिः (यु = बन्धन होना, मिलाना, अलग करना)। षोडशिने (षोडश = सोलह)॥ 33॥

327. युक्ष्व आ हि केशिना, हरी वृषणा कक्ष्यप्रा। अथा न इन्द्र सोमपा, गिराम् उप-श्रुतिम् चर। उपयाम गृहीतो असि, इन्द्राय त्वा षोडशिने, एष ते योनिः इन्द्राय त्वा षोडशिने॥ 34॥

संहितापाठ

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा।अथा नऽइन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर।उपयामगृहीतोऽसीन्दराय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने॥34॥

मन्त्रार्थ :- युक्ष्व - युक्त कीजिये, **आ** - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, **हि** - ही, **केशिना** - केशी द्वारा, गतिशील, व्यापक द्वारा, **हरी** - हरण करने वाले, **वृषणा** - वर्षा करने वाले, बलशाली, **कक्ष्यप्रा =** कक्ष्य अर्थात् धारण को पूर्ण करने वाले, **अथा** - अथ, अब, **नः** - हमारा, **इन्द्र** - परम ऐश्वर्यवान्, **सोमपा** - सोम-रक्षक, सोम-पायी, **गिराम्** - गिरा को, **उप-श्रुतिम्** - उपश्रुति को, श्रुति के समीप, **चर** - चलो। **उपयाम-गृहीतो** - उपयाम द्वारा गृहीत, **असि** - हो, **इन्द्राय** - परम ऐश्वर्य के लिए, इन्द्र के लिए, **त्वा** - तुमको, **षोडशिने** - हे षोडषी, **एष** - यह, **ते** - तुम्हारा, **योनिः** - योनि, स्थान, **इन्द्राय** - परम ऐश्वर्य के लिए, इन्द्र के लिए, **त्वा** - तुमको, **षोडशिने** - हे षोडषी॥34॥

भावार्थ :- परमात्मा के गुणों की स्तुति करते हुए उसके समीप चलने, उसकी वाणी के अनुशासन में चलने का सन्देश दिया गया है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- युक्ष्व (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना)। **आ** (उपसर्ग)। **हि** (अव्यय)। **केशिना** (किश्-केश्-किस् - गति करना, बाल उगना, व्याप्त होना)। **हरी** (हृ - हरण करना)। **वृषणा** (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना)। **कक्ष्यप्रा** (कक्ष् - धारण करना, घर्षण करना, प्रा - पूर्ण करना)। **अथ** (अव्यय)। **नः** (सर्वनाम)। **इन्द्र** (ऐश्वर्यशाली)। **सोमपाः** (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना, पा - रक्षा करना, पालन करना, सो–स्य, सय - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। **गिराम्** (गृ - सींचना, गीला करना, समझना, जानना, गृ - शब्द करना)। **उपश्रुतिम्** (उप- सपीप, श्रु = सुनना, श्रवण करना, जाना)। **चर** (चर् - चलना, विचरण करना)। **उपयाम-गृहीतो** (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। **असि** (अस् - होना)। **इन्द्राय** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **षोडशिने** (षोडश = सोलह)। **एषः** (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **योनिः** (यु = बन्धन होना, मिलाना, अलग करना)। **षोडशिने** (षोडश = सोलह)॥**34**॥

328. इन्द्रम् इत् हरी वहतो, अप्रतिधृष्ट-शवसम्। ऋषीणाम् च स्तुतीः, उप यज्ञम् च मानुषाणाम्। उपयाम गृहीतो असि, इन्द्राय त्वा षोडशिन, एष ते योनिः इन्द्राय त्वा षोडशिने॥35॥

संहितापाठ

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्।ऋषीणां च स्तूतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम्।उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने॥35॥

मन्त्रार्थ :- इन्द्रम् - इन्द्र को, परम ऐश्वर्यवान् को, इत् - ही, हरी - हरण करने वाले, वहतो - वहन करने वाले, अप्रतिधृष्ट-शवसम् - अपराजित गति वाले को। ऋषीणाम् - ऋषियों का, च - और, स्तुतीः - स्तुतियाँ, उप - समीप, यज्ञम् - यज्ञ को, च - और, मानुषाणाम् - मनुष्यों का। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इन्द्राय - परम ऐश्वर्य के लिए, इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, षोडशिने - हे षोडषी, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - योनि, स्थान, इन्द्राय - परम ऐश्वर्य के लिए, इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, षोडशिने - हे षोडषी॥35॥

भावार्थ :- ऋषियों की स्तुतियाँ और मनुष्यों के यजन परमात्मा को समर्पित हैं। ऋषि स्तुति करते हैं, यही उनका यजन है। ऋषि परमात्मा की स्तुति-उपासना में लीन रहते हैं। उनका पूरा जीवन इसी में समर्पित होता है। उन्हें किसी अन्य यजन की आवश्यकता नहीं होती है। उनके लिए यही सर्वश्रेष्ठ देवपूजा है, यही सर्वश्रेष्ठ संगतिकरण है, यही सर्वश्रेष्ठ दान है। साधारण मनुष्य इतना समर्पित नहीं हो सकता है। उसे लोक-व्यवहार का निर्वाह करना होता है। अतः वह प्रतिदिन प्रयासपूर्वक यजन करता है। वह प्रयास करता है कि देवपूजा, संगतिकरण, दान का क्रम बनाये रखे।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- इन्द्रम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। इत् (अव्यय)। हरी (हृ - हरण करना)। वहतो (वह् =

ले जाना, वहन करना)। अप्रतिधृष्टशवसम् (अ - नहीं, प्रति - प्रतिकार, समान, समकक्ष, धृष- जीतना, पराभव करना, घबरा जाना, शव - जाना, जानना, पाना)। ऋषीणाम् (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। च (अव्यय)। स्तुतीः (स्तु - प्रशंसा करना, स्तुति करना, पूजा करना, अर्चा करना, सेवा करना, भजन करना)। उप (उपसर्ग)। यज्ञम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। मानुषाणाम् (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। षोडशिने (षोडश = सोलह)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = बन्धन होना, मिलाना, अलग करना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना) त्वा (सर्वनाम)। षोडशिने (षोडश = सोलह)।35।।

329. यस्मात् न जातः परो अन्यो अस्ति, यः आ-विवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया संरराणः, त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी।।36।।

संहितापाठ

यस्मान्न जातः परोऽअन्योऽअस्ति यऽआविवेश भुवनानि विश्वा।प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतिषि सचते स षोडशी।।36।।

मन्त्रार्थ :- यस्मात् - जिससे, न - नहीं जातः - उत्पन्न हुआ, परो - परे, अन्यो - अन्य, अस्ति - है, यः - जो, आ - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, विवेश - प्रवेश किया, भुवनानि भुवन (सृष्टि या लोक) विश्वा - सभी, सः - वह, षोडशी - सोलह से युक्त, प्रजापतिः - प्रजा का रक्षक, प्रजया - प्रजा के साथ, सम् - सम्यक्, रराणः - रमण करता हुआ, त्रीणि - तीन, ज्योतींषि - ज्योतियों को, सचते - सींचता है।। 36।।

भावार्थ :- परमात्मा से पहले कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ, क्योंकि वही तो विश्व भुवन के रूप में साकार हुआ है। अतः सम्पूर्ण सृष्टि उसकी प्रजा अर्थात् उससे उत्पन्न है तथा वह उसका प्रजापति अर्थात् प्रजा का पालक, रक्षक है। स्वाभाविक है कि वह अपनी प्रजा का दायित्व भी वहन करता है। वह उस प्रजाके साथ रमण करता है, उसके साथ रहता है तथा वह षोडशी तीन ज्योतियों का अभिसिञ्चन करता है। षोडशी शब्द से किन सोलह गुणों का संकेत किया गया है तथा तीन ज्योतियों से क्या तात्पर्य है, यह गम्भीर चिन्तन का विषय है। ऐसे स्थलों पर सभी अध्येताओं को स्वतन्त्रतापूर्वक चिन्तन करना चाहिए, किसी एक विद्वान् भाष्यकार की लीक पर चलना उचित नहीं होगा। अतः हम यहाँ अपना भी कोई मत नहीं दे रहे हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- यस्मात् (सर्वनाम)। न (अव्यय)। जातः (जा-जन् - उत्पन्न होना)। परो (अव्यय)। अन्यो (सर्वनाम)। अस्ति (अस् - होना), यः (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। विवेश (विश् - प्रवेश करना), भुवनानि (भू - होना)। विश्वा (सर्वनाम)। सः (सर्वनाम)। षोडशी (संख्या), प्रजापतिः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। प्रजया (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)। सम् (उपसर्ग)। रराणः (रण - शब्द करना, जाना, रन् - अलग करना, मिलाना)। त्रीणि (त्रि - तीन)। ज्योतींषि (ज्युत् - प्रकाशित होना, चमकना)। सचते (सच् - सींचना, सेवा करना, सन्तुष्ट करना, पूर्णतः समझना, सम्बन्धी होना)।। 36।।

330. इन्द्रः च सम्राट् वरुणः च राजा, तौ ते भक्षम् चक्रतुः अग्र एतम्।
तयोः अहम् अनु भक्षम् भक्षयामि, वाक् देवी जुषाणा सोमस्य, तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा।।37।।

संहितापाठ

इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्रऽएतम्।तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा।।37।।

मन्त्रार्थ :- इन्द्रः - इन्द्र, परम ऐश्वर्यवान्, च - और, सम्राट् - सम्राट, सम्यक् भाषी, सम्यक् प्रकाशमान, वरुणः - वरुण, वरणीय, च - और, राजा - राजा, तौ - वे दोनो, ते - तुम्हारा, भक्षम् - भक्ष को, चक्रतुः - किया, अग्र - आगे, एतम् - इसको। तयोः - उन दोनो का, अहम् - मैं, अनु - पीछे, भक्षम् - भक्ष को, भक्षयामि- भक्षण करता हूँ,खाता हूँ,

वाक् - वाणी, देवी - दिव्य, जुषाणा = विचारशील, सेवाभावी, सोमस्य - सोम का, तृप्यतु - तृप्त करे, सह - साथ, प्राणेन - प्राणों के, स्वाहा - व्यापक ।। 37 ।।

भावार्थ :- परमात्मा को परम ऐश्वर्यवान् और सम्यक् भाषी, सम्यक् प्रकाशमान, वरणीय राजा के रूप में स्तुति करते हुए कहा गया है कि उन्होंने हमारे लिए भक्ष्य अर्थात् भोजन प्रदान किया है। हम उस भोजन का भक्षण करते हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम भी दिव्य गुणों को धारण करते हुए सेवा भावना तथा विचारशीलता के साथ सोम परमात्मा को प्राणों की व्यापकता से तृप्त करें। मन्त्र का यह मूल आध्यात्मिक भावार्थ है। लौकिक जीवन में हमारे लिए सन्देश है कि सम्राट तथा राजा अर्थात् छोटे-बड़े शासक जन-जन के लिए भोजन आदि आवश्यकताओं की व्यवस्था सुनिश्चित करें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- इन्द्रः (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। च (अव्यय)। सम्राट् (सम् - सम्यक्, रट् = बोलना, सम्भाषण करना, राज् - शोभित होना, प्रकाशित होना, चमकना)। वरुणः (वर - वरण करना, इच्छा करना, चाहना, आशा करना)। राजा (राज् = शोभित होना, प्रकाशित होना, चमकना)। तौ (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। भक्षम् (भक्ष् - खाना)। चक्रतुः (कृ - करना, चक - तृप्त होना, सन्तुष्ट होना, चकमा देना, धोखा देना)। अग्रे (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। एतम् (सर्वनाम)। तयोः (सर्वनाम)। अहम् (सर्वनाम)। अनु (उपसर्ग)। भक्षम् (भक्ष् - खाना)। भक्षयामि (भक्ष् - खाना)। वाक् (वच, वद - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। देवी (दिव् - दिव्यगुणयुक्त होना, तेजस्वी होना)। जुषाणाः (जुष् = विचार करना, सेवा करना, विवेक-प्रीति करना)। सोमस्य (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। तृप्यतु (तृप् - तृप्त होना, प्रसन्न होना, तृप्त करना, प्रसन्न करना)। सह (सर्वनाम)। प्राणेन (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना) ।। 37 ।।

331. अग्ने पवस्व स्वपा, अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधत् रयिम् मयि पोषम्।
उपयाम गृहीतो असि, अग्नये त्वा वर्चसे, एष ते योनिः अग्नये त्वा वर्चसे।
अग्ने वर्चस्विन् वर्चस्वान्, त्वम् देवेषु असि वर्चस्वान्, अहम् मनुष्येषु भूयासम् ।।38 ।।

संहितापाठ

अग्ने पवस्व स्वपाऽअस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषम्। उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चसऽएष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे।अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वाँस्त्वं देवेष्वसि वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ।।38 ।।

मन्त्रार्थ :- अग्ने = हे अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पवस्व - पवित्र करो, स्वपा - सुपालक, सुरक्षक, अस्मे - हममें, वर्चः - प्रकाश, सुवीर्यम् - सुवीर्य को। अच्छी वीरता को, दधत् - दो, धारण कराओ, रयिम् - रयि को, विद्या को (रय् = जाना, जानना)। मयि - मुझमें, पोषम् - पोषण को। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, अग्नये - अग्नि के लिए, त्वा - तुमको, वर्चसे - वर्चस् के लिए, प्रकाश के लिए, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - योनि, अग्नये - अग्नि के लिए, त्वा - तुमको, वर्चसे - वर्चस् के लिए, प्रकाश के लिए। अग्ने = हे अग्नि! वर्चस्विन् - वर्चस्वी, वर्चस्वान्, - वर्चस्वान्, त्वम् - तुम, देवेषु - देवों में, असि - हो, वर्चस्वान्, - वर्चस्वान्, अहम् - मैं, मनुष्येषु - मनुष्यों में, भूयासम् - होऊँ ।। 38 ।।

भावार्थ :- अग्नि स्वरूप परमात्मा से पवित्रता की कामना की गयी है। स्वपा अर्थात् सुपालक, सुरक्षक प्रभु से प्रकाश एवम् उत्तम वीरता को, प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है। देवों में, दिव्य शक्तियों में परमात्मा ही वर्चस्वी है, प्रकाशमान है, उसी प्रकार मनुष्यों में हम वर्चस्वी, प्रकाशमान बनें, यह प्रार्थना है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अग्ने (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना, पहुंचना, पाना)। पवस्व (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। स्वपा (सु - अच्छा, अप् - पालन करना, स्व = निज, अपना, पा = रक्षा करना)। अस्मे (सर्वनाम)। वर्चः (वर्च् = प्रकाशित होना)। सुवीर्यम् (वीर् - वीर होना, वीरता दिखाना)। दधत् (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। रयिम् (रय् = जाना, जानना)। मयि (सर्वनाम)। पोषम् (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। अग्नये (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना,

जानना, पहुंचना, पाना)। त्वा (सर्वनाम)। वर्चसे (वर्च् = प्रकाशित होना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = बन्धन होना)। अग्नये (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना, पहुंचना, पाना)। वर्चस्विन् (वर्च् = प्रकाशित होना)। वर्चस्वान् (वर्च् = प्रकाशित होना)। त्वम् (सर्वनाम)। देवेषु (दिव्, देव् = चमकना, जानना)। असि (अस् = होना)। अहम् (सर्वनाम)। मनुष्येषु (मन् बोध होना, समझना, विचार करना)। भूयासम् (भू = होना)।।

332. उत् तिष्ठन् ओजसा, सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः। सोमम् इन्द्र चमू सुतम्।
उपयाम गृहीतो असि, इन्द्राय त्वा ओजसे, एष ते योनिः इन्द्राय त्वा ओजसे।
इन्द्र ओजिष्ठ ओजिष्ठः, त्वम् देवेषु असि ओजिष्ठो, अहम् मनुष्येषु भूयासम्।।39।।

संहितापाठ

उत् तिष्ठन् ओजसा, सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः।सोमम् इन्द्र चमू सुतम्।उपयाम गृहीतो असि, इन्द्राय त्वा ओजस, एष ते योनिः इन्द्राय त्वा ओजसे।इन्द्र ओजिष्ठ ओजिष्ठः, त्वम् देवेषु असि ओजिष्ठो, अहम् मनुष्येषु भूयासम्।।39।।

मन्त्रार्थ :- उत् - ऊपर, उच्च, तिष्ठन् - स्थित, ओजसा - ओज के, सह - साथ, पीत्वी - पीकर, शिप्रे - शिप्रे - तीक्ष्णता में, श्रवण में, अवेपयः - अकम्पित। सोमम् - सोम को, इन्द्र - हे इन्द्र, परम ऐश्वर्यवान्, चमू - भोजन, सुतम् - सुत को, उत्पन्न, ऐश्वर्यवान्, आसवित को, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, ओजसे - ओज के लिए, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - योनि, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, ओजसे - ओज के लिए, इन्द्र = हे इन्द्र! ओजिष्ठ - = हे ओजिष्ठ! ओजिष्ठः - ओजयुक्त, त्वम् - तुम, देवेषु - देवों में, असि - हो, ओजिष्ठो - ओजिष्ठ, अहम् - मैं, मनुष्येषु - मनुष्यों में, भूयासम् - होऊँ।। 39।।

भावार्थ :- सोम का अर्थ है उत्पादकता, सृजनशीलता, ऐश्वर्य, आसवन-क्षमता। वैदिक संस्कृति में सोम बहुत महत्वपूर्ण है। सोमपान का अर्थ है इन दिव्यगुणों को धारण करना। इसके लिए उच्च प्रतिष्ठित होकर ओज द्वारा तीक्ष्णता के स्ाथ श्रवण करना होता है। इससे हम उसी तरह मनुष्यों में ओजवान् हो सकते हैं, जैसे परमात्मा देव शक्तियों में, इस सृष्टि में प्रतिष्ठित है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- उत् (अव्यय)। तिष्ठन् (तिष्ठ् = ठहरना)। ओजसा (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। सह (सर्वनाम)। पीत्वी (पा-पिब् = पीना, पान करना)। शिप्रे (शि - तीक्ष्ण करना, पैना करना, पतला करना, सुनना, प्रा - पूर्ण करना)। अवेपयः (अ - नहीं, वेप् - कम्पन करना)। सोमम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, आसवन करना, सू = प्रेरणा देना)। इन्द्र (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। चमू (चम् - खाना, पाना)। सुतम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, आसवन करना, सू = प्रेरणा देना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। इन्द्राय (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। ओजसे (ओज - शक्तिमान होना, जीना, बढ़ना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = बन्धन होना)। इन्द्राय (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। इन्द्र (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। ओजिष्ठ (ओज - शक्तिमान होना, जीना, बढ़ना)। ओजिष्ठः (ओज - शक्तिमान होना, जीना, बढ़ना)। त्वम् (सर्वनाम)। देवेषु (दिव्, देव् = चमकना, जानना)। ओजिष्ठः (ओज - शक्तिमान होना, जीना, बढ़ना)। अहम् (सर्वनाम)। मनुष्येषु (मन् बोध होना, समझना, विचार करना)। भूयासम् (भू = होना)।। 39।।

333. अदृश्रम् अस्य केतवो, वि रश्मयो जनान् अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा।
उपयाम गृहीतो असि, सूर्याय त्वा भ्राजाय, एष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय।
सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठः, त्वम् देवेषु असि भ्राजिष्ठो, अहम् मनुष्येषु भूयासम्।।40।।

संहितापाठ

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ2ऽअनु।भ्राजन्तो अग्नयो यथा।उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय।सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम्।।40।।

मन्त्रार्थ :- अस्य - इसका, केतवो - केतु, वि - विशेष, रश्मयो - रश्मियों को, जनान् - जनों के, अनु - पीछे,

अदृश्रम् - देखा, यथा - जैसे, भ्राजन्तो - प्रकाशमान, अग्नयो - अग्नियाँ। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, सूर्याय -सूर्य के लिए, त्वा - तुमको, भ्राजाय - प्रकाश के लिए, एषः = यह। ते = तुम्हारा, योनिः = बन्धन, योनि, सूर्याय -सूर्य के लिए, त्वा - तुमको, भ्राजाय - प्रकाश के लिए। सूर्य - हे सूर्य, भ्राजिष्ठ - प्रकाशमान हो, भ्राजिष्ठः - अत्यन्त प्रकाशमान, त्वम् = तुम। देवेषु - देवों में, असि - हो, भ्राजिष्ठो - अत्यन्त प्रकाशमान, अहम् - मैं, मनुष्येषु - मनुष्यों में, भूयासम् - होऊँ॥ 40॥

भावार्थ :- परमात्मा की आमन्त्रणकारी रश्मियाँ उपासक को जनों के पीछे प्रकाशमान अग्नि की तरह दिखायी देती हैं। परमात्मा के आमन्त्रण को, उसकी दिव्य रश्मियों को हम प्रकाशमान अग्नि के समान अनुभव करते हैं। यह अनुभूति ही अध्यात्म है। वह परमात्मा हमारे लिए सूर्य के समान प्रकाशमान है। वह देवों में अन्यतम है, अत्यन्त प्रकाशमान है, हम मनुष्यों में इसी प्रकार अत्यन्त प्रकाशमान होकर जीवन-यापन करें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अदृश्रम् (दृश् = देखना)। केतवो (केत - आमन्त्रण देना, बुलाना, परामर्श देना)। वि (उपसर्ग)। रश्मयः (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। जनान् (जन - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, प्रकट होना)। अनु (उपसर्ग)। भ्राजन्तो (भ्राज् = चमकना, प्रकाशित होना)। अग्नयः (अग् = आगे जाना, गति करना)। यथा (अव्यय)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। सूर्याय (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। भ्राजाय (भ्राज् = चमकना, प्रकाशित होना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = बन्धन होना)। सूर्याय (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। सूर्य (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। भ्राजिष्ठ (भ्राज् = चमकना, प्रकाशित होना)। भ्राजिष्ठः (भ्राज् = चमकना, प्रकाशित होना)। त्वम् (सर्वनाम)। देवेषु (दिव्, देव् = चमकना, जानना)। अहम् (सर्वनाम)। मनुष्येषु (मन् बोध होना, समझना, विचार करना)। भूयासम् (भू = होना)॥ 40॥

(86) सूक्त 9

334. उत् उ त्यम् जातवेदसम्, देवम् वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्।
उपयाम गृहीतो असि, सूर्याय त्वा भ्राजाय, एष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय॥41॥

संहितापाठ

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्। उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय॥41॥

मन्त्रार्थ- केतवः - केतुगण, विद्वान्, ज्ञानीजन, उ - ही, त्यम् - तुम, जातवेदसम् - जातवेद, जिससे वेद, ज्ञान उत्पन्न हुआ, वेद को उत्पन्न करने वाला, देवम् - देव, सूर्यम् - सूर्य को, विश्वाय - विश्व, दृशे - देखने के लिए, उत् - उच्च, उत्तम, वहन्ति - वहन करते हैं। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, सूर्याय -सूर्य के लिए, त्वा - तुमको, भ्राजाय - प्रकाश के लिए, एषः = यह। ते = तुम्हारा, योनिः = बन्धन, योनि, सूर्याय -सूर्य के लिए, त्वा - तुमको, भ्राजाय - प्रकाश के लिए॥ 41॥

भावार्थ - परमात्मा जातवेद है अर्थात् वेद तथा ज्ञान को उत्पन्न करने वाला है। उस देव को केतवः अर्थात् ज्ञानी ही वहन करते हैं। सूर्य का अर्थ है उत्पन्न करने वाला तथा ऐश्वर्यवान्। जातवेद, देव, सूर्य मूलतः परमात्मा के ही विशेषण हैं। इन गुणों को आत्मसात् करने वाले उपासक को भी इन विशेषणों से भूषित किया जाता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- उत् (उपसर्ग)। उ (अव्यय)। त्यम् (सर्वनाम)। जातवेदसम् (जन् = उत्पन्न होना, विद् = जानना)। देवम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। वहन्ति (वह् = वहन करना ले जाना)। केतवः (कित - जानना)। दृशे (दृश्-पश्य - देखना)। विश्वाय (सर्वनाम)। सूर्यम् (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। सूर्याय (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। भ्राजाय (भ्राज् = चमकना, प्रकाशित होना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = बन्धन होना)। सूर्याय (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। त्वा

(सर्वनाम)। भ्राजाय (भ्राज् = चमकना, प्रकाशित होना)।। 41।।

335. आ जिघ्र, कलशम् महि, आ त्वा विशन्तु इन्दवः।
पुनः ऊर्जा नि वर्त्तस्व, सा नः सहस्रम् धुक्ष्व,
उरु-धारा पयस्वती, पुनः माम् आ विशतात् रयिः ।।42 ।।

संहितापाठ

आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः। पुनरूर्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः ।।42 ।।

मन्त्रार्थ :- आ = सम्यक्, समन्तात्, पूर्णत, जिघ्र = प्रकाश करो, कलशम् - कलश को, महि - महत्, पूज्य, आ = सम्यक्, समन्तात्, पूर्णत, त्वा - तुमको, विशन्तु - प्रवेश करे, इन्दवः - इन्दु, परम ऐश्वर्य। पुनः - फिर, ऊर्जा - ऊर्जा, नि - नितराम्, निश्चय ही, वर्त्तस्व - वर्तमान हो, सा - वह, नः - हमारा, सहस्रम् - सहस्र, धुक्ष्व - प्रदीप्त करो, उरु-धारा - बहुत धाराओं युक्त, पयस्वती = विस्तृत, विस्तारयुक्त, पययुक्त, पुनः - फिर, माम् - मुझे, आ = सम्यक्, समन्तात्, पूर्णत , विशतात् - प्रवेश करे, रयिः - रयि।। 42 ।।

भावार्थ :- परमात्मा से प्रार्थना की गयी है कि पूर्णतः प्रकाश करो। हमारा महत् जीवन-कलश आत्म-प्रकाश से परिपूर्ण हो। उसमें परमात्मा का परम ऐश्वर्य भरा हो। सहस्रों धाराओं से उसमें पुनः-पुनः आत्म-चेतना व्याप्त होती रहे।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- आ (उपसर्ग)। जिघ्र (जिघ्र् - प्रकाश करना, नाश करना)। कलशम् (कल - स्वाद लेना, निगलना, जाना, गिनना, उड़ाना, फेंकना, शब्द करना)। मह्ि (महि = पूजा करना, सम्मान करना)। आ (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम)। विशन्तु (विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना, सब ओर फैलना)। इन्दवः (इदि - इन्द् - परम ऐश्वर्य होना, अमानवीय पराक्रम होना, ईश्वरी शक्ति होना, ऐश्वर्ययुक्त होना)। पुनः (अव्यय)। ऊर्जा (ऊर्ज - बल होना)। नि (उपसर्ग)। वर्त्तस्व (वृत् - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, होना)। सा (सर्वनाम)। नः (सर्वनाम)। सहस्रम् = हजार। धुक्ष्व (धुक्ष् - प्रदीप्त करना, जीवन होना, श्रान्त होना, थक जाना)। उरुधारा (उरु - बहुत, उर् = जाना, चलना)। पयस्वती (पयस् = फैलाना, विस्तार करना)। पुनः (अव्यय)। माम् (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। विशतात् (विश - घुसना, भीतर जाना, धंसना, चारों ओर फैलना)। रयिः (रय् = जाना, जानना, पाना)।।42 ।।

336. इडे रन्ते हव्ये काम्ये, चन्द्रे ज्योति अदिते, सरस्वति महि विश्रुति।
एता ते अघ्न्ये नामानि, देवेभ्यो मा सुकृतम् ब्रूतात्।।43 ।।

संहितापाठ

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति। एता तेऽअघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मां सुकृतं ब्रूतात्।।43 ।।

मन्त्रार्थ :- इडे - हे इडा, स्तुत्य, रन्ते - रमणीय, हव्ये - हव्य, काम्ये - काम्य, कमनीय, चन्द्रे - चन्द्र, आह्लादक, आनन्ददायक, ज्योति - ज्योति, प्रकाश, अदिते - अविनाशी, सरस्वति - सरस्वती, महि - महत्, विश्रुति - विश्रुति, विशेष श्रुति। एता - ये, ते - तुम्हारे, अघ्न्ये - अहिंसक, अहिंसनीय अहिंसनीय, नामानि - नाम हैं, देवेभ्यो - देवों के लिए, माम् - मुझको, सुकृतम् - सुकृत, सत्कर्म, ब्रूतात् - कहो।। 43 ।।

भावार्थ :- परमात्मा को हम विभिन्न नामों से पुकारते हैं। ये सभी नाम गुणवाची हैं। विविध गुणवाची नामों से पुकारने का भाव परमात्मा के दिव्य गुणों का स्मरण करना है। इस प्रकार हम दिव्य गुणों का स्मरण करते हैं तथा उनको अपने जीवन में धारण करने का प्रयास करते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- इडे (ईड् = स्तुति करना)। रन्ते (रम् - रमना, रमण करना)। हव्ये (हु = देना, आदान-प्रदान करना)। काम्ये (काम = कामनाएँ)। चन्द्रे (चन्द् = चमकना, आनन्द होना)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। अदिते (अ - नहीं, अद् = खाना, दी = नष्ट होना)। सरस्वति (सृ - जाना, सरकना, जानना, पाना, बहना, चलना, स - साथ, सहित, रस् - स्वाद लेना, प्रीति करना, शब्द करना)। महि (मह् - पूज्य होना, महान् होना,

बड़ा होना)। विश्रुति (वि - विशेष, श्रु = सुनना)। एता (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। अघ्न्ये (अ - नहीं, हन् = गति करना, हिंसा करना, मार डालना, ज्ञान होना, प्राप्ति होना)। नामानि (नाम - नाम होना, नाम रखना, नम् = नमन करना, सम्मान करना, शब्द करना)। देवेभ्यः (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। माम् (सर्वनाम)। सुकृतम् (सु = अच्छा, कृ = करना)। ब्रूतात् (ब्रू - कहना, बोलना)।43।।

337. वि न इन्द्र मृधो जहि, नीचा यच्छ पृतन्यतः। यो अस्मान् अभिदासति, अधरम् गमया तमः।
उपयाम गृहीतो असि, इन्द्राय त्वा विमृध, एष ते योनिः इन्द्राय त्वा विमृधे।।44।।

संहितापाठ

वि नऽइन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।योऽअस्माँ2। ऽअभिदासत्यधरं गमया तमः।उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृधऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे।।44।।

मन्त्रार्थ :- इन्द्र - हे इन्द्र, परम ऐश्वर्यशाली, **नः** - हमारा, **मृधो** - हिंसक को, **वि** - विशेष, **जहि** = नष्ट करो, **नीचा** - नीचा, **यच्छ** - दो, **पृतन्यतः** = व्यापक, बलात् निकालने वाले। **यो** - जो, **अस्मान्** - हमको, **अभिदासति** - काटता है, देता है, दास बनाता है, **अधरम्** - नीचे, **गमया** - ले जाओ, **तमः** - तमस् को। **उपयाम-गृहीतो** - उपयाम द्वारा गृहीत, **असि** - हो, **इन्द्राय** - इन्द्र के लिए, **त्वा** - तुमको, **विमृध** - विशेष हिंसक को, **एषः** = यह। **ते** = तुम्हारा, **योनिः** = बन्धन, योनि, **इन्द्राय** - इन्द्र के लिए, **त्वा** - तुमको, **विमृधे** - विशेष हिंसनकर्मयुक्त।। 44।।

भावार्थ :- परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा हिंसकों को विनष्ट करे, नीचा दिखाये, दास बनाये, ऐसी प्रार्थना की गयी है। हिंसकों की हिंसा करने के लिए विमृधः, विशेष हिंसा करने वाला कहा गया है। हिंसा करने वाले हैं तो प्रतिहिंसा आवश्यक हो जाती है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : - वि (उपसर्ग)। **नः** (सर्वनाम)। **इन्द्र** (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **मृधः** (मृध् - मार डालना या दुःख देना, आर्द्र करना, गीला करना, गीला होना)। **जहि** (जह - हिंसा करना, चलना, फैलना, जहा – परित्याग करना, छोड़ना)। **नीचा** (नीचा, नीच - दासत्व करना)। **यच्छ** (यच्छ् = देना)। **पृतन्यतः** (पृत -व्याप्त होना, जीवन होना, बलपूर्वक निकालना, पृ = पूर्ण करना, प्रीति करना, प्रेम करना)। **यः** (सर्वनाम)। **अस्मान्** (सर्वनाम)। **अभिदासति** (अभि = सभी ओर, दास् - दान करना, देना, सौंपना, दासता करना, काटना)। **अधरम्** (अधर् - न्यून करना, जीतना, निम्न गति करना, अ - नहीं, धृ - धारण करना)। गमय (गम् = जाना)। **तमः** (तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। **उपयाम-गृहीतो** (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। **असि** (अस् - होना)। **इन्द्राय** (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **विमृधे** (वि = विशेष, विना, विलोम, मृध - मार डालना या दुःख देना, आर्द्र करना, गीला करना, गीला होना)। **एषः** (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **योनिः** (यु = बन्धन होना, मिलाना, अलग करना)। **इन्द्राय** (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **विमृधे** (वि = विशेष, विना, विलोम, मृध - मार डालना या दुःख देना, आर्द्र करना, गीला करना, गीला होना)।।

338. वाचः पतिम् विश्वकर्म्माणम् ऊतये, मनो-जुवम् वाजे अद्य हुवेम।
स नो विश्वानि हवनानि जोषत्, विश्व-शम्भूः अवसे साधुकर्मा।
उपयाम-गृहीतो असि इन्द्राय त्वा विश्व-कर्मण, एष ते योनिः इन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणे।।45।।

संहितापाठ

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजेऽअद्या हुवेम।स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मणऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे।।45।।

मन्त्रार्थ :- वाचः - वाणी के, पतिम् - पति को, विश्वकर्म्माणम् = सम्पूर्ण कर्म करने वाले को, विश्वकर्मा को, ऊतये - रक्षा के लिए, मनो-जुवम् - मनोगामी को, वाजे - वाज के लिए, गति, बल, ज्ञान के लिए, अद्य - आज, हुवेम - आह्वान करते हैं। स - वह, नो - हमारा। विश्वानि - सभी, हवनानि - आह्वान, जोषत् - विचार किया, विश्व-शम्भूः - सभी का शमन करने वाले, अवसे - रक्षा के लिए, साधुकर्मा - साधु कर्म वाले। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो,

इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, विश्व-कर्मणे - विश्वकर्मा के लिए, एषः = यह। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। योनिः = बन्धन, योनि। इन्द्राय = परम ऐश्वर्य के लिए। त्वा = तुमको, तुम्हें तुम्हारे। विश्व-कर्मणे - विश्वकर्मा के लिए॥ 45॥

भावार्थ :- सम्पूर्ण कर्म करने वाले परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा को रक्षा के लिए बुलाते हैं, पुकारते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- वाचः (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। पतिम् (पत् = ऐश्वर्य होना)। विश्वकर्माणम् (विश्व - सब, कृ - करना)। ऊतये (ऊ = रक्षा करना)। मनोजुवम् (मन् = मनन करना, विचार करना, मानना, जु - गति करना)। वाजे (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना)। अद्य (अव्यय)। हुवेम (ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना, हु = देना, आदान-प्रदान करना)। सः (सर्वनाम)। नः (सर्वनाम)। विश्वानि (सर्वनाम)। हवनानि (ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना, हु = देना, आदान-प्रदान करना)। जोषत् (जुष् = विचार करना)। विश्व-शम्भूः (विश्व = सभी, शम् = प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना)। अवसे (अव् = रक्षा करना)। साधुकर्मा (साध् - पूर्ण करना, सिद्ध करना, जय पाना, जीतना, यशस्वी होना, साधना करना, कृ = करना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। इन्द्राय (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। विश्वकर्म्मणे (विश्व - सब, कृ - करना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = बन्धन होना, मिलाना, अलग करना)॥ 45॥

339. विश्व-कर्म्मन् हविषा वर्द्धनेन, त्रातारम् इन्द्रम् अकृणोः अवध्यम्।
तस्मै विशः सम् अनमन्त पूर्वीः, अयम् उग्रो वि-हव्यो यथा असत्।
उपयाम गृहीतो असि, इन्द्राय त्वा विश्व-कर्म्मण, एष ते योनिः इन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे॥46॥

संहितापाठ

विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्। तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मणऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे॥46॥

मन्त्रार्थ :- विश्व-कर्म्मन् = सम्पूर्ण कर्म करने वाले, विश्वकर्मा, हविषा - हविष् द्वारा, वर्द्धनेन - वृद्धि से, त्रातारम् - त्राण करने वाले, रक्षा करने वाले, इन्द्रम् - इन्द्र को, अकृणोः - किया, अवध्यम् - अवध्य को। तस्मै - उसके लिए, विशः - विश, सम् - सम्यक्, अनमन्त - प्राणवान् करने वाले, नमन न करने वाले, पूर्वीः - पूर्वी, अयम् - यह, उग्रो - उग्र, वि - विशेष, हव्यो - हव्य, यथा - जैसे, असत् - हुआ। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, विश्व-कर्मणे - विश्वकर्मा के लिए, एषः = यह। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। योनिः = बन्धन, योनि। इन्द्राय = परम ऐश्वर्य के लिए। त्वा = तुमको, तुम्हें तुम्हारे। विश्व-कर्मणे - विश्वकर्मा के लिए॥ 46॥

भावार्थ :- परमात्मा को विश्व-कर्म्मन् अर्थात् सम्पूर्ण कर्म करने वाले, विश्वकर्मा कहा गया है। वह विश्वकर्मा हविष् द्वारा वृद्धि करता है। इसका अर्थ है कि सभी कर्म हविष् से ही वृद्धि करते हैं। हविष् का अर्थ है दान करना, आदान-प्रदान करना। हविष् शब्द को ह्वे - आह्वान करना, बुलाना, पुकारना अर्थ वाली धातु से भी निष्पन्न माना जाता है। इसका अर्थ है कि हविष् में दान, आदान-प्रदान के साथ ही आह्वान करने, पुकारने, बुलाने का भाव भी निहित माना जाता है। कोई भी कर्म दान, आदान-प्रदान, आह्वान अर्थात् सामूहिक सहयोग की भावना से भी पूर्ण हो सकता है॥ 46॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- विश्वकर्म्मन् (विश्व - सब, कृ - करना)। हविषा (हु = दान-आदान करना, देना, ह्वे - आह्वान करना)। वर्द्धनेन (वृध् = बढ़ना)। त्रातारम् (त्रै = पालन करना, रक्षा करना, पोषण करना)। इन्द्रम् (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। अकृणोः (कृ = करना)। अवध्यम् (वध् = वध करना)। तस्मै (सर्वनाम)। विशः (विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना)। सम् (उपसर्ग)। अनमन्त (अन् = नहीं, अन् - प्राण होना, अम् = गति, शब्द, सेवा करना)। पूर्वीः (पूर्व - पूर्ण करना, भरना)। अयम् (सर्वनाम)। उग्रः = उग्र (उग् - उग्र - उग्र होना, तेज होना)। विहव्यः (वि = विशेष, विना, विलोम, हु = दान-आदान करना, देना, ह्वे - आह्वान करना)। यथा (अव्यय)। असत् (अस् = होना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। इन्द्राय (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। विश्वकर्म्मणे (विश्व - सब, कृ - करना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = बन्धन होना, मिलाना, अलग करना)॥ 46॥

(87) सूक्त 10

340. उपयाम गृहीतो असि, अग्नये त्वा गायत्र छन्दसम् गृह्णामि, इन्द्राय त्वा त्रिष्टुप् छन्दसम् गृह्णामि, विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्यो जगत् छन्दसम् गृह्णामि, अनुष्टुप् ते अभिगरः ॥47॥

संहितापाठ

उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुप्तेऽभिगरः ॥47॥

मन्त्रार्थ :- उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, अग्नये - अग्नि के लिए, त्वा - तुमको, गायत्र - गायत्री, छन्दसम् - छन्द को, गृह्णामि - ग्रहण करता हूँ। इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, त्रिष्टुप् - त्रिष्टुप्, छन्दसम् - छन्द को, गृह्णामि - ग्रहण करता हूँ। विश्वेभ्यः - सभी, देवेभ्यो त्वा - तुमको, जगत् छन्दसम् - छन्द को, गृह्णामि - ग्रहण करता हूँ। अनुष्टुप् - अनुष्टुप्, ते - तुम्हारा, अभिगरः - अभिगर (है)॥47॥

भावार्थ :- परमात्मा को विभिन्न शक्तियों के लिए विविध छन्दों को ग्रहण करते हैं। विविध वैदिक छन्दों में निबद्ध मन्त्रों के अध्ययन, चिन्तन, साधना से हम विविध आध्यात्मिक शक्तियाँ तथा गुण प्राप्त कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। अग्नये (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना, पहुंचना, पाना)। त्वा (सर्वनाम)। गायत्र (गा = स्तुति करना, जाना, जानना)। छन्दसम् (छदि-छन्द् - संवरण करना, ढकना, आच्छादन करना, लपेटना)। गृह्णामि (गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। इन्द्राय (इन्द्राय, इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्रिष्टुप् (त्रि = तीन, स्तु - स्तुति करना)। छन्दसम् (छदि-छन्द् - संवरण करना, ढकना, आच्छादन करना, लपेटना)। गृह्णामि (गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। विश्वेभ्यः (सर्वनाम)। देवेभ्यः (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। जगत् (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। छन्दसम् (छदि-छन्द् - संवरण करना, ढकना, आच्छादन करना, लपेटना)। गृह्णामि (गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। अनुष्टुप् (अनु = पश्चात्, पीछे, स्तु - स्तुति करना)। ते (सर्वनाम)। अभिगरः (अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, गृ - सींचना, समझना, जानना)॥

341. व्रेशीनाम् त्वा पत्मन् आ धूनोमि, कुकूननानाम् त्वा पत्मन् आ धूनोमि, भन्दनानाम् त्वा पत्मन् आ धूनोमि, मदिन्तमानाम् त्वा पत्मन् आ धूनोमि, मधुन्तमानाम् त्वा पत्मन् आ धूनोमि, शुक्रम् त्वा शुक्रे आ धूनोमि, अह्नो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु॥48॥

संहितापाठ

व्रेशीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि कुकूननानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। भन्दनानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि मदिन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। मधुन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि शुक्रं त्वा शुक्रऽआधूनोम्यह्नो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु॥48॥

मन्त्रार्थ :- व्रेशीनाम् = वरण करने वालों में, त्वा - तुमको, पत्मन् = ऐश्वर्यवान्, आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, धूनोमि = धूनित करता हूँ, धुनता हूँ, कंपाता हूँ, हिलाता हूँ। कुकूननानाम् = लोभियों में, लेने वालों में त्वा - तुमको, पत्मन् = ऐश्वर्यवान्, आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, धूनोमि = धूनित करता हूँ, धुनता हूँ, कंपाता हूँ, हिलाता हूँ। भन्दनानाम् - कल्याण करने वालों में, सुखदाताओं में, त्वा - तुमको, पत्मन् = ऐश्वर्यवान्, आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, धूनोमि = धूनित करता हूँ, धुनता हूँ, कंपाता हूँ, हिलाता हूँ। मदिन्तमानाम् - स्तुत्यों में, स्तुतिकर्ताओं में, त्वा - तुमको, पत्मन् = ऐश्वर्यवान्, आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, धूनोमि = धूनित करता हूँ, धुनता हूँ, कंपाता हूँ, हिलाता हूँ। मधुन्तमानाम् - अत्यन्त मधुरों में, त्वा - तुमको, पत्मन् = ऐश्वर्यवान्, आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, धूनोमि = धूनित करता हूँ, धुनता हूँ, कंपाता हूँ, हिलाता हूँ। शुक्रम् - शुक्र को, त्वा - तुमको, शुक्रे - शुक्र में, आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, धूनोमि = धूनित करता हूँ, धुनता हूँ, कंपाता हूँ, हिलाता हूँ। सूर्यस्य - सूर्य का, रूपे - रूप में, अह्नो - अह्न, व्यापक, रश्मिषु - रश्मियों में॥48॥

भावार्थ :- परमात्मा ही सर्वथा प्रमुख है। सभी प्रकार के गुणों, शक्ति-सामर्थ्य में वही सर्व-प्रमुख है। हमें भी इसी प्रकार बनने का प्रयास करना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- व्रेशीनाम् (वृश् - वरण करना, आच्छादन करना)। त्वा (सर्वनाम)। पत्मन् (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। आ (उपसर्ग)। धूनोमि (धू -कम्पन करना, नोचना, कम्पित करना, काँपना, कम्पाना, कम्पित होना, हिलाना, क्षोभित करना)। कुकूननानाम् (कुक्-कुक्क् = ललचाना, लेना, कु = बुरा, अनुचित, कून - संकुचित होना, ऐंठना)। भन्दनानाम् (भन्द् - कल्याण होना, सुख होना, शुभ कर्म करना, सुखी होना)। मदिन्तमानाम् (मन्द् - स्तुति करना, तुष्ट करना, आनन्द करना, उन्मत्त होना, सोना, चाहना, चमकना, प्रकाशित होना)। मधुन्तमानाम् (मध्-मधु = मधुर होना, मीठा होना)। शुक्रम् (शुच्, शुध् = शुद्ध होना, पवित्र होना)। शुक्रे (शुच्, शुध् = शुद्ध होना, पवित्र होना)। अह्नो (अह् = व्याप्त होना)। रूपे (रूप - रूप बनाना, आकार बनाना, रचना करना, मन में रूपाकृति लाना)। सूर्यस्य (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। रश्मिषु (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)॥ 48॥

342. ककुभम् रूपम्, वृषभस्य रोचते बृहत्, शुक्रः शुक्रस्य पुरो-गाः, सोमः सोमस्य पुरो-गाः।
यत् ते सोम अदाभ्यम्, नाम जागृवि तस्मै त्वा, गृह्णामि तस्मै ते सोम, सोमाय स्वाहा॥49॥

संहितापाठ

ककुभꣳरूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः।यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाह॥49॥

मन्त्रार्थ :- ककुभम् = ककुभ, गर्वित, चञ्चल, प्यासा, धारण करने वाला, रूपम् - रूप को, वृषभस्य - वृषभ को, बृहत्, - बड़ा, रोचते - रुचता है। शुक्रः - शुक्र, शुक्रस्य - शुक्र का, पुरो-गाः - आगे जाने वाला, सोमः - सोम, सोमस्य - सोम का, पुरो-गाः - आगे जाने वाला। यत् - जो, ते - तुम्हारा, सोम - हे सोम, अदाभ्यम् = अहिंसनीय, अनिन्दनीय, नाम - नाम (है), जागृवि - जाग्रत, तस्मै - उसके लिए, त्वा - तुमको, गृह्णामि - ग्रहण करता हूँ, तस्मै - उसके लिए, ते - तुम्हारा, सोम - हे सोम, सोमाय - सोम के लिए, स्वाहा - व्यापक॥ 49॥

भावार्थ :- वृषभ को ककुभ रूप रुचता है। वृषभ का अर्थ है बलवान्, वर्षा करने वाला। ककुभ का अर्थ गर्वित, चञ्चल, प्यासा, धारण करने वाला है। वर्षा करने वाले की रुचि प्यासे में होना स्वाभाविक है। वर्षा की आवश्यकता प्यासे के लिए ही अधिक है। इसी प्रकार कह सकते हैं कि किसी गर्वित को उचित मार्ग दिखाना बलवान् का कार्य है। शुक्र का पुरोगामी, अग्रगामी शुक्र तथा सोम का सोम ही हो सकता है। शुक्र तथा सोम परमात्मा की दिव्य शक्तियाँ तो हैं ही, उपासक को इन गुणों तथा शक्तियों की सिद्धि प्राप्त होती है। इनसे आगे इनके अतिरिक्त अन्य कोई जा ही नहीं सकता है। परमात्मा की दिव्य शक्तियों का अतिक्रमण कोई अन्य कैसे कर सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- ककुभम् (कक - गर्व करना, चञ्चल होना, प्यासा होना, कुभ - धारण करना, घर्षण करना)। रूपम् (रूप् - रूप बनाना, आकार बनाना, रचना करना, मन में रूपाकृति लाना)। वृषभस्य (वृष - अमानवी पराक्रम होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। रोचते (रुच् = रुचना, प्रकाशित होना, प्रसन्न होना)। बृहत् (बृह् - बढ़ना, बड़ा होना)। शुक्रः (शुच्, शुध् = शुद्ध होना, पवित्र होना)। शुक्रस्य (शुच्, शुध् = शुद्ध होना, पवित्र होना)। पुरोगाः (पुर् = मुख्य होना, अग्रसर होना, गम् = जाना, जानना, गा = स्तुति करना, जाना, जानना)। सोमः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, आसवन करना, सू = प्रेरणा देना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। सोमस्य (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, आसवन करना, सू = प्रेरणा देना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। पुरोगाः (पुर् = मुख्य होना, अग्रसर होना, गम् = जाना, जानना, गा = स्तुति करना, जाना, जानना)। यत् (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। सोम (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, आसवन करना, सू = प्रेरणा देना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। अदाभ्यम् (दभ - निन्दा करना, हिंसा करना, आज्ञा देना, दा - देना)। नाम (अव्यय)। जागृवि (जागृ - जगना, नींद न लेना)। तस्मै (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम)। गृह्णामि (गृह् - लेना, स्वीकार करना, निवास करना)। ते (सर्वनाम)। तुभ्यम् (सर्वनाम)। सोम (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, आसवन करना, सू = प्रेरणा देना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। सोमाय (सु

= उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, आसवन करना, सू = प्रेरणा देना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥ 49॥

343. उशिक् त्वम् देव सोम, अग्नेः प्रियम् पाथो अपि इहि, वशी त्वम् देव सोम,
इन्द्रस्य प्रियम् पाथो अपि इहि, अस्मत् सखा त्वम् देव सोम,
विश्वेषाम् देवानाम् प्रियम् पाथो अपि इहि॥ 50॥

संहितापाठ

उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि॥ 50॥

मन्त्रार्थ :- उशिक् - कमनीय, प्रकाशमान, त्वम् - तुम, देव - हे देव, सोम - हे सोम, अग्नेः - अग्नि का, प्रियम् - प्रिय, पाथो - पाथ, अपि - भी, इहि - जाओ, वशी - कमनीय, प्रकाशमान, त्वम् - तुम, देव - हे देव, सोम - हे सोम, इन्द्रस्य - इन्द्र का, प्रियम् - प्रिय, पाथो - पाथ, अपि - भी, इहि - जाओ, अस्मत् - हमसे, सखा - मित्र, त्वम् - तुम, देव - हे देव, सोम - हे सोम, विश्वेषाम् - सभी, देवानाम् - देवों के, प्रियम् - प्रिय, पाथो - पाथ, अपि - भी, इहि - जाओ।50॥

भावार्थ :- परमात्मा ही सभी देव-शक्तियों का आधार है। वही सबका सच्चा सखा, मित्र है। अतः हम उसकी ओर ही जाते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- उशिक् (उश्-वश् = इच्छा करना, चाहना, चमकना)। त्वम् (सर्वनाम)। देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। सोम (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, आसवन करना, सू = प्रेरणा देना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। अग्नेः (अग् = गति करना, अग्रणी होने)। प्रियम् (प्री = स्नेह करना, प्यार करना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना, चाहना)। पाथः (पथ् = जाना, जानना, पाना, पा = रक्षा करना)। अपि (अव्यय)। इहि (इ = जाना, जानना, पाना)। वशी (वश् = इच्छा करना, चाहना, चमकना)। त्वम् (सर्वनाम)। देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। सोम (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, आसवन करना, सू = प्रेरणा देना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। प्रियम् (प्री = स्नेह करना, प्यार करना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना, चाहना)। पाथः (पथ् = जाना, जानना, पाना, पा = रक्षा करना)। अस्मत् (अपादान, बहुवचन)। सखा (सख् = मित्र होना)। देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। सोम (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, आसवन करना, सू = प्रेरणा देना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। विश्वेषाम् (सर्वनाम)। देवानाम् (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान होना)। प्रियम् (प्री = स्नेह करना, प्यार करना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना, चाहना)। पाथः (पथ् = जाना, जानना, पाना, पा = रक्षा करना)॥ 50॥

(88) सूक्त 11

344. इह रतिः इह रमध्वम्, इह धृतिः इह स्वधृतिः स्वाहा।
उप-सृजन् धरुणम् मात्रे, धरुणो मातरम् धयन्। रायस्पोषम् अस्मासु दीधरत् स्वाहा॥ 51॥

संहितापाठ

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा। उपसृजन्धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन्। रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा॥ 51॥

मन्त्रार्थ :- इह - यहाँ, रतिः - रति, इह - यहाँ, रमध्वम् - रमण करो, इह - यहाँ, धृतिः - धारण, इह - यहाँ, स्वधृतिः - स्वधृति, स्वाहा - व्यापक। उप - समीप, सृजन् - सृजन करते हुए, धरुणम् - धरुण को, मात्रे - माता के लिए, धरुणो - धरुण, मातरम्- माता को, धयन् - धारण करते हुए। रायस्पोषम् - रयि का पोषण, अस्मासु - हममें, दीधरत् -धारण किया, स्वाहा - व्यापक॥ 51॥

भावार्थ :- हम इस संसार में जीवन-यापन कर रहे हैं, यह प्रत्यक्ष है। अतः हमारी रति, रमण यहीं होना चाहिए। किसी

काल्पनिक लोक की कल्पना, आशा, भय से इस जीवन, इस संसार की उपेक्षा करना उचित नहीं है। इस जीवन से, इस संसार से विरति नहीं होनी चाहिए, रति चाहिए, रमण करना चाहिए, संसार का आनन्द लेना चाहिए। धृति अर्थात् जो कुछ धारण करना है, उसे यहाँ धारण करें। स्वधृति का ध्यान रखें। स्वधृति अर्थात् अपनी धृति, अपनी धारणा, अपना प्राप्य धारण करें, उसमें रति भी हो, परन्तु वह व्यापक हो। संकीर्ण स्वार्थ से प्रेरित होकर सब कुछ पा लेने का लोभ उचित नहीं है। उपसृजन का भाव है कि अपने समीप यथासम्भव सृजन करें। सृष्टि परमात्मा ने की है, हम उसी सृजन से उपसृजन कर सकते हैं। इसी तरह हम संसार में प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए जो कुछ आवश्यक है, वह सब कुछ पा सकते हैं। माता के लिए धारण करना है, माता को धारण करना है। व्यापक अर्थों में माता शब्द से सबको जन्म देने वाले परमात्मा, वेदमाता, पृथ्वी माता का भी ग्रहण किया जाता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- इह (सर्वनाम)। रतिः (रम् - रमना, क्रीडा करना, खेलना)। रमध्वम् (रम् - रमना, क्रीडा करना, खेलना)। इह (सर्वनाम)। धृतिः (धृ - धारण करना)। इह (सर्वनाम)। स्वधृतिः (स्व = अपना, धृ - धारण करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। उपसृजन् (उप - समीप, सृज् = उत्पन्न करना, रचना करना, छोड़ना)। धरुणम् (धृ = धारण करना)। मात्रे (मा = मान करना, मापना)। धरुणो (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना)। मातरम् (मा = मान करना, मापना)। धयन् (धि - धारण करना, पास रखना या होना, युक्त होना)। रायः (रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। पोषम् (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना)। अस्मासु (सर्वनाम)। दीधरत् (धृ = धारण करना, रखना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥ 51॥

345. सत्रस्य ऋद्धिः असि, अगन्म ज्योतिः, अमृता अभूम।
दिवम् पृथिव्या अधि आ अरुहाम, अविदाम देवान् स्वः ज्योतिः॥52॥

संहितापाठ

सत्रस्यऽऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृताऽअभूम। दिवं पृथिव्याऽ अध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः॥52॥

मन्त्रार्थ :- सत्रस्य - सत्र का, ऋद्धिः - ऋद्धि, वृद्धि, असि - हो। ज्योतिः - प्रकाश को, अगन्म - गया। अमृता - अमृत, अभूम - हुआ। दिवम् - दिव को, पृथिव्या - पृथ्वी का, अधि - अधिक, आ - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, अरुहाम = चढ़े, बढ़ें, आरोहण किया, अविदाम - जाना, देवान् - देवों को, स्वः - ऐश्वर्य-सृजन, ज्योतिः - प्रकाश॥ 52॥

भावार्थ :- सत्र की ऋद्धि हो अर्थात् विस्तार की वृद्धि हो। परमात्मा की दिव्य ज्योति की ओर गये तो हम स्वयम् अमृत हो गये। वास्तव में अमृत तत्व तो केवल परमात्मा है, शेष सब कुछ मरणशील है, नाशवान् है। जब हम संकीर्णता से मुक्त होकर विस्तार करते हैं और उससे भी आगे बढ़कर विस्तार की वृद्धि करने लगते हैं तो परम व्यापक परमात्मा की दिव्य ज्योति को प्राप्त कर पाते हैं। उसका अनुभव होने पर तो हम वास्तविक आत्म-स्वरूप को जान जाते हैं और स्वयम् अमृत हो जाते हैं, अर्थात् परमात्म-स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं। यह भीतर की अनुभूति होती है, अन्तः अनुभूति है। व्यवहारिक दृष्टि से तो सभी कार्य-व्यवहार सामान्य रूप से चलते रहते हैं, उसमें कोई अन्तर नहीं आता है। सामान्यतः निकट के लोगों को भी अनुभव नहीं हो पाता है कि कब हमने उस ज्योति को पा लिया है। अन्य लोगों को तो अमृत स्वरूप व्यक्ति का आचरण तो और भी अटपटा लगने लगता है क्योंकि वह भीतर से समाज की कल्पित मान्यताओं से मुक्त हो चुका होता है, परन्तु व्यवहार में सामाजिक परम्पराओं-मान्यताओं में बंधे रहने की बाध्यता भी होती है। ऐसे में लोक-व्यवहार का निर्वाह करना उसके लिए कठिन हो जाता है तथा उसके आचरण को समझना जन-सामान्य के लिए कठिन होता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सत्रस्य (सत्र - फैलाना, विस्तार करना, सम्बन्ध करना, संसर्गी होना)। ऋद्धिः (ऋ = जाना, जानना, पाना, ऋतु)। असि (अस् - होना)। अगन्म (गम् = जाना, जानना, पाना)। ज्योतिः (ज्युत् - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। अमृताः (मृ = मरना)। अभूम (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। दिवम् (दिव् = प्रकाशित होना, स्तुति करना)। पृथिव्याः (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अधि (उपसर्ग)। आ (उपसर्ग)। अरुहाम (अ - नहीं, रुह् = रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना,

प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। अविदाम (अ - नहीं, विद् = जानना)। देवान् (दिव्, देव् = तेजस्वी होना आदि)। स्वः (स्वर् = शब्द करना, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। ज्योतिः (ज्युत् - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)।। 52 ।।

346. युवम् तम् इन्द्रापर्वता पुरो-युधा, यो नः पृतन्यात् अप तन्तम् इत् हतम्, वज्रेण तन्तम् इत् हतम्। दूरे चत्ताय छन्त्सत्, गहनम् यत् इनक्षत्।अस्माकम् शत्रून् परि शूर, विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः। भूः भुवः स्वः सुप्रजा प्रजाभिः, स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः ।।53 ।।

संहितापाठ

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम्।दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत्।अस्माकꣳशत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः।भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः ।।53 ।।

मन्त्रार्थ :- इन्द्रापर्वता = परम ऐश्वर्यशाली पूर्णता, यो - जो, नः - हमारे लिए, युवम् = युवा, तुम दोनों, पुरो-युधा - अग्रयोद्धा, (हो), तम् - उसे, पृतन्यात् = व्यापक बनाओ। अप = दूर, निम्नता, तन्तम् = तन्त को, विस्तार को, इत् - ही, हतम् - हनन किया, वज्रेण - वज्र से, तन्तम् = तन्त को, विस्तार को, इत् - ही, हतम् - हनन किया। दूरे - दूर, चत्ताय = याचक के लिए, गतिमान के लिए, छन्त्सत् - संवरण किया, गहनम् - गहन, यत् - जो, इनक्षत् = पाये, गति, ज्ञान, प्रकाश प्राप्त किया, अस्माकम् - हमारे, शत्रून् - शत्रुओं को, परि = परितः, सभी ओर, शूर - वीर, विश्वतो - सबसे, दर्मा - आदृत, हिंसक, दर्षीष्ट - अत्यन्त आदरणीय, विश्वतः - सबसे। **भूः** - भू, **भुवः** - भुवः, **स्वः** - स्वः, **प्रजाभिः** - प्रजाओं-सन्तानों से, **सुप्रजाः** - अच्छे सन्तानवाले, **वीरैः** - वीरों से, **सुवीरो** - अच्छे वीर हों, **पोषैः** - पोषण से, **सुपोषः** - अच्छा पोषण, **स्याम्** - हो।। 53 ।।

भावार्थ :- युद्ध करना, शत्रुओं का हनन करना ऐश्वर्य के विना सम्भव नहीं है। परम ऐश्वर्य की पूर्णता से ही युद्ध में सफलता सुनिश्चित होती है। युद्ध-क्षमता को, रण-कौशल को व्यापक बनाकर हम सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- युवम् (सर्वनाम)। **तम्** (सर्वनाम)। **इन्द्रापर्वता** (इन्द् = परम ऐश्वर्यशाली होना, पर्व - पूरा करना, भरना)। **पुरोयुधा** (पुर् = मुख्य होना, अग्रसर होना, युध -सम्प्रहार करना, युद्ध करना)। **यः** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **पृतन्यात्** (पृत -व्याप्त होना, जीवन होना, बलपूर्वक निकालना, पृ = पूर्ण करना)। **अप** (उपसर्ग)। **तन्तम्** (तन् = विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना, सहायता करना, शब्द करना)। **हतम्** (हन् - मार डालना, प्राप्त करना, जाना, किसी प्रकार समाप्त करना)। **वज्रेण** (वज - जाना, सिद्ध करना, तैयार करना, बाण में पङ्ख लगा कर तैयार करना)। **तन्तम्** (तन् = विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। **इत्** (अव्यय)। **हतम्** (हन् - मार डालना, प्राप्त करना, जाना, किसी प्रकार समाप्त करना)। **दूरे** (दु = जाना, दुःख पाना, दुःख देना)। **चत्ताय** (चत् - चलना, जाना, जानना, पाना, याचना करना, मांगना)। **छन्त्सत्** (छदि-छन्द् - संवरण करना, ढकना, आच्छादन करना, लपेटना)। **गहनम्** (गह् - घना होना, निबिड़ होना)। **यत्** (सर्वनाम)। **इनक्षत्** (इ - जाना, जानना, पाना, इन् - प्रकाश करना, इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना, नक्ष् - जाना, जानना, पाना, समीप जाना, आना, क्षण् - शब्द करना)। **अस्माकम्** (सर्वनाम)। **शत्रून्** (शी-शद्-शत् - जीर्ण होना, गिरना, गिराना)। **परि** (उपसर्ग)। **शूर** (शूर - वीर होना, वीरता दिखाना, मार डालना, दुःख देना, पीड़ा करना, मूर्ख होना, पागल होना, निश्चल होना, स्तब्ध होना)। **विश्वतः** (सर्वनाम)। **दर्मा** (दृ - आदर करना, हिंसा करना, दुःख देना, मार डालना)। **दर्षीष्ट** (दृ - आदर करना, हिंसा करना, दुःख देना, मार डालना)। **विश्वतः** (सर्वनाम)। **भूः** (भू = होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना)। **भुवः** (भू = होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना)। **स्वः** (स्वर् = शब्द करना, सु = उत्पन्न करना)। **सुप्रजाः** (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **प्रजाभिः** (जन् = उत्पन्न करना)। **स्याम्** (अस् = होना)। **सुवीरो** (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना)। **वीरैः** (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना)। **सुपोषः** (पुष - पोषण करना)। **पोषैः** (पुष - पोषण करना)।।। 53 ।।

347. परमेष्ठी अभिधीतः, प्रजापतिः वाचि, व्याहृतायाम् अन्धो अच्छेतः।

सविता सन्याम् विश्व-कर्मा, दीक्षायाम् पूषा सोम-क्रयण्याम् ॥ 54 ॥

संहितापाठ

परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायामन्धोऽअच्छेतः ।सविता सन्यां विश्वकर्मा दीक्षायां पूषा सोमक्रयण्याम् ।54 ॥

मन्त्रार्थ :- अभिधीतः - अभिधीत, परमेष्ठी - परमेष्ठी, प्रजापतिः - प्रजापति, प्रजा का पालक, रक्षक, प्रजा से ऐश्वर्यवान्, वाचि - वाणी में, व्याहृतायाम् - व्याहृता में, अन्धो - अन्ध, प्राणी, प्राण-धारी, अच्छेतः = अछिन्न, अखण्ड, निर्मल। सविता = उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाला, सन्याम् - सन्या को, विश्व-कर्मा - सब कुछ करने वाला, दीक्षायाम् - दीक्षा में, पूषा - पोषक, सोम-क्रयण्याम् - सोम-कर्म में, सोमक्रय में।54 ॥

भावार्थ :- अन्ध शब्द का सामान्यतः अर्थ अन्धा, अन्धकारमय, न देखने वाला होता है। परन्तु यहाँ अन्ध शब्द अन् धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है प्राण होना। प्राण को धारण करने वाला प्राणी है। प्राण धारण करने का साधन अन्न है, अतः उसे भी अन्ध कहा गया है। सविता का अर्थ है उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाला। वही विश्वकर्मा है, सब कुछ करने वाला है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- परमेष्ठी (परम = परम, अत्यन्त)। अभिधीतः (अभि = सभी ओर, धी = धारण करना)। प्रजापतिः (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, जन् = उत्पन्न होना, पत् = ऐश्वर्य होना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। वाचि (वच् = बोलना)। व्याहृतायाम् (वि = विशेष, विना, विलोम, आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, उपसर्ग, हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। अन्धः (अन् - प्राण होना, जीवन होना, धा - धारण करना)। अच्छेतः (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, छिद्-छिन् - छेदना, काटना, टुकड़े करना, अच्छ् - अच्छा होना, निर्मल करना, श्रेष्ठ होना, अच्छा होना)। सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। सन्याम् (सन - देना, दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना)। विश्वकर्मा (विश्व = सभी, कृ = करना)। दीक्षायाम् (दीक्ष - दीक्षा देना, उपदेश देना, उपनयन करना, आत्मनिग्रह करना, मानव धर्म सिखाना, आदेश देना)। पूषा (पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना, पालन करना)। सोम-क्रयण्याम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, आसवन करना, सू = प्रेरणा देना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना, क्री = क्रय करना)॥ 54 ॥

348. इन्द्रः च मरुतः च, क्रयाय उप उत्थितो असुरः,
पण्यमानो मित्रः क्रीतो, विष्णुः शिपि-विष्ट ऊरौ, आसन्नो विष्णुः नरन्धिषः ॥ 55 ॥

संहितापाठ

इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितोऽसुरः पण्यमानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्टऽऊरावासन्नो विष्णुर्नरन्धिषः ॥ 55 ॥

मन्त्रार्थ :- इन्द्रः = इन्द्र, परम ऐश्वर्यशाली, परम ऐश्वर्यवान्, च - और, मरुतः - मरुत्, मरणशील, च - और, क्रयाय - क्रय के लिए, उप - समीप, उत्थितो - उत्थित, उठा हुआ, असुरः - असुर, पण्यमानो - पण्यमान, मित्रः - मित्र, क्रीतो - क्रीत, विष्णुः - विष्णु, शिपिविष्टः - क्षरण में प्रविष्ट, ऊरौ - उरु में, आसन्नो - आसन्न, विष्णुः - विष्णु, व्यापक, नरन्धिषः - नरन्धिष ॥ 55 ॥

भावार्थ :- इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यशाली, परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा और मरुत् अर्थात् मरणशील मनुष्यादि प्राणी हैं। यह भाव भी है कि ऐश्वर्यशाली हो अथवा साधारण मानव, इस संसार को हाट तथा आचार को मूलतः व्यापार भावना से देखने वाले असुर तो सबको क्रय करने के लिए उठ खढ़े हुए हैं। उन असुरों के लिए मित्र भी व्यापारी ही हैं। पण् धातु का अर्थ व्यवहार करना, उद्योग करना, व्यापार करना, स्तुति करना भी होता है। अतः वास्तविक मित्र तो हमारे हित में उद्योग करता है तथा स्तुति ही करता है। ऐसे में विष्णुविष्णु अर्थात् अर्थात् व्यापक भावना होना, सबको अपने समान मानना ही महत्वपूर्ण है। वह विष्णु अर्थात् व्यापकता की भावना अथवा सर्वव्यापी परनात्मा ही शिपिविष्टः अर्थात् क्षरण में प्रविष्ट, उरु में, आसन्न, आसीन, उपस्थित तथा नरन्धिष अर्थात् नरों में शब्द, ध्वनि अर्थात् वाणी-विद्या देने में समर्थ है॥ 55 ॥

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- इन्द्रः (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। च (अव्यय)। मरुतः (मृ = मरना)। क्रयाय (क्री - खरीदना, बदले में लेना, जीतना)। उप (उपसर्ग)। उत्थितो (उत् - ऊपर, स्था - स्थित होना, ठहना, उत्था - उठना)।

असुरः (अस् = फेंकना, बिखेरना, उड़ाना)। पण्यमानो (पण् = व्यवहार करना, उद्योग करना, व्यापार करना, स्तुति करना)। मित्रः (मिद् - स्नेह करना)। क्रीतो (क्री- खरीदना, बदले में लेना, जीतना)। विष्णुः (विष् = व्याप्त होना)। शिपिविष्टः (शिप् - क्षरण होना, विश - घुसना, भीतर जाना, धंसना, चारों ओर फैलना)। ऊरौ (उर् = जाना, चलना)। आसन्नो (आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीना, होना)। नरन्धिषः (नृ = ले जाना, धिष् - शब्द करना, ध्वनि करना)।। 55 ।।

349. प्रोह्यमाणः सोम आगतो, वरुण आसन्द्याम् आ-सन्नो,
अग्निः आग्नीध्र इन्द्रो हविर्द्धाने, अथर्वा उप-अवह्रियमाणः ।। 56 ।।

संहितापाठ

प्रोह्यमाणः सोमऽआगतो वरुणऽआसन्द्यामासन्नोऽग्निराग्नीध्रऽइन्द्रो हविर्द्धानेऽथर्वोपावह्रियमाणः ।। 56 ।।

मन्त्रार्थ :- प्रोह्यमाणः - बहुतर्कित, तर्क किया जाता हुआ, सोम - उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्य देने वाला, सींचने वाला, प्रेरणा देने वाला, अनुचित का विध्वंस करने वाला, आगतो - आगत, आया हुआ, वरुण - वरुण, आसन्द्याम् - आसन्दी पर, आसन्नो - आसीन, अग्निः - अग्नि, आग्नीध्र - आग्नीघ्र, इन्द्रो - इन्द्र, हविर्द्धाने - हविर्धान में, अथर्वा - अथर्वा, अहिंसक, अविचलित, उप - समीप, अवह्रियमाणः - उतारा जाता हुआ, नीचे ले जाया जाता हुआ।। 56 ।।

भावार्थ :- सोम अर्थात् उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्य देने वाला, सींचने वाला, प्रेरणा देने वाला तथा अनुचित का विध्वंस करने वाला परमात्मा प्रोह्यमाण आगत है। इसका अर्थ है कि वह तर्कशीलता से प्राप्त होता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- प्रोह्यमाणः (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, ऊह् = परिकल्पना करना, तर्क करना)। सोमः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, आसवन करना, सू = प्रेरणा देना, सो - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। आगतः (आ - गम् = जाना, आगम् - आना)। वरुणः (वृ - वरण करना)। आसन्द्याम् (आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीना, होना)। आसन्नः (आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीना, होना)। अग्निः (अग् = जाना, जानना, पाना, आगे जाना, ऊर्ध्वगति करना, तेजस्वी होना)। आग्नीध्रे (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। इन्द्रः (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। हविर्द्धाने (हविः = धानम्, हुः = दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे = आह्वान करना, पुकारना, शब्द करना, धा = धारण करना)। अथर्वा (थर्व = हिंसा करना, विचलित होना, विचलित करना)। उप (उपसर्ग)। अवह्रियमाणः (अव - नीचे, अव् = रक्षा करना, ह्व- हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, लेना, ग्रहण करना, नष्ट करना, चोरी करना, चुराना, मूसना)।। 56 ।।

350. विश्वे देवाः अंशुषु, न्युप्तो विष्णुः आप्रीतपा, आप्यायमानो यमः सूयमानो,
विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः, शुक्रः पूतः शुक्रः क्षीरश्रीः, मन्थी सक्तुश्रीः ।। 57 ।।

संहितापाठ

विश्वे देवाऽअꣳशुषु न्युप्तो विष्णुराप्रीतपाऽआप्याय्यमानो यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः।शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः ।। 57 ।।

मन्त्रार्थ :- विश्वे - सभी, देवाः - देवगण, अंशुषु - अंशुओं में, न्युप्तो - बोया गया, विष्णुः - व्यापक, आप्रीतपा - सम्यक्, समन्तात् प्रीति करने वालों के रक्षक, आप्यायमानो - आप्यायमान, व्याप्त, यमः - यम, सूयमानो - उत्पन्न होता हुआ, विष्णुः - व्यापक, सम्भ्रियमाणो - सम्यक् भ्रियमाण, पालन करता हुआ, वायुः - वायु, पूयमानः - पवित्र करता हुआ, शुक्रः - शुक्र, पवित्र, पूतः - पवित्र, शुक्रः - शुक्र, पवित्र, क्षीरश्रीः - क्षीरश्री, मन्थी - मन्थन करने वाला, सक्तुश्रीः - सक्तुश्री, परिपक्व सेवी।। 57 ।।

भावार्थ :- सभी देवगण अर्थात् दिव्य शक्तियाँ पवित्रता, व्यापकता, प्रीति, सेवा आदि सद्गुणों में ही उत्पन्न होती हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- विश्वे (सर्वनाम)। देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अंशुषु (अंश् - विभाग करना, बाँटना, साथ होना)। न्युप्तो (नि = निश्चित, उप-वप् = बोना)। विष्णुः (विष् = व्याप्त होना)। आप्रीतपाः (आ - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, प्री - प्रीति करना, तृप्त करना,

कामना करना)। आप्यायमानो (आप् - व्याप्त होना, व्यापना, जाना)। यमः (यम - स्वाधीन रखना, नियन्त्रण में रखना, पोषण करना, खाने को देना)। सूयमानः (सू - गर्भ धारण करना, जनना, उत्पन्न करना)। विष्णुः (विष् = व्याप्त होना)। सम् (उपसर्ग)। भ्रियमाणः (भ्री = डरना, भय करना, भरण-पोषण-धारण करना, पालन करना, रक्षा करना)। वायुः (वा = गति करना, वे = बुनना)। पूयमानः (पू - पवित्र करना)। शुक्रः (शुच्, शुक् = पावन होना, शुद्ध होना, शुद्ध करना)। पूतः (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। क्षीरश्रीः (क्षि = निवास करना, जाना, नाश होना, नाश करना, हिंसा करना, श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना)। मन्थी (मन्थ - बिलोना, मथना, पीड़ा देना, हिंसा करना)। सक्तुश्रीः (सक्त् = भूनना, पीसना, श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना)।। 57 ।।

351. विश्वे देवा चमसेषु उन्नीत असुः, होमाय उद्यतो रुद्रो हूयमानो,
वातो अभि आवृत्तो नृचक्षाः प्रति-ख्यातो, भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नाराशंसाः ।। 58 ।।

संहितापाठ

विश्वे देवाश्चमसेषून्नीतोऽसुर्होमायोद्यतो रुद्रो हूयमानो वातोऽभ्यावृत्तो नृचक्षाः प्रतिख्यातो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नराशꣳसाः ।। 58 ।।

मन्त्रार्थ :- विश्वे - सभी, देवाः - देवगण, चमसेषु - चमसों में, उन्नीत - ऊपर ले जाये गये, होमाय - होम के लिए, उद्यतो - उद्यत, तत्पर, रुद्रो - रुद्र, हूयमानो - हूयमान, आह्वान किया जाता हुआ, वातो - वात, अभि - सब ओर, आवृत्तो - आवृत्त, नृचक्षाः - नृचक्ष, प्रति-ख्यातो - प्रतिख्यात, भक्षो - भक्ष, भक्ष्यमाणः - भक्ष्यमाण, भक्षण किया जाता हुआ, भक्षण करता हुआ, पितरो - पितर, नाराशंसाः - नाराशंस, असुः - हैं।। 58 ।।

भावार्थ :- सभी देवगण चमस् अर्थात् भोजन में ऊपर ले जाये गये हैं। देवत्व के जागरण, उन्नयन में भोजन करना तथा भोजन कराना प्राथमिक कर्तव्य है। भूखे रहकर तो साधना नहीं हो सकती है। होम के लिए अर्थात् दान के लिए तथा आदान-प्रदान के लिए उद्यत रहना है। सब ओर व्याप्त वायु को स्वच्छ रखना है। भोजन करते हुए, व्यापक अर्थो में कहें तो जीवन का आनन्द उठाते हुए पितरो, पूर्ववर्ती नायकों की स्तुति भी करना महत्वपूर्ण है। उनका योगदान भूलना नहीं चाहिए, जिनके प्रयासों से इतना सुन्दर सुखमय समाज बन सका है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- विश्वे (सर्वनाम)। देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। चमसेषु (चम् - खाना, पाना)। उन्नीतः (उत् - ऊपर, नी = पहुंचाना, पाना, ले जाना)। असुः (अस् = होना, फेंकना, बिखेरना, उड़ाना)। होमाय (हु = दान करना, आदान - प्रदान करना, लेना, तृप्त करना)। उद्यतः (उत् - ऊपर, या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। रुद्रो (रुद् = रुदन करना, रुलाना)। हूयमानो (हु = दान करना, आदान - प्रदान करना, लेना, तृप्त करना)। वातः (वात - सुखी होना, आनन्द करना, सेवा करना, जाना)। अभ्यावृत्तः (अभि = सभी ओर, आ - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, वृत् = रहना, होना, वर्ताव करना, पसन्द करना, ठहराना, निश्चित करना, सेवा करना, चमकना, बोलना)। नृचक्षाः (नृ - ले जाना, चक्ष = बोलना, कहना, देखना)। प्रति-ख्यातो (प्रति - प्रति, ख्या - प्रसिद्ध करना, प्रख्यात करना, कहना, व्याख्यान करना)। भक्षो (भक्ष - खाना)। भक्ष्यमाणः (भक्ष - खाना)। पितरः (पि - जाना, जानना, पाना, पा = पालन करना)। नाराशंसाः (नृ - ले जाना, (शंश - प्रशंसा करना, स्तुति करना, अभिशंसन करना) ।। 58 ।।

(90) सूक्त 13

352. सन्नः सिन्धुः अव-भृथाय उद्यतः, समुद्रो अभ्यवह्रियमाणः,
सलिलः प्रप्लुतो ययोः, ओजसा स्कभिता रजांसि, वीर्येभिः वीर-तमा शविष्ठा।
या पत्येते अप्रति इता, सहोभिः विष्णू अगन्, वरुणा पूर्वहूतौ ।। 59 ।।

संहितापाठ

सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रलुप्तो ययोरोजसा स्कभिता रजाꣳसि वीर्येभिर्वीरतमा

शविष्ठा। या पत्येतेऽअप्रतीता सहोभिर्विष्णूऽअगन्वरुणा पूर्वहूतौ ॥59॥

मन्त्रार्थ :- सन्नः - योग्य, सिन्धुः - सिन्धु, अव-भृथाय - अवभृथ के लिए, उद्यतः - उद्यत, समुद्रो - समुद्र, अभ्यवह्रियमाणः - उतारा जाता हुआ, नीचे ले जाया जाता हुआ, सलिलः - सलिल, गतिशील, प्रप्लुतो -प्रप्लुतः - तैरने वाला, उड़ने वाला, ययोः - जिनके, ओजसा - ओज से, स्कभिता - स्थापित, रजांसि - रजस्, वीर्येभिः - वीरता से, वीरतमा - अत्यन्त वीर, शविष्ठा - अत्यन्त समीपगामी। या - जो, पत्येते - ऐश्वर्य करते हैं। अप्रति - अप्रतिम, अतुलनीय, इता - गया हुआ, जाने वाला, सहोभिः - सामर्थ्य से, पूर्वहूतौ - पूर्व आह्वान किये हुए, विष्णू - विष्णु, वरुणा - वरुण, अगन् - गये॥ 59॥

भावार्थ :- साधना-उपासना से परमात्म-चेतना को अवहृत, अभ्यवहृत, अवतरित किया जाता है। उस तैरते हुए, उड़ते हुए अवतरित होने वाले दिव्य चेतना की अनुभूति यहाँ महत्वपूर्ण है। उस सलिल के समान प्रतीत होने वाले बल से हम स्वयम् को वीरतम अनुभव करते हैं। वीरतमा शब्द उस चेतनाशक्ति के लिए भी है तथा उससे अनुप्लावित, ओत-प्रोत साधक उपासक के लिए भी। इसके लिए हमने विष्णु अर्थात् व्यापक तथा वरुण अर्थात् वरणीय परमात्मा का आह्वान किया है। दिव्य चेतना का अवतरण होने की अनुभूति ही सर्वव्यापी वरणीय परमात्म चेतना का आगमन है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सन्नः (सन् - योग्य होना, सेवा करना, देना, दान करना, पूजा करना, सत्कार करना)। सिन्धुः (सि - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना, सिध् - सिद्ध होना, पूर्ण होना)। अव-भृथाय (अव - नीचे, अव् = रक्षा करना, भृ = भरण-पोषण, धारण करना)। उद्यतः (उत् - ऊपर, या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना, यत - दुःख देना, मारना, ठोकना, चपेटना, आज्ञा करना, एकत्र करना, मना करना, रोकना)। समुद्रो (सम् - सम्यक्, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना)। अभ्यवह्रियमाणः (अभि = सभी ओर, अव - नीचे, अव् = रक्षा करना, हृ- हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, लेना, ग्रहण करना, नष्ट करना, चोरी करना, चुराना, मूसना)। सलिलः (सल - जाना, सरकना, कांपना, थरथराना)। प्रप्लुतः (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, प्लु - जाना, उड़ना, तैरना)। ययोः (सर्वनाम)। ओजसा (ओज् - बल होना, शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। स्कभिता (स्कभि-स्कम्भ - स्थापित करना, गति करना, रोकना, प्रतिबन्ध करना, मूर्ख होना, मतिमन्द होना)। रजांसि (रज - रज होना, धूल होना, सूक्ष्म होना, रंग देना, रंगना, लीन होना)। वीर्येभिः (वीर् = पराक्रम करना)। वीरतमा (वीर् = पराक्रम करना)। शविष्ठा (शव - जाना, समीप जाना, आना, चलना-फिरना, बदले में देना, विकार होना)। या (सर्वनाम)। पत्येते (पत् = ऐश्वर्य होना)। अप्रति (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में)। इता (इ - जाना)। सहोभिः (सह् = सामर्थ्य होना, सहन करना)। विष्णू (विष् = व्यापक होना)। अगन् (अग - जाना, गम् - जाना)। वरुणा (वृ - वरण करना)। पूर्वहूतौ (पूर्व - पूर्व होना, प्रथम होना, पहले होना, पूर्ण करना, भरना)॥ 59॥

353. देवान् दिवम् अगन् यज्ञः, ततो मा द्रविणम् अष्टु,
मनुष्यान् अन्तरिक्षम् अगन् यज्ञः, ततो मा द्रविणम् अष्टु,
पितॄन् पृथिवीम् अगन् यज्ञः, ततो मा द्रविणम् अष्टु,
यम् कम् च लोकम् अगन् यज्ञः, ततो मे भद्रम् अभूत्॥60॥

संहितापाठ

देवान् दिवमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यानन्तरिक्षमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन् पृथिवीमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यं कं च लोकमगन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत्॥60॥

मन्त्रार्थ :- यज्ञः - यजन, देवान् - देवों को, दिवम् - दिव को, अगन् - गये, ततो - उससे, तब, उसके अनन्तर, मा-माम् - मुझको, द्रविणम् - द्रविण, अष्टु - व्याप्त हो। यज्ञः - यजन, मनुष्यान् - मनुष्यों को, अन्तरिक्षम् - अन्तरिक्ष को, अगन् - गये, ततो - उससे, तब, उसके अनन्तर, मा-माम् - मुझको, द्रविणम् - द्रविण, अष्टु - व्याप्त हो। यज्ञः - यजन, पितॄन् पृथिवीम् अगन् - गये, ततो - उससे, तब, उसके अनन्तर, मा-माम् - मुझको, द्रविणम् - द्रविण, अष्टु - व्याप्त हो। यज्ञः - यजन, यम् कम् च लोकम् अगन् - गये, ततो - उससे, तब, उसके अनन्तर, मे - मेरा। भद्रम् - भद्र, कल्याण, अभूत् - हुआ॥ 60॥

भावार्थ :- यजन के महत्व का वर्णन किया गया है। यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान करने से हमको बहुत कुछ प्राप्त हो सकता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- देवान् (दिव् = तेजस्वी होना, प्रकाशित होना, स्तुति करना)। दिवम् (दिव् = तेजस्वी होना, प्रकाशित होना, स्तुति करना)। अगन् (अग् - जाना)। यज्ञः (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। ततः (सर्वनाम)। मा (सर्वनाम, अव्यय)। द्रविणम् (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। अष्टु (अष् - ग्रहण करना, जाना, जानना, पाना, चमकना, प्रकाश करना)। मनुष्यान् (मन् - बोध होना, मनन करना, विचार करना)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। यज्ञः (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। पितॄन् (पा - रक्षा करना, पालन करना, पि-जाना, स्थानान्तर करना)। पृथिवीम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। यम् (सर्वनाम)। कम् (सर्वनाम)। च (अव्यय)। लोकम् (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। अगन् (अग् - जाना)। यज्ञः (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। ततः (सर्वनाम)। मे (सर्वनाम)। भद्रम् (भदि-भन्द् - कल्याण होना, शुभ कर्म करना, सुखी होना)। अभूत् (भू = होना)॥ 60॥

354. चतुः त्रिंशत् तन्तवो ये वितत्निरे, ये इमम् यज्ञम् स्वधया ददन्ते।
तेषाम् छिन्नम् सम् उ एतत् दधामि, स्वाहा घर्मो अपि एतु देवान्॥61॥

संहितापाठ

चतुस्त्रिꣳशत्तन्तवो ये वितत्निरे यऽइमं यज्ञस्वधया ददन्ते। तेषां छिन्नꣳसम्वेतद्दधामि स्वाहा घर्मोऽअप्येतु देवान्॥61॥

मन्त्रार्थ :- चतुः त्रिंशत् - चौंतीस, तन्तवो - तन्तु, ये - जो, वितत्निरे - वितान किया, विस्तार किया, ये - जो, इमम् - इसको, यज्ञम् - यजन को, स्वधया - स्वधा से, ददन्ते - देते हैं। तेषाम् - उनको, छिन्नम् - छिन्न, सम् - सम्यक्, उ - ही, एतत् - यह, दधामि - धारण करता हूँ, स्वाहा - व्यापक, घर्मो - घर्म, अपि - भी, एतु - जाये, देवान् - देवान्।61॥

भावार्थ :- चतुः त्रिंशत् तन्तवो अर्थात् चौंतीस तन्तु प्रतीकात्मक वर्णन है। यहाँ पर इससे क्या संकेत किया गया है, यह विचारणीय है। चौंतीस तन्तुओं ने इस यजन का वितान किया है, विस्तार किया है। जीवन यज्ञ का वितान चौंतीस तन्तुओं से होने से संकेत मिलता है कि कुछ विशेष गुणों आदि को इसके लिए आवश्यक माना गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- चतुस्त्रिशत् (संख्या)। तन्तवो (तन् = विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। ये = (सर्वनाम)। वितत्निरे (तन् = विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना, सहायता करना, शब्द करना)। इमम् (सर्वनाम)। यज्ञम् (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। स्वधया (स्व - अपना, धा - धारण करना)। ददन्ते (दद् - दान करना, देना, त्याग करना)। तेषाम् (सर्वनाम)। छिन्नम् (छिद् - छिन्न भिन्न करना, छेदना)। सम् (उपसर्ग)। उ (अव्यय)। एतत् (सर्वनाम)। दधामि (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। घर्मो (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। अपि (अव्यय)। एतु (आ - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, इ - जाना)। देवान् (दिव् = तेजस्वी होना, प्रकाशित होना, स्तुति करना)॥ 61॥

355. यज्ञस्य दोहो वि-ततः पुरुत्रा, सो अष्टधा दिवम् अनु आततान।
स यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजायाम्, रायः पोषम् विश्वम् आयुः अशीय॥62॥

संहितापाठ

यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सोऽअष्टधा दिवमन्वाततान। स यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजायारायस्पोषं विश्वमायुरशीय स्वाहा॥62॥

मन्त्रार्थ :- यज्ञस्य - यजन का, दोहो - दोहन करने वाले, वि-ततः - विस्तृत, पुरुत्रा - बहुत, सो - वह, अष्टधा - आठ को धारण करने वाला, आठ प्रकार से, दिवम् - दिव को, अनु - पीछे, आततान - वितान किया, विस्तार किया।

स - वह। यज्ञ - यजन, = प्रदीप्त करो, जलाओ, जीवन दो, महि = पूज्य महान्, मे - मेरा, प्रजायाम् - प्रजा में, रायः = गतिशीलता, विद्या वाणी, पोषम् - पोषण को, पोषण करने वाले को, विश्वम् - सम्पूर्ण, आयुः - आयु, अशीय - व्याप्त हो, पायें ।। 62 ।।

भावार्थ :- यजन व्यवस्था का दोहन करने वाले अर्थात् उसका उचित उपयोग करने वाले पूर्ण आयु आदि प्राप्त करते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- यज्ञस्य (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। दोहो (दुह् - दुहना, दोहन करना)। वि-ततः (तन् = विस्तार करना)। पुरुत्रा (पुरु - बहुत, पुर् = आगे जाना)। सः (सर्वनाम)। अष्टधा (अष्ट = आठ, धा = धारण करना)। दिवम् (दिव् = तेजस्वी होना, प्रकाशित होना, स्तुति करना)। अनु (उपसर्ग)। आततान (तन् = विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना, सहायता करना, शब्द करना)। यज्ञ (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। धुक्ष्व (धुक्ष् = प्रदीप्त करना, जलाना, जीव होना, श्रान्त होना या थक जाना)। महि (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। मे (सर्वनाम)। प्रजायाम् (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, जन् = उत्पन्न करना)। रायः (रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। पोषम् (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना)। विश्वम् (सर्वनाम)। आयुः (अय् - जाना)। अशीय (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)।। 62 ।।

356. आ पवस्व हिरण्यवत्, अश्ववत् सोम वीरवत्। वाजम् गोमन्तम् आ भर स्वाहा ।। 63 ।।

संहितापाठ

आपवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत्। वाजं गोमन्तमाभर स्वाहा ।। 63 ।।

मन्त्रार्थ :- सोम - हे सोम, आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, हिरण्यवत् - हिरण्य के समान, अश्ववत् - अश्व के समान, वीरवत् - वीर के समान, पवस्व - पवित्र करो। वाजम् - वाज को, गोमन्तम् - गोमन्त को, आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, भर - भरण करो।। 63 ।।

भावार्थ :- सोम अर्थात् सृष्टिकर्ता ऐश्वर्यशाली परमात्मा बहुविध हमें पवित्र करता है, हमारा भरण-पोषण करता है।

विशेष :- स्वाहा शब्द मन्त्र के अन्त में बहुधा प्रक्षिप्त रूप में भी प्रयुक्त है। अनेक मन्त्रों में स्वाहा शब्द छन्द का भाग है तथा अर्थ के लिए भी महत्वपूर्ण है। परन्तु अनेक मन्त्रों में केवल कर्मकाण्ड में उच्चारण की दृष्टि से प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है, जो अभ्यास के कारण मूल मन्त्र के साथ लिखा जाने लगा। कर्मकाण्ड की पुस्तकों में ऐसा होना स्वाभाविक हो सकता है, परन्तु मूल वेद संहिता में यह उचित नहीं है। इससे छन्द तथा अर्थ बाधित होते हों तो प्रक्षिप्त मानना ही उचित है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- आ (उपसर्ग)। पवस्व (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। हिरण्यवत् (हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, शब्द करना, ध्वनि होना, हि = गति करना, रण् = शब्द करना, जाना)। अश्ववत् (अश् = व्याप्त होना, खाना)। सोम (सु = उत्पन्न सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना, सो–स्य, सय - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। वीरवत् (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। वाजम् (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। गोमन्तम् (गु - शब्द करना)। भर (भृ = धारण-पोषण करना, पूर्ण करना)।। 63 ।।

इति अष्टमो अध्यायः

ॐ

अथ नवमो अध्यायः

(91) सूक्त 1

357. देव सवितः प्र सुव यज्ञम्, प्र सुव यज्ञपतिम् भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतम् नः पुनातु, वाचस्पतिः वाचम् नः स्वदतु॥1॥

संहितापाठ

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजं नः स्वदतु स्वाहा।॥1॥

मन्त्रार्थ- देव - **हे देव (दिव्यस्वरूप)** सवितः - **सवित (ऐश्वर्य युक्त और उत्पन्न करने वाले परमात्मन्),** भगाय - **भग (सेवा, दान) के लिये** यज्ञम् - **यज्ञ को** प्र सुव - **उत्पन्न कीजिये**, यज्ञपतिम् - **यज्ञपति को** प्र सुव - **उत्पन्न कीजिये**। केतपूः - **गृह, संवाद को पवित्र करने वाला।** दिव्यो - **दिव्य** गन्धर्वः - **गन्धर्व (प्रगतिशील, विद्वान्)** नः - **हमारे** केतम् - **केत (केत, संवाद) को** पुनातु - **पवित्र करे**। वाचस्पतिः - **वाणी के पोषक-रक्षक** नः - **हमारी** वाचम् - **वाणी को** स्वदतु - **रुचिकर, प्रसन्नता युक्त करे।**॥ 1॥

भावार्थ - प्रसुव का अर्थ है उत्पन्न करें, ऐश्वर्यवान् करें। कुछ विद्वानों ने प्रेरित करें ऐसा भी अर्थ किया है। यह भावार्थ स्वीकार्य हो सकता है। यजन तथा यजनपति को उत्पन्न करने का भाव व्यक्ति को इसके लिए प्रेरित करना मानना उचित तो हो सकता है, परन्तु वास्तविक अर्थ उत्पन्न करें, ऐश्वर्यवान् करें ही है।।1॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - देव (दिव् - तेजस्वी होना)। सवितः (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। प्र (उपसर्ग)। सुव (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना), यज्ञम् (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। यज्ञ-पतिम् (यज्, पत् - ऐश्वर्य होना)। भगाय (भज् - सेवा, दान करना)। दिव्यो (देव्)। गन्धर्वः (गम् + धृ, गम् = जाना, जानना, पाना, धृ = धारण करना)। केतपूः (कित् - निवास करना, रोग निवारण करना, केत - सम्मुख वार्ता करना, आमन्त्रण करना)। केतम् (कित् - निवास करना, रोग निवारण करना, केत - सम्मुख वार्ता करना, आमन्त्रण करना)। नः (सर्वनाम)। पुनातु (पू - पवित्र करना)। वाचस्पतिः (वच् - बोलना)। वाचम् (वच् - बोलना)। नः (सर्वनाम)। स्वदतु (स्वद् - स्वाद लेना, रुचिकर होना, तुष्ट होना, प्रसन्न होना)।॥1॥

सरलपाठ

358. ध्रुवसदम् त्वा नृसदम्, मनः सदम्,
उपयाम गृहीतो असि इन्द्राय त्वा जुष्टम् गृह्णामि, एष ते योनिः इन्द्राय त्वा जुष्टतमम्।
अप्सुसदम् त्वा घृतसदम्, व्योमसदम्,
उपयाम गृहीतो असि इन्द्राय त्वा जुष्टम् गृह्णामि, एष ते योनिः इन्द्राय त्वा जुष्टमम्।
पृथिविसदम् त्वा अन्तरिक्षसदम्,
दिविसदम् देवसदम्, नाकसदम्, उपयाम गृहीतो असि इन्द्राय त्वा जुष्टम् गृह्णामि
एष ते योनिः, इन्द्राय त्वा जुष्टतमम्॥2॥

संहितापाठ

ध्रुवसदं त्वा नृषदं मनःसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। अप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। पृथिविसदं त्वाऽन्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदं नाकसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्।॥2॥

मन्त्रार्थ :- ध्रुवसदम् - ध्रुवसद्, त्वा - तुमको, नृसदम् - नृसद्, मनःसदम् - मनःसद्, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, जुष्टम् - जुष्ट को, गृह्णामि - गृहण करता हूँ, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - योनि, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, जुष्टतमम् - जुष्टतम।

अप्सुसदम् - अप्सुसद्, त्वा - तुमको, घृतसदम् - घृतसद्, व्योमसदम् - व्योमसद्, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, जुष्टम् - जुष्ट को, गृह्णामि - गृहण करता हूँ, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - योनि, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, जुष्टतमम् - जुष्टतम।

पृथिविसदम् - पृथिविसद्, त्वा - तुमको, अन्तरिक्षसदम् - अन्तरिक्षसद्, दिविसदम् - दिविसद्, देवसदम् - देवसद्, नाकसदम् - नाकसद्, उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, जुष्टम् - जुष्ट को, गृह्णामि - गृहण करता हूँ, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - योनि, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, जुष्टतमम् - जुष्टतम॥ 2॥

भावार्थ :- परमात्मा की सर्वव्यापकता का वर्णन है। वह सभी लोकों में, सभी स्थानों में, सभी शक्तियों में, सभी लोगों में व्याप्त है। हम उसे ग्रहण करें, आत्मसात् करें, अनुभव करें तथा उसके लिए ही सर्वस्व समर्पण करें। दिव्य गुणों तथा दिव्य शक्तियों के लिए हम परमात्मा की उपासना को तथा दिव्य चेतना को अपने जीवन में ग्रहण करते हैं।

विशेष :- गृह तथा ग्रह धातुओं के अर्थ समान हैं। दोनो ही ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना अर्थ में प्रयोग होती हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- ध्रुवसदम् (ध्रुव् = गति करना, स्थिर होना)। त्वा (सर्वनाम)। नृसदम् (नृ - ले जाना)। मनःसदम् (मन् - मनन करना, विचार करना, मानना, सद् = जाना, जानना, पाना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। जुष्टम् (जुष् = सेवा करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। गृह्णामि (गृह - लेना, स्वीकार करना, निवास करना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = बन्धन होना, मिलाना, अलग करना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। जुष्टतमम् (जुष् = सेवा करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। अप्सुसदम् (अप् = फैलना)। घृतसदम् (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। व्योमसद् (वि - विशेष, उ - शब्द करना, रक्षा करना, सुखाना, ऊ - शब्द करना, विश्वास करना, सद् - बैठना, जाना, स्थित होना)। पृथिविसदम् (पृथ् = विस्तार होना, फैलाना, फेंकना,सद् - बैठना, चलना)। अन्तरिक्षसदम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, ईक्ष् -देखना, सद् - बैठना, चलना)। दिविसदम् (दिव् = प्रकाशित होना, स्तुति करना,सद् - बैठना, चलना)। देवसदम् (देव, दिव् = खेलना, तेजस्वी होना, चमकना)। नाकसदम् (न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्- नक्क -नाश होना,सद् - बैठना, चलना)॥ 2॥

359. अपाम् रसम् उत् वयसम्, सूर्ये सन्तम् समाहितम्।
अपाम् रसस्य यो रसः तम्, वो गृह्णामि उत्तमम्,
उपयाम गृहीतो असि इन्द्राय त्वा जुष्टम्,
गृह्णामि एष ते योनिः, इन्द्राय त्वा जुष्टतमम्॥3॥

संहितापाठ

अपारसमुद्वयसꣳसूर्ये सन्तꣳसमाहितम्।अपारसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्।3॥

मन्त्रार्थ :- अपाम् = अपा, पालन - रक्षण का, रसम् - रस, उत् - ही, वयसम् = वय, गति, ज्ञान, रचना (जीवन, आयु), सूर्ये - सूर्य में, सृजन-ऐश्वर्य में, समाहितम् - समाहित, सन्तम् - हुआ। अपाम् = अपों का, पालकों का, रसस्य - रस का, यो - जो, रसः - रस, (है), तम् - उसको, वो - तुम्हारा, गृह्णामि - ग्रहण करता हूँ। उत्तमम् - उत्तम। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, जुष्टम् - जुष्ट को, गृह्णामि - गृहण करता हूँ, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - योनि, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, जुष्टतमम् - जुष्टतम॥ 3॥

भावार्थ :- परमात्मा के पालन - रक्षण भाव का रस ही जीवन के रूप में इस सृष्टि में, सृजन-ऐश्वर्य में, अथवा पृथ्वी पर जीवन के प्रात्यक्ष स्रोत सूर्य में समाहित हुआ है। इसका भाव यह है कि प्रकृति में जीवन आदि का कारण सूर्य आदि प्रत्यक्ष है। यह भी सत्य है। परन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि सूर्य, अग्नि, जल, वायु आदि में जीवन को उत्पन्न करने तथा पालन-रक्षण करने का गुण तथा सामर्थ्य परमात्मा से ही प्राप्त है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अपाम् (अप् - पालन करना)। रसम् (रस - स्वाद लेना, चखना, प्रीति करना, प्यार करना)। उत् (अव्यय)। वयसम् (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना)। सूर्ये (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। सन्तम् (अस् - होना, सनु - देना, दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना)। समाहितम् (सम् = सम्यक्, आ - समन्तात्, पूर्णतः, सम्यक्, हि - जाना)। अपाम् (अप् - पालन करना)। रसस्य (रस् = चखना, प्यार करना, शब्द करना)। यः (सर्वनाम)। रसः (रस् = चखना, प्यार करना, शब्द करना)। तम् (सर्वनाम)। वः (सर्वनाम)। गृह्णामि (गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। उत्तमम् (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। जुष्टम् (जुष् = सेवा करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। गृह्णामि (गृह - लेना, स्वीकार करना, निवास करना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = बन्धन होना, मिलाना, अलग करना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। जुष्टतमम् (जुष् = सेवा करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)॥ 3॥

360. ग्रहा ऊर्जा-हुतयो, व्यन्तो विप्राय मतिम्।
तेषाम् विशिप्रियाणाम् वो अहम्, इषम् ऊर्जम् सम् अग्रभम्,
उपयाम गृहीतो, असि इन्द्राय त्वा जुष्टम्, गृह्णामि एष ते योनिः, इन्द्राय त्वा जुष्टतमम्।
सम्पृचौ स्थः सम् मा भद्रेण पृङ्क्म्, विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्म्॥4॥

संहितापाठ

ग्रहाऽऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम्। तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्जꣳसमग्रभमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। सम्पृचौ स्थः सं मा भद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम्।4॥

मन्त्रार्थ :- ग्रहा - ग्रहण करने वाले, ऊर्जा-हुतयो - ऊर्जा का आह्वान करने वाले, व्यन्तो - प्राणवान्, समर्थ, विद्वान्, विप्राय - विप्र के लिए, विशिष्ट पूर्ण के लिए, मतिम् - मति को। तेषाम् - उनका, विशिप्रियाणाम् - विशि-प्रियाओं का, वो - तुम्हें, अहम् - मैं, इषम् - गतिशील, ऊर्जम् - ऊर्जा को, सम् - सम्यक्, अग्रभम् - अग्रभ को, ग्रहण न करने वाले को, अथवा ग्रहण किया। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि - हो, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, जुष्टम् - जुष्ट को, गृह्णामि - गृहण करता हूँ, एष - यह, ते - तुम्हारा, योनिः - योनि, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, त्वा - तुमको, जुष्टतमम् - जुष्टतम। सम्पृचौ - सम्यक् स्पर्श, मिला हुआ। स्थः - स्थित हो, सम् - सम्यक्, मा-माम् - मुझको, भद्रेण - भद्र से, कल्याण से, पृङ्क्म् - युक्त करो, विपृचौ - वियुक्त, विशेष युक्त, स्थो - स्थित हो, मा-माम् - मुझको, पाप्मना - पाप के विचार से, वि - पृङ्क्म् - विलग करो॥ 4॥

भावार्थ :- विशिष्ट विद्वानों, कर्तव्य का पूर्णता से निर्वहन करने वालों के लिए ऊर्जा का आह्वान किया गया है। इसमें कहा गया है कि परमात्मा सम्पृक्त है तो हमें भद्र-भाव से, कल्याण से शुभ से सम्पृक्त करे। वह परमात्मा सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त होते हुए उससे परे भी है, पृथक् भी है। सम्पूर्ण सृष्टि तो उसका एक अंश मात्र है। अतः प्रार्थना की गयी है कि इसी भाँति वह हमें इस पापमय संसार में रहते हुए पाप से पृथक् रहने की क्षमता भी प्रदान करे। पूरा समाज तो पाप से मुक्त नहीं हो सकता है, परन्तु परमात्मा की कृपा से उपासक, साधक उससे मुक्त रह सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- ग्रहा (गृह् = ग्रहण करना)। ऊर्जा-हुतयो (ऊर्ज् = बल होना, प्राण होना, हु - देना, आदान-प्रदान करना, लेना, ग्रहण करना)। व्यन्तः (वि + अन्तु, अन् - जीना, प्राणवान् होना, समर्थ होना, जाना, जानना, पाना)। विप्राय (वि = विशेष, विना, विलोम, प्रा = पूर्ण करना)। मतिम् (मन् = विचार करना, माननो)। तेषाम् (सर्वनाम)।

विशिप्रियाणाम् (विश - भीतर जाना, चारों ओर फैलना, प्री = स्नेह करना, प्यार करना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना, चाहना)। वः (सर्वनाम)। अहम् (सर्वनाम)। इषम् (इष् = जाना, बार-बार करना, इच्छा करना)। ऊर्जम् (ऊर्ज् = बल होना, प्राण होना, हु - देना, आदान-प्रदान करना, लेना, ग्रहण करना)। अग्रभम् (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना)। उपयाम-गृहीतो (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। जुष्टम् (जुष् = सेवा करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। गृह्णामि (गृह् = ग्रहण करना)। एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु = बन्धन होना, मिलाना, अलग करना)। इन्द्राय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। जुष्टतमम् (जुष् = सेवा करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। सम्पृचौ (सम् - सम्यक्, भलीभाँति, पृच् = संयम करना, तपस्या करना, स्पर्श करना, संयोग करना, मिलना)। स्थः (स्था- स्थित होना, ठहरना) मा-माम् (सर्वनाम)। भद्रेण (भदि-भन्द् - शुभ कर्म करना, कल्याण होन, सुखी होना)। पृङ्कम् (पृङ् - युक्त होना)। विपृचौ (वि = विशेष, विना, विलोम, पृच् = सम्पर्क करना, स्पर्श करना)। वि (उपसर्ग)। पाप्मना (पाप् - पाप करना, अपराध करना)।4 ।।

(92) सूक्त 2

361. इन्द्रस्य वज्रो असि वाजसाः, त्वया अयम् वाजम् सेत्।
वाजस्य नु प्रसवे मातरम् महीम्, अदितिम् नाम वचसा करामहे।
यस्याम् इदम् विश्वम् भुवनम् आविवेश, तस्याम् नो देवः सविता धर्म साविषत्।।5।।

संहितापाठ

इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयायं वाजꣳसेत्। वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदिति नाम वचसा करामहे। यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेष तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत्।5।।

मन्त्रार्थ :- इन्द्रस्य - इन्द्र का, परम ऐश्वर्यशाली का, वज्रो - वज्र, बलवान्, वेगवान्, गतिशील, असि - हो, वाजसाः - बलवान्, वेगवान्, गतिशील, त्वया = तुम्हारे द्वारा, अयम् - यह, वाजम् = वाज को, विद्या को, गति को, सेत् - बाँधे। वाजस्य - वाज का, बलवान्, वेगवान्, गतिशील का, नु - निश्चय ही, प्रसवे - प्रसव के लिए, उत्पन्न करने के लिए, मातरम् - माता को, महीम् - मही को, अदितिम् - अदिति को, अविनाशी को, नाम - नाम वाला, वचसा - वाणी से, करामहे - करते हैं। यस्याम् - जिसमें, इदम् - यह, विश्वम् - सभी को, भुवनम् - भुवन को, आविवेश - प्रवेश किया, आवेशित किया, तस्याम् - उसमें, नो - हमारा, देवः - देव, सविता - सविता, धर्म -प्रकाश, धारण, साविषत् - उत्पन्न करे, ऐश्वर्य करे।। 5।।

भावार्थ :- इन्द्र का अर्थात् परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा का, वज्र अर्थात् बलवान्, वेगवान्, गतिशील। उपासक भी परमात्मा का सानिध्य पाकर, तत्स्वरूप होकर उसका वज्र बन जाता है। उसके बल, वेग का अंश प्राप्त कर लेता है। मही अर्थात् महान् माता तो अदिति अर्थात् अविनाशी परमात्मा ही है। वही हमें प्रकाश, ऐश्वर्य प्रदान करता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। वज्रो (वज - जाना, सिद्ध करना, तैयार करना)। असि (अस् = होना)। वाजसाः (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। त्वया (सर्वनाम)। अयम् (सर्वनाम)। वाजम् (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। सेत् (सि - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। वाजस्य (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। नु (निपात, अव्यय)। प्रसवे (सु = उत्पन्न करना)। मातरम् (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। महीम् (मह् - महान् होना, बड़ा होना, पूज्य होना)। अदितिम् (अ = नहीं, दी = नष्ट होना)। नाम (अव्यय)। वचसा (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। करामहे (कृ = करना)। यस्याम् (सर्वनाम)। इदम् (सर्वनाम)। विश्वम् (सर्वनाम)। भुवनम् (भू = होना)। आविवेश (आ- समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, वि - विशेष, विश् = प्रवेश करना, फैलना)। तस्याम् (सर्वनाम)। नः (सर्वनाम)। देवः (दिव् - तेजस्वी होना)। सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या

करना)। धर्म (धृ = धारण करना)। साविषत् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)।। 5 ।।

362. अप्सु अन्तः अमृतम् अप्सु भेषजम् अपाम्, उत प्रशस्तिषु अश्वा भवत वाजिनः।
देवीः आपो यो व ऊर्मिः प्रतूर्तिः, ककुन्मान् वाजसाः तेन अयम् वाजम् सेत् ।।6 ।।

संहितापाठ

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः।देवीरापो यो वऽऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुन्मान्वाजसास्तेनायं वाजꣳसेत्।6 ।।

मन्त्रार्थ :- अप्सु - पालन में, पालन करने वालों में, अन्तः -भीतर, अमृतम् - अमृत को, अप्सु - पालन में, पालन करने वालों में, भेषजम् - भेषज को, अपाम् - पालन करने वालों का, उत - ही, प्रशस्तिषु - प्रशस्तियों में, अश्वा = अश्व, तीव्र गति युक्त, व्यापक, व्यापक, शीघ्रगामी, भवत - हों, वाजिनः - बलवान्, वेगवान्, गतिशील। देवीः - देवी, आपो - = आप, व्याप्त, व्यापक, यो - जो, वो - तुम्हारा, ऊर्मिः - ऊर्मि, प्रतूर्तिः - शीघ्रगामी, प्रत्वरणशील, ककुन्मान् - वाजसाः - बलवान्, वेगवान्, गतिशील, तेन = उसके द्वारा, अयम् - यह, वाजम् = वाज को, विद्या को, गति को, सेत् - बाँधे।। 6 ।।

भावार्थ :- अमृत, भेषज पालनकर्ताओं में शीघ्रगामी है। जो लोग दूसरों का पालन-रक्षण करते हैं, उन्हें अमृत तत्व शीघ्रता से प्राप्त होता है। भेषज शक्ति भी उनको शीघ्रता से प्राप्त होती है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अप्सु (अप् = व्याप्त होना, पालन करना, फैलना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। अमृतम् (अ - नहीं, मृ = मरना)। अप्सु (अप् = व्याप्त होना, पालन करना, फैलना)। भेषजम् (भिषज् -चिकित्सा करना, उपचार करना)। अपाम् (अप = व्याप्त होना, पालन करना, फैलना)। उत (अव्यय, निपात)। प्रशस्तिषु (प्र = प्रकृष्ट, अधिक, शस्-शंस् - प्रशंसा करना, हिंसा करना, मारना, दुःख देना)। अश्वाः (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। भवत (भू = होना)। वाजिनः (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना)। देवीः (दिव् - तेजस्वी होना)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। यः (सर्वनाम)। वः (सर्वनाम)। ऊर्मिः (उर् = जाना, चलना, उरु = गतिशील)। प्रतूर्तिः (प्र = प्रकृष्ट, अधिक, तुर् -त्वरा करना, शीघ्रता से जाना)। ककुन्मान् (कक् = गर्व करना)। वाजसाः (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। तेन (सर्वनाम)। अयम् (सर्वनाम)। वाजम् (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। सेत् (सि - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)।6 ।।

363. वातो वा मनो वा, गन्धर्वाः सप्तविंशतिः।ते अग्रे अश्वरम् अयुञ्जन्, ते अस्मिन् जवम् आ अदधुः ।7 ।।

संहितापाठ

वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः।तेऽअग्रेऽश्वमयुञ्जँस्तेऽअस्मिन् जवमादधुः ।7 ।।

मन्त्रार्थ :- वातो - वात, गतिशील, सुखी, सेवा-भावीवा - अथवा, मनो - मन, वा - अथवा, गन्धर्वाः - गन्धर्व, सप्तविंशतिः - सत्ताईस। ते - वे, उन्होंने, अग्रे - आगे, अश्वरम् - अश्वर को, अयुञ्जन् - युक्त किया। ते - वे, उन्होंने, अस्मिन् - इसमें, जवम् - जव को, आ - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, अदधुः - धारण किया।। 7 ।।

भावार्थ :- वात हो, मन हो, अथवा सत्ताईस गन्धर्व हों, उन्होंने अश्वर को आगे युक्त किया। उन्होंने जव को सम्यक रूप से, पूर्णतः धारण किया। वात का अर्थ है, गतिशील, सुखी, सेवा-भावी। मन का अर्थ है मनन करने वाला, विचारशील। गन्धर्व का अर्थ है, गतिशीलता, विद्वता को धारण करने वाले। मन् धातु के बहुत अर्थ हैं। गन्धर्व शब्द भी अनेकार्थी हैं। सत्ताईस संख्या विचारणीय है। अश्वर का अर्थ है, तीव्र गति युक्त, व्यापक। विविध गुणों से युक्त जनों ने अश्वर अर्थात् व्यापकता तथा तीव्र गति को आगे नियुक्त किया तो जव अर्थात् तीव्र गति को धारण किया।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- वातः (वात - सुखी होना, आनन्द करना, सेवा करना, जाना, वा - गति करना, बहना, पवन की भाँति चलना)। वा (अव्यय)। मनः (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। गन्धर्वाः (गम् + धृ, गम् = जाना, जानना,

पाना, धृ = धारण करना)। सप्तविंशतिः (संख्या)। अग्रे (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, ग्रहण करना, गु - शब्द करना, गम् - जाना)। अश्वरम् (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। अयुञ्जन् (यु - बांधना, बन्धन करना, गूंथना)। ते (सर्वनाम)। अस्मिन् (सर्वनाम)। जवम् (जु - जाना, जल्दी जाना, भागना)। आ (उपसर्ग)। अदधुः (दध धारणे - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)।।7।।

364. वातरंहा भव वाजिन् युज्यमान, इन्द्रस्येव दक्षिणः श्रिया एधि।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्व-वेदस, आ ते त्वष्टा पत्सु जवम् दधातु।।8।।

संहितापाठ

वातरꣳहा भव वाजिन् युज्यमानऽइन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि।युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदसऽआ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु।8।।

मन्त्रार्थ :- वातरंहा - वातगति वाला, भव - हो, वाजिनः - बलवान्, वेगवान्, गतिशील, युज्यमानः - युक्त करने वाले, इन्द्रस्य - इन्द्र के, परम ऐश्वर्यवान् के, इव - समान, दक्षिणः - दक्षिण, श्रिया - श्री, श्रेय, एधि - बढ़ों, बढ़ाओ, प्राप्त करो। युञ्जन्तु - युक्त करो, त्वा - तुमको, मरुतो - मरुत, विश्व-वेदस - सब कुछ जानने वाले, आ - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, ते - तुम्हारा, त्वष्टा - त्वष्टा, पत्सु - ऐश्वर्यों में, जवम् - जव को, दधातु - धारण करे।।8।।

भावार्थ :- वात गति वाले बनो और बलवान् इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् के समान श्रेय प्राप्त करो। परमात्मा का उपासक उसके सत्य स्वरूप को जानकर, उसमें अवस्थित होकर उसके समान हो जाता है। कहना चाहिए, तद्-रूप हो जाता है। वात गति का आशय तीव्र के साथ ही सुखपूर्वक गति भी है। आनन्द में अवस्थित होकर जीवन में प्रगति करता है तथा अन्ततः परमात्मा में लीन होकर तदाकार, तद्-रूप हो जाता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- वातरंहा (वात् = सुखी होना, सेवा करना, जाना)। भव (भू-भव् - होना)। वाजिनः (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना)। युज्यमानः (युज् - जुड़ना, मिलाप करना, एकत्र करना)। इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। इव (अव्यय)। दक्षिणः (दक्ष् - बढ़ना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना, दक्ष होना, दक्ष - चलना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, मार डालना)। श्रिया (श्रि = सेवा करना, श्रेय होना, श्री होना)। एधि (एध - बढ़ना)। युञ्जन्तु (यु - बांधना, बन्धन करना, गूंथना)। त्वा (सर्वनाम)। मरुतो (मृ = मरना)। विश्व-वेदस (विश्व = सभी, विद् = जानना)। आ (उपसर्ग)। ते (सर्वनाम)। त्वष्टा (त्वक्ष् = छीलना, रेतना, त्विष् = प्रकाशित होना)। पत्सु (पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना, पाना, नीचे गति करना)। जवम् (जु - जाना, जल्दी जाना, भागना)। दधातु (दध धारणे - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)।8।।

सरेलपाठ

365. जवो यः ते वाजिन् निहितो गुहा, यः श्येने परीत्तो अचरत् च वाते।
तेन नो वाजिन् बलवान्, बलेन वाजजित् च भव, समने च पारयिष्णुः।
वाजिनो वाजजितो वाजम् सरिष्यन्तो, बृहस्पतेः भागम् अव जिघ्रत।। 9।।

संहितापाठ

जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तोऽअचरच्च वाते।तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः।वाजिनो वाजजितो वाजꣳसरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत।9।।

मन्त्रार्थ :- जवो - जव, यः - जो, ते - तुम्हारा, वाजिन् - बलवान्, वेगवान्, गतिशील, निहितो - निहित, गुहा - गुहा, यः - जो, श्येने - श्येन में, परीत्तो - परिगत, परितः ऐश्वर्यवान्, परितः प्रकाशित, अचरत् - आचरण किया, च - और, वाते - वात में। तेन - उसके द्वारा, नो - हमारा, वाजिन् - बलवान्, वेगवान्, गतिशील, बलवान् - बलवान, बलेन - बल द्वारा, वाजजित् - वाज को जीतने वाला, च - और, भव - हो, समने - समानता में, समन में, समान मन वाले में, च और, पारयिष्णुः - पार जाने वाले। वाजिनो - बलवान्, वेगवान्, गतिशील, वाजजितो - वाज को जीतने वाला, वाजम्

- वाज को, सरिष्यन्तो - जाने वाले, बृहस्पतेः - बृहस्पति के, भागम् - भाग को, अव-जिघ्रत - आघ्राण करो, सूँघो।। 9।।

भावार्थ :- उपासना से प्राप्त सद्गुणों, दिव्य प्रकाश में अवस्थित होकर सांसारिक परिस्थितियों अथवा साधारण अनुभूति से पार जाकर बृहस्पति अर्थात् परमात्मा के भाग अथवा सेवा की अनुभूति को प्राप्त करने का सन्देश है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- जवो (जु - जाना, जल्दी जाना, भागना)। यः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। वाजिन् (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना, तैयार करना)। निहितः (नि - नितराम्, निश्चित, हि - जाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना)। गुहा (गुह् - आच्छादन करना, छिपाना, ढकना, गति करना, जाना, जानना, हिंसा करना)। श्येने (श्यै - जाना)। परीत्तो (परि = ओर, इ - जाना, जानना, पाना, इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। अचरत् (चर् = जाना, खाना, आचरण करना)। च (अव्यय)। वाते (वा = जाना, जानना, पाना, गन्ध लेना)। तेन (सर्वनाम)। नः (सर्वनाम)। वाजिन् (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना, तैयार करना)। बलवान् (बल - प्राण होना, बलयुक्त होना या करना, स्पष्ट करना)। बलेन (बल - प्राण होना, बलयुक्त होना या करना, स्पष्ट करना)। वाजजित् (वाज् = जानना, जाना, पहुँचना, पाना, तैयार करना, जि - जीतना)। च (अव्यय)। भव (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। समने (सम् = समान होना, न घबराना, परिणाम् होना)। पारयिष्णुः (पार - पार होना, कार्य पूर्ण करना)। वाजिनो (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना)। वाजजितो (वाज् = जाना, जानना, तैयार करना, जि = जीतना)। वाजम् (वाज् = जाना, जानना, तैयार करना)। सरिष्यन्तो (सृ = जाना, जानना, पाना, पहुंचना)। बृहस्पतेः (बृह् = बढ़ना)। भागम् (भज् = सेवा करना, दान करना, भोजन पकाना)। अव-जिघ्रत (जिघ्र - गन्ध लेना, गन्ध ग्रहण करना, सूँघना, जि - सर्वोत्कर्ष से रहना, सब से बढ़ के होना, जीतना, पराभव करना, जिघ्र् - प्रकाश करना, नाश करना)।9।।

366. देवस्य अहम् सवितुः सवे, सत्यसवसो बृहस्पतेः, उत्तमम् नाकम् रुहेयम्।
देवस्य अहम् सवितुः सवे, सत्यसवस इन्द्रस्य, उत्तमम् नाकम् रुहेयम्।
देवस्य अहम् सवितुः सवे, सत्यप्रसवसो बृहस्पतेः, उत्तमम् नाकम् अरुहम्।
देवस्य अहम् सवितुः सवे, सत्यप्रसवस इन्द्रस्य, उत्तमम् नाकम् अरुहम्।।10।।

संहितापाठ

देवस्याहꣳसवितुः सवे सत्यसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकꣳरुहेयम्।देवस्याहꣳसवितुः सवे सत्यसवसऽइन्द्रस्योत्तमं नाकꣳरुहेयम्।देवस्याहꣳसवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकमरुहम्।देवस्याहꣳसवितुः सवे सत्यप्रसवसऽइन्द्रस्योत्तमं नाकमरुहम्।।10।।

मन्त्रार्थ :- अहम् = मै, देवस्य = देव का। सवितुः = उत्पन्न करने वाला, अद्भुत सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यवान् के, सवे = उत्पत्ति में, सृजन में, सृष्टि में, ऐश्वर्य में, सत्यसवसो - सत्य ऐश्वर्य वाले, बृहस्पतेः - बृहस्पति के, उत्तमम् - उत्तम, नाकम् - नाक को, रुहेयम् - आरोहण करुँ। अहम् = मै, देवस्य = देव का। सवितुः = उत्पन्न करने वाला, अद्भुत सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यवान् के, सवे = उत्पत्ति में, सृजन में, सृष्टि में, ऐश्वर्य में, सत्यसवसो - सत्य ऐश्वर्य वाले, इन्द्रस्य - इन्द्र का, उत्तमम् - उत्तम, नाकम् - नाक को, रुहेयम् - आरोहण करुँ। अहम् = मैने, देवस्य = देव का। सवितुः = उत्पन्न करने वाला, अद्भुत सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यवान् के, सवे = उत्पत्ति में, सृजन में, सृष्टि में, ऐश्वर्य में, सत्यसवसो - सत्य ऐश्वर्य वाले, बृहस्पतेः - बृहस्पति के, उत्तमम् - उत्तम, नाकम् - नाक को, अरुहम् - आरोहण किया। अहम् = मै, देवस्य = देव का। सवितुः = उत्पन्न करने वाला, अद्भुत सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यवान् के, सवे = उत्पत्ति में, सृजन में, सृष्टि में, ऐश्वर्य में, सत्यप्रसवस - सत्य प्रकृष्ट ऐश्वर्य वाले, इन्द्रस्य - इन्द्र का, उत्तमम् - उत्तम, नाकम् - नाक को, अरुहम् - आरोहण किया।। 10।।

भावार्थ :- भावना है कि मै उत्पन्न करने वाले, अद्भुत सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यवान् परमात्मा की सृष्टि में, उसके ऐश्वर्य में, अर्थात् ईशत्व या अनुशाकन में उत्तम, नाक अर्थात् अक रहित, अकुटिल, अविचल, अविनाशी अवस्था को आरोहण

अर्थात् प्राप्त करूँ। परमात्मा के विविध दिव्य गुणों का स्मरण करते हुए उस स्थिति का भी उल्लेख किया गया है कि जब साधक ने वहाँ आरोहण कर लिया है, उस अवस्था को प्राप्त कर लिया है।

विशेष :- नाक शब्द का अर्थ है, अक रहित, अकुटिल, अविचल, अविनाशी। न अर्थात् नहीं। वेद में न का प्रयोग उपसर्ग की भाँति भी हुआ है। यह वैदिक भाषा की विशेषता है कि उपसर्ग बहुधा स्वतन्त्र शब्द के रूप में भी प्रयोग होते हैं तथा धातु के पूर्व जुड़कर भी प्रयोग होते हैं। अक् धातु का अर्थ है जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क -नाश होना।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। अहम् (सर्वनाम)। सवितुः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। सवे (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। सत्यसवसो (सत् = सत्य होना, अस्तित्व होना, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। बृहस्पतेः (बृह - बढ़ना, अधिकं होना)। उत्तमम् (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। नाकम् (न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क -नाश होना)। रुहेयम् (रुह् - बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना, आ-रुह् - आरोहण करना, चढ़ना)। इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। उत्तमम् (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। नाकम् (न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क -नाश होना)। रुहेयम् (रुह् - बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना, आ-रुह् - आरोहण करना, चढ़ना)। अरुहम् (रुह् - बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना, आ-रुह् - आरोहण करना, चढ़ना)।।10।।

(93) सूक्त 3

367. बृहस्पते वाजम् जय, बृहस्पतये वाचम् वदत, बृहस्पतिम् वाजम् जापयत।
इन्द्र वाजम् जय इन्द्राय वाचम् वदत, इन्द्रम् वाजम् जापयत।।11।।

संहितापाठ

बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं वदत बृहस्पतिं वाजं जापयत।इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजं जापयत।।11।।

मन्त्रार्थ :- बृहस्पते - हे बृहस्पति, वाजम् - वाज को, जय - जीतो, बृहस्पतये - बृहस्पति के लिए, वाचम् - वाणी को, वदत - बोलो। बृहस्पतिम् - बृहस्पति को, वाजम् - वाज को, जापयत - जप कराओ, कहलाओ। इन्द्र - हे इन्द्र, वाजम् - वाज को, जय - जीतो, इन्द्राय - इन्द्र के लिए, वाचम् - वाणी को, वदत - बोलो। इन्द्रम् - इन्द्र को, वाजम् - वाज को, जापयत - जप कराओ, कहलाओ।। 11।।

भावार्थ :- इसमें कहा गया है कि वाज को जीतो, वाणी बोलो, वाज का जाप कराओ। वाज का अर्थ है विद्या, गति, बल। बल का कारक होने से अन्न को भी वाज कहा गया है। वाज को जीतने के साथ वाणी, वचन बोलने का उल्लेख होने से वाज का अर्थ ज्ञान, विद्या प्रमुख है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- बृहस्पते (बृह् - बोलना, अधिक होना, बढ़ना, वृद्धि होना)। वाजम् (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना, तैयार करना)। जय (जि - सर्वोत्कर्ष से रहना, सब से बढ़ के होना, जीतना, पराभव करना)। बृहस्पतये (बृह - बढ़ना, अधिक होना)। बृहस्पतिम् (बृह् - बोलना, अधिक होना, बढ़ना, वृद्धि होना)। जापयत (जप - स्पष्ट बोलना, जपना, जप करना, मन में बोलना)। इन्द्र (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। इन्द्राय (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। वाचम् (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। वदत (वद् - कहना, स्पष्ट कहना, समझाना)। इन्द्रम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)।। 11।।

368. एषा वः सा सत्या संवाक् अभूत् यया, बृहस्पतिम् वाजम् अजीजपत, अजीजपत,
बृहस्पतिम् वाजम् वनस्पतयो वि मुच्यध्वम्।
एषा वः सा सत्या संवाक् अभूत् यया, इन्द्रम् वाजम् अजीजपत, अजीजपत,

इन्द्रम् वाजम् वनस्पतयो वि मुच्यध्वम् ॥12॥

संहितापाठ

एषा वः सा सत्या संवागभूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम्। एषा वः सा सत्या संवागभूद्ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम्॥12॥

मन्त्रार्थ :- एषा - यह, वः - तुम्हारा, सा - वह, सत्या - सत्य, संवाक् - सम्यक् वाक्, अभूत् - हुआ, यया - जिससे, बृहस्पतिम् - बृहस्पति को, वाजम् - वाज को, अजीजपत - जप किया, अजीजपत - जप किया, बृहस्पतिम् - बृहस्पति को, वाजम् - वाज को, वनस्पतयो - वनस्पतियाँ, वि मुच्यध्वम् - विमोचित करो, मुक्त करो। एषा - यह, वः - तुम्हारा, सा - वह, सत्या - सत्य, संवाक् - सम्यक् वाक्, अभूत् - हुआ, यया - जिससे, इन्द्रम् - इन्द्र को, वाजम् - वाज को, अजीजपत - जप किया, अजीजपत - जप किया, इन्द्रम् - इन्द्र को, वाजम् - वाज को, वनस्पतयो - वनस्पतियाँ, वि मुच्यध्वम् - विमोचित करो, मुक्त करो॥ 12॥

भावार्थ :- सत्य संकल्प पूर्ण हुआ, सम्यक् वाणी स्तय हुई। वनस्पतियों को मुक्त करो। वनों के पालक, रक्षक, वाणी के पालक-रक्षक, वाणी के ऐश्वर्य को मुक्त करो। मुक्त करने में ही वास्तव में वाणी का ऐश्वर्य है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- एषा (सर्वनाम)। वः (सर्वनाम)। सा (सर्वनाम)। सत्या (सत् = सत्य होना, अस्तित्व होना)। संवाक् (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति, उपसर्ग, वच्-वद् = बोलना)। अभूत् (भू = होना)। यया (सर्वनाम)। बृहस्पतिम् (बृह् - बोलना, अधिक होना, बढ़ना, वृद्धि होना)। वाजम् (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना, तैयार करना)। अजीजपत (जप् - स्पष्ट बोलना, जपना, जप करना, मन में बोलना)। वनस्पतयो (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना)। वि मुच्यध्वम् (वि = विशेष, विना, विलोम, मुच् - छोड़ना, द्रव्यादि देना, प्रसन्न होना)।॥12॥

369. देवस्य अहम् सवितुः सवे, सत्यप्रसवसो बृहस्पतेः, वाजजितो वाजम् जेषम्।
वाजिनो वाजजितो, अध्वन स्कभ्नुवन्तो, योजना मिमानाः काष्ठाम् गच्छत॥13॥

संहितापाठ

देवस्याहꣳसवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाजजितो वाजं जेषम्। वाजिनो वाजजितोऽध्वन स्कभ्नुवन्तो योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत।॥13॥

मन्त्रार्थ :- अहम् = मै, देवस्य = देव का। सवितुः = उत्पन्न करने वाला, अद्भुत सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यवान् के, सवे = उत्पत्ति में, सृजन में, सृष्टि में, ऐश्वर्य में, सत्यप्रसवस - सत्य प्रकृष्ट ऐश्वर्य वाले, बृहस्पतेः - बृहस्पति के, वाजजितो - वाज को जीतने वाला, वाजम् - वाज को, जेषम् - जीते। वाजिनो - बलवान्, वेगवान्, गतिशील, वाजजितो - वाज को जीतने वाला, अध्वन - मार्ग का, स्कभ्नुवन्तो - मान करते हुए, स्थापित करते हुए, योजना - युक्त करने वाला, मिमानाः - मापते हुए, काष्ठाम् - काष्ठा को, गच्छत - जाओ॥ 13॥

भावार्थ :- भावना है कि मै उत्पन्न करने वाले, अद्भुत सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यवान् परमात्मा की सृष्टि में, सत्य ऐश्वर्य वाले बृहस्पति परमात्मा के ऐश्वर्य में, अर्थात् ईशत्व या अनुशासन में मार्ग बनायें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। अहम् (सर्वनाम)। सवितुः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। सवे (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। सत्यप्रसवसो (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, सत् = सत्य होना, अस्तित्व होना, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। बृहस्पतेः (बृह् - बोलना, अधिक होना, बढ़ना, वृद्धि होना)। वाजजितः (वाज् = जाना, जानना, तैयार करना, जि = जीतना)। वाजम् (वाज् = जाना, जानना, तैयार करना)। जेषम् (जि = जीतना, विजयी होना)। वाजिनः (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना)। अध्वन (अधु = चलना, विचरण करना)। स्कभ्नुवन्तः (स्कभि-स्कम्भ् - रोकना, प्रतिबन्ध करना, मूर्ख होना, पागल होना, मतिमन्त होना)। योजना (युज् = युक्त करना, जोड़ना)। मिमानाः (मा - मापना, मान करना)। काष्ठाम् (कास्-काश् = चमकना, प्रकाश करना)। गच्छत (गच्छ् - जाना)।॥13॥

370. एषः स्य वाजी क्षिपणिम् तुरण्यति, ग्रीवायाम् बद्धो अपिकक्षे आसनि।

क्रतुम् दधिक्रा अनु सम् सनिष्यदत्, पथाम् अङ्कासि अनु आपनीफणत् ॥14॥

संहितापाठ

एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धोऽअपिकक्षऽआसनि। क्रतुं दधिक्राऽअनु सꣳसनिष्यदत्पथामङ्कास्यन्वापनीफणत् स्वाहा ॥14॥

मन्त्रार्थ :- एषः - यह, स्य - वह, बन्धन, वाजी = बल, गति, विद्या युक्त, क्षिपणिम् - क्षिपणि को, फेंकने वाले को, तुरण्यति - भगाता है, ग्रीवायाम् - ग्रीवा में, बद्धो - बद्ध, बँधा हुआ, अपि - भी, कक्षे - कक्ष में, आसनि - है। क्रतुम् - क्रतु को, दधिक्रा - दधिक्रा, अनु - पीछे, सम् - सम्यक्, सनिष्यदत् = सेवा। पथाम् - पथ को, अङ्कासि - अंकन करते हो, अनु - पीछे, आपनीफणत् - गया, प्राप्त किया॥ 14॥

भावार्थ :- विद्या बल से फेंकने वाले को भगाता है, ग्रीवा बँधी होने पर भी सम्यक् सेवा के मार्ग पर अपने पद-चिह्न अंकित कर देता है। वह साधक, उपासक अपनी साधना, प्रयासों के अनु अर्थात् पीछे अपने लक्ष्य को प्राप्त कर ही लेता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- एषः (सर्वनाम)। स्यः (स्यः = वह, सर्वनाम, सि - बन्धन होना)। वाजी (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना)। क्षिपणिम् (क्षिप् - फेंकना, उड़ाना, भेजना। झोंकना, रखना, धरना, मार डालना, दोष लगाना, नष्ट करना)। तुरण्यति (तुर् = शीघ्रता करना)। ग्रीवायाम् (गृ = सींचना, समझना, जानना, निगलना, शब्द करना, बोलना, समझाना, बताना)। बद्धो (बद् - निश्चल होना, स्थिर होना, स्वस्थ रहना, बध्-बन्ध् - बाँधना, बद्ध करना, मारना, वध करना)। अपि (अव्यय)॥ कक्षे (कक्ष् - धारण करना, घर्षण करना)। आसनि (अस् - होना, सन् - सेवा करना)। क्रतुम् (कृ = करना)। दधिक्राः (दध् - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। अनु (उपसर्ग)। सम् (उपसर्ग)। सनिष्यदत् (सन् - दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना)। पथाम् (पथ - जाना, फेंकना, त्यागना)। अङ्कासि (अङ्क् - चिह्न करना, गिनना, निन्दा करना, टहलना, गोद में लेना)। आपनीफणत् (पन - प्रशंसा करना, स्तुति करना, फण् - गति करना, चलना)।॥14॥

371. उत स्म अस्य द्रवतः तुरण्यतः, पर्णम् न वेः अनु वाति प्र-गर्द्धिनः।
श्येनस्य इव ध्रजतो अङ्कसम्, परि दधि-क्राव्णः सह ऊर्जा तरित्रतः ॥15॥

संहितापाठ

उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः। श्येनस्येव ध्रजतोऽङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा ॥15॥

मन्त्रार्थ :- अस्य - इसका, द्रवतः - बहते हुए, जाते हुए, उत - ही, स्म - था। तुरण्यतः - भागते हुए, वेः = बनाते हो, जानते हो, व्याप्त होते हो, गतिमान का, उड़ने वाले के, पर्णम् न - पर्ण के समान, श्येनस्य - श्येन के, इव - समान, ध्रजतो - जाते हुए, अङ्कसम् - चिह्नों को, अंकनों को, परि - परितः, दधि-क्राव्णः - धारण करने वाले के, सह - साथ, ऊर्जा - ऊर्जा, बल, तरित्रतः तरित्र से, तरने वाले से, पार करने वाले से, प्र - प्रकृष्ट, अधिक, गर्द्धिनः - आशावान्, इच्छुक, लालची, अनु - पीछे, वाति - जाता है॥ 15॥

भावार्थ :- साधना-उपासना की आध्यात्मिक ऊर्जा से साधक स्वयम् को उड़ता हुआ अनुभव करता है। यह योग-साधना की स्थिति भी है तथा सामान्य जीवन में तनाव-मुक्त होकर सहज, सरल जीवन जीने की अनुभूति भी है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- उत (अव्यय)। स्म (अस् - होना)। अस्य (सर्वनाम)। द्रवतः (द्रु - चलना, बहना, जाना)। तुरण्यतः (तुरण - जल्दी जाना, त्वरा करना)। पर्णम् न (पर्ण - हरा करना, हरा होना, पृण् - ले जाना, आनन्द करना, न = समान)। वेः (वे = बुनना, वी = जाना, व्यापना, जानना, पाना)। अनु (उपसर्ग)। वाति (वा = जाना, जानना, पाना, गन्ध लेना)। प्र (उपसर्ग)। गर्द्धिनः (गृ - सींचना, गीला करना)। श्येनस्य (श्यै - जाना)। इव (अव्यय)। ध्रजतो (ध्रज - जाना, स्थानान्तर होना)। अङ्कसम् (अङ्क् = चिह्न करना, गिनना, गोद में लेना)। परि (उपसर्ग)। दधि-क्राव्णः - धारण करने वाले के (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना, कृ - करना, क्रेव् - सेवन करना)। सह (सर्वनाम)। ऊर्जा

(ऊर्ज् = ऊर्जा होना, बल होना)। तरित्रतः (तृ - तैरना)।॥15॥

(94) सूक्त 4

372. शम् नो भवन्तु वाजिनो, हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः।
जम्भयन्तो अहिम् वृकम् रक्षांसि, सनेमि अस्मत् युयवन् अमीवाः॥16॥

संहितापाठ

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः। जम्भयन्तोऽहि वृकꣳरक्षासि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः॥16॥

मन्त्रार्थ :- शम् = कल्याण, शान्ति, नो = हमारा, भवन्तु भवन्तु = हों, हो जायें। हवेषु - आह्वान में, वाजिनो = बल, गति, विद्या युक्त, देवताता - देवत्व युक्त, मितद्रवः - परिमित द्रवण वाले, स्वर्काः - शब्द करने वाले, सुन्दर अर्क वाले, रक्षांसि - रक्षक, अहिम् - अहि को, वृकम् - वृक को, जम्भयन्तो - जम्भन करते हुए, नाश करते हुए, सनेमि - देते हैं, अस्मत् - हमसे, अमीवाः - रोग को, युयवन् - पृथक् करते हैं॥16॥

भावार्थ :- हमारा कल्याण हो, यह हम सभी चाहते हैं। इसके लिए हमें मित्रद्रव होना है। प्रवाह आवश्यक है, गति महत्वपूर्ण है, परन्तु व्यर्थ की भाग-दौड़ से कोई लाभ नहीं होता है। उचित विधि से सीमित प्रयासों से भी अधिक लाभ मिल सकता है। हानिकारक तत्वों को तथा रोग को दूर रखना है तथा लक्ष्य को प्राप्त करना है। व्यापक भावना उत्तम है, परन्तु अनावश्यक व्यर्थ का फैलाव हानिकारक हो सकता है। अपने विचारों को, प्रयासों को केन्द्रित रखना चाहिए। वृक् का अर्थ है लेना। यह दान का विपरीत है। सब कुछ स्वयम् लेने की प्रवृत्ति उचित नहीं है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- शम् (शम् = कल्याण करना, शान्त करना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना)। नः (सर्वनाम)। भवन्तु (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। वाजिनो (वाज् = जाना, जानना, तैयार करना)। हवेषु (हु = आदान-प्रदान करना, खाना, ह्वे - आह्वान करना, बुलाना)। देवताता (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। मितद्रवः (द्रु - चलना, बहना, जाना, मि - प्रक्षेपण करना, फेंकना, फैलाना)। स्वर्काः (स्वृ = शब्द करना, सु - अच्छा, सुन्दर, उत्तम, अर्क् - प्रकाशित होना, चमकना, तपना, लेना)। जम्भयन्तो (जभि-जम्भ् नाश करना, नष्ट करना)। अहिम् (अहि-अंह् - जाना, प्रकाशित होना, चमकना, व्यापक होना, फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, अर्पण करना, समर्पण करना)। वृकम् (वृक - लेना, मान्य करना, स्वीकार करना)। रक्षांसि (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। सनेमि (सन - देना, दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना)। अस्मत् (सर्वनाम, अपादान, बहुवचन)। युयवन् (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, पृथक् पृथक् करना)। अमीवाः (अम् = शब्द करना, बोलना, सेवा करना, खाना, जाना, जानना, पाना, रोग होना)।॥16॥

373. ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवम्, विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः।
सहस्रसाः मेधसाता सनिष्यवो, महो ये धनम् समिथेषु जभ्रिरे॥17॥

संहितापाठ

ते नोऽअर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः। सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धनꣳसमिथेषु जभ्रिरे।॥17॥

मन्त्रार्थ :- ते - वे, नो - हमारे, अर्वन्तो - अर्वन्त, गतिशील, हवनश्रुतो - आह्वान सुनने वाले, हवम् - दान को, आह्वान को, विश्वे - सभी, शृण्वन्तु - सुनें। वाजिनो = बल, गति, विद्या युक्त, मितद्रवः - परिमित द्रवण वाले, सीमित गतियुक्त, सहस्रसाः - सहस्रों, मेधसाता - मेधसात्, मेधावी, सनिष्यवो - सेवा-भावी, महो - महान्, पूज्य, ये - जो, धनम् - धन को, समिथेषु - समिथों में, जभ्रिरे - जभन किया॥17॥

भावार्थ :- परमात्मा हमारे दान-आह्वान को सुनता है। मेधावी पूज्य वही है जो धन को सेवा में, समान विभाग करने में, लोगों की चिन्ता को रोकने में नष्ट करता है, व्यय करता है। सम् धातु में समानता, समान विभाग करना के साथ ही न घबराना, घबराने न देना का भाव भी है। जभ-जभि-जम्भ धातु का अर्थ नाश करना, नष्ट करना है। जनहित में, अच्छे उद्देश्य के लिए धन का उपयोग करते समय कृपणता न हो, उसके नष्ट होने, समाप्त हो जाने की चिन्ता न हो, इस भावना

पर बल देने के लिए ही जभ् धातु का प्रयोग किया गया है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- ते (सर्वनाम)। नः (सर्वनाम)। अर्वन्तः (अर्व - गति करना, हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, सताना)। हवनश्रुतो (हु = देना, आदान-प्रदान करना, खाना, ह्वे - आह्वान करना, बुलाना)। हवम् (हु = देना, आदान-प्रदान करना, खाना, ह्वे - आह्वान करना, बुलाना)। विश्वे (सर्वनाम)। शृण्वन्तु (श्रु-शृण् = सुनना)। वाजिनः (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना)। मितद्रवः (द्रु - चलना, बहना, जाना, मि - प्रक्षेपण करना, फेंकना, फैलाना, अनुसरण करना)। सहस्रसाः (सहस्र = हजार)। मेधसाता (मेध - मेधा होना, हिंसा करना, समझना, जानना, दुःख देना, एकत्र करना, सङ्गति करना, मेल करना)। सनिष्यवो (सन् - दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना)। महो (मह् - महान होना, पूज्य होना, बड़ा होना)। ये (सर्वनाम)। धनम् (धन - उत्पन्न करना, फलना, बौर लगना)। समिथेषु (सम् = समान होना, समान विभाग करना, न घबराना, परिणाम होना)। जभ्रिरे (जभि-जम्भ् - नाश करना, नष्ट करना)।॥17॥

374. वाजेवाजे अवत वाजिनो नो, धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वम्, तृप्ता यात पथिभिः देवयानैः॥18॥

संहितापाठ

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्राऽअमृताऽऋतज्ञाः।अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पृथिभिर्देवयानैः॥18॥

मन्त्रार्थ :- वाजेवाजे - सभी वाजों में, अवत - रक्षा करो, वाजिनो = बल, गति, विद्या युक्त, नो - हमारा, धनेषु - धनों में, विप्रा - विप्र, विशेष पूर्ण करने वाले, अमृता - अमृत, ऋतज्ञाः - ऋत-ज्ञाता। अस्य - इसका, मध्वः - मधुर, पिबत - पीओ, पान करो, मादयध्वम् - आनन्द करो, तृप्ता - तृप्त, यात - जाओ, पथिभिः - मार्गों द्वारा, देवयानैः - देव-यानों द्वारा॥ 18॥

भावार्थ :- वाज अर्थात् विद्या, गति, बल, वेग। वाज् धातु का अर्थ है बल होना, गति करना, जानना, पाना, तैयार करना। वाजेवाजे अर्थात् सभी वाजों में, सभी विद्याओं में, विद्या-बल सम्बन्धी सभी कार्यों में परमात्मा हमारी रक्षा करता है। वह धनों में विप्र अर्थात् विशेष रूप से पूर्ण करने वाला है, अमृत है, ऋत-ज्ञाता है। वास्तव में परमात्मा के लिए इन गुणों का स्मरण करना अपने लिए ही उपयोगी है। हम इन गुणों को धारण करें तो इसके माधुर्य का पान कर सकते हैं तथा तृप्त, आनन्दित होकर दिव्य यानों द्वारा दिव्य पथ पर चल सकते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- वाजेवाजे (वाज् = जाना, जानना, तैयार करना)। अवत (अव् = रक्षा करना)। वाजिनो (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना, तैयार करना)। नः (सर्वनाम)। धनेषु (धन - उत्पन्न करना, पैदा करना, फलना, बौर लगना)। विप्राः (वि = विशेष, प्रा -पूर्ण करना, भरना)। अमृताः (अ - नहीं, मृ = मरना)। ऋतज्ञाः (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। अस्य (सर्वनाम)। मध्वः (मध्-मधु = मीठा होना)। पिबत (पी-पिब् - पीना, पान करना, पि = गति करना, जाना, जानना, पाना)। मादयध्वम् (मद् = तृप्त करना, हर्षित होना)। तृप्ता (तृप् - तृप्त होना, प्रसन्न होना, तृप्त करना, प्रसन्न करना)। यात (या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। पथिभिः (पथ् - जाना, स्थानान्तर करना)। देवयानैः (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)।॥18॥

375. आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यात्, आ इमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे।
आ मा गन्ताम् पितरा मातरा च, आ मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात्।
वाजिनो वाजजितो वाजम् ससृवांसो, बृहस्पतेः भागम् अव जिघ्रत निमृजानाः॥19॥

संहितापाठ

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे।आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमोऽअमृतत्वेन गम्यात्॥वाजिनो वाजजितो वाजꣳससृवांसो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः॥19॥

मन्त्रार्थ :- आ = सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, मा - मुझको, वाजस्य - वाज का, प्रसवो - उत्पन्न करने वाला, जगम्यात् - जाये, आ = सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, इमे - यह, द्यावापृथिवी - द्यावा और पृथिवी, विश्वरूपे। - विश्व रूप वाले, आ = सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, मा - मुझको, गन्ताम् - जायें, पितरा - पितर, मातरा - माता, च - और, आ =

सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, मा - मुझको, सोमो - सोम, अमृतत्वेन - अमरता से, गम्यात् - जाये। वाजिनो - बलवान्, वेगवान्, गतिशील, वाजजितो - वाज को जीतने वाला, वाजम् - वाज को, ससृवांसो = गतिशील, बृहस्पतेः - बृहस्पति के, भागम् - भाग को, अव-जिघ्रत - आघ्राण करो, सूँघो, निमृजानाः - मार्जन करने वाले।। 19।।

भावार्थ :- हमारे जीवन का परम लक्ष्य परमात्मा की अनुभूति करना तो है ही, संसार में रहते हुए व्यावहारिक जीवन तथा कर्तव्यों का निर्वहन भी महत्वपूर्ण है। माता-पिता, पृथ्वी-आकाश आदि का भी समुचित सम्मान, संरक्षण-पोषण करना है। इसके लिए वाज अर्थात् विद्या, वेग, गति आदि प्राप्त करना, वाजजित् होना भी महत्वपूर्ण है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- आ (उपसर्ग)। मा-माम् (सर्वनाम)। वाजस्य (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना, तैयार करना)। प्रसवो (प्र - प्रकृष्ट, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। जगम्यात् (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। इमे (नपुंसक लिंग, स्त्री लिंग)। द्यावापृथिवी (द्यु = आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। विश्वरूपे (विश्व = सभी, रूप् - रूप बनाना)। गन्ताम् (गम् = जाना, जानना, पाना)। पितरा (पि - जाना, जानना, पाना, पा = पालन करना)। मातरा (मा - मान करना)। च (अव्यय)। सोमः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। अमृतत्वेन (अ - नहीं, मृ = मरना)। गम्यात् (गम् = जाना)। वाजिनो (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना, तैयार करना)। वाजजितः (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना, वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वी - जाना, जानना, पाना, व्याप्त होना, इच्छा करना, आक्रमण करना, घेरना, भेजना, खाना, वे - बुनना, रचना करना, सृजन करना)। वाजम् (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना, तैयार करना)। ससृवांसो (सृ = गति करना, जानना)। बृहस्पतेः (बृह् - बोलना, अधिक होना, बढ़ना, वृद्धि होना)। भागम् (भज् = सेवा करना, दान करना, भोजन पकाना)। अव (अव् - रक्षा करना)। अव-जिघ्रत (जिघ्र - गन्ध लेना, गन्ध ग्रहण करना, सूँघना)। निमृजानाः (नि = निश्चित, मृज् = मार्जन करना, स्वच्छ करना, शुद्ध करना)।।19।।

(95) सूक्त 5

376. आपये स्वाहा स्वापये स्वाहा, अपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा,
वसवे स्वाहा अहर्पतये स्वाहा, अह्ने मुग्धाय स्वाहा, मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा,
विनंशिन आन्त्यायनाय स्वाहा, आन्त्याय भौवनाय स्वाहा,
भुवनस्य पतये स्वाहा, अधिपतये स्वाहा।। 20 ।।

संहितापाठ

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳ शिनाय स्वाहा विनꣳशिनऽआन्त्यानाय स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा।।20 ।।

मन्त्रार्थ :- आपये = व्याप्त, व्यापक का पालन, पूर्ण करने वाले के लिए। स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, स्वापये स्वाहा, अपिजाय - अपिज के लिए, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, क्रतवे - क्रतु के लिए, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, वसवे - वसु के लिए, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, अहर्पतये - अहर्पति के लिए, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, अह्ने - अह्न के लिए, मुग्धाय - मुग्ध के लिए, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, मुग्धाय - मुग्ध के लिए, वैनंशिनाय - वैनंशिन के लिए, विनाशशील के लिए, विद्वान्, कान्तिमान् को तीक्ष्ण करने वाले के लिए, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, विनंशिने - वैनंशिन के लिए, विनाशशील के लिए, विद्वान्, कान्तिमान् को तीक्ष्ण करने वाले के लिए, आन्त्यायनाय - आन्त्यायन के लिए, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, आन्त्याय - आन्त्य के लिए, भौवनाय - भौवन के लिए, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, भुवनस्य - भुवन के, पतये - पति के लिए, ऐश्वर्य के लिए, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, अधिपतये - अधिपति के लिए, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता।। 20।।

भावार्थ :- विभिन्न सद्गुणों, दिव्य गुणों तथा दिव्य शक्तियों के लिए व्यापकता की कामना की गयी है। दिव्यता सर्वत्र व्यापक हो, यही भावना है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- आपये (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना, पय् = बहना, गति करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। स्वापये (स्व = अपना, आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना, पय् = बहना, गति करना)। वसवे (वस् = निवास करना, स्नेह करना)। अहर्पतये (अह् = व्याप्त होना, पत् - ऐश्वर्य होना, श्रीमान् होना, शक्तिमान होना)। अह्ने (अह् = व्याप्त होना)। मुग्धाय (मुह् - मोहना, मोहित होना, मुग्ध होना)। वैनंशिनाय (वेन - मिलाना, अलग करना, रक्षा करना, जाना, समझना, जानना, स्मरण करना, सारासार विचार करना, तारतम्य देखना, वाद्य यन्त्र बजाना, बाजा हाथ में लेना, वि - विशेष, नश् - नष्ट होना, शि - तीक्ष्ण करना, पैना करना, पतला करना)। विनंशिने (वेन - मिलाना, अलग करना, रक्षा करना, जाना, समझना, जानना, स्मरण करना, सारासार विचार करना, तारतम्य देखना, वाद्य यन्त्र बजाना, बाजा हाथ में लेना, वि - विशेष, नश् - नष्ट होना, शि - तीक्ष्ण करना, पैना करना, पतला करना)। आन्त्यायनाय (अन्त् - अन्त होना, समाप्त होना, बाँधना, पाना, हिंसा करना, अद् -खाना, अन् - प्राणवान् होना, जीवन होना, श्वास लेना, अय् - जाना, चलना, जानना, पाना, ध्वनि करना)। भौवनाय (भू = होना)। भुवनस्य (भू = होना)। पतये (पत् - ऐश्वर्य होना, श्रीमान् होना, शक्तिमान होना)। अधिपतये (अधि = उपसर्ग, पत् - ऐश्वर्य होना, श्रीमान् होना, शक्तिमान होना)।।20।।

377. आयुः यज्ञेन कल्पताम्, प्राणो यज्ञेन कल्पताम्, चक्षुः यज्ञेन कल्पताम्, श्रोत्रम् यज्ञेन कल्पताम्, पृष्ठम् यज्ञेन कल्पताम्, यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। प्रजापतेः प्रजा अभूम, स्वः देवा अगन्म अमृता अभूम।।21।।

संहितापाठ

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताश्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्।प्रजापतेः प्रजाऽअभूम स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूम।।21।।

मन्त्रार्थ :- आयुः - आयु, यज्ञेन - यजन द्वारा, कल्पताम् - कल्पित हों, प्राणो - प्राण, यज्ञेन - यजन द्वारा, कल्पताम् - कल्पित हों, चक्षुः - चक्षु, नेत्र, यज्ञेन - यजन द्वारा, कल्पताम् - कल्पित हों, श्रोत्रम् - श्रोत्र, कर्ण, यज्ञेन - यजन द्वारा, कल्पताम् - कल्पित हों, पृष्ठम् - पृष्ठ, यज्ञेन - यजन द्वारा, कल्पताम् - कल्पित हों, यज्ञो - यजन, यज्ञेन - यजन द्वारा, कल्पताम् - कल्पित हों। प्रजापतेः - प्रजापति का, प्रजा - प्रजा, अभूम - हुआ, स्वः - स्वः, सृजन, ऐश्वर्य, देवा - देवगण, अगन्म - गये, प्राप्त किया, अमृता - अमृत, अभूम - हुआ।। 21।।

भावार्थ :- वैदिक संस्कृति में यजन का विशेष महत्व है। यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान व्यावहारिक वैदिक समाज के प्रमुख मार्गदर्शक सिद्धान्त हैं तथा कर्तव्य भी। हमारा जीवन यजनमय होना चाहिए। सब कुछ यजन से ही कल्पित होना चाहिए। कल्पताम् का अर्थ है कल्पना करें, बनायें, रचना करें। कल्प् धातु का अर्थ कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : - आयुः (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। यज्ञेन (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। कल्पताम् (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। प्राणः (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, अन् - प्राण होना, जीवन होना)। यज्ञेन (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। चक्षुः (चक्ष् - देखना)। श्रोत्रम् (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। पृष्ठम् (पृष् - प्रोक्षण करना, सींचना, सहन करना, समर्थ होना)। यज्ञो (यज्ञ = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। प्रजापतेः (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, पत् - श्रीमान् होना, शक्तिमान् होना)। प्रजा (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। अभूम (भू - होना)। स्वः (स्वर् = शब्द करना, सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। देवाः (दिव्

= तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। अगन्म (गम् = जाना, जानना, पाना)। अमृताः (अ - नहीं, मृ = मरना)।।21।।

378. अस्मे वो अस्तु इन्द्रियम्, अस्मे नृम्णम् उत क्रतुः, अस्मे वर्चांसि सन्तु वः।
नमो मात्रे पृथिव्यै, नमो मात्रे पृथिव्या, इयम् ते राट् यन्ता असि, यमनो ध्रुवो असि धरुणः।
कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा, रय्यै त्वा पोषाय त्वा।।22।।

संहितापाठ

अस्मे वोऽअस्त्विन्द्रियमस्वे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चासि सन्तु वः।नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्याऽइयं ते राड्यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः।कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा।।22।।

मन्त्रार्थ :- अस्मे - हमारे लिए, वो - तुम्हारा, अस्तु - हो, इन्द्रियम् - इन्द्रिय, ऐश्वर्य, अस्मे - हमारे लिए, नृम्णम् - नर, ले जाने वाले को, उत - ही, क्रतुः क्रतु, कर्मशील, अस्मे - हमारे लिए, वर्चांसि - प्रकाश, सन्तु - हों, वः - तुम्हारा। नमो - नमन, मात्रे - माता, पृथिव्यै - पृथ्वी के लिए, नमो - नमन, मात्रे - माता, पृथिव्या - पृथ्वी के लिए, इयम् - यह, ते - तुम्हारा, राट् - वाणी, राज, प्रकाश, दान, यन्ता - यमन करने वाले, नियन्त्रण करने वाले, पोषण करने वाले, असि - हो, यमनो - नियमन करने वाले, ध्रुवो - ध्रुव, असि - हो, धरुणः - धारक। कृष्यै - कृषि के लिए, त्वा - तुमको, क्षेमाय - क्षेम के लिए, त्वा - तुमको, रय्यै - रयि के लिए, त्वा - तुमको, पोषाय - पोषण के लिए, त्वा - तुमको।। 22।।

भावार्थ :- परमात्मा का ऐश्वर्य, प्रकाश आदि गुण हमें भी प्राप्त हो। माता पृथ्वी को नमन करते हैं। पृथ्वी पर कृषि द्वारा हमारा भरण-पोषण होता है। अतः यह राज्य, प्रकाश, दान पृथ्वी के लिए, पृथ्वी की कृषि के लिए है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अस्मे (सर्वनाम)। वः (सर्वनाम)। अस्तु (अस् = होना)। इन्द्रियम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। नृम्णम् (नृ - नृ - ले जाना)। उत (अव्यय, निपात)। क्रतुः (कृ = करना)। वर्चांसि (वर्च् = प्रकाशित होना)। सन्तु (अस् - होना)। नमः (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। मात्रे (मा = मान करना, मापना)। पृथिव्यै (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना)। पृथिव्या (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना)। इयम् (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। राट् (रट् = बोलना, सम्भाषण करना, राज् - प्रकाशित होना, रा - दान करना)। यन्ता (यम् = यमन करना, नियमन करना, रोकना, स्वाधीन रखना, पोषण करना)। असि (अस् - होना)। यमनः (यम - स्वाधीन रखना, काबू में रखना, पोषण करना, खाने को देना)। ध्रुवो (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना)। धरुणः (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना)। कृष्यै (कृष् = खींचना, रेखा खींचना, हल खींचना)। त्वा (सर्वनाम)। क्षेमाय (क्षि - निवास करना, जाना, जानना, पाना, क्षेम् = कल्याण होना)। रय्यै (रय् = जाना, जानना, पाना)। पोषाय (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना)।। 22।।

(96) सूक्त 6

379. वाजस्य इमम् प्रसवः सुषुवे अग्रे, सोमम् राजानम् ओषधीषु अप्सु।
ता अस्मभ्यम् मधुमतीः भवन्तु, वयम् राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।।23।।

संहितापाठ

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳराजानमोषधीष्वप्सु।ताऽअस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳराष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा।।23।।

मन्त्रार्थ :- वाजस्य = विद्या का, वेग का, गति का, इमम् - यह, इसको, प्रसवः - उत्पन्न करने वाला, अग्रे - आगे, पहले, सोमम् - सोम को, राजानम् - राजा को, ओषधीषु - ओषधियों में, अप्सु - अपों में, सुषुवे - उत्पन्न करे। ता - वे, अस्मभ्यम् - हमारे लिए, मधुमतीः - मधुमती, मधुरता युक्त, भवन्तु - हो, वयम् - हम, पुरोहिताः - पुरोहित, पहले हित करने वाले, राष्ट्रे - राष्ट्र में, जागृयाम - जागते हैं, जाग्रत रहते हैं। 23।।

भावार्थ :- सबसे पहले सोम को उत्पन्न करने की कामना की गयी है। सोम का अर्थ है ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता। सोम शब्द सु तथा सू धातु से निष्पन्न होता है, इसका अर्थ है उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत

सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना। सू धातु का अर्थ है प्रेरणा देना। अतः सोम शब्द में ये सभी अर्थ समाहित है। इसीलिए सोम को महत्वपूर्ण माना गया है। सोम परमात्मा का वाचक भी है। सोम ओषधियों में, अपों में अर्थात् पालकों में राजा है, प्रमुख है, प्रकाश स्वरूप है। यह सब कुछ हमारे लिए है और इसलिए है क्योंकि हम पुरोहित हैं अर्थात् पहले समाज का हित करने वाले हैं। हम राष्ट्र में जाग्रत रहते हैं अर्थात् राष्ट्र-हित सदैव सक्रिय रहते हैं। राष्ट्र शब्द रट् तथा राज् धातुओं से निष्पन्न होता है। अतः राष्ट्र शब्द का अर्थ वाणी, राज्य, प्रकाश, दान होता है। रट् धातु का अर्थ बोलना, सम्भाषण करना तथा राज् धातु का अर्थ प्रकाशित होना, प्रकाशित करना होता है। इसके साथ ही राष्ट्र शब्द में रा धातु का अर्थ दान करना भी निहित है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- वाजस्य (वाज् = जाना, जानना, तैयार करना)। इमम् (सर्वनाम)। प्रसवः (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। सुषुवे (सु = अच्छा, सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। अग्रे (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। सोमम् (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। राजानम् (राज् = चमकना, प्रकाशित-शोभित होना)। ओषधीषु (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। अप्सु (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना)। ताः (सर्वनाम)। अस्मभ्यम् (सर्वनाम)। मधुमतीः (मध्-मधु = मीठा होना)। भवन्तु (भू - होना)। वयम् (सर्वनाम)। राष्ट्रे (रट् = बोलना, सम्भाषण करना, राज् - प्रकाशित होना, रा - दान करना)। जागृयाम (जागृ - जगना, नींद न लेना)। पुरोहिताः (पुर् = मुख्य होना, अग्रसर होना, हि - जाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना)।।23।।

380. वाजस्य इमाम् प्रसवः शिश्रिये दिवम्, इमा च विश्वा भुवनानि सम्राट्।
अदित्सन्तम् दापयति प्रजानन्, स नो रयिम् सर्व वीरम् नि यच्छतु।।24।।

संहितापाठ

वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट्।अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिꣳसर्ववीरं नियच्छतु स्वाहा।।24।।

मन्त्रार्थ :- वाजस्य = विद्या का, वेग का, गति का, इमाम् = इसको, प्रसवः = उत्पन्नकर्ता, शिश्रिये = श्री, शोभा, सेवा की, आश्रय किया, दिवम् - दिव को, इमा - यह, च - और, विश्वा - सभी, भुवनानि - भुवन, सम्राट् = सम्यक् वाणी, सम्यक् शोभा, सम्यक् प्रकाश। अदित्सन्तम् - अक्षय दानी को, दापयति - दिलाता है, प्रजानन् - जानते हुए, स - वह, नो - हमारा, रयिम् - रयि को, सर्व - सब, वीरम् - वीर को, नि यच्छतु - प्रदान करे।।24।।

भावार्थ :- गति, ज्ञान का उत्पन्नकर्ता परमात्मा ही सभी भुवनों का सम्राट् है। वह अक्षय दानी को दिलाता है। वह सब कुछ जानता है, उत्पन्नकर्ता है। उससे प्रार्थना है कि वह हमें रयि अर्थात् गति, ज्ञान, धन आदि के साथ ही सब प्रकार की वीरता भी प्रदान करे।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- वाजस्य (वाज् = जाना, जानना, तैयार करना)। इमाम् (सर्वनाम)। प्रसवः (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। शिश्रिये (श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण - पकाना, रांधना)। दिवम् (दिव् = प्रकाशित होना, स्तुति करना)। इमा (सर्वनाम)। च (अव्यय)। विश्वा (सर्वनाम)। भुवनानि (भू = होना)। सम्राट् (सम् - सम्यक्, रट् = बोलना, सम्भाषण करना, राज् = शोभित होना, प्रकाशित होना, चमकना)। अदित्सन्तम् (अद् = खाना, अ - नहीं, दी = नष्ट होना, ह्रास होना, क्षय होना, सन् - देना, दान करना)। दापयति (दा - देना)। प्रजानन् (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, ज्ञा-जा - जानना, जन् = उत्पन्न होना)। सः (सर्वनाम)। नः (सर्वनाम)। रयिम् (रय् = जाना, जानना, पाना,

पहुंचना)। सर्व (सर्वनाम)। वीरम् (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। नि (उपसर्ग)। यच्छतु (यच्छ = देना)।।24।।

381. वाजस्य नु प्रसव आ बभूव, इमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः।
सनेमि राजा परि याति विद्वान्, प्रजाम् पुष्टिम् वर्धयमानो अस्मे।।25।।

संहितापाठ

वाजस्य नु प्रसव आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः।सनेमि राजा परियाति विद्वान्प्रजां पुष्टिं वर्धयमानोऽअस्मे स्वाहा।25।।

मन्त्रार्थ :- वाजस्य = विद्या का, वेग का, गति का, नु - निश्चय ही, प्रसवः = उत्पन्नकर्ता, आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, बभूव - हुआ, इमा - ये, च - और, विश्वा - सभी, भुवनानि - भुवन, सर्वतः - सब से, सब प्रकार से। सनेमि - दाता, राजा - प्रकाशमान, विद्वान् - ज्ञाता, प्रजाम् - प्रजा को, पुष्टिम् - पुष्टि, पोषण, वर्धयमानो - बढ़ाता हुआ, अस्मे - हमारे लिए, परि - सब ओर, याति - जाता है।। 25।।

भावार्थ :- सृष्टिकर्ता ज्योति स्वरूप परमात्मा सब कुछ जानता है, वह हमारा पोषण करता है तथा सब ओर जाता है, अर्थात् उसकी गति-व्याप्ति सर्वत्र है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- वाजस्य (वाज् = जाना, जानना, तैयार करना)। नु (निपात, अव्यय)। प्रसवः (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू - प्रेरणा देना)। आ (उपसर्ग)। बभूव (भू = होना, प्राप्त होना)। इमा (सर्वनाम)। च (अव्यय)। विश्वा (सर्वनाम)। भुवनानि (भू = होना)। सर्वतः (सर्वनाम)। सनेमि (सन - देना, दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना)। राजा (राज् = चमकना, प्रकाशित शोभित होना)। परि (उपसर्ग)। याति (या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। विद्वान् (विद् = जानना)। प्रजाम् (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। पुष्टिम् (पुष् = पोषण करना, पालन करना, धारण करना)। वर्धयमानो (वृध् = बढ़ना)। अस्मे (सर्वनाम)।।25।।

382. सोमम् राजानम् अवसे, अग्निम् अन्वारभामहे।आदित्यान् विष्णुम् सूर्य्यम्, ब्राह्मणम् च बृहस्पतिम्।।26।।

संहितापाठ

सोमꣳराजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे।आदित्यान्विष्णुꣳसूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिस्वाहा।।26।।

मन्त्रार्थ :- अवसे - रक्षा के लिए, सोमम् - सोम को, राजानम् - राजा को, अग्निम् - अग्नि को, आदित्यान् - आदित्यों को, विष्णुम् - विष्णु को, सूर्य्यम् - सूर्य को, ब्राह्मणम् - ब्राह्मण को, बृहद् को, बड़े को, च - और, बृहस्पतिम् - बृहस्पति को, अन्वारभामहे - आह्वान करते हैं, पुकारते हैं।। 26।।

भावार्थ :- हम रक्षण-पालन के लिए परमात्मा को पुकारते हैं। उसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। अनेक नाम विशिष्ट गुणों के स्मरण के लिए हैं। आ-रभ् धातु के प्रायोग से कार्य आरम्भ करने का भाव प्रमुख है। कोई भी कार्य आरम्भ करते समय परमात्मा का स्मरण, आह्वान करना ही चाहिए।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सोमम् (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। राजानम् (राज् = चमकना, प्रकाशित-शोभित होना)। अवसे (अव् = रक्षा करना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना)। अन्वारभामहे (अनु = पश्चात्, पीछे, आ = सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, रभ् - आनन्दित होना, प्रसन्न होना, आ-रभ् -आरम्भ करना, आह्वान करना)। आदित्यान् (अ - नहीं, दी = क्षय होना, नष्ट होना, अद् = खाना)। विष्णुम् (विष् = व्याप्त होना)। सूर्य्यम् (सुर् = ऐश्वर्य, प्रकाश होना)। ब्राह्मणम् (बृह् = बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। च (अव्यय)। बृहस्पतिम् (बृह् - बोलना, अधिक होना, बढ़ना, वृद्धि होना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)।।26।।

383. अर्यमणम् बृहस्पतिम्, इन्द्रम् दानाय चोदय।वाचम् विष्णुम् सरस्वतीम्, सवितारम् च वाजिनम्॥27॥

संहितापाठ

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय।वाचं विष्णुꣳसरस्वतीसवितारं च वाजिनस्वाहा।27॥

मन्त्रार्थ :- अर्यमणम् - अर्यमण को, बृहस्पतिम् - बृहस्पति को, इन्द्रम् - इन्द्र को, वाचम् - वाणी को, विष्णुम् - विष्णु को, सरस्वतीम् - सरस्वती को, सवितारम् - सविता को, च - और, वाजिनम् - वाजिन को, दानाय - दान के लिए, चोदय - प्रेरित कीजिए॥ 27॥

भावार्थ :- देव शक्तियों को, प्रमुख लोगों को दान के लिए प्रेरित करना आवश्यक है। देने की भावना होना महत्वपूर्ण है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अर्यमणम् (ऋ - जाना, सम्पादन करना, प्राप्त करना, मिलाना, पहुँचाना, अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, मिलाना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, मण् - अस्पष्ट शब्द करना, कहना)। बृहस्पतिम् (बृह् - बोलना, अधिक होना, बढ़ना, वृद्धि होना)। इन्द्रम् (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। दानाय (दा - देना, दान करना)। चोदय (चुद् - प्रेरणा करना, पूछना, प्रश्न करना, प्रार्थना करना)। वाचम् (वद्-वच् - बोलना, कहना)। विष्णुम् (विष् = व्यापक होना)। सरस्वतीम् (सृ - जाना, जानना, पाना)। सवितारम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। च (अव्यय)। वाजिनम् (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना)॥27॥

384. अग्ने अच्छा वद् इह नः, प्रति नः सुमना भव।प्र नो यच्छ सहस्त्रजित्, त्वम् हि धनदा असि॥28॥

संहितापाठ

अग्नेऽअच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव।प्र नो यच्छ सहस्त्रजित् त्वꣳहि धनदाऽअसि स्वाहा।28॥

मन्त्रार्थ :- अग्ने = हे अग्नि!, अच्छा - अच्छा, स्वच्छ, निर्मल, वद् - बोलो, इह - यहाँ, नः - हमारे लिए, प्रति - प्रति, सम्मुख, नः हमारे, सुमना - सुमन वाले, सुन्दर मन वाले, भव - हो। प्र - प्रकृष्ट, अधिक, नो - हमारे लिए, यच्छ - दो, सहस्त्रजित् - सहस्त्रों को जीतने वाले, त्वम् - तुम, हि - ही, धनदा - धन देने वाले, असि - हो॥ 28॥

भावार्थ :- अग्नि परमात्मा ही विजेता तथा दाता है। वह हमारे अनुकूल हो तो सब अनुकूल होगा। यही भावना इसमें व्यक्त की गयी है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अग्ने (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना, पहुंचना, पाना)। अच्छा (अच्छ् - अच्छा होना, निर्मल करना)। वद (वद् - बोलना, कहना)। इह (सर्वनाम)। नः (सर्वनाम)। प्रति (उपसर्ग)। सुमना (सु = सुन्दर, अच्छा, मन् - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। भव (भू = होना)। प्र (उपसर्ग)। यच्छ (यच्छ = देना)। सहस्त्रजित् (सहस्त्र = हजार, जि - सर्वोत्कर्ष से रहना, सब से बढ़ के होना, जीतना, पराभव करना)। त्वम् (सर्वनाम)। हि (अव्यय)। धनदा (धन् - उत्पन्न करना, फलना, बौर लगना)। असि (अस् - होना)।28॥

385. प्र नो यच्छतु अर्य्यमा, प्र पूषा प्र बृहस्पतिः।प्र वाक् देवी ददातु नः॥29॥

संहितापाठ

प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र पूषा प्र बृहस्पतिः।प्र वाग्देवी ददातु नः स्वाहा।29॥

मन्त्रार्थ :- प्र = अधिक, नो - हमारे लिए, यच्छतु - प्रदान करे, अर्य्यमा - अर्यमा,प्र = अधिक, पूषा - पोषण करने वाला, प्र = अधिक, बृहस्पतिः - बृहस्पति। प्र = अधिक, वाक् - वाणी, देवी - देवी, दिव्य शक्ति, ददातु - प्रदान करे, नः - हमारे लिए॥ 29॥

भावार्थ :- उपासना से परमात्मा की अनुभूति होने पर परमात्मा से हमें बहुत अनुदान प्राप्त होता है। विभिन्न नामों से परमात्मा की ही स्तुति की गयी है। विभिन्न नामों, गुणों को परमात्मा की दिव्य शक्तियाँ भी माना जाता है जो हमें अनेक अनुदान प्रदान करती हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- प्र = अधिक (उपसर्ग)। नः = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। यच्छतु - प्रदान करे

(यच्छ = देना)। अर्य्यमा - अर्यमा (ऋ - जाना, सम्पादन करना, प्राप्त करना, मिलाना, पहुँचाना, अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, मिलाना, महत्व दिखाना, हिंसा करना)। पूषा - पोषण करने वाला (पुष् = पुष्ट करना, पोषण करना)। बृहस्पतिः = विराट, महान् (बृह् - बोलना, अधिक होना, बढ़ना, वृद्धि होना)। वाक् = वाणी (वद्-वच् - बोलना, कहना)। देवी = दिव्यगुणयुक्त। {दिव् = प्रकाशित होना, स्तुति करना}। ददातु - प्रदान करे (दा-दद् - दान करना, देना, त्याग करना)।।29।।

386. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुः यन्त्रिये दधामि, बृहस्पतेः त्वा साम्राज्येन अभि सिञ्चामि असौ।।30।।

संहितापाठ

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ।30।।

मन्त्रार्थ :- देवस्य - देव को, **सवितुः** - उत्पन्न करने वाला (परमात्मा), **त्वा** - तुम्हें, **अश्विनोः** - व्यापक (फैले हुए), **बाहुभ्याम्** - बाहुओं से, **पूष्णो** - पोषण करने वाले, **हस्ताभ्याम्** - हाथों से, **प्रसवे** - उत्पन्न करे। सरस्वत्यै - सरस्वती के लिए, वाचो - वाणी, यन्तुः - यन्तु, नियमन, यन्त्रिये - यन्त्रियों के लिए, दधामि - धारण करता हूँ। त्वा - तुमको, बृहस्पतेः - बृहस्पति के, साम्राज्येन - साम्राज्य से, प्रकाश से, अभि - सब ओर से, सिञ्चामि - सींचता हूँ, अभिसिञ्चन करता हूँ, असौ - यह, ऐसा।। 30।।

भावार्थ :- देव का जनक (परमात्मा) तुमको व्यापक भुजाओं के लिए, पोषक हाथों के लिए उत्पन्न करता है। वह तुमको भी इन्ही गुणों से युक्त उत्पन्न करे। परमात्मा देवों को उत्पन्न करने वाला है। परमात्मा ने देव शक्तियों, सूर्य आदि दिव्यताओं को उत्पन्न किया है। इस बात का स्मरण कराते हुए कहा गया है कि हमारा जीवन व्यापक भुजाओं तथा पोषक हाथों के लिए है। अर्थात् हमारे कार्यों में व्यापकता होनी चाहिए। कर्म समाज का पोषण करने वाले होने चाहिए। यन्तु तथा यन्त्रिये शब्दों में यम्, यन्, यन्त्र धातुओं के अर्थ समाहित माने जाने चाहिए। उद्धार, नियमन, प्रेरणा, नाश, आवरण, नियन्त्रण आदि अर्थ इन शब्दों में स्वीकार्य हैं।। 30।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। त्वा (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। **प्रसवे** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **अश्विनोः** (अशु = व्यापक होना)। **बाहुभ्याम्** (बह, बाहु - भुजायाम्, चलना, बहना)। **पूष्णो** (पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। **हस्ताभ्याम्** (हस्त - लेना, आदान करना, दान करना, ग्रहण करना)। **सरस्वत्यै** (सृ - जाना, सरकना, जानना, पाना, बहना, चलना, स - साथ, सहित, रस् - स्वाद लेना, प्रीति करना, शब्द करना)। **वाचो** (वच् = बोलना)। **यन्तु** (यम् = रोकना, स्वाधीन रखना, पोषण करना)। **यन्त्रिये** (यम् = रोकना, स्वाधीन रखना, पोषण करना)। **दधामि** (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **बृहस्पतेः** (बृह् = बढ़ना)। **साम्राज्येन** (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति, उपसर्ग, राज् = चमकना, प्रकाशित, शोभित होना)। **अभिसिञ्चामि** (अभि = सभी ओर, सिञ्च् - सिञ्चन करना)। **असौ** (असौ - यह, ऐसा, सर्वनाम, अव्यय, अस् = फेंकना, बिखेरना, उड़ाना, अस् = होना)।। 30।।

(97) सूक्त 7

387. अग्निः एक अक्षरेण प्राणम्, उत् अजयत् तम् उत् जेषम्,
अश्विनौ द्वि अक्षरेण द्विपदो मनुष्यान्, उत् अजयताम् तान् उत् जेषम्,
विष्णुः त्रि अक्षरेण त्रीन् लोकान्, उत् अजयत् तान् उत् जेषम्,
सोमः चतुरक्षेण चतुष्पदः पशून्, उत् अजयत् तान् उत् जेषम्।।31।।

संहितापाठ

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत्तमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रींल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषꣳसोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम्।31।।

मन्त्रार्थ :- अग्निः - अग्नि, एक - एक, अक्षरेण - अक्षर से, प्राणम् - प्राण को, उत् - उच्च, अजयत् - जीता, तम् - उसको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ, अश्विनौ - अश्विनों ने, द्वि - दो, अक्षरेण - अक्षर से, द्विपदो - द्विपद वाले, मनुष्यान् - मनुष्यों को, उत् - उच्च, अजयताम् - जीता, तान् उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ, विष्णुः विष्णुः ने, त्रि - तीन, अक्षरेण - अक्षर से, त्रीन् - तीन, लोकान् - लोकों को, उत् - उच्च, अजयत् - जीता, तान् - उनको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ, सोमः - सोम ने, चतुः - चार, अक्षरेण - अक्षर से, चतुष्पदः - चार पद वाले, पशून् - पशुओं को, उत् - उच्च, अजयत् - जीता, तान् - उनको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ॥ 31॥

भावार्थ :- अग्नि, विष्णु, सोम जैसे दिव्य गुणों से युक्त दिव्य शक्तियों ने छोटे-छोटे मन्त्रों को जानकर जैसे प्रकृति की शक्तियों पर विजय प्राप्त की, उसी प्रकार हम भी कर सकते हैं, इस तथ्य को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। प्रकृति के नियम सदा-सर्वदा एक समान रहते हैं। यदि पहले कभी कोई किसी कार्य को कर सका है तो हम भी वैसा कर सकते हैं, यही सार्वभैम शाश्वत प्राकृतिक नियम है। यही वेद-वर्णित ऋत सिद्धान्त है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अग्निः (अग् = जाना, जानना, पाना, आगे जाना, ऊर्ध्वगति करना, तेजस्वी होना)। एक (संख्या)। अक्षरेण (अ - नहीं, अक्ष् - खेलना, देखना, व्याप्त होना, एकत्र होना, क्षर् - टपकना, झरना, चूना, गिरना, हिलना, गिराना, हिलाना, ढहाना, गलना, अनुपयुक्त होना, बहना)। प्राणम् (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, अन् - प्राण होना, जीवन होना)। उत् (अव्यय, निपात)। अजयत् (जि - जीतना, जय करना, अज - जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना)। तम् (सर्वनाम)। जेषम् (जि = जीतना, विजयी होना)। अश्विनौ (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। द्वि (द्वि - दो)। अक्षरेण (अ - नहीं, अक्ष् - खेलना, देखना, व्याप्त होना, एकत्र होना, क्षर् - टपकना, झरना, चूना, गिरना, हिलना, गिराना, हिलाना, ढहाना, गलना, अनुपयुक्त होना, बहना)। द्विपदो (द्वि = दो, पद् - जाना, चलना, स्थानान्तर करना)। मनुष्यान् (मन् - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। अजयताम् (जि - जीतना, जय करना, अज - जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना)। तान् (सर्वनाम)। जेषम् (जि = जीतना, विजयी होना)। विष्णुः (विष् = व्याप्त होना)। त्रि (त्रि = तीन)। अक्षरेण (अ - नहीं, अक्ष् - खेलना, देखना, व्याप्त होना, एकत्र होना, क्षर् - टपकना, झरना, चूना, गिरना, हिलना, गिराना, हिलाना, ढहाना, गलना, अनुपयुक्त होना, बहना)। त्रीन् (त्रि = तीन)। लोकान् (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। अजयत् (जि - जीतना, जय करना, अज - जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना)। सोमः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। चतुः (चतुः = चार)। अक्षरेण (अ - नहीं, अक्ष् - खेलना, देखना, व्याप्त होना, एकत्र होना, क्षर् - टपकना, झरना, चूना, गिरना, हिलना, गिराना, हिलाना, ढहाना, गलना, अनुपयुक्त होना, बहना)। चतुष्पदः (चतुः = चार, पद् - जाना, चलना, स्थानान्तर करना)। पशून् (पश् = देखना)। अजयत् (जि - जीतना, जय करना, अज - जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना)।।31॥

388. पूषा पञ्च अक्षरेण पञ्च दिश, उत् अजयत् ता उत् जेषम्,
सविता षड् अक्षरेण षड् ऋतून्, उत् अजयत् तान् उत् जेषम्,
मरुतः सप्त अक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशून्, उत् अजयन् तान् उत् जेषम्,
बृहस्पतिः अष्ट अक्षरेण गायत्रीम्, उत् अजयत् ताम् उत् जेषम्॥32॥

संहितापाठ

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिशऽउदजयत्ताऽउज्जेषꣳसविता षडक्षरेण षडृतूनुदजयत्तानुज्जेषं मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयँस्तानुज्जेषं बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम्॥32॥

मन्त्रार्थ :- पूषा - पूषा ने, पञ्च - पाँच, अक्षरेण - अक्षर से, पञ्च - पाँच, दिशः - दिशाओं को, उत् - उच्च, अजयत् - जीता, ता - उनको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ, सविता - सविता ने, षड् - छह, अक्षरेण - अक्षर से। षड् - छह, ऋतून् - ऋतुओं को, उत् - उच्च, अजयत् - जीता, तान् - उनको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ, मरुतः - मरुतों ने, सप्त - सात, अक्षरेण - अक्षर से, सप्त - सात, ग्राम्यान् - ग्राम्य,

पशून् - पशुओं को, उत् - उच्च, अजयन् - जीता, तान् - उनको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ, बृहस्पतिः - बृहस्पति ने, अष्ट - आठ, अक्षरेण - अक्षर से, गायत्रीम् - गायत्री को, उत् - उच्च, अजयत् - जीता, ताम् - उसको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ।। 32 ।।

भावार्थ :- दिव्य गुणों से युक्त दिव्य शक्तियों ने छोटे-छोटे मन्त्रों को जानकर जैसे प्रकृति की शक्तियों पर विजय प्राप्त की, उसी प्रकार हम भी कर सकते हैं, इस तथ्य को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- पूषा (पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। पञ्च (संख्या)। अक्षरेण (अ - नहीं, अक्ष् - खेलना, देखना, व्याप्त होना, एकत्र होना, क्षर् - टपकना, झरना, चूना, गिरना, हिलना, गिराना, हिलाना, ढहाना, गलना, अनुपयुक्त होना, बहना)। दिशः (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना)। अजयत् (जि - जीतना, जय करना, अज - जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना)। ताः (सर्वनाम)। उत् (अव्यय, उपसर्ग)। जेषम् (जि = जीतना, विजयी होना)। सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। षड् (संख्या)। ऋतून् (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। मरुतः (मृ = मरना)। सप्त (संख्या)। ग्राम्यान् (ग्राम - बुलाना, बुद्धिपूर्वक कहना, एकत्र होना)। पशून् (पश् = देखना)। अजयन् (जि - जीतना, जय करना, अज - जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना)। बृहस्पतिः (बृह् = बढ़ना)। अष्ट (संख्या)। अक्षरेण (अ - नहीं, अक्ष् - खेलना, देखना, व्याप्त होना, एकत्र होना, क्षर् - टपकना, झरना, चूना, गिरना, हिलना, गिराना, हिलाना, ढहाना, गलना, अनुपयुक्त होना, बहना)। गायत्रीम् (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)।32 ।।

389. मित्रो नव अक्षरेण त्रिवृतम् स्तोमम्, उत् अजयत् तम् उत् जेषम्,
वरुणो दश अक्षरेण विराजम्, उत् अजयत् ताम् उत् जेषम्,
इन्द्र एकादश अक्षरेण त्रिष्टुभम्, उत् अजयत् ताम् उत् जेषम्,
विश्वे देवा द्वादश अक्षरेण जगतीम्, उत् अजयन् ताम् उत् जेषम्।। 33 ।।

संहितापाठ

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतस्तोममुदजयत्तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्रऽएकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषं विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम्।33 ।।

मन्त्रार्थ :- मित्रो - मित्र, नव - नव, अक्षरेण - अक्षर से, त्रिवृतम् - त्रिवृत, स्तोमम् - स्तोम को, उत् - उच्च, अजयत् - जीता, तम् - उनको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ, वरुणो - वरुण ने, दश - दश, दस, अक्षरेण - अक्षर से, विराजम् - विराज को, उत् - उच्च, अजयत् - जीता, ताम् - उनको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ, इन्द्र - इन्द्र ने, एकादश - ग्यारह, अक्षरेण - अक्षर से, त्रिष्टुभम् - त्रिषटुभ को, उत् - उच्च, अजयत् - जीता, ताम् - उनको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ, विश्वे - सभी, देवा - देवों ने, द्वादश - बारह, अक्षरेण - अक्षर से, जगतीम् - जगती को, उत् - उच्च, अजयन् - जीता, ताम् - उनको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ।। 33 ।।

भावार्थ :- दिव्य गुणों से युक्त दिव्य शक्तियों ने छोटे-छोटे मन्त्रों को जानकर जैसे प्रकृति की शक्तियों पर विजय प्राप्त की, उसी प्रकार हम भी कर सकते हैं, इस तथ्य को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- मित्रः (मिद् - स्नेह करना)। नव (संख्या)। अक्षरेण (अ - नहीं, अक्ष् - खेलना, देखना, व्याप्त होना, एकत्र होना, क्षर् - टपकना, झरना, चूना, गिरना, हिलना, गिराना, हिलाना, ढहाना, गलना, अनुपयुक्त होना, बहना)। त्रिवृतम् (त्रि = तीन, वृत् = रहना, होना, वर्ताव करना, पसन्द करना, ठहराना, निश्चित करना, सेवा करना, सेवक होना, चाकरी करना, चमकना, बोलना)। स्तोमम् (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना, आत्मश्लाघा करना, मुंह देख के बोलना)। उत् (अव्यय)। अजयत् (जि - जीतना, जय करना, अज - जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना)। तम् (सर्वनाम)। जेषम् (जि = जीतना, विजयी होना)। वरुणः (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। दश (संख्या)। विराजम् (राज् = प्रकाशित होना, शोभित होना,

चमकना)। इन्द्रः (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। एकादश (संख्या)। त्रिष्टुभम् (त्रि = तीन, स्तु = स्तुति करना, प्रशंसा करना)। विश्वे = विश्व में, सभी में (सर्वनाम)। देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। द्वादश (संख्या)। जगतीम् (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। अजयन् (जि - जीतना, जय करना, अज - जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना)।33 ॥

390. वसवः त्रयोदश अक्षरेण त्रयोदशम् स्तोमम्, उत् अजयन् तम् उत् जेषम्,
रुद्राः चतुर्दश अक्षरेण चतुर्दशम् स्तोमम्, उत् अजयन् तम् उत् जेषम्।
आदित्याः पञ्चदश अक्षरेण पञ्चदशम् स्तोमम्, उत् अजयन् तम् उत् जेषम्,
अदितिः षोडश अक्षरेण षोडशम् स्तोमम्, उत् अजयत् तम् उत् जेषम्,
प्रजापतिः सप्तदश अक्षरेण सप्तदशम् स्तोमम्, उत् अजयत् तम् उत् जेषम्॥34॥

संहितापाठ

वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशस्तोममुदजयँस्तमुज्रेषꣳ रुद्राश्चुर्दशाक्षरेण चतुर्दशस्तोममुदजयँस्तमुज्रेषमादित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशस्तोममुदजयँस्तामुज्रेषमदितिः षोडशाक्षरेण षोडशस्तोममुदजयत्तमुज्रेषं प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशꣳस्तोममुदजयत्तमुज्रेषम्।34॥

मन्त्रार्थ :- वसवः - वसुओं ने, त्रयोदश - तेरह, अक्षरेण - अक्षर से, त्रयोदशम् - तेरह, स्तोमम् - स्तोम को, स्तुतियों को, उत् - उच्च, अजयन् - जीता, तम् - उसको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ। रुद्राः - रुद्रों ने, चतुर्दश - चौदह, अक्षरेण - अक्षर से, चतुर्दशम् - चौदह, चौदहवें, स्तोमम् - स्तोम को, स्तुतियों को, उत् - उच्च, अजयन् - जीता, तम् - उसको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ। आदित्याः - आदित्यों ने, पञ्चदश - पन्द्रह, अक्षरेण - अक्षर से, पञ्चदशम् - पन्द्रह, पन्द्रहवें, स्तोमम् - स्तोम को, स्तुतियों को, उत् - उच्च, अजयन् - जीता, तम् - उसको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ। अदितिः - अदिति ने, षोडश - सोलह, अक्षरेण - अक्षर से, षोडशम् - सोलह, सोलहवें, स्तोमम् - स्तोम को, स्तुतियों को, उत् - उच्च, अजयन् - जीता, तम् - उसको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ। प्रजापतिः - प्रजापति ने, सप्तदश - सत्तरह, अक्षरेण - अक्षर से, सप्तदशम् - सत्तरह, सत्तरहवें, स्तोमम् - स्तोम को, स्तुतियों को, उत् - उच्च, अजयन् - जीता, तम् - उसको, उत् - उच्च, जेषम् - जीतूँ, जय करूँ, वशीभूत करूँ॥ 34॥

भावार्थ :- दिव्य गुणों से युक्त दिव्य शक्तियों ने छोटे-छोटे मन्त्रों को जानकर जैसे प्रकृति की शक्तियों पर विजय प्राप्त की, उसी प्रकार हम भी कर सकते हैं, इस तथ्य को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- वसवः (वस् = निवास करना, दया-प्रीति करना, वसु = निश्चल होना, निःछल होना)। त्रयोदश (संख्या)। अक्षरेण (अ - नहीं, अक्ष् - खेलना, देखना, व्याप्त होना, एकत्र होना, क्षर् - टपकना, झरना, चूना, गिरना, हिलना, गिराना, हिलाना, ढहाना, गलना, अनुपयुक्त होना, बहना)। त्रयोदशम् (संख्या)। स्तोमम् (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। उत् (अव्यय)। अजयन् (जि - जीतना, जय करना, अज - जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना)। तम् (सर्वनाम)। जेषम् (जि = जीतना, विजयी होना)। रुद्राः (रुद् = रुदन करना, रुलाना)। चतुर्दश (संख्या)। चतुर्दशम् (संख्या)। स्तोमम् (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। आदित्याः (अ = नहीं, दी = क्षय होना, नष्ट होना, अद् = खाना)। पञ्चदश (संख्या)। अदितिः (अद् = खाना, अ - नहीं, दी = नष्ट होना)। षोडश (सोलह)। षोडशम् (षोडश - सोलह)। प्रजापतिः (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, जन् = उत्पन्न होना, पत् - ऐश्वर्य होना)। सप्तदश (संख्या)। सप्तदशम् (संख्या)॥ 34॥

391. एष ते निः ऋते भागः तम् जुषस्व स्वाहा, अग्नि-नेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरः-सद्भ्यः स्वाहा,
यम-नेत्रेभ्यो देवेभ्यः दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा, विश्वदेव-नेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चातसद्भ्यः स्वाहा,
मित्रावरुण-नेत्रेभ्यो वा मरुत्-नेत्रेभ्यो वा, देवेभ्य उत्तरासद्भ्यः स्वाहा, सोम-नेत्रेभ्यो देवेभ्य,
उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा॥35॥

संहितापाठ

एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्यऽउत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्यऽउपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ॥35॥

मन्त्रार्थ :- निः ऋते - हे निर्ऋते, निः ऋते, ऋत का निर्वहन करने वाले, एष - यह, ते - तुम्हारा, भागः - भाग, तम् - उसको, जुषस्व - सेवन करो, स्वाहा - व्यापक। पुरः-सद्भ्यः - सम्मुख बैठे हुए, अग्नि-नेत्रेभ्यो - अग्नि-नेत्रों वाले, देवेभ्यः - देवों के लिए, स्वाहा - व्यापक। दक्षिणासद्भ्यः - दक्षिण में बैठे हुए, यम-नेत्रेभ्यो - यम-नेत्रों वाले, देवेभ्यः - देवों केलिए, स्वाहा - व्यापक। पश्चातसद्भ्यः - पीछे बैठे हुए, विश्वदेव-नेत्रेभ्यो - विश्वदेव-नेत्रों वाले, ादेवेभ्यः - देवों के लिए, स्वाहा - व्यापक। मित्रावरुण-नेत्रेभ्यो - मित्रावरुण नेत्र वाले, वा - अथवा, मरुत्-नेत्रेभ्यो - मरुत्-नेत्र वाले, वा - अथवा, देवेभ्यः - देवों के लिए, उत्तरासद्भ्यः - उत्तर में, बाद में बैठे हुए, स्वाहा - व्यापक। सोम-नेत्रेभ्यो - सोम-नेत्र वाले, देवेभ्यः - देवों के लिए, उपरिसद्भ्यो - ऊपर बैठे हुए, दुवस्वद्भ्यः - परिचर्यावान् के लिए, स्वाहा - व्यापक॥ 35॥

भावार्थ :- निर्ऋत शब्द से आशय ऋत का निर्वहन करने वाले लेना उचित है। वह विवेक, वह भावना, वह क्षमता, जिससे ऋत का अनुपालन हो सके, उसका उल्लेख किया गया है। स्वाहा शब्द में अह् धातु स्पष्ट है जिसका अर्थ है व्याप्त होना। परमात्मा की सर्वव्यापनी शक्ति स्वाहा है। हम अपना जीवन परमात्मा को अर्पित करते हुए व्यापक होने की कामना करते हैं। इसी भाव से हम सभी पदार्थ तथा साधन भी समर्पित करते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- एषः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। निः ऋते (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। भागः (भज् = भजना, उपभोग करना, सेवा करना, देना, पकाना, अलग करना, भाज् = अलग करना, भाग करना)। तम् (सर्वनाम)। जुषस्व (जुष् = विचार करना, सेवा करना, सन्तुष्ट करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। अग्नि-नेत्रेभ्यो (अग् = ऊर्ध्वगामी होना, जानना, पाना, नी = ले जाना)। देवेभ्यः (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। पुरःसद्भ्य (पुर् = आगे जाना, सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। यम-नेत्रेभ्यो (यम - स्वाधीन रखना, नियन्त्रण में रखना, पोषण करना, खाने को देना)। दक्षिण-सद्भ्य (दक्ष् = गति करना, जानना, पाना, हिंसा करना, सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। विश्वदेव-नेत्रेभ्यो (विश्व - सभी, देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना, नी = ले जाना)। पश्चात्-सद्भ्य (पश्चात् = पश्चिम, पीछे, सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। मित्रावरुण-नेत्रेभ्यो (मिद् - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, नरम होना, मृदुल होना, वृ = वरण करना, अपनाना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना, नी = ले जाना)। वा (अव्यय)। मरुत्-नेत्रेभ्यो (मृ - मरना, नी = ले जाना)। देवेभ्यः (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। उत्तरासद्भ्यः (उत्तर = उत्तर में, बाद में, सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। सोम-नेत्रेभ्यो (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना, नी = ले जाना)। उपरिसद्भ्यो (उपरि = ऊपर, सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। दुवस्वद्भ्यः (दुवस् = सेवा करना, परिचर्या करना, पीड़ित होना या करना)।॥35॥

392. ये देवा अग्नि नेत्राः पुरः-सदः तेभ्यः स्वाहा, ये देवा यमनेत्रा दक्षिणा-सदः तेभ्यः स्वाहा,
ये देवाः विश्वदेव नेत्राः पश्चात् सदः तेभ्यः स्वाहा,
ये देवाः मित्रावरुण नेत्रा वा मरुत्, नेत्रा वा उत्तरा-सदः तेभ्यः स्वाहा,
ये देवाः सोम नेत्रा, उपरि-सदो दुवस्वन्तः तेभ्यः स्वाहा॥36॥

संहितापाठ

ये देवाऽअग्निेत्राः पुरःसदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणाशदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्राऽउपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यःस्वाहा।36॥

मन्त्रार्थ :- ये - जो, देवाः - देवगण, अग्नि-नेत्राः - अग्नि-नेत्रों वाले, पुरः-सदः - सम्मुख बैठे हुए, तेभ्यः - उनके लिए, स्वाहा - व्यापक। ये - जो, देवाः - देवगण, यम-नेत्रा - यम-नेत्रों वाले, दक्षिणा-सदः = दक्षिण, दाहिने बैठे हुए,

तेभ्यः - उनके लिए, स्वाहा - व्यापक। ये - जो, देवाः - देवगण, विश्वदेव-नेत्राः - विश्वदेव-नेत्रों वाले, पश्चात्-सदः = पश्चिम, पीछे बैठे हुए, तेभ्यः - उनके लिए, स्वाहा - व्यापक। ये - जो, देवाः - देवगण, मित्रावरुण-नेत्रा - मित्रावरुण-नेत्र वाले, स्नेही तथा वरणीय नेतृत्व वाले, वा - अथवा, मरुत्-नेत्रा - मरुत्-नेत्र वाले, वा - अथवा, उत्तरा-सदः - उत्तर में, बाद में बैठे हुए, तेभ्यः - उनके लिए, स्वाहा - व्यापक। ये - जो, देवाः - देवगण, सोम-नेत्रा - सोम-नेत्र वाले, उपरि-सदो - ऊपर बैठे हुए, दुवस्वन्तः - परिचर्यावान्, तेभ्यः - उनके लिए, स्वाहा - व्यापक॥ 36॥

भावार्थ :- निर्ऋत शब्द से आशय ऋत का निर्वहन करने वाले लेना उचित है। वह विवेक, वह भावना, वह क्षमता, जिससे ऋत का अनुपालन हो सके, उसका उल्लेख किया गया है। स्वाहा शब्द में अह् धातु स्पष्ट है जिसका अर्थ है व्याप्त होना। परमात्मा की सर्वव्यापनी शक्ति स्वाहा है। हम अपना जीवन परमात्मा को अर्पित करते हुए व्यापक होने की कामना करते हैं। इसी भाव से हम सभी पदार्थ तथा साधन भी समर्पित करते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- ये (सर्वनाम)। देवाः (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। अग्नि-नेत्राः (अग् = ऊर्ध्वगामी होना, जानना, पाना)। पुरःसदः (पुरः - आगे, पहले, सम्मुख, पुर् = आगे जाना, सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। तेभ्यः (अपादान, अलग होना, सर्वनाम)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। यम-नेत्राः (यम - स्वाधीन रखना, नियन्त्रण में रखना, पोषण करना, खाने को देना)। दक्षिणा-सदः (दक्ष् = गति करना, जानना, पाना, हिंसा करना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना, दक्ष होना, सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। तेभ्यः (अपादान, अलग होना, सर्वनाम)। विश्वदेवनेत्राः (विश्व - सभी, देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना, नी = ले जाना)। पश्चात्सदः (पश्चात् = पश्चिम, पीछे, सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना, पश् = देखना)। मित्रावरुण-नेत्रा (मिद् - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, नरम होना, मृदुल होना, वृ = वरण करना, अपनाना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना, नी = ले जाना)। वा (अव्यय)। मरुत्-नेत्रा (मृ - मरना, नी = ले जाना)। उत्तरा-सदः (उत्तर = उत्तर में, बाद में, उत् - ऊपर, तृ = तैरना, पार जाना, सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। सोम-नेत्रा (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना, नी = ले जाना)। उपरि-सदो (उपरि = ऊपर, सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। दुवस्वन्तः (दुवस् = सेवा करना, परिचर्या करना, पीड़ित होना या करना)।36॥

393. अग्ने सहस्व पृतना, अभिमातीः अप अस्य। दुष्टरः तरन् अरातीः, वर्चो धा यज्ञवाहसि॥37॥

संहितापाठ

अग्ने सहस्व पृतनाऽअभिमातीरपास्य। दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि।37॥

मन्त्रार्थ :- अग्ने = हे अग्नि! सहस्व = सहन करो, सहनशील, समर्थ हो, पृतनाः = व्यापक, बल वाले, अभिमातीः - अभिमानी को, अप = दूर, अस्य = फेक कर, प्रक्षेपित कर, दुष्टरः - दुष्ट, अरातीः - अदानी, दान न देने वाले, तरन् - तैरते हुए, पार करते हुए, वर्चः = प्रकाश, धाः = धारण करो, यज्ञवाहसि = यज्ञ का वहन करते हो।37॥

भावार्थ :- अग्नि स्वरूप परमात्मा तो सब कुछ सहन करने में समर्थ है, हम भी सहनशील बनें, समर्थ बनें। बलशाली अभिमानी को दूर कर, दुष्ट अदानी को पार करते हुए ब्रह्म-वर्चस् - प्रकाश को धारण करें तथा यजन का वहन करने वाले बनें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अग्ने (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना, पहुंचना, पाना)। सहस्व (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना)। पृतनाः (पृत -व्याप्त होना, जीवन होना, बलपूर्वक निकालना, पृ = पूर्ण करना)। अभिमातीः (अभि = सभी ओर, मा = मान करना, मापना, अभि-मा - अभिमान करना)। अप (उपसर्ग)। अस्य (उपसर्ग)। दुष्टरः (दुष - दुष्टाचरण करना, दुष्ट रीति से वर्तना, दूषित होना, दुहना)। तरन् (तृ - तैरना, पार होना)। अरातीः (अ - नहीं, रा = देना)। वर्चः (वर्च = प्रकाशित होना)। धाः (धा = धारण करना)। यज्ञवाहसि (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)।37॥

394. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्।

उप अंशोः वीर्येण जुहोमि, हृतम् रक्षः स्वाहा,

रक्षसाम् त्वा वधाय अवधिष्म रक्षो, अवधिष्म अमुम् असौ हतः ॥ 38 ॥

संहितापाठ

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। उपाꣳशोर्वीर्येण जुहोमि हतꣳरक्षः स्वाहा रक्षसां त्वा वधायावधिष्म रक्षोऽवधिष्मामुमसौ हतः ।38 ॥

मन्त्रार्थ :- देवस्य - देव को, **सवितुः** - उत्पन्न करने वाला (परमात्मा), **त्वा** - तुम्हें, **अश्विनोः** - व्यापक (फैले हुए), **बाहुभ्याम्** - बाहुओं से, **पूष्णो** - पोषण करने वाले, **हस्ताभ्याम्** - हाथों से, **प्रसवे** - उत्पन्न करे। उप - समीप, अंशोः - अशु का, वीर्येण - वीरता द्वारा, जुहोमि - दान, आदान-प्रदान, आह्वान करता हूँ। हृतम् - हृत को, रक्षः - बचाने वाला, स्वाहा - व्यापक हो। त्वा - तुमको, रक्षसाम् - रक्षकों का, वधाय - वध के लिए, अवधिष्म - वध किया, रक्षो - रक्षक, अवधिष्म - वध किया, अमुम् - इसको, असौ - यह, हतः - हत, मारा गया॥ 38॥

भावार्थ :- देव का जनक (परमात्मा) तुमको व्यापक भुजाओं के लिए, पोषक हाथों के लिए उत्पन्न करता है। वह तुमको भी इन्ही गुणों से युक्त उत्पन्न करे। परमात्मा देवों को उत्पन्न करने वाला है। परमात्मा ने देव शक्तियों, सूर्य आदि दिव्यताओं को उत्पन्न किया है। इस बात का स्मरण कराते हुए कहा गया है कि हमारा जीवन व्यापक भुजाओं तथा पोषक हाथों के लिए है। अर्थात् हमारे कार्यों में व्यापकता होनी चाहिए। कर्म समाज का पोषण करने वाले होने चाहिए।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्‌भुत सामर्थ्य होना)। **प्रसवे** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **अश्विनोः** (अशु = व्यापक होना)। **बाहुभ्याम्** (बह, बाहु - भुजायाम्, चलना, बहना)। **पूष्णो** (पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। **हस्ताभ्याम्** (हस्त - लेना, आदान करना, दान करना, ग्रहण करना)। उप (अव्यय)। अंशोः (अंश् - विभाग करना, बाँटना, साथ होना)। वीर्येण (वीर् = पराक्रम करना)। जुहोमि (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। हृतम् (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। रक्षः (रक्ष् = रक्षा करना, बचाना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। रक्षसाम् (रक्ष् = रक्षा करना, बचाना)। त्वा (सर्वनाम)। वधाय (वध् = मारना)। रक्षुः (रक्ष् = रक्षा करना, बचाना)। अवधिष्म (अव - नीचे, उपसर्ग, अव् = रक्षा करना, धिष् = शब्द करना, बोलना)। अमुम् (सर्वनाम)। असौ (सर्वनाम)। हतः (हन - मारना, हण् - शब्द करना)।38॥

395. सविता त्वा सवानाम् सुवताम्, अग्निः गृह-पतीनाम् सोमो वनस्पतीनाम्।

बृहस्पतिः वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो, मित्रः सत्यो वरुणो धर्म-पतीनाम् ॥ 39 ॥

संहितापाठ

सविता त्वा सवानासुवतामग्निर्गृपतीनासोमो वनस्पतीनाम्। बृहस्पतिर्वाचऽइन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम्।39 ॥

मन्त्रार्थ :- सविता - उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाला, त्वा - तुमको, सवानाम् - उत्पन्नकर्ताओं का, ऐश्वर्यवानों का, अग्निः - अग्नि, गृह-पतीनाम् - गृहपतियों का, सोमो - सोम, वनस्पतीनाम् - वनस्पतियों का, बृहस्पतिः - बृहस्पति, वाचः - वाणी, इन्द्रो - इन्द्र, ज्यैष्ठ्याय - ज्येष्ठ के लिए, रुद्रः - रुद्र, पशुभ्यो - पशुओं के लिए, मित्रः - मित्र, सत्यो - सत्य, वरुणो - वरुण, धर्म-पतीनाम् - धर्मपतियों का, सुवताम् - ऐश्वर्यवान् करे।39॥

भावार्थ :- सविता का अर्थ है उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाला। परमात्मा ही सबको उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाला है। वही हमको संसार के ऐश्वर्यवानों में ऐश्वर्यवान् बनाता है। जो ऐश्वर्य हमें प्राप्त है, वह उसी का अनुदान है। उसका सदुपयोग उसके कार्य में करना चाहिए, स्वार्थ के लिए तथा प्रदर्शन के लिए नहीं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। त्वा (सर्वनाम)। सवानाम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। सुवताम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। अग्निः (अग् = जाना, जानना, पाना, आगे जाना, ऊर्ध्वगति करना, तेजस्वी होना)। गृह-पतीनाम् (गृह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना, पत्

= ऐश्वर्य होना)। सोमः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। वनस्पतीनाम् (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना)। बृहस्पतिः (बृह् - बढ़ना, बड़ा होना)। वाचे (वद्-वच् = बोलना)। इन्द्रः (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। ज्यैष्ठ्याय (ज्या - वृद्ध होना, बड़ा होना, बर्द्धित होना, जि - जीतना, जेष् - जाना, चलना, जानना, पाना, जिष् - सेवा करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना)। रुद्रः (रुद् = रुदन करना, रुलाना)। पशुभ्यः (पश् = देखना)। मित्रः (मिद् - स्नेह करना)। सत्यः (सत् = सत्य होना, अस्तित्व होना)। वरुणः (वृ = वरण करना, पालन करना)। धर्म-पतीनाम् (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, पत् - ऐश्वर्य होना, श्रीमान् होना, शक्तिमान् होना)॥ 39॥

396. इमम् देवा असपत्नम् सुवध्वम्, महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय, महते जानराज्याय इन्द्रस्य इन्द्रियाय। इमम् अमुष्य पुत्रम् अमुष्यै, पुत्रम् अस्यै विश एष वो अमी राजा, सोमो अस्माकम् ब्राह्मणानाम् राजा॥40॥

संहितापाठ

इमं देवाऽअसपत्नꣳसुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय।इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाराजा॥40॥

मन्त्रार्थ :- इमम् - इसको, देवा - देवगण, असपत्नम् - असपत्न को, ऐश्वर्यहीन को, सुवध्वम् = उत्पन्न करो, ऐश्वर्य दो, फेंक दो, भेज दो, महते = महत् के लिए, महान्, पूज्य के लिए, क्षत्राय - क्षत्र के लिए, महते = महत् के लिए, महान्, पूज्य के लिए, ज्यैष्ठ्याय - ज्येष्ठ के लिए, महते = महत् के लिए, महान्, पूज्य के लिए, जानराज्याय - जनराज्य के लिए, इन्द्रस्य - इन्द्र का, ऐश्वर्यवान् का, इन्द्रियाय - इन्द्रिय के लिए, ऐश्वर्य के लिए। इमम् - इसको, अमुष्य = यह, इसका, पुत्रम् - पुत्र को, अमुष्यै - इसके लिए, पुत्रम् - पुत्र को, अस्यै - इसके लिए, विश - प्रवेशी, प्रवेश करने वाला, एष - यह, वो - तुम्हारा, अमी - यह, राजा - राजा, सोमो - सोम, अस्माकम् - हमारा, ब्राह्मणानाम् - ब्राह्मणों का, राजा - राजा (है)॥ 40॥

भावार्थ :- परमात्मा असपत्न अर्थात् ऐश्वर्यहीन को सुवध्वम् अर्थात् ऐश्वर्य देने वाला है। असपत्न शब्द में पत् धातु है, इसका अर्थ ऐश्वर्य होना है। जो असपत्न है, अर्थात् ऐश्वर्यवान् नहीं है। इसमें जनराज्य का उल्लेख किया गया है। वैदिक संस्कृति में राजा वास्तव में जनता का प्रतिनिधि ही होता है। वह जनहित के लिए ही शासन का दायित्व स्वीकार करता है, वह निरंकुश शासक नहीं हो सकता है। सुवध्वम् पद में सु धातु है, अतः इसका अर्थ उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : - इमम् (सर्वनाम)। देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। असपत्नम् (अ - नहीं, स - समान, साथ, सहित, अस् = होना, फेकना, भेजना, उड़ाना, पत् = ऐश्वर्य होना)। सुवध्वम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। महते (मह् - पूजा करना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। क्षत्रम् (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना, रक्षा करना)। महते (मह् - पूजा करना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। ज्यैष्ठ्याय (ज्या - वृद्ध होना, बड़ा होना, बर्द्धित होना, जि - जीतना, जेष् - जाना, चलना, जानना, पाना, जिष् - सेवा करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना)। जानराज्याय (जन् = उत्पन्न होना, राज् = चमकना, प्रकाशित-शोभित होना)। इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। इन्द्रियाय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। अमुष्य (सर्वनाम)। पुत्रम् (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। अमुष्यै (सर्वनाम)। पुत्रम् (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। अस्यै (सर्वनाम)। विश (विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना, सब ओर फैलना)। एषः = यह (सर्वनाम)। वः = तुम्हारा, तुमको, तुम सबका, तुम सबको, तुम सबके लिए (सर्वनाम)। अमी (सर्वनाम)। राजा (राज् = चमकना, प्रकाशित-शोभित होना)। सोमः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। अस्माकम् (सर्वनाम)। ब्राह्मणानाम् (बृह् = बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। राजा (राज् = चमकना, प्रकाशित शोभित होना)॥40॥

इति नवमो अध्यायः

ॐ

अथ दशमो अध्यायः

(99) सूक्त 1

397. अपो देवा मधुमतीः अगृभ्णन्, ऊर्जस्वती राजस्वः चितानाः।
याभिः मित्रावरुणौ अभि असिञ्चन्, याभिः इन्द्रम् अनयन् अति अरातीः ॥1॥

संहितापाठ

अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चितानाः।याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन् याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः।॥ ॥

मन्त्रार्थ :- अपो = पालक, रक्षक, मधुमतीः - मधुयुक्त, ऊर्जस्वती - ऊर्जायुक्त, राजस्वः - राजा को उत्पन्न करने वाले, चितानाः - चेतन करने वाले, देवा = देवों ने, विद्वान्, तेजस्वी ने, अगृम्णन् - गर्भित किया, ग्रहण किया। याभिः - जिनसे, मित्रावरुणौ - मित्र और वरुण ने, अभि-असिञ्चन् - अभिसिञ्चन किया, याभिः - जिनसे, अरातीः - अदानी का, अति - अतिक्रम्य, अतिक्रमण कर, इन्द्रम् - इन्द्र को, अनयन् - चेतन करते हुए, ले गये॥1॥

भावार्थ :- देव का भाव है दिव्य गुणों से युक्त। परमात्मा के दिव्य गुणों को आत्मसात् करने वाले प्रमुख उपासक देव हैं। प्राकृतिक दिव्य शक्तियों को भी देव कहा जाता है। देवों के प्रमुख गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उन्होंने गर्भित किया, गर्भ में अर्थात् भीतर धारण किया, ग्रहण किया। इसी भावना से, इन गुणों से, सामर्थ्य से मित्र और वरुण अर्थात् वरणीय परमात्मा अथवा उपासकों ने साधकों ने, अभिसिञ्चन किया अर्थात् चेतना का प्रसार-विस्तार किया, लोगों को साधना-उपासना का लाभ प्रदान किया। इसी प्रकार इन्द्र को अदानी का अतिक्रमण कर ले गये। अनयन का अर्थ नी धातु से ले गये होगा, तथा अन् धातु मानने पर प्राणवान् करते हुए, चेतन करते हुए होगा।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अपः (अप् - पालन करना, रक्षा करना)। देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। मधुमतीः (मध्-मधु = मधुर होना, मीठा होना)। अगृम्णन् (गृभ् = गर्भ होना)। ऊर्जस्वती (ऊर्ज् = बल होना, प्राण होना)। राजस्वः (राज् = चमकना, प्रकाशित शोभित होना, सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। चितानाः (चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। मित्रावरुणौ (मिद् - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, नरम होना, मृदुल होना, वृ = वरण करना, अपनाना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। अभि (उपसर्ग)। असिञ्चन् (सिञ्च - सिञ्चन करना)। याभिः (सर्वनाम)। इन्द्रम् (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। अनयन् (अन् = प्राण होना, स्पन्दन करना, हलचल करना, नी - ले जाना)। अति (उपसर्ग, अव्यय)। अरातीः (अ + रा = देना)।॥॥

398. वृष्णः ऊर्मिः असि राष्ट्रदा, राष्ट्रम् मे देहि स्वाहा।वृष्णः ऊर्मिः असि राष्ट्रदा, राष्ट्रम् अमुष्मै देहि।
वृष-सेनो असि राष्ट्रदा, राष्ट्रम् मे देहि स्वाहा।वृष-सेनो असि राष्ट्रदा, राष्ट्रम् अमुष्मै देहि॥2॥

संहितापाठ

वृष्णऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृष्णऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि।॥2॥

मन्त्रार्थ :- वृष्णः = वर्षा करने वाला, पराक्रमी, ऊर्मिः = ऊर्मि, असि - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाले, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, मे - मेरे लिए, देहि - दो, स्वाहा - व्यापक। वृष्णः = वर्षा करने वाला, पराक्रमी, ऊर्मिः = ऊर्मि, असि - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाले, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए, देहि - दो।

वृष-सेनो - वृषसेन, असि - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाले, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, मे - मेरे लिए, देहि - दो, स्वाहा - व्यापक। वृष-सेनो - वृषसेन, पराक्रमी, असि - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाले, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए, देहि - दो॥2॥

भावार्थ :- राष्ट्र के लिए सुन्दर भावना है। राष्ट्र की समृद्धि के लिए प्रार्थना की गयी है। राष्ट्र शब्द में राज्, रास्, रस् तथा रा धातुओं के अर्थ निहित हैं। रास् का अर्थ है शब्द करना, रस् का अर्थ है स्वाद लेना, प्रीति करना, प्यार करना,

शब्द करना, राज् का अर्थ है प्रकाशित होना, चमकना, रा का अर्थ है देना, मिल जाना। वैदिक राष्ट्र केवल भौगोलिक इकाई नहीं है। हमारे लिए राष्ट्र का अर्थ बहुत व्यापक है तथा यह शब्द ही राष्ट्र के प्रति हमारी भावना तथा कर्तव्यों को बहुत व्यापक रूप में व्यक्त करता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- वृष्णः (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। ऊर्मिः (ऊ - शब्द करना, विश्वास करना, उर् = जाना, चलना)। असि (अस् - होना)। राष्ट्रदा (रा - देना, मिल जाना, दा - देना)। राष्ट्रम् (रास् = शब्द करना, रस् = स्वाद लेना, प्रीति करना, प्यार करना, शब्द करना, राज् - प्रकाशित होना, चमकना, रा - देना, मिल जाना)। मे (सर्वनाम)। देहि (दा - देना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। अमुष्मै (सर्वनाम)। वृष-सेनो (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)।2।।

399. अर्थेत स्थ राष्ट्रदा, राष्ट्रम् मे दत्त स्वाहा, अर्थेत स्थ राष्ट्रदा, राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त, ओजस्वती स्थ राष्ट्रदा, राष्ट्रम् मे दत्त स्वाहा, ओजस्वती स्थ राष्ट्रदा, राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त, आपः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा, राष्ट्रम् मे दत्त स्वाहा, आपः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा, राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त, अपाम् पतिः असि राष्ट्रदा, राष्ट्रम् मे देहि स्वाहा, अपाम् पतिः असि राष्ट्रदा, राष्ट्रम् अमुष्मै देहि, अपाम् गर्भो असि राष्ट्रदा, राष्ट्रम् मे देहि स्वाहा, अपाम् गर्भो असि राष्ट्रदा, राष्ट्रम् अमुष्मै देहि।3।।

संहितापाठ

अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहार्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देह्यपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहापां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि।3।।

मन्त्रार्थ :- अर्थेतः - अर्थवान्, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, स्थ- हो, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, मे = मेरे लिए, मेरा, हमारा, दत्त - दिया, स्वाहा - व्यापक। अर्थेतः - अर्थवान्, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, स्थ - हो, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए, दत्त - दिया। ओजस्वती - ओजस्वती, ओजयुक्त, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, मे = मेरे लिए, मेरा, हमारा, दत्त - दिया, स्वाहा - व्यापक। ओजस्वती - ओजस्वती, ओजयुक्त, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए, दत्त - दिया। आपः = आप, व्याप्त, व्यापक, परिवाहिणी - परिवहन करने वाली, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, स्थ- हो, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, मे = मेरे लिए, मेरा, हमारा, दत्त - दिया, स्वाहा - व्यापक। आपः = आप, व्याप्त, व्यापक, परिवाहिणी - परिवहन करने वाली, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, स्थ- हो, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए, दत्त - दिया। अपाम् = अपों के, पालकों, रक्षकों के, पतिः - स्वामी, असि - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाले, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, मे - मेरे लिए, देहि - दो, स्वाहा - व्यापक। अपाम् = अपों के, पालकों, रक्षकों के, पतिः - स्वामी, असि - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाले, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए, देहि - दो। अपाम् = अपों के, पालकों, रक्षकों के, गर्भो - गर्भ, असि - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाले, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, मे - मेरे लिए, देहि - दो, स्वाहा - व्यापक। अपाम् = अपों के, पालकों, रक्षकों के, गर्भो - गर्भ, असि - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाले, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए, देहि - दो।। 3 ।।

भावार्थ :- राष्ट्र के लिए सुन्दर भावना है। राष्ट्र की समृद्धि के लिए प्रार्थना की गयी है। राष्ट्र शब्द में राज्, रास्, रस् तथा रा धातुओं के अर्थ निहित हैं। रास् का अर्थ है शब्द करना, रस् का अर्थ है स्वाद लेना, प्रीति करना, प्यार करना, शब्द करना, राज् का अर्थ है प्रकाशित होना, चमकना, रा का अर्थ है देना, मिल जाना। वैदिक राष्ट्र केवल भौगोलिक इकाई नहीं है। हमारे लिए राष्ट्र का अर्थ बहुत व्यापक है तथा यह शब्द ही राष्ट्र के प्रति हमारी भावना तथा कर्तव्यों को बहुत व्यापक रूप में व्यक्त करता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त):- अर्थेतः (अर्थ - मांगना, याचना करना, चाहना)। स्थ (अस् - होना)। राष्ट्रदा (रा - देना,

मिल जाना)। राष्ट्रम् (रा - देना, मिल जाना)। मे (सर्वनाम)। दत्त (दा, दद्, दत् - देना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। अर्थेतः (अर्थ - मांगना, याचना करना, चाहना)। अमुष्मै (सर्वनाम)। दत्त (दा, दद्, दत् - देना)। ओजस्वतीः (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। परिवाहिणी (परि - सब ओर, वह् - वहन करना, ले जाना)। पतिः (पत् = ऐश्वर्य होना)। देहि (दा - देना)। गर्भो (गृ - सींचना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना)॥ 3॥

400. सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् मे दत्त स्वाहा, सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त,
सूर्य्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् मे दत्त स्वाहा, सूर्य्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै मे दत्त,
मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् मे दत्त स्वाहा, मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त,
व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् मे दत्त स्वाहा, व्रज-क्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त,
वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् मे दत्त स्वाहा, वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त,
शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् मे दत्त स्वाहा, शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त,
शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् मे दत्त स्वाहा, शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त,
जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् मे दत्त स्वाहा, जनभृतः स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त,
विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् मे दत्त स्वाहा, विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त।
आप स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त।
मधुमतीः मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्, महि क्षत्रम् क्षत्रियाय वन्वाना,
अनाधृष्टाः सीदत सह ओजसो, महि क्षत्रम् क्षत्रियाय दधतीः॥4॥

संहितापाठ

सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रंममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दो शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभूत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभूत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त। मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वानाऽअनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः॥4॥

मन्त्रार्थ :- सूर्य्यत्वचसः - सूर्य-त्वचा, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, मे = मेरे लिए, मेरा, हमारा। दत्त = दिया हुआ, दिया, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता। सूर्य्यत्वचस - सूर्य-त्वचा, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए। दत्त = दिया हुआ, दिया। सूर्य्यवर्चसः - सूर्य-वर्चस्, सूर्य-प्रकाश, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र का, मे = मेरे लिए, मेरा, हमारा, दत्त = दिया हुआ, दिया, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता। सूर्य्यवर्चसः - सूर्य-वर्चस्, सूर्य-प्रकाश, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए। दत्त = दिया हुआ, दिया। मान्दाः - आनन्द करने वाले, प्रकाशमान, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, मे = मेरे लिए, मेरा, हमारा, दत्त = दिया हुआ, दिया, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता। मान्दाः - आनन्द करने वाले, प्रकाशमान, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए। दत्त = दिया हुआ, दिया। व्रजक्षितः = व्रजक्षित, गति में वास करने वाला, पूर्णता में वास करने वाला, त्याग, वर्जना में वास करने वाला, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, मे = मेरे लिए, मेरा,

हमारा। दत्त = दिया हुआ, दिया, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता। व्रजक्षितः = व्रजक्षित, गति में वास करने वाला, पूर्णता में वास करने वाला, त्याग, वर्जना में वास करने वाला, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए, दत्त = दिया हुआ, दिया, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता। वाशाः = इच्छा, प्रकाश, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, मे = मेरे लिए, मेरा, हमारा। दत्त = दिया हुआ, दिया, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता। वाशाः = इच्छा, प्रकाश, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए, दत्त = दिया हुआ, दिया, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता। शविष्ठा = अत्यन्त समीपगामी, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, मे = मेरे लिए, मेरा, हमारा। दत्त = दिया हुआ, दिया, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता। शविष्ठा = अत्यन्त समीपगामी, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए, दत्त = दिया हुआ, दिया। शक्वरीः = शक्तिवान्, क्षमयुक्त, सामर्थ्ययुक्त, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, मे = मेरे लिए, मेरा, हमारा। दत्त = दिया हुआ, दिया, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता। शक्वरीः = शक्तिवान्, क्षमयुक्त, सामर्थ्ययुक्त, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए, दत्त = दिया हुआ, दिया। जनभृत - जनभृत, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, मे = मेरे लिए, मेरा, हमारा। दत्त = दिया हुआ, दिया, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता। जनभृत - जनभृत, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए, दत्त = दिया हुआ, दिया। विश्वभृत - विश्वभृत, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, मे = मेरे लिए, मेरा, हमारा। दत्त = दिया हुआ, दिया, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता। विश्वभृत - विश्वभृत, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए, दत्त = दिया हुआ, दिया। आपः = आप, व्याप्त, व्यापक, स्वराज - स्वराज, स्थ - हो, राष्ट्रदा - राष्ट्र देने वाला, राष्ट्रम् - राष्ट्र को, अमुष्मै - इसके लिए, दत्त = दिया हुआ, दिया। मधुमतीः - मधुयुक्तों को, मधुमतीभिः - मधुयुक्तों द्वारा, पृच्यन्ताम् = जोड़ो, महि = पूज्य महान्, क्षत्रम् - क्षत्र, क्षत्रियाय - क्षत्रिय के लिए, वन्वाना - वन्दन करने वाले, अनाधृष्टाः - अनाधृष्ट, सीदत - बैठें, सह - साथ, ओजसो - ओज, बल, महि = पूज्य महान्, क्षत्रम् - क्षत्र, क्षत्रियाय - क्षत्रिय के लिए, दधतीः - धारण करने वाले।। 4 ।।

भावार्थ :- राष्ट्र के लिए सुन्दर भावना है। राष्ट्र की समृद्धि के लिए प्रार्थना की गयी है। राष्ट्र शब्द में राज्, रास्, रस् तथा रा धातुओं के अर्थ निहित हैं। रास् का अर्थ है शब्द करना, रस् का अर्थ है स्वाद लेना, प्रीति करना, प्यार करना, शब्द करना, राज् का अर्थ है प्रकाशित होना, चमकना, रा का अर्थ है देना, मिल जाना। वैदिक राष्ट्र केवल भौगोलिक इकाई नहीं है। हमारे लिए राष्ट्र का अर्थ बहुत व्यापक है तथा यह शब्द ही राष्ट्र के प्रति हमारी भावना तथा कर्तव्यों को बहुत व्यापक रूप में व्यक्त करता है। माधुर्य, ओज आदि गुणों की चर्चा भी इसी रूप में है। स्पष्ट है कि इस में अनेक मन्त्र एक साथ रख दिये गये हैं। मधुमतीः पद से नवीन छन्द स्पष्ट दृष्टिगत होता है। यजुर्वेद में इस प्रकार मन्त्रों के समूह बहुधा मिलते हैं। इन्हें कण्डिका कहा जाता है। प्रतीत होता है कि कर्मकाण्डों में प्रयोग होने पर विशेष प्रयोजनों से ऐसा किया गया। मन्त्रों के साथ कर्मकाण्ड के विनियोग जोड़ दिये जाने पर उसे कृष्ण यजुर्वेद कहा गया। ऐसा प्रतीत होता है कि विनियोग को पृथक् कर शुद्ध मन्त्र संहिता को शुक्ल यजुर्वेद के रूप में प्रस्तुत किया गया तो उसमें भी तत्कालीन आवश्यकता के अनुसार विनियोग का कुछ प्रभाव स्वीकार कर लिया गया।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सूर्य्यत्वचसः (सुर् - ऐश्वर्य, प्रकाश होना, त्वच् - आच्छादित करना, लपेटना, ढांकना)। स्थ (अस् - होना, स्था - ठहरना, स्थित होना)। राष्ट्रदा (रा - देना, मिल जाना)। राष्ट्रम् (रा - देना, मिल जाना)। मे (सर्वनाम)। दत्त (दा, दद्, दत् = देना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। अमुष्मै (सर्वनाम)। सूर्य्यवर्चसः (सुर् = ऐश्वर्य, प्रकाश होना)। स्थ (अस् - होना, स्था - ठहरना, स्थित होना)। मान्दाः (मन्द् - स्तुति करना, आनन्द करना, चमकना, प्रकाशित होना, मान - ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा करना, शोध करना, सत्कार करना, मनाना)। व्रजक्षितः (व्रज् = जाना, पूर्ण करना, सिद्ध करना, तैयार करना, घूमना, वृज् = छोड़ना, त्यागना, वर्जित करना, क्षि - जाना, चलना, निवास करना, रहना, बसना)। वाशाः (वश् = इच्छा करना, चाहना, चमकना)। शविष्ठा (शव - जाना, समीप जाना, आना, चलना-फिरना, बदले में देना, विकार होना)। शक्वरीः (शक- सक्षम

होना, कर सकना)। जनभृत (जन् = उत्पन्न करना)। विश्वभृतः (विश्व = सब, भृ - धारण करना, पोषण करना)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। स्वराज (स्व - अपना, राज् - प्रकाशित होना, चमकना)। मधुमतीः (मध्-मधु = मीठा होना, मधुर होना)। मधुमतीभिः (मध्-मधु = मीठा होना, मधुर होना)। पृच्यन्ताम् (पृच् = छूना, अटकाना, जोड़ना, गतिशील होना, सङ्घर्ष करना)। महि (मह् - पूज्य होना, बड़ा होना, महत् होना)। क्षत्रम् (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। क्षत्रियाय (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। वन्वाना (वन्द् - वन्दना करना, नमन करना, स्तुति करना, प्रशंसा करना, वन् = शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना)। अनाधृष्टाः (अन् + आ + धृष् = जीतना, अधीर होना, घबराना, धृषा = गर्व करना, स्वयम् को बड़ा समझना)। सीदत (सद् - जाना, चलना, ठहना, बैठना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। सह (सर्वनाम)। ओजसो (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। महि (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। दधतीः (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)।।4।।

(100) सूक्त 2

401. सोमस्य त्विषिः असि, तव इव मे त्विषिः भूयात्।
अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा, सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा,
पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा, इन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा,
श्लोकाय स्वाहा अंशाय स्वाहा, भगाय स्वाहा अर्य्यम्णे स्वाहा।।5।।

संहितापाठ

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात्।अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहा शाय स्वाहा भगाय स्वाहार्यम्णे स्वाहा।5।।

मन्त्रार्थ :- सोमस्य - सोम का, त्विषिः - प्रकाश, असि हो, तव - तुम्हारा, इव - समान, मे - मेरा, त्विषिः त्विषिः - प्रकाश, भूयात् - हो जाये।अग्नये - अग्नि के लिए, स्वाहा - व्यापक, सोमाय - सोम के लिए, स्वाहा - व्यापक, सवित्रे - सविता के लिए, स्वाहा - व्यापक, सरस्वत्यै - सरस्वती के लिए, स्वाहा - व्यापक, पूष्णे - पूषा के लिए, स्वाहा - व्यापक, बृहस्पतये - बृहस्पति के लिए, स्वाहा - व्यापक, इन्द्राय - के लिए, स्वाहा - व्यापक, घोषाय - घोष के लिए, स्वाहा - व्यापक, श्लोकाय - श्लोक के लिए, स्वाहा - व्यापक, अंशाय - अंश के लिए, स्वाहा - व्यापक, भगाय - भग के लिए, स्वाहा - व्यापक, अर्य्यम्णे - अर्यमा के लिए, स्वाहा - व्यापक।।5।।

भावार्थ :- सृष्टिकर्ता, ऐश्वर्यवान् परमात्मा सोम है। उसका प्रकाश उपासक दिव्य जनों ने प्राप्त किया है। हमारी कामना है कि हमें भी उसके समान प्रकाश प्राप्त हो। इसके हमारा कर्तव्य है कि विविध दिव्य गुणों, दिव्य शक्तियों के लिए स्वयम् को व्यापक बनाये, विस्तृत करें। उन दिव्य गुणों को स्वयम् अपने जीवन में उतारें तथा समाज में उन्हें व्याप्त करें, विस्तार दें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सोमस्य (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू - प्रेरणा देना)। त्विषिः (त्विष् - प्रकाश होना, प्रकाशित होना, चमकना)। असि (अस् - होना)। तव (सर्वनाम)। इव (अव्यय)। मे (सर्वनाम)। त्विषिः (त्विष् - प्रकाश होना, प्रकाशित होना, चमकना)। भूयात् (भू - होना)। अग्नये (अग् = जाना ऊपर जाना, ऊर्ध्व गमन करना, आगे जाना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। सोमाय (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना, सो–स्य, सय - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। सवित्रे (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। सरस्वत्यै (सृ - जाना, सरकना, जानना, पाना, बहना, चलना, स - साथ, सहित, रस् - स्वाद लेना, प्रीति करना, शब्द करना)। पूष्णे (पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। बृहस्पतये (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण

करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना)। इन्द्राय (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। घोषाय (घुष् - चुपके काम करना, मन में विचार कर कहना, प्रशंसा करना, घोषित करना, तरह तरह के शब्द करना)। श्लोकाय (श्लोक - श्लोक बनाना, कविता करना, रचना करना)। अंशाय (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)। भगाय (भज - देना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। अर्य्यम्णे (ऋ = जाना, पाना, मिलाना)।5।।

402. पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ, सवितुः वः प्रसव उत् पुनामि, अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।
अनिभृष्टम् असि वाचो बन्धुः तपोजाः, सोमस्य दात्रम् असि स्वाहा राजस्वः ।।6।।

संहितापाठ

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः।6।।

मन्त्रार्थ :- मन्त्रार्थ : सवितुः सबको उत्पन्न करने वाले (परमात्मा) की **प्रसवे** सृष्टि में **वः** तुम दोनों को **पवित्रे** पवित्र **स्थो** स्थित **वैष्णव्यौ** व्यापक तत्वों को **अच्छिद्रेण** छिद्ररहित (निर्दोष) **पवित्रेण** पवित्र **सूर्यस्य** सूर्य की **रश्मिभिः** किरणों से **उत् पुनामि** पवित्र करता हूँ। अनिभृष्टम् - भ्रष्ट न होने वाले, असि - हो, वाचो - वाणी, बन्धुः - बन्धु, तपोजाः - तप से उत्पन्न, सोमस्य - सोम का, दात्रम् - दाता, स्वाहा - व्यापक, राजस्वः - राजा को उत्पन्न करने वाले, असि - हो।।6।।

भावार्थ : सूर्य की किरणों से दो पवित्र व्यापक तत्वों को पवित्र करने के निर्देश से सूर्य किरण चिकित्सा का संकेत है। सूर्य किरणें निर्दोष तथा पवित्र हैं। उनसे व्यापक पवित्र तत्वों को पवित्र किया जाता है। वायु, जल, भूमि, वनस्पति आदि व्यापक प्रकृति को सूर्य किरणें पवित्र, जीवन्त, शुद्ध करती हैं। हमारे जीवन में, विचारों में व्यापकता हो तो सूर्य किरणों से प्रेरणा लेकर स्वयम् को तथा समाज को शुद्ध पवित्र बना सकते हैं, भेदभाव दूर कर व्यापकता, समरसता ला सकते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) : पवित्रे (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **स्थो** (स्था - स्थित होना, ठहरना)। **वैष्णव्यौ** (विष्ण - व्यापना, व्यापने आवरणे)। **सवितुः** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **वः** (सर्वनाम)। **प्रसवे** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **उत्** (अव्यय)। **पुनामि** (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **अच्छिद्रेण** (छिद्र - छेद करना)। **पवित्रेण** (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **सूर्यस्य** (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। **रश्मिभिः** (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। **अनिभृष्टम्** (अ - नहीं, नि - नितराम्, निश्चित, अन् = स्पन्दन करना, हलचल करना, भृश् - अधःपतन होना, शरीर योग्यतादि से भ्रष्ट होना, च्युत होना, नीचे गिरना)। **असि** (अस् = होना)। **वाचः** (वद्-वच् - बोलना)। **बन्धुः** (बन्ध् - बांधना)। **तपोजाः** (तप् = तप्त होना, तप्त करना, तप करना, ऐश्वर्य होना)। **सोमस्य** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। **दात्रम्** (दा = देना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **राजस्वः** (राज् = चमकना, प्रकाशित, शोभित होना, सु - उत्पन्न करना)।6।।

403. सध-मादो द्युम्निनीः आप एता, अनाधृष्टा अपस्यो वसानाः।
पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थम्, अपाम् शिशुः मातृतमासु अन्तः ।।7।।

संहितापाठ

सधमादो द्युम्निनीरापऽएताऽअनादृष्टाऽअपस्यो वसानाः।पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपाशिशुर्मातृतमास्वन्तः।7।।

मन्त्रार्थ :- सध-मादो - साथ आनन्द करने वाले, द्युम्निनीः - द्यु से युक्त, अभिगमन में समर्थ, आपः = आप, व्याप्त, व्यापक, एता - ये, अनाधृष्टा - अनाधृष्ट, अनभिभूत, अपस्यो - पालनकर्ता, वसानाः - वसने वाले, वसाने वाले, वरुणः - वरुण ने, पस्त्यासु - धारणों में, धारणकर्ताओं में, सधस्थम् - साथ स्थित, अपाम् - पालकताओं का, शिशुः - शिशु, मातृतमासु - अत्यन्त माताओं में, अन्तः - भीतर, चक्रे - किया।।7।।

भावार्थ :- वरुण अर्थात् वरणीय परमात्मा के विविध गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि गुणवान् मातृतमों में शिशु को भीतर किया अथवा सन्तुष्ट किया। चक्रे पद कृ धातु का भूतकालिक रूप है तथा चक धातु का अर्थ तृप्त होना,

सन्तुष्ट होना होता है। माता और शिशु का रूपक यहाँ परोक्ष रूप से है, श्लेष के रूप में है। माता के स्थान पर मातृतम शब्द का प्रयोग हुआ है। माता तो साधारणतः शिशु को भीतर गर्भ में दारण करती ही है, यहाँ उनका उल्लेख है जो मातृतम है, माताओं में अन्यतम है, श्रेष्ठ हैं। वे साधारण अर्थ माता नहीं हैं, गुणों तथा भावनाओं के अर्थ में माता से भी बढ़कर हैं। ऐसे मार्गदर्शक गुरुजन केहृदय में शिष्य का स्थान शिशु के समान होता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सध-मादः (सह = साथ, मद् - आनन्द करना)। द्यम्निनीः (द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना, द्यै = तिरस्कार करना)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। एताः (एताः - ये, इ - जाना, जानना, पाना)। अनाधृष्टाः (अन् - नहीं, आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, धृष् = जीतना, अधीर होना, घबराना, धृषा = गर्व करना, स्वयम् को बड़ा समझना)। अपस्यो (अप् - पालन करना)। वसानाः (वस् = निवास करना, स्नेह करना)। पस्त्यासु (पस् - धारण करना, घर्षण करना)। चक्रे (कृ - करना, चक - तृप्त होना, सन्तुष्ट होना)। वरुणः (वृ = वरण करना, पालन करना)। सधस्थम् (सघ - सह, साथ, स्था - स्थित होना, ठहरना, अस् - होना)। अपाम् (अप - पालन करना) शिशुः (शि = तेज करना, तीक्ष्ण करना, सुनना, शी - शयन करना)। मातृतमासु (मा = मान करना, मापना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)।7।।

404. क्षत्रस्य उल्बम् असि, क्षत्रस्य जरायु असि,
क्षत्रस्य योनिः असि, क्षत्रस्य नाभिः असि, इन्द्रस्य वार्त्रघ्नम् असि,
मित्रस्य असि वरुणस्य असि, त्वया अयम् वृत्रम् वधेत्।
दृवा असि रुजा असि क्षुमा असि, पात एनम् प्राञ्चम्, पात एनम् प्रत्यञ्चम्,
पात एनम् तिर्यञ्चम् दिग्भ्यः पात।।8।।

संहितापाठ

क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्राय वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत्।दृवासि रुजासि क्षुमासि।पातैनं प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्भ्यः पात।8।।

मन्त्रार्थ :- क्षत्रस्य - क्षत्र का, उल्बम् - उल्ब, सहनशील, समर्थ, असि - हो, क्षत्रस्य - क्षत्र का, जरायु - जरायु, असि - हो, क्षत्रस्य - क्षत्र का, योनिः - योनि, स्थान, असि - हो, क्षत्रस्य - क्षत्र का, नाभिः - नाभि, असि - हो, इन्द्रस्य - इन्द्र का, वार्त्रघ्नम् - वार्त्रघ्न, असि - हो, मित्रस्य - मित्र का, असि - हो, वरुणस्य - वरुण का, असि - हो, त्वया - तुम्हारे द्वारा, अयम् - यह, वृत्रम् - वृत्र को, हिंसा को, वधेत् - मारे, वध करे। दृवा - दृवा, आदरणीय, विदारण करने वाले, असि - हो, रुजा - भंग करने वाले, असि - हो, क्षुमा - क्षुमा, गतिशील, शब्दकर्ता, असि - हो, पात - रक्षा करो, एनम् - इसको, प्राञ्चम् - प्राञ्च को, पात - पालन करो, रक्षा करो, एनम् - इसको, प्रत्यञ्चम् - प्रत्यञ्च को, पात - पालन करो, रक्षा करो, एनम् - इसको, तिर्यञ्चम् - तिर्यञ्च, दिग्भ्यः - दिशाओं से, एनम् - इसको, पात - पालन करो, रक्षा करो।। 8।।

भावार्थ :- परमात्मा क्षत्र का, वरुण का, मित्र का, हम सबका है। वह विविध रूपों में हमारा पालन - रक्षण करता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त):- क्षत्रस्य (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। उल्बम् (उर्व - सहना, समर्थ होना)। असि = हो (अस् = होना)। क्षत्रस्य (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। जरायु (जृ - वृद्ध होना, जीर्ण होना, अय् - जाना, जानना, पाना)। क्षत्रस्य (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। योनिः (यु = बन्धन होना, स्थान होना, मिलाना, अलग करना)। क्षत्रस्य (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। नाभिः (नभ - नष्ट होना, दुःख देना या मार डालना, मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना)। इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। वार्त्रघ्नम् (वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना, हन् - हिंसा करना)। मित्रस्य (मिद् - स्नेह करना)। वरुणस्य (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। त्वया (सर्वनाम)। अयम् (सर्वनाम)। वृत्रम् (वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा

करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना)। वधेत् (वध् = मारना)। दृवा (दृ - हिंसा करना, दुःख देना, मार डालना)। रुजा (रुज - हिंसा करना, मारना, दुःख देना)। क्षुमा (क्षु - शब्द करना, गति करना)। पात (पा = पालन करना, रक्षा करना)। एनम् (सर्वनाम)। प्राञ्चम् (प्र - अधिक, अञ्च् - गति करना, जाना, पूजा करना, संवारना)। प्रत्यञ्चम् (प्रति = सम्बन्ध में, अञ्च् - गति करना, जाना, पूजा करना, संवारना)। तिर्यञ्चम् (अव्यय)। दिग्भ्यः (दिश्-दिक्-दिग् = दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना)।8।।

405. आविः मर्या आवित्तो, अग्निः गृहपतिः आवित्त, इन्द्रो वृद्धश्रवा आवित्तौ, मित्रावरुणौ धृतव्रतौ आवित्तः, पूषा विश्ववेदा आवित्ते, द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवौ, आवित्ता अदितिः उरुशर्मा ।।9।।

संहितापाठ

आविर्मयाऽआवित्तोऽअग्निर्गृहपतिराक्तिऽइन्द्रो वृद्धश्रवाऽआवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदाऽआवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्मा।9।।

मन्त्रार्थ :- आविः - रक्षित, निरूपित, मर्या - मरणशील, आवित्तो - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः वित्त, दान, विदित, अग्निः - अग्नि, गृहपतिः - गृहपति, गृह-स्वामी, आवित्त - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः वित्त, दान, विदित, इन्द्रो - इन्द्र, परम ऐश्वर्यवान्, वृद्धश्रवा - श्रवण से वर्धित, आवित्तौ - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः वित्त, दान, विदित, मित्रावरुणौ - मित्र और वरुण, धृतव्रतौ - व्रत धारण करने वाले, आवित्तः - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः वित्त, दान, विदित, पूषा - पोषण करने वाले, विश्ववेदा - सर्वज्ञ, आवित्ते - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः वित्त, दान, विदित, द्यावापृथिवी - द्यावा और पृथिवी, विश्वशम्भुवौ - सबका कल्याण करने वाले, आवित्ता - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः वित्त, दान, विदित, अदितिः - अविनाशी, उरुशर्मा - बहुत सुख युक्त।।9।।

भावार्थ :- आविः शब्द में अव् धातु है। इसका अर्थ रक्षण, पालन, ध्वनि, आह्वान, अवकल्पन, निरूपण होते हैं। आविः शब्द का भावार्थ निरूपित, उपस्थित, प्रकट किया गया है। मर्या शब्द का अर्थ है मरने योग्य, मरणशील। सामान्यतः इसका अर्थ मनुष्य किया जाता है। मनुष्य शब्द मन् धातु से बना है जिसका अर्थ है मननशील। वेद में मननशील तथा मरणशील शब्द मनुष्य के लिए प्रयोग होने का भाव है कि मनुष्य अन्य प्राणियों की भाँति मरणशील तो है, परन्तु वह मननशील होने से विशिष्ट है। आवित्त शब्द आविः की भाँति अव धातु से निष्पन्न हो सकता है। इसमें वित्त तथा विद् धातु भी मान सकते हैं। वित्त का अर्थ देना, दान करना तथा विद् का अर्थ जानना है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- आविः (अव् - रक्षण, पालन, ध्वनि, आह्वान, अवकल्पन, निरूपण करना)। मर्या (मृ = मरना)। आवित्त (आ - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, अव् - रक्षण, पालन, ध्वनि, आह्वान, अवकल्पन, निरूपण करना, वित्त - देना, दान करना, धर्म में व्यय करना)। अग्निः (अग् = ऊपर जाना, जानना, पाना, तेजस्वी होना)। गृहपतिः (गृह् - ग्रहण करना, पत् - ऐश्वर्य होना)। आवित्त (आ - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, अव् - रक्षण, पालन, ध्वनि, आह्वान, अवकल्पन, निरूपण करना, वित्त - देना, दान करना, धर्म में व्यय करना)। इन्द्रः (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। वृद्धश्रवा (वृध् - बढ़ना, अधिक होना, श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। आवित्तौ (आ - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, अव् - रक्षण, पालन, ध्वनि, आह्वान, अवकल्पन, निरूपण करना, वित्त - देना, दान करना, धर्म में व्यय करना)। मित्रावरुणौ (मिद् = स्नेह करना, वृ = वरण करना, अपनाना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। धृतव्रतौ (धृ - धारण करना, वृ = वरण करना, अपनाना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। आवित्त (आ - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, अव् - रक्षण, पालन, ध्वनि, आह्वान, अवकल्पन, निरूपण करना, वित्त - देना, दान करना, धर्म में व्यय करना)। पूषा (पुष् = पुष्ट करना, पोषण करना)। विश्ववेदा (विश्व = सभी, विद् = जानना)। द्यावापृथिवी (द्यु = आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। विश्वशम्भुवौ (विश्व = सभी, शम् = प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, कल्याण करना, शमन करना, सान्त्वना देना, भू - होना)। आवित्ता (आ - समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, अव् - रक्षण, पालन, ध्वनि, आह्वान, अवकल्पन, निरूपण करना, वित्त - देना, दान करना, धर्म में व्यय करना)। अदितिः (अद् = खाना, अ - नहीं, दी = नष्ट होना)। उरुशर्मा - बहुत सुख युक्त (उर् = चलना, जाना)।।9।।

(101) सूक्त 3

406. अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीम्, आ रोह गायत्री त्वा अवतु,
रथन्तरम् साम त्रिवृत् स्तोमो, वसन्त ऋतुः ब्रह्म द्रविणम् ॥10॥

संहितापाठ

अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरꣳसाम त्रिवृत् स्तोमो वसन्तऽऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥10॥

मन्त्रार्थ :- अवेष्टा - असिञ्चित, रक्षित, विषयुक्त, अलग किये हुए, दन्दशूकाः - अत्यन्त डसने वाले, प्राचीम् प्राची को, आ-रोह - चढ़ो। गायत्री - गायत्री, त्वा - तुमको, रथन्तरम् - रथन्तर, साम - साम, त्रिवृत् - त्रिवृत, स्तोमो - स्तुति, वसन्त - वसन्त, ऋतुः - ऋतु, ब्रह्म - ब्रह्म, द्रविणम् - द्रविण को, द्रवणशील, प्रवाहमान को, अवतु - रक्षा करे॥10॥

भावार्थ :- अवेष्टा का अर्थ असिञ्चित, रक्षित, विषयुक्त, अलग किये हुए किया गया है। अव् धातु का अर्थ रक्षा करना है। विष् धातु का अर्थ सींचना, प्रोक्षण करना, उपयोग न होने से अलग करना या निकाल देना, व्यापना, आवरण करना है। अतः अवेष्टा शब्द के अर्थ व्यापक हैं। श्लेष से इस शब्द के अनेक अर्थ करना यहाँ आवश्यक भी है। दन्दशूक अर्थात् अन्तयन्त दशनशील, डसने वाले रक्षित होने चाहिए। उन पर सुरक्षा का ध्यान रखना आवश्यक है। वे विषयुक्त हैं। उनको अलग करना है। वे व्यापक है, समाज में फैले हुए हैं। उन्हें पहचानना, अलग करना, उनको सुरक्षा के घेरे में रखना समाज के हित में है। स्तुति करने वाले ऋत व्यवस्था का अनुपालन करने वाले, ब्रह्म के लिए द्रविण या प्रवाहमान उपासक की रक्षा तो गायत्री अर्थात् स्तुति-गान से होती ही है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अवेष्टाः (अव् - रक्षा करना, विष् - सींचना, प्रोक्षण करना, उपयोग न होने से अलग करना या निकाल देना, व्यापना, आवरण करना)। दन्दशूकाः (दंश - डसना, दाँतों से काटना)। प्राचीम् (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। रोह (रुह् - जाना, चलना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। गायत्री (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। त्वा (सर्वनाम)। अवतु (अव् = रक्षा करना)। रथन्तरम् (रथ् = जाना, ले जाना)। साम (साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)। त्रिवृत् (त्रि = तीन, वृत् = रहना, होना, वर्ताव करना, रुचि होना, ठहराना, निश्चित करना, सेवा करना, सेवक होना, चाकरी करना, चमकना, बोलना)। स्तोमः (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना, आत्मश्लाघा करना, मुंह देख के बोलना)। वसन्त (वस् = निवास करना, स्नेह करना)। ऋतुः (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। ब्रह्म (बृह् = बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। द्रविणम् (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)॥10॥

407. दक्षिणाम् आ रोह त्रिष्टुप् त्वा अवतु, बृहत् साम पञ्चदश स्तोमो, ग्रीष्म ऋतुः क्षत्रम् द्रविणम् ॥11॥

संहितापाठ

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्मऽऋतुः क्षत्रं द्रविणम्॥11॥

मन्त्रार्थ :- दक्षिणाम् - दक्षिणा को, दक्षिण को, दक्षता को, आ-रोह - चढ़ो, त्रिष्टुप् - त्रिष्टुप्, त्वा - तुमको, अवतु - रक्षा करे, बृहत् - बृहत्, बड़ा, साम - साम, पञ्चदश - पन्दरह, स्तोमो - स्तुति, ग्रीष्म - ग्रीष्म, ऋतुः - ऋतु, क्षत्रम् - क्षत्र को, द्रविणम् - द्रविण को, द्रवणशील, प्रवाहमान को॥11॥

भावार्थ :- दक्षता से आगे बढ़ो, दक्षिण में आगे बढ़ों। विभिन्न दिशाओं में उन्नति करो, वेद-स्तुतियाँ रक्षा करेंगी, ऐसा सन्देश है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- दक्षिणाम् (दक्ष् = गति करना, जानना, पाना, दक्ष होना, हिंसा करना)। आ (उपसर्ग)। रोह (रुह् - जाना, चलना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। त्रिष्टुप् (त्रि = तीन, स्तु = स्तुति करना)। त्वा (सर्वनाम)। अवतु (अव् = रक्षा करना)। बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। साम (साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)। पञ्चदशः (संख्या)। स्तोमः (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना, आत्मश्लाघा करना, मुंह देख के बोलना)। ग्रीष्मः (ग्रस - ग्रसना, घेरना, लेना, ग्रहण करना, खाना, भक्षण करना, गृ = सींचना, समझना, जानना, निगलना, शब्द करना, बोलना, समझाना, बताना)। ऋतुः (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। क्षत्रम् (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना,

मार डालना)। द्रविणम् (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)।॥11॥

408. प्रतीचीम् आ रोह जगती, त्वा अवतु वैरूपम्, साम सप्तदश स्तोमो, वर्षा ऋतुः विड् द्रविणम्॥12॥

संहितापाठ

प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपꣳसाम सप्तदश स्तोमो वर्षाऽऋतुर्विड् द्रविणम्॥12॥

मन्त्रार्थ :- प्रतीचीम् - प्रतीची को, आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, रोह - चढ़ो, जगती = संसार, गतिशील, त्वा - तुमको, अवतु - रक्षा करे, वैरूपम् - विरूप को, साम - साम, सप्तदश - सत्तरह, स्तोमो - स्तोम, स्तुति, वर्षा - वर्षा, ऋतुः - ऋतु, विड् = शब्द, परिहास करने वाला, शाप देने वाला, द्रविणम् = द्रविण को, द्रवित होने वाले को, प्रवाही को, ज्ञानी को, द्रवणशील, प्रवाहमान को॥ 12॥

भावार्थ :- विभिन्न ऋतुओं में, विविध परिस्थितियों में उन्नति करो, वेद-स्तुतियाँ रक्षा करेंगी, ऐसा सन्देश है। स्तुतियों के स्वाध्याय-साधना से हमें विविध लाभ प्राप्त होते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- प्रतीचीम् (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। रोह (रुह् - जाना, चलना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। जगती (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। त्वा (सर्वनाम)। अवतु (अव् = रक्षा करना)। वैरूपम् (वि - विशेष, रूप् - रूप बनाना, आकार बनाना)। साम (साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)। सप्तदश (संख्या)। स्तोमः (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना, आत्मश्लाघा करना, मुंह देख के बोलना)। वर्षा (वर्ष् = गीला होना, भीगना, वर्षा होना)। ऋतुः (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। विट्-विड् (विट् = शब्द करना, परिहास करना, शाप देना)। द्रविणम् (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)।॥12॥

409. उदीचीम् आ रोह अनुष्टुप्, त्वा अवतु वैराजम्,
साम एकविंश स्तोमः, शरत् ऋतुः फलम् द्रविणम्॥13॥

संहितापाठ

उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु वैराजꣳसामैकविꣳश स्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम्॥13॥

मन्त्रार्थ :- उदीचीम् - उदीची को, आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, रोह - चढ़ो, अनुष्टुप् - अनुष्टुप्, त्वा - तुमको, अवतु - रक्षा करे, वैराजम् - विराज को, साम - साम, एकविंश - इक्कीस, स्तोमो - स्तोम, शरत् - शरत्, ऋतुः - ऋतु, फलम् - फल को, द्रविणम् = द्रविण को, द्रवित होने वाले को, प्रवाही को, ज्ञानी को, द्रवणशील, प्रवाहमान को॥ 13॥

भावार्थ :- विभिन्न ऋतुओं में, विविध परिस्थितियों में उन्नति करो, वेद-स्तुतियाँ रक्षा करेंगी, ऐसा सन्देश है। स्तुतियों के स्वाध्याय-साधना से हमें विविध लाभ प्राप्त होते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- उदीचीम् (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, उद् = उत्कृष्ट होना, उच्च होना, उदार होना, इ = जाना, उदि - उन्द् = भिगोना, उन्द् - गीला करना, आद्र होना, कष्ट होना)। आ (उपसर्ग)। रोह (रुह् - जाना, चलना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। अनुष्टुप् (अनु - पीछे, स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। त्वा (सर्वनाम)। अवतु (अव् = रक्षा करना)। वैराजम् (वि - विशेष, राज् - चमकना, प्रकाशित होना)। साम (साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)। एकविंश (संख्या)। स्तोमः (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना, आत्मश्लाघा करना, मुंह देख के बोलना)। शरत् (शृ - सुनना, जाना, जानना, पाना, शृ - मार डालना, दुःख देना, पीड़ा करना, फटना, हिंसा करना, मारना, श्रि - सेवा करना, आश्रय करना)। ऋतुः (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। फलम् (फल् - फलित होना, उत्पन्न होना, जाना, विभाग करना)। द्रविणम् (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)।॥13॥

410. ऊर्ध्वाम् आ रोह पङ्क्तिः त्वा अवतु, शाक्वर-रैवते सामनी त्रिणाव-त्रयस्त्रिशौ,
स्तोमौ हेमन्त-शिशिरौ ऋतू, वर्चो द्रविणम् प्रति अस्तम् नमुचेः शिर॥14॥

संहितापाठ

ऊर्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु शाक्कररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणं प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः ॥14॥

मन्त्रार्थ :- ऊर्ध्वाम् - ऊर्ध्व, ऊपर, आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, रोह - चढ़ो, पंक्तिः = पंक्ति, विस्तार। त्वा - तुमको, अवतु - रक्षा करे, शाक्वर-रैवते - शाक्वर और रैवत, सामनी - साम, त्रिणाव-त्रयस्त्रिशौ - त्रिणव और तैंतस, स्तोमौ - स्तोम, हेमन्त-शिशिरौ - हेमन्त और शिशिर, ऋतू - ऋतुएं, वर्चो - प्रकाश, द्रविणम् = द्रविण को, द्रवित होने वाले को, प्रवाही को, ज्ञानी को, द्रवणशील, प्रवाहमान को, प्रति - प्रति, अस्तम् - अस्त को, प्रक्षेपित को, नमुचेः नमुचेः = नमनशील का, नमुच का, शिर - शिर॥ 14॥

भावार्थ :- विभिन्न ऋतुओं में, विविध परिस्थितियों में उन्नति करो, वेद-स्तुतियाँ रक्षा करेंगी, ऐसा सन्देश है। स्तुतियों के स्वाध्याय-साधना से हमें विविध लाभ प्राप्त होते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- ऊर्ध्वाम् (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। रोह (रुह् - जाना, चलना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। पंक्तिः (पञ्च् = व्यक्त करना, प्रसिद्ध करना, विस्तार करना)। त्वा (सर्वनाम)। अवतु (अव् = रक्षा करना)। शाक्वर-रैवते (शक्-शक्व - शक्तिमान् होना, समर्थ होना, सकना)। सामनी (साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)। त्रिणाव-त्रयस्त्रिशौ (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, नु-नव् - प्रशंसा करना, स्तुति करना, नूतन होना, नया होना)। स्तोमौ (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। हेमन्त-शिशिरौ (हि - जाना, जानना, पाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना, हिम - शीत होना, शि = तेज करना, तीक्ष्ण करना, कल्याण करना, शिष् - शेष रखना, बचाना, प्रयोजन करना)। ऋतू (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। वर्चः (वर्च = प्रकाशित होना)। द्रविणम् (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। प्रति (उपसर्ग)। अस्तम् (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। नमुचेः (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। शिरः (शि = तेज करना, तीक्ष्ण करना, कल्याण करना)।॥14॥

411. सोमस्य त्विषिः असि, तव इव मे त्विषिः भूयात्।
मृत्योः पाहि ओजो असि, सहो असि अमृतम् असि॥15॥

संहितापाठ

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात्। मृत्योः पाह्योजोऽसि सहोऽस्यमृतमसि॥15॥

मन्त्रार्थ :- सोमस्य - सोम का, त्विषिः - प्रकाश, असि हो, तव - तुम्हारा, इव - समान, मे - मेरा, त्विषिः त्विषिः - प्रकाश, भूयात् - हो जाये। मृत्योः - मृत्यु से, पाहि - रक्षा करो, ओजो - ओज, असि - हो, सहो - सहनशील, समर्थ, असि - हो, अमृतम् - अमृत, असि - हो॥ 15॥

भावार्थ :- सृष्टिकर्ता, ऐश्वर्यवान् परमात्मा सोम है। उसका प्रकाश उपासक दिव्य जनों ने प्राप्त किया है। हमारी कामना है कि हमें भी उसके समान प्रकाश प्राप्त हो। इसके लिए हमने परमात्मा के दिव्य गुणों ओज, अमरता, सहनशीलता आदि का स्मरण किया है, स्तुति की है। हमारा कर्तव्य है कि विविध दिव्य गुणों, दिव्य शक्तियों को स्वयम् अपने जीवन में उतारें तथा समाज में उन्हें व्याप्त करें, विस्तार दें।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सोमस्य (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। त्विषिः (त्विष् - प्रकाश होना, प्रकाशित होना, चमकना)। असि (अस् - होना)। तव (सर्वनाम)। इव (अव्यय)। मे (सर्वनाम)। त्विषिः - प्रकाश (त्विष् - प्रकाश होना, प्रकाशित होना, चमकना)। भूयात् (भू - होना)। मृत्योः (मृ = मरना, देहत्याग करना)। पाहि (पा - पालन करना, रक्षा करना)। ओजो (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। सहो (सह् - सहन करना, समर्थ होना)। अमृतम् (अ - नहीं, मृ = मरना)।॥15॥

(102) सूक्त 4

412. हिरण्यरूपा उषसो विरोके, उभौ इन्द्रा उत् इथः सूर्यः च।
आ रोहतम् वरुण मित्र गर्तम्, ततः चाक्षाथाम् अदितिम् दितिम्, च मित्रो असि वरुणो असि॥16॥

संहितापाठ

हिरण्यरूपाऽउषसो विरोकऽउभाविन्द्राऽउदिथः सूर्यश्च।आरोहतं वरुण मित्र गर्त्तं ततश्चक्षाथामदिति दितिं च मित्रोऽसि वरुणोऽसि।।16।।

मन्त्रार्थ :- हिरण्यरूपा = प्रकाशमान रूप वाले, उषसो - उषा का, विरोके - प्रकाश में, उभौ - दोनो, इन्द्रा - इन्द्र, उत् - ऊपर, इथः - गया हुआ, सूर्यः - सूर्य, च - और।आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, रोहतम् - चढ़ो, वरुण - वरुण, मित्र - मित्र, गर्तम् - गर्त को, ततः - उससे, चाक्षाथाम् - देखो, अदितिम् - अदिति को, दितिम् - दिति को, च - और, मित्रो - मित्र, असि - हो, वरुणो - वरुण, वरणीय, असि - हो।। 16।।

भावार्थ :- उषा के प्रकाश में इन्द्र तथा सूर्य दोनो ऊपर चढ़े।इसका भावार्थ है कि उषा काल में सूर्य का उदय हुआ तो सृजन तथा ऐश्वर्य का मार्ग प्रशस्त हुआ।रात्रि में विश्राम के पश्चातत् इन्द्र अर्थात् ईश्वर की उपासना करें तथा मानवीय कर्तव्यों का निर्वहन करें।विरोके शब्द को अव्यय मानकर इसका अर्थ अनन्तर, पश्चात् भी किया गया है।वि उपसर्ग मानने पर रु, रुच्, रुज् धातु से विरोके शब्द की निष्पत्ति मान सकते हैं।रुच् धातु का अर्थ रुचना, चमकना, प्रकाश होना होता है।इस प्रकार हिरण्यरूपा उषसो विरोके का अर्थ हिरण्यरूपमय उषा के प्रकाश में होगा।दिति शब्द में दी धातु स्पष्ट है। इसका अर्थ दीन तथा अदिति का अर्थ अदीन भी किया गया है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- हिरण्यरूपा (हिरण - प्रकाश करना, शब्द करना, रूप - बनाना, आकार बनाना, रचना करना, मन में रूपाकृति लाना)।उषसो (उषस् = प्रभात होना)।विरोके (वि - विशेष, रुच् - चमकना, प्रकाश होना, रुचना)। उभौ (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना)।इन्द्रा (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)।उत् (अव्यय)।इथः (इ - जाना, जानना, पाना, इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)।सूर्यः (सुर् = ऐश्वर्य, प्रकाश होना)।च (अव्यय)।आ (उपसर्ग)। रोहतम् (रुह् - जाना, चलना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)।वरुण (वृ - वरण करना)।मित्र (मिद् - स्नेह करना)।गर्तम् (गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना)।ततः (सर्वनाम)।चक्षाथाम् (चक्ष् = कहना, देखना)।अदितिम् (अ - नहीं, अद् = खाना, दी = नष्ट होना)।दितिम् (अद् = खाना, दी = नष्ट होना)।मित्रो (मिद् - स्नेह करना)।असि (अस् - होना)। वरुणो (वृ - वरण करना)।।16।।

413. सोमस्य त्वा द्युम्नेन अभि, सिञ्चामि अग्नेः भ्राजसा, सूर्यस्य वर्चसा इन्द्रस्य इन्द्रियेण। क्षत्राणाम् क्षत्रपतिः, एधि अति दिद्यून् पाहि।। 17।।

संहितापाठ

सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्भाजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यति दिद्यून् पाहि।।17।।

मन्त्रार्थ :- त्वा - तुमको, सोमस्य - सोम का, द्युम्नेन - अग्रगामी प्रकाश द्वारा, अभि सिञ्चामि - अभि सिञ्चन करता हूँ, अग्नेः - अग्नि का, भ्राजसा - दीप्ति द्वारा, प्रकाश द्वारा, सूर्यस्य - सूर्य का, वर्चसा - वर्चस् द्वारा, प्रकाश द्वारा, इन्द्रस्य - इन्द्र का, इन्द्रियेण - इन्द्रिय, ऐश्वर्य द्वारा।क्षत्राणाम् - क्षत्रों का, क्षत्रपतिः - क्षत्रपति, एधि - प्राप्त हो, अति - अधिक, दिद्यून् = प्रकाश, अग्रगामी को, पाहि - रक्षा करो।। 17।।

भावार्थ :- सोम अर्थात् ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता परमात्मा के प्रकाश से अभिसिञ्चन करने का भाव है, दिव्य चेतना से अनुप्राणित होना।अग्नि, सूर्य, इन्द्र, आदि विविध नामों से परमात्मा का स्मरण किया गया है।इससे क्षत्रपति का गौरव प्राप्त हो तथा साथ में यह कर्तव्य भी है कि प्रकाशवान् की रक्षा करें।तभी दिव्य अनुदान की सार्थकता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- सोमस्य (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)।त्वा (सर्वनाम)। द्युम्नेन (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना)।अभि (उपसर्ग)। सिञ्चामि (सिञ्च् - सिञ्चन करना)।अग्नेः (अग् = गति करना, अग्रणी होना)।भ्राजसा (भ्राज् - चमकना, प्रकाशित होना)। सूर्यस्य (सुर् = ऐश्वर्य, प्रकाश होना)।वर्चसा (वर्च् = प्रकाशित होना)।इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य (ऐश्वर्य) होना)। इन्द्रियेण (इन्द = परम ऐश्वर्य (ऐश्वर्य) होना)।क्षत्राणाम् (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)।क्षत्रपतिः (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना, ऐश्वर्य होना, स्वामी होनाा)।एधि (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति,

इ - जाना, एध - बढ़ना)। अति (उपसर्ग, अव्यय)। दिद्यून् (द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना, द्युत - चमकना, प्रकाशित होना, दी = क्षय होना, ह्रास होना, दु = दुःख भोगना)। पाहि (पा = रक्षा करना)।॥17॥

414. इमम् देवा असपत्नम् सुवध्वम्, महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय,
महते जानराज्याय इन्द्रस्य इन्द्रियाय।
इमम् अमुष्य पुत्रम् अमुष्यै, पुत्रम् अस्यै विश एष वो अमी राजा,
सोमो अस्माकम् ब्राह्मणानाम् राजा॥18॥

संहितापाठ

इमं देवाऽअसपत्नꣳसुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय।इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाराजा।॥18॥

मन्त्रार्थ :- इमम् - इसको, देवा - देवगण, असपत्नम् - असपत्न को, ऐश्वर्यहीन को, सुवध्वम् = उत्पन्न करो, ऐश्वर्य दो, फेंक दो, भेज दो, महते = महत् के लिए, महान्, पूज्य के लिए, क्षत्राय - क्षत्र के लिए, महते = महत् के लिए, महान्, पूज्य के लिए, ज्यैष्ठ्याय - ज्येष्ठ के लिए, महते = महत् के लिए, महान्, पूज्य के लिए, जानराज्याय - जनराज्य के लिए, इन्द्रस्य - इन्द्र का, ऐश्वर्यवान् का, इन्द्रियाय - इन्द्रिय के लिए, ऐश्वर्य के लिए। इमम् - इसको, अमुष्य = यह, इसका, पुत्रम् - पुत्र को, अमुष्यै - इसके लिए, पुत्रम् - पुत्र को, अस्यै - इसके लिए, विश - प्रवेशी, प्रवेश करने वाला, एष - यह, वो - तुम्हारा, अमी - यह, राजा - राजा, सोमो - सोम, अस्माकम् - हमारा, ब्राह्मणानाम् - ब्राह्मणों का, राजा - राजा (है)॥ 18॥

भावार्थ :- परमात्मा असपत्न अर्थात् ऐश्वर्यहीन को सुवध्वम् अर्थात् ऐश्वर्य देने वाला है। असपत्न शब्द में पत् धातु है, इसका अर्थ ऐश्वर्य होना है। जो असपत्न है, अर्थात् ऐश्वर्यवान् नहीं है। इसमें जनराज्य का उल्लेख किया गया है। वैदिक संस्कृति में राजा वास्तव में जनता का प्रतिनिधि ही होता है। वह जनहित के लिए ही शासन का दायित्व स्वीकार करता है, वह निरंकुश शासक नहीं हो सकता है। सुवध्वम् पद में सु धातु है, अतः इसका अर्थ उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- इमम् (सर्वनाम)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। असपत्नम् (अ - नहीं, स - समान, साथ, सहित, अस् = होना, फेकना, भेजना, उड़ाना, पत् = ऐश्वर्य होना)। सुवध्वम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। महते (मह् - पूजा करना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। क्षत्रम् (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना, रक्षा करना)। ज्यैष्ठ्याय (ज्या - वृद्ध होना, बड़ा होना, बर्द्धित होना, जि - जीतना, जेष् - जाना, चलना, जानना, पाना, जिष् - सेवा करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना)। जानराज्याय (जन् = उत्पन्न होना, राज् = चमकना, प्रकाशित-शोभित होना)। इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। इन्द्रियाय (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। अमुष्य (सर्वनाम)। पुत्रम् (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। अमुष्यै (अमुष्यै = इसके लिए, सर्वनाम, अम् = शब्द करना, बोलना, सेवा करना, खाना, जाना, जानना, पाना)। पुत्रम् (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। अस्यै (सर्वनाम)। विश (विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना, सब ओर फैलना)। एषः (सर्वनाम)। वः (सर्वनाम)। अमी (अमी - यह, सर्वनाम, अम् = शब्द करना, बोलना, सेवा करना, खाना, जाना, जानना, पाना)। राजा (राज् = चमकना, प्रकाशित-शोभित होना)। सोमः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। अस्माकम् (सर्वनाम)। ब्राह्मणानाम् (बृह् = बढ़ना, बड़ा होना, जानना)।॥18॥

415. प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठात्, नावः चरन्ति स्वसिच इयानाः,
ता आ अववृत्रन् अधराक् उदक्ता, अहिम् बुध्न्यम् अनु रीयमाणाः।
विष्णोः विक्रमणम् असि, विष्णोः विक्रान्तम् असि, विष्णोः क्रान्तम् असि॥19॥

संहितापाठ

प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिचऽइयानाः।ताऽआववृत्रन्नधरागुदक्ताऽअहिं बुध्न्यमनु रीयमाणाः। विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि।॥19॥

मन्त्रार्थ :- प्र - प्रकृष्ट, अधिक, पर्वतस्य = पर्वत का, पूर्ण का, वृषभस्य - वृषभ का, बरसने वाले का, पृष्ठात् = पृष्ठ से, पोषण से, नावः - स्तुतियाँ, नावें, चरन्ति - चलती हैं, स्वसिच -स्वयम् सिंचन करने वाले, इयानाः - गतिशील, ता - वे, आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, अववृत्रन् = अववृत्र, अववर्तन करते हुए, अधराक् - नीचे, उदक्ता - उदक्त, उर्ध्वगामी, अहिम् = व्यापक, बुध्न्यम् = बोधमय, बोधयुक्त को, अनु-रीयमाणाः - अनुश्रवण करते हुए। विष्णोः = विष्णु का, सर्वव्यापी का, विक्रमणम् - विक्रमण, असि = हो, विष्णोः = विष्णु का, सर्वव्यापी का, विक्रान्तम् - विक्रान्त, असि = हो, विष्णोः = विष्णु का, सर्वव्यापी का, क्रान्तम् - क्रान्त, असि = हो।। 19 ।।

भावार्थ :- पूर्ण के बरसने वाले पोषण से स्तुतियाँ चलती हैं। पूर्ण तो परमात्मा ही है। उसका पोषण बरसता रहता है। इस पोषण की वर्षा को जब हम अनुभव करते हैं तो स्तुतियाँ चलती हैं, इसी पोषण से हमारे जीवन की नावे भी चलती हैं। इस वर्षा से स्वयम् सिञ्चन करने वाले उन स्तुतियों का अनुश्रवण करते हैं। विष्णु अर्थात् सर्वव्यापी परमात्मा के विक्रम, पराक्रम को, पदक्षेप को अनुभव करते हैं तथा स्वयम् भी जीवन में पराक्रम करने का प्रयास करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- प्र (उपसर्ग)। पर्वतस्य (पर्व् - पूर्ण करना, विभाग करना)। वृषभस्य (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। पृष्ठात् (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना)। नावः (नौ - तैरना, नु - स्तुति करना)। चरन्ति (चर - जाना, खाना, आचरण करना)। स्वसिच (सिञ्च् - सिञ्चन करना)। इयानाः (इ - गति करना, जाना)। ताः (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। अववृत्रन् (वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना)। अधराक् (अव्यय)। उदक्ता (उत् - ऊर्ध्व, ऊपर, अञ्च् - गति करना, जाना)। अहिम् (अह् = फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, अर्पण करना, समर्पण करना)। बुध्न्यम् (बुध् - बोध होना, बोध करना, जानना, समझना)। अनु = पश्चात्, पीछे (उपसर्ग)। रीयमाणाः (री - जाना, बहना, झरना, चूना, टपकना, गिरना, नीचे आना, सुनना)। विक्रमणम् (वि - विशेष, क्रम् - चलना, पदक्षेप करना)। विष्णोः (विष्ण-विष् -विविष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना, व्यापना, फैलना, प्रसृत होना)। विक्रान्तम् (वि - विशेष, क्रम् - चलना, पदक्षेप करना)। क्रान्तम् (क्रम् - चलना, पदक्षेप करना)। असि (अस् = होना)। 19 ।।

416. प्रजापते न त्वत् एतानि अन्यो, विश्वा रूपाणि परि ता बभूव।
यत्कामाः ते जुहुमः तत् नो, अस्तु अयम् अमुष्य पिता असौ,
अस्य पिता वयम् स्याम, पतयो रयीणाम् स्वाहा।
रुद्र यत् ते क्रिवि परम् नाम तस्मिन्, हुतम् असि अमेष्टम् असि स्वाहा ।। 20 ।।

संहितापाठ

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽस्त्वयममुष्य पितासावस्य पिता वयस्याम पतयो रयीणास्वाहा। रुद्र यत्ते क्रिवि परं नाम तस्मिन् हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ।20 ।।

मन्त्रार्थ :- प्रजापते - हे प्रजापति, न - नहीं, त्वत् - तुमसे, एतानि - ये, अन्यो - अन्य, विश्वा - सभी, रूपाणि - रूप, परि - परितः, ता - वे, बभूव - हुआ। यत् - जो, कामाः - कामनाएं, ते - वे, जुहुमः - देते हैं, समर्पित करते हैं, तत् - वह, नो - हमारा, अस्तु - हो, अयम् - यह, अमुष्य - इसका, पिता - पिता, असौ - यह, अस्य - इसका, पिता - पिता, वयम् - हम, स्याम - हों, पतयो - पति, ऐश्वर्यवान्, रयीणाम् - गतियों के, स्वाहा - व्यापक। रुद्र - रुद्र, यत् - जो, ते - वे, क्रिवि - कर्मशील, परम् - परम्, अन्तन्त, नाम - नाम, तस्मिन् - उसमें, हुतम् - हुत, दान, असि - हो, अमेष्टम् = सेवाभावी विद्वान् की इच्छा वाला, असि - हो, स्वाहा - व्यापक।। 20 ।।

भावार्थ :- प्रजा का अर्थ है विशेष रूप से उत्पन्न हुआ और प्रजापति उस उत्पन्न हुए का स्वामी है। जो कुछ भी सृष्टि में उत्पन्न हुआ है, उस प्रजापति परमात्मा से परे, उससे पृथक् अन्य कुछ भी नहीं है, सब कुछ परमात्मा ही है, उसी का रूप है। अतः हम जो भी कामना करते हैं, वे सभी हमारी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। हम रयि अर्थात् दिव्य वाणी वेद के स्वामी, अधिकारी तथा रक्षक हो, यहीं प्रार्थना है। जुहुमः का अर्थ है हम दान करते हैं, आदान-प्रदान करते हैं। हम परमात्मा

के साथ आदान प्रदान करते हैं तो उसके हो जाते हैं। हमें स्वतः सब कुछ प्राप्त हो जाता है। क्योंकि सब कुछ परमात्मा ही है, उससे पृथक कुछ है ही नहीं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- प्रजापते (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। न (अव्यय)। त्वत् (सर्वनाम)। एतानि (सर्वनाम)। अन्यो (सर्वनाम)। विश्वा (सर्वनाम)। रूपाणि (रूप - आकार बनाना, रचना करना, मन में रूपाकृति लाना)। परि (उपसर्ग)। ता (सर्वनाम)। बभूव (भू = होना, प्राप्त होना)। यत् (सर्वनाम)। कामाः (कम् - कामना करना, इच्छा करना, चाहना)। ते (सर्वनाम)। जुहुमः (हु-जुहु = दान करना, आदान-प्रदान करना, ग्रहण करना, तृप्त करना, जु - जाना, शीघ्र जाना, भागना)। तत् (सर्वनाम)। नः (सर्वनाम)। अस्तु (अस् = होना)। अयम् (सर्वनाम)। अमुष्य (सर्वनाम)। पिता (पि - जाना, जानना, पाना, पा- पालन करना, रक्षा करना)। असौ (सर्वनाम)। अस्य (सर्वनाम)। वयम् (सर्वनाम)। स्याम (अस् = होना)। पतयः (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। रयीणाम् (रय् = जाना, जानना, पाना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। रुद्र (रुद् = रुदन् करना, करुण होना)। क्रिवि (कृ - करना, क्रिव् - करना, हिंसा करना)। परम् (अव्यय)। नाम (नाम - नाम होना, नाम रखना, नम् = नमन करना, सम्मान करना, शब्द करना)। तस्मिन् (सर्वनाम)। हुतम् (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। असि (अस् = होना)। अमेष्टम् (अम् = जाना, जानना, शब्द करना, सेवा करना, रोग होना, इष् - चाहना, इच्छा करना)।। 20 ।।

417. इन्द्रस्य वज्रो असि मित्रावरुणयोः, त्वा प्रशास्त्रोः प्र-शिषा युनज्मि।
अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वा, अरिष्टो अर्जुनो मरुताम्, प्र-सवेन जय आपाम, मनसा सम् इन्द्रियेण ।।21 ।।

संहितापाठ

इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि।अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वारिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण।।21 ।।

मन्त्रार्थ :- इन्द्रस्य - इन्द्र का, वज्रो - वज्र, असि - हो, मित्रावरुणयोः - मित्र और वरुण का, त्वा - तुमको, प्रशास्त्रोः - प्रकृष्ट शास्त्र का, प्र-शिषा - प्रशिष से, प्रकृष्ट, अधिक शासन से, युनज्मि - मिलाता हूँ। अव्यथायै - अव्यथा के लिए, त्वा - तुमको, स्वधायै - स्वधा के लिए, त्वा, - तुमको, अरिष्टो - अरिष्ट, अर्जुनो - अर्जुन, मरुताम् - मरुतों का, प्र-सवेन - प्रसवन से, जय - विजय हो, आपाम व्याप्त हुआ, मनसा - मन से, सम् - सम्यक्, इन्द्रियेण - इन्द्रिय से, ऐश्वर्यवान् से।। 21।।

भावार्थ :- परम ऐश्वर्यवान् इन्द्र परमात्मा का वज्र अर्थ गति हम ही हैं। परमात्मा तो सर्वत्र व्याप्त है। उसकी गति उसकी सृष्टि में ही प्रकट है। हम भी उसका एक रूप हैं। इसी से हमको सब कुछ प्राप्त है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। वज्रो (वज् - गति करना, जाना)। असि (अस् = होना)। मित्रावरुणयोः (मिद् - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, नरम होना, मृदुल होना, वृ = वरण करना, अपनाना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। त्वा (सर्वनाम)। प्रशास्त्रोः (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, शास्-शस् - अनुशासन करना, इच्छा करना, आशीर्वाद देना, शस् - काटना, मारना, हिंसा करना)। प्र-शिषा (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, शिष् - प्रयोजन करना, शेष रखना, अनुशासन करना, आशीर्वाद देना, हिंसा करना)। युनज्मि (यु = बांधना, बन्धन करना, गूंथना)। अव्यथायै (अ = नहीं, व्यथ् = डरना, दुःखी होना)। स्वधायै (स्व = निज, अपना, धा = धारण करना, पहनना, पोषण करना, रक्षण करना, धि - पास रखना या होना, युक्त होना)। अरिष्टो (अ - नहीं, ऋ-अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, रिष- हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, मारने का यत्न करना)। अर्जुनो (अर्ज - लाभ करना, प्राप्त करना, पाना)। मरुताम् (मृ = मरना, देहत्याग करना)। प्र-सवेन (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। जय (जि - सर्वोत्कर्ष से रहना, सबसे बढ़ के होना, जीतना, पराभव करना)। मनसा (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। सम् (उपसर्ग)। इन्द्रियेण (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)।।21।।

(103) सूक्त 5

418. मा ते इन्द्र ते वयम् तुराषाट्, अयुक्तासो अब्रह्मता वि दसाम।
तिष्ठ रथम् अधि यम् वज्रहस्त, आ रश्मीन् देव यमसे स्वश्वान्॥22॥

संहितापाठ

मा तऽइन्द्र ते वयं तुराषाडयुक्तासोऽअब्रह्मता विदसाम। तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्ता रश्मीन्देव यमसे स्वश्वान्।।22॥

मन्त्रार्थ :- तुराषाट् - शीघ्रगामी, शीघ्रकारी, इन्द्र - इन्द्र, ते - तुम्हारा, वयम् - हम, ते - तुम्हारा, तुम्हारे लिए, अयुक्तासो - अयुक्त, अब्रह्मता - ब्रह्मता-हीन, मा - नहीं, वि - विशेष, दसाम = रक्षण, पालन करें, नष्ट हों। देव - हे देव, वज्रहस्त - वज्रहस्त, हाथ में वज्र वाले, तिष्ठ - ठहरो, रथम् - रथ को, अधि - अधिकृत कर, ऊपर, यम् - जिसको, स्वश्वान् - अच्छे अश्वों को, रश्मीन् - रश्मियों को, आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, यमसे - यमन करते हो॥22॥

भावार्थ :- प्रार्थना की गयी है कि हम अयुक्त न हों, ब्रह्मता से हीन न हों। अयुक्त होंना, ब्रह्मता से हीन होना नष्ट होना ही है, अतः श्लेष से स्पष्ट है कि नष्ट न हों। श्लेष से यह अर्थ भी ध्वनित है कि अयुक्त तथा ब्रह्मता से हीन का पालन, रक्षण भी नहीं करें। स्वश्वान् का धातुज शाब्दिक अर्थ है अच्छे तीव्र गति युक्त, व्यापक को। इन गुणों से युक्त को अश्व कहा जाता है। इसीलिए पशु विशेष को भी अश्व कहा जाता है। यहाँ धातुज शाब्दिक अर्थ का महत्व स्पष्ट है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- मा (अव्यय)। ते (सर्वनाम)। इन्द्र (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। वयम् (सर्वनाम)। तुराषाट् (तुर् = शीघ्रता करना, शीघ्र जाना)। अयुक्तासो (अ - नहीं, युज् - जोड़ना, युक्त करना)। अब्रह्मता (अ - नहीं, ब्रह् - बढना, बड़ा होना)। वि (उपसर्ग)। दसाम (दस् - रक्षण, पालन, स्थापन करना, देखना, नष्ट होना, नष्ट करना, डसना)। तिष्ठ (स्था-तिष्ठ् - ठहरना)। रथम् (रथ् = जाना, ले जाना)। अधि (उपसर्ग)। यम् (सर्वनाम)। वज्रहस्त (वज् - गति करना, जाना, हस्त - देना, लेना, ग्रहण करना)। आ (उपसर्ग)। रश्मीन् (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। देव (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। यमसे (यम - आवरण करना, अपने अधीन रखना, पोषण करना, नियमन करना, प्रतिबन्ध करना, रोकना, अवरोध करना, नाश करना, अन्त करना)। स्वश्वान् (सु - अच्छा, सुन्दर, उत्तम, अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)।।22॥

419. अग्नये गृह-पतये स्वाहा, सोमाय वनस्पतये स्वाहा, मरुताम् ओजसे स्वाहा, इन्द्रस्य इन्द्रियाय स्वाहा।
पृथिवि मातः मा मा हिंसीः मो अहम् त्वाम्॥23॥

संहितापाठ

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा।मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा॥पृथिवि मातर्मा मा हिꣳसीर्मोऽहं त्वाम्।।23॥

मन्त्रार्थ :- अग्नये = अग्नि के लिए, गृह-पतये - गृहपति के लिए, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, सोमाय वनस्पतये स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, मरुताम् = मरुतों का, मरणशीलों का ओजसे = ओज के लिए, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, इन्द्रस्य = इन्द्र का, परम ऐश्वर्यशाली का, इन्द्रियाय = इन्द्रिय के लिए, इन्द्र से सम्बन्धित के लिए, ऐश्वर्य के लिए, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता। पृथिवि - हे पृथ्वी, मातः - माता, मा - नहीं, मा - नहीं, हिंसीः - हिंसित करो, मो - नहीं, अहम् - मैं, त्वाम् - तुमको (हिंसित करूँ)॥23॥

भावार्थ :- गृहपति अग्नि के लिए, मरुतों अर्थात् मरणशीलों के ओज के लिए, = इन्द्रिय के लिए, इन्द्र से सम्बन्धित के लिए, ऐश्वर्य के लिए व्यापकता की कामना की गयी है। गृहपति को अग्नि अर्थात् गतिमान होना चाहिए। गतिशीलता के विना गृह का पालन, रक्षण, ऐश्वर्य सम्भव नहीं हो पाता है। हम मरुत् अर्थात् मरणशील हैं, ओजस्वी होकर हम जीवन को सार्थक बना सकते हैं। इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा तो परम ऐश्वर्यवान् है ही, उसके उपासक तथा प्रमुख ऐश्वर्यवान् लोग भी ऐश्वर्यवान् हों, यह समाज के लिए महत्वपूर्ण है। माता पृथ्वी हमें प्राकृतिक आपदाओं से हिंसित न करे, साथ ही हम भी पृथ्वी माता को हिंसित न करें, पृथ्वी की प्राकृतिक सम्पदाओं का अनुचित दोहन न करें तथा पर्यावरण

के संरक्षण का ध्यान रखें, प्रदूषण से पृथ्वी को हिंसित न करें, यह भावना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अग्नये (अग् = ऊपर जाना, ऊर्ध्व गमन करना, आगे जाना)। गृहपतये (गृह - लेना, स्वीकार करना, निवास करना, पत- श्री मान् होना, अमानवी पराक्रम करना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। सोमाय (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। वनस्पतये (वन - शब्द करना, सेवा करना, चाकरी करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। मरुताम् (मृ = मरना)। ओजसे (ओज - शक्तिमान् होना, जीवित होना, बढ़ना)। इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। इन्द्रियाय (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। पृथिवि (पृथ - विस्तार होना, फैलाना, फेंकना)। मातः (मा - मान करना, मापना)। मा (अव्यय)। हिंसीः (हिंस् = हिंसा करना, मारना, सताना)। अहम् (सर्वनाम)। त्वाम् (सर्वनाम)॥ 23॥

420. हंसः शुचिषत् वसुः अन्तरिक्षसद्, होता वेदिषत् अतिथिः दुरोणसत्।
नृषत् वरसत् ऋतसत् व्योमसत्, अब्जा गोजा ऋतजा, अद्रिजा ऋतम् बृहत्॥24॥

संहितापाठ

हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाऽऋतं बृहत्।24॥

मन्त्रार्थ :- हंसः = मारने वाला, हंसने वाला, प्रसन्न रहने वाला, प्रसन्न करने वाला, शुचिषत् - पवित्र किया, पवित्रता में स्थित, वसुः = वसु, वसने वाला, वसाने वाला, अन्तरिक्षसद् = अन्तरिक्ष में चलने वाला, अन्तरिक्ष में स्थित, होता = दानी, वेदिषत् - जाना, अतिथिः - सतत गमनशील, दुरोणसत् = दूर ले गया, ज्ञान, गमन, प्राप्ति हुआ, नृषत् - नर में स्थित, वरसत् - वरणीय में स्थित, ऋतसत् - ऋत में स्थित, व्योमसत् = व्योमसद्, व्योम में स्थित, अब्जाः = पालन-रक्षण में उत्पन्न, गोजाः = शब्द करने वाला, उपदेशक, कष्ट, ऋतजाः = ऋत से उत्पन्न, अद्रिजाः = अद्रि से उत्पन्न, ऋतम् = सार्वभौम नियम, सत्य, ऋत, बृहत् = बड़ा।24॥

भावार्थ :- परमात्मा विविध गुणों से युक्त होकर सृष्टि के विविध रूपों में व्याप्त है। इन गुणों का विकास कर हम आनन्दमय रह सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- हंसः (हन् - मारना, हंस = हंसना, हंसाना, प्रसन्न करना, प्रसन्न रहना, प्रसन्न होना)। शुचिषत् (शुच्-शुक्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। वसुः (वस् = निवास करना, दया-प्रीति करना, वसु = निश्चल होना, निःछल होना)। अन्तरिक्षसद् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना, सद् - चलना, स्थित होना)। होता (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। वेदिषत् (विद् = जानना)। अतिथिः (अत् = सतत गमन करना, निरन्तर चलना)। दुरोणसत् (दुः = बुरा, अनुचित, कठिन, ओण् - दूर ले जाना, द्रू-द्रूण - गति, ज्ञान, प्राप्ति करना, हिंसा करना)। नृषत् (नृ - ले जाना, सद् - चलना, स्थित होना)। वरसत् (वृ - वरण करना, सद् - चलना, स्थित होना)। ऋतसत् (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना, सद् - चलना, स्थित होना)। व्योमसत् (वि - विशेष, उ - शब्द करना, रक्षा करना, सुखाना, ऊ - शब्द करना, विश्वास करना, सद् - बैठना, जाना, स्थित होना)। अब्जाः (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना)। गोजाः (गुज् - शब्द करना, अस्पष्ट बोलना, चुराना, गोज् - कष्ट होना)। ऋतजाः (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। अद्रिजाः (अ - नहीं, दृ - हिंसा करना, आदर करना, सत्कार करना, अद् - खाना, ग्रहण करना, आत्मसात् करना, नष्ट करना)। ऋतम् (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)।24॥

(104) सूक्त 6

421. इयत् असि आयुः असि आयुः मयि धेहि,
युङ् असि वर्चो असि वर्चो मयि धेहि, ऊर्क् असि ऊर्जम् मयि धेहि।
इन्द्रस्य वाम् वीर्यकृतो, बाहू अभि उपावहरामि॥25॥

संहितापाठ

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेहि। इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहूऽअभ्युपावहरामि।।25।।

मन्त्रार्थ :- इयत् - इतना, असि = हो, आयुः = आयु, असि = हो, आयुः = आयु, मयि = मुझमें, धेहि - धारण कराओ, युङ् = युक्त कीजिये, असि = हो, वर्चः = प्रकाश, असि = हो, युङ् = युक्त कीजिये, मयि = मुझमें, धेहि - धारण कराओ, ऊर्क् = विद्या, निरन्तर गति, विस्तार करने वाले, ऊर्जा, असि = हो, ऊर्जम् = ऊर्जा का, मयि = मुझमें, धेहि - धारण कराओ, इन्द्रस्य = इन्द्र का, परम ऐश्वर्यशाली का, वाम् = तुम दोनो को, वीर्यकृतः = पराक्रम करने वाले, बाहू = भुजा, हाथ, प्रयास करने वाले युगल, अभ्युपावहरामि = निकट ले जाता हूँ।।25।।

भावार्थ :- इयत् का अर्थ है इतना ही, सीमित। आयु सीमित है। कोई भी अनन्त काल तक जीवित नहीं रह सकता है। अतः जितना सम्भव है, उत्तम आयु धारण करें, प्राप्त आयु का सदुपयोग करें। वर्चस् अर्थात् आध्यात्मिक प्रकाश से युक्त हों। ऊर्जावान् बनें, पराक्रमी बनें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- इयत् (इ = जाना, जानना, पाना)। असि (अस् - होना)। आयुः (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। मयि (सर्वनाम)। धेहि (धा-धि - धारण करना)। युङ् (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना, युगि - छोड़ देना, त्याग करना)। वर्चः (वर्च = प्रकाशित होना)। ऊर्क् (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना, उरु - बहुत, अधिक, उर् = विस्तार करना, जाना, चलना, निरन्तर चलना, ऊ - शब्द करना, ध्वनि करना, विश्वास करना)। इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। वाम् (सर्वनाम)। वीर्यकृतः (वीर् = पराक्रम करना)। बाहू (बाह् - प्रयास करना, बह् - बहना, गति करना, हिंसा करना)। अभ्युपावहरामि (अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, उप = समीप, निकट, अव - नीचे, निम्न, हृ - हरण करना, ले जाना)।। 25।।

422. स्योना असि सुषदा असि, क्षत्रस्य योनिः असि।
स्योनाम् आ सीद सुषदाम् आ सीद, क्षत्रस्य योनिम् आ सीद।।26।।

संहितापाठ

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि। स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद।।26।।

मन्त्रार्थ :- स्योना = सुखकारी, असि = हो। **सुषदा** = सद्विद्या, सुपथ, सुन्दर बैठने योग्य, असि = हो। क्षत्रस्य - क्षत्र का, योनिः = योनि, बन्धन, असि = हो। स्योनाम् = सुखों का, आ-**सीद** = बैठो, सुषदाम् -, आ-**सीद** = बैठो । क्षत्रस्य - क्षत्र का, योनिम् = योनि को, बन्धन को , आ-**सीद** = बैठो ।।26।।

भावार्थ :- सुख हम सभी चाहते हैं। इसके लिए हमको सुखकारी होना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- स्योना (स्योन् = सुख होना, सुख देना)। असि (अस् - होना)। सुषदा (सु - अच्छा, सद् = जाना, जानना, चलना, स्थित होना)। क्षत्रस्य (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। योनिः (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)। स्योनाम् (स्योन् = सुख होना, सुख देना)। आ-सीद (आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, उपसर्ग, सद् = जाना, जानना, चलना, स्थित होना)। सुषदाम् (सु - अच्छा, सद् = जाना, जानना, चलना, स्थित होना)। क्षत्रस्य (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। योनिम् (यु = मिलाना, अलग करना, बन्धन होना)।।26।।

423. नि षसाद धृतव्रतो, वरुणः पस्त्यासु आ। साम्राज्याय सुक्रतुः।।27।।

संहितापाठ

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः।।27।।

मन्त्रार्थ :- धृतव्रतो - व्रत धारण करने वाला, वरुणः - वरुण, वरणीय, पस्त्यासु - बन्धन, गति, धारण, घर्षण में, आ = समन्तात्, सम्यक्, पूर्णतः, साम्राज्याय - साम्राज्य के लिए, सुक्रतुः - सुन्दर कर्म वाला, नि-षसाद = बैठा।। 27।।

भावार्थ :- व्रत धारण करने वाला उपासक वरणीय है। वह सुन्दर कर्म वाला है। वही साम्राज्य के लिए उपयुक्त के लिए, सम्यक् प्रकाश के योग्य है।। 27।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- नि-ससाद (नि = नितराम्, निरन्तर, निश्चित, उपसर्ग, सद् = जाना, जानना, चलना, स्थित होना)। धृतव्रतः (धृ - धारण करना, वृ - वरण करना)। वृणः (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। पस्त्यासु (पष् - बन्धन होना, बाँधना, चलना, जाना, घर्षण करना, धारण करना)। आ (उपसर्ग)। साम्राज्याय (सम् - सम्यक्, राज् - प्रकाशित होना)। सुक्रतुः (सु - सुन्दर, अच्छा, उत्तम, कृ - करना)।। 27।।

424. अभिभूः असि एताः ते पञ्च दिशः कल्पन्ताम्, ब्रह्मन् त्वम् ब्रह्मा असि, सविता असि, सत्यप्रसवो वरुणो असि, सत्यौजा इन्द्रो असि, विशौजा रुद्रो असि सुशेवः। बहुकार श्रेयस्कर भूयस्कर, इन्द्रस्य वजो असि तेन मे रध्य।। 28।।

संहितापाठ

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्मँस्त्वं ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रवसो वरुणोऽसि सत्यौजाऽइन्द्रोऽसि विशौजा रुद्रोऽसि सुशेवः। बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य।।28।।

मन्त्रार्थ :- अभिभूः - अभिभूत, असि - हो, एताः - ये, ते - तुम्हारा, पञ्च - पाँच, दिशः - दिशायें, कल्पन्ताम् - कल्पना करें, ब्रह्मन् - हे ब्रह्मन्, त्वम् - तुम, ब्रह्मा - ब्रह्मा, असि - हो, सविता - सविता, असि - हो, सत्य-प्रसवो - सत्य के प्रकृष्ट ऐश्वर्य वाले, उत्पन्न करने वाले, वरुणो - वरुण, वरणीय, असि - हो, सत्यौजा - सत्य के ओज युक्त, इन्द्रो - इन्द्र, असि - हो, विशौजा - विश के ओज युक्त, रुद्रो - रुद्र, असि - हो, सुशेवः - सुन्दर शेव युक्त। बहुकार - बहुत करने वाले, श्रेयस्कर - श्रेय करने वाले, भूयस्कर - बहुशः करने वाले, इन्द्रस्य - इन्द्र के, वजो - वज्र, असि - हो, तेन - उससे, उस कारण से, मे - मुझे, रध्य - राधन करो।। 28।।

भावार्थ :- परमात्मा अभिभूत है, दिशायें उसी से कल्पित, सृजित हैं। वही ब्रह्मा है, सविता है, वरुण है, इन्द्र है, रुद्र है, अनन्त नामों से तथा गुणों से हम उसकी ही उपासना करते हैं, स्तुति करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अभिभूः (अभि - उपसर्ग, भू - होना)। असि (अस् - होना)। एताः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। पञ्च (संख्या)। दिशः (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। कल्पन्ताम् (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। ब्रह्मन् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। त्वम् (सर्वनाम)। ब्रह्मा (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। सत्य-प्रसवो (सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना, सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। वरुणो (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। सत्यौजा (सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना, ओज - शक्तिमान् होना, जीवित होना, बढ़ना)। इन्द्रो (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। विशौजा (विश - भीतर जाना, चारों ओर फैलना, ओज - शक्तिमान् होना, जीवित होना, बढ़ना)। रुद्रो (रुद् = रुदन करना, रुलाना)। सुशेवः (सु - अच्छा, सुन्दर, शेव् - सेचन, घर्षण, सेवा करना, शिव् = कल्याण होना, सुख होना)। बहुकार (बहु - बहुत, अनेक, कृ = करना)। श्रेयस्कर (श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना, कृ = करना)। भूयस्कर (भूयः - पुनः - पुनः, कृ = करना)। इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। वज्रो (वज् - गति करना, जाना, हस्त - देना, लेना, ग्रहण करना)। तेन (सर्वनाम)। मे (सर्वनाम)। रध्य (रध - शुद्ध होना, निदोष होना, पूर्ण करना, समाप्त करना, परिपक्व होना, अपकार करना, हिंसा करना, राध - बढ़ना, निर्णय करना, सिद्ध होना)। 28।।

425. अग्निः पृथुः धर्मणः पतिः जुषाणो, अग्निः पृथुः धर्मणः पतिः आज्यस्य वेतु स्वाहा,

स्वाहाकृता सूर्यस्य रश्मिभिः, यतध्वम् सजातानाम् मध्यमेष्ठ्याय ॥ 29 ॥

संहितापाठ

अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणोऽअग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिराज्यस्य वेतु स्वाहा। स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिभिर्यतध्वꣳसजातानां मध्यमेष्ठ्याय ।।29 ।।

मन्त्रार्थ :- अग्निः = अग्नि, तेजस्वी, विद्वान्, पृथु = पृथु, विस्तार करने वाला, धर्मणः - धर्म का, धारण का, पतिः = ऐश्वर्यवान्, स्वामी, स्वामी, पालक, रक्षक, जुषाणो = विचारशील, सेवाभावी, अग्निः = अग्नि, तेजस्वी, विद्वान्, पृथु = पृथु, विस्तार करने वाला, धर्मणः - धर्म का, धारण का, पतिः = ऐश्वर्यवान्, स्वामी, पालक, रक्षक, आज्यस्य - आज्य का, वेतु = जानें, व्याप्त हों, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता, स्वाहाकृता = अच्छी व्यापकता, अपनी व्यापकता करने वाले, सूर्यस्य - सूर्य का, रश्मिभिः - रश्मियों द्वारा, यतध्वम् सजातानाम् मध्यमेष्ठ्याय ।। 29 ।।

भावार्थ :- अग्नि परमात्मा सबका पति है, ऐश्वर्यवान्, स्वामी, स्वामी, पालक, रक्षक है। सूर्य किरणों के समान व्यापक भावना के साथ समवयस्क, मध्यम, ज्येष्ठ सभी के साथ मिलकर उन्नति का प्रयास करना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अग्निः (अग् = ऊपर जाना, जानना, पाना, तेजस्वी होना)। पृथु (पृथ् - विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। धर्मणः (धृ = धारण करना)। पतिः (पत् = ऐश्वर्य होना)। जुषाणः (जुष् = विचार करना, सेवा करना)। आज्यस्य (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अज् - जाना, स्थापन करना, दौड़ाना, फेकना, जि- जीतना, सर्वोत्कर्ष से रहना, ज्या - वृद्ध होना, अञ्ज् = स्पष्ट बोलना)। वेतु (वे = बुनना, वी-वे = जाना, जानना, व्यापना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। स्वाहाकृताः (सु + आहा, स्व + अहा, आहा, अह् = व्यापक होना, कृ - करना)। सूर्यस्य (सुर् - प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना}। रश्मिभिः (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। यतध्वम् (यत -यत्न करना, उद्योग करना, निश्चय करना, ठहराना)। सजातानाम् (स - सहित, साथ, सज्, सञ्ज = सम्बन्धी होना, आलिङ्गन करना, जा, जन्, जनी = उत्पन्न होना)। मध्यमेष्ठ्याय (मध्यम - मध्यम, सर्वनाम, इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)।। 29 ।।

(105) सूक्त 7

426. सवित्रा प्र-सवित्रा सरस्वत्या, वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिः,
इन्द्रेण अस्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा, वरुणेन ओजसा अग्निना तेजसा,
सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या, देवतया प्र-सूतः प्र सर्पामि ॥ 30 ॥

संहितापाठ

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि ।।30 ।।

मन्त्रार्थ :- सवित्रा - सविता द्वारा, प्र-सवित्रा - बहु सृजनकर्ता द्वारा, सरस्वत्या - सरस्वती द्वारा, वाचा - वाणी द्वारा, त्वष्ट्रा - त्वष्ट्रा, रूपैः - रूपों द्वारा, पूष्णा - पूषा द्वारा, पशुभिः - पशुओं द्वारा, इन्द्रेण - इन्द्र द्वारा, अस्मे - इसके द्वारा, बृहस्पतिना - बृहस्पति द्वारा, ब्रह्मणा - ब्रह्म द्वारा, वरुणेन - वरुण द्वारा, ओजसा - ओज द्वारा, अग्निना - अग्नि द्वारा, तेजसा - तेज द्वारा, सोमेन - सोम द्वारा, राज्ञा - राजा द्वारा, प्रकाशमान द्वारा, विष्णुना - विष्णु द्वारा, व्यापक द्वारा, दशम्या - दशमी द्वारा, देवतया - देवता द्वारा, प्र-सूतः - प्रसूत, प्रकृष्ट उत्पन्न, प्र-सर्पामि - प्रकृष्टता से चलता हूँ।। 30 ।।

भावार्थ :- विविध गुणों, देवशक्तियों द्वारा, उनके साथ चलने का सन्देश है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त):- सवित्रा (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। प्र-सवित्रा (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। सरस्वत्या (सृ - जाना, सरकना, जानना, पाना, बहना, चलना, स - साथ, सहित, रस् - स्वाद लेना, प्रीति करना, शब्द करना)। वाचा (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। त्वष्ट्रा (त्वक्ष् = छीलना, रेतना, त्विष् = प्रकाशित होना)। रूपैः (रूप - आकार बनाना, रचना करना, मन में रूपाकृति लाना)। पूष्णा

(पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। पशुभिः (पश् = देखना)। इन्द्रेण (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। अस्मे (सर्वनाम)। बृहस्पतिना (बृह् = बढ़ना)। ब्रह्मणा (बृह् = बढ़ना)। वरुणेन (वर् = इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ = वरण करना)। ओजसा (ओज - शक्तिमान् होना, जीवित होना, बढ़ना)। अग्निना (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। तेजसा (तिज्, तेज् = चमकना, चमकाना, पैना करना, प्रभाव होना, तीक्ष्ण करना)। सोमेन (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। राज्ञा (राज् - प्रकाशित होना, चमकना)। विष्णुना (विष् = व्याप्त होना)। दशम्या (दश = दश, दस, संख्या)। देवतया (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, प्रीति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। प्र-सूतः (सु - उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। प्र-सर्पामि (सृप् - जाना, सरकना, जानना, पाना, चलना)।।30।।

427. अश्विभ्याम् पच्यस्व, सरस्वत्यै पच्यस्व, इन्द्राय सु-त्राम्णे पच्यस्व।
वायुः पूतः पवित्रेण, प्रत्यङ् सोमो अतिस्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा।।31।।

संहितापाठ

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व। वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिस्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा।।31।।

मन्त्रार्थ :- अश्विभ्याम् = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक के लिए, पच्यस्व = परिपाक करो, पाचन करो, पकाओ, सरस्वत्यै = सरस्वती के लिए, पच्यस्व = परिपाक करो, पाचन करो, पकाओ, इन्द्राय = इन्द्र के लिए, परम ऐश्वर्य के लिए, सु-त्राम्णे = रक्षक, पालक, पोषक के लिए, पच्यस्व = परिपाक करो, पाचन करो, पकाओ, वायुः = वायु, गतिशील, रचनात्मक शक्ति, विद्वान्, पूतः = पवित्रता युक्त, रक्षित, पवित्रेण = पवित्र, पावन द्वारा, प्रत्यङ् = प्रत्येक, सोमः = ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता, सोम, अति-स्रुतः = अत्यधिक अभिसिञ्चित, स्रवित, इन्द्रस्य = इन्द्र का, परम ऐश्वर्यशाली का, युज्यः = युज्य, योग्य, सखा = मित्र।।31।।

भावार्थ :- दिव्य गुणों, दिव्य शक्तियों के लिए स्वयम् का परिपाक करना है, स्वयम् को परिपक्व बनाना है। इस प्रकार परिपक्व होकर हम पवित्र होते हैं तथा परम ऐश्वर्यवान् इन्द्र परमात्मा के सखा बनते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अश्विभ्याम् (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। पच्यस्व (पच् = पकाना, व्यक्त करना, प्रसिद्ध करना, जीर्ण होना)। सरस्वत्यै (सृ - जाना, सरकना, जानना, पाना, बहना, चलना, स - साथ, सहित, रस् - स्वाद लेना, प्रीति करना, शब्द करना)। पच्यस्व (पच् = पकाना, व्यक्त करना, प्रसिद्ध करना, जीर्ण होना)। इन्द्राय (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। सु-त्राम्णे (सु - अच्छा, सुन्दर, उत्तम, त्रै = पालन करना, रक्षा करना, पोषण करना)। पच्यस्व (पच् = पकाना, व्यक्त करना, प्रसिद्ध करना, जीर्ण होना)। वायुः (वा = गति करना, वे = बुनना)। पूतः (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। पवित्रेण (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। प्रत्यङ् (अव्यय)। सोमः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। अति-स्रुतः (स्रु = जाना, जानना, पाना, सृ - जाना, सरकना, बहना, टपकना)। इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य होना)। युज्यः (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना, युगि - छोड़ देना, त्याग करना)। सखा (सख् = मित्र होना)।।31।।

428. कुवित् अङ्ग यव-मन्तो यवम् चित्, यथा दान्ति अनुपूर्वम् वि-यूय।
इह इह एषाम् कृणुहि भोजनानि, ये बर्हिषो नम-उक्तिम् यजन्ति।
उपयाम गृहीतो असि अश्विभ्याम् त्वा, सरस्वत्यै त्वा, इन्द्राय त्वा सु-त्राम्णे।।32।।

संहितापाठ

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति। उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे।।32।।

मन्त्रार्थ :- कुवित् = कवि, शब्दज्ञ, शब्दज्ञानी, शब्द को जानने वाला, **अङ्ग** = विद्वान्, गतिशील, पाने वाला **यवमन्तो** = यवयुक्त, पृथक् करने वाले **यवम्** = यव को **चित्** = ही **यथा** = जिससे, जैसे, जिस प्रकार। **दान्ति** = देते हैं, दान करते हैं **अनुपूर्वम्** = अनुपूर्व को **वियूय** = विलग कर, **इह** = इसमें, यहां, यह **इह** = इसमें, यहां, यह **एषाम्** = इनका **कृणुहि** = करो **भोजनानि** = भोजन **ये** = जो। **बर्हिषो** = बढ़ा हुआ, विराट, महान् **नम** = नमन **उक्तिम्** = उक्ति को, कथन को, कही गयी बात को **यजन्ति** = यजन करते हैं। उपयाम-गृहीतो - उपयाम द्वारा गृहीत, असि = हो, अश्विभ्याम् अश्विभ्याम् = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक के लिए, त्वा - तुमको, सरस्वत्यै = सरस्वती के लिए, त्वा - तुमको, इन्द्राय = इन्द्र के लिए, परम ऐश्वर्य के लिए, त्वा - तुमको, सु-त्राम्णे = उत्तम रक्षक, पालक, पोषक के लिए।।32।।

भावार्थ :- कवि, शब्दज्ञ, शब्दज्ञानी, शब्द को जानने वाला, विद्वान् जिस यव को देता है, उस यव का अर्थ मिलाने-अलग करने की क्षमता मानना उचित है। इस विवेक के साथ हम जो भोजन करते हैं, उसे विराट रूप में हम नमः कहते हुए यजन करते हैं। नमन का भाव यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान में महत्वपूर्ण है।। 32।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : कुवित् (कु, कव् = शब्द करना, कविता करना, वर्णन करना, चित्र खींचना)। **अङ्ग** (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। **यवमन्तो** (यु = मिलाना, अलग करना, यव = समाप्त करना, उपसंहार करना)। **यवम्** (यु = मिलाना, अलग करना, यव = समाप्त करना, उपसंहार करना)। **चित्** (अव्यय)। **यथा** (अव्यय)। **दान्ति** (दा - देना, सौंपना)। **अनुपूर्वम्** (अनु - पीछे, दृश्-पश् = देखना)। **वियूय** (वि = विशेष, विना, विलोम, यु = मिलाना, अलग करना)। **इह** (सर्वनाम)। **एषाम्** (सर्वनाम)। **कृणुहि** (कृ = करना)। **भोजनानि** (भुज - संरक्षण करना, पालन करना, खाना, भक्षण करना)। **ये** (सर्वनाम)। **बर्हिषो** (बर्ह् - श्रेष्ठ होना, प्रधान होना, प्रयास करना, उद्यम-व्यवसाय करना, खेलना, बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। **नम** (नम् = नमन करना, सम्मान करना, शब्द करना)। **उक्तिम्** (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना, उच् - एकत्र होना, सम्बन्ध होना)। **यजन्ति** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना, दान करना)। **उपयाम-गृहीतो** (उप - समीप, यम - नियमन करना, नियन्त्रण करना, गृह-ग्रह - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना)। असि (अस् - होना)। अश्विभ्याम् (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सरस्वत्यै** (सृ - जाना, सरकना, जानना, पाना, बहना, चलना, स - साथ, सहित, रस् - स्वाद लेना, प्रीति करना, शब्द करना)। **इन्द्राय** (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। सु-त्राम्णे (सु - अच्छा, सुन्दर, उत्तम, त्रै = पालन करना, रक्षा करना, पोषण करना)।। 32।।

429. युवम् सुरामम् अश्विना, नमुचौ आसुरे सचा। विपिपाना शुभः पती, इन्द्रम् कर्मसु आवतम्।।33।।

संहितापाठ

युवꣳसुराममश्विना नमुचावासुरे सचा। विपिपाना शुभस्पतीऽइन्द्रुं कर्मस्वावतम्।।33।।

मन्त्रार्थ :- युवम् - तुम दोनो ने, **सुरामम्** - सुष्ठु रमणीय, **अश्विना** - अश्विन युगल, **नमुचौ** - नमुच युगल ने, आसुरे - आसुर में, **सचा** - साथ, **विपिपाना** - विशेष पान करने वाले, **शुभः** - शुभ, **पती** - ऐश्वर्यवान्, स्वामी युगल, **इन्द्रम्** - इन्द्र को, **कर्मसु** - कर्मों में, **आवतम्** - पालन किया, रक्षा की।। 33।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त):- युवम् - तुम दोनो ने (सर्वनाम)। **सुरामम् =** सुष्ठु रमणीय (सु - सुष्ठु, सुन्दर, उत्तम, रम् - रमना, रमण करना, रमणीय होना)। **अश्विना** - अश्विन युगल (अशु = व्यापक होना)। **नमुचौ** - नमुच युगल ने (नम् = नमन करना, सम्मान करना, शब्द करना)। **आसुरे** (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना, सुर - अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, चमकना)। **सचा** (सचा - साथ, सच् = सिञ्चन करना, सेवा करना, सेवा से सन्तुष्ट करना)। **विपिपाना**

(पा-पिब - पीना, प्राशन करना, सूखना, संरक्षण करना)। **शुभः** (शुभ् - दीप्ति-प्रकाश होना, शोभा पाना, मङ्गल होना, बोलना)। **पती** (पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना, पाना, नीचे गति करना)। **इन्द्रम्** (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **कर्मसु** (कृ - करना)। **आवतम्** (अव् - रक्षा करना, पालन करना)।

430. पुत्रम् इव पितरौ अश्विना उभा, इन्द्र आवथुः काव्यैः दंसनाभिः।
यत् सुरामम् व्यपिबः शचीभिः, सरस्वती त्वा मघ-वन् अभिष्णक्॥34॥

संहितापाठ

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः।यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक्।।34॥

मन्त्रार्थ :- पुत्रम् - पुत्र के, इव समान, पितरौ - पितर युगल, माता-पिता, अश्विना - अश्विन युगल, उभा - दोनो, युगल, इन्द्र - इन्द्र, आवथुः - पालन किया, रक्षा की, काव्यैः - काव्यों द्वारा, दंसनाभिः - दंसनों द्वारा, डसने वालों द्वारा, काटने वालों द्वारा, देखने वालों द्वारा, बोलने वालों द्वारा ।यत् - जो, सुरामम् - सुष्ठु रमणीय, व्यपिबः - विशेष पान किया, शचीभिः शचियों द्वारा, सरस्वती - सरस्वती, त्वा - तुमको, मघवन् - धनवान्, अभिष्णक् - उपसेवित किया, सेवा की।।34।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- पुत्रम् (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **इव** (अव्यय)। **पितरौ** (पि - जाना, जानना, पाना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। **अश्विना** (अशु = व्यापक होना)। **उभा** (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना)। **इन्द्र** (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **आवथुः** (अव् - रक्षा करना, पालन करना)। **काव्यैः** (कु, कव् = शब्द करना, कविता करना, वर्णन करना, चित्र खींचना)। **दंसनाभिः** (दंस् - डसना, काटना, देखना, शब्द करना)। **यत्** (सर्वनाम)। **सुरामम्** (सु - सुष्ठु, सुन्दर, उत्तम, रम् - रमना, रमण करना, रमणीय होना)। **व्यपिबः** (वि - विशेष, पी-पिब् - पीना, पान करना)। **शचीभिः** (शच- स्पष्ट बोलना)। **सरस्वती** (सृ - जाना, सरकना, जानना, पाना, बहना, चलना, स - साथ, सहित, रस् - स्वाद लेना, प्रीति करना, शब्द करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **मघवन्** (मघ् = धन होना, ऐश्वर्य होना)। **अभिष्णक्** (भिष्णज् - उपसेवा करना)।। 34 ।।

इति दशमो अध्यायः

ॐ

अथ एकादशो अध्यायः

(104) सूक्त 1

431. युञ्जानः प्रथमम् मनः, तत्त्वाय सविता धियः।अग्नेः ज्योतिः निचाय्य, पृथिव्या अधि आ अभरत्।।1।।

मन्त्रार्थ - प्रथमम् = प्रथम सविता = सृजनशील, मनः = मन को, धियः = धारणा शक्ति, बुद्धि को तत्त्वाय = तत्व के लिये युञ्जानः = युक्त करते हुए अग्नेः – अग्नेः = अग्नि की ज्योतिः = प्रकाश का निचाय्य = चयन कर पृथिव्या = पृथिवी का सम्यक्, सम्पूर्ण अभरत् = भरा, भरण किया।।1।।

भावार्थ - मन और बुद्धि को सृजनशील, रचनात्मक होना चाहिए।अग्नि अर्थात् अग्रणी परमात्मा की ज्योति का चयन करें। परमात्मा की उपासना से ही पृथिवी का भरण-पोषण सम्यक् रूप से सम्भव हो सकता है।1।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - युञ्जानः (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना)।प्रथमम् (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना)।मनः (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। तत्त्वाय (तन् = विस्तार, फैलाना, शब्द करना)। सविता (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। धियः (धी = धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना, बुद्धि, प्रज्ञा होना, धि = धारण करना, युक्त होना)।अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)।निचाय्य (नि - निश्चित, निरन्तर, चि = चुनना, चयन करना)। पृथिव्या (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)।अधि (उपसर्ग)।आ (उपसर्ग)।अभरत् (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भृ = भरण करना, भरना)।।1।।

432. युक्तेन मनसा वयम्, देवस्य सवितुः सवे।स्वर्ग्याय शक्त्या।।2।।

मन्त्रार्थ - युक्तेन = युक्त मनसा = मन से, मन द्वारा वयम् = हम, हम सब, हम लोग (सर्वनाम)।अथवा वयम् = वय या रचना को स्वर्ग्याय = स्वर्ग के योग्य के लिए शक्त्या = शक्ति से,सामर्थ्य से देवस्य = देव का सवितुः- सवितुः = उत्पादक, ऐश्वर्यवान्, उत्पन्न करने वाले का सवे = ऐश्वर्यवान्, उत्पन्न करें।।2।।

भावार्थ - हम युक्त मन से सविता अर्थात् सृष्टिकर्ता, उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाले दिव्य परमात्मा की शक्ति से स्वर्ग-योग्य के लिए सृजन करते हैं, ऐश्वर्य करते हैं।।2।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - युक्तेन (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना)।मनसा (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। वयम् (सर्वनाम)। देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। सवितुः (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। सवे (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। स्वर्ग्याय (सू- ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, पराक्रम होना, स्वृ-स्वर् = शब्द करना, गम् - जाना)। शक्त्या (शक् - सक्षम होना, कर सकना, सहना, सहन करना)।। 2।।

433. युक्त्वाय सविता देवान्, स्वः यतो धिया दिवम्।बृहत् ज्योतिः करिष्यतः, सविता प्र सुवाति तान्।।3।।

मन्त्रार्थ - सविता = सृष्टिकर्ता, उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाला, देवान् - देवान् = विद्वान्, तेजस्वी, देवगणों को, युक्त्वाय = संयोजन के लिए, युक्त, मिश्रित के लिए, स्वः = उत्पन्न, ऐश्वर्य, सृष्टि या जगत्, यतो

= जिससे, धिया = धारणा द्वारा, बुद्धि द्वारा, दिवम् = दिव को, तेजस्वी को , बृहत् = बृहत्, महान्, बड़ा, विराट, ज्योतिः = प्रकाश, । करिष्यतः = करेंगे, सविता = सृष्टिकर्ता, उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाला, प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक, तान् = उनको सुवाति = उत्पन्न करता है, ऐश्वर्य करता है, भेजता है, प्रक्षेप करता है, देता है।। 3 ।।

भावार्थ - सविता = सृष्टिकर्ता, उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाला परमात्मा दिव्य शक्तियों को बुद्धिपूर्वक संयुक्त करने के लिए बृहत् ज्योति उत्पन्न करता है। वह सविता उनको पुनः उत्पन्न करता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - युक्त्वाय (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना)। सविता (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। देवान् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। स्वः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। यतो (सर्वनाम)। धिया (धी = धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना, बुद्धि, प्रज्ञा होना, धि = धारण करना, युक्त होना)। दिवम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। करिष्यतः (कृ - करना)। प्र (उपसर्ग)। सुवाति (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सू- भेजना, उड़ाना)। तान् (सर्वनाम)।। 3 ।।

434. युञ्जते मन उत युञ्जते धियो, विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनावित् एक इत्, मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ।।4।।

मन्त्रार्थ :- बृहतो बृहत् **विपश्चितः** विपश्चित **विप्रा** विप्र **मनः** मन को **युञ्जते** नियोजित करते हैं, **धियो** बुद्धि को **युञ्जते** नियोजित करते हैं। **वि होत्रा** विहोत्र **वयुनावित्** वयुनावित् **देवस्य** देव **सवितुः** सविता की **मही** महान् **परिष्टुतिः** परिस्तुति **दधे** धारण करते हैं।।। 4 ।।

भावार्थ :- मन और बुद्धि को परमात्मा में लगायें तथा परिस्तुति अर्थात् परिपूर्ण रूप से स्तुति करें। मन और बुद्धि को पूरी तरह परमात्मा में लगाकर स्तुति करना ही परिस्तुति है।।। 4 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- युञ्जते (युज् - मिलाना, चित्त स्थिर करना, वश में रखना, यु - बांधना, बन्धन करना, गूंथना)। मनः (मन- जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना)। उत (अव्यय)। धियो (धी = बुद्धि, प्रज्ञा होना, धि = धारण करना)। विप्रा (वि - विशेष, प्रा - पूर्ण करना)। विप्रस्य (वि - विशेष, प्रा - पूर्ण करना)। बृहतो (बृह- बढ़ना, वृद्धि होना)। विपश्चितः (वि - विशेष, पश् = देखना)। वि होत्रा (वि - विशेष, हु = दान करना, आदान करना, लेना)। दधे (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। वयुनावित् (वय - जाना, जानना, पाना)। एक (संख्या)। इत् (अव्यय)। मही (मह् - पूजा करना, सम्मान करना)। देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। सवितुः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। परिष्टुतिः (परि - परितः, सब ओर, स्तु- प्रशंसा करना, पूजा करना, स्तुति करना)।। 4 ।।

435. युजे वाम् ब्रह्म पूर्व्यम् नमोभिः, वि श्लोक एतुः पथ्येव सूरेः।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा, आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ।।5।।

मन्त्रार्थ :- युजे = नियोजित करते हैं, युक्त करते हैं, वाम् – वाम् = तुम दोनों को, ब्रह्म = ब्रह्म, महान्, बड़ा, विराट, बृहत्, पूर्व्यम् = पहले, पूर्व, पूर्ण करने, भरने, निवास करने, आमन्त्रण करने योग्य, नमोभिः = बहुशः नमन द्वारा, वि = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग)। श्लोक = सहभाव, साथ जाना, श्लोक, कविता करना, रचना, एतु = प्राप्त हो, जाये, ज्ञान, गति, इच्छा, प्रेरणा करे, पथ्येव = पथ्य के लिए, पाथेय के लिए, पथ, चलने, जाने, जानने, पाने, भूषित होने, भूषित करने, घूमने, त्यागने के लिए, सूरेः = सूर्य, ऐश्वर्य, अद्भुत सामर्थ्य, अमानवी पराक्रम, चमक, उत्पन्न करने, उत्पन्न होने के लिए, शृण्वन्तु = सुनें, विश्वे = सभी, अमृतस्य = अमृत, अविनाशी के, पुत्रा = पुत्रगण, आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, ये = जो, धामानि = धामों को, दिव्यानि = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय, तस्थुः = स्थित हैं।। । 5 ।।

भावार्थ :- परमात्मा तथा वेदवाणी का दिव्य वरदान सभी के लिए है। सभी अमृत परमात्मा तथा वेदमाता के दिव्य पुत्र हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - युजे (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना)। वाम् (सर्वनाम)। ब्रह्म (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। पूर्व्यम् (पूर्व = पूर्व, पहले, सर्वनाम, पूर्व - पूर्ण करना, भरना, निवास करना, आश्चर्य करना, आमन्त्रण करना)। नमोभिः (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। वि (उपसर्ग)। श्लोक (श्लोक - साथ जाना, श्लोक बनाना, कविता करना, रचना करना)। एतु (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, ई = जाना, जानना, पाना, व्यापना, इच्छा करना, प्रेरणा करना)। पथ्येव (पथ, पन्थ् - चलना, जाना, जानना, पाना, भूषित होना, भूषित करना, घूमना, फेंकना, त्यागना)। सूरेः = सूर्य (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। शृण्वन्तु (शृ - सुनना)। विश्वे (सर्वनाम)। अमृतस्य (मृ - मरना)। पुत्रा (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। आ (उपसर्ग)। ये (सर्वनाम)। धामानि (धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)। दिव्यानि (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। तस्थुः (तस - स्थापित होना, स्थापना करना, फेंकना, उड़ा देना, भेजना, खोदना, कुम्हलाना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना)॥ 5॥

436. यस्य प्रयाणम् अनु अन्य इत् ययुः, देवा देवस्य महिमानम् ओजसा।
यः पार्थिवानि वि-ममे स एतशो, रजांसि देवः सविता महित्वना॥6॥

मन्त्रार्थ :- देवा = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने, ओजसा = ओज द्वारा, यस्य = जिसका, प्रयाणम् = प्रयाण को, देवस्य = देव का, महिमानम् = महिमावान् को, महत्व से युक्त को, अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल, अन्य = कोई और, इतर, अन्य, इत् = ही, ययुः = पृथक् किया। स = वह, देवः = देव, सविता = सृष्टिकर्ता, उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाला, यः= जिसने, एतशो = ज्ञान, गति, इच्छा, प्रेरणा से, पार्थिवानि = पार्थिवों को, रजांसि = लोकों को, रजः को, महित्वना = महित्व द्वारा, पूज्य, प्रकाशित द्वारा, वि-ममे = बनाया, विशेष मान किया॥ 6॥

भावार्थ :- परमात्मा ही सृष्टिकर्ता है। वही सबका सृजन करता है। उसकी महिमा से ही सम्पूर्ण सृष्टि गतिमान है। सभी देवगण, सभी देवशक्तियाँ उसके ही अंश हैं, उसके ही विविध स्वरूप हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यस्य (सर्वनाम)। प्रयाणम् (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, या = जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। अनु (उपसर्ग)। अन्य (सर्वनाम)। इत् (अव्यय)। ययुः (यु = मिलाना, अलग करना)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। महिमानम् (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। ओजसा (ओज - शक्तिमान् होना, जीवित होना, बढ़ना)। यः (सर्वनाम)। पार्थिवानि (पृथ - फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना, व्याप्त होना)। वि-ममे (वि = विशेष, विना, विलोम, मा - नापना, तौलना, मान करना, शब्द करना, समाना, वि-मा -विशेष मान करना, बनाना)। स (सर्वनाम)। एतशो (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, ई = जाना, जानना, पाना, व्यापना, इच्छा करना, प्रेरणा करना)। रजांसि (रज - रज होना, धूल होना, सूक्ष्म होना, रंग देना, रंगना, लीन होना)। देवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। सविता (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। महित्वना (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)॥ 6॥

437. देव सवितः प्र सुव यज्ञम्, प्र सुव यज्ञपतिम् भगाय।
दिव्यः गन्धर्वः केतपूः, केतम् नः पुनातु, वाचः पतिः वाचम् नः स्वदतु॥7॥

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजं नः स्वदतु।॥ ॥

मन्त्रार्थ- देव - **हे देव (दिव्यस्वरूप)** सवितः - **सवित (ऐश्वर्य युक्त और उत्पन्न करने वाले परमात्मन्),** भगाय - **भग (सेवा, दान) के लिये** यज्ञम् - **यज्ञ को** प्र सुव - **उत्पन्न कीजिये**, यज्ञपतिम् - **यज्ञपति को** प्र सुव - **उत्पन्न कीजिये**। केतपूः - **गृह, संवाद को पवित्र करने वाला।** दिव्यो - **दिव्य** गन्धर्वः - **गन्धर्व (प्रगतिशील, विद्वान्)** नः - **हमारे** केतम् - **केत (केत, संवाद) को** पुनातु - **पवित्र करे**। वाचस्पतिः - **वाणी के पोषक-रक्षक** नः - **हमारी** वाचम् - **वाणी को** स्वदतु - **रुचिकर, प्रसन्नता युक्त करे।**॥ 7 ॥

भावार्थ - प्रसुव का अर्थ है उत्पन्न करें, ऐश्वर्यवान् करें। कुछ विद्वानों ने प्रेरित करें ऐसा भी अर्थ किया है। यह भावार्थ स्वीकार्य हो सकता है। यजन तथा यजनपति को उत्पन्न करने का भाव व्यक्ति को इसके लिए प्रेरित करना मानना उचित तो हो सकता है, परन्तु वास्तविक अर्थ उत्पन्न करें, ऐश्वर्यवान् करें। ही है॥ 7 ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त)- देव (दिव् - तेजस्वी होना)। सवितः (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। प्र (उपसर्ग)। सुव (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। यज्ञम् (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। यज्ञ-पतिम् (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना, पत् - ऐश्वर्य होना)। भगाय (भज् - सेवा, दान करना)। दिव्यो (दिव् - तेजस्वी होना)। गन्धर्वः (गम् + धृ, गम् = जाना, जानना, पाना, धृ = धारण करना)। केतपूः (कित् - निवास करना, रोग निवारण करना, केत - सम्मुख वार्ता करना, आमन्त्रण करना)। केतम् (कित् - निवास करना, रोग निवारण करना, केत - सम्मुख वार्ता करना, आमन्त्रण करना)। नः (सर्वनाम)। पुनातु (पू - पवित्र करना), वाचस्पतिः (वच् - बोलना)। वाचम् (वच् - बोलना)। स्वदतु (स्वद् - स्वाद लेना, रुचिकर होना, तुष्ट होना, प्रसन्न होना)।॥7 ॥

(105) सूक्त 2

438. इमम् नो देव सवितः, यज्ञम् प्रणय देवाव्यम्, सखि-विदम् सत्रा-जितम्, धन-जितम् स्वः जितम्। ऋचा स्तोमम् सम् अर्धय, गायत्रेण रथन्तरम् बृहत्, गायत्र-वर्त्तनि स्वाहा॥8॥

मन्त्रार्थ :- देव = हे देव, दिव्यस्वरूप**,** सवितः = सवित, ऐश्वर्य युक्त और उत्पन्न करने वाले, इमम् = इसको, नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, यज्ञम् = यज्ञ को, देवाव्यम् = देव, दिव्यस्वरूप अव्य को, पालनीय को, रक्षणीय को (देव = देव, दिव्यस्वरूप**,** अव्यम् = अव्य को, पालनीय को, रक्षणीय को, सखि-विदम् = मित्र की सुध रखने, समझने, जानने वाले को, सत्रा-जितम् = सत्रा-जित को, विस्तार, सम्बन्ध, सम्बन्धी, जीतने वाले को धन-जितम् = धन जीतने वाले को, स्वः जितम् = उत्पन्न, ऐश्वर्य, सृष्टि या जगत्, स्वः को जीतने वाले को, प्रणय = ले चलो। ऋचा = ऋचायें, स्तोमम् = स्तोम को, सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति, अर्धय = आधा करो, गायत्रेण = गायत्र से, गान, स्तुति से, रथन्तरम् = रथन्तर को बृहत् = महान्, बड़ा, विराट, बृहत्, गायत्र-वर्त्तनि = गायत्र से, गाने वाले, स्तुति करने वाले से वर्तमान, स्वाहा = अच्छी व्यापकता, आत्म विस्तार हो॥ 8॥

भावार्थ :- यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान आदि धार्मिक कर्म दिव्यता, मित्रता, व्यापकता आदि मानवीय सद्गुणों का संरक्षण, विस्तार करने वाले होने चाहिए, तभी उनकी सार्थकता है। संकीर्ण स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों के लिए यजन आदि कर्मकाण्ड का आयोजन वास्तविक धर्म नहीं हो सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इमम् (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। देव (दिव् - तेजस्वी होना)। सवितः (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। यज्ञम् (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। यज्ञ-पतिम् (यज्, पत् - ऐश्वर्य होना)। प्रणय - (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, नी - पहुँचाना, प्राप्त होना, मिलना, ले जाना)। देवाव्यम् (दिव् - तेजस्वी होना, अव् = रक्षा करना, वि - विशेष, इ-अय् - जाना, जानना, पाना)। सखि-विदम् (सख् = मित्र होना, विद - शरीर की सुध रखना, समझना, जानना, समझा के कहना, रहना, वास करना, वसना, स्थिर रहना)। सत्रा-जितम् (सत्र - फैलाना, विस्तार करना, सम्बन्ध करना, संसर्गी होना, जि - सर्वोत्कर्ष से रहना, सब से बढ़ के होना, जीतना, पराभव करना)। धन-जितम् (धन् - शब्द करना, गति करना, चलना, जाना, जानना, पाना, उत्पन्न करना, फलना, बौर लगना, जि - जीतना, पराभव करना)। स्वः-जितम्

(सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जि - सर्वोत्कर्ष से रहना, सब से बढ़ के होना, जीतना, पराभव करना)। स्वदन्तु (सु = अच्छा (उपसर्ग), सु + अदन्तु, अद् - खाना)। ऋचा (ऋच् - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। स्तोमम् (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। सम् (उपसर्ग)। अर्ध्य (अर्ध - आधा होना, आधा करना, दो भाग करना, अर्द - मारना, बध करना)। गायत्रेण (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। रथन्तरम् (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। गायत्र-वर्त्तनि (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना, वृत् - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, होना, वरण करना, स्वीकार करना, हिंसा करना, सेवा करना, चमकना, बोलना)। स्वाहा (सु - अच्छा, सुन्दर, स्व - अपना, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)।8।।

439. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्।
आ ददे गायत्रेण छन्दसा अङ्गिरस्वत्, पृथिव्याः सधस्थात् अग्निम् पुरीष्यम् अङ्गिरस्वत्,
आ भर त्रैष्टुभेन छन्दसा अङ्गिरस्वत्।।9।।

मन्त्रार्थ :- देवस्य = देव का। **त्वा** = तुमको। **सवितुः** = उत्पन्न करने वाला। **प्रसवे** = उत्पन्न करे। **अश्विनोः** = व्यापक। **बाहुभ्याम्** = दोनों बाहुओं द्वारा। **पूष्णो** = पोषण करने वाला। **हस्ताभ्याम्** = दोनों हस्त द्वारा। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। ददे = दिया, दान किया। गायत्रेण = गायत्र से, गान, स्तुति से। छन्दसा = छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। पृथिव्याः = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। सधस्थात् = सहस्थान, सहगामी, साथ। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। पुरीष्यम् = पुरीष्य, अग्रगामी, अग्रणी। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। भर = पोषण करो, भरो, पूर्ण करो। त्रैष्टुभेन = त्रैष्टुभ द्वारा। छन्दसा = छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला।।

भावार्थ :- परमात्मा की विविध शक्तियों से सृष्टि में सब कुछ सम्भव है। विविध छन्दों में वेदमन्त्रों द्वारा हमें प्रेरणा, मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त): देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना आदि)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु - उत्पन्न करना)। **प्रसवे** (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, सु = उत्पन्न करना)। **अश्विनोः** (अश्-अशु = व्यापक होना)। **बाहुभ्याम्** (बह - बहना, गति करना, हिंसा करना, बाहुः - भुजा)। **पूष्णो** (पुष् = पोषण करना, बढ़ना)। **हस्ताभ्याम्** (हस्त - दान करना, ग्रहण करना)। आ (उपसर्ग)। **ददे** (दा, दद्, दत् = दान करना, देना, त्याग करना, सौंपना, लौटाना, रखना)। गायत्रेण (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। छन्दसा (छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। पृथिव्याः (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। सधस्थात् (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पुरीष्यम् (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। आ (उपसर्ग)। भर (भृ = धारण-पोषण करना, पूर्ण करना)। त्रैष्टुभेन (त्रै - संरक्षण करना, पोषण करना, बचाना, त्रि = तीन, संख्या, सर्वनाम, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना)।। 9।।

440. अभ्रिः असि नारी असि, त्वया वयम् अग्निम् शकेम, खनितुम् सधस्थ आ।
जागतेन छन्दसा अङ्गिरस्वत्।।10।।

मन्त्रार्थ :- अभ्रिः = भरा, पूर्ण किया। असि = हो। नारी = नारी, नम्र, विनयी, कोमल, मृदु, ले जाने वाला)। असि = हो। त्वया = तुम्हारे द्वारा, तुमसे। वयम् = हम। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान, अग्रणी को। शकेम = कर सकूँ, सक्षम बनूँ, समर्थ होऊ। खनितुम् = खनन करने के लिए, खोदने के लिए। सधस्थ = सहस्थान,सहगामी, साथ (सध, सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। जागतेन = जागत द्वारा। छन्दसा

= छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला।। 10 ।।

भावार्थ :- परमात्मा तथा उसके उपासक अग्नि अर्थात् भरण करने वाले, पूर्ण करने वाले हैं। नम्र, विनयी, कोमल, मृदु, ले जाने वाले हैं। इन गुणों को धारण करने वाले सक्षम बनें, समर्थ बनें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्निः (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भृ - भरना, भरण करना)। असि (अस् - होना)। नारी (नृ - नम्र होना, विनय होना, कोमल होना, मृदु होना, चलना, ले जाना)। त्वया (सर्वनाम)। वयम् (सर्वनाम)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। शकेम (शक् - सक्षम होना, कर सकना, सहना, सहन करना)। खनितुम् (खन् = खनन करना, खोदना)। सधस्थ (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। आ (उपसर्ग)। जागतेन (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। छन्दसा (छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)।।10 ।।

441. हस्त आधाय सविता, बिभ्रत् अग्निम् हिरण्ययीम्।
अग्नेः ज्योतिः नि-चाय्य, पृथिव्या अधि आ अभरत्, आनुष्टुभेन छन्दसा अङ्गिरस्वत्।। 11 ।।

मन्त्रार्थ :- हस्त = हस्त। आधाय = धारण कर। सविता = सवित, ऐश्वर्य युक्त और उत्पन्न करने वाले। बिभ्रत् = भरण, धारण करते हुए। अग्निम् = अग्नि को, पूर्ण को। हिरण्ययीम् = प्रकाशमान, गतिशील को। अग्नेः = अग्नि का। ज्योतिः = प्रकाश (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। नि-चाय्य = चयन कर। पृथिव्या = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। अभरत् = भरा, भरण किया। आनुष्टुभेन = अनुस्तुति द्वारा। छन्दसा = छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला 11।।

भावार्थ :- सविता अर्थात् सृष्टिकर्ता परमात्मा ने सृष्टि को परिपूर्ण किया है। अनुस्तुति द्वारा अथवा अनुष्टुप छन्द में आवद्ध वेदमन्त्रों द्वारा उपासक उसके प्राकाश को ग्रहण कर अंगिरा के स्मान ऐसे गुणों को धारण कर अपने जीवन तथा समाज को सद्भाव तथा आनन्द से भर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - हस्त (हस्त - देना, लेना, ग्रहण करना)। आधाय (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, धा = धारण करना)। सविता (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। बिभ्रत् (भृ- भरना, भरण करना, धारण करना)। अग्निम् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भृ = भरना, भरण करना)। हिरण्ययीम् (हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, शब्द करना, ध्वनि होना, हि = गति करना, रण् = शब्द करना, जाना, पण् = स्तुति करना, व्यवहार करना)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। नि-चाय्य (नि - निश्चित, निरन्तर, चि = चुनना, चयन करना)। पृथिव्या (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अधि (उपसर्ग)। आ (उपसर्ग)। अभरत् (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भृ = भरण करना, भरना)। आनुष्टुभेन (अनु = पश्चात्, पीछे, स्तु - स्तुति करना)। छन्दसा (छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना) 11।।

442. प्रतूर्तम् वाजिन् आ द्रव, वरिष्ठाम् अनु सम्वतम्।
दिवि ते जन्म परमम् अन्तरिक्षे, तव नाभिः पृथिव्याम् अधि योनिः इत्।। 12 ।।

मन्त्रार्थ :- प्रतूर्तम् = तीव्रगति को। वाजिन् = वाजयुक्त, विद्यायुक्त, गतियुक्त। वरिष्ठाम् = वरिष्ठा को। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल। सम्वतम् = सम्वत् को। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। द्रव = प्रवाहित करो, ज्ञान दो। परमम् = परम, अत्यन्त, उच्चतम, प्रमुखतम। दिवि = दिव्यता में, दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय में। ते = तुम्हारा। जन्म = जन्म। अन्तरिक्षे = अन्तरिक्ष में। तव = तुम्हारा। नाभिः = नाभि। पृथिव्याम् = पृथ्वी पर। अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार। योनिः = बन्धन, मिलन। इत् = ही। ।। 12 ।।

भावार्थ :- तुम्हारा जन्म दिव्य है। तुम्हारी नाभि या केन्द अनन्त अन्तरिक्ष है। दिव्य ज्ञान को प्रावाहित करो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - प्रतूर्तम् (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, तु - गति, वृद्धि, पूर्ण, हिंसा करना, तुर - शीघ्र गति करना, शीघ्रता करना)। वाजिन् (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। आ (उपसर्ग)। द्रव (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। वरिष्ठाम् (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। अनु (उपसर्ग)। सम्वतम् (सम् - सम्यक्, सम् - न घबराना, एक समान रहना, वद् - बोलना, कहना) दिवि (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। ते (सर्वनाम)। जन्म (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। परमम् (सर्वनाम)। अन्तरिक्षे (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। तव (सर्वनाम)। नाभिः (नभ - नष्ट होना, दुःख देना या मार डालना, हिंसा करना, मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना)। पृथिव्याम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अधि (उपसर्ग)। योनिः (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। इत् (अव्यय)॥ 12॥

443. युञ्जाथाम् रासभम् युवम्, अस्मिन् यामे वृषण्वसू। अग्निम् भरन्तम् अस्म-युम्॥ 13॥

मन्त्रार्थ :- वृषण्वसू = विशिष्ट पराक्रमी। अस्मिन् = इसमें। यामे = याम में। रासभम् = शब्द, प्रीति करने वाले को। युवम् = युवा को। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। भरन्तम् = भरण करने वाले को। अस्म-युम् = हम दोनो को, युञ्जाथाम् = नियोजित करें, जोड़ें॥ 13॥

भावार्थ :- विशिष्ट कार्यों में गुणवान् समर्थ लोगों को नियोजित करना चाहिए। सुयोग्य लोगों के सामूहिक प्रयासों से ही महत्वपूर्ण पराक्रम सम्भव हो पाते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - युञ्जाथाम् (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना)। रासभम् (रा- देना, लेना, ग्रहण करना, रस्, रास् = शब्द करना, रस् = रस होना, स्वाद लेना, प्रीति करना, प्यार करना, शब्द करना, रस लेना)। युवम् (यु - संयोग-वियोग करना, मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना)। अस्मिन् (सर्वनाम)। यामे (या- जाना, प्राप्त होना, पहुँचना, यम - आवरण करना, अपने अधीन रखना, पोषण करना, नियमन करना, प्रतिबन्ध करना, रोकना, अवरोध करना, नाश करना, अन्त करना)। वृषण्वसू (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। भरन्तम् (भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)। अस्म-युम् (सर्वनाम)॥ 13॥

444. योगेयोगे तवस्तरम्, वाजे-वाजे हवामहे। सखाय इन्द्रम् ऊतये॥ 14॥

मन्त्रार्थ :- योगेयोगे = योग के लिए। वाजे-वाजे = वाज के लिए, विद्या-गति के लिए। सखाय = मित्र के लिए। ऊतये = रक्षा के लिए। तवस्तरम् = तवस्तर, गति, वृद्धि में श्रेष्ठतर। इन्द्रम् = इन्द्र को, परम ऐश्वर्य परमात्मा को। हवामहे = आह्वान करते हैं, आदान- प्रदान करते हैं॥ 14॥

भावार्थ :- सदुद्देश्य के लिए सदैव परमात्मा का स्मरण करना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - योगेयोगे (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना, योग करना, जोड़ना, मिलना, मिलाना, चित्त स्थिर रखना, बांधना एकत्र करना)। तवस्तरम् (तव् - गति, वृद्धि, हिंसा करना)। वाजे-वाजे (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना, वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वी - जाना, जानना, पाना, व्याप्त होना, इच्छा करना, आक्रमण करना, घेरना, भेजना, खाना, वे - बुनना, रचना करना, सृजन करना)। हवामहे (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। सखाय (सख् = मित्र होना)। इन्द्रम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। ऊतये (ऊ - शब्द करना, विश्वास करना, ऊ-अव् - रक्षा करना)॥ 14॥

(106) सूक्त 3

445. प्रतूर्वन् आ इहि अव-क्रामन् अशस्ती, रुद्रस्य गाण-पत्यम् मयोभूः आ इहि।
उरु अन्तरिक्षम् वि इहि स्वस्ति गव्यूतिः, अभयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजा सह ॥15॥

मन्त्रार्थ :- प्रतूर्वन् = तीव्रगति वाला। आ इहि = आइये। अव-क्रामन् = अवक्रम करने वाले, अवक्रमण करते हुए। अशस्ती = अहिंसा, व्यापकता, गति, ज्ञान। रुद्रस्य = रुद्र का। गाण-पत्यम् = ऐश्वर्यवान्, गणपति सम्बन्धी। मयोभूः = गति-ज्ञान-स्वरूप, गति से होने वाले, ज्ञान से होने वाले। आ इहि = आइये। उरु = बहुत, विराट। अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष या आकाश। वि = विशेष, विना, विलोम। इहि = आओ, जानों। स्वस्ति = कल्याण। गव्यूतिः = गव्यूति को, बोलने योग्य वाणी बोलने वाले को । अभयानि = अभय, भय-हीन, भय-मुक्त। कृण्वन् = करने वाला, करते हुए। पूष्णा = पोषण करने वाला, पोषणकर्ता। सयुजा = सहचरों, साथियों सहित अर्थात् समूह के साथ। सह = साथ, सहित ॥15॥

भावार्थ :- परमात्मा के गुणों का स्मरण करते हुए जीवन में सदैव साथ होने की भावना होनी चाहिए। हमें भी जीवन में इन गुणों को अपनाने का प्रयास करना चाहिए॥15॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - प्रतूर्वन् (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, तु - गति, वृद्धि, पूर्ण, हिंसा करना, तुर - शीघ्र गति करना, शीघ्रता करना)। आ इहि (आ-इ - आना, इ - जाना)। अव-क्रामन् (अव = नीचे, दूर, प्राप्त, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना, क्रम् = अवक्रमण करना, अतिक्रमण करना)। अशस्ती (अ - नहीं, अश् = भोजन करना, व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, शस् - हिंसा करना, मारना, दुःख देना, काटना)। रुद्रस्य (रुद् = रुदन करना, रुलाना)। गाण-पत्यम् (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। मयोभूः (मय् - जाना, जानना, पाना)। उरु (सर्वनाम)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। वि (उपसर्ग)। इहि (इ = जाना, जानना, पाना)। स्वस्ति (अव्यय)। गव्यूतिः (गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना, गम् = जाना, उ - सुखाना, शोषण करना, ऊ - शब्द करना, विश्वास करना)। अभयानि (अ - नहीं, भी = भय होना, डरना, घबराना)। कृण्वन् (कृ = करना)। पूष्णा (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। सयुजा (स - सहित, साथ, यू -मिलाना, यु - मिलाना, अलग करना)। सह (सर्वनाम)॥15॥

446. पृथिव्याः सधस्थात् अग्निम् पुरीष्यम्, अङ्गिरस्वत् आ भर अग्निम् पुरीष्यम्,
अङ्गिरस्वत् अच्छ इम अग्निम् पुरीष्यम्, अङ्गिरस्वत् भरिष्यामः ॥16॥

मन्त्रार्थ :- पृथिव्याः = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के, व्यापक के। सधस्थात् = सहस्थान, सहगामी, साथ। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। पुरीष्यम् = पुरीष्य, अग्रगामी, अग्रणी। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। आ-भर = भरण करो। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को । पुरीष्यम् = पुरीष्य, अग्रगामी, अग्रणी। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। अच्छ = अच्छा, निर्मल करो इम = यह। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। पुरीष्यम् = पुरीष्य, अग्रगामी, अग्रणी। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। भरिष्यामः = भरण करेंगे॥16॥

भावार्थ :- पुरीष्य अर्थात् अग्रगामी, अग्रणी अग्नि को, अर्थात् ऊर्ध्वगामी, तेजस्विता को अपनाने का सन्देश है। वेद में पुरीष्य अर्थात् अग्रगामी, अग्रणी अग्नि परमात्मा के ही विशेषण हैं। इस प्रकार परमात्मा की स्तुति-उपासना करते हुए जीवन में सद्गुणों को अपनाने का सन्देश हमें प्राप्त होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - पृथिव्याः (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। सधस्थात् (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पुरीष्यम् (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)।

आ-भर (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, भृ - भरण करना)। अच्छ (अच्छ् - अच्छा होना, निर्मल करना)। इम (सर्वनाम)। भरिष्यामः (भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)॥ 16॥

447. अनु अग्निः उषसाम् अग्रम् अख्यत्, अनु अहानि प्रथमो जात-वेदा।
अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीन्, अनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ॥17॥

मन्त्रार्थ :- अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। उषसाम् = प्रभात का, ताप का। अग्रम् = अग्र, आगे। अख्यत् = प्रसिद्ध किया, अथवा प्रख्यात करते हुए, प्रकाशित करते हुए। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल। अहानि = व्यापक, दिन (अह - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना)। प्रथमो = प्रथम, आदि, विस्तार (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। जात-वेदा = विद्वान्, वेद को जानने वाले, वेद को उत्पन्न करने वाले (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जा-ज्ञा - जानना, विद् - जानना)। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल (उपसर्ग)। सूर्यस्य = सूर्य का (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। पुरुत्रा = अग्रगामी, अग्रणी। च = और। रश्मीन् = रश्मियों को। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल (उपसर्ग)। द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूण। ततन्थ = विस्तार किया॥17॥

भावार्थ :- अग्नि स्वरूप परमात्मा ने ही सूर्य, उषा, दिन-रात आदि सृष्टि का सृजन किया है। वही प्रथम जातवेद अर्थात् वेद को जानने वाला तथा उत्पन्न करने वाला है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अनु (उपसर्ग)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। उषसाम् (उषस् = प्रभात होना, उष - हिंसा करना, जलना, जलाना, ताप देना)। अग्रम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अख्यत् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, ख्या - प्रसिद्ध करना, प्रख्यात करना)। अहानि (अह - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना)। प्रथमो (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। जात-वेदा (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जा-ज्ञा - जानना, विद् - जानना)। सूर्यस्य (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। पुरुत्रा (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। च (अव्यय)। रश्मीन् (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करन, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। आ (उपसर्ग)। ततन्थ (तन् = विस्तार, फैलाना, शब्द करना)।॥17॥

(107) सूक्त 4

448. आगत्य वाजी अध्वानम्, सर्वा मृधो वि धूनुते। अग्निम् सधस्थे महति, चक्षुषा नि चिकीषते॥18॥

मन्त्रार्थ :- आगत्य = आकर। वाजी = बलों से युक्त, वाजयुक्त, विद्यायुक्त, गतियुक्त। अध्वानम् = अकम्पन को, मार्ग कों। सर्वा = सभी। मृधो = हिंसक, आद्र। वि- धूनुते = विक्षुब्ध करता है, धुनता है, कंपाता है, हिलाता है। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। सधस्थे = सहस्थान, सहगामी, साथ में। महति = महत् में , महान् होता है, पूज्य होता है। चक्षुषा = नेत्रों से, दृष्टि से, स्पष्ट वाणी से। नि = निश्चित, निरन्तर। चिकीषते = जानो, निवास करो, शासन करो, चिकित्सा करो॥ 18॥

भावार्थ :- अग्नि परमात्मा की शक्ति से ही प्राकृतिक शक्तियाँ साम्यावस्था में विक्षोभ उत्पन्न करती हैं जिससे उत्पन्न कम्पन से ऊर्जा तथा परमाणु-सृष्टि क्रमशः आकार लेती है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आगत्य (गम् = जाना, आ-गम् = आना)। वाजी (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। अध्वानम् (अ - नहीं, धू = कम्पन करना, अधु = चलना, विचरण करना)। सर्वा (सर्वनाम)। मृधो (मृध - दबाना, हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, आद्र करना, गीला करना, गीला होना)। वि (उपसर्ग)। धूनुते (धू -कम्पन करना, नोचना, कम्पित करना, काँपना, कम्पाना, कम्पित होना, हिलाना, क्षोभित करना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। सधस्थे (सद् =

जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। महति (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। चक्षुषा (चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)। नि (अव्यय)। चिकीषते (चिकित्स - जानना, निवास करना, शासन करना, चिकित्सा करना, पीड़ा निवारण करना, दुःख देना, चि - ढूँढ़ना, बटोरना, एकत्र करना, चिक्क - पीड़ा करना, दुःख देना)॥ 18॥

449. आक्रम्य वाजिन् पृथिवीम्, अग्निम् इच्छ रुचा त्वम्। भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि, यतः खनेम तम् वयम्॥19॥

मन्त्रार्थ :- आक्रम्य = आ-क्रम कर, सम्यक् गति, रक्षण करके। वाजिन् = वाजयुक्त, विद्यायुक्त, गतियुक्त। पृथिवीम् = पृथिवी को। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। इच्छ = इच्छा करें। रुचा = रुच को। त्वम् = तुम। भूम्या = भूमि का, भूम्य, उत्पन्न योग्य। वृत्वाय = हिंसक, आवरण, ढका हुआ, वर्ताव, वाणी, वर्तमान के लिए। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम। ब्रूहि = कहो। यतः = जिससे। तम् = उसको। वयम् = हम। खनेम = खनन करे, खोदे॥ 19॥

भावार्थ :- सम्पूर्ण पृथ्वी का अतिक्रमण करें अर्थात् संसार का भ्रमण कर जानकारी प्राप्त करें। अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्जा की उपासना कर रुचि के अनुसार विद्या प्राप्त करें। विद्वानों से मार्गदर्शन पाकर पृथ्वी से संसाधनों का उचित दोहन कर जीवन को सुखमय बनायें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आक्रम्य (आ = सम्यक्, समन्तात्, सम्पूर्ण, क्रम् = चलना, निर्भयता से चलना, रक्षा करना, बढ़ना)। वाजिन् (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। पृथिवीम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। इच्छ (इच्छ = इच्छा करना, कामना करना, चाहना)। रुचा (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। त्वम् (सर्वनाम)। भूम्या (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। वृत्वाय (वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना)। नो (सर्वनाम)। ब्रूहि (ब्रू = कहना, बोलना)। यतः (सर्वनाम)। खनेम (खन् = खनन करना, खोदना)। तम् (सर्वनाम)। वयम् (सर्वनाम)॥ 19॥

450. द्यौः ते पृष्ठम् पृथिवी सधस्थम, आत्मा अन्तरिक्षम् समुद्रो योनिः।
विख्याय चक्षुषा त्वम्, अभि तिष्ठ पृतन्यतः॥20॥

मन्त्रार्थ :- ते = तुम्हारा। पृष्ठम् = पृष्ठ। द्यौः = प्रकाश, अग्रता, अग्रगति। (है)। पृथिवी = पृथ्वी, विस्तृत भूमि, विस्तार। सधस्थम = सहस्थान,सहगामी। आत्मा = आत्मा । अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष या आकाश। समुद्रो = समुद्र। योनिः = योनि, बन्धन, मिलन। (है)। विख्याय = प्रख्यात करने वाले, खाने वाले, संचयी, भ्रमणशील। चक्षुषा = नेत्रों से, दृष्टि से, स्पष्ट वाणी से। त्वम् = तुम। अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा। तिष्ठ = उठो, ठहरो, खड़े हो। पृतन्यतः = व्यापक, बलात् निकालने वाले, पूर्ण करने वाले)॥ 20॥

भावार्थ :- तुम्हारा पृष्ठ द्यौ लोक है, पृथिवी सहगामी है, अन्तरिक्ष आत्मा है, समुद्र योनि है। दृष्टि से तथा वाणी से इसे जानकर, समझकर पूर्णता के साथ प्रतिष्ठा प्राप्त करो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - द्यौः (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना)। ते (सर्वनाम)। पृष्ठम् (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। पृथिवी (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। सधस्थम (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। आत्मा (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। समुद्रो (सम् - सम्यक्, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना)। योनिः (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। विख्याय (वि = विशेष,

विना, विलोम (उपसर्ग), खै - खाना, हिंसा करना, स्थिर रहना, खोदना, ख्या - प्रसिद्ध करना, कहना, व्याख्यान करना)। चक्षुषा (चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)। त्वम् (सर्वनाम)। अभि (उपसर्ग)। तिष्ठ (तिष्ठ् = ठहरना, खड़ा होना)। पृतन्यतः (पृत -व्याप्त होना, जीवन होना, बलपूर्वक निकालना, पृ = पूर्ण करना)॥ 20॥

451. उत् क्राम महते सौभगाय, अस्मात् आस्थानात् द्रविणोदा वाजिन्।
वयम् स्याम सु-मतौ पृथिव्या, अग्निम् खनन्त उपस्थे अस्याः॥21॥

मन्त्रार्थ :- उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। क्राम = आगे बढ़ायें। महते = महत् के लिए, महान्, पूज्य के लिए। सौभगाय = सौभाग्य के लिए। अस्मात् = इससे, इस। आस्थानात् = आस्थान से। द्रविणोदा = द्रविण-दाता, ज्ञान-दाता। वाजिन् = वाजयुक्त, विद्यायुक्त, गतियुक्त। वयम् = हम। स्याम = हों। सु-मतौ = सुमति में। पृथिव्या = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। खनन्त = खनन करते हुए, खोदने वाले। उपस्थे = उपस्थ में, सनिकट, समीप स्थित में। अस्याः = इसका॥ 21॥

भावार्थ :- हे द्रविणोदा वाजिन् अर्थात् ज्ञान-दाता, वाजयुक्त, विद्यायुक्त, गतियुक्त उपासक, महत् सौभाग्य के लिए इस स्थान से अतिक्राम करो। यदि कुछ बड़ा या महत्वपूर्ण करना है तो संकीर्णताओं, रूढ़ियों, सीमाओं का अतिक्रमण करना ही होगा। बन्धनों को तोड़ना होगा, साहसिक निर्णय करने ही होंगे।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उत् (उपसर्ग)। क्राम (क्रम् = चलना, निर्भयता से चलना, रक्षा करना, बढ़ना)। महते (मह् - पूजा करना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। सौभगाय (सु - अच्छा, सुन्दर, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, भग् -भज् - सेवा करना, सेवन करना, दान करना, अलग करना)। अस्मात् (सर्वनाम)। आस्थानात् (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, अस् = होना, स्था = ठहरना)। द्रविणोदा (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। वाजिन् (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। वयम् (सर्वनाम)। स्याम (अस् - होना)। सु-मतौ (सु - सुन्दर, अच्छा, सु - उत्पन्न करना, पैदा करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, मन - मनन करना, जानना, समझना, स्वीकार करना, अभ्यास करना, स्थिर होना, गर्व होना)। पृथिव्या (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। खनन्त (खन् = खनन करना, खोदना)। उपस्थे (उप = समीप, स्थ = स्थित)। अस्याः (सर्वनाम)॥ 21॥

(108) सूक्त 5

452. उत् अक्रमीत् द्रविणोदाः वाजी, अर्वाकः सु लोकम् सु-कृतम् पृथिव्याम्।
ततः खनेम सुप्रतीकम् अग्निम्, स्वो रुहाणा अधि नाकम् उत्तमम्॥22॥

मन्त्रार्थ :- उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। **अक्रमीत् =** वृद्धि की, रक्षा की, बढ़ गयी। **द्रविणोदाः =** द्रविण-दाता, ज्ञान-दाता। **वाजी =** वाजयुक्त, विद्यायुक्त, गतियुक्त। **अर्वाकः =** अर्वाक, गतिशील। **सु =** अच्छा। **लोकम् =** लोक को, दर्शन को। **सु =** अच्छा। **कृतम् =** कृतित्व, किया हुआ। **पृथिव्याम् =** पृथ्वी पर। **ततः =** उससे। **खनेम =** खनन करे, खोदे। **सुप्रतीकम् =** अच्छा प्रतीक। **अग्निम् =** अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। **स्वो =** स्वः, ऐश्वर्य, सृजन। **रुहाणा =** चढ़े, बढ़ें। **अधि =** अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार। **नाकम् =** नाक, अक रहित, अकुटिल, अविचल। **उत्तमम् =** उत्तम, श्रेष्ठ-इच्छा, शुभ-इच्छा॥ 22॥

भावार्थ :- द्रविणोदा वाजिन् अर्थात् ज्ञान-दाता, वाजयुक्त, विद्यायुक्त, गतियुक्त उपासक संकीर्णताओं, रूढ़ियों, सीमाओं का अतिक्रमण कर, बन्धनों को तोड कर साहसिक कार्य करते हुए उत्तम समाज का निर्माण करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उत् (उपसर्ग)। **अक्रमीत्** (अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अ = नहीं, उपसर्ग, क्रम् = जाना, बढ़ना, रक्षा करना)। **द्रविणोदाः** (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। **वाजी** (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। **अर्वाकः** (ऋ - जाना, सम्पादन करना, प्राप्त करना, मिलाना, पहुँचाना, अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, मिलाना,

महत्व दिखाना, हिंसा करना, अर्व - गति करना, जाना, चलना, जानना, पाना, पहुँचना, हिंसा करना, अक् - जाना, जानना पाना, टेढ़ा जाना, कुटिल गति करना)। **सु** (उपसर्ग)। **लोकम्** (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। **कृतम्** (कृ = करना)। **पृथिव्याम्** (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। **ततः** (सर्वनाम)। **खनेम** (खन् - खनन करना, खोदना)। **सुप्रतीकम्** (सु - उत्तम (उपसर्ग), प्र - प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक (उपसर्ग), तिक - जाना, हल्ला करना, चाल चलना, मारने या दुःख देने का प्रयत्न करना, तिक - जाना, भ्रमण करना, डकार आना)। **अग्निम्** (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **स्वो** (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **रुहाणा** (रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। **अधि** (उपसर्ग)। **नाकम्** (नक् - नक्क् = नष्ट होना, नष्ट करना, न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क - नाश होना)। **उत्तमम्** (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना) **।।22।।**

453. आ त्वा जिघर्मि मनसा घृतेन, प्रतिक्षियन्तम् भुवनानि विश्वा।
पृथुम् तिरश्चा वयसा बृहन्तम्, व्यचिष्ठम् अन्नै रभसम् दृशानम्।।23।।

मन्त्रार्थ :- त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। मनसा = मन से, मन द्वारा। घृतेन = घृत से, अभिसिञ्चित द्वारा, प्रकाशमान द्वारा। विश्वा = विश्व, सभी, सब। भुवनानि = भुवनों को। प्रतिक्षियन्तम् = निवास करने वाले को, क्षति, क्षय करने वाले को, पृथुम् = विस्तार, विस्तृत। तिरश्चा = तिरछा, तिर्यक्। वयसा = वय, गति, ज्ञान, रचना द्वारा। बृहन्तम् = महान्, बड़ा, विराट, बृहत्। व्यचिष्ठम् = व्यापकतायुक्त का। अन्नै = अन्नों द्वारा। रभसम् = आनन्दित हो, उपक्रम करो। दृशानम् = देखने वाले को आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। जिघर्मि = गन्ध लेता हूँ, प्रकाश करता हूँ, नाश करता हूँ।। 23।।

भावार्थ :- मन के प्रकाश से समस्त भुवनों को प्रकाशमान करते हुए, उनमें मानसिक रूप से वास करते हुए गन्ध लेते हैं। साधना तथा विवेक से एक स्थान पर रहकर भी हम समस्त लोकों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ (उपसर्ग)। **त्वा** (सर्वनाम)। **जिघर्मि** (जिघ्र् - गन्ध लेना, गन्ध ग्रहण करना, सूँघना, जिघृ - प्रकाश करना, नाश करना)। **मनसा** (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। **घृतेन** (घृ -गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना)। **प्रतिक्षियन्तम्** (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में (अव्यय), क्षि - जाना, चलना, जानना, पाना निवास करना, रहना, बसना, क्षय होना)। **भुवनानि** (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **विश्वा** (सर्वनाम)। **पृथुम्** (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। **तिरश्चा** (अव्यय)। **वयसा** (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना)। **बृहन्तम्** (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। **व्यचिष्ठम्** (व्यच् - व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, ठगना, वि - विशेष, अच् - जाना, मरना, आदर करना, याचना करना)। **अन्नै** (अन - जीवन होना, प्राणवान् होना, समर्थ होना, जाना, अद् - खाना)। **रभसम्** (रभ - आनन्दित होना, प्रसन्न होना)। **दृशानम्** (दृश्-पश्य -देखना)।। 23।।

454. आ विश्वतः प्रत्यञ्चम् जिघर्मि, अरक्षसा मनसा तत् जुषेत।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निः, न अभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ।।24।।

मन्त्रार्थ :- प्रत्यञ्चम् = प्रत्यञ्च को, पीछे को, पश्चिम को। विश्वतः = सबसे, विश्व से। अरक्षसा = अरक्ष द्वारा, अरक्षक द्वारा, अरक्षित द्वारा। मनसा = मन से, मन द्वारा। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। जिघर्मि = गन्ध लेता हूँ, प्रकाश करता हूँ, नाश करता हूँ। तत् = वह, उस को। जुषेत = विचार करे, सेवा करे, प्रीति करे। मर्यश्रीः = मर्य, मरणशील। स्पृहयद्वर्णो = **स्पृह** वर्ण। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। तन्वा = विस्तार, वृद्धि, वर्णन, भरोसा, आश्रय। जर्भुराणः = जीर्ण, वृद्ध या परिपक्व, न = नहीं, समान, उपमार्थक। अभिमृशे = सभी ओर, सर्वथा देखते हैं, विचार करते

हैं, स्पर्श करते हैं।। 24 ।।

भावार्थ :- जिघर्मि का अर्थ है गन्ध लेता हूँ प्रकाश करता हूँ तथा नाश करता हूँ। अरक्षसों अर्थात् अरक्षक तथा अरक्षित दोनो स्थितियों में जिघर्मि शब्द के पृथक् अर्थ मान्य हैं। अरक्षित का गन्ध लेना, प्रकाश करना अर्थात् सहायता करना है तथा अरक्षक का नाश भी करना पड़ सकता है। वेद श्रेष्ठ काव्य है। इसमें यह शब्दालंकार का सौन्दर्य है। यह वैदिक भाषा की विशेषता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ (उपसर्ग)। विश्वतः (सर्वनाम)। प्रत्यञ्चम् (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, अञ्च् = गति करना, चलना, जाना, झुकना, चाहना, मांगना, पूजा करना, मान करना, प्रकट करना, प्रति-अञ्च् - पीछे या पश्चिम की ओर झुकना या जाना)। जिघर्मि (जिघ्र् - गन्ध लेना, गन्ध ग्रहण करना, सूँघना, जिघृ - प्रकाश करना, नाश करना)। अरक्षसा (अ - नहीं, रक्ष - रक्षा करना, बचाना)। मनसा (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। तत् (सर्वनाम)। जुषेत (जुष् = विचार करना, सेवा करना, सेवन करना, विवेक होना, विवेचना करना, प्रीति करना, चाहना, दुलारना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। मर्यश्रीः (मृ = मरना, देहत्याग करना)। स्पृहयद्वर्णो (स्पृह - इच्छा करना, चाहना, वृ - वरण करना, स्वीकार करना, वर्ण - वर्णन करना, चमकना, आज्ञा करना, प्रेरणा करना, भेजना, रंगना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। न (अव्यय)। अभिमृशे (अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, मृश् - देखना, छूना, विचार करना)। तन्वा (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। जर्भुराणः (जृ - वृद्ध होना, जीर्ण होना)।।24 ।।

(109) सूक्त 6

455. परि वाज-पतिः कविः, अग्निः हव्यानि अक्रमीत्। दधत् रत्नानि दाशुषे।। 25 ।।

मन्त्रार्थ :- परि = सभी तरफ। वाज-पतिः = वाजपति। कविः = ज्ञानी, कवि, चित्रकार। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। हव्यानि = दान योग्य, देय। अक्रमीत् = वृद्धि की, रक्षा की, बढ़ गयी। रत्नानि = मूल्यवान्, रत्न। दाशुषे = दानी के लिए। दधत् = धारण किया।। 25 ।।

भावार्थ :- परमात्मा सुयोग्य दानी को ही मूल्यवान् प्रिय रत्न प्रदान करता है। यहाँ परमात्मा को ज्ञानी, कवि, चित्रकार, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् कहकर सम्बोधित किया गया है। अतः यहाँ मूल्यवान् प्रिय रत्न का अर्थ भी विद्या ही प्रमुख है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - परि (उपसर्ग)। वाज-पतिः (वाज् - जानना, जाना, पहुँचना, पाना, तैयार करना, वा - गति करना, बहना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। कविः (कु - शब्द करना, कविता करना, वर्णन करना, चित्र खींचना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। हव्यानि (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। अक्रमीत् (अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अ = नहीं, उपसर्ग, क्रम् = जाना, बढ़ना, रक्षा करना)। दधत् (धा-दध् - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। रत्नानि (रम् - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना)। दाशुषे (दश् - देना)।।

456. परि त्वा अग्ने पुरम् वयम्, विप्रम् सहस्य धीमहि, धृषत् वर्णम् दिवे-दिवे, हन्तारम् भङ्गुरावताम्।।26 ।।

मन्त्रार्थ :- अग्ने = हे अग्नि। वयम् = हम। त्वा = तुमको। पुरम् = पुर को, अग्रगामी, अग्रणी को। विप्रम् = विशेष पूर्ण करने वाले। सहस्य = सहनशील, समर्थ। परि = सभी ओर। धीमहि = धारण करते हैं। धृषत् = विजय, गर्व। वर्णम् = वर्ण को। दिवे-दिवे = प्रतिदिन, प्रत्येक दिव्यता में। हन्तारम् = मारने वाले को। भङ्गुरावताम् = भंगुर की रक्षा करने वाले का, प्रकाशित, गति करने, बोलने वाले का।। 26 ।।

भावार्थ :- परमात्मा के विविध गुणों का स्मरण करते हुए उनको धारण करने, अपनाने की प्रेरणा की गयी है। उपासना का यही भाव है कि परमात्मा के गुणों को हम भी अपने जीवन में अपनायें। तभी हम उपासक होने के अधिकारी हो सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - परि (उपसर्ग)। त्वा (सर्वनाम)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पुरम् (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। वयम् (सर्वनाम)। विप्रम् (वि = विशेष, विना, विलोम, प्रा - पूर्ण करना)। सहस्य (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ठ होना)। धीमहि (धी = धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना, बुद्धि, प्रज्ञा होना)। धृषत् (धृष् = जीतना, गर्व करना, धृष्टता करना, अभिमान करना, स्वयम् को बड़ा समझना, चतुरता दिखाना, वञ्चना करना)। वर्णम् (वृ - वरण करना, स्वीकार करना, वर्ण - वर्णन करना, चमकना, आज्ञा करना, प्रेरणा करना, भेजना, रंगना)। दिवे-दिवे (अव्यय)। हन्तारम् (हन् - मारना)। भङ्गुरावताम् (भञ्ज् = प्रकाशित होना, चमकना, बोलना, कहना, हिंसा करना, गति करना, खेलना, भञ्जन करना, नष्ट करना, आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, अव् = रक्षा करना)॥ 26॥

457. त्वम् अग्ने द्युभिः त्वम् आशुशुक्षणिः, त्वम् अद्भ्यः त्वम् अश्मनः परि।
त्वम् वनेभ्यः त्वम् ओषधीभ्यः, त्वम् नृणाम् नृपते जायसे शुचिः॥27॥

मन्त्रार्थ :- त्वम् = तुम। अग्ने = हे अग्नि। द्युभिः = द्यु द्वारा, प्रकाश द्वारा, प्रकाशमय, अग्रगामियों द्वारा। त्वम् = तुम। आशुशुक्षणिः = आशु द्वारा, आशु के साथ, तीव्र गति युक्त, व्यापक रूप से सूखने वाला। त्वम् = तुम। अद्भ्यः = अद् के लिए, खाद्य पदार्थों के लिए। त्वम् = तुम। अश्मनः = व्याप्त, व्यापक, प्राप्त का। परि = सभी तरफ। त्वम् = तुम। वनेभ्यः = वाणी के लिए, वनों के लिए। त्वम् = तुम। ओषधीभ्यः = ओषधियों के लिए। त्वम् = तुम। नृणाम् = नरों को। नृपते = नर, ले जाने वाले पति। जायसे = उत्पन्न होते हो। शुचिः = शुद्धता॥ 27॥

भावार्थ :- परमात्मा विविध प्राकृतिक साधनों से हमारा कल्याण करता है। हमको प्रकृति का संरक्षण करना चाहिए तथा स्वयम् भी प्रकृति का सदुपयोग कर लोक-कल्याण करना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - त्वम् (सर्वनाम)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। द्युभिः (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना)। आशुशुक्षणिः (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, अश् = भोजन करना, शुष् - सूखना, शुष्क होना)। अद्भ्यः (अद् = खाना, आत्मसात् करना, अ - नहीं, दा - देना)। अश्मनः (अश् = भोजन करना, व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना)। परि (उपसर्ग)। वनेभ्यः (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना)। ओषधीभ्यः (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। नृणाम् (नृ- ले जाना)। नृपते (नृ - ले जाना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। जायसे (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। शुचिः (शुच्-शुक्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)॥ 27॥

458. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्।
पृथिव्या सधस्थात् अग्निम्, पुरीष्यम् अङ्गिरस्वत् खनामि।
ज्योतिष्मन्तम् त्वा अग्ने सु-प्रतीकम्, अजस्रेण भानुना दीद्यतम्।
शिवम् प्रजाभ्यः अहिंसन्तम् पृथिव्याः सधस्थात्, अग्निम् पुरीष्यम् अङ्गिरस्वत् खनामः॥28॥

मन्त्रार्थ :- देवस्य = देव का। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। सवितुः = उत्पादक, ऐश्वर्यवान्, उत्पन्न करने वाला। प्रसवे, = उत्पन्नकर्ता में, उत्पन्न करे। अश्विनोः = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक। बाहुभ्याम् = दोनों बाहुओं द्वारा, के लिए, प्रयास करने वाले के लिए। पूष्णो = पोषण करने वाला, पोषणकर्ता। हस्ताभ्याम् = दोनों हस्त द्वारा, के लिए, से। पृथिव्या = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। सधस्थात् = सहस्थान, सहगामी, साथ। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। पुरीष्यम् = पुरीष्य, अग्रगामी, अग्रणी। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। खनामि =

खनन करता हूँ, खोदता हूँ। अग्ने = हे अग्नि। त्वा - तुमको, ज्योतिष्मन्तम् = प्रकाशवान् को। सु-प्रतीकम् = प्रतीक को। अजस्रेण = अजस्र, सतत, निरन्तर द्वारा। भानुना = भानु द्वारा, प्रकाशमान द्वारा। दीद्यतम् = दिया। शिवम् = कल्याण को, कल्याणकारी। प्रजाभ्यः = प्रजा के लिए। अहिंसन्तम् = हिंसा नहीं करने वाले को। पृथिव्या = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। सधस्थात् = सहस्थान, सहगामी, साथ। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। पुरीष्यम् = पुरीष्य, अग्रगामी, अग्रणी। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। खनामः = खनन करते हैं, खोदते हैं।। 28 ।।

भावार्थ :- परमात्मा का स्मरण करते हुए प्रकृति के संसाधनों का उपयोग करें। प्रकृति का दोहन अहिंसक होना चाहिए। इसका अर्थ है कि प्रकृति उपयोग करें, परन्तु उसका संरक्षण भी करें, नष्ट न होने दें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। त्वा (सर्वनाम)। सवितुः (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। प्रसवे (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। अश्विनोः (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। बाहुभ्याम् (बाह् - प्रयास करना, बह् - बहना, गति करना, बाहर होना, परे हो जाना, हिंसा करना) पूष्णो (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। हस्ताभ्याम् (हस्त -देना, लेना, ग्रहण करना)। पृथिव्या (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। सधस्थात् (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पुरीष्यम् (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। खनामि (खन् = खनन करना, खोदना)। ज्योतिष्मन्तम् (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। सु-प्रतीकम् (सु - सुन्दर, अच्छा, जन् = उत्पन्न होना) (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, तिक्-तीक् - जाना)। अजस्रेण (सर्वनाम, अव्यय)। भानुना (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। दीद्यतम् (दा, दद्, दत् = दान करना, देना, त्याग करना, सौंपना, लौटाना, रखना)। शिवम् (शिव् = कल्याण करना)। प्रजाभ्यः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)। अहिंसन्तम् (हिंस् - हिंसा करना, मारना, बध करना)। पृथिव्या (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। सधस्थात् (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। खनामः (खन् - खनन करना, खोदना)।। 28 ।।

(110) सूक्त 7

459. अपाम् पृष्ठम् असि योनिः अग्नेः, समुद्रम् अभितः पिन्वमानम्।
वर्धमानो महान् आ च पुष्करे, दिवो मात्रया वरिम्णा ।।29 ।।

मन्त्रार्थ :- अपाम् = अपा को, पालकों का। पृष्ठम् = पृष्ठ को। अग्नेः = अग्नि का। योनिः = बन्धन, मिलन। समुद्रम् = समुद्र। अभितः = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा। पिन्वमानम् = गति, ज्ञान, प्राप्ति, शब्द, सेवा करने वाले। वर्धमानो = बढ़ाने वाले। महान् = बड़े, पूज्य, महान्। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। च = और। पुष्करे = पुष्कर में, पालन-पोषण करने, धारण करने, रक्षण करने, वृद्धि करने, विभाग करने वाले में। दिवो = दिव, स्तुतिकर्ता, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। मात्रया = माता द्वारा। वरिम्णा = वरण, पालन करने वाले। असि = हो।। 29 ।।

भावार्थ :- पालकों के पृष्ठ हो, अग्नि के योनि हो,ज्ञान के समुद्र हो, महान् वर्धमान, माता द्वारा वरणीय दिव्य वरिम्णा हो। यह स्तुति अर्थात् गुण-कीर्तन परमात्मा के लिए है तथा उसके उपासक के लिए भी। हमें ये गुण स्वयम् में धारण करने चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अपाम् (अप - पालन करना)। पृष्ठम् (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, पृश् = प्रश्न करना, पूंछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। असि (अस् - होना)। योनिः (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग

करना)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। समुद्रम् (सम् = सम्यक्, भलीभांति, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना)। अभितः (सर्वनाम)। पिन्वमानम् (पि = गति करना, जाना, जानना, पाना, पिन्व = सेवा करना, सेचन करना, प्रोक्षण करना, पिण् - शब्द करना)। वर्धमानो (वृध् = बढ़ना, चमकना, बोलना)। महान् (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। आ (उपसर्ग)। च (अव्यय)। पुष्करे (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, रक्षण करना, वृद्धि करना, विभाग करना, कृ = करना)। दिवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। मात्रया (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। वरिम्णा (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)॥ 29॥

460. शर्म च स्थो वर्म च स्थो, अच्छिद्रे बहुले उभे। व्यचस्वती सम् वसाथाम्, भृतम् अग्निम् पुरीष्यम्॥30॥

मन्त्रार्थ :- शर्म = सुख, च = और। स्थो = स्थित। वर्म - वरण, स्वीकार। च = और। स्थो = स्थि। अच्छिद्रे = छिद्र रहित द्वारा, दोषरहित द्वारा, निर्मल द्वारा। बहुले = बहुल में। उभे = दोनों, पूर्णता। व्यचस्वती = व्यापकतायुक्त। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। वसाथाम् = वास करते हुए, धारण करता हुआ। भृतम् = भरण-पोषण, धारण करने वाले को। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् का। पुरीष्यम् = पुरीष्य को, अग्रगामी को, अग्रणी को॥ 30॥

भावार्थ :- सुख, वरण, वरेण्यता, स्वीकार्यता आदि हमको छिद्र रहित अर्थात् निर्मल जीवन में ही प्राप्त होते हैं। यह वेद की मान्यता है। कभी-कभी सांसारिक साधन-सुविधाएं सुख का आभास देती हैं। उनका व्यावहारिक महत्व भी है। परन्तु यहाँ हमें निर्मल छल-रहित जीवन को अपनाने तथा आध्यात्मिक अलौकिक सुख पाने की प्रेरणा दी गयी है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - शर्म (शर्म् - सुख होना, श्रीमान् होना, सम्मानित होना)। च (अव्यय)। स्थो (स्था - स्थित होना, ठहरना)। वर्म (वृ - वरण करना, स्वीकार करना, आच्छादन करना, वर्ण - वर्णन करना, चमकना, आज्ञा करना, प्रेरणा करना, भेजना, रंगना)। अच्छिद्रे (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, छिद्र - छेद करना)। बहुले (सर्वनाम)। उभे (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना)। व्यचस्वती (व्यच् - व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, ठगना, वि - विशेष, अच् - जाना, मरना, आदर करना, याचना करना)। सम् (उपसर्ग)। वसाथाम् (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। भृतम् (भृ - भरण-पोषण, धारण करना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पुरीष्यम् (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)॥ 30॥

461. सम् वसाथाम् स्वर्विदा, समीची उरसा त्मना।
अग्निम् अन्तः भरिष्यन्ती, ज्योतिष्मन्तम् अजस्रम् इत्॥31॥

मन्त्रार्थ :- सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। वसाथाम् = वास करते हुए, धारण करता हुआ। स्वर्विदा = शब्द को जानने वाले, शब्दज्ञानी, विद्वान्। समीची = समीचीन, न घबराने वाले, एक समान रहने वाले। उरसा = निरन्तर गति, विस्तार द्वारा। आत्मना = आत्मा द्वारा। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, (परमात्मा) को। अन्तः = बीच में, भीतर। भरिष्यन्ती = भरण करने वाले। ज्योतिष्मन्तम् = प्रकाशवान् को। अजस्रम् = सतत, निरन्तर। इत् = ही॥ 31॥

भावार्थ :- सम्यक रूप से जीवन व्यतीत करते हुए, सम्यक् अध्ययन करते हुए निरन्तर व्यापक प्रयास से ही परमात्मा का प्रकाश प्राप्त होता है। आत् धातु का अर्थ होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना तथा अत् धातु का अर्थ सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना होता है। वैदिक भाषा में आ का लोप हो सकता है। अतः यहाँ त्मना पद का प्रयोग हुआ है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सम् (उपसर्ग)। वसाथाम् (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना,

निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। स्वर्विदा (स्वर् - शब्द करना, दोष लगाना, निन्दा करना)। समीची (सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, इज् - पूजना, जाना, जानना)। उरसा (उर् = विस्तार करना, जाना, चलना, निरन्तर चलना)। त्मना (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना, वैदिक भाषा में आ का लोप हो सकता है)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। भरिष्यन्ती (भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)। ज्योतिष्मन्तम् (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। अजस्रम् (सर्वनाम, अव्यय)। इत् (अव्यय)॥ 31॥

462. पुरीष्यो असि विश्वभरा अथर्वा, त्वा प्रथमो निः अमन्थत् अग्ने।
त्वाम् अग्ने पुष्करात् अधि, अथर्वा निः अमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः॥32॥

मन्त्रार्थ :- पुरीष्यो = पुरीष्य, अग्रगामी, अग्रणी। असि = हो। विश्वभरा = पोषण करो, भरण करो। अथर्वा = अविचलित-अहिंसक, त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। प्रथमो = प्रथम, आदि, विस्तार। निः = बिना, बाहर, निश्चित (अव्यय)। अमन्थत् = मथा, मन्थन किया। अग्ने = हे अग्नि। त्वाम् = तुमको, तुम्हारी (सर्वनाम)। अग्ने = हे अग्नि। पुष्करात् = पुष्कर से। अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार। अथर्वा = अविचलित-अहिंसक। निः = बिना, बाहर, निश्चित। अमन्थत = मथा, मन्थन किया। मूर्ध्नो = उच्च। विश्वस्य = विश्व का, सभी का। वाघतः = उत्थान से।32॥

भावार्थ :- अग्नि परमात्मा सबका भरण-पोषण करने वाला है। उसका मन्थन करने वाले को सर्व प्रथम अथर्वा होना होता है। अथर्वा का अर्थ है अविचलित-अहिंसक! परमात्मा के उपासक को अहिंसक तो होना ही चाहिए। हिंसक भ्ाावना वाला व्यक्ति आध्यात्मिक तो हो ही नहीं सकता है। उसे अविचलित धैर्यवान् साधक भी होना चाहिए। विघ्न बाधाओं से विचलित हुए विना साधना करने का यथासम्भव प्रयास तो करना ही चाहिए। अग्नि अर्थात् परमात्मा पोषणकर्ता है। अथर्वा अर्थात् अविचलित-अहिंसक भाव वाले उपासक ने उसका प्रथम मन्थन किया अर्थात् चिन्तन-मनन किया, साधना-उपासना की। परमात्मा की उपासना के लिए अहिंसा की भावना महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही धैर्य-पूर्वक अविचल रहकर उपासना करनी चाहिए॥ 32॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - पुरीष्यो (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। असि (अस् - होना)। विश्वभरा (विश्व - सब (सर्वनाम), भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)। अथर्वा (अ - नहीं, थर्व - अस्थिर होना, हिंसा करना)। त्वा (सर्वनाम)। प्रथमो (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना)। निः (अव्यय)। अमन्थत् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, मथ् मथना, मन्थन करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। त्वाम् (सर्वनाम)। पुष्करात् (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, रक्षण करना, वृद्धि करना, विभाग करना, कृ = करना)। अधि (उपसर्ग)। अमन्थत (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, मथ् मथना, मन्थन करना)। मूर्ध्नो (मुर् - घेरना, लपेटना, मूर्द्ध- उच्च होना)। विश्वस्य (सर्वनाम)। वाघतः (वघ् - रुकना, उठ़ना, उत्थान करना)॥ 32॥

(111) सूक्त 8

463. तम् उ त्वा दध्यङ् ऋषिः, पुत्रः ईधे अथर्वणः। वृत्रहणम् पुरन्दरम्॥33॥

मन्त्रार्थ :- तम् = उसको, उसे। उ = निश्चय ही, भी। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। दध्यङ् = धारण करने वाले। ऋषिः = ऋषि, पुत्रः = पुत्र, पवित्रकर्ता। ईधे = समान रूप से धारण करते हैं। अथर्वणः = अविचलित-अहिंसक का। वृत्रहणम् = हिंसा का हनन करने वाले। पुरन्दरम् = पुरन्दर को, अग्रगामी, अग्रणी का आदर करने वाले को॥ 33॥

भावार्थ :- अहिंसक, अविचल, पवित्रकर्ता, धारण करने वाले ऋषि समान रूप से धारण करते हैं। हिंसा का हनन करने वाले पवित्र पुत्र अथर्वण अहिंसक अविचलित ऋषि ने पुरन्दर को, अर्थात् अग्रगामी, अग्रणी का आदर करने वाले पुरन्दर अर्थात् अग्रगामी, अग्रणी का आदर करने वाले को समभाव से धारण करते हैं। इसका भाव है कि उपासक अहिंसक, अविचल, पवित्रकर्ता, धारण करने वाले ऋषि होते हैं। वे हिंसा का हनन करने वाले, अग्रणी का आदर करने वाले परमात्मा

को समान रूप से, सदा-सर्वदा एकरस समभाव से धारण करने में समर्थ होते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तम् (सर्वनाम)। उ (अव्यय)। त्वा (सर्वनाम)। दध्यङ् (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। ऋषिः (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना), पुत्र (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। ईधे (ई = इस प्रकार, समान, वैदिक उपसर्ग, धि - धारण करना)। अथर्वणः (अ - नहीं, थर्व - अस्थिर होना, हिंसा करना)। वृत्रहणम् (वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना, हन् - हिंसा करना)। पुरन्दरम् (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, दृ = आदर करना, सम्मान करना)॥ 33॥

464. तम् उ त्वा पाथ्यो वृषा, सम् ईधे दस्युहन्तमम्। धनञ्जयम् रणे-रणे॥34॥

मन्त्रार्थ :- तम् = तुमको। उ = निश्चय ही, भी। त्वा = तुमको। पाथ्यो = पथ योग्य, गमन योग्य। वृषा = पराक्रमी। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। ईधे = समान रूप से धारण करते हैं। दस्युहन्तमम् = दस्यु-हन्ता को, दस्यु को, मारने वाले को। धनञ्जयम् = धन जीतने वाले को। रणे-रणे = रण में, शब्द में॥ 34॥

भावार्थ :- सुयोग्य पराक्रमी ही दस्युहन्ता धनञ्जय को समान रूप से धारण करते हैं। इसका भाव है कि योग्यता तथा परिश्रम से ही लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तम् (सर्वनाम)। उ (अव्यय)। त्वा (सर्वनाम)। पाथ्यो (पथ् - जाना, उड़ाना, फेंकना, त्यागना)। वृषा (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। सम् (उपसर्ग)। ईधे (ई = इस प्रकार, समान, वैदिक उपसर्ग, धि - धारण करना)। दस्युहन्तमम् (दस् - रक्षण, पालन, स्थापन करना, देखना, नष्ट होना, नष्ट करना, डसना, हन् - मारना, हिंसा करना)। धनञ्जयम् (धन् - शब्द करना, गति करना, चलना, जाना, जानना, पाना, उत्पन्न करना, फलना, बौर लगना, जि - जीतना, पराभव करना)। रणे-रणे (रण - शब्द करना, आवाज करना, जाना)॥ 34॥

465. सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्, सादय यज्ञाम् सुकृतस्य योनौ।
देवावीः देवान् हविषा यजासि, अग्ने बृहत् यजमाने वयो धाः।35॥

मन्त्रार्थ :- सीद = बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों। होतः= आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाले। स्व = उत्पन्न, ऐश्वर्य, सृष्टि या जगत्,। उ = निश्चय ही, भी। लोके = लोक में । चिकित्वान् = विद्वान्। सादय = स्थापित करो। यज्ञाम् = यज्ञ से, यजन से। सुकृतस्य = अच्छा करने वाला, सत्कर्म कता। योनौ = योनि में, मिलाने अलग करने में। देवावीः = विद्वान्, दिव्यगुणी, देवगण। देवान् = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों को। हविषा = हविष से, दान व आदान-प्रदान द्वारा। यजासि = यजन करते हो। अग्ने = हे अग्नि। बृहत् = बृहत्, बड़ा, यजमाने = यजमान में, यजन करने वाले में। वयो = वय या रचना को।35॥

भावार्थ :- सत्कर्म करने वाले, दिव्य गुण वाले यजमान अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान करने वाले उपासक परमात्मा का प्रकाश प्राप्त होता है॥35॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। होतः (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। स्व (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। उ (अव्यय)। लोके (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। चिकित्वान् (चिकित् - जानना)। सादय (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। यज्ञाम् (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। सुकृतस्य (सु = अच्छा, उपसर्ग, कृ - करना)। योनौ (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। देवावीः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। देवान् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। हविषा (हू = दान करना,

देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। यजासि (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना, दान करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। यजमाने (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना, दान करना) वयो (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना)। धाः (धा - धारण करना, पहनना, पोषण करना, धाः = पोषण करना, रक्षण करना, देना, दान करना, धार बाँधना, धारा होना)।। 35 ।।

466. नि होता होतृ-षदने विदानः, त्वेषो दीदिवान् असदत् सुदक्षः।
अदब्ध-व्रत-प्रमतिः वसिष्ठः, सहस्रम्भरः शुचि-जिह्वो अग्निः ॥36॥

मन्त्रार्थ :- नि = निश्चित, निरन्तर। होता = आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाले। होतृ-षदने = आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाले के सदन में। विदानः = विद्वान्, दानी। त्वेषो = प्रकाशवान्। दीदिवान् = प्रकाश करने वालों को। असदत् = बैठे, स्थित हुए, गये। सुदक्षः = भलीभाँति दक्ष। अदब्ध-व्रत-प्रमतिः= अनिन्द्य व्रत मति वाला। वसिष्ठः = वसिष्ठ, दयालु, सीधा, धारण, निवास करने वाला। सहस्रम्भरः = सहस्र या हजार गुना भरण करने वाले। शुचि-जिह्वो = पवित्र जिह्वा। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्।। 36 ।।

भावार्थ :- अहिंसक, निन्दारहित, व्रती, दयालु, पवित्र वाणी वाला उपासक अग्नि परमात्मा को जानते हुए दक्षता को प्राप्त करता है।। 36 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नि (अव्यय)। होता (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। होतृ-षदने (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना, सद्-षद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। विदानः (विद - शरीर की सुध रखना, समझना, जानना, समझा के कहना, रहना, वास करना, वसना, स्थिर रहना, दा - देना)। त्वेषो (त्विष - प्रकाशित होना, चमकना)। दीदिवान् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। असदत् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। सुदक्षः (सु - उत्तम, श्रेष्ठ, दक्ष् - बढ़ना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना, दक्ष होना, चलना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, मार डालना)। अदब्ध-व्रत-प्रमतिः (दभ् - निन्दा करना, आज्ञा करना)। वसिष्ठः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। सहस्रम्भरः (सहस्र = हजार, भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)। शुचि–जिह्वो (शुच्-शुक्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना, जिह - जाना, जानना, पाना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)।।36 ।।

(112) सूक्त 9

467. सम् सीदस्व महान् असि, शोचस्व देववीतमः।
विधूमम् अग्ने अरुषम् मियेध्य, सृज प्रशस्त दर्शतम्।। 37 ।।

मन्त्रार्थ :- सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। सीदस्व = संचरण करो, प्रतिष्ठित हो। महान् = बड़े, पूज्य, महान्। असि = हो। शोचस्व = शुद्ध - पवित्र करो। देववीतमः = अत्यन्त देव-व्याप्ति, दिव्य ज्ञान। वधूमम् = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें। अग्ने = हे अग्नि। अरुषम् = अहिंसक अथवा रोष-रहित, हिंसक, गतिशील, व्यापक। मियेध्य = गतिशील करो। सृज = सृजन करो। प्रशस्त = प्रशस्। दर्शतम् = देखा, दर्शनीय को, देखने वाले को।। 37 ।।

भावार्थ :- महान् हो, शुद्ध - पवित्र दिव्य ज्ञान को प्रतिष्ठित करो। प्रशस्त दृष्टि वाले का सृजन करो। भाव यह है कि समाज में सज्जनों का सृजन, विकास, संरक्षण किया जाना चाहिए।। 37 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सम् (उपसर्ग)। सीदस्व (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। महान् (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। असि (अस् - होना)। शोचस्व (शुच् = शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना, दुःख मानना, शोक करना)। देववीतमः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, प्रीति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना, वी = व्याप्त होना, गति करना, चलना, जाना, जाना, जानना, पाना)। वधूमम् (वि - विशेष, धा - धारण करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अरुषम् (अ - नहीं, ऋ-अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, रुष् - हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, मारने का यत्न करना)। मियेध्य (मि - प्रक्षेपण करना, स्थापन करना, रक्षा करना, मी = समझना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना)। सृज (सृज् - छोड़ना, त्याग करना, विविध रूप से उत्पन्न करना, रचना करना)। प्रशस्त (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, शास्-शस् - अनुशासन करना, इच्छा करना, आशीर्वाद देना, शस् - काटना, मारना, हिंसा करना)। दर्शतम् (दृश् - देखना)॥ 37॥

468. अपो देवीः उप सृज मधुमतीः, अयक्ष्माय प्रजाभ्यः।
तासाम् आस्थानात् उत् जिहताम्, ओषधयः सुपिप्पलाः॥38॥

मन्त्रार्थ :- अपो = पालन करने वाला। देवीः = दिव्यगुणयुक्त। उप = समीप। सृज = सृजन करो। मधुमतीः = मधुयुक्त। अयक्ष्माय = गतिशील, विद्वान् के लिए, अश्रेष्ठ, अपूज्य, पूजा न करने वाले के लिए। प्रजाभ्यः= प्रजा के लिए। तासाम् = उनका। आस्थानात् = आस्थान से। उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। जिहताम् = जाओ, जानो, प्राप्त करो। ओषधयः = ओषधियाँ। सुपिप्पलाः = गति, ज्ञान, प्राप्ति, शब्द, सेवा करने वाले॥ 38॥

भावार्थ :- अयक्ष्माय पद के अर्थ गतिशील, विद्वान् के लिए तथा अश्रेष्ठ, अपूज्य, पूजा न करने वाले के लिए दोनो हैं। ये दो अर्थ विपरीतार्थक अथवा विरोधाभाषी प्रतीत होते हैं। व्याकरण के अनुसार दोनो अर्थ उचित हैं। ऐसे अर्थ से श्लेष अलंकार उत्पन्न होता है। मन्त्र के सम्पूर्ण अर्थ को ध्यान में रखने पर दोनो में कोई एक अथवा दोनो अर्थ स्वीकार किये जा सकते हैं। मन्त्र का अर्थ वेद की गरिमा के अनुकूल तथा मूल भावना के अनुकूल होना चाहिए। अ को उपसर्ग मानने पर अ का अर्थ नहीं होगा तथा यक्ष् धातु का अर्थ- श्रेष्ठ होना, पूज्य होना, पूजा करना है। अय् धातु का का अर्थ जाना, जानना, पाना होता है। क्षम् धातु का अर्थ क्षमा करना, समर्थ होना, सहन करना, रोकना होता है। इस प्रकार एक पद के अनेक अर्थ व्याकरण के अनुकूल तथा उचित माने जाते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अपो (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना)। देवीः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। उप (उपसर्ग)। सृज (सृज् - छोड़ना, त्याग करना, विविध रूप से उत्पन्न करना, रचना करना)। मधुमतीः (मध् = मधुर होना, मीठा होना, मध्य होना)। अयक्ष्माय (अ - नहीं, यक्ष् - श्रेष्ठ होना, पूज्य होना, पूजा करना, अय् = जाना, जानना, पाना, क्षम् - क्षमा करना, समर्थ होना, सहन करना, रोकना)। प्रजाभ्यः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)। तासाम् (सर्वनाम)। आस्थानात् (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, अस् = होना, स्था = ठहरना)। उत् (उपसर्ग)। जिहताम् (जिह् - जाना, चलना, जानना, पाना)। ओषधयः (उषध्-ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा)। सुपिप्पलाः (सु - सुन्दर, अच्छा, सु - उत्पन्न करना, पैदा करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, पिप्पल् = गति करना, जाना, जानना, पाना, सेवा करना, चाकरी करना)॥ 38॥

469. सम् ते वायुः मातरिश्वा दधातु, उत्तानाया हृदयम् यत् विकस्तम्।
यो देवानाम् चरसि प्राणथेन, कस्मै देव वषट् अस्तु तुभ्यम्॥39॥

मन्त्रार्थ :- सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। ते = तुम्हारा, तुम्हारे लिए। वायुः = गतिशील, रचनात्मक शक्ति, वायु। मातरिश्वा = मातरि-श्वा, मातृ-सेवी, उपासक। दधातु = धारण करे। उत्तानाया = उत्तान, उच्च विस्तार करने वाले, फैलाने वाले। हृदयम् = हृदय का। यत् = जिसे, जो। विकस्तम् = विकम्पन, शासन, विनाश, आमोद, गन्ध। यो = जो। देवानाम् = देवों का। चरसि = विचरण करते हो। प्राणथेन = प्राणथ द्वारा।, कस्मै = किसलिए, किसके लिए। देव= देव,

विद्वान्, तेजस्वी, दिव्यस्वरूप। वषट् = भोजन, हिंसा। अस्तु = हो। तुभ्यम् = तुम्हारे लिए।। 39।।

भावार्थ :- हे मातृसेवी उपासक, प्राकृतिक सुगन्धित वायु तथा उत्तम विद्या को हृदय में उत्तम रूप में धारण करो। हे देव, जो देवों में प्राण बनकर विचरण करते हो, वह तुम्हारे लिए भोजन स्वरूप हो। सभी जीवों में प्राण परमात्मा की चेतन शक्ति स्रो ही आता है। वह परमात्मा की चेतना ही सभी जीवों में प्राण रूप में संचरित होती है। उसी प्रकार उपासक भी समाज में प्राण स्वारूप हैं। यह दिव्य विद्या ही वैदिक उपासक तथा समाज का दिव्य भोजन है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सम् (उपसर्ग)। ते (सर्वनाम)। वायुः (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा = गति करना, पवन की भाँति बहना, जाना, जानना, पाना, गन्ध होना, प्रवाहित होना, प्रवाहित करना)। मातरिश्वा (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, श्वस - श्वास लेना, जीते रहना, श्वि - जाना, वृद्धि होना, श्वस - श्वास लेना)। दधातु (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। उत्तानाया (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तन् = तानना, विस्तार करना, फैलाना, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना)। हृदयम् (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। यत् (सर्वनाम)। विकस्तम् (वि - विशेष, कस - हिलना, कांपना, कस्त - आनन्द करना, गन्ध करना, अल्प भाव करना)। यो (सर्वनाम)। देवानाम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। चरसि (चर - जाना, खाना, आचरण करना)। प्राणथेन (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना, नथ् - कम्पन करना)। कस्मै (सर्वनाम)। देव (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। वषट् (वष - मार डालना, पीड़ा करना)। अस्तु (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। तुभ्यम् (सर्वनाम)।।39।।

470. सुजातो ज्योतिषा सह शर्म, वरूथम् आ असदत् स्वः।
वासो अग्ने विश्वरुपम्, सम् व्ययस्व विभावसो।।40।।

मन्त्रार्थ :- सुजातो = उत्पन्न हुए। ज्योतिषा = ज्योति द्वारा, प्रकाश द्वारा, ज्योति से। सह = साथ, सहित। शर्म = सुख, सम्मान, समृद्धि। वरूथम् = वरूथ को, इच्छा, चाह, आशा, वरण, प्रिय को। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। असदत् = बैठे, स्थित हुए, गये। स्वः = उत्पन्न, ऐश्वर्य, सृष्टि या जगत्, स्वः। वासो = घर, निवास। अग्ने = हे अग्नि। विश्वरुपम् = विश्वरूप को। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। व्ययस्व = व्यय करते हो। विभावसो = विशेष प्रकाशित वसु।। 40।।

भावार्थ :- दिव्य प्रकाश के साथ सुख उत्तम रूप में उत्पन्न होता है। अग्नि स्वरूप परमात्मा विश्वरूप में सर्वव्यापी है। वरणयोग्य आशा, इच्छा को पूर्ण करने का प्रयास करो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सुजातो (सु = अच्छा, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। ज्योतिषा (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। सह (सर्वनाम)। शर्म (शर्म् = सुख होना, श्रीमान् होना, सम्मानित होना)। वरूथम् (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। आ (उपसर्ग)। असदत् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। स्वः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। वासो (वस् = रहना, निवास करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। विश्वरुपम् (विश्व - सब, सभी, (सर्वनाम), रूप - आकार बनाना, रचना करना)। सम् (उपसर्ग)। व्ययस्व (वि - विशेष, इ-अय् - जाना, जानना, पाना, व्यय - आच्छादन करना, उपयोग होना, खर्च होना, नाश होना)। विभावसो (वि - विशेष, भा - चमकना, प्रकाशित होना, वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)।। 40।।

(113) सूक्त 10

471. उत् तिष्ठ स्वध्वर, अवा नो देव्या धिया।

दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिः, आ अग्ने याहि सुशस्तिभिः ॥41॥

मन्त्रार्थ :- उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। तिष्ठ = उठो, ठहरो, खड़े हो। स्वध्वर = अच्छा अध्वर, अच्छा अहिंसक, स्वधित, स्वयम् धारित। अवा = रक्षक, प्रकाश। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। देव्या = दिव्य। धिया = धारणा द्वारा, बुद्धि द्वारा। दृशे = देखने के लिए। च = और। भासा = प्रकाशमान। बृहता = महान्, बड़ा, विराट, बृहत। सुशुक्वनिः = अच्छी तरह पवित्र, अति पवित्र। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। अग्ने = हे अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। याहि = जायें, प्राप्त हों, प्राप्त करें (या- जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। सुशस्तिभिः = सुन्दर स्तुतियों द्वारा॥ 41॥

भावार्थ :- तुम उत्तम अहिंसक हो। उठो और दिव्य बुद्धि से हमारी रक्षा करो। बृहत् अति पवित्र प्रकाश में दिखने वाले हो। हे अग्नि स्वरूप तेजस्वी परमात्मा तथा उसके दिव्य तेजस्वी अग्नि स्वरूप उपासक सुन्दर स्तुतियों द्वारा ही प्राप्त होते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उत् (उपसर्ग)। तिष्ठ (तिष्ठ् = ठहरना, खड़ा होना)। स्वध्वर (सु - अच्छा, अ - नहीं, ध्वृ - हिंसा करना, स्व = निज, अपना, धृ - धारण करना, धा = धारण करना, पहनना, पोषण करना, रक्षण करना, धि - पास रखना या होना, युक्त होना)। अवा (अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना, प्रकाश करना)। नो (सर्वनाम)। देव्या (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। धिया (धी = धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना, बुद्धि, प्रज्ञा होना, धि = धारण करना, युक्त होना)। दृशे (दृश्- पश्य -देखना)। च (अव्यय)। भासा (भास् - प्रकाशित होना, चमकना)। बृहता (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। सुशुक्वनिः (सु - अच्छा, सुन्दर, शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। आ (उपसर्ग)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। याहि (या- जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। सुशस्तिभिः (सु - अच्छा, सुन्दर, शंस = स्तुति, प्रशंसा करने वाला)॥ 41॥

472. ऊर्ध्व उ षु णः ऊतये, तिष्ठा देवो न सविता।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यत, अञ्जिभिः वाघद्भिः विह्वयामहे ॥42॥

मन्त्रार्थ :- ऊर्ध्व = उच्च, ऊपर, ऊर्ध्व। उ = निश्चय ही, भी। षु = अच्छा। णः = हमारा, हमारे लिए, हमको। ऊतये = रक्षा के लिए, शब्द, विश्वास के लिए। तिष्ठा = ठहरो, स्थित हो, ठहरो, खड़े हो। देवो = देव। न = नहीं, समान, उपमार्थक। सविता = सृष्टिकर्ता, उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाला। ऊर्ध्वो = उच्च, ऊपर, ऊध्व। वाजस्य = विद्या का, गति का। सनिता = सेवित। यत = जिसे, जा। अञ्जिभिः = स्वच्छता से, प्रकाश द्वारा। वाघद्भिः = उत्थान द्वारा। विह्वयामहे = विशेष आह्वान करते हैं, आदान-प्रदान करते हैं॥ 42॥

भावार्थ :- सविता अर्थात् सृष्टिकर्ता परमात्मा हमारी रक्षा के लिए ऊपर स्थित है। भाव है कि हमारे ऊपर सृष्टिकर्ता का हाथ है। वही हमारा रक्षक है, अतः भय का कोई कारण नहीं है। वह विद्या सेवित है। हम उच्च भावना से दिव्य प्रकाश से परमात्मा का आह्वान करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ऊर्ध्व (सर्वनाम)। उ (अव्यय)। षु (उपसर्ग)। णः (सर्वनाम)। ऊतये (ऊ - शब्द करना, विश्वास करना, ऊ-अव् - रक्षा करना)। तिष्ठा (तिष्ठ् = ठहरना, खड़ा होना)। देवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। न (अव्यय)। सविता (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। ऊर्ध्वो (सर्वनाम)। वाजस्य (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। सनिता (सन् - दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना, सेवा करना, चाकरी करना)। यत (सर्वनाम)। अञ्जिभिः (अञ्ज - स्वच्छ करना, प्रकाशित होना)। वाघद्भिः (वघ् - रुकना, उठना, उत्थान करना)। विह्वयामहे (वि = विशेष, विना, विलोम उपसर्ग, हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)॥ 42॥

473. स जातो गर्भो असि रोदस्योः, अग्ने चारुः विभृत ओषधीषु।

चित्रः शिशुः परि तमांसि अक्तून्, प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदत् गाः ॥43॥

मन्त्रार्थ :- स = वह, उसने। जातो = उत्पन्न हुआ। गर्भो = गर्भ। असि = हो। रोदस्योः = रोदसी के। अग्ने = हे अग्नि। चारुः = चारु। विभृत = विशेष भरण करने वाला। ओषधीषु = ओषधियों में। चित्रः = चित्र, आश्चर्य करना, चेतन। शिशुः = शिशु। परि = सभी तरफ। तमांसि = तमस। अक्तून् = अक्तुओं को, विद्याओं को, कुटिलताओं को, गतियों को। प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। मातृभ्यो = माताओं द्वारा। अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार कनिक्रदत् = प्रकाश करते हुए। गाः = गान, गाय, गायक, गाने वाले॥ 43॥

भावार्थ :- अग्नि स्वरूप परमात्मा करुणामय है, वह सकरुण भाव का सहोदर है, उनके स्नाथ जन्मा, सगर्भ है, ऐसा कहा जा रहा है। इसमें परमात्मा की करुणाशीलता भाव को अभिव्यक्त किया गया है। वह इसी करुणा भाव से ओषधियों में वास करता है, रोगी का कष्ट दूर करता है। वह माता के रूप में शिशु का पालन करता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - स (सर्वनाम)। जातो (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। गर्भो (गृह् - ग्रहण करना, लेना, गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गल्भ् - जाना, जानना, पाना, ज्ञान होना, चतुर होना, साहस होना, धैर्य रखना, गृभ्-गर्भ् - अन्दर होना, अन्तःवास करना)। असि (अस् - होना)। रोदस्योः (रुद् - रोना, रुलाना, करुण होना, रु - शब्द करना, जाना, चलना, जानना, पाना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। चारुः (चर - जाना, खाना, आचरण करना, संशय होना)। विभृत (वि - विशेष, भृ - भरण करने वाला)। ओषधीषु (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। चित्रः (चित्र् = चित्र बनाना, आश्चर्य करना, चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। शिशुः (शि = तेज करना, तीक्ष्ण करना, कल्याण करना, शिष् - शेष रखना, बचाना, प्रयोजन करना)। परि (उपसर्ग)। तमांसि (तम - इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना, अन्धकार होना)। अक्तून् (अ = नहीं, उपसर्ग, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अक् - जाना, जानना पाना, टेढ़ा जाना, कुटिल गति करना, वक्रगति करना)। प्र (उपसर्ग)। मातृभ्यो (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। अधि (उपसर्ग)। कनिक्रदत् (कन् - व्याप्त होना, प्रकाश करना, प्रीति करना, जाना, जानना, पाना, कृ - करना)। गाः (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)॥ 43॥

474. स्थिरो भव वीड्वङ्गः, आशुः भव वाजी अर्वन्। पृथुः भव सुषदः त्वम्, अग्नेः पुरीषवाहणः ॥44॥

मन्त्रार्थ :- स्थिरो = स्थिर। भव = हो। वीड्वङ्गः = विशेष स्तुति करने वाला, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला (वि = विशेष, ईड् = स्तुति करना, वी = जाना, व्याप्त होना, कान्ति होना, प्रकाश होना, चमकना, अङ्गः = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। आशुः = तीव्र गति युक्त, व्यापक। भव = हो। वाजी = वाजयुक्त, विद्यायुक्त, गतियुक्त। अर्वन् = अर्वन्, गति, शब्द। पृथुः = विस्तार, विस्तृत। भव = हो। सुषदः = सद्विद्या, सुपथ। त्वम् = तुम। अग्नेः = अग्नि का। पुरीषवाहणः = पुरीष्य, अग्रगामी, अग्रणी को वहन करने वाला)॥ 44॥

भावार्थ :- स्तुतिकर्ता उपासक स्थिर हो, जीवन में स्थिरता हो, कर्तव्य पथ पर स्थिर रहे। वह विद्वान् आशुकारी हो, तीव्र गतियुक्त हो। अग्नि स्वरूप परमात्मा का पुरीषवाहन होकर वह विस्तृत हो, सुषद् हो, सुन्दर पथ में चले।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - स्थिरो (स्था - ठहरना, स्थिर होना)। भव (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। वीड्वङ्गः (वि = विशेष, ईड् = स्तुति करना, वी = जाना, व्याप्त होना, कान्ति होना, प्रकाश होना, चमकना, अङ्गः = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। आशुः (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, अश् = भोजन करना)। वाजी (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। अर्वन् (ऋ - जाना, सम्पादन करना, प्राप्त करना, मिलाना, पहुँचाना, अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, मिलाना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, अर्व - गति करना, जाना, चलना, जानना, पाना, पहुँचना, हिंसा करना)। पृथुः (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त

होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। सुषदः (सु - अच्छा, सुन्दर, सद् = जाना, जानना)। त्वम् (सर्वनाम)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पुरीषवाहणः (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, वह् - वहन करना, ले जाना)।।44।।

475. शिवो भव प्रजाभ्यो, मानुषीभ्यः त्वम् अङ्गिरः।
मा द्यावापृथिवी अभि शोचीः, मा अन्तरिक्षम् मा वनस्पतीन्।।45।।

मन्त्रार्थ :- शिवो = कल्याणकारी। भव = हो। प्रजाभ्यो = प्रजा के लिए। मानुषीभ्यः = मानुषियों के लिए, मनन करने वालों के लिए। त्वम् = तुम। अङ्गिरो = विद्वान्, गतिशील, पाने वाला, अंग। मा = नहीं, मत मुझे। द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी। अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा। शोचीः = शुद्ध, पवित्र, शोक करो। मा = नहीं, मत मुझे। अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष या आकाश। मा = नहीं, मत मुझे। वनस्पतीन् = वनस्पतियों को, सेवाभावी उपदेशकों को।। 45।।

भावार्थ :- तुम समाज के अंग हो। लोगों के लिए कल्याणकारी बनो। द्यावापृथिवी, अन्तरिक्ष, वनस्पतियों के लिए शुद्ध-पवित्राकर्ता, पोषक, रक्षक बनो, दुःख देनेवाले नहीं। मा अव्यय शब्द का अर्थ नहीं होता है तथा माम् सर्वनाम का अर्थ मुझको होता है। वेद में माम् के स्थान पर मा का प्रयोग भी होता है। मा का अर्थ नहीं मानने पर शोचीः पद का अर्थ शोक-दुःख मानना उचित है तथा मा का अर्थ माम् या मुझको मानने पर शोचीः पद का अर्थ शुद्ध पवित्र मानना उचित है। शुच् धातु का अर्थ शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना, दुःख मानना, शोक करना होता है। मन्त्र के सम्पूर्ण अर्थ को ध्यान में रखते हुए सभी अर्थ स्वीकार हो सकते हैं। जो अर्थ वेद की गरिमा के अनुकूल उचित हो, वह ग्रहण करना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - शिवो (शिव् = कल्याण करना)। भव (भु - जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। प्रजाभ्यो (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)। मानुषीभ्यः (मन् - मनन करना, समझना, जानना, मान - पूजा करना, सम्मान करना, श्रेष्ठ होना, शोध करना)। त्वम् (सर्वनाम)। अङ्गिरो (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। मा (मा - नहीं, अव्यय, मा-माम् - मुझे, सर्वनाम)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। अभि (उपसर्ग)। शोचीः (शुच् = शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना, दुःख मानना, शोक करना)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। वनस्पतीन् (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना, पा - पालन करना, रक्षा करना)।।45।।

(114) सूक्त 11

476. प्र एतु वाजी कनिक्रदत्, नानदत् रासभः पत्वा।भरन् अग्निम् पुरीष्यम्, मा पादि आयुषः पुरा।
वृषा अग्निम् वृषणम् भरन्, अपाम् गर्भम् समुद्रियम्।अग्ने आ याहि वीतये।।46।।

मन्त्रार्थ :- प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। एतु = प्राप्त हो, जाये, ज्ञान, गति, इच्छा, प्रेरणा करे। वाजी = विद्यावान्, गतिमान। कनिक्रदत् = प्रकाश करते हुए। नानदत् = नाद किया, शब्द किया, उद्घोष किया। रासभः = दानी, उपदेशक, मार्गदर्शक, प्रिय। पत्वा = ऐश्वर्यवान् होकर। भरन् = भरण करने वाले, भरण करते हुए। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। पुरीष्यम् = पुरीष्य को, अग्रगामी को, अग्रणी को। मा = नहीं, मत, मुझे। पादि = पाद में, चरण में, चलने में। आयुषः = आयु। पुरा = पहले। वृषा = पराक्रमी। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। वृषणम् = पराक्रमी। भरन् = भरण करने वाले, भरण करते हुए। अपाम् = अपा को, पालकों का। गर्भम् = गर्भ को। समुद्रियम् = समुद्रिय को। अग्ने = हे अग्नि। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। याहि = जायें, प्राप्त हों, प्राप्त करें। वीतये = व्याप्त हो।।

भावार्थ :- विद्यादानी उपदेशक सत्य विद्या का उद्घोष करते हैं। समुद्र से उठे बादल जिस प्रकाश वर्षा करते हैं, उसी प्रकार पराक्रमी तेजस्वी विद्वान् आयु को अर्थात् जीवन को विद्या से अभिसिञ्चित करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - प्र (उपसर्ग)। एतु (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, ई = जाना, जानना, पाना, व्यापना, इच्छा करना, प्रेरणा करना)। वाजी (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। कनिक्रदत् (कन् - व्याप्त होना, प्रकाश करना, प्रीति करना, जाना, जानना, पाना, कृ - करना)। नानदत् (नद् - शब्द करना, झंकार करना, चमकना)। रासभः (रा- देना, लेना, ग्रहण करना, रस्, रास् = शब्द करना, रस् = रस होना, स्वाद लेना, प्रीति करना, प्यार करना, शब्द करना, रस लेना)। पत्वा (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। भरन् (भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पुरीष्यम् (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। मा (अव्यय)। पादि (पद् - चलना, जाना, भूषित होना)। आयुषः = आयु (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। पुरा (अव्यय)। वृषा (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। वृषणम् (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। भरन् (भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)। अपाम् (अप - पालन करना)। गर्भम् (गृह् - ग्रहण करना, लेना, गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गल्भ् - जाना, जानना, पाना, ज्ञान होना, चतुर होना, साहस होना, धैर्य रखना, गृभ्-गर्भ् - अन्दर होना, अन्तःवास करना)। समुद्रियम् (सम् - सम्यक्, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। आ (उपसर्ग)। याहि (या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। वीतये (वी = जाना, व्याप्त होना, कान्ति होना, प्रकाश होना, चमकना)।। 46 ।।

477. ऋतम् सत्यम् ऋतम् सत्यम् अग्निम्, पुरीष्यम् अङ्गिरस्वत् भरामः।
ओषधयः प्रति मोदध्वम् अग्निम्, एतम् शिवम् आयन्तम् अभि अत्र युष्माः।
व्यस्यन् विश्वा अनिरा अमीवा, निषीदन् नो अप दुर्मतिम् जहि।।47।।

मन्त्रार्थ :- ऋतम् = सार्वभौम नियम, सत्य, ऋत। सत्यम् = सत्य। ऋतम् = सार्वभौम नियम, सत्य, ऋत। सत्यम् = सत्य। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। पुरीष्यम् = पुरीष्य को, अग्रगामी को, अग्रणी को। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। भरामः = भरण करते हैं। ओषधयः = ओषधियाँ। प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में। मोदध्वम् = आनन्द करो। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। एतम् = यह, इसको। शिवम् = कल्याण को, कल्याणकारी को। आयन्तम् = आते हुए, आने वाले को, शब्दकर्ता, उपदेशक को, शासक को। अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा। अत्र = यहाँ। युष्माः = तुम्हें, तुम सब । व्यस्यन् = विशेष गतिमान। विश्वा = विश्व, सभी, सब। अनिरा = अनिरा = प्राणी। अमीवा = शब्द, गति, सेवा युक्त, अतुल्य, अहिंसक। निषीदन् = स्थान, बैठे हुए, प्राप्त करते, ले जाते हुए। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। अप = दूर, नीचे, अपकार। दुर्मतिम् = दुर्मति को। जहि = हनन करो, नष्ट करो।। 47 ।।

भावार्थ :- परमात्मा ऋत है, वह सत्य स्वरूप है। व्यावहारिक रूप से कह सकते हैं कि सत्य ही ईश्वर है। इसी सत्य का सभी सम्भव उपायों से पूर्णतः पोषण करना है। अग्निम् अग्निम् अर्थात् ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को ओषधियाँ आनन्दित करें। सर्वत्र कल्याणकारी भाव का प्रसार हो। लोग निरोगी हो, दुर्मति का नाश हो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ऋतम् (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। सत्यम् (सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पुरीष्यम् (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। अङ्गिरस्वत्: (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। भरामः (भृ =

पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)। ओषधयः (उषध्- ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा)। प्रति (अव्यय)। मोदध्वम् (मुद् = आनन्द होना, एकत्र करना)। एतम् (सर्वनाम)। शिवम् (शिव् = कल्याण करना)। **आयन्तम्** (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय्-ई - जाना, आ-ई, अय् = आना, आय - शब्द करना, शासन करना)। अभि (उपसर्ग)। अत्र (अव्यय)। युष्माः (सर्वनाम)। व्यस्यन् (वि - विशेष, इ-अय् - जाना, जानना, पाना, अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। विश्वा (सर्वनाम)। अनिरा (अन् = प्राण होना, चेतन होना, श्वास लेना, स्पन्दन करना, हलचल करना)। अमीवा (अम् = गति, शब्द, सेवा करना, रोग होना, अ - नहीं, मा = मापना, नापना, तौलना, मि - फेकना, स्थापना करना, रक्षा करना, मी - हिंसा करना, मारना)। निषीदन् (निष - प्राप्त करना, ले जाना, नि- निश्चय ही, निरन्तर, सद्-षद् - बैठना, स्थित होना, जाना)। नो (सर्वनाम)। अप (उपसर्ग)। दुर्मतिम् (दुः = बुरा, अनुचित, कठिन, मन् - मनन करना, विचार करना, जानना, समझना)। जहि (जह - हिंसा करना, चलना, फैलना, जहा - परित्याग करना, छोड़ना)।47 ।।

478. ओषधयः प्रति गृभ्णीत, पुष्पवतीः सुपिप्पलाः।
अयम् वो गर्भ ऋत्वियः, प्रत्नम् सधस्थम् आ असदत् ।।48 ।।

मन्त्रार्थ :- ओषधयः = ओषधियाँ। प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में। गृभ्णीत = गृभ-युक्त, गर्भ युक्त। पुष्पवतीः = पुष्पवती, पुष्पयुक्त। सुपिप्पलाः = सुन्दर गति वाले, अच्छे सेवाभावी। अयम् = यह। वो = तुम सबको, तुम सबके लिए, तुम सबका, तुम्हारा, तुमको, तुम लोग। गर्भ = गर्भ। ऋत्वियः= ऋतुओं का। प्रत्नम् = प्रसिद्ध करने वाले, प्रकृष्टता से, पूर्व की भांति। सधस्थम् = सहस्थान,सहगामी, साथ। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। असदत् = बैठे, स्थित हुए, गये।। 48 ।।

भावार्थ :- पुष्पयुक्त सुगतिमान, उत्तम सेवाभावी ओषधियाँ प्रातिगर्भित है, प्रतिग्रहीत है। औषधीय पौधों में उत्तम ओषधियाँ हैं। अतः पौधों के गर्भ में अर्थात् भीतर पल रही इन उपोयोगी ओषधियों को विवेकपूर्वक उपोयोग कर लाभ उठायें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ओषधयः (उषध्- ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा)। प्रति (अव्यय)। गृभ्णीत (गृह् - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना, निवास करना, गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गल्भ् - जाना, जानना, पाना, ज्ञान होना, चतुर होना, साहस होना, धैर्य रखना, गृभ्-गर्भ् - ग्रहण करना, लेना, अन्दर होना, अन्तःवास करना)। पुष्पवतीः (पुष्प् = पुष्पित होना, विकसित होना, गति करना)। सुपिप्पलाः (सु - सुन्दर, अच्छा, सु - उत्पन्न करना, पैदा करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, पेश - जाना, भरना, पिप्पल् = गति करना, जाना, जानना, पाना, सेवा करना, चाकरी करना)। अयम् (सर्वनाम)। वो (सर्वनाम)। गर्भ (गृह् - ग्रहण करना, लेना, गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गल्भ् - जाना, जानना, पाना, ज्ञान होना, चतुर होना, साहस होना, धैर्य रखना, गृभ्-गर्भ् - अन्दर होना, अन्तःवास करना)। ऋत्वियः (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। प्रत्नम् (प्रथ् - प्रसिद्ध होना, फैलना, फैलाना)। सधस्थम् (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। आ (उपसर्ग)। असदत् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)।। 48 ।।

479. वि पाजसा पृथुना शोशुचानो, बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्याम्, अग्नेः अहम् सुहवस्य प्रणीतौ ।।49 ।।

मन्त्रार्थ :- वि = विशेष, विना, विलोम। पाजसा = रक्षा करने वाला। पृथुना = विस्तार, विस्तृत। शोशुचानो = सुखाने वाले, अथवा पवित्र करने वाले। बाधस्व = बाधित करो द्विषो = द्वेष करने वाला। रक्षसो = रक्षा करने वाला, रक्षस्। अमीवाः = शब्द, गति, सेवा युक्त, अतुल्य, अहिंसक। सुशर्मणो = सुन्दर सुख वाले, सुन्दर श्रवण वाले। बृहतः = महान्, बड़ा, विराट, बृहत्। शर्मणि = सुख में। स्याम् = हों। अग्नेः = अग्नि का। अहम् = मैं। सुहवस्य = सुन्दर आह्वान द्वारा। प्रणीतौ = ले जाने वाला, ले जायी गयी।। 49 ।।

भावार्थ :- रक्षा करने वाले, विस्तार करने वाले, पवित्र करने वाले, अहिंसक, सेवाभावी सज्जन मिलकर द्वेष करने वालों को बाधित करें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - वि (उपसर्ग)। पाजसा (पा - रक्षा करना, पालन करना, जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। पृथुना (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। शोशुचानो (शुच् = शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना, दुःख मानना, शोक करना, शुष् - सुखाना)। बाधस्व (बाध - रोकना, अटकाव करना, बाधा देना, दुःख देना)। द्विषो (द्विष् = द्वेष करना, विरोध करना, शत्रुता करना)। रक्षसो (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। अमीवाः (अम् = गति, शब्द, सेवा करना, रोग होना, अ - नहीं, मा = मापना, नापना, तौलना, मि - फेकना, स्थापना करना, रक्षा करना, मी - हिंसा करना, मारना)। सुशर्मणो (सु - अच्छा, सुन्दर, शर्म - सुख होना, शृ- सुनना, श्रवण करना)। बृहतः (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। शर्मणि (शर्म - सुख होना)। स्याम् (अस् - होना)। अग्नेः = अग्नि का (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अहम् (सर्वनाम)। सुहवस्य (सु - सुन्दर, अच्छा, ह्वे - आह्वान करना)। प्रणीतौ (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, नी - पहुँचाना, प्राप्त होना, मिलना, ले जाना)॥ 49॥

(115) सूक्त 12

480. आपो हि ष्ठा मयोभुवः, ता नः ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥ 50॥

मन्त्रार्थ :- **आपो** आपः **मयोभुवः** मयोभुव **ष्ठा** स्थित है, **ता** वह **महे** महत् **रणाय** रण (शब्द) के लिए **चक्षसे** देखने के लिए **नः** हमारे लिए **ऊर्जे** ऊर्जा **दधातन** धारण करे।

भावार्थ :- अप धातु का अर्थ पालन करना होने से आप शब्द का अर्थ पालन करने वाली माता तथा व्यापक आध्यात्मिक अर्थ में परमात्मा भी है। आप धातु का अर्थ व्याप्त होना होने से भी आपः का अर्थ परमात्मा ग्रहण किया जाता है। मय धातु का सामान्य अर्थ गति है। गति अर्थ वाली धातु का तीन प्रकार लक्ष्यार्थ सर्वत्र ग्राह्य है ज्ञान, गमन, प्राप्ति। मयोभुवः का अर्थ गतिशीलता के साथ ही ज्ञान पाना भी है। रण धातु का अर्थ शब्द करना है। शब्द को देखने के संदेश को वेदवाणी का दृष्टा होने की भावना के रूप में समझना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आपो (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। **हि** (अव्यय)। **ष्ठा** (स्था - स्थित होना, ठहरना)। **मयोभुवः** (मय् - जाना, जानना, पाना)। **ता** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **ऊर्जे** (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। **दधातन** (धा-दध् - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **महे** (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। **रणाय** (रण - शब्द करना, आवाज करना, जाना)। **चक्षसे** (चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)॥ 50॥

481. यो वः शिवतमो रसः, तस्य भाजयत इह नः। उशतीः इव मातरः॥ 51॥

मन्त्रार्थ :- **यो** जो **वः** तुम्हारा **शिवतमो** अत्यन्त कल्याणकारी **रसः** रस (है), **तस्य** उसका **इह** यहाँ **नः** हमको **उशतीः** उशती **मातरः** माता के **इव** समान **भाजयत** सेवन करायें। ।51॥

भावार्थ :- परमात्मा तथा प्रकृति की उपासना से हमारे लिए कल्याणकारी पोषण प्राप्त होता है।

विशेष :- उशती पद माता का विशेषण है। उश-वश धातु का अर्थ चाहना है। माता पुत्र को चाहती है, स्नेह करती है, पोषण करती है। उशती का यही भावार्थ लेना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यो (सर्वनाम)। **वः** (सर्वनाम)। **शिवतमो** (शिव् = कल्याण करना)। **रसः** (रस - स्वाद लेना, चखना, प्रीति करना, प्यार करना)। **तस्य** (सर्वनाम)। **भाजयत** (भज् = सेवा करना, भजन करना, भाग करना, अलग करना)। **इह** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **उशतीरिव** (वश्-उश् - इच्छा करना, चाहना)। **मातरः** (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)॥ 51॥

482. तस्मा अरम् गमाम, वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः॥ 52॥

मन्त्रार्थ :- **तस्मा** इससे **वो** तुम्हारे लिए **अरम्** पर्याप्त **गमाम** जायें, **यस्य** जिसके **क्षयाय** निवास के लिए **जिन्वथ** प्रीति करो। **च** और **आपो** आपः **नः** हमारे लिए **जनयथा** उत्पन्न करे।

भावार्थ :- आपः अर्थात् परमात्मा, माता, जल के रूप में तीनों अर्थों में सन्देश स्पष्ट है कि आधा-अधूरा नहीं पर्याप्त प्रयास होना चाहिए। परमात्मा की उपासना हो, परिवार हो अथवा प्रकृति हो, पूरे मन से पर्याप्त ध्यान-उपासना-सेवा करना आवश्यक है, तभी प्रयास फलदायी होते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- तस्मा (सर्वनाम)। **अरम्** (अव्यय)। **गमाम** (गम् = जाना)। **वो** (सर्वनाम)। **यस्य =** जिसका (सर्वनाम)। **क्षयाय** (क्षि - जाना, चलना, जानना, पाना निवास करना, रहना, बसना, क्षय होना)। **जिन्वथ** (जिन्व् = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, आनन्द होना, मुक्त करना, प्रकाशित होना, बोलना)। **आपो** (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। **जनयथा** (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **च** (अव्यय)। **नः** (सर्वनाम)॥ 52॥

(116) सूक्त 13

483. मित्रः संसृज्य पृथिवीम्, भूमिम् च ज्योतिषा सह।
सुजातम् जातवेदसम् अयक्ष्माय, त्वा सम् सृजामि प्रजाभ्यः॥53॥

मन्त्रार्थ :- मित्रः = मित्र। संसृज्य = सृजन करो। पृथिवीम् = पृथिवी को। भूमिम् = भूमि को। च = और। ज्योतिषा = ज्योति द्वारा, प्रकाश द्वारा, ज्योति से। सह = साथ, सहित। सुजातम्। जातवेदसम् = जातवेद को, वेद को जानने वाले, वेद को उत्पन्न करने वाले को। अयक्ष्माय = गतिशील, विद्वान् के लिए, अश्रेष्ठ, अपूज्य, पूजा न करने वाले के लिए। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। सृजामि = त्याग, रचना, उत्पन्न करता हूँ। प्रजाभ्यः= प्रजा के लिए॥ 53॥

भावार्थ :- इस मन्त्र में कहा गया है कि मित्र स्वरूप परमात्मा ने भूमि और पृथिवी को ज्योति के साथ उत्पन्न कर अयक्ष्मा के लिए उत्तम रूप से उत्पन्न वेद को उत्पन्न करने वाले तुमको अयक्ष्मा प्रजा के लिए सम्यक् रूप से उत्पन्न करता हूँ। पृथिवी और भूमि कहने से स्पष्ट है कि दोनों का अर्थ एक नहीं है, दोनो अलग हैं। पृथिवी का का अर्थ विस्तार, व्याप्त, प्रकट, प्रेरणा, प्रक्षेपण आदि हैं। भूमि का अर्थ जाना, घर्षण, उत्पन्न, प्राप्त, कल्पना, चिन्तन, मिलन, एकत्र आदि हैं। इससे स्पष्ट है कि वेद में इन शब्दों का अर्थ कोई वस्तु या पदार्थ विशेष न होकर विशिष्ट गुण ही अभिप्रेत हैं। ये सभी गुण-कीर्तन परमात्मा तथा उसके उपासक के लिए हैं। परमात्मा के व्यक्त रूप प्राकृति या सृष्टि भी इसी प्राकार से वेदमन्त्रों का लक्ष्य या वर्णन का विषय है। इसे परम्परागत शब्दों में वेदमन्त्रों का आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक अर्थ कहा जाता है। विद्वानों के अनुसार सभी मन्त्रों के इस प्रकार त्रिविध अर्थ किये जा सकते हैं। आध्यात्मिक अर्थ में मन्त्र का लक्ष्य परमात्मा तथा उसके उपासक होते हैं। यही अर्थ वेद का वास्तविक तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है॥ 53॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मित्रः (मिद् - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, नरम होना, मृदुल होना)। संसृज्य (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति (उपसर्ग), सृज् - छोड़ना, त्याग करना, विविध रूप से उत्पन्न करना, रचना करना)। पृथिवीम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। भूमिम् (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। च (सर्वनाम)। ज्योतिषा (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। सह (सर्वनाम)। सुजातम् (सु = अच्छा, जागृ - जगना, नींद न लेना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। जातवेदसम् (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जा-ज्ञा - जानना, विद् - जानना)। अयक्ष्माय (अ - नहीं, यक्ष् - श्रेष्ठ होना, पूज्य होना, पूजा करना, अय् = जाना, जानना, पाना, क्षम - क्षमा करना, समर्थ होना, सहन करना, रोकना)। त्वा (सर्वनाम)। सम् (उपसर्ग)। सृजामि (सृज - त्याग करना, उत्पन्न करना, रचना करना)। प्रजाभ्यः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)॥ 53॥

484. रुद्राः संसृज्य पृथिवीम्, बृहत् ज्योतिः सम् ईधिरे। तेषाम् भानुः अजस्र इत्, शुक्रो देवेषु रोचते॥54॥

मन्त्रार्थ :- रुद्राः = करुणाशील। संसृज्य। पृथिवीम् = पृथिवी को। बृहत् = महान्, बड़ा, विराट, बृहत्। ज्योतिः = प्रकाश। सम् = सम्यक्, भलीभांति। ईधिरे = समान रूप से धारण करते हैं। तेषाम् = उनका। भानुः = प्रकाशमान। अजस्र

- सतत, निरन्तर। इत् = ही। शुक्रो = शुक्र, विद्वान्, शुद्ध, पवित्र, पावन, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी। देवेषु = देवों में। रोचते = प्रकाश। 54 ।।

भावार्थ :- परमात्मा मित्र है, रुद्र अर्थात् करुणाशील है। वेदमन्त्रों में इसी प्रकार परमात्मा के विविध गुणों का कीर्तन किया गया है। इसी को स्तुति कहते हैं। वह पृथिवी का सृजन करने वाला है, बृहत् ज्योति को समान रूप से धारण करता है। उनमें भानु अजस्र अर्थात् निरन्तर प्रकाश देने वाले को कहते हैं। देवों को शुक्र अर्थात् शुद्ध, पवित्र भाव ही प्रिय है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - रुद्राः (रुद् = रुदन् करना, करुण होना)। संसृज्य (सम् = सम्यक्, भलीभांति, सृज् - छोड़ना, त्याग करना, विविध रूप से उत्पन्न करना, रचना करना)। पृथिवीम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। सम् (उपसर्ग)। ईधिरे (ई - इस प्रकार, समान, वैदिक उपसर्ग, धि - धारण करना)। तेषाम् (सर्वनाम)। भानुः (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। अजस्र (सर्वनाम, अव्यय)। इत् (अव्यय)। शुक्रो (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। देवेषु (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। रोचते (रुच् = रुचना, प्रकाशित होना, प्रसन्न होना)।। 54 ।।

485. संसृष्टाम् वसुभी रुद्रैः, धीरैः कर्मण्याम् मृदम्। हस्ताभ्याम् मृद्वीम् कृत्वा, सिनीवाली कृणोतु ताम्।।55 ।।

मन्त्रार्थ :- संसृष्टाम् = सृजन करो। वसुभी = वसुओं द्वारा। रुद्रैः = रुद्रों द्वारा। धीरैः = धीरों द्वारा। कर्मण्याम् = कर्मण्य में, कर्मशीलों में, कर्मो में। मृदम् = मृद को। हस्ताभ्याम् = दोनों हस्त द्वारा, के लिए, से। मृद्वीम् = मृदी को, कोमल को, पीसनेस कूटने वाले को, **चूर्ण को**। कृत्वा = करके। सिनीवाली = बांधने वाली। कृणोतु = करो। ताम् = उसको।।55 ।।

भावार्थ :- धीर जनों द्वारा वसुओं, रुद्रों के साथ कर्मशीलों में कोमलता का सृजन करें। अथवा वसु, रुद्र, धीर गुण वाले उपासक जन कर्मशील जनों में कोमलता अर्थात् सरलता, सुगमता का सृजन करते हैं। वसु अर्थात् वास देने वाले, रुद्र अर्थात् करुणाशील, धीर अर्थात् धैर्यवान् देवजन कर्मशीलों के लिए अनुकूल स्थितियाँ बनाने में सहयोग करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - संसृष्टाम् (सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, सृज् - छोड़ना, त्याग करना, विविध रूप से उत्पन्न करना, रचना करना)। वसुभी (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। रुद्रैः (रुद् = रुदन् करना, रोना, करुण होना, रोते रोते कहना)। धीरैः (धी = धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना, बुद्धि, प्रज्ञा होना, धृ - धारण करना, सहना, स्थिर रहना)। कर्मण्याम् (कृ = करना)। मृदम् (मृ = मरना, देहत्याग करना)। हस्ताभ्याम् (हस्त -देना, लेना, ग्रहण करना)। मृद्वीम् (मृद = क्षोदे - मर्दने। पीसना, कूटना, चूर्ण करना, कोमल बनाना)। कृत्वा (कृ - करना)। सिनीवाली (सि - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। कृणोतु (कृ = करना)। ताम् (सर्वनाम)।। 55 ।।

486. सिनीवाली सुकपर्दा, सुकुरीरा स्वौपशा। सा तुभ्यम् अदिते महि, आ उखाम् दधातु हस्तयोः ।।56 ।।

मन्त्रार्थ :- सिनीवाली = बांधने वाली। सुकपर्दा = कम्पन करने वाले, कम्पित करने वाले। सुकुरीरा = अच्छा शब्द करने वाला। स्वौपशा = अपना आह्वान करने, बीज बोने, बुनने, उत्पन्न करने वाले। सा = वह। तुभ्यम् = तुम्हारे लिए। अदिते = अविनाशी का, अपनाने योग्य, अक्षय, अविनाशी। महि = महत् को, पूज्य, महान्, पूजते ह।, आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। उखाम् = गति, दाह को । दधातु = धारण करे। हस्तयोः = हाथों का।। 56 ।।

भावार्थ :- सिनीवाली अर्थात् सृष्टि को जोड़ने वाली, परस्पर बांधने वाली परमात्मा की शक्ति। वह सुकपर्दा है, अर्थात् कम्पन कराने वाली तथा सुकुरीरा अर्थात् अच्छा शब्द करने वाली है। वह स्वौपशा अर्थात् अपना आह्वान करने वाली, बीज बोने वाली, बुनने वाली, उत्पन्न करने वाली है, इन क्षमताओं तथा सामर्थ्य से युक्त है। वह तुम्हारे लिए महान् अविनाशी गति को हाथों में प्रदान करे। परमात्मा की विविध शक्तियाँ सृष्टि का सृजन, पालन, संचालन करती हैं। इन प्राकृतिक शक्तियों, ऊर्जाओं, बलों को समझकर हम उनका उपयोग कर सकते हैं, लाभ उठा सकते हैं। इसी को वैदिक उपासना-साधना कहते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सिनीवाली (सि - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। सुकपर्दा (सु = अच्छा, उपसर्ग, कम्प् = कम्पन करना, चलना, सहना)। सुकुरीरा (सु = अच्छा, उपसर्ग, कुर - शब्द करना)। स्वौपशा (स्व = निज, अपना (अव्यय), ओ - बुलाना, आह्वान करना, उप-वप - बीज बोना, बुनना, उत्पन्न करना, पैदा करना, अन्नादि काटना, हजामत करना)। सा (सर्वनाम)। तुभ्यम् (सर्वनाम)। अदिते (अ - नहीं, अद् = खाना, दी = नष्ट होना)। महि (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। आ (उपसर्ग)। उखाम् (उख् - चलना, जाना, जलना)। दधातु (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। हस्तयोः (हस्त - देना, लेना, ग्रहण करना)।। 56 ।।

487. उखाम् कृणोतु शक्त्या, बाहुभ्याम् अदितिः धिया।
माता पुत्रम् यथा उपस्थे, सा अग्निम् बिभर्न्तु गर्भे आ। मखस्य शिरो असि।। 57 ।।

मन्त्रार्थ :- उखाम् = गति, दाह को। कृणोतु = करो। शक्त्या = शक्ति द्वारा, सक्षमता, सामर्थ्य द्वारा। बाहुभ्याम् = दोनों बाहुओं द्वारा, के लिए, प्रयास करने वाले के लिए। अदितिः = अपनाने योग्य, अक्षय, अविनाशी। धिया = धारणा द्वारा, बुद्धि द्वारा। माता = माता। पुत्रम् = पुत्र को। यथा = जिससे, जैसे, जिस प्रकार। उपस्थे = उपस्थ में, सनिकट, समीप स्थित। सा = वह। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। बिभर्न्तु = भरण, धारण किया। गर्भे = गर्भ में। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। मखस्य = मख का। शिरो = शिर। असि = हो।। 57 ।।

भावार्थ :- अदिति अर्थात् अविनाशी परमात्मा धारणा या बुद्धि द्वारा हाथों से शक्ति के साथ गति तथा दाह अर्थात् ऊर्जा प्रदान करे। जैसे माता अपने समीप गर्भ में अग्नि अर्थात् तेज स्वरूप पुत्र को धारण करती है। भाव यह है कि जैसे माता अपने गर्भ में सन्तान को अपना तेज मानकर आत्मीयता और प्रेम से धारण करती है, अपने रक्त स्रो उसका पोषण करती है, उसी प्रकार परमात्मा भी हमको ऊर्जा, बल, पोषण प्रदान करता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त)- उखाम् (उख् - चलना, जाना, जलना)। कृणोतु (कृ = करना)। शक्त्या (शक् - सक्षम होना, कर सकना, सहना, सहन करना)। बाहुभ्याम् (बाह् - प्रयास करना, बह् - बहना, गति करना, बाहर होना, परे हो जाना, हिंसा करना)। अदितिः (अ - नहीं, अद् = खाना, दी = नष्ट होना)। धिया (धी = धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना, बुद्धि, प्रज्ञा होना, धि = धारण करना, युक्त होना)। माता (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। पुत्रम् (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। यथा (अव्यय)। उपस्थे (उप = समीप, स्थ = स्थित)। सा (सर्वनाम)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। बिभर्न्तु (भृ - भरना, भरण करना, धारण करना)। गर्भे (गृह् - ग्रहण करना, लेना, गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गल्भ् - जाना, जानना, पाना, ज्ञान होना, चतुर होना, साहस होना, धैर्य रखना, गृभ्-गर्भ् - अन्दर होना, अन्तःवास करना)। आ (उपसर्ग)। मखस्य (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। शिरो (शिर् - शीर्ष होना, मुख्य होना, उच्च होना, शृ -सुनना, जाना, जानना, पाना, शि = तेज करना, तीक्ष्ण करना, कल्याण करना)। असि (अस् - होना)।57 ।।

(117) सूक्त 14

488. वसवः त्वा कृण्वन्तु, गायत्रेण छन्दसा अङ्गिरस्वत्, ध्रुवा असि पृथिवी असि,
धारया मयि प्रजाम् रायः, पोषम् गौपत्यम् सुवीर्य्यम्, सजातान् यजमानाय, रुद्राः त्वा कृणवन्तु,
त्रैष्टुभेन छन्दसा अङ्गिरस्वत्, ध्रुवा असि अन्तरिक्षम् असि, धारय मयि प्रजाम् रायः,
पोषम् गौपत्यम् सुवीर्य्यम्, सजातान् यजमानाय, आदित्याः त्वा कृण्वन्तु, जागतेन छन्दसा अङ्गिरस्वत्।
ध्रुवा असि द्यौः असि, धारय मयि प्रजाम् रायः, पोषम् गौपत्यम् सुवीर्य्यम्, सजातान् यजमानाय।
विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्तु, आनुष्टुभेन छन्दसा अङ्गिरस्वत्।
ध्रुवा असि दिशो असि, धारय मयि प्रजाम् रायः, पोषम् गौपत्यम् सुवीर्य्यम्, सजातान् यजमानाय।58 ।।

मन्त्रार्थ :- वसवः = वसुगण, स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। कृण्वन्तु = करो। गायत्रेण = गायत्र से, गान, स्तुति से। छन्दसा = छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। ध्रुवा = ध्रुवों का, अचल, स्थिर, अविचल गतिशील। असि = हो। पृथिवी = पृथ्वी, विस्तृत भूमि, विस्तार। असि = हो। धारया = धार द्वारा। मयि = मुझमें। प्रजाम् = प्रजा को। रायः = गति, विद्या, वाणी। पोषम् = पोषण करने वाले। गौपत्यम् = सुरक्षा योग्य, शब्द करने वाले, मननशील, उपदेशक के योग्य। सुवीर्य्यम् = उत्तम वीरता को।, सजातान् = सम्बन्धी (स - साथ, सहित, सज्, संज = सम्बन्धी होना, आलिंगन करना, जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। यजमानाय = यजमान के लिए। रुद्राः = करुणाशील, रोने, रुलाने वाले। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। कृण्वन्तु = करो। त्रैष्टुभेन = त्रैष्टुभ द्वारा। छन्दसा = छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। ध्रुवा = ध्रुव, अचल, स्थिर, अविचल गतिशील, अविचल विद्वान्। असि = हो। अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष या आकाश, अन्तर्दर्शी। असि = हो। धारय = धारण करो, धार द्वारा। मयि = मुझमें। प्रजाम् = प्रजा को। रायः = गति, विद्या, वाणी। पोषम् = पोषण करने वाले । गौपत्यम् = सुरक्षा योग्य, शब्द करने वाले, मननशील, उपदेशक के योग्य। सुवीर्य्यम् = उत्तम वीरता को। सजातान् = सम्बन्धी। यजमानाय = यजमान के लिए। आदित्याः = अदिति से उत्पन्न, अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। कृण्वन्तु = करो। जागतेन = जागत द्वारा। छन्दसा = छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। ध्रुवा = ध्रुव, अचल, स्थिर, अविचल गतिशील, अविचल विद्वान्। असि = हो। द्यौः = प्रकाशवान्, विद्वान्, द्यौ, प्रकाशयुक्त, अग्रगामी। असि = हो । धारय = धार द्वारा। मयि = मुझमें। प्रजाम् = प्रजा को । रायः = गति, विद्या, वाणी। पोषम् = पोषण करने वाले । गौपत्यम् = सुरक्षा योग्य, शब्द करने वाले, मननशील, उपदेशक के योग्य। सुवीर्य्यम् = उत्तम वीरता का। सजातान् = सम्बन्धी। यजमानाय = यजमान के लिए। विश्वे = सभी। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। देवा = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने। वैश्वानराः = विश्वनायक। कृण्वन्तु = करो। आनुष्टुभेन = अनुष्टुप् द्वारा। छन्दसा = छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। ध्रुवा = ध्रुव, अचल, स्थिर, अविचल गतिशील, अविचल विद्वान्। असि = हो। दिशो = दिशायें, दिशाओं को। असि = हो। धारय = धार द्वारा। मयि = मुझमें। प्रजाम् = प्रजा को। रायः = गति, विद्या, वाणी। पोषम् = पोषण करने वाले। गौपत्यम् = सुरक्षा योग्य, शब्द करने वाले, मननशील, उपदेशक के योग्य। सुवीर्य्यम् = उत्तम वीरता का। सजातान् = सम्बन्धी। यजमानाय = यजमान के लिए।। 58 ।।

भावार्थ :- मन्त्र का भाव है कि विविध देवशक्तियाँ विविध छन्दों द्वारा अङ्गिरस्वत् अर्थात् अंगिरा के समान बनायें। अङ्गिरस्वत् का अर्थ है अंगिरा के समान। अंगिरा का अर्थ है विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। विविध छन्दों में प्रकट वेदमन्त्रों में निहित विद्या तथा मार्गदर्शन से ज्ञानवान् तथा गुणवान् बन सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - वसवः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। त्वा (सर्वनाम)। कृण्वन्तु (कृ = करना)। गायत्रेण (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। छन्दसा (छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। ध्रुवा (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। असि (अस् - होना)। पृथिवी (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। धारया (धाः = पोषण करना, रक्षण करना, देना, दान करना, धार बाँधना, धारा होना, धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना, धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)। मयि (सर्वनाम)। प्रजाम् (प्र - बहुत, प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। रायः (रा - देना, लेना, ग्रहण करना, रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। पोषम् (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। गौपत्यम् (गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना, गुप् = रक्षा करना, चमकना, बोलना, पत् - श्री मान् होना, अमानवी पराक्रम करना)। सुवीर्य्यम् (सु - अच्छा, सुन्दर, वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। सजातान् (स - साथ, सहित, सज्, संज - सम्बन्धी होना, आलिंगन करना, जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। यजमानाय (यज = देवपूजा करना, अर्पण करना,

देना, संगति करना, संयोग करना)। रुद्राः (रुद् = रुदन करना, रुलाना)। त्रैष्टुभेन (त्रै - संरक्षण करना, पोषण करना, बचाना, त्रि = तीन, संख्या, सर्वनाम, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। धारय (धाः = पोषण करना, रक्षण करना, देना, दान करना, धार बाँधना, धारा होना, धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना, धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)। आदित्याः (अ - नहीं, अद् - खाना, नष्ट करना, दी = क्षय होना, नष्ट होना)। जागतेन (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। द्यौः (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना, प्रकाश होना, जानना)। विश्वे (सर्वनाम)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। वैश्वानराः (विश्व - सब, नृ - चलना, ले जाना, विनय होना)। आनुष्टुभेन (अनु - पीछे, स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। दिशो (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)॥ 58॥

489. अदित्यै रास्ना असि, अदितिः ते बिलम् गृभ्णातु। कृत्वाय सा महीम् उखाम्, मृन्मयीम् योनिम् अग्नये। पुत्रेभ्यः प्र अयच्छत्, अदितिः श्रपयान् इति॥ 59॥

मन्त्रार्थ :- अदित्यै = अविनाशी के लिए। रास्ना = स्नेहमय वाणी। असि = हो। अदितिः = अपनाने योग्य, अक्षय, अविनाशी। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। बिलम् = भेद, आच्छादन, आवरण। गृभ्णातु = गृभ-युक्त करें। कृत्वाय = कृत्व के लिए, कृतित्व के लिए। सा = वह। महीम् = मही को, महिमावान् को, महान् को। उखाम् = गति, दाह को। मृन्मयीम् = हिंसामय को। योनिम् = योनि को। अग्नये = अग्नि के लिए। पुत्रेभ्यः = पुत्रों द्वारा, पुत्रों के लिए, पुत्रों से। प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। अयच्छत् = दिया। अदितिः = अपनाने योग्य, अक्षय, अविनाशी। श्रपयान् = परिपक्व करो। इति = ऐसा, यह, इसी प्रकार॥ 59॥

भावार्थ :- इस मन्त्र में कहा गया है कि अदिति अर्थात् अविनाशी परमात्मा की स्नेहमयी वाणी हो। यह वेद के लिए तथा वेदोपासक, वेदोपदेशक के लिए भी ग्राह्य है। वह गर्भ में धारण करता है तो पुत्र के समान प्रेम तथा पोषण भी प्रदान करता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अदित्यै (अ = नहीं, दी = नष्ट होना, ह्रास होना)। रास्ना (रा- देना, लेना, ग्रहण करना, रस्, रास् = शब्द करना, रस् = रस होना, स्वाद लेना, प्रीति करना, प्यार करना, शब्द करना, रस लेना)। असि (अस् - होना)। अदितिः (अ - नहीं, अद् = खाना, दी = नष्ट होना)। ते (सर्वनाम)। बिलम् (बिल् - आच्छादन करना, जाना, छेद करना, भेदना, भेदन करना, भाग करना)। गृभ्णातु (गृह् - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना, निवास करना, गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गल्भ् - जाना, जानना, पाना, ज्ञान होना, चतुर होना, साहस होना, धैर्य रखना, गृभ्-गर्भ् - ग्रहण करना, लेना, अन्दर होना, अन्तःवास करना)। कृत्वाय (कृ - करना)। सा (सर्वनाम)। महीम् (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। उखाम् (उख् - चलना, जाना, जलना)। मृन्मयीम् (मृड - सुखी होना, सुख देना, मृण् - हिंसा करना, मारना, छिद्र करना)। योनिम् (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। अग्नये (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पुत्रेभ्यः (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। प्र (उपसर्ग)। अयच्छत् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, यक्ष - देना, दान करना)। अदितिः (अ - नहीं, अद् = खाना, दी = नष्ट होना)। श्रपयान् (श्रा = परिपक्व करना, पकाना, रांधना, उबालना, स्वेदन करना)। इति (अव्यय)॥ 59॥

490. वसवः त्वा धूपयन्तु, गायत्रेण छन्दसा अङ्गिरस्वत्, रुद्राः त्वा धूपयन्तु, त्रैष्टुभेन छन्दसा अङ्गिरस्वत्, आदित्याः त्वा धूपयन्तु, जागतेन छन्दसा अङ्गिरस्वत्, विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्तु, आनुष्टुभेन छन्दसा अङ्गिरस्वत्, इन्द्रः त्वा धूपयतु, वरुणः त्वा धूपयतु, विष्णुः त्वा धूपयतु॥ 60॥

मन्त्रार्थ :- वसवः = स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। धूपयन्तु = धूपित करें। गायत्रेण = गायत्र से, गान, स्तुति से। छन्दसा = छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। रुद्राः = करुणाशील, रोने, रुलाने वाले। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। धूपयन्तु = धूपित करें। त्रैष्टुभेन = त्रैष्टुभ द्वारा। छन्दसा = छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। आदित्याः = अदिति से उत्पन्न, अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। धूपयन्तु = धूपित करें। जागतेन = जागत द्वारा। छन्दसा = छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। विश्वे = सभी। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। देवा = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने। वैश्वानरा = विश्वनायक। धूपयन्तु = धूपित करें। आनुष्टुभेन = अनुष्टुप् द्वारा। छन्दसा = छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। इन्द्रः = परम ऐश्वर्य दाता। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। धूपयतु = धूपित करें। वरुणः = वरुण। त्वा = तुमको। धूपयतु = धूपित करें। विष्णुः = व्यापक, विष्णु ने। त्वा = तुमको, धूपयतु = धूपित करें॥ 60॥

भावार्थ :- इस मन्त्र में भी यही भाव व्यक्त किया गया है कि विभिन्न देवशक्तियाँ विविध छन्दों द्वारा प्रकाश प्रदान करें। अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला बनायें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - वसवः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। त्वा (सर्वनाम)। धूपयन्तु (धूप - चमकना, प्रकाशित होना, बोलना, सम्भाषण करना)। गायत्रेण (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। छन्दसा (छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। रुद्राः (रुद् = रुदन करना, रुलाना)। त्रैष्टुभेन (त्रै - संरक्षण करना, पोषण करना, बचाना, त्रि = तीन, संख्या, सर्वनाम, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना)। आदित्याः (अ - नहीं, अद् - खाना, नष्ट करना, दी = क्षय होना, नष्ट होना)। जागतेन (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। विश्वे (सर्वनाम)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। वैश्वानरा (विश्व - सब, नृ - चलना, ले जाना, विनय होना)। आनुष्टुभेन (अनु - पीछे, स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। इन्द्रः (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। वरुणः (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। धूपयतु (धूप - चमकना, प्रकाशित होना, बोलना, सम्भाषण करना)। विष्णुः (विष्ण-विष् -विविष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना, व्यापना, फैलना, प्रसृत होना)॥ 60॥

491. अदितिः त्वा देवी विश्वदेव्यावती, पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत् खनतु,
अवट देवानाम् त्वा पत्नीः देवीः विश्वदेव्यावतीः, पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत् दधतु उखे।
धिषणाः त्वा देवीः विश्वदेव्यावतीः, पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्, अभि इन्धताम् उखे,
वरुत्रीः त्वा देवीः विश्वदेव्यावतीः, पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्, श्रपयन्तु उखे,
ग्नाः त्वा देवीः विश्वदेव्यावतीः, पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्, पचन्तु उखे,
जनयः त्वा अच्छिन्नपत्रा देवीः विश्वदेव्यावतीः, पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत पचन्तु उखे॥61॥

मन्त्रार्थ :- अदितिः = अपनाने योग्य, अक्षय, अविनाशी। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। देवी = हे देवी। विश्वदेव्यावती = विश्वदेव्यावती समस्त दिव्यताओं से युक्त। पृथिव्याः = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। सधस्थे = सहस्थान, सहगामी, साथ में। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। खनतु = खनन करे, खोदे। अवट = अवट, रक्षक, पालक, प्रिय, प्रभु,। देवानाम् = देवों का। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। पत्नीः = ऐश्वर्यवती। देवीः = दिव्यगुणयुक्त। विश्वदेव्यावती = विश्वदेव्यावती समस्त दिव्यताओं से युक्त। पृथिव्याः = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। सधस्थे = सहस्थान, सहगामी, साथ में। अङ्गिरस्वत = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। दधतु = धारण करें। उखे = गति, दाह में। धिषणाः = वाणी। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। देवीः = दिव्यगुणयुक्त। विश्वदेव्यावती = विश्वदेव्यावती समस्त दिव्यताओं से युक्त। पृथिव्याः = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। सधस्थे = सहस्थान, सहगामी, साथ में। अङ्गिरस्वत्, = अंगिरा

के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा। इन्धताम् = प्रकाशित हो, प्रकाशित करें। उखे = गति, दाह में। वरुत्रीः = वरणीय, वरण करने वाला। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। देवीः = दिव्यगुणयुक्त। विश्वदेव्यावती = विश्वदेव्यावती समस्त दिव्यताओं से युक्त। पृथिव्याः = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। सधस्थे = सहस्थान, सहगामी, साथ में। अङ्गिरस्वत्, = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। श्रपयन्तु = परिपक्व करो। उखे = गति, दाह में। ग्नाः = गति-ज्ञान-ग्रहण। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। देवीः = दिव्यगुणयुक्त। पचन्तु = पकायें। उखे = गति, दाह में। जनयः = उत्पन्न करने वाले। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। अच्छिन्नपत्रा = छिद्र रहित पत्र वाले। देवीः = दिव्यगुणयुक्त। विश्वदेव्यावतीः = विश्वदेव्यावतीविश्वदेव्यावती = विश्वदेव्यावती समस्त दिव्यताओं से युक्त। पृथिव्याः = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। सधस्थे = सहस्थान, सहगामी, साथ में। अङ्गिरस्वत्, = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। पचन्तु = पकायें । उखे = गति, दाह में।। 61।।

भावार्थ :- विभिन्न दिव्य शक्तियाँ विविध माध्यमों से हमारा शुभ करें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अदितिः (अ - नहीं, अद् = खाना, दी = नष्ट होना)। त्वा (सर्वनाम)। देवी (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। विश्वदेव्यावती (विश्व - सभी, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। पृथिव्याः (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। सधस्थे (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। खनतु (खन् = खनन करना, खोदना)। अवट (अव = नीचे, दूर, प्राप्त, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना, अ = नहीं, वट् = गूँथना, बटना, लपेटना, एकत्र करना, पीसना, विभाग करना, बोलना, स्पष्ट कहना)। देवानाम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। पत्नीः (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। देवीः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। दधतु (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। उखे (उख् - चलना, जाना, जलना)। धिषणाः (धिष् = शब्द करना, बोलना)। अभि (उपसर्ग)। इन्धताम् (इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। वरुत्रीः (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। श्रपयन्तु (श्रा = परिपक्व करना, पकाना, रांधना, उबालना, स्वेदन करना)। ग्नाः (अग् - जाना, जानना, पाना, गम् - जाना, जानना, पाना)। पचन्तु (पच् = पकाना, व्यक्त करना, प्रसिद्ध करना, जीर्ण होना)। जनयः (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। अच्छिन्नपत्रा (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, छिद्-छिन् - छेदना, काटना, टुकड़े करना)।।

(118) सूक्त 15

492. मित्रस्य चर्षणीधृतो, अवो देवस्य सानसि। द्युम्नम् चित्रश्रस्तमम्।।62।।

मन्त्रार्थ :- मित्रस्य = मित्र का। चर्षणीधृतो = आनन्द, चेतना, विचार को धारण करने वाला। अवो = रक्षक, विद्वान्। देवस्य = देव का। सानसि = सेवा करते हो। द्युम्नम् = प्रकाशमान को। चित्रश्रस्तमम् = चेतन करने वाले, चित्र स्वरूप अर्थात् चित्र की भाँति प्रत्यक्ष तथा स्पष्ट, आश्चर्यस्वरूप को।। 62।।

भावार्थ :- मित्र के आनन्द को धारण करने वाले, देवों के रक्षक चित्रश्रस्तमम् अर्थात् चेतन करने वाले, तथा द्युम्न अर्थात् प्रकाशमान, चित्र स्वरूप अर्थात् चित्र की भाँति प्रत्यक्ष तथा स्पष्ट, आश्चर्यस्वरूप वाले की सेवा करते हैं, ऐसे लोगों के लिए सेवाभाव रखते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मित्रस्य (मिद् - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, नरम होना, मृदुल होना)। चर्षणीधृतो (चृष्-चर्ष - आनन्द होना, चेतन होना, विचार करना, धृ - धारण करना)। अवो (अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। सानसि (सन् - सेवा करना, योग्य होना, मिश्रण करना, अलग करना, दान करना, पूजा करना, सत्कार करना)। द्युम्नम् (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु - अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना,

समीप जाना)। चित्रश्रस्तमम् (चित्र् = चित्र बनाना, आश्चर्य करना, चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना, श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)॥ 62॥

493. देवः त्वा सविता उत् वपतु सुपाणिः, स्वङ्गुरिः सुबाहुः उत शक्त्या।
अव्यथमाना पृथिव्याम्, आशा दिश आ पृण॥63॥

मन्त्रार्थ :- देवः = देव। त्वा = तुमको, तुम्हारा ।सविता = सृष्टिकर्ता, उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाला। उत् = ही। वपतु = बोओ। सुपाणिः = सुन्दर पाणि, उत्तम हाथ युक्त। स्वङ्गुरिः = स्वङ्गुरि, अच्छा अंग वाला। सुबाहुः = सुन्दर बाहु वाला, प्रयास करने वाले। उत = ही। शक्त्या = शक्ति द्वारा, सक्षमता, सामर्थ्य द्वारा। अव्यथमाना = निर्भय, दुःख-हीन। पृथिव्याम् = पृथ्वी पर। आशा = आशायें। दिश = दिशायें, दिशाओं को। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। पृण = पूर्ण करो॥ 63॥

भावार्थ :- जो सुपाणि हैं, सुबाहु हैं, वे ही पृथ्वी पर आशाएं पूर्ण करते हैं। इसका भाव है कि उत्तम प्रयास करने वाले ही सफलता प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ इतना अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि सफलता में प्रयास अर्थात् साधना के लिए साधन का भी महत्व है। कह सकते हैं कि साधन जुटाने का प्रयास भी महत्वपूर्ण है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - देवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। त्वा (सर्वनाम)। सविता (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। उत् (उपसर्ग)। वपतु (वप - बीज बोना, उत्पन्न करना, बुनना, अन्नादि काटना, बाल काटना)। सुपाणिः (सु = अच्छा (उपसर्ग), पण् - शब्द करना, स्तुति करना, प्रशंसा करना, उद्योग-व्यापार करना, व्यवहार करना)। स्वङ्गुरिः (सु - अच्छा, उपसर्ग, अंग् - अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। सुबाहुः (सु - अच्छा, उपसर्ग, बाह् - प्रयास करना, बह् - बहना, गति करना, बाहर होना, परे हो जाना, हिंसा करना)। उत (अव्यय)। शक्त्या (शक् - सक्षम होना, कर सकना, सहना, सहन करना)। अव्यथमाना (अ - नहीं, व्यथ् - डरना, दुःखी होना)। पृथिव्याम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। आशा (आ- समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, शास् - आशीर्वाद देना, देना, भला चाहना, आशा करना)। दिश (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। आ (उपसर्ग)। पृण (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना)॥ 63॥

494. उत्थाय बृहती भव, उत् उ तिष्ठ ध्रुवा त्वम्।
मित्र एताम् ते उखाम् परि, ददामि अभित्या एषा मा भेदि॥64॥

मन्त्रार्थ :- उत्थाय = उठने के लिए, उठकर। बृहती = महान्, बड़ा, विराट, बृहत्। भव = हो। उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। उ = निश्चय ही, भी। तिष्ठ = उठो, ठहरो, खड़े हो। ध्रुवा = ध्रुव, अचल, स्थिर, अविचल गतिशील, अविचल विद्वान्। त्वम् = तुम। मित्र = मित्र। एताम् = इनको, ये। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। उखाम् = गति, दाह को। परि = सभी तरफ। ददामि = देता हूँ। अभित्या = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा। एषा = यह, प्रयत्न करने वाले, समीप जाने वाले, आने वाले, चाहने वाले। मा = नहीं, मत, मुझको। भेदि = भेदन करो॥ 64॥

भावार्थ :- उठो, बड़े बनो। उठो, ध्रुव बनो। हे मित्र, तुमको गति, ऊर्जा प्रदान करता हूँ। भेदभाव मत करो। ध्रुव का अर्थ स्थिर होना तथा गति करना दोनो है। अतः ध्रुव होने का भाव है गतिशीलता, तरलता, परिवर्तनशीलता के स्नाथ स्थिरता। व्यावहारिक दृष्टि से दृढ़ता, स्थिरता आवश्यक है, परन्तु जड़ता नहीं। इसीलिए ध्रुव शब्द का प्रयोग किया गया है जिसमें स्थिरता के साथ ही परिवर्तन का भाव भी निहित है॥ 64॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उत्थाय (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तिष्ठ् - ठहरना, उत् - तिष्ठ् - उठना, खड़े होना)। बृहती (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। भव (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। उत् (उपसर्ग)। उ (अव्यय)। तिष्ठ (तिष्ठ् = ठहरना, खड़ा होना)। ध्रुवा (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना,

जाना, गति करना, जानना, पाना)। त्वम् (सर्वनाम)। मित्र (मिद् - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, नरम होना, मृदुल होना)। एताम् (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। उखाम् (उख् - चलना, जाना, जलना)। परि (उपसर्ग)। ददामि (दा, दद्, दत् = दान करना, देना, त्याग करना, सौंपना, लौटाना, रखना)। अभित्या (सर्वनाम)। एषा (सर्वनाम)। मा (सर्वनाम) (अव्यय)। भेदि (भिद् - भेदना, भेदन करना, भाग करना)॥ 64॥

495. वसवः त्वा आ छृन्दन्तु, गायत्रेण छन्दसा अङ्गिरस्वत,
रुद्राः त्वा आ छृन्दन्तु, त्रैष्टुभेन छन्दसा अङ्गिरस्वत्,
आदित्याः त्वा आ छृन्दन्तु, जागतेन छन्दसा अङ्गिरस्वत,
विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः आ छृन्दन्तु, आनुष्टुभेन छन्दसा अङ्गिरस्वत्॥65॥

मन्त्रार्थ :- वसवः = स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। छृन्दन्तु = प्रकाशित करो। गायत्रेण = गायत्र से, गान, स्तुति से। छन्दसा = छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला।

रुद्राः = रोने, रुलाने वाले। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। छृन्दन्तु = प्रकाशित करो। त्रैष्टुभेन = त्रैष्टुभ द्वारा। छन्दसा = छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। आदित्याः = अदिति से उत्पन्न, अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। छृन्दन्तु = प्रकाशित करो। जागतेन = जागत द्वारा। छन्दसा = छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। विश्वे = सभी। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। देवा = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने। वैश्वानराः = विश्वनायक। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। छृन्दन्तु = प्रकाशित करो। आनुष्टुभेन = अनुष्टुप् द्वारा। छन्दसा = छन्द द्वारा। अङ्गिरस्वत = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला॥ 65॥

भावार्थ :- विभिन्न दिव्य शक्तियाँ विविध छन्दों में आवद्ध वेदमन्त्रों से हमें प्रकाशित करें। इसका भाव है कि विद्वान् मार्गदर्शक उपदेशक हमें वेद विद्या का प्रवचन, प्रशिक्षण प्रदान कर हमारे जीवन को प्रकाशमान बनायें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - वसवः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। त्वा (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। छृन्दन्तु (छृन्द् - प्रकाश करना, चमकना, खेलना)। गायत्रेण (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। छन्दसा (छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। अङ्गिरस्वत (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। रुद्राः (रुद् = रुदन करना, रुलाना)। त्रैष्टुभेन (त्रै - संरक्षण करना, पोषण करना, बचाना, त्रि = तीन, संख्या, सर्वनाम, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना)। आदित्याः (अ - नहीं, अद् - खाना, नष्ट करना, दी = क्षय होना, नष्ट होना)। जागतेन (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। विश्वे (सर्वनाम)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। वैश्वानराः (विश्व - सब, नृ - चलना, ले जाना, विनय होना)। आनुष्टुभेन (अनु - पीछे, स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)॥ 65॥

496. आकूतिम् अग्निम् प्रयुजम् स्वाहा, मनो मेधाम् अग्निम् प्रयुजम् स्वाहा,
चित्तम् विज्ञातम् अग्निम प्रयुजम् स्वाहा, वाचो विधृतम् अग्निम् प्रयुजम् स्वाहा,
प्रजापतये मनवे स्वाहा, अग्नये वैश्वानराय स्वाहा॥66॥

मन्त्रार्थ :- आकूतिम् = आ-कूति को, वाणी को, शब्द को। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। प्रयुजम् = प्रयुज को, समाधि को। स्वाहा = अच्छी व्यापकता, आत्म विस्तार। मनो = मन। मेधाम् = मेधा को। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। प्रयुजम् = प्रयुज को, समाधि को। स्वाहा = अच्छी व्यापकता, आत्म विस्तार। चित्तम् = चित्त या चेतना, ज्ञान। विज्ञातम् = विशेषकर जानता है। अग्निम = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। प्रयुजम् = प्रयुज को, समाधि को। स्वाहा = अच्छी व्यापकता, आत्म विस्तार। वाचो = वाणी। विधृतम् = विशेषतया धारण करने वाले को। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। प्रयुजम् = प्रयुज को, समाधि को। स्वाहा = अच्छी

व्यापकता, आत्म विस्तार। प्रजापतये = प्रजापति के लिए, प्रजा के रक्षक, पालक के लिए। मनवे = मनु के लिए, मननशील के लिए। स्वाहा = अच्छी व्यापकता, आत्म विस्तार। अग्नये = अग्नि के लिए। वैश्वानराय = विश्वनायक के लिए। स्वाहा = अच्छी व्यापकता, आत्म विस्तार।। 66।।

भावार्थ :- अग्नि अर्थात् ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, अग्रणी् विविध रूप में हो सकते हैं। वाणी, मेधा, चित्त, प्रजापति अर्थात् समाज को ऐश्वर्य प्रदान तकने वाले, मनु अर्थात् मननशील, विचारशील, विश्वनायक जैसे अग्नि अर्थात् ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, अग्रणी वेदर्षियों के लिए स्वाहा अर्थात् अच्छी व्यापकता, आत्म विस्तार की कामना की गयी है। उनको प्रयुज अर्थात् जुड़ने वाले, जोड़ने वाले तथा समाधि लगाने वाले भी कहा गया है।। 66।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आकूतिम् (आ = समन्तात्, सम्पूर्ण, कू - शब्द करना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। प्रयुजम् (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, युज् = समाधि होना, चित्त-मन का अवरोध करना)। स्वाहा (सु = अच्छा, सुन्दर, स्व - अपना, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। मनो (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। मेधाम् (मेधा - शीघ्र समझना, मेध् - समझना, जानना, सङ्गति करना, मेल करना, हिंसा करना)। चित्तम् (चि - चुनना, एकत्र करना, चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, सम्यक् ज्ञान होना, स्मरण करना, शंका करना, सन्देह करना)। विज्ञातम् (वि - विशेष, ज्ञा - जानना, जन् - जन्म लेना, उत्पन्न होना)। वाचो (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। विधृतम् (वि - विशेष, धा - धारण करना)। प्रजापतये (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। मनवे (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। अग्नये (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। वैश्वानराय (विश्व - सब, नृ - चलना, ले जाना, विनय होना)।। 66।।

(119) सूक्त 16

497. विश्वो देवस्य नेतुः, मर्तो वुरीत सख्यम्। विश्वो राय इषुध्यति, द्युम्नम् वृणीत पुष्यसे।। 67।।

मन्त्रार्थ :- विश्वो = विश्व का, सभी का। देवस्य = देव का। नेतुः = ले जाने वाले का। मर्तो = मरणशील। वुरीत = वरण करें। सख्यम् = सखाभाव, मित्रता। विश्वो = विश्व का, सभी का। राय = गति, विद्या, वाणी। इषुध्यति = विद्या, इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि धारण करता है। द्युम्नम् = प्रकाशमान को। वृणीत = वरण किया हुआ। पुष्यसे = पोषण करते हो।। 67।।

भावार्थ :- विश्वदेव का नेता मरणशील मनुष्य सखा का वरण करता है। सबको देने वाला विद्या, इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि धारण करता है। प्रकाशमान को वरण कर पोषण करता है।। 67।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - विश्वो (विश्व - सभी, सर्वनाम)। देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। नेतुः (नी = ले जाना)। मर्तो (मृ = मरना, देहत्याग करना)। वुरीत (वृ = वरण करना)। सख्यम् (सख् = मित्र होना)। राय (रा-देना, लेना, ग्रहण करना, रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। इषुध्यति (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना, धि - धारण करना)। द्युम्नम् (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना)। वृणीत (वृ = वरण करना, वृण - परित्याग करना, आनन्द करना, उत्साह करना)। पुष्यसे (पुष् = पोषण करना)।। 67।।

498. मा सु भित्था मा सु रिषो, अम्ब धृष्णु वीरयस्व सु। अग्निः च इदम् करिष्यथः।। 68।।

मन्त्रार्थ :- मा = नहीं, मत। सु = अच्छा। भित्था = भेदन करने वाले। मा = नहीं, मत। सु = अच्छा। रिषो = हिंसक। अम्ब = सेवाभावी विद्वान्। धृष्णु = विजय, गर्व। वीरयस्व = वीर। सु = अच्छा। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। च = और। इदम् = यह, इसको। करिष्यथः = करेंगे।। 68।।

भावार्थ :- भेद मत करो, हिंसा मत करो, वीरता दिखाओ, विजय करो। अग्नि स्वरूप परमात्मा ऐसा करेंगे। भेदभाव तथा हिंसा का मार्ग उचित नहीं है। समुचित वीरता से वास्तविक विजय प्राप्त करना ही श्रेयस्कर है। हम सत्य मार्ग पर चलेंगे तो परमात्मा की कृपा से ऐसा कर सकेंगे।। 68 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मा (अव्यय)। सु (उपसर्ग)। भित्था (भिद् - भेदना, भेदन करना, भाग करना)। रिषो (रिश्-रिष - हिंसा करना, मार डालना या दुःख देना, मारने का यत्न करना)। अम्ब (अम्ब् = जाना, जानना, शब्द करना, मर्दन करना)। धृष्णु (धृष् = जीतना, गर्व करना, धृष्टता करना, अभिमान करना, स्वयम् को बड़ा समझना, चतुरता दिखाना, वञ्चना करना)। वीरयस्व (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। च (अव्यय)। इदम् (सर्वनाम)। करिष्यथः (कृ - करना)।।

499. दृंहस्व देवि पृथिवि स्वस्तये, आसुरी माया स्वधया कृता असि।
जुष्टम् देवेभ्य इदम् अस्तु हव्यम्, अरिष्टा त्वम् उत् इहि यज्ञे अस्मिन्।। 69 ।।

मन्त्रार्थ :- दृंहस्व = दृढ़ करो, बढ़ाओ। देवि = देवी, तेजस्विनी। पृथिवि = विस्तार में, पृथ्वी पर। स्वस्तये = कल्याण के लिए, सुख के लिए। आसुरी = आसुर सम्बन्धी, असुर सम्बन्धी। माया = माया। स्वधया = स्वधा के साथ, स्वधा द्वारा। कृता = किया हुआ, बनाया। असि = हो। जुष्टम् = सुविचारित सेवा को। देवेभ्य = देवों के लिए। इदम् = यह, इसको। अस्तु = हो। हव्यम् = आदान-प्रदान करने योग्य को, हव्य को, देय को। अरिष्टा = हिंसामुक्त = अत्यन्त हिंसक, गतिशील, व्यापक। त्वम् = तुम। उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। इहि = आओ, जानों। यज्ञे = यज्ञ में, देवपूजा, संगतिकरण तथा दान कर्म में। अस्मिन् = इस, इसमें।। 69 ।।

भावार्थ :- इस मन्त्र में कहा गया है कि हे देवि पृथिवी, कल्याण के लिए दृढ़ करो। तुम स्वधा द्वारा आसुरी माया करने वाली हो। यह जुष्ट हव्य देवों के लिए हो। अरिष्टा, तुम इस यजन में आओ। पृथिवी लोक कल्याण के लिए है। प्रकृति का उपयोग जनकल्याण के लिए करना चाहिए। प्राकृति का विनाश नहीं करना चाहिए। पृथिवी को प्रदूषित नहीं करना चाहिए। यह पृथिवी स्वधा अर्थात् अपनी बुद्धि से आसुरी माया अर्थात् ऐश्वर्य की गति को संचालित करने वाली है। पृथिवी का अर्थ भी विस्तृत विवेक युक्त दिव्य भावना ही है। वही अपनी बुद्धि से संचालन करने में समर्थ हो सकती है। 69 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - दृंहस्व (दृंह् = बढ़ना, दृढ़ होना, दृढ़ करना)। देवि (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। पृथिवि (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। स्वस्तये (सु - अच्छा, अस् - होना, स्वस्ति = कल्याण)। आसुरी (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना, सुर - अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, चमकना)। माया (मय् - जाना, क्लिष्ट कार्य करना, मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। स्वधया (स्व = निज, अपना, धा = धारण करना, पहनना, पोषण करना, रक्षण करना, धि - पास रखना या होना, युक्त होना)। कृता (कृ = करना)। असि (अस् - होना)। जुष्टम् (जुष् = विचार करना, सेवा करना, सेवन करना, विवेक होना, विवेचना करना, प्रीति करना, चाहना, दुलारना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। देवेभ्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। इदम् (सर्वनाम)। अस्तु (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। हव्यम् (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। अरिष्टा (अ - नहीं, ऋ-अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, रिष- हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, मारने का यत्न करना)। त्वम् (सर्वनाम)। उत् (उपसर्ग)। इहि (इ = जाना, जानना, पाना)। यज्ञे (यज - देवपूजा करना, देना, संगति करना)। अस्मिन् (सर्वनाम)।। 69 ।।

500. द्रु अन्नः सर्पिरासुतिः, प्रत्नो होता वरेण्यः। सहसः पुत्रो अद्भुतः।। 70 ।।

मन्त्रार्थ :- द्रु -जाना, शीघ्रता से जाना। अन्नः = अन्न। सर्पिरासुतिः = सर्पों का, प्रदान करे। प्रत्नो = प्रसिद्ध करने

वाले, प्रकृष्टता से, पूर्व की भांति। होता = आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाले। वरेण्यः = वरणीय, वरण करने वाला । सहसः = सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ठ, बलवान्। पुत्रो = पुत्र । अद्भुतः = अद्भुत, भोजनकृत।।। 70 ।।

भावार्थ :- अन्न का अर्थ जीवन है तथा खाद्य पदार्थ भी। वह प्रसिद्ध वरेण्य होता है। हमारा जीवन वरेण्य, वरणीय, वरणयोग्य होना चाहिए। हमें होता अर्थात् दानी तथा आह्वान करने वाला होना चाहिए। ऐसा जीवन हो तो ऐसे जीवन में अर्जित अन्न भी ऐसा ही वरेण्य होता बन जाता है। ऐसे अर्जित अन्न अर्थात् सम्पति-साधन को साहसी पुत्र ग्रहण करता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - द्रु (द्रु - जाना, शीघ्रता से जाना, चलना, बहना, प्रवाहित होना)। अन्नः (अन् = प्राणवान् होना, अद् = खाना)। सर्पिरासुतिः (सृप् - जाना, सरकना, जानना, पाना, चलना) (रा- देना, लेना, ग्रहण करना, रस्, रास् = शब्द करना, रस् = रस होना, स्वाद लेना, प्रीति करना, प्यार करना, शब्द करना, रस लेना)। प्रत्नो (प्रथ् - प्रसिद्ध होना, फैलना, फैलाना)। होता (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। वरेण्यः (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। सहसः (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ठ होना)। पुत्रो (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। अद्भुतः (अद् = खाना, आत्मसात् करना, अ - नहीं, दा - देना)।। 70 ।।

501. परस्याः अधि संवतो, यत्र अहम् अस्मि तान् अव ।। 71 ।।

मन्त्रार्थ :- परस्याः = पर का, अन्य का। अधि संवतो = अधि संवत। यत्र = जहाँ। अहम् = मैं। अस्मि = हूँ। तान् = उनको। अव = रक्षा करो।। 71।।

भावार्थ :- जहाँ मैं हूँ, उनकी, पराये अधि सम्वत की रक्षा करो। हम जहाँ भी हैं, अन्य जनों की रक्षा करें।। 71।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - परस्याः (सर्वनाम)। अधि संवतो (अधि - अधिक, उच्च (उपसर्ग) सम् - सम्यक्, भलीभाँति, सम् - न घबराना, एक समान रहना, वृक - लेना, मान्य करना, स्वीकार करना, वद् -वच्- बोलना)। यत्र (सर्वनाम)। अहम् (सर्वनाम)। अस्मि (सर्वनाम)। तान् (सर्वनाम)। अव (अव्यय)।। 71।।

(120) सूक्त 17

502. परमस्याः परावतो, रोहिदश्व इह आ गहि। पुरीष्यः पुरुप्रियो, अग्ने त्वम् तरा मृधः ।। 72 ।।

मन्त्रार्थ :- परमस्या = अत्यन्त, उच्चतम, प्रमुखतम का, परम का। परावतो = परावत, परा के समान, पराया। रोहिदश्व = रोहण करने वाले, चढ़ने वाले, बढ़ने वाले। इह = इसमें, यहाँ। आ गहि = आयें। पुरीष्यः = पुरीष्य, अग्रगामी, अग्रणी। पुरुप्रियो = पुरुप्रिय। अग्ने = हे अग्नि। त्वम् = तुम। तरा = पार करने वाले। मृधः= हिंसक, आद्र।। 72 ।।

भावार्थ :- प्रगतिशील जन आगे आयें। अग्नि स्वरूप परमात्मा कठिनाइयों से हमें पार करे।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - परमस्याः (सर्वनाम)। परावतो (परा = परम, परोक्ष, अन्य, अव्यय, सर्वनाम)। रोहिदश्व (रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। इह (सर्वनाम)। आ गहि (आ-गह = आना, आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, गह् -जाना, जानना, पाना, गहन होना, घना होना, डराना, हिंसा करना)। पुरीष्यः (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। पुरुप्रियो (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, प्री = प्रिय होना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। त्वम् (सर्वनाम)। तरा (तृ - पार जाना, पर तीर को जाना, जल पर तैरना, जीतना, जल के पार जाना)। मृधः (मृध - दबाना, हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, आद्र करना, गीला करना, गीला होना)।। 72 ।।

503. यत् अग्ने कानि कानि, चित् आ ते दारुणि दध्मसि।
सर्वम् तत् अस्तु ते घृतम्, तत् जुषस्व यविष्ठ्य ।। 73 ।।

मन्त्रार्थ :- यत् = जिसे, जो। अग्ने = हे अग्नि। कानि = क्या, कौन। कानि = क्या, कौन। चित् = चेतन। आ =

समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। दारुणि = देने वाले। दध्मसि = धारण करते हो। सर्वम् = सब कुछ। तत् = वह, उस को। अस्तु = हो। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। घृतम् = घृत को, प्रकाश को। तत् = वह, उस को। जुषस्व = सेवा करो, सन्तुष्ट करो। यविष्ठ्य = सर्वाधिक मिलाने व अलग करने योग्य।। 73।।

भावार्थ :- हे अग्नि स्वरूप परमात्मा, जो कुछ भी दानयोग्य धारण करते हो, वह सब तुम्हारा प्रकाश है। उसका सेवन करो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यत् (सर्वनाम)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। कानि (सर्वनाम)। चित् (चित = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। आ (उपसर्ग)। ते (सर्वनाम)। दारुणि (दा - देना, सौंपना, लौटाना, रखना, दृ - आदर करना, हिंसा करना)। दध्मसि (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। सर्वम् (सर्वनाम)। तत् (सर्वनाम)। अस्तु (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। घृतम् (घृ -गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना)। जुषस्व (जुष् = विचार करना, सेवा करना, सेवन करना, विवेक होना, विवेचना करना, प्रीति करना, चाहना, दुलारना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। यविष्ठ्य (यु = मिलाना, अलग करना, यव = समाप्त करना, उपसंहार करना)।। 73।।

504. यत् अति उपजिह्विका, यत् वम्रो अति-सर्पति। सर्वम् तत् अस्तु ते घृतम्, तत् जुषस्व यविष्ठ्य।।74।।

मन्त्रार्थ :- यत् = जिसे, जो। अति = बहुत, अत्यधिक अतिक्रम कर। उपजिह्विका = समीप गति वाला, उपजिह्वा वाला। यत् = जिसे, जो। वम्रो = वम्र। अति-सर्पति = अधिक सरकता है, चलता है। सर्वम् = सब कुछ। तत् = वह, उस को। अस्तु = हो। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। घृतम् = प्रकाशमान को। तत् = वह, उस को। जुषस्व = सेवा करो, सन्तुष्ट करो। यविष्ठ्य = सर्वाधिक मिलाने व अलग करने योग्य।। 74।।

भावार्थ :- जो उपजिह्विका है, जो वम्र बहुत गति करता है, वह सब घृत अर्थात् प्रकाश, शब्द तुम्हारा हो। अत्यन्त मिलनयोग्य उसका सेवन करो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यत् (सर्वनाम)। अति (उपसर्ग,)। उपजिह्विका (उप - समीप, जिह् - चलना, जाना, जानना, पाना)। वम्रो (वम - वमन होना)। अति-सर्पति (अति - अधिक, बहुत, सृप-सर्प - जाना, सरकना, गति करना)। सर्वम् (सर्वनाम)। तत् (सर्वनाम)। अस्तु (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। ते (सर्वनाम)। घृतम् (घृ -गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना)। जुषस्व (जुष् = विचार करना, सेवा करना, सेवन करना, विवेक होना, विवेचना करना, प्रीति करना, चाहना, दुलारना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। यविष्ठ्य (यु = मिलाना, अलग करना, यव = समाप्त करना, उपसंहार करना)।। 74।।

(121) सूक्त 18

505. अहः अहः अप्रयावम् भरन्तो, अश्वायेव तिष्ठते घासम् अस्मै।
रायः पोषेण सम् इषा मदन्तो, अग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम।। 75।।

मन्त्रार्थ :- अहः = व्यापक। अहः = व्यापक। अप्रयावम् = अलग न होने वाले को। भरन्तो = भरण करने वाले। अश्वायेव = अश्व, तीव्र गति युक्त, व्यापक। तिष्ठते = स्थित है, ठहरा है, खड़ा है। घासम् = घास को, खाद्य को। अस्मै = इसके लिए, हमको, इस। रायः = गति, विद्या, वाणी। पोषेण = पुष्टि द्वारा, पुष्टिकर्ता द्वारा। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। इषा = इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि। मदन्तो = हर्षित, तृप्त। अग्ने = हे अग्नि। मा = नहीं, मत। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए।। प्रतिवेशा = प्रतिष्ठित हो। रिषाम = हिंसक।। 75।।

भावार्थ :- प्रतिदिन तथा प्रत्येक व्यापक प्रयास में अलग न होने वाले का भरण करने वाले हमारे लिए खाद्य को तीव्रता से प्रतिष्ठित करते हैं। हे अग्नि, विद्या द्वारा सम्यक् इच्छाओं को आनन्दित करते हुए तुम्हारे प्रतिवेश में हिंसा न करें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अहः (अह् = फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, अर्पण करना, समर्पण करना)। अप्रयावम्

(प्र - प्रकृष्ट, अधिक, या - जाना, जानना, पाना, यु = मिलाना, अलग करना, यव = समाप्त करना, उपसंहार करना)। भरन्तो (भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)। अश्वायेव (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। तिष्ठते (तिष्ठ् = ठहरना, खड़ा होना)। घासम् (घस् - खाना)। अस्मै (सर्वनाम)। रायः (रा-देना, लेना, ग्रहण करना, रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। पोषेण (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। सम् (उपसर्ग)। इषा (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। मदन्तो (मद- आनन्द होना, हर्षित होना, तृप्त होना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। मा (अव्यय)। ते (सर्वनाम)। प्रतिवेशा (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, विश - भीतर जाना, चारों ओर फैलना, विश - घुसना, भीतर जाना, धंसना)। रिषाम (रिश्-रिष - हिंसा करना, मार डालना या दुःख देना, मारने का यत्न करना)।।75।।

506. नाभा पृथिव्याः समिधाने अग्नौ, रायः पोषाय बृहते हवामहे।
इरम् मदम् बृहत् उक्थम् यजत्रम्, जेतारम् अग्निम् पृतनासु सासहिम्।।76।।

मन्त्रार्थ :- नाभा = नाभि में। पृथिव्याः = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। समिधाने = सम्यक् प्रकाशवान्। अग्नौ = अग्नि में। रायः = गति, विद्या, वाणी। पोषाय = पोषण के लिए। बृहते = महान्, बड़ा, विराट, बृहत्। हवामहे = आह्वान करते हैं, आदान- प्रदान करते हैं। इरम् = ईर्ष्या। मदम् = मद को, हर्ष को, तृप्ति को। बृहत् = महान्, बड़ा, विराट, बृहत्। उक्थम् = उक्ति, कथन। यजत्रम् = यजन के पालक-रक्षक। जेतारम् = जीतने वाले को। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। पृतनासु = व्यापक, बलों में। सासहिम् = सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ठ, सहने वाले को।। 76।।

भावार्थ :- पृथ्वी की नाभि में प्रकाशमान अग्नि में विद्या के पोषण के लिए बृहत् रूप में आह्वान करते हैं। ईर्ष्या, मद, बड़े बोल को जीतने वाले, व्यापक बलों में समर्थ यजत्र अग्नि का आह्वान करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नाभा (नभ - नष्ट होना, दुःख देना या मार डालना, हिंसा करना, मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना)। पृथिव्याः (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। समिधाने (सम् = सम्यक्, भलीभांति, इत् - इन्ध = प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना, प्रकाश करना)। अग्नौ (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। रायः (रा-देना, लेना, ग्रहण करना, रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। पोषाय (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। बृहते (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। हवामहे (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। इरम् (इर् - ईर्ष्या करना, मत्सर करना)। मदम् (मद - आनन्द होना, हर्षित होना, तृप्त होना)। बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। उक्थम् (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना, उच् - एकत्र होना, सम्बन्ध होना)। यजत्रम् (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना, त्रै - पालन करना)। जेतारम् = जीतने वाले को (जि - सर्वोत्कर्ष से रहना, सब से बढ़ के होना, जीतना, पराभव करना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पृतनासु (पृत -व्याप्त होना, जीवन होना, बलपूर्वक निकालना, पृ = पूर्ण करना)। सासहिम् (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ठ होना, प्रसन्न होना)।। 76।।

507. याः सेना अभि इत्वरीः, आव्याधिनीः उगणा उत।
ये स्तेना ये च तस्कराः तान्, ते अग्ने अपि दधामि आस्ये।।77।।

मन्त्रार्थ :- याः = जो। सेना = सेना। अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा। इत्वरीः = प्राप्त होकर, गति, ज्ञान, प्रकाश की ओर जाकर, गति, ज्ञान, प्रकाश को प्राप्त कर। आव्याधिनीः = धारण करने वाले, दुःखी। उगणा = उग। उत = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। ये = जो। स्तेना = चोर, लुटेरा)। ये = जो। च = और। तस्कराः = तस्कर, रक्षक,

खोदने, फेकने, उड़ाने वाले। तान् - तान् = उनको। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। अग्ने = हे अग्नि। अपि = भी, निकट। दधामि = धारण करता हूँ। आस्ये = आस्य में।। 77 ।।

भावार्थ :- हे अग्नि स्वरूप परमात्मा, जो सेना अभीत्वरी है, आव्याधिनी है, उग्र है, जो चोर-लुटेरे और तस्कर हैं, उनको भी आस्य में धारण करता हूँ। सेना शब्द सि धातु से बना है। इसका अर्थ है बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना। इसका भाव है कि सेना नियमों के अनुशासन में रहकर कार्य करती है तथा दुष्टों तथा शत्रुओं को बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना उसका कार्य होता है। यह सेना चोर, लुटेरे, तस्करों पर नियन्त्रण करती है, इसलिए उनको धारण करने को कहा गया है। धारण करना अर्थात् अपने अधीन नियन्त्रण में रखना।। 77 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - याः (सर्वनाम)। सेना (सि - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। अभि (उपसर्ग)। इत्वरीः (इ - जाना, जानना, पाना, इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। आव्याधिनीः (आ- समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, व्यध् - दुःख देना, ताडना करना, पीटना, पीड़ा करना, छेदना, वि - विशेष, धि = धारण करना)। उगणा (उग् - उग्र - उग्र होना, तेज होना)। उत (उपसर्ग)। ये (सर्वनाम)। स्तेना (स्तेन - चुराना, लूटना)। च (अव्यय)। तस्कराः (तस् - रक्षा करना, स्थापना करना, भेजना, फेकना, उड़ाना, खोदना, कुम्हलाना)। तान् (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अपि (अव्यय)। दधामि (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। आस्ये (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीवित रहना, होना)।। 77 ।।

508. दंष्ट्राभ्याम् मलिम्लून्, जम्भ्यैः तस्करान् उत।
हनुभ्याम् स्तेनान् भगवः, तान् त्वम् खाद सु-खादितान्।।78।।

मन्त्रार्थ :- दंष्ट्राभ्याम् = डसने वालों के लिए, काटने वालों के लिए, देखने वालों के लिए, बोलने वालों के लिए। मलिम्लून् = मल को काटने वाला। जम्भ्यैः = गर्व योग्य द्वारा, नाशयोग्य योग्य द्वारा। तस्करान् = तस्करों को, रक्षकों को, खोदने, फेकने, उड़ाने वालों को। उत = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। हनुभ्याम् = मारने वाले के लिए। स्तेनान् = चोर, लुटेरे। भगवः = सेवनीय, सेवायोग्य। तान् = उनको। त्वम् = तुम। खाद = खाना, भोजन। सु-खादितान् = सुभोजितों को।। 78 ।।

भावार्थ :- सभी का भोजन उसके रुचि के अनुसार होता है। दन्त से काटने वालों के लिए मलिम्लूनों अर्थात् मल काटने वालों को, गर्वीले लोगों के लिए तस्करों को, हनन करने वालों अर्थात् हिंसकों के लिए चोर-लुटेरों को दिया जाये। और हे भगवान्, तुम सुखादितों को खाओ। अर्थात् जिसका जैसा स्वभाव-रुचि है, उसे उस तरह का कार्य दिया जाये।। 78 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - दंष्ट्राभ्याम् (दंश् - डसना, काटना, देखना, शब्द करना)। मलिम्लून् (मल = धारण करना, घर्षण करना, लू - काटना, चीरना)। जम्भ्यैः (जम्भ् - नाश करना, गर्व करना, आलस्य होना)। तस्करान् (तस् - रक्षा करना, स्थापना करना, भेजना, फेकना, उड़ाना, खोदना, कुम्हलाना)। उत (उपसर्ग)। हनुभ्याम् (हन् - मारना)। स्तेनान् (स्तेन - चुराना, लूटना)। भगवः (भग्-भज् = सेवा करना, सेवन करना, सेवित होना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। तान् (सर्वनाम)। त्वम् (सर्वनाम)। खाद (खद्-खाद् - खाना, हिंसा करना, स्थिर रहना)। सु-खादितान् (सु - अच्छा, खद्-खाद् - खाना, हिंसा करना, स्थिर रहना)।।78 ।।

(122) सूक्त 19

509. ये जनेषु मलिम्लव, स्तेनासः तस्करा वने। ये कक्षेषु अघायवः, तान् ते दधामि जम्भयोः ।।79।।

मन्त्रार्थ :- ये = जो। जनेषु = जनों में, लोगों में । मलिम्लव = मल को काटने वाला। स्तेनासः = चोर। तस्करा = तस्कर, रक्षक, खोदने, फेकने, उड़ाने वाले। वने = वाणी में, वनों में। ये = जो। कक्षेषु = कक्षों में। अघायवः = पापी, अपराधी। तान् = उनको। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए । दधामि = धारण करता हूँ। जम्भयोः = गर्व का, नाश का।। 79 ।।

भावार्थ :- समाज में जो मलिम्लव हैं, वन में जो चोर-लुटेरे, तस्कर हैं, कक्षों में जो पापी हैं, उन गर्वीले

विनाशकारियों को तुम्हे देता हूँ। दुष्टों को परमात्मा तथा समुचित शासन ही उचित न्याय प्रदान कर सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ये (सर्वनाम)। जनेषु (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। मलिम्लव (मल = धारण करना, घर्षण करना, लू - काटना, चीरना, म्लेव् - सेवा करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना)। स्तेनासः (स्तेन - चुराना, लूटना)। तस्करा (तस् - रक्षा करना, स्थापना करना, भेजना, फेकना, उड़ाना, खोदना, कुम्हलाना)। वने (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना)। कक्षेषु (कक्ष् - धारण करना, घर्षण करना)। अघायवः (अघ् = पाप, अपराध करना)। तान् (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। दधामि (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। जम्भयोः (जम्भ् - नाश करना, गर्व करना, आलस्य होना)॥ 79॥

510. यो अस्मभ्यम् अरातीयात्, यः च नो द्वेषते जनः।
निन्दात् यो अस्मान् धिप्सात्, च सर्वम् तम् भस्मसा कुरु॥80॥

मन्त्रार्थ :- यो = जो। अस्मभ्यम् = हमारे लिए। अरातीयात् = अदानी। यः = जो। च = और। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। द्वेषते = द्वेष करता है। जनः = जन। निन्दात् = निन्दा से। यो = जो। अस्मान् = हमें , हमको। धिप्सात् = धारण करे, युक्त हो। च = और। सर्वम् = सब कुछ। तम् = उसको, उसे। भस्मसा = भस्म द्वारा, भोजन द्वारा। कुरु = करो॥ 80॥

भावार्थ :- जो हमारे लिए अदानी हैं, और जो हमसे द्वेष करने वाले जन हैं, जो हमको निन्दा से धारण करते हैं, उन सबको भस्म करो॥ 80॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यो (सर्वनाम)। अस्मभ्यम् (सर्वनाम)। अरातीयात् (रा = देना, रम् - रमना, रमण करना, रम जाना, रत होना, क्रीडा करना, प्रिय होना, मूल्यवान होना)। च (अव्यय)। नो (सर्वनाम)। द्वेषते (द्विष् = द्वेष करना, विरोध करना, शत्रुता करना, मत्सर करना)। जनः (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। निन्दात् (निन्द् - निन्दा करना)। अस्मान् (सर्वनाम)। धिप्सात् (धी = धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना, बुद्धि, प्रज्ञा होना, धि = धारण करना, युक्त होना)। सर्वम् (सर्वनाम)। तम् (सर्वनाम)। भस्मसा (भस - खाना, चमकना, दोष लगाना, निन्दा करना)। कुरु (कृ- करना)॥ 80॥

511. सम् शितम् मे ब्रह्म, सम् शितम् वीर्य्यम् बलम्।
सम् शितम् क्षत्रम् जिष्णु, यस्य अहम् अस्मि पुरोहितः॥81॥

मन्त्रार्थ :- सम् = सम्यक् रूप से, भलीभाँति। शितम् = तीक्ष्ण, श्रुति। मे = मेरा, मेरे लिए। ब्रह्म = महान्, बड़ा, विराट, बृहत्। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। शितम् = तीक्ष्ण, श्रुति। वीर्य्यम् = पराक्रम, वीरता को। बलम् = बल। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। शितम् = तीक्ष्ण, श्रुति। क्षत्रम् = क्षत्र को। जिष्णु = जीतने वाला, जयाभिलाषी, जय की इच्छा वाला। यस्य = जिसका। अहम् = मैं। अस्मि = हूँ। पुरोहितः = पुरोहित॥ 81॥

भावार्थ :- मेरे लिए ब्रह्म, वीर्य, बल, जयाभिलाषी क्षत्र सम् शितम् हों अर्थात् तीक्ष्ण करने वाले हों, सुनने वाले हों। परमात्मा के साथ ही समाज के विभिन्न योग्यता-क्षमता वाले लोग हमें तीक्ष्ण करें, निखारें, गुणवान् क्षमतावान् बनायें तथा हमारी बात सुनें। यह तभी सम्भव है जब हम भी उनके पुरोहित हों, उनका हित करने वाले हों।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सम् (उपसर्ग)। शितम् (शि - तीक्ष्ण करना, पैना करना, पतला करना, सुनना)। मे (सर्वनाम)। ब्रह्म (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। वीर्य्यम् (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। बलम् (बल् - बल होना, जाना, स्पष्ट करना, प्राण होना, चेतन होना, जीना, जीते रहना, रक्षा करना, धान्य सञ्चय करना, द्रव्य को रोकना)। क्षत्रम् (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना, रक्षा करना)। जिष्णु (जि - सर्वोत्कर्ष से रहना, सब से बढ़ के होना, जीतना, पराभव करना)। यस्य (सर्वनाम)। अहम् (सर्वनाम)। अस्मि (सर्वनाम)। पुरोहितः (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, हि - चलना, जाना, जानना, पाना)॥ 81॥

512. उत् एषाम् बाहू अतिरम्, उत् वर्चो अथो बलम्।
क्षिणोमि ब्रह्मणा अमित्रान्, उत् नयामि स्वान् अहम्॥82॥

मन्त्रार्थ :- उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। एषाम् = प्रयत्न करने वाले, समीप जाने वाले, आने वाले, चाहने वाले को। बाहू = भुजा, हाथ, प्रयास करने वाले युगल। अतिरम् = सतत गतिशील को। उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। वर्चो = प्रकाश। अथो = अब, इसके बाद, इसके अनन्तर। बलम् = बल। क्षिणोमि = हिंसा करता हूँ। ब्रह्मणा = ब्रह्म का, विराट, महान् का। अमित्रान् = अमित्रों को, अस्नेही जनों को। उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। नयामि = ले जाता हूँ। स्वान् = स्वान, शब्द (स्वन - शब्द करना)। अहम् = मैं॥82॥

भावार्थ :- ये मेरे दोनो हाथ अतिर हैं, निरन्तर गतिशील हैं, सक्रिय हैं। मेरा उत्कृष्ट बल वर्चः अर्थात् आध्यात्मिक प्रकाश है। वर्चः का धातुज शाब्दिक अर्थ प्रकाश है। वेद में, अध्यात्म में इस शब्द का प्रयोग आध्यात्मिक प्रकाश के अर्थ में ही अधिकतर होता है। मैं ब्रह्म द्वारा अमित्रों का हनन करता हूँ। अमित्रों का हनन भी अस्त्र-शस्त्र से नहीं, ब्रह्म बल से, साधना से, तपोबल से, अहिंसा से ही करता हूँ। आध्यात्मिक साधक अहिंसक होता ही है। वह अमित्र की भी हिंसा नहीं कर सकता है, अमित्र को अध्यात्म-बल से अहिंसक रहते हुए मित्र बनाने का प्रयास अवश्य कर सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उत् (उपसर्ग)। एषाम् (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, एष - प्रयत्न करना, समीप जाना या आना, चाहना)। बाहू (बाह् - प्रयास करना, बह् - बहना, गति करना, बाहर होना, परे हो जाना, हिंसा करना)। अतिरम् (अत् = सतत गमन करना, निरन्तर चलना, जाना, सदैव जाते रहना)। वर्चो (वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। अथो (अव्यय)। बलम् (बल् - बल होना, जाना, स्पष्ट करना, प्राण होना, चेतन होना, जीना, जीते रहना, रक्षा करना, धान्य सञ्चय करना, द्रव्य को रोकना)। क्षिणोमि (क्षिण् = हिंसा करना)। ब्रह्मणा (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। अमित्रान् (अ = नहीं, मिद् = प्रीति करना, स्नेह करना)। उत् (उपसर्ग)। नयामि (नी = ले जाना, नय - जाना, हिलना, पहुँचना, संरक्षण करना)। स्वान् (स्वन - शब्द करना)। अहम् (सर्वनाम)॥82॥

513. अन्नपते अन्नस्य नो देहि, अनमीवस्य शुष्मिणः।
प्रप्र दातारम् तारीष ऊर्जम्, नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥83॥

मन्त्रार्थ :- अन्नपते = हे अन्नपते। अन्नस्य = अन्न का। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। देहि = दो, दीजिये। अनमीवस्य = निरोगी, रोगमुक्त का। शुष्मिणः = शुष्मी का, सुखाने वाले का। प्रप्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। दातारम् = देने वाला। तारीष = पार कराने वाले। ऊर्जम् = ऊर्जा को। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। धेहि = धारण कर। द्विपदे = द्विपद के लिए, द्विपद में, द्विपद वाले में। चतुष्पदे = चार पैर वाले में॥83॥

भावार्थ :- अन्नपति परमात्मा से अन्न देने की प्रार्थना की गयी है। केवल द्विपद अर्थात् मनुष्यों के लिए ही नहीं, अपितु चार वाले प्राणियों के लिए भी परमात्मा से अन्न देने की प्रार्थना की गयी है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अन्नपते (अन् = प्राणवान् होना, अद् = खाना, पत् - ऐश्वर्यवान् होना, श्रीमान् होना, शक्तिमान् होना)। अन्नस्य (अन - जीवन होना, प्राणवान् होना, समर्थ होना, जाना, अद् = खाना)। नो (सर्वनाम)। देहि (दा = देना, दान करना, रखना)। अनमीवस्य (अन् - नहीं, अम् - गति करना, जानना, जाना, पाना, शब्द करना, खाना, सेवा करना, रोग होना)। शुष्मिणः (शुष् - सुखाना)। प्रप्र (उपसर्ग)। दातारम् (दा - देना, सौंपना, लौटाना, रखना)। तारीष (तॄ - पार जाना, पर तीर को जाना, जल पर तैरना, जीतना, जल के पार जाना, तृष - प्यास लगना, इच्छा करना, उत्कण्ठित होना, चाहना)। ऊर्जम् (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। धेहि (धा-धि-धी - धारण करना, पहनना, पोषण करना, रक्षण करना, देना)। द्विपदे (द्वि = दो, संख्या, पद - स्थानान्तर करना, चलना, जाना)। चतुष्पदे (चतुः - चार, संख्या, पद - चलना, स्थानान्तर करना)॥83॥

इति एकादशो अध्यायः

ॐ

अथ द्वादशो अध्यायः

(123) सूक्त 1

514. दृशानो रुक्म उर्व्या वि अद्यौत्, दुः मर्षम् आयुः श्रिये रुचानः।
अग्निः अमृतो अभवत् वयोभिः, यत् एनम् द्यौः अजनयत् सुरेताः ॥1॥

मन्त्रार्थ- दृशानो = देखने वाले । **रुक्म** = रुचि, प्रकाश। **उर्व्या** = विस्तृत, गतिशील, समर्थ, बहु-दुःखदायी। **दुः** = बुरा, अनुचित। **मर्षम्** = मृष्ट, सहनशील, क्षमाशील, विचारशील। **आयुः** = आयु। **श्रिये** = श्रेय में। **रुचानः** = रुच को। **वि** = विशेष, विना, विलोम। **अद्यौत्** = प्रकाश किया॥ **अग्निः** = अग्नि अर्थात् ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् (परमात्मा)॥ **अमृतो** = अमृत, मृत्यु से परे, अमर। **वयोभिः** = रचनाओं द्वारा। **अभवत्** = हुआ॥ **यत्** = जो। **एनम्** = इसका। **द्यौः** = प्रकाशवान्, अग्रगामी। **सुरेताः** = प्रगतिशील, विद्वानों ने। **अजनयत्** = उत्पन्न किया॥ 1॥

भावार्थ - उर्व्या का अर्थ विस्तृत, गतिशील, समर्थ के साथ ही बहु-दुःखदायी भी है। परमात्मा सज्जनों, उदारमना, उपासकों के लिए उर्व्या अर्थात् विस्तृत, गतिशील, समर्थ है तथा दुष्टों के लिए बहु-दुःखदायी भी है। अग्नि अर्थात् ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् परमात्मा भी रचनाशीलता अर्थात् सृजनकर्म, सृष्टियों द्वारा अमृत है। वह तो अनादि, अनन्त, अजन्मा, अमृत है ही, परन्तु हमें उसके इस स्वरूप का आभास सृष्टि से ही होता है। इस प्रकार सृजनशीलता की प्रेरणा महत्वपूर्ण है। उसको उपासक द्यौ अर्थात् द्युतिमान् होकर प्रकाश रूप में अपने हृदय में उत्पन्न करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - दृशानो (दृश्-पश्य -देखना)। **रुक्म** (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। **उर्व्या** (उर् = विस्तार करना, जाना, चलना, निरन्तर चलना, उर्व - सहना, समर्थ होना, मार डालना या दुःख देना, पीड़ा करना)। **वि** (उपसर्ग)। **अद्यौत्** (द्यु = आगे जाना, द्युत् - प्रकाश होना)। **दुः** (उपसर्ग, अव्यय)। **मर्षम्** (मृष - सहन करना, क्षमा करना, मृश - विचार करना, स्पर्श करना, देखना)। **आयुः** (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, ग़ति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। **श्रिये** (श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना)। **रुचानः** (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। **अग्निः** (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **अमृतो** (अ - नहीं, मृ - मरना, देहत्याग करना)। **अभवत्** (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **वयोभिः** (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना)। **यत्** (सर्वनाम)। **एनम्** (सर्वनाम)। **द्यौः** (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना, प्रकाश होना, जानना)। **अजनयत्** (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, जन् = उत्पन्न करना)। **सुरेताः** (सु - अच्छा (उपसर्ग), रि - जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, री - गति करना, झरना-टपकना, लेना, शब्द करना, सुनना) **॥ 1 ॥**

515. नक्तोषासा समनसा विरूपे, धापयेते शिशुम् एकम् समीची।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तः वि भाति, देवा अग्निम् धारयन् द्रविणोदाः ॥2॥

मन्त्रार्थ - नक्तोषासा = नक्त अर्थात् रात्रि, उषस् अर्थात् प्रभात, उषा। समनसा = समान मन वाले। विरूपे = भिन्न भिन्न रूप वालें। शिशुम् = शिशु को। एकम् = एक। समीची = भलीभांति ही, सम्यक् प्रकाशित। धापयेते = धारण कराता है, धारण करता है। द्यावाक्षामा = अग्रगामी, प्रकाशमय, द्यावा, क्षमा, सामर्थ्य युक्त। रुक्मो = रुच, रुचि, प्रकाश। अन्तः = बीच में, भीतर। वि भाति = विशेष प्रकाशित होता है॥ देवा = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने। द्रविणोदाः = द्रविण-दाता, ज्ञान-दाता। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को । धारयन् = धारण किया॥ 2॥

भावार्थ - वह एकमात्र परमात्मा ही है जो हम सभी शिशुओं को भलीभाँति दिन-रात धारण करता है। समर्थ प्रकाश अपने भीतर प्रकाशमान है। विद्वान् उपसक उस अग्निस्वरूप परमात्मा को अपने हृदय में धारण करते हैं, अनुभव करते

हैं।। 2।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नक्तोषासा (नक् - नक्क् = नष्ट होना, नष्ट करना, उषस् = प्रभात होना, उष - हिंसा करना, जलना, जलाना, ताप देना)। समनसा (स - सहित, साथ, सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। विरुपे (वि - विशेष, रूप् - आकार बनाना, रचना करना, रूप बनाना)। धापयेते (धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)। शिशुम् (शि = तेज करना, तीक्ष्ण करना, कल्याण करना, शिष् - शेष रखना, बचाना, प्रयोजन करना)। एकम् (एक = एक, एक - विचार करना)। समीची (सम् = सम्यक्, भलीभांति, इत् - इन्ध = प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना, प्रकाश करना, इ - जाना, जानना)। द्यावाक्षामा (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना = क्षमा, सामर्थ्य युक्त -क्षम् = क्षमा करना, सहन करना, समर्थ होना, रोकना)। रुक्मो (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। वि भाति (वि - विशेष, भा - चमकना, प्रकाशित होना)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। धारयन् (धृ-धा = धारण करना, धाः = पोषण करना, रक्षण करना, देना, दान करना, धार बाँधना, धारा होना)। द्रविणोदाः (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)।। 2।।

516. विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः, प्र असावीत् भद्रम् द्विपदे चतुष्पदे।
वि नाकम् अख्यत् सविता वरेण्यो, अनु प्रयाणम् उषसो वि राजति।।3।।

मन्त्रार्थ - कविः = ज्ञानी, कवि। विश्वा = विश्व, सभी, सब। रूपाणि = रचना, आकार, रूप प्रति मुञ्चते = प्रतिमोचन करता है, मुक्त करता हैं। प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। भद्रम् = भद्र को। द्विपदे = द्विपद के लिए, द्विपद में, द्विपद वाले में । चतुष्पदे = चार पैर वाल में। असावीत् = ऐश्वर्यमय हुआ या किया, उत्पन्न किया। सविता = सृष्टिकर्ता, उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाला । वरेण्यो = वरणीय, वरण करने वाला । वि = विशेष, विना, विलोम। नाकम् = नाक को, अकुटिल, अविचल को। अख्यत् = प्रसिद्ध किया। अनु प्रयाणम् = प्रयाण के अनुकूल। उषसो = उषायें। वि = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग)। राजति = प्रकाशित होता है।। 3।।

भावार्थ - कवि परमात्मा ने सृष्टि के समस्त रूपों को उत्पन्न किया और वही ऐश्वर्यमय अर्थात् सबका ईश्वर या शासक हुआ। उसी सविता अर्थात् सृष्टिकर्ता, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाले परमात्मा वरेण्य अर्थात वरणीय परमात्मा ने नाक को अर्थात् अकुटिल, अविचल को अख्यत् अर्थात् विख्यात या प्रसिद्ध किया।, वही उषा के पीछे दिन के प्राकाश के समान सर्वत्र प्रकाशित होता है।। 3।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - विश्वा (सर्वनाम)। रूपाणि (रूप - आकार बनाना, रचना करना, मन में रूपाकृति लाना)। प्रति (अव्यय)। मुञ्चते (मुञ्च् - बोलना, कहना, मुक्त करना, त्याग करना)। कविः (कु - शब्द करना, कविता करना, वर्णन करना, चित्र खींचना)। प्र (उपसर्ग)। असावीत् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना, सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। भद्रम् (भदि-भन्द् = सुख होना, शुभ कर्म करना, कल्याण होना)। द्विपदे (द्वि = दो, संख्या, पद - स्थानान्तर करना, चलना, जाना)। चतुष्पदे (चतुः - चार, संख्या, पद - चलना, स्थानान्तर करना)। वि (उपसर्ग)। नाकम् (नक् - नक्क् = नष्ट होना, नष्ट करना, न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क -नाश होना)। अख्यत् = प्रसिद्ध किया, अथवा प्रख्यात करते हुए, प्रकाशित करते हुए (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, ख्या - प्रसिद्ध करना, प्रख्यात करना)। सविता (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। वरेण्यो (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। अनु (उपसर्ग)। प्रयाणम् (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, या = जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। उषसो (उषस् - प्रभात होना, पौ फटना, उष - हिंसा करना, जलना, जलाना, ताप देना)। राजति (राज्

- दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)।। 3।।

(124) सूक्त 2

517. सुपर्णो असि गरुत्मान् त्रिवृत् ते शिरो, गायत्रम् चक्षुः बृहद् -रथन्तरे पक्षौ।
स्तोम आत्मा छन्दांसि अङ्गानि यजूंषि नाम।
साम ते तनूः वामदेव्यम्, यज्ञायज्ञियम् पुच्छम् धिष्ण्याः शफाः।
सुपर्णो असि गरुत्मान्, दिवम् गच्छ स्वः पत।।4।।

मन्त्रार्थ - सुपर्णो = सुन्दर पर्ण वाला, अच्छी तरह हरा करने वाला। **असि** = हो। गरुत्मान् = **गरुत्मान्।** त्रिवृत् **= तीन का वरण किया हुआ ।** ते = **तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए।** शिरो = **शिर, सुनने वाला।** गायत्रम् = **गायत्र को, गाने वाले, स्तुति करने वाले को।** चक्षुः = **आँख**। बृहद् = **महान्, बड़ा।** रथन्तरे = **रथन्तर में, रमणीय को तरने वाले में।** पक्षौ = **पक्ष में।** स्तोम = स्तोम, स्तुतियाँ । **आत्मा** = आत्मा । छन्दांसि = छन्द । अङ्गानि = अंग, विद्वान्, गतिशील, पाने वाले। यजूंषि = यजुष, यजुर्वेद के मन्त्र। नाम = नाम वाले । साम = साम । ते = तुम्हारा। तनूः = विस्तार, शरीर। **वामदेव्यम्** = वामदेव्य को, सुगन्ध, विद्या को, गति-ज्ञान, प्राप्ति की दिव्यता को । **यज्ञायज्ञियम्** = यज्ञ को, यजन को । **पुच्छम्** = पुच्छ को। **धिष्ण्याः** = वाणी। शफाः = शपथ, गति, ज्ञान । सुपर्णो = सुन्दर पर्ण वाला, अच्छी तरह हरा करने वाला । असि = हो । गरुत्मान्, = गरुत्मान् । दिवम् = दिव को, तेजस्वी को । गच्छ = जाओ । स्वः = उत्पन्न, ऐश्वर्य, सृष्टि या जगत्, स्वः। पत = ऐश्वर्य हो।। 4।।

भावार्थ - वेदों का अध्ययन तथा उपासना कर विद्या, गुण, ऐश्वर्य प्राप्त कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सुपर्णो (सु - सुन्दर, अच्छा, पर्ण - हरा करना, हरा होना)। असि (अस् - होना)। गरुत्मान् (गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, शब्द करना, खाना, निगलना)। त्रिवृत् (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना)। ते (सर्वनाम)। शिरो (शृ -सुनना, जाना, जानना, पाना, शि = तेज करना, तीक्ष्ण करना, कल्याण करना)। गायत्रम् (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। चक्षुः (चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)। बृहद् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। रथन्तरे (रम् = रमना, रमण करा, तृ - तैरना, पार करना)। पक्षौ (पक्ष् - पक्ष होना, पक्ष लेना, किसी एक पक्ष को ग्रहण करना, विभाग करना, ग्रहण करना, स्वीकार करना)। स्तोम (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। आत्मा (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। छन्दांसि (छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। अङ्गानि (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। यजूंषि (यज = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। नाम (अव्यय)। साम (साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)। ते (सर्वनाम)। तनूः (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। वामदेव्यम् (वा = गति करना, पवन की भाँति बहना, जाना, जानना, पाना, गन्ध होना)। यज्ञायज्ञियम् (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। पुच्छम् (पुच्छ् - विभाग करना)। धिष्ण्याः (धिष् = शब्द करना, बोलना)। शफाः (शप् = शपथ लेना, प्रतिज्ञा करना, शाप देना, निन्दा करना)। दिवम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। गच्छ (गम्-गच्छ् = जाना)। स्वः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। पत (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)।4।।

518. विष्णोः क्रमो असि सपत्नहा, गायत्रम् छन्द आरोह, पृथिवीम् अनु वि क्रमस्व।
विष्णोः क्रमो असि अभिमातिहा, त्रैष्टुभम् छन्द आरोह, अन्तरिक्षम् अनु वि क्रमस्व।
विष्णोः क्रमो असि अरातीयतो, हन्ता जागतम् छन्द आरोह, दिवम् अनु वि क्रमस्व।

विष्णोः क्रमो असि शत्रूयतो हन्ता, आनुष्टुभम् छन्द आरोह, दिशो अनु वि क्रमस्व ॥5॥

मन्त्रार्थ - विष्णोः = विष्णु का, सर्वव्यापी का। क्रमो = विक्रम, पराक्रम, रक्षा। असि = हो । सपत्नहा = सपत्नघाती। गायत्रम् = गायत्र, गाने वाले, स्तुति करने वाले को । छन्द = छन्द। आरोह = आरोहण करें, चढ़े, बढ़ें। पृथिवीम् = पृथिवी को । अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल । विक्रमस्व = विक्रम, पराक्रम, रक्षा करें, आगे बढ़ाये । विष्णोः = विष्णु का, सर्वव्यापी का । क्रमो = विक्रम, पराक्रम, रक्षा। असि = हो । अभिमातिहा = अभिमान नष्ट करने वाला । त्रैष्टुभम् = त्रैष्टुभ को । छन्द = छन्द । आरोह = आरोहण करें, चढ़े, बढ़ें। अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष या आकाश । अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल । विक्रमस्व = विक्रम, पराक्रम, रक्षा करें, आगे बढ़ाये । विष्णोः = विष्णु का, सर्वव्यापी का । क्रमो = विक्रम, पराक्रम, रक्षा। असि = हो । अरातीयतो = अदानी । हन्ता = मारने वाला । जागतम् = जागत द्वारा । छन्द = छन्द । आरोह = आरोहण करें, चढ़े, बढ़ें। दिवम् = दिव को, तेजस्वी को । अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल । विक्रमस्व = आगे बढ़ाये । विष्णोः = विष्णु का, सर्वव्यापी का । क्रमो = विक्रम, पराक्रम, रक्षा। असि = हो । शत्रूयतो = शत्रुता को । हन्ता = मारने वाला । आनुष्टुभम् = अनुष्टुप् को । छन्द = छन्द । आरोह = आरोहण करें, चढ़े, बढ़ें। दिशो = दिशायें, दिशाओं को । अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल । विक्रमस्व = विक्रम, पराक्रम, रक्षा करें, आगे बढ़ाये ॥5॥

भावार्थ - हम हम विष्णु अर्थात् सर्वव्यापी परमात्मा के पराक्रम हैं। हममें भी वही चेतना है, अतः वही क्षमता, सामर्थ्य भी है। हमें भी जीवन में उसी प्रकार पराक्रम करना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - विष्णोः (विष्ण-विष् -विविष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना, व्यापना, फैलना, प्रसृत होना)। क्रमो (क्रम् = चलना, निर्भयता से चलना, रक्षा करना, बढ़ना)। असि (अस् - होना)। सपत्नहा (सप् = पूर्ण ज्ञान होना, पत् = ऐश्वर्य होना, निम्नगति करना, गिरना, हन - मार डालना, प्राप्त करना)। गायत्रम् (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। छन्द (छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। आ (उपसर्ग)। रोह (रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। पृथिवीम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अनु (उपसर्ग)। वि (उपसर्ग)। क्रमस्व (क्रम् = चलना, निर्भयता से चलना, रक्षा करना, बढ़ना)। अभिमातिहा (अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, मा = मान करना, मापना, हन - मार डालना, प्राप्त करना, जाना)। त्रैष्टुभम् (त्रै - संरक्षण करना, पोषण करना, बचाना, त्रि = तीन, संख्या, सर्वनाम, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। अरातीयतो (अ - नहीं, रा = देना, रम् - रमना, रमण करना, रम जाना, रत होना, क्रीडा करना, प्रिय होना, मूल्यवान होना)। हन्ता (हन् - मारना)। जागतम् (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। दिवम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। शत्रूयतो (शी-शद्-शत् - जीर्ण होना, गिरना, गिराना)। हन्ता (हन् - मारना)। आनुष्टुभम् (अनु - पीछे, स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। दिशो (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)॥5॥

(125) सूक्त 3

519. अक्रन्दत् अग्निः स्तनयन् इव द्यौः, क्षामा रेरिहत् वीरुधः समञ्जन्,
सद्यो जज्ञानो वि हि ईम् इद्धो अख्यत्, आ रोदसी भानुना भाति अन्तः ॥6॥

मन्त्रार्थ - अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। स्तनयन् = शब्द करता हुआ। इव = समान, की भाँति, के समान। द्यौः = अग्रगामी, प्रकाश। अक्रन्दत् = क्रन्दन किया। क्षामा = क्षमा। वीरुधः = वीर के लिए। समञ्जन् = सम्यक् प्रकाशित। रेरिहत् = स्तुति की, प्रशंसा की, दान किया। सद्यो = शीघ्र, तत्काल, तत्क्षण, ताजा, अभी का, गम्य । जज्ञानो = उत्पन्न। वि = विशेष, विना, विलोम । हि = ही, निश्चय । ईम् = ही, समान, इस प्रकार। इद्धो = प्रकाशमान, गति, ज्ञान, प्रकाश को धारण करने वाला। अख्यत् = प्रसिद्ध किया, प्रख्यात किया, प्रकाशित किया। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण

। रोदसी = प्रकाश देने वाले, वाणी, गति की सामर्थ्य से युक्त, करुणाशील, रोने वाले, रुलाने वाले । भानुना = भानु द्वारा, प्रकाशमान द्वारा ।अन्तः = बीच में, भीतर। भाति = प्रकाशित होता है ।।6।।

भावार्थ - अग्नि स्वरूप परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि में व्यापक है। स्तुति, उपासना द्वारा हम उसका प्रकाश अपने भीतर हृदय में अनुभव कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अक्रन्दत् (अ = नहीं, उपसर्ग, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, क्रन्द - पुकारना, जोर से बुलाना, रोना, घबराना, दुःखी होना, निरन्तर होना, बुलाना, पुकारना)।अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। स्तनयन् (स्तन - मेघ की गर्जना होना, शब्द करना, ध्वनि करना)। इव (अव्यय)। द्यौः (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना)। क्षामा (क्षम् = क्षमा करना, सहन करना, समर्थ होना, रोकना)। रेरिहत् (रिह - कहना, स्तुति करना, प्रशंसा करना, दान करना, युद्ध करना, निन्दा करना, हिंसा करना)। वीरुधः (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। समञ्जन् (सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, अञ्ज - स्वच्छ करना, प्रकाशित होना)। सद्यो (सद् - जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, सूखना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। जज्ञानो (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना, ज्ञा - जानना)। वि (उपसर्ग)। हि (अव्यय)। ईम् (अव्यय)। इद्धो (इ - जाना, जानना, पाना, इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। अख्यत् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, ख्या - प्रसिद्ध करना, प्रख्यात करना)। आ (उपसर्ग)। रोदसी (रुद् - रोना, रुलाना, करुण होना, रु - शब्द करना, जाना, चलना, जानना, पाना)। भानुना (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। भाति (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)।6।।

520. अग्ने अभि आवर्तिन् अभि, मा निवर्त्तस्व आयुषा, वर्चसा प्रजया धनेन।सन्या मेधया रय्या पोषेण।7।।

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि। अभि = अभिमुख। आवर्तिन् = वर्तमान। अभि = अभिमुख। मा = मुझको। आयुषा = आयु से, जीवन द्वारा, जीवन से। वर्चसा = प्रकाश द्वारा, तेज द्वारा। प्रजया = प्रजा के साथ, प्रजा द्वारा। धनेन = धन द्वारा। सन्या = दान, सेवा। मेधया = मेधा से। रय्या = विद्या, ज्ञान। पोषेण = पुष्टि द्वारा, पुष्टिकर्ता द्वारा। निवर्त्तस्व = निरन्तर प्रवृत्त करे।। 7।।

भावार्थ - अग्नि स्वरूप परमात्मा हमें निरन्तर सुख - साधन प्रदान करता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अभि (उपसर्ग)। आवर्तिन् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, वृत् = होना, रहना, व्यवहार करना, वर्तना, वर्तमान होना, सेवा करना, वरण करना, आवरण करना, हिंसा करना, चमकना, बोलना)। मा (सर्वनाम)। नि (अव्यय)। वर्त्तस्व (वृत् - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, होना, वरण करना, स्वीकार करना, हिंसा करना, सेवा करना, चमकना, बोलना)। आयुषा (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। वर्चसा (वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। प्रजया (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)। धनेन (धन् - शब्द करना, गति करना, चलना, जाना, जानना, पाना, उत्पन्न करना, फलना, बौर लगना)। सन्या (सन् - दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना, सेवा करना, चाकरी करना)। मेधया (मेधा - शीघ्र समझना, मेध् - समझना, जानना, सङ्गति करना, मेल करना, हिंसा करना)। रय्या (रय्-रि, री - चलना, जाना, जानना, पाना, री-रै - शब्द करना)। पोषेण (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)।। 7।।

521. अग्ने अङ्गिरः शतम् ते सन्तु, आवृतः सहस्रम् ते उपावृतः।
अधा पोषस्य पोषेण पुनः, नो नष्टम् आ कृधि पुनः, नो रयिम् आ कृधि कुरु।।8।।

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि ।अङ्गिरः = विद्वान्, गतिशील, पाने वाला । शतम् = सौ । ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। सन्तु = हों ।आवृतः = आवृत । सहस्रम् = हजार । ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए । उपावृतः = समीप आवृत । अधा = अथ, अब, इसके अनन्तर । पोषस्य = पोषण करने वाले का । पोषेण = पुष्टि द्वारा, पुष्टिकर्ता द्वारा । पुनः = फिर। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो । नष्टम् = नष्ट को । आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण । कृधि = करो

। पुनः = फिर । नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो । रयिम् = विद्या, ज्ञान । आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण । कृधि = करो । कुरु = करो। ।8।।

भावार्थ - परमात्मा का दिव्य पोषण अनन्त है। हम समाज का पोषण करते हैं तो उस पोषण द्वारा हमें परमात्मा का दिव्य संरक्षण पोषण प्राप्त होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अङ्गिरः (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। शतम् (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। सन्तु (अस् - होना)। आवृतः (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, भलीभाँति, वृत् = रहना, होना, वर्ताव करना, वरण करना, चमकना, बोलना)। सहस्रम् = हजार (संख्या)। उपावृतः (उप - समीप, आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, वृ = वरण करना)। अधा = अथ, अब, इसके अनन्तर (अव्यय)। पोषस्य (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। पोषेण (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। पुनः (अव्यय)। नो (सर्वनाम)। नष्टम् (नश् - नष्ट होना, अदृश्य होना)। आ (उपसर्ग)। कृधि (कृ = करना)। रयिम् (रय्-रि, री - चलना, जाना, जानना, पाना, री-रै - शब्द करना)। कुरु (कृ- करना)।। 8।।

522. पुनः ऊर्जा नि वर्त्तस्व, पुनः अग्न इषा आयुषा। पुनः नः पाहि अंहसः ।। 9 ।।

मन्त्रार्थ - पुनः = फिर । ऊर्जा = ऊर्जा, बल, प्राण, चेतना। नि = निश्चित, निरन्तर । वर्त्तस्व = वर्ताव करे, प्रवृत्त करे । पुनः = फिर । अग्न = हे अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् । इषा = इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि । आयुषा = आयु से, जीवन द्वारा, जीवन से । पुनः = फिर । नः = हमको, हमारे लिए, हमारा । पाहि = पालन करो, रक्षा करो । अंहसः = प्रकाशमान।। 9।।

भावार्थ - अग्नि स्वरूप परमात्मा से पुनः-पुनः ऊर्जा, आयु प्रदान करने तथा रक्षण-पालन की कामना की गयी है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - पुनः (अव्यय)। ऊर्जा (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। नि (अव्यय)। वर्त्तस्व (वृत् - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, होना, वरण करना, स्वीकार करना, हिंसा करना, सेवा करना, चमकना, बोलना)। अग्न (अग् = जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, गति करना, घूमना, टेढ़ा जाना, आगे जाना, लेना, ग्रहण करना)। इषा (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। आयुषा (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। नः (सर्वनाम)। पाहि (पा - पालन, रक्षण करना)। अंहसः (अंह् = प्रकाशित होना, चमकना, शब्द करना, कुटिल गति करना, मथना)।9।।

523. सह रय्या नि वर्त्तस्व, अग्ने पिन्वस्व धारया। विश्व-प्स्न्या विश्वतः परि ।। 10 ।।

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। रय्या = विद्या, ज्ञान, रयि द्वारा। सह = साथ, सहित। नि = निश्चित, निरन्तर। वर्त्तस्व = वर्ताव करे, प्रवृत्त करे। विश्व-प्स्न्या = सभी के भोक्ता, संरक्षक द्वारा। विश्वतः = सबसे, विश्व से। परि = सभी तरफ। धारया = धारा द्वारा। पिन्वस्व = सेवा करो, गति, ज्ञान, प्राप्त करो **।। 10 ।।**

भावार्थ - हे अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्, विद्या, ज्ञान, रयि के साथ निश्चित, निरन्तर वर्ताव करे, प्रवृत्त करे। सभी के भोक्ता, संरक्षक द्वारा सभी ओर धारा द्वारा सेवा करो, गति, ज्ञान, प्राप्त करो **।। 10 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सह (सर्वनाम)। रय्या (रय्-रि, री - चलना, जाना, जानना, पाना, री-रै - शब्द करना)। नि (अव्यय)। वर्त्तस्व (वृत् - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, होना, वरण करना, स्वीकार करना, हिंसा करना, सेवा करना, चमकना, बोलना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पिन्वस्व (पि = गति करना, जाना, जानना, पाना, पिन्व = सेवा करना, सेचन करना, प्रोक्षण करना, पिण् - शब्द करना)। धारया (धाः = पोषण करना, रक्षण करना, देना, दान करना, धार बाँधना, धारा होना, धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना, धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)। विश्व-प्स्न्या

(विश्व - सभी, सब, प्सा - भक्षण करना, संरक्षण करना)। विश्वतः (सर्वनाम)। परि (उपसर्ग)।। 10 ।।

(126) सूक्त 4

524. आ त्वा अहार्षम् अन्तः अभूः, ध्रुवः तिष्ठ अविचाचलिः।
विशः त्वा सर्वा वाञ्छन्तु, मा त्वत् राष्ट्रम् अधि भ्रशत्।। 11 ।।

मन्त्रार्थ- आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। अहार्षम् = व्यापक, सर्वव्यापी ऋषित्व या अन्तर्दष्टि को। अन्तः = बीच में, भीतर । अभूः = हो गया, हुआ । ध्रुवः = ध्रुव, अचल, स्थिर, अविचल गतिशील । तिष्ठ = उठो, ठहरो, खड़े हो। अविचाचलिः = अविचल, अविचलित। विशः = विश, प्रतिष्ठित, प्रवेशी। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। सर्वा = सभी। वाञ्छन्तु = वाञ्छा करें, इच्छा करें, चाहें। मा = नहीं, मत। त्वत् = तुमसे। राष्ट्रम् = राष्ट्र को। अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार। भ्रशत् = पतित हुए।। 11।।

भावार्थ - अहार्षम् का अर्थ अह-ऋषम् पदच्छेद करने पर व्यापक, सर्वव्यापी ऋषित्व या अन्तर्दष्टि हो सकता है। अह् धातु का अर्थ फैलना, विस्तृत होना, व्यापना तथा ऋष् धातु का अर्थ अन्तर्गमन करना, अन्तर्दृष्टि होना, जाना, पाना, जानना होता है। इसमें हृ धातु मानने पर इसका अर्थ हरण किया, ले गये, प्राप्त किया होगा। दोनो अर्थ स्वीकार्य हैं। उस परमात्मा को हम अपने अन्तस्थल में हृदय में धारण करें। उसे अविचल प्रतिष्ठित करें। सब उसकी ही कामना करें। राष्ट्र कभी भ्रष्ट न हो।।11।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ (उपसर्ग)। त्वा (सर्वनाम)। अहार्षम् (अह-ऋषम्, अह - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, ऋष - अन्तर्गमन करना, अन्तर्दृष्टि होना, जाना, पाना, जानना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। अभूः (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। ध्रुवः (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। तिष्ठ (तिष्ठ् = ठहरना, खड़ा होना)। अविचाचलिः (अ - नहीं, वि - विशेष, चल - चलना, जाना, जानना, पाना)। विशः (विश - भीतर जाना, चारों ओर फैलना)। सर्वा (सर्वनाम)। वाञ्छन्तु (वाञ्छ् = इच्छा करना, चाहना)। मा (अव्यय)। त्वत् (सर्वनाम)। राष्ट्रम् (रास = शब्द करना। राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। अधि (उपसर्ग)। भ्रशत् (भृश्-भ्रश - पतित होना, गिरना, भ्रष्ट होना)।। 11।।

525. उत् उत्तमम् वरुण पाशम् अस्मत्, अव अधमम् वि मध्यमम् श्रथाय।
अथा वयम् आदित्य व्रते तव, अनागसो अदितये स्याम।। 12 ।।

मन्त्रार्थ - उत् = उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। उत्तमम् = उत्तम, श्रेष्ठ-इच्छा, शुभ-इच्छा। वरुण = हे वरुण, वरणीय, वरण करने वाला। पाशम् = पाश को, दिखाने वालें को, बन्धन को । अस्मत् = हमसे। अव = नीचे, दूर। अधमम् = अधम को, न फूँकने वाले को । वि = विशेष, विना, विलोम। मध्यमम् = मध्य को । श्रथाय = श्रथ के लिए । अथा = अथ । वयम् = हम, हम सब, हम लोग। आदित्य = आदित्य, अदिति से उत्पन्न, अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न । व्रते = वरण करने के लिए, व्रत के लिए, व्रत में । तव = तुम्हारा। अनागसो = अपराध रहित, निष्पाप, निर्दोष । अदितये = अपनाने योग्य, अक्षय, अविनाशी के लिए। स्याम = हों ।। 12 ।।

भावार्थ - हम परमात्मा के व्रत-अनुशासन में रहें तो सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो सकते हैं **।। 12 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उत् (उपसर्ग)। उत्तमम् (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। वरुण (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। पाशम् (पश् - देखना, पश - बांधना, बेड़ी डालना, गांठ बांधना, फांस लगाना, जाना)। अस्मत् (सर्वनाम)। अव (अव = नीचे, दूर, प्राप्त (अव्यय), अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। अधमम् (अ - नहीं, अधः = नीचे, अव्यय। धम्-ध्मा - फूँकना, फूँक कर आग जलाना, फूँककर वंशी आदि वाद्य बजाना)। वि (उपसर्ग)। मध्यमम् (सर्वनाम)। श्रथाय (श्रथ – प्रयत्न करना, जाना, मुक्त करना, छोड़ना, मारना, पीड़ा देना, बन्धन करना, बांधना, जकड़ना, निर्बल होना, शक्तिहीन होना)। अथा

(अव्यय)। वयम् (सर्वनाम)। आदित्य (अ - नहीं, अद् - खाना, नष्ट करना, दी = क्षय होना, नष्ट होना)। व्रते (वृत् = रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ = नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)। तव = तुम्हारा (सर्वनाम)। अनागसो (अन्- नही, अग- कुटिल चाल चलना, अनुचित आचरण करना, जाना, घूमना, टेढ़ा जाना, टेढ़े रास्ते से जाना, लेना, ग्रहण करना)। अदितये (अ - नहीं, अद् = खाना, दी = नष्ट होना)। स्याम (अस् - होना) **॥ 12 ॥**

526. अग्रे बृहन् उषसाम् ऊर्ध्वो अस्थात्, निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषा आ अगात्।
अग्निः भानुना रुशता स्वङ्गः, आ जातो विश्वा सद्मानि अप्राः ॥ 13 ॥

मन्त्रार्थ- अग्रे = अग्र, आगे, पहले। बृहन् = महान्, बड़ा, विराट, बृहत् द्वारा। उषसाम् = प्रभात, हिंसा को। ऊर्ध्वो = उच्च, ऊपर, ऊर्ध्व। अस्थात् = स्थित हैं। निर्जगन्वान् = निर्जगन्व के लिए। तमसो = इच्छा से, दुःख से, अन्धकार से। ज्योतिषा = ज्योति द्वारा, प्रकाश द्वारा, ज्योति से। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। अगात् = घूमा, भ्रमण किया, विद्यमान, प्राप्त अग्निः= अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। भानुना = भानु द्वारा, प्रकाशमान द्वारा। रुशता = प्रकाशवान। स्वङ्ग = स्वङ्ग। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। जातो = उत्पन्न हुआ। विश्वा = विश्व, सभी, सब। सद्मानि = स्थान में। अप्राः = पूर्ण किया। **॥ 13 ॥**

भावार्थ - अग्नि स्वरूप परमात्मा ने ही उषा अर्थात् प्रभात द्वारा अन्धकार को दूर कर प्रकाश का संस्थापन किया है। सूर्य द्वारा वह हमारे लिए प्रकाश प्रदान करने वाला है। समाज में अग्नि अर्थात् ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् भी इसी प्रकार अविद्या, अन्याय, अभाव का अन्धकार को दूर कर समाज को समुन्नत बनायें, यही प्रेरणा है **॥ 13 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्रे (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। बृहन् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। उषसाम् (उषस् = प्रभात होना, उष - हिंसा करना, जलना, जलाना, ताप देना)। ऊर्ध्वो (सर्वनाम)। अस्थात् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना, स्था- स्थित होना, ठहरना)। निर्जगन्वान् (निः - विना, बाहर, निश्चित, ऋ - गति, ज्ञान, प्राप्ति होना, हिंसा करना, जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। तमसो (तम - इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना, अन्धकार होना)। ज्योतिषा (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। आ (उपसर्ग)। अगात् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अग् = जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, गति करना, घूमना, कुटिल गति करना, टेढ़ा जाना, लेना, ग्रहण करना, गम् = जाना, जानना, पाना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। भानुना (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। रुशता (रुश् - हिंसा करना, रुंश - चमकना, प्रकाशित होना, बोलना)। स्वङ्ग (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। जातो (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। विश्वा (सर्वनाम)। सद्मानि (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। अप्राः (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, प्रा = पूर्ण होना, पूर्ण करना व्याप्त होना) **॥ 13 ॥**

527. हंसः शुचिषत् वसुः अन्तरिक्षसत्, होता वेदिषत् अतिथिः दुरोणसत्।
नृषत् वरसत् ऋतसत् व्योमसत्, अब्जा गोजा ऋतजा, अद्रिजा ऋतम् बृहत् ॥ 14 ॥

मन्त्रार्थ - हंसः = प्रसन्नता दायक। शुचिषत् = पवित्र को। वसुः = वसु, स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले। अन्तरिक्षसत् = अन्तरिक्ष या आकाश। होता = आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाले। वेदिषत् = वेदयुक्त हुए, ज्ञान प्राप्त किया, जाना। अतिथिः = अतिथि। दुरोणसत् = दूर ले गया, ज्ञान, गमन, प्रप्ति हुआ। नृषत् = नृषत्। वरसत् = वरणीय। ऋतसत् = सार्वभौम नियम, सत्य, ऋत। व्योमसत् = व्योमसद्, व्योम में स्थित। अब्जा = पालन-रक्षण में उत्पन्न। गोजा = शब्द करने वाला, उपदेशक, कष्ट । ऋतजा = ऋत से उत्पन्न । अद्रिजा = अद्रि से उत्पन्न । ऋतम् = सार्वभौम नियम, सत्य, ऋत। बृहत् = महान्, बड़ा, विराट, बृहत् **॥ 14 ॥**

भावार्थ - हंस **अर्थात्** प्रसन्नता दायक परमात्मा ही हमको वास आदि प्रदान करता है तथा दोष-दुर्गुणों को दूर कर पवित्र करता है।**॥ 14 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - हंसः (हन् - मारना, हंस = हंसना, हंसाना, प्रसन्न करना, प्रसन्न रहना, प्रसन्न होना)। शुचिषत् (शुच्-शुक्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना, सद् - बैठना, जाना, स्थित होना)। वसुः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। अन्तरिक्षसत् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। होता (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। वेदिषत् (विद् = जानना, समझना, विद्यमान होना)। अतिथिः (अत् - सतत गमन करना)। दुरोणसत् (दुः = बुरा, अनुचित, कठिन, ओण् - दूर ले जाना, द्रू-द्रूण - गति, ज्ञान, प्राप्ति करना, हिंसा करना)। नृषत् (नृ - ले जाना, सद् - बैठना, जाना, स्थित होना)। वरसत् (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना सद् - बैठना, जाना, स्थित होना)। ऋतसत् (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना, सद् - बैठना, जाना, स्थित होना)। व्योमसत् (वि - विशेष, उ - शब्द करना, रक्षा करना, सुखाना, ऊ - शब्द करना, विश्वास करना, सद् - बैठना, जाना, स्थित होना)। अब्जा (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना)। गोजा (गुज् - शब्द करना, अस्पष्ट बोलना, चुराना, गोज् - कष्ट होना)। ऋतजा (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। अद्रिजा (दृ - हिंसा करना, आदर करना, सत्कार करना, अद् - खाना, ग्रहण करना, आत्मसात् करना, नष्ट करना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। ऋतम् (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)॥ 14 ॥

528. सीद त्वम् मातुः अस्या उपस्थे, विश्वानि अग्ने वयुनानि विद्वान्।
मा एनाम् तपसा मा अर्चिषा, अभि शोचीः अन्तः अस्याम्, शुक्रज्योतिः वि भाहि॥ 15 ॥

मन्त्रार्थ - सीद = बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों। त्वम् = तुम। मातुः = माता का। अस्या = इसका । उपस्थे = उपस्थ में, सनिकट, समीप स्थित । विश्वानि = सभी । अग्ने = हे अग्नि । वयुनानि = रचनाशील, ज्ञानमार्गी, वय या रचना करने वाले । विद्वान् = विद्वान्, जानने वाला, ज्ञानी । मा = नहीं, मुझको । एनाम् = प्रकाशित करने वाले को । तपसा = तप द्वारा । मा = नहीं, मुझको । अर्चिषा = अर्चि, पूजा, सेवा, मान द्वारा । अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा । शोचीः = शोचि । अन्तः = बीच में, भीतर । अस्याम् = इसमें । शुक्रज्योतिः = शुक्र, विद्वान्, शुद्ध, पवित्र, पावन, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी । वि = विशेष, विना, विलोम । भाहि = प्रकाश करो, प्रकाशित हो **॥ 15 ॥**

भावार्थ - विद्वान् माता के उपस्थ में संचरण करें, प्रतिष्ठित हों। परमात्मा ही हमको जन्म देने वाला माता-पिता है। वेद को विद्या का पोषण देने से माता कहते हैं। वैदिक अनुशासन में रहकर उपासना करते हुए परमात्मा की समीपता का अनुभव करना चाहिए **॥ 15 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। त्वम् (सर्वनाम)। मातुः (मा = मान करना, मापना)। अस्या (सर्वनाम)। उपस्थे (उप = समीप, स्थ = स्थित)। विश्वानि (सर्वनाम)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। वयुनानि (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना)। विद्वान् (विद - शरीर की सुध रखना, समझना, जानना, समझा के कहना, रहना, वास करना, वसना, स्थिर रहना, विद्यमान होना, विचार करना, जीवन होना)। मा (सर्वनाम)। एनाम् (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, इन-एन - प्रकाशित करना, मिश्रण करना, विभाजन करना)। तपसा (तप - ऐश्वर्य होना, तपना, दाह होना, तप करना, तप्त होना, तप्त करना, जलना, जलाना, तृषा होना)। अर्चिषा (अर्च - पूजा करना, मान करना, सेवा करना)। अभि (उपसर्ग)। शोचीः (शुच् = शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना, दुःख मानना, शोक करना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। अस्याम् (सर्वनाम)। शुक्रज्योतिः (शुक्-शुच्-

शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना, ज्युत् - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। वि (उपसर्ग)। भाहि (भास् - प्रकाशित होना, चमकना)॥ 15॥

(127) सूक्त 5

529. अन्तः अग्ने रुचा त्वम्, उखायाः सदने स्वे। तस्याः त्वम् हरसा तपन्, जातवेदः शिवो भव॥16॥

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि। त्वम् = तुम। स्वे = अपने। अन्तः = भीतर। रुचा = रुचि के साथ। उखायाः = प्रगति के। सदने = सदन में, स्थान में। तस्याः = उसका। हरसा = हर द्वारा। तपन् = तपते हुए, तप करते हुए। जातवेदः = जातवेद, वेद को जानने वाले, वेद को उत्पन्न करने वाले। शिवो = कल्याणकारी। भव = हो॥ 16॥

भावार्थ - वेद में अग्नि शब्द मुख्यतः परमात्मा के लिए आता है। परन्तु इससे उसके उपासक, विद्वान्, तेजस्वी देवजनों का भी बोध होता है। इस प्रकार वेदमन्त्र के एक से अधिक अर्थ स्वाभाविक रूप से होते हैं। इस मन्त्र में कहा गया है कि हे अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा तेजस्वी उपासक, तुम अपने भीतर रुचि के साथ अपने प्रगति के सदन में, स्थान में हर द्वारा उसका तप करते हुए जातवेद अर्थात् वेद को जानने वाले, वेद को उत्पन्न करने वाले, कल्याणकारी हो। परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है। सम्पूर्ण सृष्टि उसके भीतर समाहित है। वह अपने भीतर के इस सृष्टि को प्रागतिशील बनाता है, ताप, ऊर्जा प्रदान करता है। वह हमारे लिए वेद को उत्पन्न करने वाला कल्याणकारी है। हमें भी यथाशक्ति स्-ामाज में यह प्रयास करना चाहिए। यही सन्देश है **॥ 16 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। रुचा (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। त्वम् (सर्वनाम)। उखायाः (उख् - चलना, जाना, जलना)। सदने (सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। स्वे (सर्वनाम)। तस्याः (सर्वनाम)। हरसा (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। तपन् (तप - ऐश्वर्य होना, तपना, दाह होना, तप करना, तप्त होना, तप्त करना, जलना, जलाना, तृषा होना)। जातवेदः (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जा-ज्ञा - जानना, विद् - जानना)। शिवो (शिव् = कल्याण करना)। भव (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)॥ 16॥

530. शिवो भूत्वा मह्यम् अग्ने, अथो सीद शिवः त्वम्।
शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः, स्वम् योनिम् इह आ असदः॥17॥

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि। मह्यम् = मेरे लिए। शिवो = कल्याणकारी। भूत्वा = होकर। अथो = इसके अनन्तर। शिवः = कल्याणकारी। त्वम् = तुम। सीद = संचरण करें, प्रतिष्ठित हों॥ सर्वाः = सभी। दिशः = दिशाओं को। शिवाः = कल्याणकारी। कृत्वा = करके। स्वम् = अपने। योनिम् = योनि को, बन्धन-मिलन को। इह = यहाँ। आ = समन्तात्, सम्यक्। असदः = बैठे, स्थित हुए **॥ 17 ॥**

भावार्थ - वेद में अग्नि शब्द मुख्यतः परमात्मा के लिए आता है। परन्तु इससे उसके उपासक, विद्वान्, तेजस्वी देवजनों का भी बोध होता है। इस प्रकार वेदमन्त्र के एक से अधिक अर्थ स्वाभाविक रूप से होते हैं। इस मन्त्र में कहा गया है कि हे अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा तेजस्वी उपासक, मेरे लिए कल्याणकारी होकर इसके अनन्तर कल्याणकारी स्वरूप में संचरण करें, प्रतिष्ठित हों। सभी दिशाओं को कल्याणकारी करके अपने योनि अर्थात् बन्धन-मिलन को अथवा उस स्थान पर यहाँ समन्तात्, सम्यक् प्रतिष्ठित हों **॥ 17 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - शिवो (शिव् = कल्याण करना)। भूत्वा (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। मह्यम् (सर्वनाम)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अथो (अव्यय)। सीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। त्वम् (सर्वनाम)। शिवाः (शिव् = कल्याण करना)। कृत्वा (कृ - करना)। दिशः (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। सर्वाः (सर्वनाम)। स्वम् (सर्वनाम)। योनिम् (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग

करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। इह (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। असदः (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)॥ 17 ॥

531. दिवः परि प्रथमम् जज्ञे अग्निः, अस्मत् द्वितीयम् परि जातवेदाः।
तृतीयम् अप्सु नृमणा अजस्रम्, इन्धानः एनम् जरते स्वाधीः ॥ 18 ॥

मन्त्रार्थ - दिवः = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय के। परि = परे, सभी ओर, साथ। प्रथमम् = प्रथम, पहले। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। जज्ञे = उत्पन्न हुए। अस्मत् = हमसे । द्वितीयम् = द्वितीय। परि = परे, सभी ओर, साथ। जात-वेदाः = वेद को जानने वाले, वेद को उत्पन्न करने वाले। तृतीयम् = तृतीय। अप्सु = पालन-रक्षण में। नृमणा = नर, ले जाने वाले। अजस्रम् = सतत, निरन्तर। इन्धानः = प्रकाशित होने वाले, प्रकाशित करनें वाले। एनम् = इसको। स्वाधीः = उत्तम धी, उत्तम बुद्धि, उत्तम धारणा। जरते = स्तुति करते हैं, जीर्ण, वृद्ध, परिपक्व होते हैं **॥ 18 ॥**

भावार्थ - दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय के परे, साथ प्रथम, पहले अग्नि अर्थात् ऊर्जा, गतिशीलता, अग्रणी उत्पन्न हुए। इसके पश्चात् जात-वेदाः अर्थात् वेद को जानने वाले, वेद को उत्पन्न करने वाले उत्पन्न हुए। तृतीय स्तर पर पालन-रक्षण में ले जाने वाले अजस्र, सतत, निरन्तर प्रकाशित होने वाले, प्रकाशित करनें वाले उत्तम बुद्धि, उत्तम धारणा वाले स्तुति करते हैं, परिपक्व होते हैं अर्थात् उत्पन्न होते है, स्वरूप धारण करते हैं। यही सृष्टि तथा समाज निर्माण की प्राकृतिक प्रक्रिया है **॥ 18 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - दिवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। परि (उपसर्ग)। प्रथमम् (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना)। जज्ञे (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अस्मत् (सर्वनाम)। द्वितीयम् (द्वि = दो, संख्या)। परि (उपसर्ग)। जात-वेदाः (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जा-ज्ञा - जानना, विद् - जानना)। तृतीयम् (संख्या, सर्वनाम)। अप्सु (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना)। नृमणा (नृ - ले जाना)। अजस्रम् (सर्वनाम, अव्यय)। इन्धान (इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। एनम् (सर्वनाम)। जरते (जृ - वृद्ध होना, जीर्ण होना)। स्वाधीः (सु - उत्तम, आ - समन्तात्, सम्यक्, धी - धी - धारण करना, बुद्धि होना) **॥ 18 ॥**

532. विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि, विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा।
विद्मा ते नाम परमम् गुहा यत्, विद्मा तम् उत्सम् यतः आजगन्थ ॥ 19 ॥

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि। ते = तुम्हारा। त्रेधा = तीन प्रकार से। त्रयाणि = तीन। विद्मा = जानते हैं। ते = तुम्हारा। धाम = धारण करने वाले को। विभृता = विशेष भरण करने वाला। पुरुत्रा = अग्रगामी, अग्रणी। विद्मा = जानते हैं। ते = तुम्हारा। नाम = नाम वाले। परमम् = परम, अत्यन्त, उच्चतम, प्रमुखतम। गुहा = गुह्य, गुहा। यत् = जिसे, जो । विद्मा = जानते हैं। तम् = उसको। उत्सम् = उत्स को। यतः = जिससे। आजगन्थ = आये। विद्मा = जानते हैं **॥ 19 ॥**

भावार्थ - वेद का अर्थ जानना है। यहाँ मानने से अधिक जानना महत्वपूर्ण है। उपासक, साधक, ऋषि कहते हैं कि हे अग्नि स्वरूप परमात्मा, हम आपके स्वरूप को, तत्व को, परम धाम को जानते हैं। हम उस उत्स को, स्रोत को जानते हैं, जिससे यह सृष्टि उत्पन्न होती है **॥ 19 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - विद्मा (विद - शरीर की सुध रखना, समझना, जानना, समझा के कहना, रहना, वास करना, वसना, स्थिर रहना, विद्यमान होना, विचार करना)। ते (सर्वनाम)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। त्रेधा (त्रि = तीन, संख्या, सर्वनाम)। त्रयाणि (संख्या)। धाम (धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)। विभृता (वि - विशेष, भृ - भरण करने वाला)। पुरुत्रा (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। नाम (अव्यय)। परमम् (सर्वनाम)। गुहा (गुह् - आच्छादन करना, छिपाना, ढकना, गति करना, जाना, जानना, हिंसा करना)। यत् (सर्वनाम)। तम् (सर्वनाम)। उत्सम् (सु = उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। यत (सर्वनाम)। आजगन्थ (आ

- सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अज् = जानना, जाना, पहुँचना, स्थापित करना, फेंकना, आ-अज - आना, जग् - जाना, गति करना, लेना, ग्रहण करना, आ-जग् - आना)॥ 19॥

533. समुद्रे त्वा नृमणा अप्सु अन्तः, नृचक्षा ईधे दिवो अग्ने ऊधन्।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसम्, अपाम् उपस्थे महिषा अवर्धन्॥ 20॥

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। त्वा = तुमको। समुद्रे = समुद्र में। नृमणा = नर, ले जाने वाले। अप्सु = पालन-रक्षण में। अन्तः = बीच में, भीतर। नृचक्षा = नरों को देखने वाले। दिवो = दिव्य, ज्योतिर्मय। ऊधन् = वाणी, शब्द, आद्र करने वाले। ईधे = समान रूप से धारण करते हैं॥ महिषाः = महान्, पूजित, सम्मानित। त्वा = तुमको। तृतीये = तृतीय में। रजसि = रजस् में। तस्थिवांसम् = प्रस्थापित को। अपाम् = पालकों के। उपस्थे = उपस्थ में, सनिकट, समीप स्थित। अवर्धन् = बढ़ाया **॥ 20॥**

भावार्थ - हे अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्, तुमको समुद्र में ले जाने वाले पालन-रक्षण में बीच में, भीतर नरों को देखने वाल दिव्य, ज्योतिर्मय वाणी, शब्द, आद्र करने वाले समान रूप से धारण करते हैं॥ महान्, पूजित, सम्मानित तृतीय रजस् में प्रस्थापित तुमको पालकों के उपस्थ में अर्थात् सनिकट, समीप बढ़ाया **॥ 20॥**

विशेष - अग्नि शब्द का अर्थ ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् आदि होता है। वेद में इसी अर्थ में यह शब्द परमात्मा के लिए सर्वाधिक प्रयुक्त है। शब्दार्थ के अनुसार समाज के ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् भी अभिप्रेत हैं। इसी प्रकार वेदमन्त्रों के अनेक अर्थ होते हैं **॥ 20॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - समुद्रे (सम् - सम्यक्, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना)। त्वा (सर्वनाम)। नृमणा (नृ - ले जाना)। अप्सु (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। नृचक्षा (नृ- ले जाना, चक्ष - देखना)। ईधे (ई = इस प्रकार, समान, वैदिक उपसर्ग, धि - धारण करना)। दिवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। अग्ने (अग् = जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, गति करना, घूमना, टेढ़ा जाना, आगे जाना, लेना, ग्रहण करना)। ऊधन् (ऊ - शब्द करना, विश्वास करना, ऊ-अव् - रक्षा करना, उदि - उन्द् = भिगोना, उन्द् - गीला करना, आद्र होना, कष्ट होना)। तृतीये (संख्या, सर्वनाम)। रजसि (रज - रज होना, धूल होना, सूक्ष्म होना, रंग देना, रंगना, लीन होना)। तस्थिवांसम् (तस - स्थापित होना, स्थापना करना, फेंकना, उड़ा देना, भेजना, खोदना, कुम्हलाना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना)। अपाम् (अप - पालन करना)। उपस्थे (उप = समीप, स्थ = स्थित)। महिषा (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। अवर्धन् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, वृध् - बढ़ना, बढ़ाना)॥ 20॥

(128) सूक्त 6

534. अक्रन्दत् अग्निः स्तनयन् इव द्यौः, क्षामा रेरिहत् वीरुधः समञ्जन्।
सद्यो जज्ञानो वि हि ईम् इद्धो अख्यत्, आ रोदसी भानुना भाति अन्तः॥ 21॥

मन्त्रार्थ - अग्निः = अग्नि ने, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् ने। स्तनयन् = शब्द करते हुए, गर्जन करते हुए। इव = के समान। द्यौः = प्रकाशवान्, अग्रगामी को। **अक्रन्दत्** = पुकारा॥ क्षामा = क्षमा, सामर्थ्य युक्त। वीरुधः = पराक्रमी। समञ्जन् = सम्यक् प्रकाशित करते हुए। रेरिहत् = स्तुति, दान करते हैं॥ सद्यो = शीघ्र, तत्काल, तत्क्षण, ताजा, अभी का, गम्य। जज्ञानो = उत्पन्न किया, जाना। वि = विशेष, विना, विलोम। हि = ही, निश्चय। ईम् = के समान, इस प्रकार। इद्धो = गति, ज्ञान, प्रकाश को धारण करने वाला। अख्यत् = प्रसिद्ध किया॥ आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। रोदसी = प्रकाश देने वाले, वाणी, गति की सामर्थ्य से युक्त, करुणाशील, रोने वाले, रुलाने वाले। भानुना = भानु द्वारा, प्रकाशमान द्वारा। अन्तः = बीच में, भीतर। भाति = प्रकाशित होता है **॥ 21॥**

भावार्थ - अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा तेजस्वी उपासक ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् ने शब्द करते हुए, गर्जन करते

हुए के समान प्रकाशवान्, अग्रगामी को पुकारा।। क्षामा = क्षमा, सामर्थ्य युक्त पराक्रमी सम्यक् प्रकाशित करते हुए स्तुति, दान करते हैं।। सद्यः उत्पन्न गति, ज्ञान, प्रकाश को धारण करने वाले ने प्रसिद्ध किया। समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण प्रकाश देने वाला, वाणी, गति की सामर्थ्य से युक्त, करुणाशील परमात्मा ही भानु अर्थात् प्रकाशमान होकर हामारे भीतर प्रकाशित होता है **॥ 21 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अक्रन्दत् = पुकारा, क्रन्दन किया (अ = नहीं, उपसर्ग, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, क्रन्द - पुकारना, जोर से बुलाना, रोना, घबराना, दुःखी होना, निरन्तर होना)। अग्नि = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। स्तनयन् = शब्द करते हुए, गर्जन करते हुए (स्तन - मेघ की गर्जना होना, शब्द करना, ध्वनि करना)। द्यौः = प्रकाशवान्, विद्वान्, द्यौ, प्रकाशयुक्त, अग्रगामी (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना, प्रकाश होना, जानना)। क्षामा = क्षमा, सामर्थ्य युक्त (क्षम् = क्षमा करना, सहन करना, समर्थ होना, रोकना)। रेरिहत् = स्तुति, दान करते हैं (रिह - कहना, प्रशंसा करना, दान करना, युद्ध करना, निन्दा करना, हिंसा करना)। वीरुधः = पराक्रमी (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। **समञ्जन्** = सम्यक् प्रकाशित होते हुए, प्रकाशित करते हुए (सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, अंज -स्वच्छ करना, प्रकाशित करना, प्रकाशित होना)। सद्यो = शीघ्र, तत्काल, तत्क्षण, अभी का, गम्य (सद्यो = शीघ्र, तत्काल, तत्क्षण, अभी का (सर्वनाम), सद् - जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, सूखना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। जज्ञानो = उत्पन्न किया, जाना (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना, ज्ञा - जानना)। वि = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग)। हि = ही, निश्चय (अव्यय)। ईम् = समान, इस प्रकार (अव्यय)। इद्धो = प्राप्त को धारण करने वाला, गति, ज्ञान, प्रकाश को धारण करने वाला (इ - जाना, जानना, पाना, इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। अख्यत् = प्रसिद्ध किया, अथवा प्रख्यात करते हुए, प्रकाशित करते हुए (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, ख्या - प्रसिद्ध करना, प्रख्यात करना)। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण (उपसर्ग)। रोदसी = प्रकाश देने वाले, वाणी, गति की सामर्थ्य से युक्त, करुणाशील, रोने वाले, रुलाने वाले (रुद् - रोना, रुलाना, करुण होना, रु - शब्द करना, जाना, चलना, जानना, पाना)। भानुना = भानु द्वारा, प्रकाशमान द्वारा (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। भाति = प्रकाशित होता है (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। अन्तः = बीच में, भीतर (उपसर्ग, सर्वनाम)।। 21।।

535. श्रीणाम् उदारो धरुणो रयीणाम्, मनीषाणाम् प्रार्पणः सोमगोपाः।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा, वि भाति अग्रे उषसाम् इधानः ॥ 22 ॥

मन्त्रार्थ - श्रीणाम् = सेवाभावियों में, आश्रयदाताओं में। उदारो = उदार, ऊर्ध्वगामी। रयीणाम् = विद्या, प्रगतियों का। धरुणो = धारणकर्ता, धारण करने वाला। मनीषाणाम् = मनीषियों, विचारशीलों का। प्रार्पणः = प्रभूत अर्थात् बहुत अधिक अर्पण करनें वाले। सोमगोपाः = सोमरक्षक। वसुः = वसु, स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले। सूनुः = ऐश्वर्यवान्। सहसो = सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ठ। अप्सु = पालन-रक्षण में। राजा = राजा, प्रकाशमान। उषसाम् = प्रभात का। अग्रे = अग्र, आगे। इधानः = गति, ज्ञान, प्रकाश करते हुए। वि = विशेष। भाति = प्रकाशित होता है **॥ 22 ॥**

भावार्थ - सेवाभावियों में, आश्रयदाताओं में उदार, ऊर्ध्वगामी, विद्या, प्रगतियों का धारणकर्ता, धारण करने वाला, मनीषियों, विचारशीलों का प्रभूत अर्थात् बहुत अधिक अर्पण करनें वाले, सोमरक्षक, वसु अर्थात् स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले ऐश्वर्यवान्, सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ठ, पालन-रक्षण में, राजा, प्रकाशमान, प्रभात के आगे गति, ज्ञान, प्रकाश करते हुए विशेष प्रकाशित होता है **॥ 22 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - श्रीणाम् (श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना)। उदारो (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, ऋ - जाना, चलना, जानना, पाना, उद् = उत्कृष्ट होना, उच्च होना, उदार होना, उन्द् - गीला करना, आद्र होना, कष्ट होना)। धरुणो (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। रयीणाम् (रय्-रि, री - चलना, जाना, जानना, पाना, री-रै - शब्द करना)। मनीषाणाम् (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। प्रार्पणः (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अर्प् = अर्पण करना)। सोमगोपाः (सु = उत्पन्न

होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना, गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना, गुप् = रक्षा करना, चमकना, बोलना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। वसुः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। सूनुः (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना)। सहसो (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ठ होना)। अप्सु (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना)। राजा (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। वि (उपसर्ग)। भाति (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। अग्र (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। उषसाम् (उषस् = प्रभात होना, उष - हिंसा करना, जलना, जलाना, ताप देना)। इधानः (इ - जाना, जानना, पाना, इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)॥ 22॥

536. विश्वस्य केतुः भुवनस्य गर्भः, आ रोदसी अपृणात् जायमानः।
वीडुम् चित् अद्रिम् अभिनत् परायन्, जना यत् अग्निम् अयजन्त पञ्च॥23॥

मन्त्रार्थ- विश्वस्य = विश्व का, सभी का। केतुः = ज्ञानी, निवास, परामर्श दाता। भुवनस्य = भुवन का, होने वाले का, वर्तमान का। गर्भः = गर्भ। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। रोदसी = प्रकाश देने वाले, वाणी, गति की सामर्थ्य से युक्त, करुणाशील, रोने वाले, रुलाने वाले। जायमानः = उत्पन्न करने वाले। अपृणात् = पूर्ण किया, भरा। वीडुम् = वीडुम् = वीडु को, दृढ़ को। चित् = भी, ही। अद्रिम् = अद्रि, अविदारणीय, अहिंसनीय, भोजन, खाने, ग्रहण करने वाले को। अभिनत् = सर्वथा, नत, विनयी, विनम्र। **परायन्** = प्राप्त करता हुआ। पञ्च = पाँच। जना = जन, लोग, उत्पन्न हुए, उत्पन्न करने वाले। यत् = जिसे, जो। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। अयजन्त = यजन किया **॥ 23 ॥**

भावार्थ - विश्व का केतुः अर्थात् ज्ञानी, निवास, परामर्श दाता, भुवन का गर्भ, रोदसी पर्यन्त अर्थात् प्रकाश, वाणी, गति की सामर्थ्य से युक्त, करुणाशील, रुलाने वाले, उत्पन्न करने वाले ने पूर्ण किया॥ वीडु अर्थात् दृढ़ को तथा अद्रि अर्थात् अविदारणीय, अहिंसनीय को भी अभिनत् **अर्थात्** सर्वथा, नत, विनयी, विनम्र कर दिया। इस प्रकार उत्तम लक्ष्य को प्राप्त करते हुए पञ्चजनों ने अग्नि स्वरूप परमात्मा को तथा ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को यजन किया अर्थात् पूजन, सम्मान, सत्कार, सेवा, दान आदि से प्रसन्न किया **॥ 23 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - विश्वस्य (सर्वनाम)। केतुः (केत - बुलाना, आमन्त्रित करना, परामर्श देना, सम्मुख वार्ता करना, कित् - जानना, निवास करना, रोग निवारण करना)। भुवनस्य (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। गर्भ (गृह् - ग्रहण करना, लेना, गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गल्भ् - जाना, जानना, पाना, ज्ञान होना, चतुर होना, साहस होना, धैर्य रखना, गृभ्-गर्भ् - अन्दर होना, अन्तःवास करना)। आ (उपसर्ग)। रोदसी (रुद् - रोना, रुलाना, करुण होना, रु - शब्द करना, जाना, चलना, जानना, पाना)। अपृणात् (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, पृ - पूर्ण करना, भरना)। जायमानः (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। वीडुम् (वीड् - संस्तम्भन करना, दृढ़ होना, वी = जाना, व्याप्त होना, कान्ति होना, प्रकाश होना, चमकना)। चित् (अव्यय)। अद्रिम् (अ - नहीं, दृ - विदीर्ण करना, हिंसा करना, आदर करना, सत्कार करना, अद् - खाना, ग्रहण करना, आत्मसात् करना, नष्ट करना)। अभिनत् (अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, नम् - नमना, नमन करना)। परायन् (परा = परम, अय् = जाना, जानना, पाना, यन् - उद्धार करना)। जना (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। यत् (सर्वनाम)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अयजन्त (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, यज् - देव-पूजन, संगतिकरण, दान करना)। पञ्च (पञ्च = पाँच, संख्या)॥ 23॥

537. उशिक् पावको अरतिः सुमेधा, मर्त्येषु अग्निः अमृतो नि धायि।
इयर्त्ति धूमम् अरुषम् भरिभ्रत्, उत् शुक्रेण शोचिषा द्याम् इनक्षन्॥24॥

मन्त्रार्थ- अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। उशिक् = कामना करने वाला। पावको = पवित्रकारक, पावक, पवित्रकर्ता, पवित्र करने वाला। अरतिः = गतिशील, विद्वान्, गति, ज्ञान युक्त, रतिहीन, प्राप्त होने वाले। सुमेधा = अच्छे मेधा वाले। मर्त्येषु = मरणशीलों में। अमृतो = अमृता को। नि = निश्चित, निरन्तर। धायि = धारण किया।। धूमम् = धूम को, कम्पन को। अरुषम् = अहिंसक अथवा रोष-रहित, हिंसक, गतिशील, व्यापक। भरिभ्रत् = भरण करने वाले। उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। शुक्रेण = शुक्र, विद्वान्, शुद्ध, पवित्र, पावन, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी से। शोचिषा = शोचमान द्वारा। द्याम् = द्यु को, सबसे बढ़कर, विशिष्ट, प्रकाशमय। इनक्षन् = पाये, गति, ज्ञान, प्रकाश प्राप्त करते हुए। इयर्त्ति = जाता है, प्राप्त करता है **॥ 24 ॥**

भावार्थ - उशिक् **अर्थात्** कामना करने वाला, उत्तम मेधा वाले, पवित्रकर्ता, अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् ने मरणशील मनुष्यों में अमृत को धारण किया है। इसका भाव है कि परमात्मा तथा उसके स्नाधक-उपासक विद्वानों से हमें अमृत परमात्मा का बोध होता है, अध्यात्म विद्या तथा उत्तम जीवन-दर्शन प्राप्त होता है। धूम को, कम्पन को अहिंसक अथवा रोष-रहित, प्रगतिशील, व्यापक भावना के साथ भरण करने वाले ही शुद्ध, पवित्र मार्गदर्शक पवित्रता द्वारा द्यु अर्थात् विशिष्ट, प्रकाशमय को प्राप्त करता है **॥ 24 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उशिक् (उश्-वश् - चाहना, कामना करना, इच्छा करना)। पावको (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। अरतिः (अ - नहीं, ऋ-अर् = जाना, जानना, पाना, महत्व दिखाना, शब्द करना, ध्वनि करना, हिंसा करना, रम् - रमना, रमण करना, रम जाना, रत होना, क्रीडा करना, प्रिय होना, मूल्यवान होना)। सुमेधा (सु - अच्छा, सुन्दर, मेधा = शीघ्र समझना)। मर्त्येषु (मृ = मरना, देहत्याग करना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अमृतो (अ - नहीं, मृ - मरना)। नि (अव्यय)। धायि (धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)। इयर्त्ति (ऋ = जाना, जानना पाना, इ = जाना, जानना पाना)। धूमम् (धू -कम्पन करना, नोचना, कम्पित करना, काँपना, कम्पाना, कम्पित होना, हिलाना, क्षोभित करना)। अरुषम् (अ - नहीं, ऋ-अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, रुष् - हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, मारने का यत्न करना)। भरिभ्रत् (भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)। उत् (उपसर्ग)। शुक्रेण (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। शोचिषा (शुच् = शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना, दुःख मानना, शोक करना)। द्याम् (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना)। इनक्षन् (इ - जाना, जानना, पाना, इन् - प्रकाश करना, इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना, नक्ष् - जाना, जानना, पाना, समीप जाना, आना, क्षण् - शब्द करना)॥ 24 ॥

538. दृशानो रुक्म उर्व्या वि अद्यौत्, दुर्मर्षम् आयुः श्रिये रुचानः।
अग्निः अमृतो अभवत् वयोभिः, यत् एनम् द्यौः अजनयत् सुरेताः ॥25॥

मन्त्रार्थ- दृशानो = दृष्टिमान। रुक्म = रुचि, प्रकाश। उर्व्या = विस्तृत, गतिशील, समर्थ, बहु-दुःखदायी। दुर्मर्षम् = दुर्मर्ष को, दुस्सहनीय को। आयुः = आयु को। श्रिये = **श्रेय में,** आश्रय में। रुचानः = रुच को। वि = विशेष। अद्यौत् = प्रकाश किया॥ अग्निः= अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। अमृतो = अमृत। वयोभिः = वय या रचना द्वारा। अभवत् = हुआ। यत् = जिसे, जो । एनम् = इसको, इसे। द्यौः = प्रकाशवान्, विद्वान्, द्यौ, प्रकाशयुक्त, अग्रगामी। **सुरेताः** = उत्तम विद्या, उत्तम गति वालों ने। अजनयत् = उत्पन्न किया **॥ 25 ॥**

भावार्थ - दृष्टिमान, रुचि, प्रकाश प्रगतिशील, समर्थ विद्वानों ने दुर्मर्ष, दुस्सहनीय आयु को श्रेय, आश्रय, समृद्धि में प्रकाशित करते हुए विशेष प्रकाश किया॥ अग्नि अर्थात् ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् जन वय या रचना द्वारा अमृत हो गये। प्रकाशवान उत्तम विद्या, उत्तम गति वालों ने ही उत्तम रचनाधर्मिता, रचनाशीलता को उत्पन्न किया है **॥ 25 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - दृशानो (दृश्-पश्य -देखना)। रुक्म (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। उर्व्या (उर् = विस्तार करना, जाना, चलना, निरन्तर चलना, उर्व - सहना, समर्थ होना, मार डालना या दुःख देना, पीड़ा करना)। वि (उपसर्ग)। अद्यौत् (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, द्यु = आगे जाना, द्युत् - प्रकाश होना)। दुर्मर्षम् (दुः = बुरा, अनुचित, कठिन, मृष - सहन करना, क्षमा करना)। आयुः (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय =

जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। श्रिये (श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना)। रुचानः (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अमृतो (अ - नहीं, मृ - मरना)। अभवत् (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। वयोभिः (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना, वी - जाना, जानना, पाना, व्याप्त होना, इच्छा करना, आक्रमण करना, घेरना, भेजना, खाना, वे - बुनना, रचना करना, सृजन करना)। यत् (सर्वनाम)। एनम् (सर्वनाम)। द्यौः (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना, प्रकाश होना, जानना)। अजनयत् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, जन् = उत्पन्न करना)। सुरेताः (सु - उत्तम, अच्छा, सुन्दर, रि - जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, री - गति करना, झरना-टपकना, लेना, शब्द करना, सुनना)॥ 25॥

(129) सूक्त 7

539. यः ते अद्य कृणवत् भद्रशोचे, अपूपम् देव घृतवन्तम् अग्ने।
प्र तम् नय प्रतरम् वस्यो अच्छ, अभि सुम्नम् देवभक्तम् यविष्ठ॥26॥

मन्त्रार्थ - भद्रशोचे = हे भद्रशोचि, कल्याणकारी पवित्रकर्ता। देव = हे देव, विद्वान्, तेजस्वी, दिव्यस्वरूप। अग्ने = हे अग्नि। यः = जो। कृणवत् = कर्मशील, श्रोता, विद्वान्। ते = तुम्हारे लिए। अद्य = आज। घृतवन्तम् = घृतयुक्त, प्रकाशयुक्त को। अपूपम् = पालन-रक्षण किया॥ यविष्ठ = हे यविष्ठ, अत्यन्त मिलनशील। तम् = उसको, उसे। प्रतरम् = तारने वाले को। वस्यो = वस्य, वसने योग्य। प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख। नय = ले जाओ॥। यविष्ठ = हे यविष्ठ, अत्यन्त मिलनशील। अभि = अभिमुख, सर्वथा। सुम्नम् = सुविचार अथवा सृजन, रचनाशील को। **देवभक्तम्** = देव-भक्त को, विद्वान्, तेजस्वी, दिव्यता के सेवित को। अच्छ = अच्छा, निर्मल करो **॥ 26 ॥**

भावार्थ - हे भद्रशोचि, कल्याणकारी पवित्रकर्ता, देव अग्नि, जो कर्मशील, श्रोता, विद्वान् तुम्हारे लिए आज घृतयुक्त, प्रकाशयुक्त को पालन-रक्षण किया॥ हे यविष्ठ, अत्यन्त मिलनशील, उस तारने वाले को वसने योग्य स्थान पर ले जाओ॥ हे यविष्ठ, अत्यन्त मिलनशील सुविचार अथवा सृजनकर्ता, रचनाशील देव-भक्त, विद्वान्, तेजस्वी, दिव्यता के सेवित को। अच्छा, निर्मल करो **॥ 26 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। अद्य (अव्यय)। कृणवत् (कृ = करना, कृण् - सुनना, करना, हिंसा करना)। भद्र-शोचे (भदि-भन्द् = सुख होना, शुभ कर्म करना, कल्याण होना)। अपूपम् (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। देव (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। घृतवन्तम् (घृ - गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। प्र (उपसर्ग)। तम् (सर्वनाम)। नय (नी - नय - जाना, हिलना, पहुँचना, संरक्षण करना)। प्रतरम् (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, तृ - पार जाना, तैरना, जीतना)। वस्यो (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। अच्छ (अच्छ् - अच्छा होना, निर्मल करना)। अभि (उपसर्ग)। सुम्नम् (सु - अच्छा, सुन्दर, मन - मनन करना, जानना, समझना, स्वीकार करना, अभ्यास करना, स्थिर होना, गर्व होना)। देवभक्तम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना, भग्-भज् = सेवा करना, सेवन करना, सेवित होना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। यविष्ठ (यु = मिलाना, अलग करना, यव = समाप्त करना, उपसंहार करना)॥ 26॥

540. आ तम् भज सौश्रवसेषु अग्ने, उक्थे-उक्थे आ भज शस्यमाने।

प्रियः सूर्य्ये प्रियो अग्ना भवाति, उत् जातेन भिनदत् उत् जनित्वैः ॥27॥

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। तम् = उसको। सौश्रवसेषु = उत्तम श्रवणकर्ताओं में। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। भज = सेवा करो॥ उक्थे-उक्थे = उक्ति-उक्ति में, कथन-कथन में। शस्यमाने = स्तुत्यमान में। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। भज = सेवा करो॥ सूर्य्ये = सूर्य में। प्रियो = प्रिय। अग्ना = अग्नि में, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् में। प्रियः = प्रिय। भवाति = होता है॥ उत् = वैसे ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। जातेन = उत्पन्न द्वारा। उत् = वैसे ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। जनित्वैः = जनित्वों द्वारा, उत्पादकों द्वारा। भिनदत् = भेदन किया **॥ 27 ॥**

भावार्थ - हे अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्, उसको उत्तम श्रवणकर्ताओं अर्थात् विद्वानों में सम्यक्, सम्पूर्ण सेवा करो॥ उक्ति-उक्ति में, कथन-कथन में, स्तुत्यमान में समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण सेवा करो॥ सूर्य में प्रिय अग्नि में, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् में प्रिय होता है॥ वैसे ही उत्पन्न द्वारा तथा जनित्वों द्वारा अर्थात् उत्पादकों द्वारा लक्ष्य का भेदन किया जाता है **॥ 27 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ (उपसर्ग)। तम् (सर्वनाम)। भज (भग्-भज् = सेवा करना, सेवन करना, सेवित होना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। सौश्रवसेषु (सु - सुन्दर, अच्छा, श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। अग्ने (अग् = जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, गति करना, घूमना, टेढ़ा जाना, आगे जाना, लेना, ग्रहण करना)। उक्थे-उक्थे (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना, उच् - एकत्र होना, सम्बन्ध होना)। शस्यमाने (शंस् = इच्छा करना, स्तुति करना, प्रशंसा करना)। प्रियः (प्री = स्नेह करना, प्यार करना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना, चाहना)। सूर्य्ये (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। अग्ना (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। भवाति (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। उत् (उपसर्ग)। जातेन (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। भिनदत् (भिद्-भिन्द् - भेदना, भेदन करना, भाग करना)। जनित्वैः (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)॥ 27 ॥

541. त्वाम् अग्ने यजमाना अनु द्यून्, विश्वा वसु दधिरे वार्याणि।
त्वया सह द्रविणम् इच्छमाना, व्रजम् गोमन्तम् उशिजो वि वव्रुः ॥28॥

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि। त्वाम् = तुमको। यजमाना = यजमान। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल। द्यून् = अग्रगामियों को। वार्याणि = वार्यों, वरणीयों को, वरण करने योग्य को। विश्वा = विश्व, सभी। वसु = वसु, स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले। दधिरे = धारण करते हैं॥ त्वया = तुम्हारे। सह = साथ, सहित। द्रविणम् = द्रविण को, प्रवाही को, ज्ञानी को, द्रवणशील, प्रवाहमान को। इच्छमाना = इच्छा करने वाले। व्रजम् = प्रगतिशील, पूर्ण सिद्ध को। गोमन्तम् = गोयुक्त को, शब्द करने वालों, मननशीलों, उपदेशकों को। उशिजो = कामना जनित। वि = विशेष, विना, विलोम। वव्रुः **= वरण किया॥ 28 ॥**

भावार्थ - हे अग्नि, तुमको यजमान अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान करने वाले जन अनुकूल अग्रगामियों वार्यों अर्थात् वरणीयों को, वरण करने योग्य को सभी वसु अर्थात् स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले धारण करते हैं॥ तुम्हारे साथ द्रविण अर्थात् द्रवणशील, प्रवाहमान विद्वान् को चाहने वाले, इच्छा करने वाले जन प्रगतिशील, पूर्ण सिद्ध शब्द करने वालों, मननशीलों, उपदेशकों को कामना जनित होकर विशेष वरण किया **॥ 28 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - त्वाम् (सर्वनाम)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। यजमाना (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना, दान करना)। अनु (उपसर्ग)। द्यून् (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना)। विश्वा (सर्वनाम)। वसु (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। दधिरे (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। वार्याणि (वर

- इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। त्वया (सर्वनाम)। सह (सर्वनाम)। द्रविणम् (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। इच्छमाना (इच्छ = इच्छा करना, कामना करना, चाहना)। व्रजम् (व्रज = जाना, पूर्ण करना, सिद्ध करना)। गोमन्तम् (गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना, गोम - लीपना, पोतना)। उशिजो (उश्-वश् - चाहना, कामना करना, इच्छा करना)। वि (उपसर्ग)। वव्रुः (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, त्याग करना, हटाना, आच्छादित करना)।। 28 ।।

542. अस्तावि अग्निः नराम् सुशेवो, वैश्वानरः ऋषिभिः सोम-गोपाः।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा, धत्त रयिम् अस्मे सुवीरम्।। 29 ।।

मन्त्रार्थ - वैश्वानरः = विश्वनायक। सुशेवो = उत्तम कल्याण, उत्तम सुख कारक। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् ने। ऋषिभिः = ऋषियों द्वारा। सोमगोपाः = सोम-पालक, सोम रक्षक, सोम-वाणी, सोम-ज्योति वाले। नराम् = नर की। **अस्तावि** = स्तुति की है।। देवाः = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण। द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी। अद्वेषे = अद्वेष में। हुवेम = आह्वान करते हैं, दान करते हैं, आदान-प्रदान करते हैं, तृप्त करते हैं।। अस्मे = हमारे लिए। रयिम् = विद्या, ज्ञान को। सुवीरम् = उत्तम वीर को। धत्त = धारण, पोषण करो **।। 29 ।।**

भावार्थ - वैश्वानर अर्थात् विश्व को या सबको ले जाने वाला विश्वनायक उत्तम कल्याण, उत्तम सुख कारक अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा उपासक ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् ने ऋषियों द्वारा सोम-पालक, सोम रक्षक, सोम-वाणी, सोम-ज्योति वाले। नराम् = नर की। **अस्तावि** = स्तुति की है।। विद्वान्, तेजस्वी, देवगण द्यावापृथिवी **अर्थात्** अग्रगामी विस्तार, प्रकाशमय प्रकृति तथा दिव्य शक्तियाँ अद्वेष में आह्वान करते हैं, दान करते हैं, आदान-प्रदान करते हैं, तृप्त करते हैं।। द्वेषभाव का त्याग आवश्यक है। द्वेष की भावना अध्यात्म में बाधक है। प्रार्थना है कि ऐसे द्वेषहीन हम लोगों के लिए रयि अर्थात् विद्या, ज्ञान को तथा उत्तम वीर को धारण, पोषण करो **।। 29 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अस्तावि (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना, अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। नराम् (नृ - नम्र होना, विनय होना, कोमल होना, मृदु होना, चलना, ले जाना)। सुशेवो (सु - अच्छा, सुन्दर, शेव् - सेचन, घर्षण, सेवा करना, शिव् = कल्याण होना, सुख होना)। वैश्वानर (विश्व - सब, नृ - चलना, ले जाना, विनय होना)। ऋषिभिः (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। सोम-गोपाः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना, गुप् = रक्षा करना, चमकना, बोलना)। अद्वेषे (अ - नहीं, द्विष् = द्वेष करना)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करन, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। हुवेम (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। धत्त (धा = धारण, पोषण, रक्षण, दान करना)। रयिम् (रय्-रि, री - चलना, जाना, जानना, पाना, री-रै - शब्द करना)। अस्मे (सर्वनाम)। सुवीरम् (सु - अच्छा, सुन्दर, वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)।। 29 ।।

(130) सूक्त 8

543. समिधा अग्निम् दुवस्यत, घृतैः बोधयत अतिथिम्। आ अस्मिन् हव्या जुहोतन।। 30 ।।

मन्त्रार्थ- समिधा = सम्यक् प्रकाशवान् द्वारा। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। दुवस्यत = सेवा प्रदान की गयी। घृतैः = अभिसिञ्चितों, प्रकाशितों द्वारा। अतिथिम् = सतत गतिशील, अतिथि को। बोधयत = बोध कराओ। अस्मिन् = इसमें। हव्या = दान योग्य द्वारा। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। जुहोतन = दान करो, आदान-प्रदान करो **।। 30 ।।**

भावार्थ - समिधा **अर्थात्** सम्यक् प्रकाशवान् द्वारा अग्नि स्वरूप परमात्मा को तथा ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् की सेवा की गयी। दिव्य तेजस्वी अग्नि स्वरूप परमात्मा को तथा ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् की सेवा भी साधना-उपासना-विद्या के दिव्य प्रकाश से प्रकाशमान जन ही कर सकते हैं। अभिसिञ्चितों, प्रकाशितों द्वारा ऐसे अतिथि **अर्थात्** सतत गतिशील विद्वान् को अपनी सेवा-भावना तथा जानने की इच्छा का बोध कराओ। अस्मिन् = इसमें। हव्या = दान योग्य द्वारा। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। जुहोतन = दान करो, आदान-प्रदान करो **॥ 30 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - समिधा (सम् = सम्यक्, भलीभांति, इत् - इन्ध = प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना, प्रकाश करना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। दुवस्यत (दुवस् - पीड़ित होना, पीड़ित करना, सेवा करना)। घृतैः (घृ - गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना)। बोधयत (बुध् - बोध होना, बोध करना, जानना, समझना)। अतिथिम् (अत् = सतत गमन करना, निरन्तर चलना, जाना, सदैव जाते रहना)। आ (उपसर्ग)। अस्मिन् (सर्वनाम)। हव्या (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। जुहोतन (हु-जुहु = दान करना, आदान-प्रदान करना, ग्रहण करना, तृप्त करना, जु - जाना, शीघ्र जाना, भागना)॥ 30 ॥

544. उत् उ त्वा विश्वे देवा, अग्ने भरन्तु चित्तिभिः। स नो भव शिवः त्वम्, सु-प्रतीको विभा-वसुः ॥31 ॥

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान्। उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। उ = निश्चय ही, भी। त्वा = तुम्हारा। विश्वे = सभी। देवा = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने। चित्तिभिः = चित्त या चेतना, ज्ञान द्वारा। भरन्तु = भरण करें॥ स = वह। नो = हमारे लिए। शिवः = कल्याणकारी। भव = हो। त्वम् = तुम। सु-प्रतीको = प्रतीक। विभा-वसुः = विशेष प्रकाशित वसु, स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले। भव = हो॥ **31 ॥**

भावार्थ - हे अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान, तुम्हारा विश्वदेव **अर्थात् सभी** विद्वान्, तेजस्वी, देवगण चित्त या चेतना, ज्ञान द्वारा भरण-पोषण करें। वह हमारे लिए शिव अर्थात् कल्याणकारी हो। तुम भी ऐसे ही उत्तम प्रतीक बनकर विभा-वसु अर्थात् विशेष प्रकाशित तथा स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाल हो॥ **31 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उत् (उपसर्ग)। उ (अव्यय)। त्वा (सर्वनाम)। विश्वे (सर्वनाम)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। भरन्तु (भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)। चित्तिभिः (चि - चुनना, एकत्र करना, चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, सम्यक् ज्ञान होना, स्मरण करना, शंका करना, सन्देह करना)। स (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। भव (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। शिवः (शिव् = कल्याण करना)। त्वम् (सर्वनाम)। सु-प्रतीको (सु - सुन्दर, अच्छा, प्रतीची - पश्चिम, अव्यय - प्र - प्रकृष्ट, अधिक, तिक्-तीक् - जाना)। विभा-वसुः (वि - विशेष, भा - चमकना, प्रकाशित होना, वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना) **॥ 31 ॥**

545. प्र इत् अग्ने ज्योतिष्मान् याहि, शिवेभिः अर्चिभिः त्वम्।
बृहद्भिः भानुभिः भासन्, मा हिंसीः तन्वा प्रजाः ॥32 ॥

मन्त्रार्थ - ज्योतिष्मान् = हे प्रकाशमान। अग्ने = हे अग्नि। त्वम् = तुम। शिवेभिः = कल्याणकरी। अर्चिभिः = अर्चना, पूजा, सेवा, मान द्वारा। प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। इत् = ही। याहि = जायें, प्राप्त हों, प्राप्त करें॥ बृहद्भिः = महान्, बृहत् द्वारा। भानुभिः = भानु द्वारा, प्रकाशमानों द्वारा। भासन्, = प्रकाशमान। तन्वा = विस्तार, वृद्धि। प्रजाः = सन्तति, प्रजा। मा = नहीं, मत। हिंसीः = हिंसा करो **॥ 32 ॥**

भावार्थ - हे ज्योतिष्मान्, हे प्रकाशमान, हे अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान्, तुम कल्याणकरी। अर्चना, पूजा, सेवा, मान द्वारा प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक प्राप्त हों, प्राप्त करें॥ महान्, बृहत् भानु द्वारा, प्रकाशमानों द्वारा

प्रकाशमान विस्तार, वृद्धि करो। सन्तति, प्रजा की हिंसा मत करो **॥ 32 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - प्र (उपसर्ग)। इत् (अव्यय)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। ज्योतिष्मान् (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। याहि (या- जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। शिवेभिः (शिव् - कल्याण करना)। अर्चिभिः (अर्च - पूजा करना, मान करना, सेवा करना)। त्वम् (सर्वनाम)। बृहद्भिः (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। भानुभिः (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। भासन्, (भास् - प्रकाशित होना, चमकना)। आ (उपसर्ग)। हिंसीः = हिंसा करो (हिंस् - हिंसा करना, मारना, बध करना, दुःख देना, सताना)। तन्वा (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। प्रजाः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)॥ 32 ॥

546. अक्रन्दत् अग्निः स्तनयन् इव द्यौः, क्षामा रेरिहत् वीरुधः समञ्जन्।
सद्यो जज्ञानो वि हि ईम् इद्धो अख्यत्, आ रोदसी भानुना भाति अन्तः ॥ 33 ॥

मन्त्रार्थ - अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। स्तनयन् = शब्द करता हुआ। इव = समान, की भाँति, के समान। द्यौः = अग्रगामी, प्रकाश। अक्रन्दत् = क्रन्दन किया। क्षामा = क्षमा। वीरुधः = वीर के लिए। समञ्जन् = सम्यक् प्रकाशित । रेरिहत् = स्तुति की, प्रशंसा की, दान किया। सद्यो = शीघ्र, तत्काल, तत्क्षण, ताजा, अभी का, गम्य । जज्ञानो = उत्पन्न। वि = विशेष, विना, विलोम । हि = ही, निश्चय । ईम् = ही, समान, इस प्रकार। इद्धो = प्रकाशमान, गति, ज्ञान, प्रकाश को धारण करने वाला। अख्यत् = प्रसिद्ध किया, प्रख्यात किया, प्रकाशित किया। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण । रोदसी = प्रकाश देने वाले, वाणी, गति की सामर्थ्य से युक्त, करुणाशील, रोने वाले, रुलाने वाले । भानुना = भानु द्वारा, प्रकाशमान द्वारा । अन्तः = बीच में, भीतर। भाति = प्रकाशित होता है **॥ 33 ॥**

भावार्थ - अग्नि स्वरूप परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि में व्यापक है। स्तुति, उपासना द्वारा हम उसका प्रकाश अपने भीतर हृदय में अनुभव कर सकते हैं **॥ 33 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अक्रन्दत् (अ = नहीं, उपसर्ग, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, क्रन्द - पुकारना, जोर से बुलाना, रोना, घबराना, दुःखी होना, निरन्तर होना, बुलाना, पुकारना)। अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। स्तनयन् (स्तन - मेघ की गर्जना होना, शब्द करना, ध्वनि करना)। इव (अव्यय)। द्यौः (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना)। क्षामा (क्षम् = क्षमा करना, सहन करना, समर्थ होना, रोकना)। रेरिहत् = स्तुति की, प्रशंसा की, दान किया (रिह - कहना, स्तुति करना, प्रशंसा करना, दान करना, युद्ध करना, निन्दा करना, हिंसा करना)। वीरुधः (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। समञ्जन् (सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, अंज -स्वच्छ करना, प्रकाशित होना)। सद्यो (सद् - जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, सूखना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। जज्ञानो (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना, ज्ञा - जानना)। वि (उपसर्ग)। हि (अव्यय)। ईम् (अव्यय)। इद्धो (इ - जाना, जानना, पाना, इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। अख्यत् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, ख्या - प्रसिद्ध करना, प्रख्यात करना)। आ (उपसर्ग)। रोदसी (रुद् - रोना, रुलाना, करुण होना, रु - शब्द करना, जाना, चलना, जानना, पाना)। भानुना (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। भाति (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम) **॥ 33 ॥**

547. प्रप्र अयम् अग्निः भरतस्य शृण्वे, वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद्भाः।
अभि यः पूरुम् पृतनासु तस्थौ, दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नः ॥ 34 ॥

मन्त्रार्थ - भरतस्य = भरण करने वाले का। अयम् = यह। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। प्रप्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। शृण्वे = सुनें॥ यत् = जो। बृहद्भाः = महान्, बृहत् प्रकाशयुक्त। सूर्यो = सूर्य। न = के समान। वि = विशेष।

रोचते = प्रकाश करता है।। यः = जिसने। पूरुम् = अग्रगामी, अग्रणी को। पृतनासु = व्यापक, बलों में। अभि = अभिमुख, विशेष। तस्थौ = स्थित किया हैं।। दैव्यो = दिव्य। शिवो = कल्याणकारी। अतिथिः = अतिथि। नः = हमारे लिए। दीदाय = दे, प्रदान करे **॥ 34 ॥**

भावार्थ - भरण करने वाले का यह अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक सुनें।। जो महान्, बृहत् प्रकाशयुक्त सूर्य के समान विशेष प्रकाश करता है।। जिसने अग्रगामी, अग्रणी को व्यापक, बलों में अभिमुख, विशेष स्थित किया हैं।। वह दिव्य कल्याणकारी अतिथि हमारे लिए दे, प्रदान करे **॥ 34 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - प्रप्र (उपसर्ग)। अयम् (सर्वनाम)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। भरतस्य (भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)। शृण्वे (श्रु-शृण् = सुनना)। वि (उपसर्ग)। यत् (सर्वनाम)। सूर्यो (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। न (अव्यय)। रोचते (रुच् = रुचना, प्रकाशित होना, प्रसन्न होना)। बृहद्भाः (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, भा - प्रकाश करना, चमकना)। अभि (उपसर्ग)। यः (सर्वनाम)। पूरुम् (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। पृतनासु (पृत - व्याप्त होना, जीवन होना, बलपूर्वक निकालना, पृ = पूर्ण करना)। तस्थौ (तस - स्थापित होना, स्थापना करना, फेंकना, उड़ा देना, भेजना, खोदना, कुम्हलाना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना)। दीदाय (दा, दद्, दत् = दान करना, देना, त्याग करना, सौंपना, लौटाना, रखना)। दैव्यो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अतिथिः (अत् - सतत गमन करना)। शिवो (शिव् = कल्याण करना)। नः (सर्वनाम)।। 34 ।।

548. आपो देवीः प्रति गृभ्णीत भस्म, एतत् स्योने कृणुध्वम् सुरभा उ लोके।
तस्मै नमन्ताम् जनयः सुपत्नीः, मातेव पुत्रम् बिभृत अप्सु एनत्॥ 35 ॥

मन्त्रार्थ - आपो = आप, व्याप्त, व्यापक। देवीः = दिव्य। भस्म = प्रकाश, भोजन। प्रति = सम्बन्ध में, प्रत्येक में। गृभ्णीत = गर्भित करे, गृहीत करे।। एतत् = यह। **सुरभा** = सृजन, ऐश्वर्य का प्रकाश। उ = निश्चय ही, भी। स्योने = सुख में। लोके = लोक में। कृणुध्वम् = करो।। तस्मै = उसके लिए। जनयः = उत्पन्न करने वाली। सुपत्नीः = उत्तम ऐश्वर्यवती, पत्नी। नमन्ताम् = नमन करें।। पुत्रम् = पुत्र को। मातेव = माता के समान। अप्सु = पालन-रक्षण में। एनत् = यह। बिभृत = भरण - पोषण, धारण करता है **॥ 35 ॥**

भावार्थ - अग्नि स्वरूप परमात्मा का व्यापक दिव्य प्रकाश गर्भित करे, गृहीत करे।। यह सृजन, ऐश्वर्य का प्रकाश निश्चय ही लोक में सुख करता है। उसके लिए उत्पन्न करने वाली उत्तम ऐश्वर्यवती, पत्नी नमन करें। पुत्र को माता के समान पालन-रक्षण में यह भरण - पोषण, धारण करता है **॥ 35 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आपो (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। देवीः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। प्रति (अव्यय)। गृभ्णीत (गृह् - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना, निवास करना, गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गृभ्-गर्भ् - ग्रहण करना, लेना, अन्दर होना, अन्तःवास करना)। भस्म (भस - खाना, चमकना, दोष लगाना, निन्दा करना)। एतत् (सर्वनाम)। स्योने (स्योन् = सुख होना, सुख देना)। कृणुध्वम् (कृ = करना)। सुरभा (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सुर = अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, भा - प्रकाश करना)। उ (निपात, अव्यय)। लोके (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। तस्मै (सर्वनाम)। नमन्ताम् = (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। जनयः (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। सुपत्नीः (सु - सुन्दर, अच्छा, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। मातेव (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना, इव - समान, अव्यय)। पुत्रम् (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। बिभृत (भृ- भरना, भरण करना, धारण करना)। अप्सु (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना)। एनत् (सर्वनाम)।। 35 ।।

(131) सूक्त 9

549. अप्सु अग्ने सधिः तव, स ओषधीः अनु रुध्यसे। गर्भे सन् जायसे पुनः ॥ 36 ॥

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान। स = वह। तव = तुम्हारा। सधिः = सहस्थान, सहगामी। ओषधीः = ओषधी। अप्सु = पालन-रक्षण में। अनु = पश्चात्, अनुकूल। **रुध्यसे** = बढ़ता है। गर्भे = गर्भ में। सन् = ही। पुनः = फिर। जायसे = उत्पन्न होता है ॥ **36** ॥

भावार्थ - हे अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् वह तुम्हारा सहस्थान, सहगामी ओषधी पालन-रक्षण में अनुकूल बढ़ता है। गर्भ में ही पुनः उत्पन्न होता है ॥ **36** ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अप्सु (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। सधिः (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। तव (सर्वनाम)। स (सर्वनाम)। ओषधीः (उषध् - चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। अनु (उपसर्ग)। **रुध्यसे** (रुध् - रोकना, बढ़ना, चाहना, रोना, दया करना)। गर्भे (गृह् - ग्रहण करना, लेना, गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गल्भ् - जाना, जानना, पाना, ज्ञान होना, चतुर होना, साहस होना, धैर्य रखना, गृभ्-गर्भ् - अन्दर होना, अन्तःवास करना)। सन् (अव्यय)। जायसे (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। पुनः (अव्यय)। 36 ॥

550. गर्भो असि ओषधीनाम्, गर्भो वनस्पतीनाम्। गर्भो विश्वस्य भूतस्य, अग्ने गर्भो अपाम् असि ॥ 37 ॥

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि। ओषधीनाम् = ओषधियों का। गर्भो = गर्भ। असि = हो। वनस्पतीनाम् = वनस्पतियों का। गर्भो = गर्भ। विश्वस्य = विश्व का, सभी का। भूतस्य = भूत का, उत्पन्न हुए का। गर्भो = गर्भ। अपाम् = अपा को, पालकों का। गर्भो = गर्भ। असि = हो ॥ **37** ॥

भावार्थ - हे अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान्, ओषधियों का गर्भ हो। वनस्पतियों का गर्भ, सभी भूत अर्थात् उत्पन्न हुए का गर्भ, पालकों का गर्भ हो ॥ **37** ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - गर्भो (गृह् - ग्रहण करना, लेना, गृभ्-गर्भ् - अन्दर होना, अन्तःवास करना)। असि (अस् - होना)। ओषधीनाम् (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। वनस्पतीनाम् (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। विश्वस्य (सर्वनाम)। भूतस्य (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अपाम् (अप - पालन करना)॥ 37 ॥

551. प्रसद्य भस्मना योनिम्, अपः च पृथिवीम् अग्ने।
संसृज्य मातृभिः त्वम्, ज्योतिष्मान् पुनः आ असदः ॥ 38 ॥

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि। प्रसद्य = प्रगति कर। भस्मना = भस्म द्वारा, प्रकाश द्वारा, भोजन द्वारा। योनिम् = योनि को। अपः = पालक, रक्षक को। च = और। पृथिवीम् = पृथिवी को। संसृज्य = सम्यक् सृजन कर। मातृभिः = माताओं द्वारा। त्वम् = तुम। ज्योतिष्मान् = प्रकाशमान। पुनः = फिर। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। असदः = स्थित हुए ॥ **38** ॥

भावार्थ - हे अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान्, प्रगति कर भस्म द्वारा, प्रकाश द्वारा, भोजन द्वारा योनि को, पालक, रक्षक को और पृथिवी को सम्यक् सृजन कर माताओं द्वारा तुम प्रकाशमान पुनः समन्तात्, सम्यक्, स्थित हुए ॥ **38** ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - प्रसद्य (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, सद् - जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, सूखना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। भस्मना (भस - खाना, चमकना, दोष लगाना, निन्दा करना)। योनिम् (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। अपः (अप् - पालन

करना)। च (अव्यय)। पृथिवीम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। संसृज्य (सम् = सम्यक्, भलीभांति, सृज् = सृजन करना, उत्पन्न करना)। मातृभिः (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। त्वम् (सर्वनाम)। ज्योतिष्मान् (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। पुनः (अव्यय)। आ (उपसर्ग)। असदः (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)॥ 38॥

552. पुनः आसद्य सदनम्, अपः च पृथिवीम् अग्ने। शेषे मातुः यथा उपस्थे, अन्तः अस्याम् शिवतमः ।ß9 ॥

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि। सदनम् = सदन, स्थान को। अपः = पालक, रक्षक। च = और। पृथिवीम् = पृथिवी को। पुनः = फिर। आसद्य = आसीन होकर, प्राप्त कर। यथा = जैसे, जिस प्रकार। मातुः = माता का। उपस्थे = उपस्थ में, सनिकट, समीप स्थित। अन्तः = बीच में, भीतर। अस्याम् = इसमें। शिवतमः = अत्यन्त कल्याणकारी। शेषे = शयन करता है **॥ 39 ॥**

भावार्थ - हे अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान्, सदन, स्थान को पालक, रक्षक और पृथिवी को पुनः आसीन होकर, प्राप्त कर जिस प्रकार माता के उपस्थ में, सनिकट, समीप स्थित बीच में, भीतर अत्यन्त कल्याणकारी अनुभव करते हुए शयन करता है, यह अनुभूति ही उपासना है। जैसे शिशु माता के निकट, उसकी गोद में अत्यन्त सुख का अनुभव करता है, हम परमात्मा के निकट होकर वैसा ही सुख अनुभव करते हैं **॥ 39 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - पुनः (अव्यय)। आसद्य (अस् - होना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीवित रहना, होना, सद् = जाना, आसद् = आना)। सदनम् (सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। अपः (अप् - पालन करना)। च (अव्यय)। पृथिवीम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। शेषे (शी - शयन करना)। मातुः (मा = मान करना, मापना)। यथा (अव्यय)। उपस्थे (उप = समीप, स्थ = स्थित)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। अस्याम् (सर्वनाम)। शिवतमः (शिव् = कल्याण करना)॥ 39॥

553. पुनः ऊर्जा नि वर्त्तस्व, पुनः अग्न इषा आयुषा। पुनः नः पाहि अंहसः ॥ 40 ॥

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। पुनः = फिर। ऊर्जा = ऊर्जा, बल, प्राण, चेतना। नि = निश्चित, निरन्तर। वर्त्तस्व = वर्ताव करो, प्रवृत्त करो वर्तमान करो। पुनः = फिर। इषा = इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि। आयुषा = आयु से, जीवन द्वारा। पुनः = फिर। नः = हमको। अंहसः = प्रकाशमान। पाहि = पालन करो, रक्षा करो **॥ 40 ॥**

भावार्थ - हे अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् पुनः ऊर्जा, बल, प्राण, चेतना निश्चित, निरन्तर वर्तमान करो। पुनः इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि आयु द्वारा पुनः हमका प्रकाशमान करो, पालन करो, रक्षा करो **॥ 40 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - पुनः (अव्यय)। ऊर्जा (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। नि (अव्यय)। वर्त्तस्व (वृत् - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, होना, वरण करना, स्वीकार करना, हिंसा करना, सेवा करना, चमकना, बोलना)। अग्ने (अग् = जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, गति करना, घूमना, टेढ़ा जाना, आगे जाना, लेना, ग्रहण करना)। इषा (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। आयुषा (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। नः (सर्वनाम)। पाहि (पा - पालन, रक्षण करना)। अंहसः (अंह् = प्रकाशित होना, चमकना, शब्द करना, कुटिल गति करना, मथना)॥ 40॥

554. सह रय्या नि वर्त्तस्व, अग्ने पिन्वस्व धारया। विश्व-प्स्न्या विश्वतः परि॥ 41 ॥

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। रय्या = विद्या, ज्ञान, रयि द्वारा। सह = साथ, सहित। नि = निश्चित, निरन्तर। वर्त्तस्व = वर्ताव करे, प्रवृत्त करे। विश्व-प्स्न्या = सभी के भोक्ता, संरक्षक द्वारा। विश्वतः = सबसे,

विश्व से। परि = सभी तरफ। धारया = धारा द्वारा। पिन्वस्व = सेवा करो, गति, ज्ञान, प्राप्त करो **॥ 41 ॥**

भावार्थ - हे अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्, विद्या, ज्ञान, रयि के साथ निश्चित, निरन्तर वर्ताव करे, प्रवृत्त करे। सभी के भोक्ता, संरक्षक द्वारा सभी ओर धारा द्वारा सेवा करो, गति, ज्ञान, प्राप्त करो **॥ 41 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सह (सर्वनाम)। रय्या (रय्-रि, री - चलना, जाना, जानना, पाना, री-रै - शब्द करना)। नि (अव्यय)। वर्त्तस्व (वृत् - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, होना, वरण करना, स्वीकार करना, हिंसा करना, सेवा करना, चमकना, बोलना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पिन्वस्व (पि = गति करना, जाना, जानना, पाना, पिन्व = सेवा करना, सेचन करना, प्रोक्षण करना, पिण् - शब्द करना)। धारया (धाः = पोषण करना, रक्षण करना, देना, दान करना, धार बाँधना, धारा होना, धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना, धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)। विश्व-प्स्न्या (विश्व - विश्व, सब (सर्वनाम), प्सा - भक्षण करना, संरक्षण करना)। विश्वतः (सर्वनाम)। परि (उपसर्ग)॥ 41॥

555. बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ, मंहिष्ठस्य प्र-भृतस्य स्वधावः।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति, वन्दारुः ते तन्वम् वन्दे अग्ने॥ 42 ॥

मन्त्रार्थ - यविष्ठ = हे यविष्ठ, अत्यन्त मिलनशील। अग्ने = हे अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। मे = मेरे लिए। अस्य = इसका। मंहिष्ठस्य = मंहिष्ठ का, महिमावान् का, महान् का। प्र-भृतस्य = परिपूर्ण का। **स्वधावः** = स्वधावान् का, स्वयम् धारण करने वाला, स्वयम् दौड़ने वाला। वचसो = वचन का। बोधा = बोध करो। त्वो = तुम। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल। पीयति = पीता है, पान करता है। त्वा = तुम। गृणाति = वाणी, बोध, अभिसिंचन करता है। वन्दारुः = वन्दनशील, वन्दना करने वाले। ते = तुम्हारे। तन्वम् = विस्तार को। वन्दे = वन्दना करते हैं **॥ 42 ॥**

भावार्थ - हे यविष्ठ, अत्यन्त मिलनशील, हे अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्, मेरे लिए इसका मंहिष्ठ का, महिमावान् का, महान् का, परिपूर्ण का, स्वधावान् का, वचन का बोध करो॥ तुम्हारे अनुकूल ही पीता है, पेय का पान करता है॥ तुम्हारा बोध, अभिसिंचन करता है। वन्दनशील जन तुम्हारे विस्तार की वन्दना करते हैं **॥ 42 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - बोधा (बुध् - बोध होना, बोध करना, जानना, समझना)। मे (सर्वनाम)। अस्य (सर्वनाम)। वचसो (वच् - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। यविष्ठ (यु = मिलाना, अलग करना, यव = समाप्त करना, उपसंहार करना)। मंहिष्ठस्य (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। प्र-भृतस्य (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, भृ - भरण करना)। **स्वधावः** (स्व = निज, अपना, धा = धारण करना, पहनना, पोषण करना, रक्षण करना, धाव् - दौड़ना, भागना, द्रुत गति से चलना)। पीयति (पी-पिब् - पीना, पान करना, प्राशन करना, संरक्षण करना)। त्वो (सर्वनाम)। अनु (उपसर्ग)। गृणाति (गृ-गृण् = शब्द करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना, जानना, समझना, निगलना, बहिर्गमन करना, गृ - शब्द करना)। वन्दारुः (वन्द् = स्तुति करना, प्रणाम करना, वन्दना करना, प्रशंसा करना)। ते (सर्वनाम)। तन्वम् (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। वन्दे (वन्द् = स्तुति करना, प्रणाम करना, वन्दना करना, प्रशंसा करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)॥ 42॥

(132) सूक्त 10

556. स बोधि सूरिः मघवा, वसु-पते वसु-दावन्। युयोधि अस्मत् द्वेषांसि, विश्व-कर्मणे स्वाहा॥ 43 ॥

मन्त्रार्थ - वसु-पते = हे वसुपति, स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वालों के स्वामी, पालक, रक्षक। वसु-दावन् = हे वसुदाता, स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले। सः = वह। सूरिः = ऐश्वर्यवान्, सृजनशील। मघवा = मघवान्, ऐश्वर्यवान्, धनवान्। बोधि = जानता है॥ अस्मत् = हमसे। द्वेषांसि = द्वेषों को। युयोधि = अलग करो। विश्व-कर्मणे = विश्वकर्मा के लिए, सभी कर्म करने वाले के लिए, सभी कर्मशीलों के लिए। स्वाहा = अच्छी व्यापकता, आत्म विस्तार (करो) **॥ 43 ॥**

भावार्थ - हे वसुपति, स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वालों के स्वामी, पालक, रक्षक, हे वसुदाता, स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले, वह ऐश्वर्यवान्, सृजनशील, मघवान्, ऐश्वर्यवान्, धनवान परमात्मा सबकुछ जानता है।। अतः हमसे। द्वेषों को अलग करो। विश्वकर्मा के लिए, सभी कर्म करने वाले के लिए, सभी कर्मशीलों के लिए अच्छी व्यापकता, आत्म विस्तार करो **॥ 43 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - स (सर्वनाम)। बोधि (बुध् - बोध होना, बोध करना, जानना, समझना)। सूरिः = ऐश्वर्यवान्, सृजनशील (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। मघवा (मघ् = ऐश्वर्य होना, धन होना)। वसु-पते (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। वसु-दावन् (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना, दु-दव् - जाना, सुगन्ध लेना, दा - देना, सौंपना, लौटाना, रखना)। युयोधि (युध् = युद्ध करना, यु - मिलाना, अलग करना, बाँधना, गूँथना, यु- पृथक् पृथक् करना)। अस्मत् (सर्वनाम)। द्वेषांसि (द्विष् = द्वेष करना, विरोध करना, शत्रुता करना, मत्सर करना)। विश्व-कर्मणे (विश्व - सभी, कृ - करना)। स्वाहा (सु = अच्छा, सुन्दर, स्व - अपना, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥ 43 ॥

557. पुनः त्वा आदित्या रुद्रा वसवः सम् इन्धताम्, पुनः ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः।
घृतेन त्वम् तन्वम् वर्धयस्व, सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥44 ॥

मन्त्रार्थ - **वसुनीथ** = हे वसु को ले जाने वाले। आदित्या = अक्षय-अविनाशी। रुद्रा = करुणाशील, रोने, रुलाने वाले। वसवः = स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले। पुनः = फिर। त्वा = तुमको। सम् = सम्यक्। इन्धताम्= प्रकाशित करें। पुनः = फिर। त्वम् = तुम। **ब्रह्माणो** = वृद्धिशील, उद्यमशील, शब्दकर्ता। यज्ञैः = यज्ञों द्वारा। घृतेन = अभिसिञ्चित द्वारा, प्रकाशमान द्वारा। तन्वम् = विस्तार को। वर्धयस्व = बोलो, प्रकाश करो, बढाओ। यजमानस्य = यजमान का। कामाः = कामना, इच्छा। सत्याः = सत्य। सन्तु = हों **॥ 44 ॥**

भावार्थ - हे वसु को ले जाने वाले, अक्षय-अविनाशी, करुणाशील, रोने, रुलाने वाले, स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले परमात्मा तथा समर्थ सेवाभावी जन पुनः तुमको सम्यक् प्रकाशित करें। पुनः तुम वृद्धिशील, उद्यमशील, शब्दकर्ता यज्ञों अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान द्वारा तथा घृत अर्थात् अभिसिञ्चित द्वारा, प्रकाशमान द्वारा विस्तार को बढाओ, उसको कहो, उसका प्रकाश सबको प्रदान करो। यजमान अर्थात् यजन करने वाले, देवपूजा, संगतिकरण, दान करने वाले की कामनाएं, इच्छाएं सत्य हों **॥ 44 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - पुनः (अव्यय)। त्वा (सर्वनाम)। आदित्या (अ - नहीं, अद् - खाना, नष्ट करना, दी = क्षय होना, नष्ट होना)। रुद्रा (रुद् =रुदन करना, रुलाना)। वसवः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। सम् (उपसर्ग)। इन्धताम् (इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। ब्रह्माणो (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। वसुनीथ (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना, नी - ले जाना)। यज्ञैः (यज - देवपूजा करना, देना, संगति करना)। घृतेन (घृ -गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना)। त्वम् (सर्वनाम)। तन्वम् (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। वर्धयस्व (वृध् = बढ़ना, चमकना, बोलना)। सत्याः (सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना)। सन्तु (अस् - होना)। यजमानस्य (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना, दान करना)। कामाः (कम - चाहना, इच्छा करना)॥ 44 ॥

558. अप इत वि इत वि च सर्पत अतो, ये अत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः।

अदात् यमो अवसानम् पृथिव्या, अक्रन् इमम् पितरो लोकम् अस्मै ॥ 45 ॥

मन्त्रार्थ - ये = जो। अत्र = यहाँ। स्थ = स्थित। पुराणा = पुराण, पुरातन। ये = जो। च = और। नूतनाः = नूतन, नवीन, नये। अतो = अतः, इसलिए, इससे। अप = दूर। इत = जाओ। वि = विशेष। इत = गति, गमन करो। च = और। वि = विशेष। सर्पत = चलते चले जाओ॥ यमो = यम ने। पृथिव्याः = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। अवसानम् = अवसान को। अदात् = दिया॥ पितरो = पितरों ने, पालन करने वालों ने। इमम् = इसको। लोकम् = लोक को, दर्शन को। अस्मै = इसके लिए। अक्रन् = किया **॥ 45 ॥**

भावार्थ - जो यहाँ स्थित पुरातन और जो नूतन, नवीन हैं, सभी इससे दूर तक जाओ, विशेष गति करो, बहुत प्रगति करो, और विशेष गति से तीव्रता से लक्ष्य की ओर चलते चले जाओ। यम ने पृथिवी के अवसान को दिया है। पितरों ने, पालन करने वालों ने इस लोक को, दर्शन या दृष्टि को इसके लिए किया है। इसमें प्रगतिशीलता का सन्देश स्पष्ट है। यह लोक या दृष्टि हमको हमारे पितरो ने दिया है, हमें ऋषियों के मार्ग पर चलते हुए उन्नति करते जाना है **॥ 45 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अप (उपसर्ग)। इत (अव्यय)। वि (उपसर्ग)। च (अव्यय)। सर्पत (सृप् - जाना, सरकना, जानना, पाना, चलना)। अतो (अव्यय)। ये (सर्वनाम)। अत्र (अव्यय)। स्थ (स्था- स्थित होना)। पुराणा (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। नूतनाः (नु = स्तुति करना, प्रशंसा करना, निश्चय करना, नया करना, नवीन करना, नूतन होना)। अदात् (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, दा - देना, सौंपना)। यमो (यम - आवरण करना, अपने अधीन रखना, पोषण करना, नियमन करना, प्रतिबन्ध करना, रोकना, अवरोध करना, नाश करना, अन्त करना)। अवसानम् (अ - नहीं, अव = नीचे, दूर, प्राप्त, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना, सन् - दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना, वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। पृथिव्या (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अक्रन् (अ = नहीं, उपसर्ग, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, कृ = करना)। इमम् (सर्वनाम)। पितरो (पि - जाना, जानना, पाना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। लोकम् (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। अस्मै (सर्वनाम)॥ 45 ॥

559. संज्ञानम् असि कामधरणम्, मयि ते कामधरणम् भूयात्।
अग्नेः भस्म असि अग्नेः पुरीषम् असि, चितः स्थ परिचितः ऊर्ध्वचितः श्रयध्वम् ॥ 46 ॥

मन्त्रार्थ - संज्ञानम् = सम्यक् ज्ञान। कामधरणम् = कामनाओं का आधार। असि = हो। मयि = मुझमें। ते = तुम्हारा। कामधरणम् = कामनाओं का आधार। भूयात् = हो॥ अग्नेः = अग्नि का। भस्म = भस्म, प्रकाश, भोजन। असि = हो। अग्नेः = अग्नि का। पुरीषम् = पुरीष, पूर्णता, अग्रगामी, अग्रणी। असि = हो॥ चितः = चेतन। परिचितः = परिचित। ऊर्ध्वचितः = ऊर्ध्व, चेतना वाले, उच्च चेतना वाले, ऊर्ध्वचेता। स्थ = स्थित हो। श्रयध्वम् = सेवन करो, प्राप्त हो **॥ 46 ॥**

भावार्थ - सम्यक् ज्ञान, कामनाओं का आधार हो। मुझमें तुम्हारा कामनाओं का आधार हो॥ अग्नि का भस्म, प्रकाश, भोजन हो। अग्नि का पुरीष, पूर्णता, अग्रगामी, अग्रणी हो॥ चित अर्थात् चयनित या चेतन, परिचित अर्थात् परिचयनित, परिचेतन तथा ऊर्ध्वचेता हो। इसका सेवन करो, इस स्थिति को प्राप्त हो **॥ 46 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - संज्ञानम् (सम् - सम्यक्, भलीभाँति, ज्ञा - जानना)। असि (अस् - होना)। कामधरणम् (कम - चाहना, इच्छा करना, धृ - धारण करना)। मयि (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। भूयात् (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। अग्नेः(अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। भस्म (भस - खाना, चमकना, दोष लगाना, निन्दा करना)। पुरीषम् (पृ - पूर्ण करना, पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। चित (चित = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। स्थ (स्था- स्थित होना)। परिचित (परि = सभी तरफ, उपसर्ग, चि - चुनना, चयन करना, संग्रहण करना, पाना)। ऊर्ध्वचितः (ऊर्ध्व = उच्च, ऊपर, चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। श्रयध्वम् (श्रा = परिपक्व करना, पकाना, रांधना, उबालना, स्वेदन

करना, श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना)।46।।

560. अयम् सो अग्निः यस्मिन् सोमम्, इन्द्रः सुतम् दधे जठरे वावशानः।
सहस्रियम् वाजम् अत्यम् न सप्तिम्, ससवान् सन् स्तूयसे जातवेदः ।।47।।

मन्त्रार्थ - अयम् = यह। सो = वह। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् (है)। यस्मिन् = जिसमें। जठरे = जठर मे। वावशानः = इच्छुक। इन्द्रः = परम ऐश्वर्यमान। सुतम् = ऐश्वर्यवान्, उत्पन्न हुए को। सोमम् = सोम को, ऐश्वर्यवान् को। दधे = धारण करते हैं। सहस्रियम् = हजार। वाजम् = विद्या को, गति को। अत्यम् = सतत गमनीय को। न = के समान। सप्तिम् = पूर्ण, संलग्न को। ससवान् = ऐश्वर्यवान्, सृष्टिकर्ता। सन् = ही। जातवेदः = जातवेद, वेद को जानने वाले, वेद को उत्पन्न करने वाले। स्तूयसे = स्तुति करता है **।। 47 ।।**

भावार्थ - यह वह अग्नि अर्थात् परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् है, जिस जठर में कामनाशील इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यमान परमात्मा तथा ऐश्वर्यवान् जन सुत अर्थात् ऐश्वर्यवान्, उत्पन्न हुए सोम अर्थात् उत्पन्नकर्ता, ऐश्वर्यवान् को धारण करते हैं। सहस्र अर्थात् अनेकानेक विद्या, गति युक्त सतत गमनीय के समान सप्ति अर्थात् पूर्ण, संलग्न को। ससवान् = ऐश्वर्यवान्, सृष्टिकर्ता् = उत्पन्न, ऐश्वर्य में, सृष्टिकर्ता की स्तुति की, अतिशय शुद्ध। सन् = ही। जातवेदः = जातवेद, वेद को जानने वाले, वेद को उत्पन्न करने वाले। स्तूयसे = स्तुति करता है **।। 47 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम)। सो (सर्वनाम)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। यस्मिन् (सर्वनाम)। सोमम् (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। इन्द्रः (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। सुतम् (सु - उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। दधे (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। जठरे (जठ् - धारण करना)। वावशानः (वश् = इच्छा करना, चाहना)। सहस्रियम् (संख्या)। वाजम् (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना, वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वी - जाना, जानना, पाना, व्याप्त होना, इच्छा करना, आक्रमण करना, घेरना, भेजना, खाना, वे - बुनना, रचना करना, सृजन करना)। अत्यम् (अत् = सतत गति होना, इ = जाना, जानना, पाना)। न (अव्यय)। सप्तिम् (सप - पूर्ण होना, पूर्ण ज्ञान होना, पूरा समझना, पूर्णतया जानना, संसक्त होना, संलग्न होना, मिलाप होना)। ससवान् (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सस् = शुद्ध करना)। सन् (अव्यय)। स्तूयसे (स्तुञ् - प्रशंसा करना, स्तुति करना, पूजा करना, अर्चा करना, सेवा करना, भजन करना)। जातवेदः (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जा-ज्ञा - जानना, विद् - जानना) **।। 47 ।।**

561. अग्ने यत् ते दिवि वर्चः पृथिव्याम्, यत् ओषधीषु अप्सु आ यजत्र।
येन अन्तरिक्षम् उरु आ ततन्थ, त्वेषः स भानुः अर्णवो नृचक्षाः ।।48 ।।

मन्त्रार्थ - आ यजत्र = हे समन्तात्, सम्यक्, यजन के पालक-रक्षक। अग्ने = हे अग्नि। यत् = जो। ते = तुम्हारा। वर्चः = प्रकाश। दिवि = दिव्यता में, दिव, तेज, ज्योति में। पृथिव्याम् = पृथ्वी पर। यत् = जो। ओषधीषु = ओषधियों में। अप्सु = पालन-रक्षण में (है)। येन = जिसके द्वारा। अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष या आकाश को। उरु = बहुत। आ = समन्तात्, सम्यक्। ततन्थ = विस्तार किया। स = वह। त्वेषः = प्रकाशवान्। भानुः = प्रकाशकर्ता। अर्णवो = अर्णव, गतिशील, विद्वान्, गति, ज्ञान युक्त, रतिहीन, प्राप्त होने वाले, अहिंसक। नृचक्षाः = नरों को देखने वाले **(हैं) ।। 48 ।।**

भावार्थ - हे समन्तात्, सम्यक्, यजन के पालक-रक्षक, हे अग्नि अर्थात् परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्, जो तुम्हारा प्रकाश दिव्यता में, दिव में, पृथ्वी पर है और जो ओषधियों में, पालन-रक्षण में है, जिसके द्वारा अन्तरिक्ष या आकाश को बहुत समन्तात्, सम्यक् विस्तार किया, वह प्रकाशवान्, प्रकाशकर्ता, अर्णव, गतिशील, विद्वान्, गति, ज्ञान युक्त, रतिहीन, अहिंसक जन नरों को देखने वाले मार्गदर्शक **हैं ।। 48 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। यत् (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। दिवि (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। वर्चः (वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। पृथिव्याम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। ओषधीषु (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। अप्सु (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना)। आ (उपसर्ग)। यजत्र (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना, त्रै - पालन करना)। येन (सर्वनाम)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। उरु (सर्वनाम)। ततन्थ (तन् = विस्तार, फैलाना, शब्द करना)। त्वेषः (त्विष - प्रकाशित होना, चमकना)। स (सर्वनाम)। भानुः (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। अर्णवो (अ - नहीं, अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, जाना, जानना, पाना, दुर्गति होना)। नृचक्षाः (नृ- ले जाना, चक्ष - देखना)॥ 48॥

562. अग्ने दिवो अर्णम् अच्छा जिगासि, अच्छा देवान् ऊचिषे धिष्ण्या ये।
या रोचने परस्तात् सूर्यस्य, याः च अवस्तात् उप-तिष्ठन्ते आपः॥49॥

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि। दिवो = दिव्य, स्तुतिकर्ता, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। अर्णम् = अर्ण को, गतिशील, विद्वान्, गति, ज्ञान युक्त, रतिहीन, प्राप्त होने वाले, अहिंसक को। अच्छा = अच्छा, निर्मल। जिगासि = जानते हो, प्राप्त करते हो, स्तुति करते हो॥ ये = जो। अच्छा = अच्छा, निर्मल। देवान् = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों को। धिष्ण्या = वाणी द्वारा। ऊचिषे = कहते हैं॥ या = जो। आपः = आप, व्याप्त, व्यापक। सूर्यस्य = सूर्य का। परस्तात् = पर से, अन्य से, परे या पृथक्। च = और। याः = जो। अवस्तात् = रक्षा करे। रोचने = प्रकाश में। उप-तिष्ठन्ते = उपस्थित हैं, समीप स्थित हैं **॥49॥**

भावार्थ - हे अग्नि अर्थात् परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्, दिव्य, स्तुतिकर्ता, तेजस्वी, ज्योतिर्मय, अर्ण को, गतिशील, विद्वान्, गति, ज्ञान युक्त, रतिहीन, प्राप्त होने वाले, अहिंसक को अच्छा, निर्मल जानते हो, प्राप्त करते हो, स्तुति करते हो॥ जा अच्छा, निर्मल विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों को वाणी द्वारा कहते हैं, जो व्यापक होकर सूर्य के परे और जो उसके नीचे प्रकाश में उपस्थित हैं, समीप स्थित हैं, वे सभी हमारे लिए उपयोगी प्रकृति हैं तथा संरक्षणीय हैं **॥49॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। दिवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। अर्णम् (अ - नहीं, अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, जाना, जानना, पाना, दुर्गति होना)। अच्छा (अच्छ् - अच्छा होना, निर्मल करना)। जिगासि (गा-जिगा - स्तुति करना, प्रशंसा करना, जाना, जानना, पाना)। देवान् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। ऊचिषे (ऊ - शब्द करना, विश्वास करना, ऊ-अव् - रक्षा करना)। धिष्ण्या (धिष् = शब्द करना, बोलना)। ये (सर्वनाम)। या (सर्वनाम)। रोचने (रुच् = रुचना, प्रकाशित होना, प्रसन्न होना)। परस्तात् (सर्वनाम)। सूर्यस्य (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। याः (सर्वनाम)। च (अव्यय)। अवस्तात् (अ - नहीं, अव = नीचे, दूर, प्राप्त, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। उप-तिष्ठन्त (उप - समीप, तिष्ठ् - ठहरना, स्थित होना)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)।49॥

(133) सूक्त 11

563. पुरीष्यासो अग्नयः, प्रावणेभिः सजोषसः।जुषन्ताम् यज्ञम् अद्रुहो, अनमीवा इषो महीः॥50॥

मन्त्रार्थ - पुरीष्यासो = अग्रगामी, अग्रणी। सजोषसः = विचारवान्, सेवाभावी। अग्नयः = अग्निगण, अग्नियाँ,

ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। अद्रुहो = द्रोह न करने वाला। अनमीवा = निरोगी, रोगमुक्त। इषो = प्रगतिशील, ज्ञानी। महीः = मही, महिमावान्, महान्। यज्ञम् = यजन को। प्रावणेभिः = शब्दकर्ताओं, विद्वानों, प्रकृष्ट रक्षाओं द्वारा। जुषन्ताम् = सेवन करें **॥ 50 ॥**

भावार्थ - अग्रगामी, अग्रणी विचारवान्, सेवाभावी अग्नि अर्थात् ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्, द्रोह न करने वाले, निरोगी, रोगमुक्त, प्रगतिशील, ज्ञानी, महिमावान्, महान् जन यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान जैसे सत्कर्मों को शब्दकर्ताओं, विद्वानों, प्रकृष्ट रक्षाओं द्वारा सेवा करें, सहयोग प्रदान करें **॥ 50 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - पुरीष्यासो (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। अग्नयः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। प्रावणेभिः (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अव् - रक्षा करना)। सजोषसः (स - साथ, सहित, जुष् = प्रसन्न करना, सन्तुष्ट करना, चाहना, दुलार करना, प्रीति करना, विचार करना, विवेक-विवेचना करना, हिंसा करना, सेवा करना)। जुषन्ताम् (जुष् = विचार करना, सेवा करना, सेवन करना, विवेक होना, विवेचना करना, प्रीति करना, चाहना, दुलारना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। यज्ञम् (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना)। अद्रुहो (अ - नहीं, द्रुह् - द्रोह करना)। अनमीवा (अन् - नहीं, अम् - गति करना, जानना, जाना, पाना, शब्द करना, खाना, सेवा करना, रोग होना)। इषो (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। महीः (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)॥ 50 ॥

564. इडाम् अग्ने पुरुदंसम् सनिम्, गोः वाचः शश्वत्तमम् हवमानाय साध।
स्यात् नः सूनुः तनयो विजावा, अग्ने सा ते सुमतिः भूतु अस्मै॥ 51 ॥

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि। इडाम् = इडा को, स्तुत, स्तुति योग्य को। पुरुदंसम् = परिपूर्ण, अग्रगामी, अग्रणी, देखने वालों को, बोलने वालों को। सनिम् = दानी को। गोः = शब्द करने वाला, मननशील, उपदेशक। वाचः = वाणी। शश्वत्तमम् = अत्यन्त शश्वत को। हवमानाय = दानी, आदान-प्रदान कर्ता, आह्वान कर्ता के लिए, तृप्त करने वाले के लिए। साध = साधो, सिद्ध करो। नः = हमारा। सूनुः = सन्तान। तनयो = विस्तार, तनय को। **वजावा** = विशेष, विविध उत्पत्तिकर्ता। स्यात् = हो॥ अग्ने = हे अग्नि। सा = वह। अस्मै = इसके लिए। ते = तुम्हारे लिए। सुमतिः = सुमति, सुबुद्धि। भूतु = हों।**॥51 ॥**

भावार्थ - हे अग्नि, इडा अर्थात् स्तुत, स्तुति योग्य, परिपूर्ण, अग्रणी, देखने, बोलने वालों को, दानी को, शब्द करने वाला, मननशील, उपदेशक, अत्यन्त शश्वत वाणी को दानी, आदान-प्रदान कर्ता, आह्वान कर्ता के लिए, तृप्त करने वाले के लिए साधो, सिद्ध करो। हमारा सन्तान तनय विशेष उत्पत्तिकर्ता हो॥ हे अग्नि, इसके लिए वह तुम्हारी सुमति, सुबुद्धि हों॥ **51 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इडाम् (इड - धारण करना, घर्षण करना, छेदन करना, ईड् = स्तुति करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पुरुदंसम् (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना, दंस् - डसना, काटना, देखना, शब्द करना)। सनिम् (सन् - दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना, सेवा करना, चाकरी करना)। गोः (गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना)। वाचः (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। शश्वत्तमम् (शश्व् - नित्य होना, सदैव रहना, शश्वत होना, शाश्वत होना)। हवमानाय (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। साध (साध - पूर्ण करना, सिद्ध करना, जय पाना, जीतना, यशस्वी होना, साधना करना)। स्यात् (अस् = होना)। नः (सर्वनाम)। सूनुः (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना)। तनयो (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। विजावा (वि - विशेष, विविध, जन् - उत्पन्न करना)। सा (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। सुमतिः (सु - सुन्दर, अच्छा, सु - उत्पन्न करना, पैदा करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, मन - मनन करना, जानना, समझना, स्वीकार करना, अभ्यास करना, स्थिर होना, गर्व होना)। भूतु (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। अस्मै

(सर्वनाम)।51।।

565. अयम् ते योनिः ऋत्वियो, यतो जातो अरोचथाः।
तम् जानन् अग्ने आ रोह, अथ नो वर्धया रयिम्।।52।।

मन्त्रार्थ - अयम् = यह। ते = तुम्हारा। ऋत्वियो = ऋतु सम्बन्धी। योनिः = बन्धन, मिलन स्थान (है)। यतो = जिससे। जातो = उत्पन्न हुआ। अरोचथाः = रुचा, प्रसन्न, उत्साहित, प्रकाशित हुआ।। अग्ने = हे अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। तम् = उसको। जानन् = जानते हुए। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। रोह = चढ़े, बढ़ें। अथ = अब, इसके अनन्तर। नो = हमारे लिए। रयिम् = विद्या, ज्ञान। वर्धया = बढ़ाओ **।। 52 ।।**

भावार्थ - यह तुम्हारा सभी ऋतुओं में निवासयोग्य योनि अर्थात् बन्धन, मिलन का स्थान है, जिससे उत्पन्न होकर प्रसन्न, उत्साहित, प्रकाशित होते हैं। हे अग्नि स्वरूप परमात्मा, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्, उसको जानते हुए आरोहण करो **अर्थात्** सम्यक् बढ़ें। इसके अनन्तर हमारे लिए रयि अर्थात् प्रगति, विद्या, ज्ञान को बढ़ाओ **।। 52 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। ऋत्वियो (ऋ = जाना, जानना, ऋतु)। यतो (सर्वनाम)। जातो (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। अरोचथाः (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, रुच् - रुचना, चमकाना, प्रकाशित होना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, रुचना, प्रीति होना, उत्साह होना)। तम् (सर्वनाम)। जानन् (ज्ञा-जा - जानना, समझना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। अग्ने (अग् = जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, गति करना, घूमना, टेढ़ा जाना, आगे जाना, लेना, ग्रहण करना)। आ (उपसर्ग)। रोह (रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। अथ (अव्यय)। नो (सर्वनाम)। वर्धया (वृध् = बढ़ना, चमकना, बोलना)। रयिम् (रय्-रि, री - चलना, जाना, जानना, पाना, री-रै - शब्द करना)।। 52 ।।

566. चित् असि तया देवतया, अङ्गिरस्वत् ध्रुवा सीद।
परिचित् असि तया देवतया, अङ्गिरस्वत् ध्रुवा सीद।।53।।

मन्त्रार्थ - चित् = चयनित, चेतन। असि = हो। तया = उसके द्वारा। देवतया = देवत्व, दिव्यता द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, अंगों में व्याप्त के समान, विद्वान्, प्रगतिशील के समान। ध्रुवा = ध्रुव, अचल, स्थिर, अविचल गतिशील। सीद = बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों। परिचित् = परिचित। असि = हो। तया = उसके द्वारा। देवतया = देवत्व, दिव्यता द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, अंगों में व्याप्त के समान, विद्वान्, प्रगतिशील के समान। ध्रुवा = ध्रुव, अचल, स्थिर, अविचल गतिशील। सीद = बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **।। 53 ।।**

भावार्थ - चेतन, सजग होकर ही हम दिव्यता तथा प्रगति को प्राप्त कर सकते हैं। अतः कहा गया है कि चित् अर्थात् चयनित, चेतन हो। उसके द्वारा देवत्व, दिव्यता द्वारा अंगिरा के समान, अंगों में व्याप्त के समान, विद्वान्, प्रगतिशील के समान ध्रुव अर्थात् अविचल प्रगतिशील होकर संचरण करें, प्रतिष्ठित हों। परिचित अर्थात् परिचयनित, परिचेतन हो। उसके द्वारा देवत्व, दिव्यता द्वारा अंगिरा के समान, अंगों में व्याप्त के समान, विद्वान्, प्रगतिशील के समान ध्रुव अर्थात् अविचल प्रगतिशील होकर संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **।। 53 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - चित् (अव्यय)। असि (अस् - होना)। तया (सर्वनाम)। देवतया (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। ध्रुवा (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। सीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। परिचित् (परि = सभी तरफ, उपसर्ग, चि - चुनना, चयन करना, संग्रहण करना, पाना)।। **53 ।।**

567. लोकम् पृण छिद्रम् पृण, अथो सीद ध्रुवा त्वम्। इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिः, अस्मिन् योनौ असीषदन्।54।।

मन्त्रार्थ- त्वम् = तुम। लोकम् = लोक को, दर्शन को। पृण = पूर्ण करो। छिद्रम् = छिद्र को। पृण = पूर्ण करो। अथो

= अब, इसके अनन्तर। ध्रुवा = ध्रुव, अविचल प्रगतिशील होकर। सीद = संचरण करों, प्रतिष्ठित हों।। त्वा = तुमको। इन्द्राग्नी = इन्द्र और अग्नि। बृहस्पतिः = बृहस्पति, महान्, बड़ा। अस्मिन् = इसमें। योनौ = योनि में, मिलाने, अलग करने के स्थान में, बन्धन में। असीषदन् = संचरण किया, प्रतिष्ठित किया **॥ 54 ॥**

भावार्थ - हम इस लोक को, समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयास करें तथा अपने छिद्रों, दोषों तथा समाज की अनुचित मान्यताओं, परम्पराओं, समस्याओं का दूर करें तो ऐसे लोक-सेवियों को प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। अतः कहा गया है कि तुम लोक को, दर्शन को पूर्ण करो। छिद्र को पूर्ण करो। इसके अनन्तर ध्रुव, अविचल प्रगतिशील होकर संचरण करों, प्रतिष्ठित हों।। त्वा = तुमको। इन्द्राग्नी = इन्द्र और अग्नि तथा बृहस्पति ने इस योनि में अर्थात् मिलाने, अलग करने के स्थान में, बन्धन में प्रतिष्ठित किया है **॥ 54 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - लोकम् (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। पृण (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना)। छिद्रम् (छिद्र - छेद करना)। अथो (अव्यय)। सीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। ध्रुवा (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। त्वम् (सर्वनाम)। इन्द्राग्नी (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना, पीना)। त्वा (सर्वनाम)। अस्मिन् (सर्वनाम)। योनौ (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। असीषदन् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)।। 54 ।।

(134) सूक्त 12

568. ता अस्य सूददोहसः, सोमम् श्रीणन्ति पृश्नयः। जन्मन् देवानाम् विशः, त्रिषु आ रोचने दिवः ॥ 55 ॥

मन्त्रार्थ- ता = वे। अस्य = इसका। **सूददोहसः** = पवित्रता का दोहन करने वाले। पृश्नयः = अभिसिञ्चक, सहनशील, प्रश्नकर्ता। सोमम् = सोम को, सृजनकर्ता, ऐश्वर्यवान् को। देवानाम् = देवों का। जन्मन् = जन्म। विशः = प्रतिष्ठित। त्रिषु = तीनों में। आ = सम्यक्। रोचने = प्रकाश में। दिवः = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। श्रीणन्ति = सेवा करते हैं, आश्रय करते हैं **॥ 55 ॥**

भावार्थ - पवित्रता का दोहन करने वाले अभिसिञ्चक, सहनशील, प्रश्नकर्ता सोम अर्थात् सृजनकर्ता, ऐश्वर्यवान् को सेवन करते हैं, आश्रय करते हैं। देवों का प्रतिष्ठित जन्म देते हुए तीनों कालों में दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय के सम्यक् प्रकाश में सेवा करते हैं, आश्रय करते हैं **॥ 55 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ता (सर्वनाम)। अस्य (सर्वनाम)। सूददोहसः (सूद् - टपकना, झरना, आश्रय करना, शुद्ध करना, पवित्र करना, दुह - दूध निकालना, दोहना, रिक्त करना, लेना, खींचना)। सोमम् (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। श्रीणन्ति (श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना)। पृश्नयः (पृश् = प्रश्न करना, पूंछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। जन्मन् (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। देवानाम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। विश (विश - भीतर जाना, चारों ओर फैलना, धंसना)। त्रिषु (त्रि = तीन, संख्या, सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। रोचने (रुच् = रुचना, प्रकाशित होना, प्रसन्न होना)। दिवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)।। 55 ।।

569. इन्द्रम् विश्वा अवीवृध्न्, समुद्रव्यचसम् गिरः। रथीतमम् रथीनाम्, वाजानाम् सत्पतिम् पतिम् ॥ 56 ॥

मन्त्रार्थ - विश्वा = विश्व ने, सभी ने। इन्द्रम् = इन्द्र को, परम ऐश्वर्यवान् को। समुद्रव्यचसम् = समुद्र की व्यापकतायुक्त को। गिरः = वाणियाँ, बोध, सिञ्चन को। रथीनाम् = रथियों के। रथीतमम् = अत्यन्त रथी, महारथी को।

वाजानाम् = वाजों का, विद्या का, गति का। सत्पतिम् = सत्य के पति, सत्य के पालक, रक्षक को। पतिम् = अधिपति, रक्षक, पालक **को**। अवीवृध्न् = वर्धित किया, बढ़ाया **॥ 56 ॥**

भावार्थ - सभी ने इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा को वर्धित किया, बढ़ाया अर्थात् साधना-उपासना से अपने जीवन में उसकी अनुभूति को प्राप्त किया। वह इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा समुद्र के समान व्यापकतायुक्त, गिरः **अर्थात्** वाणियाँ, बोध, सिञ्चन करने वाला, रथियों में अत्यन्त रथी, महारथी है, वाजों अर्थात् विद्या का, गति का सत्पति है, सत्य का पालक, रक्षक है, सम्पूर्ण सृष्टि का अधिपति, रक्षक, पालक **है ॥ 56 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इन्द्रम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। विश्वा (सर्वनाम)। अवीवृध्न् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना, वी- जाना, व्यापना, वृध् - बढ़ना)। समुद्रव्यचसम् (सम् = सम्यक्, भलीभांति, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना, व्यच् - व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, ठगना, वि - विशेष, अच् - जाना, मरना, आदर करना, याचना करना)। गिरः (गृ - सींचना, गीला करना, समझना, जानना, गृ - शब्द करना)। रथीतमम् (रम् - रमना, रमण करना)। रथीनाम् = रथियों का (रम् - रमना, रमण करना)। वाजानाम् (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। सत्पतिम् (सत् - होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। पतिम् (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)॥ 56 ॥

570. सम् इतम् सम् कल्पेथाम्, संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ। इषम् ऊर्जम् अभि संवसानौ ॥ 57 ॥

मन्त्रार्थ - संप्रियौ = सम्यक् प्रिय युगल, उत्तम प्रेमी युगल। रोचिष्णू = प्रकाशमान युगल। सुमनस्यमानौ = उत्तम विचार वाले युगल। अभि = अभिमुख, विशेष। संवसानौ = सम्यक्, स्नेहपूर्वक निवास करने वाले युगल ने। इषम् = इच्छा, गति, ज्ञान, दृष्टि को। ऊर्जम् = ऊर्जा को। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। इतम् = गति, ज्ञान, प्रकाश को प्राप्त करें। सम् = सम्यक्। कल्पेथाम् = कल्पना करें, रचना करें **॥ 57 ॥**

भावार्थ - उत्तम प्रेमी युगल, प्रकाशमान, उत्तम विचार वाले होकर इच्छा, गति, ज्ञान, दृष्टि, ऊर्जा को अभिमुख, सम्यक्, स्नेहपूर्वक निवास करने वाले युगल सम्यक् गति, ज्ञान, प्रकाश प्राप्त करें तथा सम्यक् अभिकल्पना करें, रचना करें **॥ 57 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सम् (उपसर्ग)। इतम् (इ - जाना, जानना, पाना, इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। कल्पेथाम् (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। संप्रियौ (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति (उपसर्ग), प्री = स्नेह करना, प्यार करना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना, चाहना)। रोचिष्णू (रुच् = रुचना, प्रकाशित होना, प्रसन्न होना)। सुमनस्यमानौ (सु - सुन्दर, अच्छा, सु - उत्पन्न करना, पैदा करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, मन - मनन करना, जानना, समझना, स्वीकार करना, अभ्यास करना, स्थिर होना, गर्व होना)। इषम् (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। ऊर्जम् (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। अभि (उपसर्ग)। संवसानौ (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति (उपसर्ग), वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)॥ 57 ॥

571. सम् वाम् मनांसि सम् व्रता, सम् उ चित्तानि आ अकरम्।
अग्ने पुरीष्य अधिपा भव त्वम्, नः इषम् ऊर्जम् यजमानाय धेहि ॥ 58 ॥

मन्त्रार्थ - वाम् = तुमको। सम् = सम्यक्। मनांसि = मन। सम् = सम्यक्। व्रता = व्रत वाले। सम् = सम्यक्। उ = निश्चय ही, भी। चित्तानि = चित्त या चेतना, ज्ञान। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। अकरम् = किया॥ पुरीष्य = है पुरीष्य, अग्रगामी, अग्रणी। अग्ने = हे अग्नि। अधिपा = अधिपालक, रक्षक। भव = हो॥ त्वम् = तुम। इषम = इच्छा, गति,

ज्ञान, दृष्टि को। ऊर्जम् = ऊर्जा को। नः = हमारे। यजमानाय = यजमान के लिए। धेहि = धारण करें **॥ 58 ॥**

भावार्थ - तुमको सम्यक् मन, सम्यक् व्रत, सम्यक् ही चित्त या चेतना, ज्ञान्, सम्यक् किया है। है पुरीष्य अर्थात् अग्रगामी, अग्रणी, हे अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्, तुम अधिपालक, रक्षक हो। तुम इच्छा, गति, ज्ञान, दृष्टि, ऊर्जा को हमारे यजमान के लिए धारण करें **॥ 58 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सम् (उपसर्ग)। वाम् (सर्वनाम)। मनांसि (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। व्रता (वृत् = रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ = नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)। उ (सर्वनाम)। चित्तानि (चि - चुनना, एकत्र करना, चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, सम्यक् ज्ञान होना, स्मरण करना, शंका करना, सन्देह करना)। आ (उपसर्ग)। अकरम् (अ = नहीं, उपसर्ग, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, कृ = करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पुरीष्य (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। अधिपा (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पा - रक्षा-पालन करना)। भव (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। त्वम् (सर्वनाम)। न (अव्यय)। इषम (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। ऊर्जम् (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। यजमानाय (यज = देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। धेहि (धा-धि-धी - धारण करना, पहनना, पोषण करना, रक्षण करना, देना)॥ 58 ॥

572. अग्ने त्वम् पुरीष्यो, रयिमान् पुष्टिमान् असि।
शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः, स्वम् योनिम् इह आ असदः ॥ 59 ॥

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि स्वरूप परमात्मा, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। त्वम् = तुम। पुरीष्यो = पुरीष्य, अग्रगामी, अग्रणी। रयिमान् = विद्वान्, विद्या, ज्ञान युक्त। पुष्टिमान् = पुष्टियुक्त, पोषणयुक्त। असि = हो। स्वम् = अपने को, स्वयम् को। योनिम् = बन्धन, मिलन स्थान को। सर्वाः = सभी। दिशः = दिशायें, दिशाओं को। शिवाः = कल्याणकारी। कृत्वा = करके, करने के अनन्तर। इह = इसमें, यहाँ। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। असदः = बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **।59 ॥**

भावार्थ - हे अग्नि स्वरूप परमात्मा, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्, तुम अग्रगामी, अग्रणी विद्वान्, पुष्टिमान् हो। अपने योनि अर्थात् बन्धन, मिलन स्थान सभी दिशाओं को कल्याणकारी बनाकर यहाँ सम्यक् संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **॥ 59 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। त्वम् (सर्वनाम)। पुरीष्यो (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। रयिमान् (रय्-रि, री - चलना, जाना, जानना, पाना, री-रै - शब्द करना)। पुष्टिमान् (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, रक्षण करना, वृद्धि करना, विभाग करना)। असि (अस् - होना)। शिवाः (शिव् = कल्याण करना)। कृत्वा (कृ - करना)। दिशः (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। सर्वाः (सर्वनाम)। स्वम् (सर्वनाम)। योनिम् (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। इह (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। असदः (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)॥ 59 ॥

573. भवतम् नः समनसौ, सचेतसौ अरेपसौ।
मा यज्ञम् हिंसिष्टम् मा यज्ञपतिम्, जातवेदसौ शिवौ भवतम् अद्य नः ॥ 60 ॥

मन्त्रार्थ : नः हमारे लिए **समनसौ** समान मन वाले, **सचेतसौ** समान चित्त वाले, **अरेपसौ** अहिंसक **भवतम्** बनो (हो जाओ)। **यज्ञम्** यजन व **यज्ञपतिम्** यजनपति की **मा** न **हिंसिष्टम्** हिंसा करें। **अद्य** आज **नः** हमारे लिए **जातवेदसौ** जातवेद

(वेद से उत्पन्न) **शिवौ** शिव (कल्याणकारी) **भवतम्** होवें।। **60 ।।**

भावार्थ :- ईश्वर से हमारी यह प्रार्थना है और उपासकों से यही अपेक्षा भी है। मन, चित्त समान हों, अहिंसक हों, कल्याणकारी हों तो सभी सुखी हो सकते हैं **।। 60 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : भवतम् (भू = होना)। **नः** (सर्वनाम)। **समनसौ** (स + मनसौ, स - सहित, साथ, सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **सचेतसौ** (स - सहित, साथ, चित - विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। **अरेपसौ** (ऋ-अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, ऋ = जाना, पाना, मिलाना, अ - नहीं, रेप - जाना, शब्द करना, रि-हिंसा करना, जाना, जानना, पाना)। **मा** (अव्यय)। **यज्ञम्** (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **हिंसिष्टम्** (हिंस् = हिंसा करना, मारना)। **यज्ञपतिम्** (यज - देवपूजा करना, देना, संगति करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना)। **जातवेदसौ** (जन् = उत्पन्न होना, विद् = जानना)। **शिवौ** (शिव् = कल्याण करना)। **भवतम्** (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **अद्य** = आज (अव्यय)।। **60 ।।**

(135) सूक्त 13

574. मातेव पुत्रम् पृथिवी पुरीष्यम्, अग्निम् स्वे योनौ अभाः उखा।
ताम् विश्वैः देवैः ऋतुभिः संविदानः, प्रजापतिः विश्वकर्मा वि मुञ्चतु ।।61 ।।

मन्त्रार्थ- पुत्रम् = पुत्र को। उखा = प्रगतिशील, विद्वान्। मातेव = माता के समान। पृथिवी = पृथ्वी, विस्तृत भूमि, विस्तार। पुरीष्यम् = पुरीष्य को, अग्रगामी को, अग्रणी को। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। स्वे = अपने लिए, अपने साथ। योनौ = योनि में, मिलाने अलग करने, बन्धन, सम्बन्ध में। अभाः = प्रकाशित हुआ, प्रकाश किया अथवा भरण किया। ताम् = उसको। विश्वैः = विश्व द्वारा, सभी द्वारा, सभी के साथ। देवैः = देवों द्वारा, देवों के साथ। ऋतुभिः = ऋतुओं द्वारा। संविदानः = सम्यक् रूप से दान करने वाले। प्रजापतिः = प्रजापति, प्रजा का रक्षक, पालक। विश्वकर्मा = विश्वकर्मा, सभी कर्म करने वाले। वि = विशेष। मुञ्चतु = मुक्त करों।। **61 ।।**

भावार्थ - पुत्र को उखा = प्रगतिशील, विद्वान्। माता के समान पृथ्वी अर्थात् विस्तृत भूमि या समाज पुरीष्य अर्थात् अग्रगामी, अग्रणी को अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् को अपने लिए, अपने साथ योनि में, मिलाने अलग करने, बन्धन, सम्बन्ध में प्रकाशित हुआ, प्रकाश किया अथवा भरण-पोषण किया। भा धातु का अर्थ प्रकाश करना है। विद्वानों भाः पद को भृ धातु से भी व्युत्पन्न माना है। भृ धातु का अर्थ भरण-पोषण करना है। उसको। विश्व अर्थात् सभी देवों द्वारा, देवों के साथ, ऋतुओं द्वारा अथवा ऋतुओं के साथ सम्यक् रूप से दान करने वाले प्रजापति अर्थात् प्रजा का रक्षक, पालक विश्वकर्मा अर्थात् सभी कर्म करने वाले विमुक्त करें।। **61 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मातेव (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना, इव - के समान, अव्यय)। पुत्रम् (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। पृथिवी (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। पुरीष्यम् (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। स्वे (सर्वनाम)। योनौ (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। अभाः (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भा = चमकना, प्रकाश होना)। उखा (उख् - चलना, जाना, जलना)। ताम् (सर्वनाम)। विश्वैः (सर्वनाम)। देवैः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। ऋतुभिः (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। संविदानः (सम् - सम्यक्, सम् - न घबराना, एक समान रहना, वद - शरीर की सुध रखना, समझना, जानना, समझा के कहना, रहना, वास करना, वसना, स्थिर रहना, दा - देना)। प्रजापतिः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। विश्वकर्मा (विश्व - सभी, कृ - करना)। वि (उपसर्ग)। मुञ्चतु (मुञ्च् - बोलना, कहना, मुक्त करना, त्याग करना)।। 61।।

575. असुन्वन्तम् अयजमानम् इच्छ, स्तेनस्य इत्याम् अनु इहि तस्करस्य।
अन्यम् अस्मत् इच्छ, सा ते इत्या, नमो देवि निर्ऋते तुभ्यम् अस्तु॥62॥

मन्त्रार्थ - असुन्वन्तम् = ऐश्वर्य न देने वाले, आसवन न करने वाले को, उत्पन्न न करने वाले को। अयजमानम् = यजन न करने वाले को। इच्छ = इच्छा करें। स्तेनस्य = चोर की। तस्करस्य = तस्कर का, रक्षक का, खोदने, फेकने, उड़ाने वाले का। इत्याम् = प्राप्ति, गति, ज्ञान को। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल। इहि = आओ, जानों॥ अन्यम् = अन्य, कोई और, इतर। अस्मत् = हमसे। इच्छ = इच्छा करें॥ सा = वह। ते = तुम्हारा। इत्या = प्राप्य, गति, ज्ञान (है)॥ देवि = हे देवी, तेजस्विनी। निर्ऋते = हे निर्ऋता, निरन्तर ऋतयुक्त। तुभ्यम् = तुम्हारे लिए। नमो = नमन। अस्तु = हो **॥62॥**

भावार्थ - **ऋत** महत्वपूर्ण वैदिक अवधारणा है। ऋत का अर्थ है सृष्टि तथा समाज के समुचित सञ्चालन की प्राकृतिक नियम व्यवस्था। निर्ऋता, निरन्तर ऋतयुक्त देवी अर्थात् दिव्य भावनायुक्त शक्ति। यह समाज के नियमन की शक्ति है। इसे हम शासन-व्यवस्था भी कह सकते हैं। उससे कहा गया है कि वह असुन्वन्तम् **अर्थात्** ऐश्वर्य न देने वाले, आसवन न करने वाले को, उत्पन्न न करने वाले को तथा यजन न करने वाले को चाहें, उसकी इच्छा करें। स्तेन अर्थात् चोर का तथा तस्कर **अर्थात्** रक्षक का, खोदने, फेकने, उड़ाने वाले का इत्या अर्थात् प्राप्ति, गति, ज्ञान को जानो। प्रशासन का दायित्व है कि वह चोर आदि अपराधियों को चाहे, उन्हें अपना लक्ष्य बनाये। उनके पीछे जाये, उन्हें पकड़े। वह हमसे अन्य की इच्छा करें। हम तो वैदिक उपासक हैं, लोक-हितैषी हैं, अतः शासन हमारे पीछे न पड़े। ऐसे कर्तव्यनिष्ठ न्यायपालक शासन-प्रशासन की दिव्य व्यवस्था को हम नमन करते हैं। अतः कहते हैं कि वह तुम्हारा प्राप्य, गति, ज्ञान है। निर्ऋते **अर्थात्** हे निर्ऋता, निरन्तर ऋतयुकत हे देवी, तेजस्विनी, तुम्हारे लिए नमन हो **॥62॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - असुन्वन्तम् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना, सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। अयजमानम् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, यज् - देव-पूजन, संगतिकरण, दान करना)। इच्छ (इच्छ = इच्छा करना, कामना करना, चाहना)। स्तेनस्य (स्तेन - चुराना, लूटना)। इत्याम् (इ - जाना, जानना, पाना)। अनु (उपसर्ग)। इहि (इ = जाना, जानना, पाना)। तस्करस्य (तस् - रक्षा करना, स्थापना करना, भेजना, फेकना, उड़ाना, खोदना, कुम्हलाना। अन्यम् (सर्वनाम)। अस्मत् (सर्वनाम)। इच्छ (इच्छ = इच्छा करना, कामना करना, चाहना)। सा (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। इत्या (इ - जाना, जानना, पाना)। नमो (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। देवि (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। निर्ऋते (निः - निश्चित रूप से, निरन्तर, ऋ - गति, ज्ञान, प्राप्ति होना, हिंसा करना)। तुभ्यम् (सर्वनाम)। अस्तु (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)॥ 62॥

576. नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजो, अयस्मयम् वि चृता बन्धम् एतम्।
यमेन त्वम् यम्या सम् विदाना, उत्तमे नाके अधि रोहय एनम्॥63॥

मन्त्रार्थ- निर्ऋते = हे निर्ऋता, निरन्तर ऋतयुक्त। तिग्मतेजो = तिग्मतेज वाले। एतम् = इसको। अयस्मयम् = अयःमय को, प्रगतिशील को। बन्धम् = बन्ध को। वि = विशेष। चृता = गूँथने वाले, एकत्र करने वाले, संगठनकर्ता। ते = तुम्हारे लिए। सु = सुतराम्, उत्तम। नमः = नमन॥ त्वम् = तुम। यम्या = यम्य, यमनीय, यमनयोग्य। सम् = सम्यक्, भलीभाँति। विदाना = विद्वान्, दानी। यमेन = यम द्वारा। एनम् = इसको, इसे। उत्तमे = उत्तम मे। नाके = अकुटिलता में, नाक, अक रहित, अकुटिल, अविचल में। अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः। रोहय = चढायें, बढ़ायें **॥63॥**

भावार्थ - **ऋत** महत्वपूर्ण वैदिक अवधारणा है। ऋत का अर्थ है सृष्टि तथा समाज के समुचित सञ्चालन की प्राकृतिक नियम व्यवस्था। निर्ऋता, निरन्तर ऋतयुक्त देवी अर्थात् दिव्य भावनायुक्त शक्ति। यह समाज के नियमन की शक्ति है। इसे हम शासन-व्यवस्था भी कह सकते हैं। वह व्यवस्था तिग्मतेज अर्थात् तीक्ष्ण तेजयुक्त होनी चाहिए। इस प्रगतिशील

प्रबन्ध को विशेष गूँथने वाले, एकत्र करने वाले, संगठनकर्ता के लिए उत्तम नमन है। वह विद्वान्, दानी नियम-व्यवस्था द्वारा इस समाज और राष्ट्र को उत्तम अकुटिल, अविचल शासन-प्रबन्ध में चढायें, बढ़ायें, यही कामना है **॥ 63 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नमः (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। सु (उपसर्ग)। ते (सर्वनाम)। निर्ऋते (निः - निश्चित रूप से, निरन्तर, ऋ - गति, ज्ञान, प्राप्ति होना, हिंसा करना)। तिग्मतेजो (तिग् = जाना, जानना, पाना, कूटचाल चलना, तिज्-तेज् = चमकना, चमकाना, पैना करना)। अयस्मयम् (अय - जाना, जानना, पाना, मय -जाना, जानना, पाना, कठिन कार्य करना)। वि (उपसर्ग)। चृता (चृत् - प्रकाशित करना, चमकाना, जलाना, एकत्र कर बाँधना, गूँथना, हिंसा करना)। बन्धम् (बध्-बन्ध् = बाँधना, बद्ध करना, हिंसा करना, मारना, वध करना, घृणा करना)। एतम् (सर्वनाम)। यमेन (यम - आवरण करना, अपने अधीन रखना, पोषण करना, नियमन करना, प्रतिबन्ध करना, रोकना, अवरोध करना, नाश करना, अन्त करना)। त्वम् (सर्वनाम)। यम्या (यम - आवरण करना, अपने अधीन रखना, पोषण करना, नियमन करना, प्रतिबन्ध करना, रोकना, अवरोध करना, नाश करना, अन्त करना)। सम् (उपसर्ग)। विदाना (विद - शरीर की सुध रखना, समझना, जानना, समझा के कहना, रहना, वास करना, वसना, स्थिर रहना, दा - देना)। उत्तमे (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च)। नाके (नक् - नक्क् = नष्ट होना, नष्ट करना, न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क - नाश होना)। अधि (उपसर्ग)। रोहय (रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। एनम् (सर्वनाम)॥ 63 ॥

577. यस्याः ते घोरे आसन् जुहोमि, एषाम् बन्धानाम् अवसर्जनाय।
याम् त्वा जनो भूमिः इति प्रमन्दते, निः ऋतिम् त्वा अहम् परि वेद विश्वतः ॥64॥

मन्त्रार्थ - यस्याः = जिसका। ते = तुम्हारा, तुम्हारे लिए। घोरे = घोर में। आसन् = बैठे हुए। जुहोमि = दान करता हूँ, आदान-प्रदान करता हूँ। एषाम् = इनका। बन्धानाम् = बन्धनों का। **अवसर्जनाय** = अवसर्जन के लिए, परित्याग के लिए। याम् = जिसको। त्वा = तुमको। जनो = जन। भूमिः = भूमि। इति = ऐसा। प्रमन्दते = प्रकृष्ट आनन्द, हर्ष-स्तुति, तुष्टि, प्रकाश करता है। **निर्ऋतिम्** = निर्ऋति को, निरन्तर ऋतयुक्त को, सञ्चालन नियम को। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। अहम् = मैं। परि = सभी तरफ। वेद = ज्ञान, जानो, जानता है। विश्वतः = सबसे, विश्व से॥ 64 ॥

भावार्थ - ऋत अर्थात् सृष्टि के सञ्चालन नियम को जानना महत्वपूर्ण है। जाने-समझे विना पालन करना, लाभ उठाना सम्भव नहीं हो पाता है। इसके साथ ही कठिन परिस्थितियों में भी कर्तव्य कर्म करते रहने का धैर्य तथा साहस भी महत्वपूर्ण है। अतः कहा गया है कि तुम्हारे लिए घोर, कठिन परिस्थितियों में बैठे हुए **मैं** दान करता हूँ, आदान-प्रदान करता हूँ। इन बन्धनों के परित्याग के लिए जन, भूमि प्रकृष्ट आनन्द, तुष्टि, प्रकाश प्रदान करता है। निर्ऋति को, निरन्तर ऋतयुक्त को, सञ्चालन नियम को मै जानता हूँ॥ 64 ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यस्याः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। घोरे (घुर् = भयंकर होना,शब्द करना, चमकना, घोर् = चतुराई से चलना)। आसन् (अस् - होना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीवित रहना, होना)। जुहोमि (हु-जुहु = दान करना, आदान-प्रदान करना, ग्रहण करना, तृप्त करना, जु - जाना, शीघ्र जाना, भागना)। एषाम् (सर्वनाम)। बन्धानाम् (बध्-बन्ध् = बाँधना, बद्ध करना, हिंसा करना, मारना, वध करना, घृणा करना)। अवसर्जनाय (अव - नीचे, दूर, सृज् - उत्पन्न करना, अव-सृज् - दूर करना, त्यागना, छोड़ना)। याम् (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम)। जनो (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। भूमिः (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। इति (अव्यय)। प्रमन्दते (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, मन्द् - आनन्द करना, हर्ष-स्तुति, तुष्टि, प्रकाश होना, चमकना)। निर्ऋतिम् (निः - निश्चित रूप से, निरन्तर, ऋ - गति, ज्ञान, प्राप्ति होना, हिंसा करना, जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। त्वा (सर्वनाम)। अहम् (सर्वनाम)। परि (उपसर्ग)। वेद (विद् = जानना, समझना, विद्यमान होना)। विश्वतः (सर्वनाम)॥ 64 ॥

578. यम् ते देवी निः ऋतिः आबबन्ध, पाशम् ग्रीवासु अविचृत्यम्।
तम् ते वि ष्यामि आयुषो न मध्यात्, अथ एतम् पितुम् अद्धि प्रसूतः।नमो भूत्यै या इदम् चकार।65॥

मन्त्रार्थ - देवी = हे देवी। निर्ऋतिः = निर्ऋति ने, निरन्तर ऋतयुक्त ने। ते = तुम्हारे। ग्रीवासु = ग्रीवाओं में। यम् = जिसे। अविचृत्यम् = अविचलित। पाशम् = पाश को, बन्धन को। आबबन्ध = सम्यक् रूप से बाँध लिया। ते = तुम्हारे। तम् = उसको। वि = विशेष। ष्यामि = अन्त करता हूँ, नष्ट करता हूँ। आयुषो = आयु को। मध्यात् = मध्य से। न = नहीं।। अथ = अब, इसके अनन्तर। प्रसूतः = उत्पन्न। एतम् = इसको। पितुम् = पितु को, पालन-रक्षण को, प्रगति को। **अद्धि** = भोग करो, ग्रहण करो।। नमो = नमन। भूत्यै = भूति के लिए। या = जिसने। इदम् = यह, इसको। चकार = किया।**65 ।।**

भावार्थ - हे देवी, निर्ऋति ने, निरन्तर ऋतयुक्त ने**,** तुम्हारे ग्रीवाओं में जिस अविचलित पाश या बन्धन को सम्यक् रूप से बाँध लिया, तुम्हारे उस बन्धन को अन्त करता हूँ, नष्ट करता हूँ, आयु को मध्य से नहीं। इसके अनन्तर उत्पन्न इस पितु को अर्थात् पालन-रक्षण को, प्रगति को भोग करो, ग्रहण करो। जिसने यह किया, उस महान् विभूति परमात्मा तथा उसके उपासक के लिए नमन है।। **65 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यम् (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। देवी (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। निर्ऋतिः (निः - निश्चित रूप से, निरन्तर, ऋ - गति, ज्ञान, प्राप्ति होना, हिंसा करना, जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। आबबन्ध (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, बध्-बन्ध - बाँधना)। पाशम् (पश् - देखना, पश - बांधना, बेड़ी डालना, गांठ बांधना, फांस लगाना, जाना)। ग्रीवासु (गृ = सींचना, समझना, जानना, खाना, निगलना, शब्द करना, बोलना, समझाना, बताना, गीला करना, घर्षण करना)। अविचृत्यम् (अ - नहीं, वि - विशेष, अव = नीचे, दूर, प्राप्त, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना, विच - व्याजीकरण करना, व्यापना, ठगना, जाना, जानना, पाना, अलग होना, अलग करना, चृत् - प्रकाशित करना, बांधना, गूँथना, हिंसा करना)। तम् (सर्वनाम)। वि (उपसर्ग)। ष्यामि (सो - अन्त करना, नष्ट करना)। आयुषो (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, ग़ति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। न (अव्यय)। मध्यात् (सर्वनाम)। अथ (अव्यय)। एतम् (सर्वनाम)। पितुम् (पा = रक्षा करना, पालन करना, पि = जाना, जानना, पाना)। **अद्धि** (अद् = खाना, भोग करना, आत्मसात् करना, ग्रहण करना, आत्मसात् करना)। प्रसूतः (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। नमो (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। भूत्यै (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। या (सर्वनाम)। इदम् (सर्वनाम)। चकार (कृ = करना)।। 65 ।।

579. निवेशनः सङ्गमनो वसूनाम्, विश्वा रूपा अभि चष्टे शचीभिः।
देवः इव सविता सत्य-धर्मा, इन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ।। 66 ।।

मन्त्रार्थ - वसूनाम् = वसुओं का। निवेशनः = प्रवेश करने वाला, निवेश करने वाला। सङ्गमनो = संगमन करने वाला। विश्वा = विश्व, सभी। रूपा = रूपवाला। शचीभिः = उत्तम वाणियों द्वारा। अभि = अभिमुख। चष्टे = बोलते, देखते हैं।। देवः = देव। इव = के समान। सविता = सृष्टिकर्ता, उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्य देने वाला। सत्य-धर्मा = सत्य धर्मयुक्त। इन्द्रो = परम ऐश्वर्यवान्। न = के समान। पथीनाम् = पथियों के, यात्रियों के, मार्गों के। **समरे** = सम्यक् जाने वाले अथवा साथ चलने वाले (सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, ऋ-अर् - जाना, जानना, पाना, शब्द करना, महत्व दिखाना, हिंसा करना)। समरे = समर में, सम्यक् प्रगति, वाणी, हिंसा में। तस्थौ = स्थित है **।। 66 ।।**

भावार्थ - वसुओं का प्रवेश व निवेश करने वाला, संगमन करने वाला, सभी, रूपवाला उत्तम वाणियों द्वारा अभिमुख, बोलते, देखते हैं। देव के समान सविता **अर्थात्** सृष्टिकर्ता, उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य देने वाला परमात्मा तथा उपासक सत्य धर्मयुक्त इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा तथा उपासक के समान पथियों अर्थात् यात्रियों अथवा मार्गो के समर अर्थात् सम्यक् जाने वाले अथवा साथ चलने में स्थित है **।। 66 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - निवेशनः (नि - निश्चित, विश - प्रवेश करना, भीतर जाना, धंसना)। सङ्गमनो (सम् - सम्यक्, गम् - जाना, सम्-गम्, सङ्गम् - मिलना, साथ चलना)। वसूनाम् (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। विश्वा (सर्वनाम)। रूपा (रूप - बनाना, आकार बनाना, रचना करना, मन में रुपाकृति लाना)। अभि (उपसर्ग)। चष्टे

(चष् - खाना, बोलना, देखना)। शचीभिः (शच- स्पष्ट बोलना)। देवे (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। इव (अव्यय)। सविता (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। सत्य-धर्मा (सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना, धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। इन्द्रो (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। न (अव्यय)। तस्थौ (तस - स्थापित होना, स्थापना करना, फेंकना, उड़ा देना, भेजना, खोदना, कुम्हलाना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना)। **समरे** (सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, ऋ-अर् - जाना, जानना, पाना, शब्द करना, महत्व दिखाना, हिंसा करना)। पथीनाम् (पथ, पन्थ् - चलना, जाना, जानना, पाना, भूषित होना, भूषित करना, घूमना, फेंकना, त्यागना)।। **66 ।।**

(136) सूक्त 14

580. सीरा युञ्जन्ति कवयो, युगा वि तन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नया।। 67 ।।

मन्त्रार्थ- सीरा = प्रगतिशील, विद्वान्। कवयो = कवि। युञ्जन्ति = नियोजित करते हैं, जोड़ते हैं। धीरा = धीर जन, धैर्यवान् जन, धीर लोग। युगा = युगों को। देवेषु = देवों में। सुम्नया = सुविचार अथवा सृजन, रचनाशीलता द्वारा। पृथक् = अलग। वि = विशेष। तन्वते = विस्तार करते हैं।। **67 ।।**

भावार्थ - प्रगतिशील, विद्वान् कवि नियोजित करते हैं, जोड़ते हैं। धैर्यवान् जन युगों को देवों में सुविचार अथवा सृजन, रचनाशीलता द्वारा पृथक् विस्तार करते हैं।। **67 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सीरा (सृ = जाना, सरकना)। युञ्जन्ति (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना)। कवयो (कु, कव् = शब्द करना, कविता करना, वर्णन करना, चित्र खींचना)। युगा (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना, युगि - छोड़ देना, त्याग करना)। वि (उपसर्ग)। तन्वते (तन्-तनु = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। पृथक् (अव्यय)। धीरा (धी = धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना, बुद्धि, प्रज्ञा होना, धृ - धारण करना, सहना, स्थिर रहना)। देवेषु (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। सुम्नया (मन - मनन करना, जानना, समझना, स्वीकार करना, अभ्यास करना, स्थिर होना, गर्व होना)।। 67 ।।

581. युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वम्, कृते योनौ वपत इह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असत् नो, नेदीय इत् सृण्यः पक्वम् आ इयात्।। 68 ।।

मन्त्रार्थ - **सीरा** = हे प्रगतिशील, विद्वान्। युनक्त = नियुक्त करो। युगा = युगों को। वि = विशेष। तनुध्वम् = विस्तार करो। कृते = कृत। योनौ = योनि में, मिलाने अलग करने में, सम्बन्ध में, स्थान में। इह = यहाँ। बीजम् = बीज को। वपत = बोओ। गिरा = स्तुतियां, वाणियाँ। च = और। **श्रुष्टिः** = श्रुष्टि, श्रुति, वाणी। **सभरा** = समान भरण-पोषण, धारण करने वाले। असत् = हो जाये। नो = हमारे लिए, हमारा। नेदीय = निन्दनीय, निकट रखने योग्य। इत् = ही। **सृण्यः** = सृण्य, प्रगतिशील, विद्वान्। पक्वम् = पक्व, पका हुआ। आ-इयात् = प्राप्त करे **।। 68 ।।**

भावार्थ - हे प्रगतिशील, विद्वान्, नियुक्त करो। युगों को विस्तार करो। यहाँ कृत योनि में, मिलाने अलग करने में, सम्बन्ध में, स्थान में बीज को बोओ। स्तुतियां, वाणियाँ और श्रुष्टि अर्थात् श्रुति, वाणी तथा सभर अर्थात् समान भरण-पोषण, धारण करने वाले हो जायें। हमारे लिए निन्दनीय, निकट रखने योग्य ही सृण्य अर्थात् प्रगतिशील, विद्वान् परिपक्व होता है। यहाँ श्लेष की छटा दर्शनीय है। सृ का अर्थ है सरकना, गति करना। सृण्य का भावार्थ निन्दनीय के लिए दूर करने तथा निकट रखने योग्य के लिए प्रगतिशील, विद्वान् परिपक्व होना है। जो निन्दनीय है, वह तो पक्व होता है, पकता है तथा जो निकट रखने योग्य है, वह प्रगतिशील, विद्वान् परिपक्व होता है **।। 68 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - युनक्त (युङ्क् - मिलाप करना, एकत्र करना, जुड़ना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, एकत्र करना, चित्त स्थिर करना, मन को रोकना, मन एकाग्र करना, युगि - छोड़ देना, त्याग करना, यु - बांधना, बन्धन

करना, गूंथना)। सीरा (सृ = जाना, सरकना)। वि (उपसर्ग)। युगा (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना, युगि - छोड़ देना, त्याग करना)। तनुध्वम् (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। कृते (कृ - करना)। योनौ (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। वपत (वप - बीज बोना, उत्पन्न करना, बुनना, अन्नादि काटना, बाल काटना)। इह (सर्वनाम)। बीजम् (बिज्-बीज् - उगना, अंकुरण करना)। गिरा (गृ - सींचना, गीला करना, समझना, जानना, गृ - शब्द करना)। च (अव्यय)। श्रुष्टिः (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। सभरा (स - सहित, साथ, भृ - भरण-पोषण, धारण करना)। असत् (अस् = होना)। नो (सर्वनाम)। नेदीय (निद = निन्दा करना, समीप जाना)। इत् (अव्यय)। सृण्यः (सृ = जाना, सरकना)। पक्वम् (पच् = पकाना, व्यक्त करना, प्रसिद्ध करना, जीर्ण होना)। आ-इयात् (इ = जाना, जानना पाना)॥ 68॥

582. शुनम् सु फालाः वि कृषन्तु भूमिम्, शुनम् कीनाशा अभि यन्तु वाहैः।
शुनासीरा हविषा तोशमाना, सुपिप्पला ओषधीः कर्त्तन अस्मे॥69॥

मन्त्रार्थ- सु = उत्तम। फालाः = फलयुक्त। शुनम् = प्रगतिशील। भूमिम् = भूमि को। वि = विशेष। कृषन्तु = कर्षण करें। **कीनाशा** = विद्वान्। शुनम् = प्रगतिशील, विद्वान् को। वाहैः = वहन करने वालों द्वारा। अभि = अभिमुख। यन्तु = पोषण करें, उद्धार करें, प्राप्त करें नियमन-नियन्त्रण करें। शुनासीरा = प्रगतिशील, विद्वान्। तोशमाना = तुष्ट करने वाले। सुपिप्पला = उत्तम प्रयाण करने, प्रेरणा करनें वाले। हविषा = हविष, दान व आदान-प्रदान द्वारा। अस्मे = हमारे लिए। ओषधीः = ओषधी। कर्त्तन = करें **॥ 69॥**

भावार्थ - उत्तम फलयुक्त प्रगतिशील भूमि को विशेष कर्षण करें। विद्वान् ही प्रगतिशील, विद्वान् को वहन करनें वालों द्वारा अभिमुख पोषण करें, उद्धार करें, प्राप्त करें, नियमन-नियन्त्रण करें। प्रगतिशील, विद्वान्, तुष्ट करने वाले, उत्तम प्रयाण करने, प्रेरणा करनें वाले दान व आदान-प्रदान द्वारा हमारे लिए ओषधी का कर्त्तन करें **॥ 69॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - शुनम् (शुन = जाना, जानना, पाना)। सु (उपसर्ग)। फालाः (फल् - फलित होना, उत्पन्न होना, जाना, विभाग करना)। वि (उपसर्ग)। कृषन्तु (कृष् = विलेखन, कर्षण करना, खींचना, आकर्षण होना, रेखा करना)। भूमिम्, (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। कीनाशा (कि - जानना)। अभि (उपसर्ग)। यन्तु (यम् = रोकना, स्वाधीन रखना, आवरण करना, पोषण करना, नियमन करना, यन -उद्धार करना, या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना, जानना)। वाहैः (वह् = वहन करना ले जाना, बहना, झरना, ढोना, ढो ले जाना)। शुनासीरा (शुन = जाना, सृ = जाना, सरकना)। हविषा (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। तोशमाना (तुष् - सन्तुष्ट करना, तृप्त करना, प्रसन्न करना)। सुपिप्पला (सु - सुन्दर, अच्छा, पिल् - चलना, प्रयाण करना, प्रेरणा करना)। ओषधीः (उषध् - चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। कर्त्तन (कृ - करना)। अस्मे (सर्वनाम)॥ 69॥

583. घृतेन सीता मधुना सम् अज्यताम्, विश्वैः देवैः अनु मता मरुद्भिः।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानाः अस्मान्, सीते पयसा अभि आ ववृत्स्व॥70॥

मन्त्रार्थ - सीता = सीता, सम्बन्धित। घृतेन = अभिसिञ्चित द्वारा, प्रकाशमान द्वारा। मधुना = मधु द्वारा। विश्वैः = विश्व द्वारा, सभी द्वारा। देवैः = देवों द्वारा। अनु = अनुकूल। मता = मत। मरुद्भिः = मरणशीलों द्वारा, मरुतों द्वारा। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। अज्यताम् = गतिमान् हो, वेग से जाये। सीते = सीता, सम्बन्धित। ऊर्जस्वती = ऊर्जायुक्त, ऊर्जावान्। पयसा = पयस् द्वारा, विस्तार द्वारा, प्रगतिशील, प्रवाहमान द्वारा। पिन्वमानाः = सिञ्चन, सेवा करने वाले। अस्मान् = हमको। पयसा = पयस् द्वारा, विस्तार द्वारा, प्रगतिशील, प्रवाहमान द्वारा। अभि = अभिमुख, विशेष। आ = समन्तात्, सम्यक्। ववृत्स्व = वर्तमान हो, बर्ताव करे **॥ 70॥**

भावार्थ - सीता अर्थात् सम्बन्धित नारी घृत **अर्थात्** अभिसिञ्चित, प्रकाशमान, मधु द्वारा तथा सभी देवों द्वारा। अनुमत नारी मरुत् अर्थात् मरणशीलों, विशेषतः मनुष्यों द्वारा सम्यक् गतिमान् हो, वेग से जाये। सीता अर्थात् सम्बन्धित नारी

ऊर्जायुक्त, ऊर्जावान नारी, विस्तार द्वारा, प्रगतिशील, प्रवाहमान द्वारा सिञ्चन, सेवा करने वाली हमको पयस् द्वारा, विस्तार द्वारा, प्रगतिशील, प्रवाहमान द्वारा अभिमुख होकर समन्तात्, सम्यक् वर्तमान हो, बर्ताव करे **॥ 70 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - घृतेन (घृ -गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना)। सीता (सि = बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। मधुना (मध् = मधुर होना, मीठा होना, मध्य होना)। सम् (उपसर्ग)। अज्यताम् (अज - जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना)। विश्वैः (सर्वनाम)। देवैः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अनु (उपसर्ग)। मता (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। मरुद्भिः (मृ = मरना, देहत्याग करना)। ऊर्जस्वती (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। पयसा (पय् = जाना, जानना, पाना, बहना, पयस् = विस्तार करना, फैलाना)। पिन्वमानाः (पिन्व = सेवा करना, सेचन करना, प्रोक्षण करना)। अस्मान् (सर्वनाम)। अत् (अत - चलना, निरन्तर चलना)। सीते (सि =बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। अभि (उपसर्ग)। आ (उपसर्ग)। ववृत्स्व (वृत् - रहना, होना, बर्ताव करना, त्याग करना, हटाना, आच्छादित करना)॥ 70 ॥

(137) सूक्त 15

584. लाङ्गलम् पवीरवत्, सुशेवम् सोमपित्सरु।
तत् उत् वपति गाम् अविम्, प्रफर्व्यम् च पीवरीम् प्रस्थावत् रथवाहणम् ॥ 71 ॥

मन्त्रार्थ - तत् = वह। सोमपित्सरु = सोम का पालन करने, ले जाने वाले। पवीरवत् = पवित्र, पालन, रक्षा करने वाले की भाँति। लाङ्गलम् = लाङ्गल को। सुशेवम् = कल्याण, सुख को। गाम् = गान, गाय, गायक, गाने वाले को। अविम् = अवि को, रक्षक को। प्रफर्व्यम् = गमनीय को। च = और। **पीवरीम्** = पीवरी को, सेवा, सिञ्चन, वपन, प्रकाश करने वाले को। प्रस्थावत् = प्रस्था के समान, प्रकृष्ट स्थिति के समान। रथवाहणम् = रथ को वहन करने वाले **को।** उत् = ही, उत्कृष्ट, उच्च। वपति = बोता है **॥ 71 ॥**

भावार्थ - वह सोम अर्थात् ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता तथा अन्त करने वाले परमात्मा की अनुभूति को जीवन में पालन करने, ले जाने वाले पवित्र, पालन, रक्षा करने वाले की भाँति लाङ्गल, कल्याण, सुख, गान, गाय, गायक, रक्षक, गमनीय और सेवा, सिञ्चन, वपन, प्रकाश करने वाले रथ को वहन करने वाले **को** प्रस्थावत् अर्थात् प्रतिष्ठा के समान ही उत्कृष्ट, उच्चता से बोता है **॥ 71 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - लाङ्गलम् (ला = लेना, ग्रहण करना, देना, दान देना)। पवीरवत् (पु - पालन करना, रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। सुशेवम् (सु - अच्छा, सुन्दर, शेव् - सेचन, घर्षण, सेवा करना, शिव् = कल्याण होना, सुख होना)। सोमपित्सरु (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना, पि - जाना, जानना, पाना, पा- पालन करना, रक्षा करना, त्सर् = कुटिल गति करना, टेढ़ा जाना, छद्म गति करना)। तत् (सर्वनाम)। उत् (उपसर्ग)। वपति (वप - बीज बोना, उत्पन्न करना, बुनना, अन्नादि काटना, बाल काटना)। गाम् (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। अविम् (अ - नहीं, वि - विशेष, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। प्रफर्व्यम् (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, फर्व - जाना, जानना, पाना)। च (अव्यय)। पीवरीम् (पिव् - सेवा करना, सिंचन करना, बीज बोना, प्रकाश करना, पी-पिब् - पीना, पान करना, प्राशन करना, संरक्षण करना, पीव - पुष्ट होना, मोटा होना)। प्रस्थावत् (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, स्थ = स्थित होना, ठहरना)। रथवाहणम् (रथ = जाना, ले जाना, वह् = वहन करना ले जाना, बहना, झरना, ढोना, ढो ले जाना)॥ 71॥

585. कामम् कामदुघे धुक्ष्व, मित्राय वरुणाय च।इन्द्राय अश्विभ्याम् पूष्णे, प्रजाभ्यः ओषधीभ्यः ॥ 72 ॥

मन्त्रार्थ - कामदुघे = हे कामना, इच्छा का दोहन करने वाले। कामम् = कामना, इच्छा को। मित्राय = मित्र के

लिए। वरुणाय = वरुण के लिए। च = और। इन्द्राय = इन्द्र के लिए, परम ऐश्वर्य के लिए। अश्विभ्याम् = अश्व, तीव्र गति युक्त, व्यापक के लिए। पूष्णे = पोषण के लिए, पोषण करने वाले, पोषणकर्ता के लिए। प्रजाभ्यः = प्रजा के लिए। ओषधीभ्यः = ओषधियों के लिए। धुक्ष्व = प्रदीप्त करो, जलाओ, जीवन दो।। **72 ।।**

भावार्थ - हे कामना, इच्छा का दोहन करने वाले, कामना, इच्छा को मित्र के लिए, वरुण के लिए और इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा तथा उपासक के लिए, अश्वी अर्थात् तीव्र गति युक्त, व्यापक के लिए, पोषण के लिए, पोषण करने वाले, पोषणकर्ता के लिए, प्रजा के लिए, ओषधियों के लिए, प्रदीप्त करो, जलाओ, जीवन दो। कामनाएं मित्रों के लिए होनी चाहिए, प्रजा अर्थात् अपने अनुजों, छोटों, साधनहीनों के लिए तथा दिव्य शक्तियों के लिए होनी चाहिए, निजी स्वार्थ के लिए नहीं। धुक्ष् धातु का अर्थ प्रदीप्त करना, जलाना, जीवन होना, श्रान्त होना, थक जाना है। श्लेष अलंकार से इस मन्त्र का भावार्थ या सन्देश है कि अनुचित कामनाओं को जला दो तथा अच्छी कामनाओं को जीवन दो, प्रदीप्त करो, उनको पूर्ण करने के लिए यथाशक्ति श्रम करो, श्रमित हो।। **72 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - कामम् (कम - चाहना, इच्छा करना)। कामदुघे (कम् - चाहना, इच्छा करना, दुह् - दुहना, दोहन करना, लेना)। धुक्ष्व (धुक्ष् = प्रदीप्त करना, जलाना, जीव होना, श्रान्त होना, थक जाना)। मित्राय (मिद् - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, नरम होना, मृदुल होना)। वरुणाय (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। च (अव्यय)। इन्द्राय (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। अश्विभ्याम् (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। पूष्णे (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। प्रजाभ्य (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)। ओषधीभ्यः (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)।। 72 ।।

586. वि मुच्यध्वम् अघ्न्याः देवयानाः, अगन्म तमसः पारम् अस्य। ज्योतिः आपाम ।। 73 ।।

मन्त्रार्थ - अघ्न्या = अहिंसक, अहिंसनीय। देवयाना = देवत्व को जाने वाले। वि = विशेष। मुच्यध्वम् = मुक्त करें। अस्य = इसका। तमसः = तमस्, अन्धकार, इच्छा, दुःख के। पारम् = पार। अगन्म = गये, प्राप्त हुए। ज्योतिः = प्रकाश। आपाम = प्राप्त करें **।। 73 ।।**

भावार्थ - अहिंसक, अहिंसनीय तथा देवत्व को जाने वाले विमुक्त करें। इस तमस् अर्थात् अन्धकार, इच्छा, दुःख के पार गये, प्राप्त हुए। प्रकाश प्राप्त करें **।। 73 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - वि (उपसर्ग)। मुच्यध्वम् (मुच् - घर्षण करना, ऐश्वर्य होना, पूजा करना, बोलना, कहना, मुक्त करना, त्याग करना, प्रसन्न होना)। अघ्न्या (अ - नहीं, घ्न्, हन् = हिंसा करना)। देवयाना (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना, या - जाना, जानना, प्राप्त होना, पहुँचना)। अगन्म (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अग् = जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, गति करना, घूमना, कुटिल गति करना, टेढ़ा जाना, लेना, ग्रहण करना, गम् = जाना, जानना, पाना)। तमसः (तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। पारम् (पार - पार होना, कार्य पूर्ण करना)। अस्य (सर्वनाम)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। आपाम (आप् - प्राप्त करना, व्याप्त होना)।। 73 ।।

587. सजूः अब्दो अयवोभिः, सजूः उषा अरुणीभिः।
सजोषसौ अश्विना दंसोभिः, सजूः सूर एतशेन, सजूः वैश्वानर इडया घृतेन ।। 74 ।।

मन्त्रार्थ - सजूः = समान प्रीतियुक्त, विचारशील, सेवाभावी। अब्दो = पालन-रक्षण देने वाले। अयवोभिः = प्रगतिशील, विद्वानों द्वारा। सजूः = समान प्रीतियुक्त, विचारशील, सेवाभावी। उषा = प्रभात। अरुणीभिः = गतिशील, व्यापकों द्वारा। सजोषसौ = समान प्रीतियुक्त, विचारशील तथा प्रभात। अश्विना = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक। **दंसोभिः** - दर्शनों द्वारा, प्रकाश द्वारा, वाणी द्वारा। सजूः = समान प्रीतियुक्त, विचारशील, सेवाभावी। सूर = ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता।

एतशेन = एतश द्वारा, ज्ञान, गति, इच्छा, प्रेरणा द्वारा। सजूः = समान प्रीतियुक्त, विचारशील, सेवाभावी। वैश्वानर = विश्वनायक। इडया = स्तुति द्वारा। घृतेन = अभिसिञ्चित द्वारा, प्रकाशमान द्वारा। स्वाहा = अच्छी व्यापकता, आत्म विस्तार **॥ 74 ॥**

भावार्थ - समान प्रीतियुक्त, विचारशील, सेवाभावी, पालन-रक्षण देने वाले उपासक जन प्रगतिशील, विद्वानों द्वारा व्याप्त हों। पुनः समान प्रीतियुक्त, विचारशील, सेवाभावी उपासक जन उषा, प्रभात तथा अरुणी द्वारा अर्थात् गतिशील, व्यापकों द्वारा व्याप्त हों। इसी प्रकार समान प्रीतियुक्त, विचारशील तथा उषा-प्रभात भी अश्विन अर्थात् तीव्र गति युक्त, व्यापक **द्वारा व्याप्त हों**। सजूः = समान प्रीतियुक्त, विचारशील, सेवाभावी सूर **अर्थात्** ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता जन एतश **अर्थात्** ज्ञान, गति, इच्छा, प्रेरणा द्वारा व्याप्त हों। इसी प्रकार समान प्रीतियुक्त, विचारशील, सेवाभावी वैश्वानर **अर्थात्** विश्वनायक जन स्तुति द्वारा तथा अभिसिञ्चितों तथा प्रकाशमान द्वारा व्याप्त हों **॥ 74 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सजूः (स - साथ, सहित, संज्-सज् = गले लगाना, सम्बन्धी होना, स + जूः, जुष् = प्रसन्न करना, सन्तुष्ट करना, चाहना, दुलार करना, प्रीति करना, विचार करना, विवेक-विवेचना करना, हिंसा करना, सेवा करना)। अब्दो (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना)। अयवो (अ - नहीं, यु - मिलाना, अलग करना, अय् = जाना, जानना, पाना)। अभिः (उपसर्ग)। उषा (उषस् = प्रभात होना, उष - हिंसा करना, जलना, जलाना, ताप देना)। अरुणीभिः (अ - नहीं, ऋ-अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना)। सजोषसौ (स - साथ, सहित, जुष् = प्रसन्न करना, सन्तुष्ट करना, चाहना, दुलार करना, प्रीति करना, विचार करना, विवेक-विवेचना करना, हिंसा करना, सेवा करना)। अश्विना (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। दंसोभिः (दंस- देखना, काटना, डसना, दंस - चमकना, बोलना, कठोर बोलना)। सूर (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। एतशेन (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, ई = जाना, जानना, पाना, व्यापना, इच्छा करना, प्रेरणा करना)। वैश्वानर (विश्व - सब, नृ - चलना, ले जाना, विनय होना)। इडया (इड - धारण करना, घर्षण करना, छेदन करना, ईड् = स्तुति करना)। घृतेन (घृ -गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना)। स्वाहा (सु = अच्छा, सुन्दर, स्व - अपना, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना) **॥ 74 ॥**

(138) सूक्त 16

588. या ओषधीः पूर्वा जाता, देवेभ्यः त्रियुगम् पुरा। मनै नु बभ्रूणाम् अहम्, शतम् धामानि सप्त च ॥ 75 ॥

मन्त्रार्थ - पूर्वा = पूर्व, पहले। या = जो। ओषधीः = ओषधी। देवेभ्यः = देवों के लिए। त्रियुगम् = तीन युग। पुरा = पहले। जाता = उत्पन्न हुए। नु = निश्चय ही, शीघ्र ही। अहम् = मैं। बभ्रूणाम् = भरण पोषण करने वालों के। शतम् = सौ। च = और। सप्त = सात। धामानि = धामों को। मनै = मानता हूँ **॥ 75 ॥**

भावार्थ - पूर्व, पहले जो ओषधी देवों के लिए तीन युग पहले उत्पन्न हुए, निश्चय ही मैं भरण पोषण करने वालों के सौ और सात अर्थात् एक सौ सात धामों अर्थात् धारणों को मानता हूँ **॥ 75 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - या (सर्वनाम)। ओषधीः (उषध् - चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। पूर्वा (पूर्व = पूर्व, पहले, सर्वनाम)। जाता (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। देवेभ्यः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। त्रियुगम् (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना)। पुरा (अव्यय)। मनै (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। नु (अव्यय)। बभ्रूणाम् (भृ = भरण-पोषण, धारण करना)। अहम् (सर्वनाम)। शतम् (सर्वनाम)। धामानि (धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)। सप्त (संख्या)। च (अव्यय)॥ 75 ॥

589. शतम् वो अम्ब धामानि, सहस्रम् उत वो रुहः। अधा शतक्रत्वो यूयम्, इमम् मे अगदम् कृत ॥ 76 ॥

मन्त्रार्थ - अम्ब = हे सेवाभावी विद्वान्। वो = तुम्हारे। शतम् = सौ। धामानि = धाम। सहस्रम् = हजारों। उत = ही। वो = तुम्हारे। रुहः = आरोहण, वृद्धि (हैं)। अधा = अथ, अब, इसके अनन्तर। शतक्रत्वो = सैकड़ों कर्म करने वाला। यूयम् = तुम। इमम् = इसको। मे = मेरे लिए। अगदम् = अगद, वाणीहीन, प्रगतिशील। कृत = करो **॥ 76 ॥**

भावार्थ - हे अम्ब, हे सेवाभावी विद्वान, तुम्हारे सौ धाम तथा आरोहण, वृद्धि हैं। सैकड़ों कर्म करने वाले तुम इसको मेरे लिए अगद करो। गद् धातु का अर्थ बोलना, कहना है, अतः अगद का अर्थ वाणी-हीन होगा। दुष्टों को शान्त करो, मौन करो, यह अर्थ उचित है। अग् धातु का अर्थ चलना, गति करना है, अतः अगद का अर्थ हमारे लिए दिव्य जनों को समर्थ, प्रगतिशील बनाओ, यह भावार्थ उचित है **॥ 76 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - शतम् (सर्वनाम)। वो (सर्वनाम)। अम्ब (अम्ब् = जाना, जानना, शब्द करना, मर्दन करना)। धामानि (धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)। सहस्रम् (संख्या)। उत (अव्यय)। वो (सर्वनाम)। रुहः (रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। अधा (अव्यय)। शतक्रत्वो (शत - सौ, कृ - करना)। यूयम् (सर्वनाम)। इमम् (सर्वनाम)। मे (सर्वनाम)। अगदम् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, गद् - बोलना, कहना, गरजना, अग् - चलना, गति करना)। कृत (कृ = करना)॥ 76 ॥

590. ओषधीः प्रति मोदध्वम्, पुष्पवतीः प्र-सूवरीः। अश्वा इव सजित्वरी, वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥ 77 ॥

मन्त्रार्थ- पुष्पवतीः = पुष्पवती, पुष्पयुक्त। प्र-सूवरीः= सृजनशील, उत्पन्न करने वाली। अश्वा = अश्व, तीव्र गति युक्त, व्यापक। इव = के समान। सजित्वरी = सम्बन्धी, विजेता। वीरुधः = वीरूध, वीरों को धारण करने वाला। पारयिष्ण्वः = पार करने का इच्छुक, कार्य पूर्ण करने का इच्छुक। प्रति = प्रत्येक। ओषधीः = ओषधी। मोदध्वम् = आनन्द करे **॥ 77 ॥**

भावार्थ - पुष्पवती, पुष्पयुक्त, सृजनशील, उत्पन्न करने वाली, अश्व अर्थात् तीव्र गति युक्त, व्यापक के समान सम्बन्धी, विजेता, वीरों को धारण करने वाला, पार करने, कार्य पूर्ण करने वाली प्रत्येक ओषधी आनन्द करे **॥ 77 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ओषधीः (उषध् - चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। प्रति (अव्यय)। मोदध्वम् (मुद् = आनन्द होना, एकत्र करना)। पुष्पवतीः (पुष्प् = पुष्पित होना, विकसित होना, गति करना)। प्र-सूवरीः (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। अश्वा (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। इव (अव्यय)। सजित्वरी (स - साथ, सहित, सज्, संज = सम्बन्धी होना, आलिंगन करना, जि - सर्वोत्कर्ष से रहना, सब से बढ़ के होना, जीतना, पराभव करना)। वीरुधः (वि = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग), रुध = बढ़ना, गर्व करना, रुध = चाहना, रोकना, कृपालु होना, दया करना, अनुमोदन देना, सलाह करना, शोक करना, रोना, वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना, धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)। पारयिष्ण्वः (पार - कार्य पूर्ण करना, पृ - पूर्ण करना, पालन-पोषण करना, प्रेम करना)॥ 77 ॥

591. ओषधीः इति मातरः, तत् वो देवीः उप ब्रुव, सनेयम् अश्वम् गाम् वासः, आत्मानम् तव पूरुष। 78 ॥

मन्त्रार्थ - ओषधीः = ओषधी। मातरः = माता। देवीः = दिव्यगुणयुक्त। इति = ऐसा। उप = समीप। तत् = वह। वो = तुम लोग। ब्रुवे = कहो। पूरुष = हे पुरुष, परिपूर्ण, अग्रगामी, अग्रणी। तव = तुम्हारा। वासः = निवास। आत्मानम् = आत्मा को। अश्वम् = तीव्र गति युक्त, व्यापक को। गाम् = गान, गायक को। सनेयम् = सेवन करूँ **॥ 78 ॥**

भावार्थ - ओषधी देवीः अर्थात् दिव्यगुणयुक्त माता के समान है, ऐसा तुम लोग कहो। हे पुरुष अर्थात् परिपूर्ण, अग्रणी जन, तुम्हारे द्वारा हमें प्राप्त निवास, अश्व अर्थात् तीव्र गति युक्त, व्यापक गान, आत्म चेतना को सेवन करूँ। यह आत्म-तत्व ही परमात्मा है, सर्वत्र व्याप्त चेतना है। औषधियों में भी इसी दिव्य चेतना से रोग दूर करने की शक्ति आआती है, यही भावना रखकर उसे दिव्य माता कहा गया है **॥ 78 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ओषधीः (उषध् - चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। इति (अव्यय)। मातरः (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। तत् (सर्वनाम)। वो (सर्वनाम)। देवीः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना,

खेलना)। उप (उपसर्ग)। ब्रुव (ब्रू - कहना, बोलना)। सनेयम् (सन = सेवा करना, चाकरी करना, सन = दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना)। अश्वम् (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। गाम् (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। वास (वस् = रहना, निवास करना)। आत्मानम् (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। तव (सर्वनाम)। पूरुष (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना)।। 78 ।।

(139) सूक्त 17

592. अश्वत्थे वो निषदनम्, पर्णे वो वसतिः कृता।गोभाज इत् किल असथ, यत् सनवथ पूरुषम्।।79।।

मन्त्रार्थ- अश्वत्थे = अश्वत्थ में, तीव्र गति युक्त, व्यापक **में**। वो = तुम्हारा। निषदनम् = स्थान। पर्णे = पर्ण, हरीतिमा तथा पूर्णता में। वो = तुम्हारा। वसतिः = आवास। कृता = किया। गोभाज = शब्दसेवी। इत् = ही। किल = निश्चय ही। असथ = प्रकाशक, हैं। यत् = जिसे। पूरुषम् = पुरुष, परिपूर्ण, अग्रगामी, अग्रणी को। सनवथ = सेवा करें **।। 79 ।।**

भावार्थ - अश्वत्थ अर्थात् तीव्र गति युक्त, व्यापक **में** तुम्हारा स्थान है। पर्ण अर्थात् हरीतिमा तथा पूर्णता में तुम्हारा आवास किया है। गोभाज **अर्थात्** शब्दसेवी ही निश्चय प्रकाशक, हैं। जिस पुरुष अर्थात् परिपूर्ण, अग्रगामी, अग्रणी परमात्मा तथा उपासक की सेवा करें **।। 79 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अश्वत्थे (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। वो (सर्वनाम)। निषदनम् (निष - प्राप्त करना, ले जाना, नि- निश्चय ही, निरन्तर, सद्-षद् - बैठना, स्थित होना, जाना)। पर्णे (पर्ण - हरा करना, हरा होना, पृ - पूर्ण करना, भरण करना)। वसतिः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। कृता (कृ = करना)। गोभाज (गु - अस्पष्ट बोलना, शब्द करना, मनन करना, भग्-भज् = सेवा करना, देना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। इत् (अव्यय)। किल (अव्यय)। असथ (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। यत् (सर्वनाम)। सनवथ (सन् - दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना, सेवा करना, चाकरी करना)। पूरुषम् (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना)।। 79 ।।

593. यत्र ओषधीः सम् अग्मत, राजानः समितौ इव।विप्रः सः उच्यते भिषक्, रक्षोहा अमीवचातनः।80।।

मन्त्रार्थ - यत्र = जहाँ। ओषधीः = ओषधी। राजानः = राजा, प्रकाशमय। समितौ = सम्यक् प्रकाशित। इव = के समान। सम् = सम्यक्। अग्मत = जायें। सः = वह। विप्रः = विशेष पूर्ण करने वाले। रक्षोहा = रक्षण को जाने वाला, रक्षण पाने वाला। अमीवचातनः = रोगनाशक। भिषक् = चिकित्सक। उच्यते = कहा जाता है **।। 80 ।।**

भावार्थ - जहाँ ओषधी प्रकाशमय, सम्यक् प्रकाशित के समान सम्यक् जायें, वह विप्र अर्थात् विशेष पूर्ण करने वाले, मेधावी विद्वान् रक्षण को जाने वाला, रक्षण पाने वाला रोगनाशक चिकित्सक कहा जाता है **।। 80 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यत्र (सर्वनाम)। ओषधीः (उषध् - चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। सम् (उपसर्ग)। अग्मत (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, गम् = जाना)। राजानः (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। समितौ (सम् = सम्यक्, भलीभांति, इत् - इन्ध = प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना, प्रकाश करना)। इव (अव्यय)। विप्रः (वि = विशेष, विना, विलोम, प्रा - पूर्ण करना)। सः (सर्वनाम)। उच्यते (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना)। भिषक् (भिषज - चिकित्सा करना)। रक्षोहा (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना, हन - प्राप्त करना, जाना, मार डालना, किसी प्रकार समाप्त करना)। अमीवचातनः (अम् - गति, शब्द, सेवा करना, रोग होना, चत्-चात्-चातय = नाश होना, नाश करना)।।

80 ।।

594. अश्वा-वतीम् सोमा-वतीम्, ऊर्जयन्तीम् उत् ओजसम्।
आ अवित्सि सर्वा ओषधीः, अस्मा अरिष्ट-तातये ।। 81 ।।

मन्त्रार्थ - अश्वावतीम् = अश्व, तीव्र गति युक्त, व्यापकता युक्त को। सोमावतीम् = ऐश्वर्यमयी को। ऊर्जयन्तीम् = ऊर्जावान् करते हुए। उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। ओजसम् = ओजयुक्त को। आ = समन्तात्, सम्यक्। सर्वा = सभी। ओषधीः = ओषधी। अस्मा = इस। अरिष्टतातये = अहिंसा के लिए। अवित्सि = जानो **।। 81 ।।**

भावार्थ - तीव्र गति युक्त अर्थात् शीघ्र प्रभावकारी, सोमावती अर्थात् ऐश्वर्यमयी, आरोग्यकारी, ऊर्जावान्, ओजयुक्त सभी ओषधियाँ अहिंसा के लिए जानो **।। 81 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अश्वावतीम् (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। सोमावतीम् (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। ऊर्जयन्तीम् (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। उत् (उपसर्ग)। ओजसम् (ओज - शक्तिमान् होना, जीवित होना, बढ़ना)। आ (उपसर्ग)। अवित्सि (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, विद् - समझना, जानना, वास करना, जीवन होना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। सर्वा (सर्वनाम)। ओषधीः (उषध् - चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। अस्मा (सर्वनाम)। अरिष्ट-तातये (अ - नहीं, ऋ-अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, रिष- हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, मारने का यत्न करना, तन् - विस्तार करना, तय - चुम्बन करना)।। 81।।

595. उत् शुष्मा ओषधीनाम्, गावो गोष्ठात् इव ईरते। धनम् सनिष्यन्तीनाम्, आत्मानम् तव पूरुष ।। 82 ।।

मन्त्रार्थ - ओषधीनाम् = ओषधियों का। उत् = उत्कृष्ट। शुष्मा = शुष्मा, सुखाने वाला। तव = तुम्हारा। पूरुष = पुरुष, परिपूर्ण, अग्रगामी, अग्रणी। गोष्ठात् = गोष्ठ से, शब्द करने वालों के स्थान से। गावो = वाणी। इव = के समान। धनम् = धन को। सनिष्यन्तीनाम् = दानियों के। आत्मानम् = आत्मा को। ईरते = प्रेरित करता है **।। 82 ।।**

भावार्थ - ओषधियों का उत्कृष्ट सुखाने वाला तुम्हारा पुरुष, परिपूर्ण, अग्रगामी, अग्रणी परमात्मा गोष्ठ से, शब्द करने वालों के स्थान से प्राप्त वाणी के समान दान करने वालों के धन आत्म चेतना को प्रेरित करता है **।। 82 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उत् (उपसर्ग)। शुष्मा (शुष् - सुखाना)। ओषधीनाम् (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। गावो (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना)। गोष्ठात् (गोष्ठ - मिलकर रहना, बटोरना, एकत्र करना, गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना, स्था - स्थित होना, ठहरना)। इव (अव्यय)। ईरते (ईर् = प्रेरणा करना, कम्पन करना, जाना, जानना, पाना, फेकना)। धनम् (धन् - शब्द करना, गति करना, चलना, जाना, जानना, पाना, उत्पन्न करना, फलना, बौर लगना)। सनिष्यन्तीनाम् (सन् - दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना, सेवा करना, चाकरी करना)। आत्मानम् (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। तव (सर्वनाम)। पूरुष (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना)।। 82 ।।

596. इष्कृतिः नाम वो माता, अथो यूयम् स्थ निष्कृतीः।
सीराः पतत्रिणीः स्थन, यत् आमयति निः कृथ ।। 83 ।।

मन्त्रार्थ - वो = तुम्हारा। माता = माता, मान करने वाला। इष्कृतिः = इष्कृति, निष्कृति, बहिष्कृति, बहिष्कार अथवा बाहर करने वाला। नाम = नाम वाले। अथो = अतः, अब, इसके अनन्तर। यूयम् = तुम। निष्कृतीः = निष्कृति। स्थ = हो। **सीरा** = प्रगतिशील, विद्वान्। पतत्रिणीः = प्रगतिशील, उत्पनशील, ऐश्वर्यमान। स्थन = हो। यत् = जो। आमयति = रोग करता है। निः = बाहर। कृथ = करो **।। 83 ।।**

भावार्थ - इष्कृति वैदिक रूप है, इसका अर्थ है निष्कृति। तुम्हारा माता इष्कृति नाम वाला है। इष्कृति का अर्थ है निष्कृति, बहिष्कृति, बहिष्कार अथवा बाहर करने वाला। अतः, अब तुम भी निष्कृति हो। प्रगतिशील, विद्वान्, प्रगतिशील, उत्पनशील, ऐश्वर्यमान हों। जो रोग करता है, उसे बाहर करो। इष्कृति विशेषण परमात्मा के लिए तो है ही, प्रगतिशील, उत्पनशील, ऐश्वर्यमान विद्वान् चिकित्सक के लिए भी है। कामना है कि वह चिकित्सा द्वारा रोग उत्पन्न करने वाले कारणों को दूर कर दे।। **83** ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इष्कृतिः (इः - निः, निश्चित, नितराम्, निरन्तर (उपसर्ग), कृ - करना)। नाम (अव्यय)। वो (सर्वनाम)। माता (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। अथो (अव्यय)। यूयम् (सर्वनाम)। स्थ (स्था- स्थित होना)। निष्कृतीः (निः- निश्चित, नितराम्, निरन्तर, कृ- करना)। **सीरा** (सृ = जाना, सरकना)। पतत्रिणीः (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। स्थन (स्था- स्थित होना)। यत् (सर्वनाम)। आमयति (अव्यय)। निः (अव्यय)। कृथ (कृ - करना)।। 83 ।।

597. अति विश्वाः परिष्ठाः, स्तेन इव व्रजम् अक्रमुः। ओषधीः प्र अचुच्यवुः, यत् किम् च तन्वो रपः। 84 ।।

मन्त्रार्थ - ओषधीः = ओषधी। विश्वाः = विश्व, सभी। परिष्ठाः = सभी ओर स्थित। स्तेन = चोर। इव = के समान। व्रजम् = गति। अति = बहुत, अत्यधिक। अक्रमुः = चला। प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। यत् = जिसे, जो । किम् = क्या । च = और। तन्वो = विस्तार। रपः = वाणी। अचुच्यवुः = जाना, मथा **।। 84 ।।**

भावार्थ - ओषधी चोर के समान सभी ओर से गति करते हुए अतिक्रम करती है, चलती है। विस्तृत वाणी को भी इसी प्रकार जानते हैं, मथते हैं **।। 84 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अति (उपसर्ग, अव्यय)। विश्वाः (सर्वनाम)। परिष्ठाः (परिः - परितः, सब ओर, स्था - स्थित होना, ठहरना)। स्तेन (स्तेन - चुराना, लूटना)। इव (अव्यय)। व्रजम् (व्रज = जाना, पूर्ण करना, सिद्ध करना)। अक्रमुः (अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अ = नहीं, उपसर्ग, क्रम् = जाना, चलना)। ओषधीः (उषध् - चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। प्र (उपसर्ग)। अचुच्यवुः (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, चुच-चुच्य = अर्क निकालना, स्नान करना, मथना, काटना, च्यु-च्यव् - हँसना, सहना, सहन करना, नष्ट करना, तैरना, गिरना, भटकना, जाना, जानना, पाना)। यत् (सर्वनाम)। किम् (सर्वनाम)। च (अव्यय)। तन्वो (तन्-तनु = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। रपः (रप - स्पष्ट बोलना)।। 84 ।।

598. यत् इमा वाजयन् अहम्, ओषधीः हस्ते आदधे। आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति, पुरा जीवगृभो यथा।। 85 ।।

मन्त्रार्थ - अहम् = मैं। **वाजयन्** = प्रगति करते हुए, बलवान् होते हुए। यत् = जो। इमा = यह। ओषधीः = ओषधियाँ। हस्ते = हाथ में। आदधे = धारण करता हूँ, ग्रहण करता हूँ। यथा = जैसे, जिस प्रकार। यक्ष्मस्य = यक्ष्म का, श्रेष्ठ का। जीवगृभो = जीवगर्भ, जीवन को गर्भ में रखने वाला। आत्मा = आत्मा। पुरा = पहले। नश्यति = नष्ट होता है, अदृश्य होता है **।। 85 ।।**

भावार्थ - मैं प्रगति करते हुए, बलवान् होते हुए जो यह ओषधि हाथ में ग्रहण करता हूँ तो उसका प्रभाव वैसा ही होता है जैसे यक्ष्म अर्थात् श्रेष्ठ रोग का जीवगृभ अर्थात् जीवन को गृहण करने वाला आत्मा अर्थात् सतत गतिशील तत्व पहले नष्ट होता है, अदृश्य हो जाता है **।। 85 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यत् (सर्वनाम)। इमा (सर्वनाम)। वाजयन् (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना)। अहम् (सर्वनाम)। ओषधीः (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। हस्ते (हस्त - देना, लेना, ग्रहण करना)। आदधे (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, दध् - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना, आ-दध् - ग्रहण करना, लेना)। आत्मा (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। यक्ष्मस्य (यक्ष = पूजा करना, पूजना, सत्कार करना)। नश्यति (नश् - नष्ट होना, अदृश्य होना)। पुरा (अव्यय)। जीवगृभो (जीव - जीवन होना, प्राणवान् होना, गृह् - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना, निवास करना, गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गल्भ् - जाना,

जानना, पाना, ज्ञान होना, चतुर होना, साहस होना, धैर्य रखना, गृभ्-गर्भ् - ग्रहण करना, लेना, अन्दर होना, अन्तःवास करना)। यथा (अव्यय)॥ 85॥

(140) सूक्त 18

599. यस्य ओषधीः प्र-सर्पथ, अङ्गम्-अङ्गम्, परुः-परुः।
ततो यक्ष्मम् वि बाधध्व, उग्रो मध्यमशीः इव॥86॥

मन्त्रार्थ - यस्य = जिसका। ओषधीः = ओषधियाँ। अङ्गम्-अङ्गम् = अङ्ग-अङ्ग को। परुः—परुः = पर्व-पर्व को। प्र-सर्पथ = संचरण करती हैं। ततो = अतः, इसलिए, उससे, उसके अनन्तर। उग्रो = उग्र। मध्यमशीः = मध्यमशी। इव = के समान। यक्ष्मम् = पूज्य को, श्रेष्ठ को। विबाधध्व = बाधा मुक्त करें॥ 86॥

भावार्थ - ओषधियाँ अङ्ग-अङ्ग में और पर्व-पर्व अर्थात् प्रत्येक सन्धि में संचरण करती हैं। अतः उग्र स्वभाव वाले भी मध्यम भावना वाले के समान पूज्य को, श्रेष्ठ को बाधा मुक्त करें॥ 86॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यस्य (सर्वनाम)। ओषधीः (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। प्र-सर्पथ (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, सृप् - जाना, सरकना, जानना, पाना, चलना)। अङ्गम्-अङ्गम् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। परुः-परुः (पर्व - पूर्ण करना, पूरा करना, भरना, विभाग करना)। ततो (सर्वनाम)। यक्ष्मम् (यक्ष = पूजा करना, पूजना, सत्कार करना)। विबाधध्व (वि = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग), बाध् - रोकना, अटकाव करना, बाधा देना, दुःख देना)। उग्रो (उत् - उग्र - उग्र होना, तेज होना)। मध्यमशीः (मध्यम = मध्य (सर्वनाम) शी = सोना, शयन करना)। इव (अव्यय)॥ 86॥

600. साकम् यक्ष्म प्र पत, चाषेण किकिदीविना। साकम् वातस्य ध्राज्या, साकम् नश्य निहाकया॥87॥

मन्त्रार्थ - यक्ष्म = हे पूज्य। चाषेण = मार्ग-दर्शक। किकिदीविना = ज्ञानी, चिकित्सक के। साकम् = साथ। प्र = प्रकृष्ट। पत = ऐश्वर्य हो। वातस्य = वात या वायु के। ध्राज्या = गतिमान, ज्ञानी के। साकम् = साथ। निहाकया = त्याज्य के। साकम् = साथ। नश्य = नाशवान् हो॥ 87॥

भावार्थ - यक्ष्म **अर्थात्** हे पूज्य, मार्ग-दर्शक, ज्ञानी, चिकित्सक के साथ प्रकृष्ट ऐश्वर्य हो। वातस्य = वात या वायु के गतिमान, ज्ञानी द्वारा तथा त्याज्य के साथ। नश्य = नाशवान् हो॥ 87॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - साकम् (अव्यय)। यक्ष्म (यक्ष = पूजा करना, पूजना, सत्कार करना)। प्र (उपसर्ग)। पत (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। चाषेण (चष् - खाना, बोलना, देखना)। किकिदीविना (कित् = ज्ञान होना, निवास करना, रोग निवारण करना, जानना, वक्रगति करना)। वातस्य (वात - सुखी होना, आनन्द करना, सेवा करना, जाना, वा - गति करना, बहना, पवन की भाँति चलना)। ध्राज्या (ध्रज् - जाना, जानना, पाना)। नश्य (नश् - नष्ट होना, अदृश्य होना)। निहाकया (नि - निरन्तर, निश्चित, हा = त्याग करना, चलना, जाना, हन् - मारना)॥ 87॥

601. अन्या वो अन्याम् अवतु, अन्या अन्यस्या उप अवत।
ताः सर्वाः संविदाना इदम्, मे प्र अवता वचः॥88॥

मन्त्रार्थ- अन्या = अन्य। वो = तुम्हारे लिए। अन्याम् = अन्य को। अवतु = रक्षा करे। अन्या = अन्य। अन्यस्या = अन्य का। उप = समीप। अवत = रक्षा करे। ताः = वे। सर्वाः = सभी। संविदाना = विद्वान। इदम् = यह, इसको। मे = मेरा, मेरे लिए। प्र = प्रकृष्ट। वचः = वचन का। अवता = रक्षा करें॥ 88॥

भावार्थ - हम स्वयम् अपना ही रक्षण-पालन नहीं करें, अपितु अन्य लोगों के भी रक्षण-पालन का प्रयास करें। अतः सन्देश है कि अन्य लोग तुम्हारे लिए अन्य की रक्षा करें। अन्य लोग अन्य का। उपरक्षण करें। वे सभी विद्वान् मेरा वचन तथा मेरे लिए वचन का रक्षण करें॥ 88॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अन्या (सर्वनाम)। वो (सर्वनाम)। अन्याम् (सर्वनाम)। अवतु (अव = नीचे, दूर, प्राप्त, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। अन्यस्या (सर्वनाम)। उप (उपसर्ग)। अवत (अव् = रक्षा करना,

पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। ताः (सर्वनाम)। सर्वाः (सर्वनाम)। संविदाना (सम् - सम्यक्, सम् - न घबराना, एक समान रहना, विद - शरीर की सुध रखना, समझना, जानना, समझा के कहना, रहना, वास करना, वसना, स्थिर रहना)। इदम् (सर्वनाम)। मे (सर्वनाम)। प्र (उपसर्ग)। अवता (अव = नीचे, दूर, प्राप्त, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। वचः (वच् - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)।। 88 ।।

602. याः फलिनीः या अफला, अपुष्पा याः च पुष्पिणीः। बृहस्पति-प्रसूताः ता, नो मुञ्चन्तु अहंसः ।। 89 ।।

मन्त्रार्थ - याः = जो। फलिनीः = फलयुक्त। या = जो। अफला = अफल, फलहीन। अपुष्पा = पुष्प-हीन। याः = जो। च = और। पुष्पिणीः = पुष्पिणी, पुष्पवती, पुष्पयुक्त। बृहस्पति-प्रसूताः = बृहस्पति द्वारा उत्पन्न, बृहस्पति को उत्पन्न करने वाली। अंहसः = प्रकाशमान। ता = वे। नो = हमको। मुञ्चन्तु = मुक्त करो **।। 89 ।।**

भावार्थ -

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - याः (सर्वनाम)। फलिनीः (फल् - फलित होना, उत्पन्न होना, जाना, विभाग करना)। अफला (फल् - फलित होना, उत्पन्न होना, जाना, विभाग करना)। अपुष्पा (पुष्प - विकसित होना, विकास करना, गति करना)। च (अव्यय)। पुष्पिणीः (पुष्प् = पुष्पित होना, विकसित होना, गति करना)। बृहस्पति-प्रसूताः (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना, प्र - अधिक, प्रकृष्ट, सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। ता (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। मुञ्चन्तु (मुञ्च् - बोलना, कहना, मुक्त करना, त्याग करना)। अंहसः (अंह् = प्रकाशित होना, चमकना, शब्द करना, कुटिल गति करना, मथना)।। 89 ।।

603. मुञ्चन्तु मा शपथ्यात्, अथो वरुण्यात् उत। अथो यमस्य पड्वीशात्, सर्वस्मात् देवकिल्विषात् ।। 90 ।।

मन्त्रार्थ - मुञ्चन्तु = मुक्त करो। मा = नहीं, मुझको। शपथ्यात् = शपथ्य से। अथो = अब, इसके अनन्तर। वरुण्यात् = वरण करे, वरणीय, वरण करने वाला। उत = ही। अथो = अब, इसके बाद, इसके अनन्तर। यमस्य = यम का। **पड्वीशात्** = पड्वीश से, प्रगतिशील, विद्वान्, प्रकाशमान से। सर्वस्मात् = सबसे। देवकिल्विषात् = देवकिल्विष से **।। 90 ।।**

भावार्थ - इस मन्त्र में मा पद महत्वपूर्ण है। अव्यय के रूप में मा का अर्थ नहीं या नकार, निषेध होता है तथा वेद में मा पद सर्वनाम के रूप में संस्कृत पद माम् के पर्यायवाची के रूप में मुझे, मुझको के अर्थ में भी आता है। दोनो प्रकार से अर्थ करना उचित है **।। 90 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मुञ्चन्तु (मुञ्च् - बोलना, कहना, मुक्त करना, त्याग करना)। मा (सर्वनाम)। शपथ्यात् (शप् = शपथ लेना, प्रतिज्ञा करना, शाप देना, निन्दा करना)। अथो (अव्यय)। वरुण्यात् (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। उत (अव्यय)। अथो (अव्यय)। यमस्य (यम - आवरण करना, अपने अधीन रखना, पोषण करना, नियमन करना, प्रतिबन्ध करना, रोकना, अवरोध करना, नाश करना, अन्त करना)। पड्वीशात् (पट् = जाना, जानना, पाना, गूथना, बोलना, चमकना, प्रकाश करना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, उड़ना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना, पद् - चलना, जाना, जानना, पाना, भूषित होना, भूषित करना, विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना, विष्ण-विष्-विविष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना, व्यापना, फैलना, प्रसृत होना)। सर्वस्मात् (सर्वनाम)। देवकिल्विषात् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना, किल् - श्वेत होना, खेलना, भेजना, उड़ाना, विष् - उपयोग न होने से अलग करना या निकाल देना, व्याप्त होना, फैलना, सींचना)।। 90 ।।

604. अवपतन्तीः अवदन्, दिवः ओषधयः परि। यम् जीवम् अश्नवामहै, न स रिष्याति पूरुषः ।। 91 ।।

मन्त्रार्थ - अवपतन्तीः = अवपतन्ती। अवदन् = बोले। दिव = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। ओषधयः = ओषधियाँ। परि = सभी तरफ। यम् = जिस। जीवम् = जीव को। अश्नवामहै = व्याप्त होते हैं। स = वह। पूरुषः = पुरुष, परिपूर्ण, अग्रगामी, अग्रणी। न = नहीं। रिष्याति = विनष्ट होता है **।। 91 ।।**

भावार्थ - प्रकृति दिव्य है, वह दिव्य औषधीय गुणों से युक्त है। प्रकृति के इस रहस्य को समझना है, इन गुणों को

खोजना, जानना है। उनका उचित उपयोग कर हम रोगों से अपनी रक्षा कर सकते हैं। यही इस मन्त्र का सन्देश है **॥91॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अवपतन्तीः (अव = नीचे, दूर, प्राप्त, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। अवदन् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, वद् - बोलना, कहना)। दिव (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। ओषधयः (उषध्- ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा)। परि (उपसर्ग)। यम् (सर्वनाम)। जीवम् (जीव् = जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। अश्नवामहै (अश् = भोजन करना, व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना)। न (अव्यय)। स (सर्वनाम)। रिष्याति (रिश्-रिष - हिंसा करना, मार डालना या दुःख देना, मारने का यत्न करना)। पूरुषः (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना)॥ 91॥

605. या ओषधीः सोमराज्ञीः, बह्वीः शतविचक्षणाः।
तासाम् असि त्वम् उत्तमा, अरम् कामाय शम् ह्रदे ॥92॥

मन्त्रार्थ- या = जो। ओषधीः = ओषधियाँ। सोमराज्ञीः = सोमराज्ञी, ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता के प्रकाशयुक्त। बह्वीः = बहुत, बहने वाले, बहुविधि। शतविचक्षणाः = शतविचक्षणा (हैं)। त्वम् = तुम। तासाम् = उनके। ह्रदे = ह्रदय के लिए। उत्तमा = उत्तम, श्रेष्ठ, शुभ। अरम् = पर्याप्त। कामाय = कामना के लिए, इच्छा के लिए। शम् = कल्याणकारी, शान्तिमय, शमनकारी। असि = हो **॥ 92 ॥**

भावार्थ - जो ओषधियाँ सोमराज्ञी अर्थात् ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता परमात्मा के प्रकाश से युक्त, बहुविधि, शतविचक्षणाः हैं, तुम उनके ह्रदय के लिए उत्तम, श्रेष्ठ, शुभ पर्याप्त कामना के लिए, इच्छा के लिए कल्याणकारी, शान्तिमय, शमनकारी हो **॥ 92 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - या (सर्वनाम)। ओषधीः (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। सोमराज्ञीः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू - प्रेरणा देना, राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। बह्वीः (बह - बहना, बहु - बहुत, सर्वनाम)। शतविचक्षणाः (शत = सौ, वि = विशेष, विपरीत, चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)। तासाम् (सर्वनाम)। असि (अस् - होना)। त्वम् (सर्वनाम)। उत्तमा (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। अरम् (अव्यय)। कामाय (कम - चाहना, इच्छा करना)। शम् (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। ह्रदे (ह्र = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना)॥ 92॥

(141) सूक्त 19

606. या ओषधीः सोमराज्ञीः, विष्ठिताः पृथिवीम् अनु। बृहस्पति-प्रसूताः अस्यै, सम् दत्त वीर्य्यम् ॥93॥

मन्त्रार्थ- या = जो। ओषधीः = ओषधियाँ। सोमराज्ञीः = सोमराज्ञी, ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता के प्रकाशयुक्त। **विष्ठिताः** = विशेष स्थित। पृथिवीम् = पृथिवी को। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल। **बृहस्पति-प्रसूताः** = बृहस्पति द्वारा उत्पन्न, बृहस्पति को उत्पन्न करने वाली। अस्यै = इसके लिए। वीर्य्यम् = पराक्रम, वीरता को। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। दत्त = दिया **॥ 93 ॥**

भावार्थ - प्रकृति दिव्य है, वह दिव्य औषधीय गुणों से युक्त है। वह परमात्मा का सृजन है, उनमें वीर्य-बल-समर्थ्य परमात्मा की ही देन है। प्रकृति के इस रहस्य को समझना है, इन गुणों को खोजना, जानना है। उनका उचित उपयोग कर हम रोगों से अपनी रक्षा कर सकते हैं। यही इस मन्त्र का सन्देश है **॥ 93 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - या (सर्वनाम)। ओषधीः (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। सोमराज्ञीः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना, राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। विष्ठिताः (वि - विशेष, स्था - स्थित होना)। पृथिवीम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अनु (उपसर्ग)। बृहस्पति-प्रसूताः (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, उड़ना, प्र - अधिक, प्रकृष्ट, सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। अस्यै (सर्वनाम)। सम् (उपसर्ग)। दत्त (दा, दद्, दत् = दान करना, देना, त्याग करना, सौंपना, लौटाना, रखना)। वीर्य्यम् (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)॥ 93॥

607. याः च इदम् उप-शृण्वन्ति, याः च दूरम् परागताः।
सर्वाः सङ्गत्य वीरुधो, अस्यै सम् दत्त वीर्य्यम्॥94॥

मन्त्रार्थ- याः = जो। च = और। इदम् = यह, इसको । उप-शृण्वन्ति = उपश्रवण करते हैं । याः = जो । च = और। दूरम् = दूर । परागताः = परागता । सर्वाः = सभी । सङ्गत्य = संगमन में । वीरुधो = वीरूध, वीरों को धारण करने वाला । अस्यै = इसके लिए । सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति । दत्त = दिया। वीर्य्यम् = पराक्रम, वीरता को । सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति **॥94॥**

भावार्थ - हमारे निकट हो या दूर, जो भी प्रकृति है, वह सभी परमात्मा की सृष्टि है। वह हमारे लिए उपयोगी है। उसमें बल-वीर्य परमात्मा द्वारा ही प्रदत्त है **॥94॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - याः (सर्वनाम)। च (अव्यय)। इदम् (सर्वनाम)। उप-शृण्वन्ति (उप- सपीप, शृ = सुनना, श्रवण करना, जाना)। दूरम् (अव्यय)। परागताः (परा = परम, परे, पीछे, विपरीत, अव्यय, गम् = जाना, जानना, पाना)। सर्वाः (सर्वनाम)। सङ्गत्य (सम् - सम्यक्, गम् - जाना, सम्-गम्, सङ्गम् - मिलना, साथ चलना)। वीरुधो (वि = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग), रुध = बढ़ना, गर्व करना, रुध = चाहना, रोकना, कृपालु होना, दया करना, अनुमोदन देना, सलाह करना, शोक करना, रोना, वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना, धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)। अस्यै (सर्वनाम)। सम् (उपसर्ग)। दत्त (दा, दद्, दत् = दान करना, देना, त्याग करना, सौंपना, लौटाना, रखना)। वीर्य्यम् (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। सम् (उपसर्ग)॥ 94॥

608. मा वो रिषत् खनिता यस्मै, च अहम् खनामि वः।
द्विपात् चतुष्पात् अस्माकम्, सर्वम् अस्तु अनातुरम्॥95॥

मन्त्रार्थ - मा = नहीं, मत। वो = तुम सबको, तुम सबके लिए, तुम सबका, तुम्हारा, तुमको, तुम लोग। रिषत् = हिंसक। खनिता = खनित, खनन किया हुआ, खनन करने वाला, खोदने वाला। यस्मै = जिसके लिए। च = और। अहम् = मैं। खनामि = खनन करता हूँ, खोदता हूँ। वः = तुम सबको, तुम सबके लिए, तुम सबका, तुम्हारा, तुमको, तुम लोग। द्विपात् = द्विपद वाला। चतुष्पात् = चार पैर वाले। अस्माकम् = हमारा। सर्वम् = सब कुछ। अस्तु = हो। अनातुरम् = अशीघ्रकारी को **॥95॥**

भावार्थ - हम कृषि आदि उपयोगी कार्यों के लिए भूमि का खनन करते हैं, वह उचित ही है। इससे भूमि तथा उपयोगकर्ता को हानि नहीं होती है। प्रकृति का विवेकपूर्ण सीमित उपयोग करना उचित है, परन्तु अत्यधिक अनावश्यक दोहन विनाशकारी हो सकता है, यह ध्यान रखना चाहिए **॥95॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मा (अव्यय)। वो (सर्वनाम)। रिषत् (रिश्-रिष - हिंसा करना, मार डालना या दुःख देना, मारने का यत्न करना)। खनिता (खन् = खनन करना, खोदना)। यस्मै (सर्वनाम)। च (अव्यय)। अहम् (सर्वनाम)। खनामि (खन् = खनन करना, खोदना)। द्विपात् (द्वि = दो, संख्या, पद - स्थानान्तर करना, चलना, जाना)। चतुष्पात् (चतुः - चार, संख्या, पद - चलना, स्थानान्तर करना)। अस्माकम् (सर्वनाम)। सर्वम् (सर्वनाम)। अस्तु (अस - होना, रहना, जाना,

लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। अनातुरम् (अन्- नहीं, आ-तुर् - त्वरा करना, शीघ्रता करना)।95 ।।

609. ओषधयः सम् अवदन्त, सोमेन सह राज्ञा। यस्मै कृणोति ब्रह्मणः, तम् राजन् पारयामसि ।।96 ।।

मन्त्रार्थ - ओषधयः = ओषधियाँ। सम् = सम्यक्। सोमेन = सोम, सौम्यता, ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता द्वारा। राज्ञा = राज या प्रकाशमान के। सह = साथ। अवदन्त = बोले। यस्मै = जिसके लिए। ब्रह्मणः = महान्, बृहत्। कृणोति = करता है। तम् = उसे। राजन् = हे राजन्, प्रकाशित होने वाले। पारयामसि = पार करते हो, कार्य पूर्ण करते हो **।। 96 ।।**

भावार्थ - ओषधियाँ सोम, सौम्यता, ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता परमात्मा के प्रकाश के साथ बोले। महान्, बृहत् परमात्मा जिसके लिए ओषधियाँ उत्पन्न करता है, उसे पार करते हो, कार्य पूर्ण करते हो **।। 96 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ओषधयः (उषध्- ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा करना)। सम् (उपसर्ग)। अवदन्त (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, वद् - बोलना, कहना)। सोमेन (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। सह (सर्वनाम)। राज्ञा (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। यस्मै (सर्वनाम)। कृणोति (कृ = करना)। ब्रह्मणः (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। तम् (सर्वनाम)। राजन् (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। पारयामसि (पार - कार्य पूर्ण करना, पृ - पूर्ण करना, पालन-पोषण करना, प्रेम करना)।। 96 ।।

(142) सूक्त 20

610. नाशयित्री बलासस्य, अर्शस उप-चिताम् असि। अथो शतस्य यक्ष्माणाम्, पाकारोः असि नाशनी।97 ।।

मन्त्रार्थ- नाशयित्री = नाश करने वाली, विनाशिका। बलासस्य = बल। अर्शस = अन्तर्यामी, विद्यमान। उप-चिताम् = उपचित को, उपचयनित को, समीप चुने गये, एकत्र किये गये को। असि = हो। अथो = अब, इसके बाद, इसके अनन्तर। शतस्य = सौ का। यक्ष्माणाम् = यक्ष्मा को। पाकारोः = पाकारो। असि = हो। नाशनी = नाश करने वाली, विनाशिका **।। 97 ।।**

भावार्थ - ओषधियाँ रोगों का नाश करने वाली हैं **।। 97 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नाशयित्री (नश् - नष्ट होना, अदृश्य होना)। बलासस्य (बल् - बल होना, जाना, स्पष्ट करना, प्राण होना, चेतन होना, जीना, जीते रहना, रक्षा करना, धान्य सञ्चय करना, द्रव्य को रोकना)। अर्शस (ऋष् = जाना, जानना, पहुँचना, पाना, सूक्ष्मता से भीतर देखना, अन्तर्गमन करना)। उप-चिताम् (उप - समीप, चि - चुनना, चयन करना, ढूँढना, एकत्र करना)। असि (अस् - होना)। अथो (अव्यय)। शतस्य (सर्वनाम)। यक्ष्माणाम् (यक्ष = पूजा करना, पूजना, सत्कार करना)। पाकारोः (**पच** = पकाना)। नाशनी (नश् - नष्ट होना, अदृश्य होना)।। 97 ।।

611. त्वाम् गन्धर्वा अखनन्, त्वाम् इन्द्रः त्वाम् बृहस्पतिः।
त्वाम् ओषधे सोमो राजा, विद्वान् यक्ष्मात् अमुच्यत ।।98 ।।

मन्त्रार्थ- त्वाम् = तुमको, तुम्हारा। गन्धर्वा = गतिशीलता, विद्वता को धारण करने वाले । अखनन् = खनन किया, खोदा । त्वाम् = तुमको, तुम्हारी । इन्द्रः = परम ऐश्वर्यमान । त्वाम् = तुमको, तुम्हारी । बृहस्पतिः = विराट, महान्, बृहस्पति । त्वाम् = तुमको, तुम्हारी । ओषधे = ओषध में । **सोमो** = ऐश्वर्यमय । राजा = राजा । विद्वान् = विद्वान्, जानने वाला, ज्ञानी । यक्ष्मात् = यक्ष्मा से । अमुच्यत = त्याग किया **।। 98 ।।**

भावार्थ - विविध देवों अर्थात् विद्वानों ने औषधियों का उत्खनन किया, उनको खोजा, प्राप्त किया तथा उनका उचित उपयोग कर लोगों को रोगमुक्त किया है **।। 98 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - त्वाम् (सर्वनाम)। गन्धर्वा (गम् + धृ, गम् = जाना, जानना, पाना, धृ = धारण करना)। अखनन् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, खन - दुःख देना, खनन करना, खोदना)। इन्द्रः (इन्द् = परम ऐश्वर्य

होना)। बृहस्पतिः (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। ओषधे (उषध्-ओषध् - चिकित्सा करना, रोगमुक्त करना)। सोमो (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। राजा (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। विद्वान् (विद - शरीर की सुध रखना, समझना, जानना, समझा के कहना, रहना, वास करना, वसना, स्थिर रहना, विद्यमान होना, विचार करना, जीवन होना)। यक्ष्मात् (यक्ष = पूजा करना, पूजना, सत्कार करना)। अमुच्यत (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, मुच् - घर्षण करना, मोचन करना, त्यागना, ऐश्वर्य होना, प्रसन्न होना)॥ 98॥

612. सहस्व मे अरातीः, सहस्व पृतनायतः। सहस्व सर्वम् पाप्मानम्, सहमाना असि ओषधे॥99॥

मन्त्रार्थ- ओषधे = हे ओषधि। सहस्व = सहनशील, समर्थ । मे = मेरा, मेरे लिए । अरातीः = अदानियों को । सहस्व = सहनशील, समर्थ । पृतनायतः = व्यापक, बल वाले । सहस्व = सहनशील, समर्थ । सर्वम् = सब कुछ । पाप्मानम् = पाप्मन् द्वारा । सहमाना = सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ठ, बलवान् । असि = हो । **॥99॥**

भावार्थ - ओषधियाँ कठिन रोगों को सहन करने, उनका नाश करने में समर्थ होती हैं। इसी प्रकार हम भी उनका उचित उपयोग कर समर्थ-सहनशील बन सकते हैं **॥99॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सहस्व (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना)। मे (सर्वनाम)। अरातीः (अ + रा = देना, रम् - रमना, रमण करना, रम जाना, रत होना, क्रीडा करना, प्रिय होना, मूल्यवान होना)। पृतनायतः (पृत - व्याप्त होना, जीवन होना, बलपूर्वक निकालना, पृ - पूर्ण करना)। सर्वम् (सर्वनाम)। पाप्मानम् (पाप् - पाप करना, दुष्ट आचरण करना)। सहमाना (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना)। असि (अस् - होना)। ओषधे (उषध्-ओषध् - चिकित्सा करना, रोगमुक्त करना)॥ **99॥**

613. दीर्घायुः ते ओषधे खनिता, यस्मै च त्वा खनामि अहम्।
अथो त्वम् दीर्घायुः भूत्वा, शतवल्शा विरोहतात्॥100॥

मन्त्रार्थ- ओषधे = हे ओषधि। ते = तुम्हारा। दीर्घायुः = दीर्घ आयु वाला। यस्मै = जिसके लिए। खनिता = खनित, खनन किया हुआ, खनन करने वाला, खोदने वाला। च = और। अहम् = मैं। त्वा = तुमको। खनामि = खनन करता हूँ। अथो = अब, इसके अनन्तर। त्वम् = तुम। दीर्घायुः = दीर्घ आयु वाला। भूत्वा = होकर। शतवल्शा = सौ आच्छादनों से युक्त। वि = विशेष। रोहतात् = चढ़े, बढ़ें **॥100॥**

भावार्थ - हे ओषधि, तुम्हारा दीर्घ आयु हो। जिसके लिए खनन किया और मैं तुमको जिसके लिए खनन करता हूँ, उन सभी के लिए तुम्हारा दीर्घ आयु हो। अब तुम दीर्घ आयु वाले होकर सैकड़ो आच्छादनों अर्थात् शाखाओं, जड़ों, लताओं, पर्णों, पुष्पों, फलों से युक्त होकर आरोहण करो, चढ़ो, बढ़ों **॥100॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - दीर्घायुः (दृह - बढ़ना, वृद्धिगत होना, आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। ते (सर्वनाम)। ओषधे (उषध्-ओषध् - चिकित्सा करना, रोगमुक्त करना)। खनिता (खन् = खनन करना, खोदना)। यस्मै (सर्वनाम)। च (अव्यय)। त्वा (सर्वनाम)। खनामि (खन् = खनन करना, खोदना)। अहम् (सर्वनाम)। अथो (अव्यय)। त्वम् = तुम (सर्वनाम)। भूत्वा (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। शतवल्शा (शत = सौ, वल - आच्छादित करना, ढकना, घेरना, जाना)। वि (उपसर्ग)। रोहतात् (रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)॥ 100॥

614. त्वम् उत्तमा असि ओषधे, तव वृक्षा उपस्तयः।
उपस्तिः अस्तु सो अस्माकम्, यो अस्मान् अभि-दासति॥101॥

मन्त्रार्थ- ओषधे = हे ओषधि। त्वम् = तुम। उत्तमा = उत्तम, श्रेष्ट। असि = हो। तव = तुम्हारा । वृक्षा = वृक्ष। उपस्तयः = उपरक्षण करने वाले। उपस्तिः = समीप। अस्तु = हो। सो = वह। अस्माकम् = हमारा। यो = जो। अस्मान् = हमें। अभि-दासति = सर्वथा दान करता है **॥ 101 ॥**

भावार्थ - हे ओषधि, तुम उत्तम, श्रेष्ट हो। तुम्हारा वृक्ष उपरक्षण करने वाले हैं, वह हमारा ओषधि-वृक्ष, जो हमें सर्वथा आरोग्य दान करता है, समीप रहे। ओषधि-वृक्षों पौधों को आवास के निकट रखना उचित तथा लाभकारी है **॥ 101 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - त्वम् (सर्वनाम)। उत् (उपसर्ग)। तमा (तम - इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना, अन्धकार होना)। असि (अस् - होना)। ओषधे (उषध्-ओषध् - चिकित्सा करना, रोगमुक्त करना)। तव (सर्वनाम)। वृक्षा (वृक्ष - वरण करना, आच्छादन करना)। उपस्तयः (उप - समीप, तय् = जाना, संरक्षण करना, चुम्बन करना)। उपस्तिः (उप - समीप)। अस्तु (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। सो (सर्वनाम)। अस्माकम् (सर्वनाम)। यो (सर्वनाम)। अस्मान् (सर्वनाम)। अभि-दासति (अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, दास् - देना, दान करना)॥ 101॥

(143) सूक्त 21

615. मा मा हिंसीत् जनिता यः पृथिव्या, यो वा दिवम् सत्यधर्मा वि आनट्।
यः च अपः चन्द्राः प्रथमो जजान, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥102 ॥

मन्त्रार्थ - मा = नहीं, मुझको। मा = नहीं, मुझको। हिंसीत् = हिंसा करे। जनिता = उत्पन्न करने वाला। यः = जो। पृथिव्या = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। यो = जो। वा = अथवा। दिवम् = दिव को, तेजस्वी को। सत्यधर्मा = सत्य धर्म । वि = विशेष, विना, विलोम । आनट् = सम्यक् चेतन-प्राणवान्, आनर्तन । यः = जो। च = और। अपः = पालक, रक्षक् । चन्द्राः = चन्द्रमा, आनन्द, प्रकाश दायक । प्रथमो = प्रथम, आदि, विस्तार । जजान = उत्पन्न किया । कस्मै = किसलिए, किसके लिए । देवाय = देव के लिए। हविषा = हविष से, दान व आदान-प्रदान द्वारा । विधेम = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें **॥102 ॥**

भावार्थ - परमात्मा सबको उत्पन्न करने वाला है, मारने वाला नहीं है। वह सृष्टिकर्ता है, विनाशकारी नहीं। हम भी हिंसा न करें, किसी को हानि न पहुँचायें, तभी तो परमात्मा की उपासना सार्थक हो सकती है **॥102 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मा (सर्वनाम)। हिंसीत् (हिंस् = हिंसा करना, मारना, सताना)। जनिता (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। यः (सर्वनाम)। पृथिव्या (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। वा (अव्यय)। दिवम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। सत्यधर्मा (सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना, धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। वि (उपसर्ग)। आनट् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अन् - चेतन होना, चेतन करना, प्राण होना, नट् - नाट्य करना, नृत्य करना, गिरना, बहना, झरना, दिखाना, धीरे-धीरे सरकना)। च (अव्यय)। अपः (अप् - पालन करना)। चन्द्राः (चन्द् - चमकना, आनन्द होना, प्रकाश होना, सन्तोष होना)। प्रथमो (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना)। जजान (उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन- उत्पन्न करना)। कस्मै (सर्वनाम)। देवाय (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। हविषा (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। विधेम (वि - विशेष, धा - धारण करना)।॥102॥

616. अभि आ वर्त्तस्व पृथिवि, यज्ञेन पयसा सह। वपाम् ते अग्निः, इषितो अरोहत्॥103॥

मन्त्रार्थ - अभि = अभिमुख। आ = समन्तात्, सम्यक्। वर्त्तस्व = वर्तमान हो, वर्ताव करो। पृथिवि = विस्तार में, पृथ्वी पर। यज्ञेन = यज्ञ द्वारा। पयसा = पयस् द्वारा, विस्तार द्वारा, प्रगतिशील, प्रवाहमान द्वारा। सह = साथ, सहित। वपाम् = वपन को। ते = तुम्हारा। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। इषितो = इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि युक्त।

अरोहत् = चढ़े, बढ़ें ॥ **103** ॥

भावार्थ - अभिमुख सम्यक् वर्तमान हो, वर्ताव करो। पृथ्वी पर यज्ञ अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान तथा विस्तार, प्रगतिशील, प्रवाहमान के साथ वपन को अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि युक्त होकर आरोहण करे, चढ़े, बढ़ें ॥ **103** ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अभि (उपसर्ग)। आ (उपसर्ग)। वर्त्तस्व (वृत् - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, होना, वरण करना, स्वीकार करना, हिंसा करना, सेवा करना, चमकना, बोलना)। पृथिवि (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। यज्ञेन (यज - देवपूजा करना, देना, संगति करना)। पयसा (पय् = जाना, जानना, पाना, बहना, पयस् = विस्तार करना, फैलाना)। सह (सर्वनाम)। वपाम् (वप - बीज बोना, उत्पन्न करना, बुनना, अन्नादि काटना, बाल काटना)। ते (सर्वनाम)। अग्निः (अग् = जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, गति करना, घूमना, टेढ़ा जाना, आगे जाना, लेना, ग्रहण करना)। इषितो (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। अरोहत् (रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)॥ 103 ॥

617. अग्ने यत् ते शुक्रम् यत् चन्द्रम्, यत् पूतम् यत् च यज्ञियम्। तत् देवेभ्यो भरामसि ॥ 104 ॥

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि। यत् = जो। ते = तुम्हारा। शुक्रम् = शुक्र, विद्वान्, शुद्ध, पवित्र, पावन, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी। यत् = जो। चन्द्रम् = आनन्द, प्रकाश। यत् = जो। पूतम् = पवित्रता युक्त, रक्षित। यत् = जो। च = और। यज्ञियम् = यजनीय को, यजनकर्ता को। तत् = उस को। देवेभ्यो = देवों, विद्वानों के लिए। भरामसि = भरण करते हो ॥ **104** ॥

भावार्थ - परमात्मा की सृष्टि में जो कुछ है, वह हमारे लिए ही है, उसके अपने लिए नहीं है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहा गया है कि हे अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्, जो तुम्हारा शुक्र अर्थात् शुद्ध, पवित्र चेतनता है, जो आनन्द, प्रकाश है, जो पवित्रता है, रक्षण है, वह यजनीय को, यजनकर्ता को, देवों, विद्वानों के लिए भरण करते हो ॥ **104** ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। यत् (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। शुक्रम् (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। चन्द्रम् (चन्द्र - आनन्द होना, चमकना)। पूतम् (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। च (अव्यय)। यज्ञियम् (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। तत् (सर्वनाम)। देवेभ्यो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। भरामसि (भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)॥ 104 ॥

(144) सूक्त 22

618. इषम् ऊर्जम् अहम् इत आदम्, ऋतस्य योनिम् महिषस्य धाराम्।
आ मा गोषु विशतु आ तनूषु जहामि, सेदिम् अनिराम् अमीवाम् ॥ 105 ॥

मन्त्रार्थ - इषम् = इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि को ऊर्जम् = ऊर्जा को। अहम् = मैं । इत = पाये, गति, ज्ञान, प्रकाश प्राप्त किया । आदम् = खाने वालों के लिए, देने वाले के लिए । ऋतस्य = ऋत का । योनिम् = योनि को । महिषस्य = महिष का, महिमावान् का, महान् का । धाराम् = धारा को । आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण । मा = नहीं, मत । गोषु = गो में, शब्द करने वालों, मननशीलों, उपदेशकों में । विशतु = प्रविष्ट हो । आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण । तनूषु = विस्तारों में । जहामि = त्याग देते हैं, हनन, त्याग करते हैं । सेदिम् = हिंसा को, अवसाद को । अनिराम् = अनिरा को । अमीवाम् = शब्द, गति, सेवा युक्त, अतुल्य, अहिंसक को॥ 105 ॥

भावार्थ - परमात्मा की सृष्टि में जो कुछ है, वह हमारे लिए ही है, उसके अपने लिए नहीं है। इसलिए हमें भी प्राकृति का सदुपयोग लोकोपकार के लिए ही करना चाहिए ॥ **105** ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इषम् (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना,

निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। ऊर्जम् (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। अहम् (सर्वनाम)। इत (इ - जाना, जानना, पाना, इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। आदम् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अद् - खाना, नष्ट करना, दा - देना, आ-दा - आदान करना)। ऋतस्य (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। योनिम् (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। महिषस्य (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। धाराम् (धाः = पोषण करना, रक्षण करना, देना, दान करना, धार बाँधना, धारा होना)। आ (उपसर्ग)। मा (अव्यय)। गोषु (गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना)। विशतु (विश - घुसना, भीतर जाना, धंसना, चारों ओर फैलना)। तनूषु (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। जहामि (जह - हिंसा करना, चलना, फैलना, जहा - परित्याग करना, छोड़ना)। सेदिम् (सिद् = हिंसा करना, अवसाद होना, सिध् = जाना, सिद्ध होना, जीत होना, पूर्ण होना)। अनिराम् (अन् = प्राण होना, चेतन होना, श्वास लेना, स्पन्दन करना, हलचल करना)। अमीवाम् (अम् = गति, शब्द, सेवा करना, रोग होना, अ - नहीं, मा = मापना, नापना, तौलना, मि - फेकना, स्थापना करना, रक्षा करना, मी - हिंसा करना, मारना)॥ 105॥

619. अग्ने तव श्रवो वयो महि, भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो।
बृहद्भानो शवसा वाजम्, उक्थ्यम् दधासि दाशुषे कवे॥106॥

मन्त्रार्थ - **अग्ने** = हे अग्नि। **तव** = तुम्हारा। **श्रवो** = श्रुति। **वयो** = वय या रचना। **महि** = महत् को, पूज्य, महान्, पूजते हैं। **भ्राजन्ते** = प्रकाशित होते हैं। **अर्चयो** = अर्चना करने वाले। **विभावसो** = विशेष प्रकाशित होता है। **बृहद्भानो** = महान्, बड़ा, विराट, बृहत् प्रकाश। **शवसा** = समीप जाने के लिए, शवस् द्वारा, गति, ज्ञान द्वारा। **वाजम्** = विद्या को, गति को। **उक्थ्यम्** = कथनीय को। **दधासि** = धारण करते हो। **दाशुषे** = दानी के लिए। **कवे** = कवि॥ 106॥

भावार्थ - परमात्मा की सृष्टि में जो कुछ है, वह हमारे लिए ही है, उसके अपने लिए नहीं है। परमात्मा अपना अनुदान सबको देता है, विशेष रूप से दानियों को उसका दिव्य आत्यात्मिक अनुदान प्राप्त होता है, इसलिए हमें भी प्राकृति का सदुपयोग लोकोपकार के लिए ही करना चाहिए॥ **106॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - **अग्ने** (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **तव** (सर्वनाम)। **श्रवो** (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। **वयो** (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना)। **महि** (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। **भ्राजन्ते** (भ्राज् = चमकना, प्रकाशित होना)। **अर्चयो** (अर्च - पूजा करना, मान करना, सेवा करना)। **विभावसो** (वि - विशेष, भा - चमकना, प्रकाशित होना)। **बृहद्भानो** (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, भा - प्रकाश करना, चमकना)। **शवसा** (शव - जाना, समीप जाना, आना, चलना-फिरना, बदले में देना, विकार होना)। **वाजम्** (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। **उक्थ्यम्** (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना, उच् - एकत्र होना, सम्बन्ध होना)। **दधासि** (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **दाशुषे** (दश् - देना)। **कवे** (कु, कव् = शब्द करना, कविता करना, वर्णन करना, चित्र खींचना)॥ 106॥

620. पावकवर्चाः शुक्रवर्चाः, अनून-वर्चाः उत् इयर्षि भानुना।
पुत्रो मातरा विचरन् उप अवसि, पृणक्षि रोदसी उभे॥107॥

मन्त्रार्थ - **पावकवर्चाः** = पवित्रकारक, पावक, पवित्रकर्ता, पवित्र करने वाला। **शुक्रवर्चाः** = शुक्र, विद्वान्, शुद्ध, पवित्र, पावन, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी, प्रकाश। **अनून-वर्चाः** = अनूनवर्चस् वाला। **उत्** = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। **इयर्षि** = जाते हो। **भानुना** = भानु द्वारा, प्रकाशमान द्वारा। **पुत्रो** = पुत्र। **मातरा** = माता। **विचरन्** = विचरण करते हुए। **उप** = समीप। **अवसि** = रक्षा करते हो। **पृणक्षि** = पूर्ण करो। **रोदसी** = प्रकाश देने वाले, वाणी, गति की सामर्थ्य से युक्त,

करुणाशील, रोने वाले, रुलाने वाले। **उभे =** दोनों, पूर्णता।। 107 ।।

भावार्थ - परमात्मा का दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश हम सबको सरलता से प्राप्त होता है। माता जैसे अपने सन्तान की रक्षा करती है, उसी प्रकार हमको भी परमात्मा का पालन-रक्षण प्राप्त होता है। उसकी सृष्टि में जो कुछ है, वह हमारे लिए ही है, उसके अपने लिए नहीं है। परमात्मा अपना अनुदान सबको देता है, विशेष रूप से दानियों को उसका दिव्य आत्यात्मिक अनुदान प्राप्त होता है, इसलिए हमें भी प्राकृति का सदुपयोग लोकोपकार के लिए ही करना चाहिए **।। 107 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - पावकवर्चाः (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना, वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। **शुक्रवर्चाः** (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना, वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। **अनून-वर्चाः** (अनु = पश्चात्, पीछे, वर्च - चमकना, प्रकाश करना)। **उत्** (उपसर्ग)। **इयर्षि** (इ = जाना, जानना पाना)। **भानुना** (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। **पुत्रो** (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **मातरा** (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। **विचरन्** (वि = विशेष, विना, विलोम, चर् = चलना, जाना, विचरण करना, संशय होना, विचार करना, संशय रहित होना)। **उप** (उपसर्ग)। **अवसि** (अ - नहीं, अव = नीचे, दूर, प्राप्त, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। **पृणक्षि** (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना)। **रोदसी** (रुद् - रोना, रुलाना, करुण होना, रु -शब्द करना, जाना, चलना, जानना, पाना)। **उभे** (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना) **।। 107 ।।**

621. ऊर्जो नपात् जातवेद सुशस्तिभिः, मन्दस्व धीतिभिः हितः।
त्वे इषः सम् दधुः भूरिवर्पसः, चित्रोतयो वामजाताः ।। 108 ।।

मन्त्रार्थ - ऊर्जो = ऊर्जा। **नपात् =** प्राप्त किया। **जातवेद =** जन्म से विद्वान्, वेद को जानने वाले, वेद को उत्पन्न करने वाले। **सुशस्तिभिः =** प्रशंसायुक्त। **मन्दस्व =** आनन्दित होते हो, विनाश करते हो। **धीतिभिः =** धारणा द्वारा। **हितः =** हित, गति, वृद्धि। **त्वे =** तुममें। **इषः =** इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि। **सम् =** सम्यक् रूप से, भली भाँति। **दधुः =** धारण किया। **भूरिवर्पसः =** भूरि का, गति का, उत्पत्ति का। **चित्रोतयो =** चेतन करने वाले, चित्र स्वरूप अर्थात् चित्र की भाँति प्रत्यक्ष तथा स्पष्ट, आश्चर्यस्वरूप। **वामजाताः =** वाम से उत्पन्न को, सुगन्ध, विद्या, गति-ज्ञान, प्राप्ति से उत्पन्न को।। 108 ।।

भावार्थ - परमात्मा का दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश हम सबको सरलता से प्राप्त होता है। माता जैसे अपने सन्तान की रक्षा करती है, उसी प्रकार हमको भी परमात्मा का पालन-रक्षण प्राप्त होता है। उसकी सृष्टि में जो कुछ है, वह हमारे लिए ही है, उसके अपने लिए नहीं है। परमात्मा अपना अनुदान सबको देता है, विशेष रूप से दानियों को उसका दिव्य आत्यात्मिक अनुदान प्राप्त होता है, इसलिए हमें भी प्राकृति का सदुपयोग लोकोपकार के लिए ही करना चाहिए **।। 106 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ऊर्जो (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। **नपात्** (न - नहीं, पा - पलन करना, रक्षा करना, नप - पहुंचना, जानना, पाना, शब्द करना, झंकार करना, चमकना)। **जातवेद** (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जा-ज्ञा - जानना, विद् - जानना)। **सुशस्तिभिः** (सु - अच्छा, सुन्दर, शंस = स्तुति, प्रशंसा करने वाला)। **मन्दस्व** (मन्द् - आनन्द करना, स्तुति करना, तुष्ट करना, प्रकाशित होना, चमकना, प्रकाश करना, उन्मत्त होना, विनाश करना)। **धीतिभिः** (धी = धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना, बुद्धि , प्रज्ञा होना, धि = धारण करना, युक्त होना)। **हितः** (हि - जाना, जानना, पाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना)। **त्वे** (सर्वनाम)। **इषः** (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। **सम्** (उपसर्ग)। **दधुः** (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **भूरिवर्पसः** (भूरि = बहु, बहुत, अव्यय-सर्वनाम, वृ = वरण करना, वृप-वर्प = रूप बनाना)। **चित्रोतयो** (चित्र् = चित्र बनाना, आश्चर्य करना, चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। **वामजाताः** (वा = गति करना, पवन की भाँति बहना, जाना, जानना, पाना, गन्ध होना, वम् - वमन होना, जन् - उत्पन्न होना, जन्म लेना, उत्पन्न करना)।। 108 ।।

622. इरज्यन् अग्ने प्रथयस्व, जन्तुभिः अस्मे राया अमर्त्य।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि, पृणक्षि सानसिम् क्रतुम् ।। 109 ।।

मन्त्रार्थ - **इरज्यन्** = ईर्ष्या करते हुए। **अग्ने** = हे अग्नि। **प्रथयस्व** = विस्तार करो। **जन्तुभिः** = जन्तुओं द्वारा। **अस्मे** = हमारा, हममें, हमारे लिए। **राया** = गति, विद्या, वाणी। **अमर्त्य** = अमर्त्य। **स** = वह, उसने। **दर्शतस्य** = दर्शत का, दर्शनीय का, देखने वाले का, दिखाने वाले का। **वपुषो** = वपुष के लिए। **वि** = विशेष, विना, विलोम। **राजसि** = प्रकाशमान्। **पृणक्षि** = पृणक्षि। **सानसिम्** = सानसिम्। **क्रतुम्** = कर्म को॥ 109॥

भावार्थ - परमात्मा का दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश हम सबको सरलता से प्राप्त होता है। माता जैसे अपने सन्तान की रक्षा करती है, उसी प्रकार हमको भी परमात्मा का पालन-रक्षण प्राप्त होता है। उसकी सृष्टि में जो कुछ है, वह हमारे लिए ही है, उसके अपने लिए नहीं है। परमात्मा अपना अनुदान सबको देता है, विशेष रूप से दानियों को उसका दिव्य आत्यात्मिक अनुदान प्राप्त होता है, इसलिए हमें भी प्राकृति का सदुपयोग लोकोपकार के लिए ही करना चाहिए **॥ 109 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - **इरज्यन्** (इरज् - ईर्ष्या करना, मत्सर करना)। **अग्ने** (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **प्रथयस्व** (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। **जन्तुभिः** (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **अस्मे** (सर्वनाम)। **राया** (रा-देना, दान करना, रय् = गति करना, जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। **अमर्त्य** (अ = नहीं, मृ = मरना, देहत्याग करना)। **स** (सर्वनाम)। **दर्शतस्य** (दृश् - देखना)। **वपुषो** (वप - बीज बोना, उत्पन्न करना, बुनना, अन्नादि काटना, बाल काटना)। **वि** (उपसर्ग)। **राजसि** (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। **पृणक्षि** (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना)। **सानसिम्** (सन् - सेवा करना, योग्य होना, मिश्रण करना, अलग करना, दान करना, पूजा करना, सत्कर करना, सिम = सम्पूर्ण (सर्वनाम))। **क्रतुम्** (कृ = करना)॥ 109॥

623. इष्कर्त्तारम् अध्वरस्य, प्रचेतसम् क्षयन्तम् राधसो महः।
रातिम् वामस्य सुभगाम् महीम्, इषम् दधासि सानसिम् रयिम्॥ 110॥

मन्त्रार्थ - **इष्कर्त्तारम्** = विद्या, ज्ञान, इच्छा करने वाला। **अध्वरस्य** = अहिंसक, अवर्णनीय का। **प्रचेतसम्** = प्रकृष्ट विचार वाले को। **क्षयन्तम्** = निवास करने वाले को। **राधसो** = शुद्ध, निर्दोष निर्णय, वृद्धि करने वालों का, दान, वृद्धि का। **महः** = महान् (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। **रातिम्** = अनुदान को। वामस्य = वाम का। **सुभगाम्** = सुन्दर मख, गति, ज्ञान। **महीम्** = पूजनीय को, मही को, महिमावान्, महान्। **इषम्** = इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि को। **दधासि** = धारण करते हो। **सानसिम्** = सानसिम्। **रयिम्** = विद्या, ज्ञान॥ 110॥

भावार्थ - परमात्मा का दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश हम सबको सरलता से प्राप्त होता है। माता जैसे अपने सन्तान की रक्षा करती है, उसी प्रकार हमको भी परमात्मा का पालन-रक्षण प्राप्त होता है। उसकी सृष्टि में जो कुछ है, वह हमारे लिए ही है, उसके अपने लिए नहीं है। परमात्मा अपना अनुदान सबको देता है, विशेष रूप से दानियों को उसका दिव्य आत्यात्मिक अनुदान प्राप्त होता है, इसलिए हमें भी प्राकृति का सदुपयोग लोकोपकार के लिए ही करना चाहिए **॥ 110 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - **इष्कर्त्तारम्** (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। **अध्वरस्य** (अ - नहीं, ध्वृ-ध्वर् = हिंसा करना, टेढ़ा करना, झुकाना, मार डालना, वर्णन करना)। **प्रचेतसम्** (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, चेत् = विचार करना, चिन्तन करना)। **क्षयन्तम्** (क्षि - जाना, चलना, जानना, पाना निवास करना, रहना, बसना, क्षय होना)। **राधसो** (रध - शुद्ध होना, निदोष होना, पूर्ण करना, समाप्त करना, परिपक्व होना, अपकार करना, हिंसा करना, राध - बढ़ना, निर्णय करना, सिद्ध होना)। **महः** (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। **रातिम्** (रा - देना, मिल जाना)। **वामस्य** (वा = गति करना, पवन की भाँति बहना, जाना, जानना, पाना, गन्ध होना, प्रवाहित होना, प्रवाहित करना)। **सुभगाम्** (सु - सुन्दर, अच्छा, भग्-भज् = सेवा करना, सेवन करना, सेवित होना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। **महीम्** (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। **इषम्** (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। **दधासि** (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **सानसिम्** (सन् - सेवा करना, योग्य होना, मिश्रण करना, अलग करना, दान करना, पूजा

करना, सत्कर करना, सिम = सम्पूर्ण (सर्वनाम))। **रयिम्** (रय्-रि, री - चलना, जाना, जानना, पाना, री-रै - शब्द करना)।॥10॥

624. ऋतावानम् महिषम् विश्वदर्शतम्, अग्निम् सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः।
श्रुत्कर्णम् सप्रथस्तमम्, त्वा गिरा दैव्यम् मानुषा युगा॥111॥

मन्त्रार्थ - **ऋतावानम्** = ऋत के रक्षकों का। **महिषम्** = पूजित, सम्मानित। **विश्वदर्शतम्** = देखा, दर्शनीय को, देखने वाले को। **अग्निम्** = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। **सुम्नाय** = ऐश्वर्य के लिए। **दधिरे** = धारण किया। **पुरो** = पुरो। **जनाः** = जन, लोग, उत्पन्न हुए, उत्पन्न करने वाले। **श्रुत्कर्णम्** = सुनने वाले कर्ण। **सप्रथस्तमम्** = सप्रथा, पूर्ण ज्ञान युक्त, विस्तृत। **त्वा** = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। **गिरा** = स्तुतियां, वाणियाँ। **दैव्यम्** = दिव्य। **मानुषा** = मानुष, मनन करने वाले। **युगा** = युग, युक्त कीजिये॥111॥

भावार्थ - परमात्मा का दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश हम सबको सरलता से प्राप्त होता है। माता जैसे अपने सन्तान की रक्षा करती है, उसी प्रकार हमको भी परमात्मा का पालन-रक्षण प्राप्त होता है। उसकी सृष्टि में जो कुछ है, वह हमारे लिए ही है, उसके अपने लिए नहीं है। परमात्मा अपना अनुदान सबको देता है, विशेष रूप से दानियों को उसका दिव्य आत्यात्मिक अनुदान प्राप्त होता है, इसलिए हमें भी प्रकृति का सदुपयोग लोकोपकार के लिए ही करना चाहिए **॥111॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - **ऋतावानम्** (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना, अव - रक्षा करना)। **महिषम्** (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। **विश्वदर्शतम्** (विश्व = सब, दृश् - देखना)। **अग्निम्** (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **सुम्नाय** (सु = उत्पन्न कराना, ऐश्वर्य होना)। **दधिरे** (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **पुरो** (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। **जनाः** (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **श्रुत्कर्णम्** (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना, कर्ण - सुनना, दूर ले जाना, बेधना, छेदना)। **सप्रथस्तमम्** (सप - पूर्ण ज्ञान होना, पूरा समझना, पूर्णतया जानना, संसक्त होना, संलग्न होना, मिलाप होना, प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **गिरा** (गृ - सींचना, गीला करना, समझना, जानना, गृ - शब्द करना)। **दैव्यम्** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **मानुषा** (मन् - मनन करना, समझना, जानना, मान - पूजा करना, सम्मान करना, श्रेष्ठ होना, शोध करना)। **युगा** (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना, युगि - छोड़ देना, त्याग करना) **॥111॥**

(145) सूक्त 23

625. आ प्यायस्व सम् एतु, ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्।भव वाजस्य सङ्गथे॥112॥

मन्त्रार्थ- आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। प्यायस्व = बढ़ाओ, बढ़ो, बड़े बनो। सम् = सम्यक्, भली भाँति। एतु = प्राप्त हो, जाये, ज्ञान, गति, इच्छा, प्रेरणा करे । ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए । विश्वतः = सबसे, विश्व से । सोम = ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता, सोम । वृष्ण्यम् = वृष्ण्य को। भव = हो। वाजस्य = विद्या का, गति का। सङ्गथे = संगमन में **॥112॥**

भावार्थ - परमात्मा का दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश हम सबको सरलता से प्राप्त होता है। उसकी सृष्टि में जो कुछ है, वह हमारे लिए ही है, उसके अपने लिए नहीं है। विशेष रूप से दानियों को उसका दिव्य आध्यात्मिक अनुदान प्राप्त होता है, इसलिए हमें भी प्रकृति का सदुपयोग लोकोपकार के लिए ही करना चाहिए **॥112॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ (उपसर्ग)। प्यायस्व (प्याय् = बढ़ना)। सम् (उपसर्ग)। एतु (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, ई = जाना, जानना, पाना, व्यापना, इच्छा करना, प्रेरणा करना)। ते (सर्वनाम)। विश्वतः (सर्वनाम)। सोम (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। वृष्ण्यम् (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। भव (भु = जाना,

घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। वाजस्य (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। सङ्गथे (सम् - सम्यक्, गम् - जाना, सम्-गम्, सङ्गम् - मिलना, साथ चलना)।। 112 ।।

626. सम् ते पयांसि सम् उ यन्तु वाजाः, सम् वृष्ण्यानि अभिमातिषाहः।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि, श्रवांसि उत् तमानि धिष्व ।। 113 ।।

मन्त्रार्थ- सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति । ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए । पयांसि = विस्तृत, विस्तारयुक्त, गतिशील, प्रवाहमान । सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति । उ = निश्चय ही, भी। यन्तु = पोषण करो, उद्धार करें, रोकें, प्राप्त करें, नियमन-नियन्त्रण करें । वाजाः= विद्या, गति । सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति । वृष्ण्यानि = वर्षा करने वाला, पराक्रमी । अभिमातिषाहः = अभिमान को सहन करने वाला । आप्यायमानो = बढ़ते हुए, प्राप्त करते हुए । अमृताय = अमृत के लिए । सोम = ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता, सोम । दिवि = दिव्यता में, दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय में । श्रवांसि = श्रवण करो । उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च । तमानि = अन्धकार, इच्छा, दुःख । धिष्व = शब्द करो, बोलो ।।। 113 ।।

भावार्थ - परमात्मा का दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश हम सबको सरलता से प्राप्त होता है। उसकी सृष्टि में जो कुछ है, वह हमारे लिए ही है, उसके अपने लिए नहीं है। विशेष रूप से दानियों को उसका दिव्य आध्यात्मिक अनुदान प्राप्त होता है, इसलिए हमें भी प्रकृति का सदुपयोग लोकोपकार के लिए ही करना चाहिए **।। 113 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सम् (उपसर्ग)। ते (सर्वनाम)। पयांसि (पय् = जाना, जानना, पाना, बहना, पयस् = विस्तार करना, फैलाना)। उ (अव्यय)। यन्तु (यम् = रोकना, स्वाधीन रखना, आवरण करना, पोषण करना, नियमन करना, यन -उद्धार करना, या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना, जानना)। वाजाः (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। वृष्ण्यानि (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। अभिमातिषाहः (अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, मा = मान करना, मापना, सह - सहन करना, समर्थ होना, तृप्त होना)। आप्यायमानो (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, प्याय - बढ़ना, बड़ा होना, फूलना)। अमृताय (अ - नहीं, मृ - मरना)। सोम (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। दिवि (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। श्रवांसि (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। उत् (उपसर्ग)। तमानि (तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। धिष्व (धिष् = शब्द करना, बोलना)।।113 ।।

627. आ प्यायस्व मदिन्तम, सोम विश्वेभिः अंशुभिः। भवा नो सप्रथस्तमः सखा वृधे ।। 114 ।।

मन्त्रार्थ- आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण । प्यायस्व = बढ़ाओ, बढ़ो, बड़े बनो । मदिन्तम = अत्यन्त आनन्दित करने वाले। सोम = ऐश्वर्यवान् सृष्टिकर्ता, सोम । विश्वेभिः = सबके द्वारा । अंशुभिः = अंश । भवा = हो, हो जाये । नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो । सप्रथस्तमः = सप्रथा, पूर्ण ज्ञान युक्त, विस्तृत । सखा = मित्र । वृधे = वृद्धि में, बढ़ने में **।। 114 ।।**

भावार्थ - परमात्मा का दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश हम सबको सरलता से प्राप्त होता है। हमें भी प्रकृति का सदुपयोग लोकोपकार के लिए ही करना चाहिए **।। 114 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ (उपसर्ग)। प्यायस्व (प्याय् = बढ़ना)। मदिन्तम (मद- आनन्द होना, हर्षित होना, तृप्त होना)। सोम (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। विश्वेभिः (सर्वनाम)। अंशुभिः (अंश- विभाग करना, बाँटना, साथ होना)। भवा (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना,

उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। नो (सर्वनाम)। सप्रथस्तमः (सप - पूर्ण ज्ञान होना, पूरा समझना, पूर्णतया जानना, संसक्त होना, संलग्न होना, मिलाप होना, प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। सखा (सख् = मित्र होना)। वृधे (वृध - बढ़ना, अधिक होना)॥ 114॥

628. आ ते वत्सो मनो यमत्, परमात् चित् सधस्थात्। अग्ने त्वाम् कामया गिरा॥ 115॥

मन्त्रार्थ- आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। वत्सो = वत्स । मनो = मन । यमत् = यमन करता है । परमात् = परम, अत्यन्त, उच्चतम, प्रमुखतम । चित् = चेतन, । सधस्थात् = सहस्थान, सहगामी, साथ । अग्ने = हे अग्नि । त्वाम् = तुमको, तुम्हारी । कामया = कामना करना, इच्छा करना । गिरा = स्तुतियां, वाणियाँ ॥ 115॥

भावार्थ - परमात्मा की वेदवाणी का सम्यक् उच्चारण या पाठ तथा स्वाध्याय करने वाले का मन सशक्त होता है। मन ही सभी कार्यों तथा विचारों का वाहक-सञ्चालक है। अतः व्यक्ति का मन सशक्त होने से विचार शक्ति, कार्य-शक्ति तथा मनोबल, आत्मबल बढ़ता है। अतः हम इस वेदवाणी के माध्यम से अर्थात् वेद-मन्त्रों से परमात्मा की कामना करने तथा उसे प्राप्त करने में पूर्णकाम हो जाते हैं।**॥ 115॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ (उपसर्ग)। ते (सर्वनाम)। वत्सो (वद् = कहना, बोलना, सृ - चलना, सरकना)। मनो (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। यमत् (यम - आवरण करना, अपने अधीन रखना, पोषण करना, नियमन करना, प्रतिबन्ध करना, रोकना, अवरोध करना, नाश करना, अन्त करना)। परमात् (सर्वनाम)। चित् (चित = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। सधस्थात् (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। त्वाम् (सर्वनाम)। कामया (कम - चाहना, इच्छा करना)। गिरा (गृ - सींचना, गीला करना, समझना, जानना, गृ - शब्द करना)।**॥ 115॥**

629. तुभ्यम् ता अङ्गिरस्तम, विश्वाः सुक्षितयः पृथक्। अग्ने कामाय येमिरे॥ 116॥

मन्त्रार्थ- तुभ्यम् = तुम्हारे लिए। ता = वे, वह, वे दोनो । अङ्गिरस्तम = हे अङ्गिरस्तम, अत्यन्त विद्वान्, प्रगतिशील। विश्वाः = विश्व, सभी, सब । सुक्षितयः = सुन्दर निवास वाले । पृथक् = अलग । अग्ने = हे अग्नि । कामाय = कामना के लिए, इच्छा के लिए। येमिरे = संयुक्त करता हूँ, मिलाता हूँ **॥ 116॥**

भावार्थ - परमात्मा का दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश हम सबको सरलता से प्राप्त होता है। हमें भी प्रकृति का सदुपयोग लोकोपकार के लिए ही करना चाहिए। इसी भावना के स्नाथ हम परमात्मा की कामना करते हैं **॥ 116॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तुभ्यम् (सर्वनाम)। ता (सर्वनाम)। अङ्गिरस्तम (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। विश्वाः (सर्वनाम)। सुक्षितयः (सु = अच्छा, उपसर्ग, क्षि = निवास करना, रहना)। पृथक् (अव्यय)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। कामाय (कम - चाहना, इच्छा करना)। येमिरे (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)॥ 116॥

630. अग्निः प्रियेषु धामसु, कामो भूतस्य भव्यस्य। सम्राट् एको वि राजति॥ 117॥

मन्त्रार्थ - अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। प्रियेषु = प्रियों में। धामसु = धामों में। कामो = कामना, इच्छा। भूतस्य = भूत का, उत्पन्न हुए का। भव्यस्य = भव्य का, होने वाले का। सम्राट् = सम्राट। एको = एक। वि = विशेष, विना, विलोम। राजति = प्रकाशित होता है॥ 117॥

भावार्थ - परमात्मा ही सभी लोकों में, सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। उसका दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश हम सबको सरलता से प्राप्त होता है। हमें भी प्रकृति का सदुपयोग लोकोपकार के लिए ही करना चाहिए। इसी भावना के स्नाथ हम परमात्मा की कामना करते हैं **॥ 117॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - **अग्निः** (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **प्रियेषु** (प्री = प्रेम करना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना, कामना करना)। **धामसु** (धा - धारण करना, पोषण

करना, रक्षा करना, दान करना)। **कामो** (कम - चाहना, इच्छा करना)। **भूतस्य =** भूत का, उत्पन्न हुए का (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **भव्यस्य** (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **सम्राट्** (सम् - सम्यक्, भलीभाँति, रट् = बोलना, सम्भाषण करना, राज् = शोभित होना, प्रकाशित होना, चमकना)। **एको** (संख्या)। **वि** (उपसर्ग)। **राजति** (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)।। 117 ।।

इति द्वादशो अध्यायः

ॐ

अथ त्रयोदशो अध्यायः

(146) सूक्त 1

631. मयि गृह्णामि अग्ने अग्निम्, रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय। माम् उ देवताः सचन्ताम्॥1॥

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि। मयि = मुझमें। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। रायस्पोषाय = दान, गति, वाणी के पोषण के लिए। सुप्रजास्त्वाय = अच्छे सन्तान के लिए। सुवीर्याय = उत्तम वीरता के लिए। गृह्णामि = ग्रहण करता हू। माम् = मुझको। उ = निश्चय। देवताः = देवत्व। सचन्ताम् = अभिसिञ्चन करें॥1॥

भावार्थ - हे अग्नि स्वरूप परमात्मन्, मैं अग्नि-तेज को अपने में ग्रहण करता हूँ। दान, गति, वाणी के पोषण के लिए, अच्छे सन्तान के लिए, उत्तम वीरता के लिए ग्रहण करता हूँ। उपासना का उद्देश्य उच्च होना चाहिए। ऐसे उपासक का अभिसिञ्चन दिव्य शक्तियाँ करती हैं॥1॥

पदार्थ - मूल (निरुक्त) - मयि (सर्वनाम)। गृह्णामि (गृह- लेना, स्वीकार करना, निवास करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। रायस्पोषाय (रा-देना, लेना, ग्रहण करना, रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना, पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, रक्षण करना, वृद्धि करना, विभाग करना)। सुप्रजाः (सु - सुन्दर, अच्छा, जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। त्वाय (सर्वनाम)। सुवीर्याय (सु - अच्छा, सुन्दर, वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। माम् (सर्वनाम)। उ (अव्यय)। देवताः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। सचन्ताम् (सच् = सिञ्चन करना, सेवा करना)॥1॥

632. अपाम् पृष्ठम् असि योनिः अग्नेः, समुद्रम् अभितः पिन्वमानम्।
वर्धमानो महान् आ च पुष्करे, दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व॥2॥

मन्त्रार्थ - अग्नेः = अग्नि का । योनिः = बन्धन, मिलन। अपाम् = पालकों का। पृष्ठम् = पृष्ठ को। समुद्रम् = समुद्र को। अभितः = सभी ओर, सर्वथा । पिन्वमानम् = विद्वान्सेवाभावी। असि = हो। वर्धमानो = बढ़ता हुआ । महान् = बड़े, पूज्य, महान्। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। च = और। पुष्करे = पुष्कर में। दिवो = तेजस्वी, ज्योतिर्मय। मात्रया = माता द्वारा, मात्रा द्वारा। वरिम्णा = वरणीय। प्रथस्व = विस्तार करो॥2॥

भावार्थ - अग्नि का मिलन पालकों के पृष्ठ और समुद्र के स्भी ओर है। समुद्र का भाव सम्यक् विस्तार तथा जल-प्रदाता से है॥2॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अपाम् (अप - पालन करना)। पृष्ठम् (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। असि (अस् - होना)। योनिः (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। समुद्रम् (सम् = सम्यक्, भलीभांति, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना)। अभितः (सर्वनाम)। पिन्वमानम् (पि = गति करना, जाना, जानना, पाना, पिन्व = सेवा करना, सेचन करना, प्रोक्षण करना, पिण् - शब्द करना)। वर्धमानो (वृध् = बढ़ना, चमकना, बोलना)। महान् (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। आ (उपसर्ग)। च (अव्यय)। पुष्करे (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, रक्षण करना, वृद्धि करना, विभाग करना, कृ = करना)। दिवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना,

लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। मात्रया (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। वरिम्णा (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। प्रथस्व (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)॥ 2॥

633. ब्रह्म जज्ञानम् प्रथमम् पुरस्तात्, वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः, सतः च योनिम् असतः च विवः॥ 3॥

मन्त्रार्थ- ब्रह्म = ब्रह्म, महान्, बड़ा, विराट, बृहत् । जज्ञानम् = उत्पन्न किया, जाना । प्रथमम् = प्रथम को । पुरस्तात् = पहले । वि = विशेष, विना, विलोम । सीमतः = सीमत । सुरुचो = सुन्दर तेजस्वी । वेन = विद्वान्, कान्तिमान् । आवः = रक्षक, रक्षा करो, पालन करो । स = वह, उसने । बुध्न्या = बोधमय, बोधयुक्त । उपमा = उपमान, निकट मान-मापन । अस्य = इसका । विष्ठाः = स्थित हो । सतः = सत्य । च = और। योनिम् = योनि को । असतः = प्रकाशक से, हैं । च = और। विवः = वरण किया॥ 3॥

भावार्थ - विद्वान् सबसे पहले परमात्मा को जानने का प्रयास करते हैं। विशेष सीमा से उत्तम रुचि वाले वेन या विद्वान् रक्षा करते हैं। बुद्धिमान् इसके विशेष स्थित होने से उपमा देते हैं। सत् और असत् का योनि अर्थात् मिलने, अलग होने का कारण या स्थान का वरण किया॥ 3॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ब्रह्म (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। जज्ञानम् (जन- उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, ज्ञा - जानना)। प्रथमम् (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना)। पुरस्तात् (अव्यय)। वि (उपसर्ग)। सीमतः (सि = बाँधना, मर्यादा होना, सीमा होना)। सुरुचो (सु - अच्छा, सुन्दर, रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। वेन (वेन - मिलाना, अलग करना, रक्षा करना, जाना, समझना, जानना, स्मरण करना, सारासार विचार करना, तारतम्य देखना, वाद्य यन्त्र बजाना, बाजा हाथ में लेना)। आवः (अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। स (सर्वनाम)। बुध्न्या (बुध् - बोध होना, बोध करना, जानना, समझना)। उपमा (उप- सपीप, मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। अस्य (सर्वनाम)। विष्ठाः (वि - विशेष, स्था - स्थित होना, ठहरना)। सतः (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना, सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना)। च (अव्यय)। योनिम् (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। असतः (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना, सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना)। वि (उपसर्ग)। वः (सर्वनाम)॥ 3॥

634. हिरण्यगर्भः सम् अवर्त्तत अग्रे, भूतस्य जातः पतिः एक आसीत्।
स दाधार पृथिवीम् द्याम् उत इमाम्, कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 4॥

मन्त्रार्थ - **हिरण्यगर्भः** = प्रकाशगर्भ, प्रकाश, शब्द को गर्भ में रखने वाला **सम्** = सम्यक् रूप से, भली भाँति। **अवर्तत** = वर्तमान हुए। **अग्रे** = अग्र, आगे, पहले। **भूतस्य** = भूत का, उत्पन्न हुए का। **जातः** = उत्पन्न। **पतिः** = ऐश्वर्यवान् स्वामी (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **एक** = एक। **आसीत्** = था। **स** = वह, उसने। **दाधार** = धारण किया, स्थापित किय। **पृथिवीम्** = पृथिवी को। **द्याम्** = द्यु को, सबसे बढ़कर, विशिष्ट, प्रकाशमय। **उत** = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। **इमाम्** = इसको, इस। **कस्मै** = किसलिए, किसके लिए। **देवाय** = देव के लिए। **हविषा** = हविष से, दान व आदान-प्रदान द्वारा। **विधेम** = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें **॥ 4॥**

भावार्थ - सम्पूर्ण सृष्टि का मूल परमात्मा ही है। वही सृष्टि से पूर्व विद्यमान था। वही धारण एवम् पालनकरने वाला भी है। अतः हम उस परमात्मा के लिए आदान-प्रदान, आह्वान, प्रार्थना, उपासना करते हैं, किसी अन्य के लिए नहीं॥ 4॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - हिरण्यगर्भः (हिरण - प्रकाश करना, शब्द करना, गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गृभ्-गर्भ् - अन्दर होना, अन्तःवास करना)। **सम्** (उपसर्ग)।

अवर्तत (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, वृत् = वर्तना, वर्तमान होना)। **अग्रे** (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **भूतस्य** (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **जातः** (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **पतिः** (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **एक** (संख्या)। **आसीत्** (अस् - होना)। **स** (सर्वनाम)। **दाधार** (धृ - धारण करना)। **पृथिवीम्** (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। **द्याम्** (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना)। **उत** (उपसर्ग)। **इमाम्** (सर्वनाम)। **कस्मै** (सर्वनाम)। **देवाय** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **हविषा** (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। **विधेम** (वि - विशेष, धा - धारण करना) **॥ 4 ॥**

635. द्रप्सः चस्कन्द पृथिवीम् अनु द्याम्, इमम् च योनिम् अनु यः च पूर्वः।
समानम् योनिम् अनु संचरन्तम्, द्रप्सम् जुहोमि अनु सप्त होत्राः ॥5॥

मन्त्रार्थ - यः = जिसने। द्रप्सः = हर्ष, आनन्द, गर्व। पृथिवीम् = पृथिवी को । अनु = पश्चात्, अनुकूल। द्याम् = द्यु को, प्रकाशमय। इमम् = इसको। च = और। योनिम् = योनि को। अनु = पश्चात्, अनुकूल। यः = जो। च = और। पूर्वः = पूर्व। चस्कन्द = गये, प्राप्त किया॥ समानम् = समान। योनिम् = योनि को। अनु = अनुकूल। संचरन्तम् = सम्यक्, विचरण करते हुए। द्रप्सम् = हर्ष, आनन्द, गर्व। अनु = अनुकूल। सप्त = सात, पूर्ण, संलग्न। होत्राः = दानी जुहोमि = दान करते हैं, आदान-प्रदान करते हैं॥ 5॥

भावार्थ - जिसने हर्ष, आनन्द, गर्व, पृथिवी, द्यु, प्रकाश और योनि को अनुकूल और पूर्व प्राप्त किया, वे दानी जन समान। योनि का सम्यक्, विचरण करते हुए हर्ष, आनन्द का दान करते हैं, आदान-प्रदान करते हैं। भाव यह है कि जो कुछ हम प्राप्त करते हैं, उसका लाभ समाज को भी प्रदान करें॥ 5॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - द्रप्सः (दृप् = हर्ष होना, गर्व होना)। चस्कन्द (स्कन्द् - जाना, सूखना)। पृथिवीम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अनु (उपसर्ग)। द्याम् (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना)। इमम् (सर्वनाम)। च (अव्यय)। योनिम् (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। अनु (उपसर्ग)। यः (सर्वनाम)। पूर्वः (पूर्व = पूर्व, पहले, सर्वनाम, पूर्व - पूर्ण करना, भरना, निवास करना, आश्चर्य करना, आमन्त्रण करना)। समानम् (सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, सम = न घबराना, एक समान रहना, अन् - प्राण होना, जीवन होना, श्वास लेना)। योनिम् (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। अनु (उपसर्ग)। संचरन्तम् (सम् - सम्यक्, भलीभाँति, चर - जाना, खाना, आचरण करना)। द्रप्सम् (दृप् = हर्ष होना, गर्व होना)। जुहोमि (हु-जुहु = दान करना, आदान-प्रदान करना, ग्रहण करना, तृप्त करना, जु - जाना, शीघ्र जाना, भागना)। अनु (उपसर्ग)। सप्त (सप - पूर्ण होना, पूर्ण ज्ञान होना, पूरा समझना, पूर्णतया जानना, संसक्त होना, संलग्न होना, मिलाप होना)। होत्राः (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)॥ 5॥

(147) सूक्त 2

636. नमो अस्तु सर्पेभ्यो, ये के च पृथिवीम् अनु। ये अन्तरिक्षे ये दिवि, तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥6॥

मन्त्रार्थ - नमो = नमन। अस्तु = हो। सर्पेभ्यो = सर्प। ये = जो। के = कौन, कोई। च = और। पृथिवीम् = पृथिवी को। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल। ये = जो। अन्तरिक्षे = अन्तरिक्ष में। ये = जो। दिवि = दिव्यता में, दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय में। तेभ्यः = उनके लिए। सर्पेभ्यो = सर्प। नमः= नमन॥ 6॥

भावार्थ - पृथिवी पर, अन्तरिक्ष में, दिव में जो भी सर्प हैं, उन सबको हमारा नमन है। सृप् धातु का अर्थ जाना, सरकना, जानना, पाना, चलना है। यहाँ सर्प शब्द में सभी गतिशील प्राणी कहे गये हैं॥ 6॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नमो (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। अस्तु (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। सर्पेभ्यो (सृप् - जाना, सरकना, जानना, पाना, चलना)। ये (सर्वनाम)। के (सर्वनाम)। च (अव्यय)। पृथिवीम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अनु (उपसर्ग)। अन्तरिक्षे (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। दिवि (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। तेभ्यः (सर्वनाम) ॥ 6 ॥

637. या इषवो यातु-धानानाम्, ये वा वनस्पतीन् अनु। ये वा अवटेषु शेरते, तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥7 ॥

मन्त्रार्थ - या = जो। इषवो = इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि। यातु-धानानाम् = यातुधानों का। ये = जो। वा = अथवा। वनस्पतीन् = वनस्पतियों को। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल। ये = जो। वा = अथवा । अवटेषु = अवटों में। शेरते = शिर। तेभ्यः = उनके लिए। सर्पेभ्यो = सर्प। नमः = नमन ॥ 7 ॥

भावार्थ - जो इच्छाएं यातुधानों की इच्छाएं वनस्पतियों को रक्षाओं में सुनते हैं, उन सर्पों अर्थात् प्राणियों को नमन करते हैं ॥ 7 ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - या (सर्वनाम)। इषवो (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। यातु-धानानाम् (या - जाना, यत् - यत्न करना, प्रयास करना, उद्योग करना, दुःख देना, छाया-आच्छादन करना, रोकना, धा = धारण करना)। ये (सर्वनाम)। वा (अव्यय)। वनस्पतीन् (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। अनु (उपसर्ग)। अवटेषु (अ = नहीं, अव = नीचे, दूर, प्राप्त, वट् = गूँथना, बटना, लपेटना, एकत्र करना, पीसना, विभाग करना, बोलना, स्पष्ट कहना, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। शेरते (शिर् - शीर्ष होना, मुख्य होना, उच्च होना, होना, सोना, बैठना, शृ -सुनना, जाना, जानना, पाना, शि = तेज करना, तीक्ष्ण करना, कल्याण करना)। तेभ्यः (सर्वनाम)। सर्पेभ्यो (सृप् - जाना, सरकना, जानना, पाना, चलना)। नमः (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना) ॥ 7 ॥

638. ये वा अमी रोचने दिवो, ये वा सूर्य्यस्य रश्मिषु। येषाम् अप्सु सदः कृतम्, तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥8 ॥

मन्त्रार्थ- ये = जो। वा = अथवा। अमी = शब्द, गति, सेवा युक्त, अतुल्य, अहिंसक। रोचने = प्रकाश। दिवो = दिव, स्तुतिकर्ता, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। ये = जो। वा = अथवा। सूर्य्यस्य = सूर्य का। रश्मिषु = रश्मिषु, किरण। येषाम् = जिनका। अप्सु = पालन-रक्षण में । सदः = विद्वान्, प्रतिष्ठित, गतिशील, गन्तव्य । कृतम् = कृतित्व, किया हुअ। तेभ्यः = उनके लिए । सर्पेभ्यो = सर्प । नमः = नमन ॥ 8 ॥

भावार्थ - दिव्य प्रकाश में, सूर्य की रश्मियों में, पालन-रक्षण में व्याप्त गतिशीलता को नमन करते हैं ॥ 8 ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ये (सर्वनाम)। वा (अव्यय)। अमी (अम् = गति, शब्द, सेवा करना, रोग होना, अ - नहीं, मा = मापना, नापना, तौलना, मि - फेकना, स्थापना करना, रक्षा करना, मी - हिंसा करना, मारना)। रोचने (रुच् = रुचना, प्रकाशित होना, प्रसन्न होना)। दिवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। सूर्य्यस्य (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। रश्मिषु (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। येषाम् (सर्वनाम)। अप्सु (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना)। सदः (सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। कृतम् (कृ = करना)। तेभ्यः (सर्वनाम)। सर्पेभ्यो (सृप् - जाना, सरकना, जानना, पाना, चलना)। नमः (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)।8 ॥

(148) सूक्त 3

639. कृणुष्व पाजः प्रसितिम् न पृथिवीम्, याहि राजेव अमवान् इभेन।
तृष्वीम् अनु प्रसितिम् द्रूणानो, अस्ता असि विध्य रक्षसः तपिष्ठैः ॥9॥

मन्त्रार्थ - प्रसितिम् = प्रकृष्ट बन्धन के। न = समान, उपमार्थक। पृथिवीम् = पृथिवी को। पाजः = रक्षा। कृणुष्व = कीजिये। अमवान् = सेवाभावी, विद्वान्। राजेव = राजा के समान। इभेन = प्रगति द्वारा। याहि = जायें, प्राप्त हों, प्राप्त करें। तृष्वीम् = प्यासे, इच्छुकों को। अनु = अनुकूल। प्रसितिम् = प्रकृष्ट बन्धन को। द्रूणानो = विनाश करने वाले। अस्ता = प्रकाशमान। असि = हो। रक्षसः = रक्षा करने वाले। तपिष्ठैः = तपिष्ठों द्वारा। विध्य = वेधन करें॥ 9॥

भावार्थ - तृष्वीम् का अर्थ है प्यासे, इच्छुक, अर्थात् अभावग्रस्त। उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल उनके प्रकृष्ट बन्धन का विनाश करने वाले बनो। अस्ता = प्रकाशमान। असि = हो। रक्षसः = रक्षा करने वाले। तपिष्ठैः = तपिष्ठों द्वारा। विध्य = वेधन करें॥ 9॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - कृणुष्व (कृ - करना)। पाजः (पा - रक्षा करना, पालन करना, जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। प्रसितिम् (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, सिन् = बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। न (अव्यय)। पृथिवीम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। याहि (या- जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। राजेव (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। अमवान् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अम् = जाना, जानना, शब्द करना, सेवा करना)। इभेन (इ - जाना, जानना, पाना)। तृष्वीम् (तृ - तरना, पार करना, तैरना, तृष् = तृषा होना, प्यासा होना, इच्छा करना)। अनु (उपसर्ग)। प्रसितिम् (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, सिन् = बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। द्रूणानो (द्रु - जाना, शीघ्रता से जाना, चलना, बहना, प्रवाहित होना, द्रुण् = हिंसा, गति, कुटिलता होना)। अस्ता (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। असि (अस् - होना)। विध्य (वि - विशेष, धा - धारण करना)। रक्षसः (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। तपिष्ठैः (तप - ऐश्वर्य होना, तपना, दाह होना, तप करना, तप्त होना, तप्त करना, जलना, जलाना, तृषा होना)॥ 9॥

640. तव भ्रमासः आशुया पतन्ति, अनु स्पृश धृषता शोशुचानः।
तपूंषि अग्ने जुह्वा पतङ्गान्, असन्दितो वि सृज विष्वक् उल्काः ॥10॥

मन्त्रार्थ - तव = तुम्हारे। भ्रमासः = भ्रम, भ्रमणशील। आशुया = तीवता से। पतन्ति = गिरते हैं, उड़ते हैं। धृषता = विजय, गर्व। शोशुचानः = सुखाने वाले, पवित्र करने वाले। अनु = पश्चात्, अनुकूल। स्पृश = स्पर्श करो॥ अग्ने = हे अग्नि। तपूंषि = तपस्वी। पतङ्गान् = पतंगों को, ऐश्वर्यगामियों को। जुह्वा = दान करो, आदान-प्रदान करो। असन्दितो = अखण्ड, अक्षय, अविनाशी। विष्वक् = व्याप्त। उल्काः = गतिशील। विसृज = विशेष सृजन करो, विसर्जन करो॥ 10॥

भावार्थ - हे अग्नि स्वरूप परमात्मा, तुम्हारे भ्रमणशील तीवता से उड़ते हैं। हे विजेता, दुःख सागर को सुखाने वाले, सबको पवित्र करने वाले परमात्मन्, हमारा अनुकूल स्पर्श करो। हे अग्नि, तपस्वी पतंगों को, ऐश्वर्यगामियों को दान करो, आदान-प्रदान करो॥ हे अखण्ड, अक्षय, अविनाशी, व्याप्त, गतिशील, विसृज = विशेष सृजन करो, विसर्जन करो॥ 10॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तव (सर्वनाम)। भ्रमासः (भ्रम - भ्रमण करना, भ्रान्त होना, भ्रमित होना, भ्रमित करना)। आशुया (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, अश् = भोजन करना)। पतन्ति (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। अनु (उपसर्ग)। स्पृश (स्पृश - स्पर्श करना, छूना, संयोग करना, हाथ से लेना)। धृषता (धृष् = जीतना, गर्व करना, धृष्टता करना, अभिमान करना, स्वयम् को बड़ा समझना, चतुरता दिखाना, वञ्चना करना)। शोशुचानः (शुच् = शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना, दुःख मानना, शोक करना, शुष् - सुखाना)। तपूंषि (तप - ऐश्वर्य होना, तपना, दाह होना, तप करना, तप्त होना, तप्त करना, जलना, जलाना, तृषा होना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। जुह्वा (हु-जुहु = दान करना, आदान-प्रदान करना, ग्रहण करना, तृप्त करना, जु - जाना, शीघ्र जाना, भागना)। पतङ्गान् (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। असन्दितो (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सम् - सम्यक्, भलीभाँति, दा - देना, काटना, तोड़ना, दी - क्षय

होना, ह्रास होना, झरना, नष्ट होना, सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। वि (उपसर्ग)। सृज (सृज् - छोड़ना, त्याग करना, विविध रूप से उत्पन्न करना, रचना करना)। विष्वक् (विष्ण-विष् -विविष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना, व्यापना, फैलना, प्रसृत होना)। उल्काः (उर् = विस्तार करना, जाना, चलना, निरन्तर चलना)।। 10 ।।

641. प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो, भवा पायुः विशो अस्या अदब्धः।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्ति, अग्ने माकिः ते व्यथिः आ दधर्षीत्।। 11 ।।

मन्त्रार्थ - तूर्णितमो = अत्यन्त शीघ्रकारी। प्रति-स्पशो = प्रतिरोध, बन्धन। विसृज = विसर्जन करो।। अस्या = इसका। पायुः = गति, पालन, रक्षण। विशो = प्रवेशी। अदब्धः = अहिंसनीय। भवा = हो।। अग्ने = हे अग्नि। यो = जो। अघशंसो = पाप का प्रशंसक, पापी, अपराधी। नो = हमसे। दूरे = दूर। यो = जो। अन्ति = निकट। ते = तुम्हे। माकिः = कोई नहीं । व्यथिः = व्यथित। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण । दधर्षीत् = जीता, विजय किया।। 11।।

भावार्थ - प्रतिरोध, बन्धन का विसर्जन करो, त्याग करो। अत्यन्त शीघ्रकारी बनो। गति, पालन, रक्षण, प्रवेशी अहिंसनीय हैं। जोहमारे हितैषी है, उनका अहित न होने दें। पापी, अपराधी दूर हो या निकट, कोई व्यथित न करे। हम इतने समर्थ हों कि वह हमसे जीत सके।। 11।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - प्रति (अव्यय)। स्पशो (स्पश - अवरोध करना, रोकना, प्रसिद्ध करना, छूना)। वि (उपसर्ग)। सृज (सृज् - छोड़ना, त्याग करना, विविध रूप से उत्पन्न करना, रचना करना)। तूर्णितमो (तुर - शीघ्र चलना, तीव्र गति से चलना, शीघ्रता करना)। भवा (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। पायुः (पय् - चलना, जाना, रक्षा करना, पालन करना, पा = पालन करना, बचाना, रक्षा करना)। विशो (विश - भीतर जाना, चारों ओर फैलना)। अस्या (सर्वनाम)। अदब्धः (दभ् - निन्दा करना, आज्ञा करना)। यो (सर्वनाम)। नः (सर्वनाम)। दूरे (अव्यय)। अघशंसो (अघ् = पाप, अपराध करना, शंस् = इच्छा करना, स्तुति करना, प्रशंसा करना)। अन्ति (अन्त् - अन्त होना, समाप्त होना, बाँधना, पाना, हिंसा करना, अद् - खाना, अन् - प्राणवान् होना, जीवन होना, श्वास लेना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। माकिः (अव्यय)। ते (सर्वनाम)। व्यथिः (व्यथ - व्यथित होना, दुःखी होना)। आ (उपसर्ग)। दधर्षीत् (धृष् -जीतना, पराभव करना)।।11।।

642. उत् अग्ने तिष्ठ प्रति आ तनुष्व, नि अमित्रान् ओषतात् तिग्महेते।
यो नो अरातिम् समिधान चक्रे नीचा, तम् धक्षि अतसम् न शुष्कम्।। 12 ।।

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि, उत्-तिष्ठ = उठो। प्रति-आ = प्रत्येक में, समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। तनुष्व = विस्तार करो। तिग्महेते = ज्ञानी के। अमित्रान् = अमित्रों को। नि = निश्चित, निरन्तर। ओषतात् = दाह करे। समिधान = हे सम्यक् प्रकाशमान। यो = जो। नीचा = निम्न। नो = हमको, हमारे लिए। अरातिम् = अदानी। चक्रे = किया। तम् = उसे । शुष्कम् = शुष्क, सूखा। अतसम् = निरन्तर गतिशील, अम्लान, अस्थापित, अक्षिप्त। न = नहीं, समान, उपमार्थक। धक्षि = जलाओ।।12 ।।

भावार्थ - हे अग्नि, अर्थात् अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा उसके समान तेजस्वी, अग्रणी उपासक, उठो, प्रत्येक का सम्यक्, सम्पूर्ण विस्तार करो। ज्ञानी के अमित्रों को निश्चित और निरन्तर दाह करें। हे सम्यक् प्रकाशमान, जो। नीचा = निम्नस्तरीय विचार वाले हमको अथवा हमारे लिए अन्य को अदानी बनाते हैं, जनहित के विपरीत कार्य के लिए दुष्प्रेरित करते हैं, उसे शुष्क अतस के समान जलाओ। शुष्क अतस का अर्थ सूखा तिनका किया गया है जो निरन्तर इधर-उधर उड़ता-गिरता रहता है। अतसम् का अर्थ अत् = सतत गति करना धातु के अनुसार निरन्तर गतिशील होता है। तस धातु का अर्थ स्थापित होना, स्थापना करना, फेंकना, उड़ा देना, भेजना, खोदना, कुम्हलाना होता है। इस प्राकार इसका अर्थ अम्लान, अस्थापित, अक्षिप्त होगा। जो उपयोगी स्थापित नहीं है और फेका भी जा सका है, उसे भी जलाकर नष्ट करना है।। 12 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उत् (उपसर्ग)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। तिष्ठ (तिष्ठ् = ठहरना, खड़ा होना)। प्रति (अव्यय)। आ (उपसर्ग)। तनुष्व (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। नि (अव्यय)। अमित्रान् (अ = नहीं, मिद् = प्रीति करना, स्नेह करना)। ओषतात् (उषस् = प्रभात होना, उष - हिंसा करना, जलना, ऊष् = जलाना, ताप देना, ऊष्म करना, रोग होना, पीडा होना, एकत्र होना)। तिग्महेते (तिग् = जाना, जानना, पाना, कूटचाल चलना, हि - जाना, जानना, पाना, वृद्धि होना, प्रेरणा करना, भेजना)। यो (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। अरातिम् (अ - नहीं, रा = देना, रम् - रमना, रमण करना, रम जाना, रत होना, क्रीडा करना, प्रिय होना, मूल्यवान होना)। समिधान (सम् = सम्यक्, भलीभांति, इत् - इन्ध = प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना, प्रकाश करना)। चक्रे (कृ - करना)। नीचा (नीच् - निम्न होना, चाकरी करना)। तम् (सर्वनाम)। धक्षि (धक् - दह् -= जलाना, नष्ट करना, दुःख देना, दग्ध करना)। अतसम् (अत - चलना, निरन्तर चलना, अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, तस - स्थापित होना, स्थापना करना, फेंकना, उड़ा देना, भेजना, खोदना, कुम्हलाना)। न (अव्यय)। शुष्कम् (शुष् - सुखाना)।। 12 ।।

643. ऊर्ध्वो भव प्रति विध्य अधि अस्मत्, आविः कृणुष्व दैव्यानि अग्ने।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनाम्, जामिम् अजामिम् प्र मृणीहि शत्रून्। अग्नेः त्वा तेजसा सादयामि।। 13 ।।

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि। ऊर्ध्वो = उच्च, ऊपर, ऊर्ध्व। भव = हो। प्रति-विध्य = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें। अधि = अधिगत, ऊपर। अस्मत् = हमसे। आविः = रक्षक, रक्षा करो, पालन करो। कृणुष्व = कीजिये। दैव्यानि = दिव्य। अव = रक्षा करो, पालन करो। स्थिरा = स्थिर। यातुजूनाम् = तीव्र गति, वेगवान्, विद्वानों का। तनुहि = विस्तार करो।। जामिम् = खिलाने वाले को। अजामिम् = अजामी को, न खाने वाले को। शत्रून् = शत्रुओं को। प्रमृणीहि = मार दो। त्वा = तुमको। अग्नेः = अग्नि का। तेजसा = तेज के साथ। सादयामि = स्थापित करता हूँ।। 13 ।।

भावार्थ - अग्नि तो ऊर्ध्व ही है। उसका विधान-प्रतिविधान हमको करना है। परमात्मा का संरक्षण मिले और हम दिव्यता का विस्तार करें।। 13 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ऊर्ध्वो (सर्वनाम)। भव (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। प्रति (अव्यय)। विध्य (विध - विधान करना, वेध करना, वेधन करना, ताडना)। अधि (उपसर्ग)। अस्मत् (सर्वनाम)। आविः (अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। कृणुष्व (कृ - करना)। दैव्यानि (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अव (अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। स्थिरा (स्था - ठहरना, स्थिर होना)। तनुहि (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। यातुजूनाम् (या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना, जु - जाना, शीघ्र जाना, भागना)। जामिम् = खिलाने वाले को (जम् = खाना, निगलना)। अजामिम् (अ - नहीं, जम - खाना, भक्षण करना)। प्र (उपसर्ग)। मृणीहि (मृड - सुखी होना, सुख देना, मृण् - हिंसा करना, मारना, छिद्र करना)। शत्रून (शी-शद्-शत् - जीर्ण होना, गिरना, गिराना)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। त्वा (सर्वनाम)। तेजसा (तिज्, तेज् = चमकना, चमकाना, पैना करना, प्रभाव होना, तीक्ष्ण करना)। सादयामि (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)।।13 ।।

(149) सूक्त 4

644. अग्निः मूर्द्धा दिवः ककुत्, पतिः पृथिव्या अयम्।
अपाम् रेतांसि जिन्वति। इन्द्रस्य त्वा ओजसा सादयामि।। 14 ।।

मन्त्रार्थ - अयम् = यह। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् । मूर्द्धा = उच्च । दिवः = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय । ककुत् = गर्वित, चञ्चल, प्यासा । पृथिव्या = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के । पतिः = ऐश्वर्यवान् स्वामी । अपाम् = अपा को, पालकों का। रेतांसि = विद्या, गतिशीलता । जिन्वति = सन्तुष्ट करता है, प्रकाशित होता है।। त्वा = तुमको।

इन्द्रस्य = इन्द्र का, परम ऐश्वर्यशाली का। ओजसा = ओज द्वारा । सादयामि = स्थापित करता हूँ ।। 14 ।।

भावार्थ - यह अग्नि स्वरूप परमात्मा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् उच्च दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय गर्वित, चञ्चल, प्यासा पृथिवी का पतिः अर्थात् ऐश्वर्यवान् स्वामी पालकों-रक्षकों के विद्या, गति को सन्तुष्ट करता है, प्रकाशित करता है। हे अग्नि स्वरूप परमात्मा, मैं तुमको इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यशाली के ओज द्वारा स्थापित करता हूँ। भाव यह है कि परमात्मा के अग्नि अर्थात् अग्रणी तेजस्वी स्वरूप को ऐश्वर्य के ओज द्वारा स्थापित किया जा सकता है।। 14 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। मूर्द्धा (मुर् - घेरना, लपेटना, मूर्द्ध- उच्च होना)। दिवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। ककुत् (कक् = गर्व करना, चञ्चल होना, प्यासा होना)। पतिः (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। पृथिव्या (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अयम् (सर्वनाम)। अपाम् (अप - पालन करना)। रेतांसि (रि - जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, री - गति करना, झरना-टपकना, लेना, शब्द करना, सुनना)। जिन्वति (जिन्व् = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, आनन्द होना, मुक्त करना, प्रकाशित होना, बोलना)। इन्द्रस्य (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना, पीना)। त्वा (सर्वनाम)। ओजसा (ओज - शक्तिमान् होना, जीवित होना, बढ़ना)। सादयामि (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)।। 14 ।।

645. भुवो यज्ञस्य रजसः च नेता, यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः।
दिवि मूर्द्धानम् दधिषे स्वर्षाम्, जिह्वाम् अग्ने चकृषे हव्यवाहम्।। 15 ।।

मन्त्रार्थ - भुवो = भुवः। यज्ञस्य = यजन का । रजसः = लोक का, रजस् का । च = और। नेता = ले जाने वाला। यत्रा = यत्र। नियुद्भिः= नियुत द्वारा, निश्चित रूप से, निरन्तर युक्त, जुड़े हुए द्वारा। सचसे = अभिसिञ्चन करते हैं। शिवाभिः = कल्याणकारकों द्वारा। दिवि = दिव्यता में, दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय में । मूर्द्धानम् = उच्च । दधिषे = धारण किया । स्वर्षाम् = ऐश्वर्य वालों में । जिह्वाम् = जिह्वा को । अग्ने = हे अग्नि । चकृषे = किया । हव्यवाहम् = हव्य का वहन करने वाले को, आदान-प्रदान करने योग्य को ले जाने वाले को।। 15 ।।

भावार्थ - भुवो = भुवः का अर्थ भु तथा भू धातुओं के अनुसार जाना, घर्षण करना, होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना आदि हैं। भु-भू धातुएं बहुत व्यापक अर्थ वाली हैं। इसी कारण से भूः, भुवः शब्दों के अर्थ में पर्याप्त विस्तार अथवा अन्तर मिलता है। यजन का, रजसः का अर्थात् लोक का। रज् धातु का मूल अर्थ रंगना है। इसमें सूक्ष्मता का भी भाव निहित है। रजस् का अर्थ वह सूक्ष्म कण है जो देखा जा सके। सामान्यतः सूक्ष्म रजकण या धूल कण के रूप में समझा जा सकता है। अन्तरिक्ष में प्रकाश-विन्दु के रूप में दिखने वाले ग्रह-नक्षत्रों को भी रजस् या लोक कहा जाता है। लोक का अर्थ दिखने वाला है। 15 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - भुवो (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। यज्ञस्य (यज्ञ = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। रजसः (रज - रज होना, धूल होना, सूक्ष्म होना, रंग देना, रंगना, लीन होना)। च (अव्यय)। नेता (नी = ले जाना)। यत्रा (यत्र = जहाँ (सर्वनाम) यत - यत्न करना, उद्योग करना, निश्चय करना, ठहराना)। नियुद्भिः (नि - निश्चित रूप से, निरन्तर, यु - मिलाना, युक्त करना, जोड़ना, अलग करना)। सचसे (सच् - सेवा करना, सन्तुष्ट करना, सींचना, पूर्णतया समझना, सम्बन्धी होना)। शिवाभिः (शिव् = कल्याण करना)। दिवि (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। मूर्द्धानम् (मुर् - घेरना, लपेटना, मूर्द्ध- उच्च होना)। दधिषे (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। स्वर्षाम् (सू- ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, पराक्रम होना, स्वृ-स्वर् = शब्द करना)। जिह्वाम् (जिह = जाना, जानना, पाना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। चकृषे (कृ = करना)। हव्यवाहम् (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना, वह् - वहन करना,

ले जाना)॥ 15॥

646. ध्रुवा असि धरुणा, आस्तृता विश्वकर्मणा। मा त्वा समुद्र उत् वधीत्, मा सुपर्णो। अव्यथमाना पृथिवीम् दृंह॥16॥

मन्त्रार्थ - धरुणा = धारणकर्ता, धारण करने वाली। आस्तृता = आच्छादिता, परिपूर्ण। विश्वकर्मणा = विश्वकर्मा द्वारा, सभी कर्म द्वारा, सभी कर्म करने वाले द्वारा। ध्रुवा = ध्रुव, अचल, स्थिर, अविचल गतिशील, अविचल विद्वान्। असि = हो। त्वा = तुमको। समुद्र = समुद्र। मा = नहीं, मत। उत् = वैसे ही। सुपर्णो = सुन्दर पर्ण वाला। मा = नहीं, मत। वधीत् = वध करे। अव्यथमाना = अव्यथित होकर, निर्भय, दुःख-हीन होकर। पृथिवीम् = पृथिवी को। दृंह = दृढ़ करो, बढ़ाओ।॥16॥

भावार्थ - धारणकर्ता, धारण करने वाली नारियाँ आवश्यक सुविधाओं से परिपूर्ण आच्छादित हों। सभी कर्म करने वाले समर्थ शासन द्वारा ध्रुव, अचल हों। उमको समुद्र औरसुपर्ण वाले भी हिंसित-पीड़ित, वाधित नहीं करे॥ अव्यथित, निर्भय, दुःख-हीन होकर वे पृथिवी को अर्थात् संसार को, समाज को सुदृढ़ करें।॥16॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ध्रुवा (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। असि (अस् - होना)। धरुणा (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। आस्तृता (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, स्तृ = आच्छादन करना, पूर्ण करना)। विश्वकर्मणा (विश्व - सभी, कृ - करना)। मा (अव्यय)। त्वा (सर्वनाम)। समुद्र (सम् = सम्यक्, भलीभांति, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना, द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। उत् (उपसर्ग)। वधीत् (वध्-हन् = मारना)। सुपर्णो (सु - सुन्दर, अच्छा, पर्ण - हरा करना, हरा होना)। अव्यथमाना (अ = नहीं, व्यथ् = डरना, दुःखी होना)। पृथिवीम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। दृंह (दृंह् = बढ़ना, दृढ़ होना, दृढ़ करना)।॥16॥

647. प्रजापतिः त्वा सादयतु, अपाम् पृष्ठे समुद्रस्य एमन्। व्यचस्वतीम् प्रथस्वतीम्, प्रथस्व पृथिवी असि।॥17॥

मन्त्रार्थ - प्रजापतिः = प्रजापति, प्रजा का रक्षक, पालक। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। अपाम् = अपा को, पालकों का। पृष्ठे = पृष्ठ पर। समुद्रस्य = समुद्र का। एमन् = गति, प्राप्ति। सादयतु = स्थापित करे। व्यचस्वतीम् = व्यापकतायुक्त को। प्रथस्वतीम् = प्रथस्वती को, विस्तार युक्त को। प्रथस्व = विस्तार करो। पृथिवी = पृथ्वी, विस्तृत भूमि, विस्तार। असि = हो॥ 17॥

भावार्थ - प्रजापति अर्थात् प्रजा का रक्षक, पालक परमात्मा तथा समाज का नेतृत्व करने वाला शासन-प्रशासन तुमको पालनकर्ताओं के पृष्ठ पर, समुद्र की गति, प्राप्ति में स्थापित करे। तुम पृथिवी हो, व्यचस्वती अर्थात् व्यापकतायुक्त प्रथस्वती अर्थात् विस्तार-युक्त को विस्तार प्रदान करो॥ 17॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - प्रजापतिः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। त्वा (सर्वनाम)। सादयतु (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। अपाम् (अप - पालन करना)। पृष्ठे (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूंछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। समुद्रस्य (सम् = सम्यक्, भलीभांति, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना, द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। एमन् (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, इ - जाना, जानना, पाना, प्रेरित करना)। व्यचस्वतीम् (व्यच् - व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, ठगना, वि - विशेष, अच् - जाना, मरना, आदर करना, याचना करना)। प्रथस्वतीम् (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। प्रथस्व (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। पृथिवी (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। असि (अस् - होना)॥ 17॥

648. भूः असि भूमिः असि अदितिः असि, विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।

पृथिवीम् यच्छ, पृथिवीम् दृंह, पृथिवीम् मा हिंसीः ॥18॥

मन्त्रार्थ - भूः = भू, भुवन, अस्तित्व। असि = हो। भूमिः = भूमि। असि = हो। अदितिः = अपनाने योग्य, अक्षय, अविनाशी। विश्वधाया = सम्पूर्ण को धारण करने वाले । विश्वस्य = विश्व का, सभी का। भुवनस्य = भुवन का, होने वाले का। धर्त्री = धारण करने वाली, धारणकर्त्री। असि = हो॥ पृथिवीम् = पृथिवी को । यच्छ = दो, प्रदान करो । पृथिवीम् = पृथिवी को। दृंह = दृढ़ करो, बढ़ाओ। पृथिवीम् = पृथिवी को। मा = नहीं, मत। हिंसीः = हिंसा करो॥18॥

भावार्थ - परमात्मा भूः है, वह ही एकमात्र अस्तित्व है। सभी अस्तित्व उस से ही हैं। भूः का भाव है मूल अस्तित्व, परम अस्तित्व। वही भूमि भी है। भूः तथा भूमि शब्द भू धातु से ही बने हैं। अतः दोनो शब्द अस्तित्व-बोधक हैं। भूः मूल अव्यक्त अस्तित्व है, परम अस्तित्व है तो भूमि व्यक्त अस्तित्व है। भूमि अव्यक्त का व्यक्त स्वरूप है। व्यक्त हो या अव्यक्त, मूल सत्ता हो या व्यक्त सृष्टि, सब परमात्मा ही है। वह अदिति अर्थात् अक्षय, अविनाशी है, परन्तु व्यक्त सृष्टि विनाशी है, नश्वर है। वह विश्वधाया अर्थात् सम्पूर्ण को धारण करने वाला तथा विश्व भुवन का धारण करने वाला है। परमात्मा से प्रार्थना है कि पृथिवी को प्रदान करो। पृथिवी को दृढ़ करो, बढ़ाओ। पृथिवी को हिसित मत करो, नष्ट मत करो। हम भी पृथिवी के, प्राकृति के संरक्षण का प्रायास करें, उसे हानि या पहुँचायें॥18॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - भूः (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। असि (अस् - होना)। भूमिः (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। अदितिः (अ - नहीं, अद् = खाना, दी = नष्ट होना)। विश्वधाया (धा - धारण करना)। विश्वस्य (सर्वनाम)। भुवनस्य (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। धर्त्री (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। पृथिवीम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। यच्छ (यच्छ = देना)। दृंह (दृंह् = बढ़ना, दृढ़ होना, दृढ़ करना)। मा (अव्यय)। हिंसीः (हिंस् - हिंसा करना, मारना, बध करना, दुःख देना, सताना)॥18॥

649. विश्वस्मै प्राणाय अपानाय व्यानाय, उदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय।

अग्निः त्वा अभि पातु मह्या, स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया, देवतया अङ्गिरस्वत् ध्रुवा सीद॥19॥

मन्त्रार्थ- अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। त्वा = तुमको। विश्वस्मै = सभी के लिए। प्राणाय = प्राण के लिए। अपानाय = अपान के लिए। व्यानाय = व्यान के लिए। उदानाय = उदान के लिए। प्रतिष्ठायै = प्रतिष्ठा के लिए। चरित्राय = चरित्र क लिए। अभि = अभिमुख, सर्वथा। पातु = पालन करे, रक्षा करे। मह्या = पूज्या, महिमावान्, महान्। स्वस्त्या = स्वस्ति द्वारा। छर्दिषा = सम्यक् दीपन कथन द्वारा। शन्तमेन = कल्याणकारी, शान्तिमय, शमनकारी। तया = उस। देवतया = दिव्यता द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, के समान। ध्रुवा = ध्रुव, अविचल गतिशील, अविचल विद्वान्। सीद = सीद, बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों॥19॥

भावार्थ - सभी के लिए प्राण, अपान, व्यान, उदान, प्रतिष्ठा, चरित्र के लिए अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् तुम्हारा अभिपालन करे, रक्षा करे। पूज्य, महिमावान्, महान् स्वस्ति द्वारा, सम्यक् दीपन कथन द्वारा, कल्याणकारी, शान्तिमय, शमनकारी, उस देवत्व, दिव्यता द्वारा अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, ध्रुव, अविचल गतिशील, अविचल विद्वान् बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों॥19॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - विश्वस्मै (सर्वनाम)। प्राणाय (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। अपानाय (अ - नहीं, पा-पान - पीना, पान करना, अप - पालन करना, अन - जीना, समर्थ होना, जाना)। व्यानाय (वि - विशेष, अन् = प्राण होना, जीवन होना)। उदानाय (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, उद् = उत्कृष्ट होना, उच्च होना, उदार होना, उन्द् - गीला करना, आद्र होना, कष्ट होना, अन् = प्राण होना, जीवन होना)। प्रतिष्ठायै (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, तिष्ठ - स्था - स्थित होना, ठहरना, प्रतीक्षा करना)। चरित्राय (चर - जाना, खाना, आचरण करना)। अग्निः(अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना,

ग्रहण करना)। त्वा (सर्वनाम)। अभि (उपसर्ग)। पातु (पा = पालन करना, बचाना)। मह्या (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। स्वस्त्या (सु - अच्छा, अस् - होना, स्वस्ति = कल्याण)। छर्दिषा (छर्द् - सम्यक् दीपन करना, कहना, उद्गार होना, वमन होना)। शन्तमेन (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। तया (सर्वनाम)। देवतया (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। ध्रुवा (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। सीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)॥ 19॥

(150) सूक्त 5

650. काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती, परुषः परुषः परि। एवा नो दूर्वे प्र तनु, सहस्रेण शतेन च॥20॥

मन्त्रार्थ - काण्डात् = काण्ड से। काण्डात् = काण्ड से। परुषः = परुष। परुषः = परुष। परि = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। प्ररोहन्ती = प्ररोहण करती हुई। एवा = ही। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो । दूर्वे = दूर्वे। सहस्रेण = हजार। शतेन = सौ द्वारा। च = और। प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। तनु = विस्तार करे॥ 20॥

भावार्थ - काण्ड-काण्ड से, परु-परु से, परितः प्ररोहण करती हुई ही हमारे लिए दूर्व अर्थात् हिंसा-दुःख में शत-सहस्र उपायों द्वारा प्रकृष्ट विस्तार करे॥ 20॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - काण्डात् (कण्ड् - विभाग करना, अलग करना, दुःख-आनन्द में लीन होना, मांस बढ़ना)। प्ररोहन्ती (प्र - प्रकृष्ट, रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। परुषः (पा = रक्षा करना, पालन करना, पर्व = पूरा करना, भरना)। परि (उपसर्ग)। एवा (अव्यय)। नो (सर्वनाम)। दूर्वे (दु-दुर् = जाना, दूर जाना, दुःख होना, दुःख भोगना, तप्त करना, जलना, जलाना)। प्र (उपसर्ग)। तनु (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। सहस्रेण (संख्या)। शतेन (शत् - सौ)। च (अव्यय)॥ 20॥

651. या शतेन प्रतनोषि, सहस्रेण विरोहसि। तस्या ते देवि इष्टके, विधेम हविषा वयम्॥21॥

मन्त्रार्थ - या = जो। शतेन = सौ द्वारा। प्रतनोषि = विस्तार करते हो। सहस्रेण = सहस्रों द्वारा। विरोहसि = रोहण करते हो। देवि = हे देवी, तेजस्विनी। इष्टके = विद्या, ज्ञान, इच्छा वाली। वयम् = हम। तस्या = उस। ते = तुम्हारा। हविषा = दान व आदान-प्रदान द्वारा। विधेम = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें॥ 21॥

भावार्थ - तुम जो सौ उपायों द्वारा विस्तार करती हो, सहस्रों उपायों द्वारा रोहण करती हो, हे विद्या, ज्ञान, इच्छा वाली देवी, तेजस्विनी नारी, हम तुम्हारा दान व आदान-प्रदान द्वारा विधान करें, तुम्हें विशेष मान-सम्मान के साथ धारण करें॥ 21॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - या (सर्वनाम)। शतेन (शत् - सौ)। प्रतनोषि (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। सहस्रेण (संख्या)। विरोहसि (वि = विशेष, विना, विलोम, रुह - बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना)। तस्या (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। देवि (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। इष्टके (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। विधेम (वि - विशेष, धा - धारण करना)। हविषा (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। वयम् (सर्वनाम)॥ 21॥

652. याः ते अग्ने सूर्य्ये रुचो दिवम्, आतन्वन्ति रश्मिभिः।
ताभिः नो अद्य सर्वाभी, रुचे जनाय नः कृधि॥22॥

मन्त्रार्थ - याः = जो। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। अग्ने = हे अग्नि। सूर्य्ये = सूर्य में, उत्पन्न सृष्टि में। रुचो =

रुच, प्रकाश। दिवम् = दिव को, तेजस्वी को। रश्मिभिः = किरणों से। आतन्वन्ति = विस्तृत करते हैं, आश्रय, वाणी देते हैं। नो = हमारे लिए। नः = हमको। अद्य = आज। ताभिः= उनके द्वारा। सर्वाभी = सभी द्वारा। रुचे = रुच, प्रकाश। जनाय = जन के लिए। कृधि = करो ।। 22 ।।

भावार्थ - हे अग्नि, जो तुम्हारे सूर्य में, उत्पन्न सृष्टि में दिव्य तेज प्रकाश को किरणों द्वारा विस्तृत करते हैं, आश्रय, वाणी देते ह, उन सभी द्वारा हमारे लिए आज जन के लिए प्रकाश करो।। 22 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - याः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। सूर्य्ये (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। रुचो (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। दिवम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। आतन्वन्ति (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, तन् - विस्तार करना, आश्रय देना, शब्द करना, दुःख देना)। रश्मिभिः (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। ताभिः (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। अद्य (अव्यय)। सर्वाभी (सर्वनाम)। रुचे (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। जनाय (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। कृधि (कृ = करना)। 22 ।।

653. या वो देवाः सूर्य्ये रुचो, गोषु अश्वेषु या रुचः।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी, रुचम् नो धत्त बृहस्पते ।। 23 ।।

मन्त्रार्थ - **बृहस्पते** = हे बृहस्पति, महान् पालक-रक्षक (परमात्मा)। **या** = जो। **वो** = तुम्हारे। **देवाः** = देवगण। **सूर्य्ये** = सूर्य में, ऐश्वर्यवान् सृष्टि में। **रुचो** = प्रकाशित (है)। **या** = जो। **गोषु** = शब्दशीलों, मननशीलों, उपदेशकों में। **अश्वेषु** = अश्वों, तीव्र गति युक्त, व्यापकों में। **रुचः** = प्रकाशित (है)। **इन्द्राग्नी** = इन्द्र और अग्नि। **ताभिः** = उन। **सर्वाभी** = सभी द्वारा। **रुचम्** = प्रकाश को। **नो** = हमारे लिए। **धत्त** = धारण, पोषण करो।। 23 ।।

भावार्थ - हे बृहस्पति, महान् पालक-रक्षक परमात्मा, जो तुम्हारे देवगण सूर्य में, ऐश्वर्यवान् सृष्टि में प्रकाशित (है)। जो शब्दशीलों, मननशीलों, उपदेशकों में, अश्वों, तीव्र गति युक्त, व्यापकों में प्रकाशित (है)। इन्द्र और अग्नि उन सभी द्वारा प्रकाश को हमारे लिए धारण, पोषण करे। परमात्मा की दिव्य चेतना का प्रकाश सूर्य में, ऐश्वर्यवान् सृष्टि में सर्वत्र प्रकाशमान है। इन्द्र का अर्थ है परम ऐश्वर्यवान् और अग्नि का अर्थ है अग्रणी, अग्रगामी। वेद में इन्द्र और अग्नि परमात्मा के प्रमुख विशेषण हैं, अनेक नामों में प्रमुख नाम हैं। परमात्मा की दिव्य शक्ति इन्द्र और अग्नि सृष्टि के विविध रूपों में व्याप्त प्रकाश को हमारे लिए धारण-पोषण करे। इसका भाव है कि हममें वह प्रकाश धारण कराये।। 23 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - **या** (सर्वनाम)। **वो** (सर्वनाम)। **देवाः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **सूर्य्ये** (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। **रुचो** (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। **गोषु** (गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना)। **अश्वेषु** (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। **इन्द्राग्नी** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना, पीना)। **ताभिः** (सर्वनाम)। **सर्वाभी** (सर्वनाम)। **रुचम्** (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। **नो** (सर्वनाम)। **धत्त** (धा = धारण, पोषण, रक्षण, दान करना)। **बृहस्पते** (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना)।। 23 ।।

(151) सूक्त 6

654. विराट् ज्योतिः अधारयत्, स्वराड् ज्योतिः अधारयत्।
प्रजापतिः त्वा सादयतु, पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम्।

विश्वस्मै प्राणाय अपानाय, व्यानाय विश्वम् ज्योतिः यच्छ।
अग्निः ते अधिपतिः तया, देवतया अङ्गिरस्वत् ध्रुवा सीद॥24॥

मन्त्रार्थ - विराट् = विराट, विशेष प्रकाशित। ज्योतिः = प्रकाश को। अधारयत् = धारण किया। स्वराड् = स्वयं प्रकाशमान। ज्योतिः = प्रकाश को। अधारयत् = धारण किया। प्रजापतिः = प्रजापति, प्रजा का रक्षक, पालक। त्वा = तुम्हारे लिए। पृथिव्या = पृथिवी के। पृष्ठे = पृष्ठ पर। ज्योतिष्मतीम् = ज्योतिष्मती को, प्रकाशवान् को। सादयतु = स्थापित करे॥ विश्वस्मै = सब के लिए। प्राणाय = प्राण के लिए । अपानाय = अपान के लिए । व्यानाय = व्यान के लिए। विश्वम् = सब को। ज्योतिः = प्रकाश। यच्छ = दो॥ ते = तुम्हारे लिए। अधिपतिः = अधिपति। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् ने। तया = उस। देवतया = देवत्व द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, प्रगतिशील। ध्रुवा = अविचल गतिशील, अविचल विद्वान्। सीद = बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों॥ 24॥

भावार्थ - विराट् अर्थात् विशेष प्रकाशित ज्योति तथा स्वराड् स्वयम् प्रकाशमान। ज्योति को धारण किया। विराट् तथा स्वराट् तो प्रजापति अर्थात् प्रजा का रक्षक, पालक परमात्मा ही है। वह तुम्हारे लिए, हमारे लिए, सभी के लिए पृथिवी के पृष्ठ पर ज्योतिष्मती को स्थापित करे, यह हमारी कामना है। हम प्रार्थना करते हैं कि वह सब के प्राण के लिए, अपान के लिए, व्यान के लिए सब को ज्योति प्रदान करे॥ तुम्हारे लिए अधिपति अग्नि अर्थात् ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् ने उस देवत्व द्वारा अंगिरा के समान, विद्वान्, प्रगतिशील ध्रुव अर्थात् अविचल गतिशील, अविचल विद्वान् बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों॥ 24॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - विराट् (वि = विशेष, विना, विलोम, राज् = प्रकाशित होना, शोभित होना, चमकना, रट् - शब्द करना, बोलना, सम्भाषण करना)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। अधारयत् (अधः = नीचे, अव्यय, धृ - धारण करना)। स्वराड् (स्व - स्वयम्, अपना, राज् = चमकना, प्रकाशित शोभित होना)। प्रजापतिः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। त्वा (सर्वनाम)। सादयतु (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। पृष्ठे (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूंछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। पृथिव्या (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। ज्योतिष्मतीम् (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। विश्वस्मै (सर्वनाम)। प्राणाय (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। अपानाय (अ - नहीं, पा-पान - पीना, पान करना, अप - पालन करना, अन - जीना, समर्थ होना, जाना)। व्यानाय (वि - विशेष, अन् = प्राण होना, जीवन होना)। विश्वम् (सर्वनाम)। यच्छ (यच्छ = देना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। ते (सर्वनाम)। अधिपतिः (अधि – अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। तया (सर्वनाम)। देवतया (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। ध्रुवा (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। सीद (सीद - जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)॥ 24॥

655. मधुः च माधवः च वासन्तिकौ ऋतू, अग्नेः अन्तः श्लेषो असि,
कल्पेताम् द्यावापृथिवी, कल्पन्ताम् आपः ओषधयः,
कल्पन्ताम् अग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः।
ये अग्नयः समनसो, अन्तरा द्यावापृथिवी इमे।
वासन्तिकौ ऋतू अभि कल्पमाना, इन्द्रम् इव देवा अभिसंविशन्तु,
तया देवतया अङ्गिरस्वत् ध्रुवे सीदतम्॥25॥

मन्त्रार्थ - मधुः = मीठा, मधु। च = और। माधवः = माधव, मधुरता युक्त। च = और। वासन्तिकौ = वासयोग्य,

वासमय, वास किया हुआ। ऋतू = ऋतु। अग्नेः = अग्नि का। अन्तः = बीच में, भीतर। श्लेषो =श्लेष। असि = हो । द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी। कल्पेताम् = कल्पना करें, बनायें, रचना करें। आपः = आप, व्याप्त, व्यापक। ओषधयः = ओषधियाँ। कल्पन्ताम् = कल्पना करें, बनायें, रचना करें। अग्नयः = अग्निगण, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान, अग्नियाँ। कल्पन्ताम् = कल्पना करें, बनायें, रचना करें। पृथङ् = अलग। मम = मेरा। ज्यैष्ठ्याय = ज्येष्ठ के लिए । सव्रताः = व्रत वाला । ये = जो। अग्नयः = अग्निगण, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान, अग्नियाँ । समनसो = समान मन वाले । अन्तरा = प्राणवान्, अन्तर, भीतर । द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी । इमे = यह, इस, ये । वासन्तिकौ = वासयोग्य, वासमय, वास किया हुआ, वास्य । ऋतू = ऋतु । अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा । कल्पमाना = कल्पना करें, बनायें, रचना करें। इन्द्रम् = इन्द्र को । इव = समान, की भाँति, के समान । देवा = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने । अभिसंविशन्तु = सर्वथा सन्मुखता से सम्यक् प्रवेश करो । तया = उसके द्वारा । देवतया = देवत्व के लिए, दिव्यता के लिए । अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला । ध्रुवे = अचल, स्थिर, अविचल गतिशील। सीदतम् = सीद, बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों।। 25 ।।

भावार्थ - मधु और माधव वासन्तिक अर्थात् वासयोग्य, वासमय ऋतुएँ हैं। अग्नि का अन्तः अर्थात् भीतर श्लेष अर्थात् श्लिष्ट या मिले हो। द्यावापृथिवी अर्थात् अग्रगामी विस्तार, प्रकाश को बनायें, रचना करें। आप अर्थात् व्याप्त, व्यापक ओषधियाँ बनायें, रचना करें। व्रती अग्नियाँ अर्थात् अग्निगण, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् मेरे ज्येष्ठ के लिए पृथक् रचना करें। जो समान मन वाले अग्निगण अर्थात् ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् इस द्यावापृथिवी के भीतर हैं। वासन्तिकौ अर्थात् वासयोग्य, वासमय ऋतु को अभिकल्पित करने वाले देवगण अर्थात् विद्वान्, तेजस्वी इन्द्र के समान सर्वथा सन्मुखता से सम्यक् प्रवेश करें। तया = उस दिव्यता द्वारा अंगिरा अर्थात् विद्वान्, गतिशील, पाने वाले के समान अविचल प्रगतिशील विद्वान् संचरण करें, प्रतिष्ठित हों।। 25 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त)- मधुः (मद् = आनन्द होना, हर्ष होना, तृप्त होना, मध् = मधुर होना, मीठा होना, मध्य होना)। च (अव्यय)। माधवः (मद् = आनन्द होना, हर्ष होना, तृप्त होना, मध् = मधुर होना, मीठा होना, मध्य होना)। वासन्तिकौ (वस् = रहना, निवास करना)। ऋतू (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। श्लेषो (श्लिष = आलिङ्गन करना, गले लगाना, एका करना, मिलाप करना, श्लिष = दग्ध करना, जलाना)। असि (अस् - होना)। कल्पेताम् (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करन, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। कल्पन्ताम् (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। आप (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। ओषधयः (उषध्- ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा)। अग्नयः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पृथङ् (अव्यय)। मम (सर्वनाम)। ज्यैष्ठ्याय (ज्या - वृद्ध होना, बड़ा होना, बर्द्धित होना, जि - जीतना, जेष् - जाना, चलना, जानना, पाना, जिष् - सेवा करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना)। सव्रताः (स = साथ, सहित (उपसर्ग), वृत् = रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ = नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)। ये (सर्वनाम)। समनसो (स - सहित, साथ, सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। अन्तरा (अन् = प्राणवान् होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, अन्तः - बीच में)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करन, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। इमे (सर्वनाम)। वासन्तिकौ (वस् = रहना, निवास करना)। ऋतू (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। अभि (उपसर्ग)। कल्पमाना (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। इन्द्रम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। इव (अव्यय)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अभिसंविशन्तु (अभि - अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा,

सम् - सम्यक्, वि - विशेष, विश् - प्रवेश करना, अन्तर्गमन करना, सूचना करना, प्रेरणा करना)। तया (सर्वनाम)। देवतया (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। ध्रुवे (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। सीदतम् (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)॥ 25॥

(152) सूक्त 7

656. अषाढा असि सहमाना सहस्व, अरातीः सहस्व पृतनायतः। सहस्रवीर्य्या असि सा मा जिन्व॥26॥

मन्त्रार्थ- अषाढा = असहनीय, असहनशील, दीप्तिमान्। असि = हो। सहमाना = सहमान, सहनशील, समर्थ (होकर)। सहस्व = सहन करो, सहनशील, समर्थ बनो। अरातीः = अदानियों को। सहस्व = सहन करो, सहनशील, समर्थ बनो। पृतनायतः = व्यापक, बल वाले। सहस्रवीर्य्या = सहस्र वीर्यवान्। असि = हो । सा = वह। मा (माम्) = मुझे। जिन्व = प्रसन्न करे॥ 26॥

भावार्थ - असहनीय, असहनशील मत बनो, दीप्तिमान बनो। अषाढा का अर्थ असहनीय, असनशील तथा दीप्तिमान होता है। उपसर्ग अ का अर्थ नहीं, तथा सह धातु का अर्थ सहन करना होता है। अष् धातु का अर्थ ग्रहण करना, जाना, जानना, पाना, चमकना, प्रकाश करना है। सहनशील, समर्थ होकर सहनशील बनो। अदानियों को सहन करो, उनके प्रति भी सहनशील बनो। व्यापक, बल वाले अत्यधिक वीर्यवान्, बलवान् बनो। वह मुझे प्रसन्न करे॥ 26॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अषाढा (अ - नहीं, सह- सहन करना, अस् - फेंकना, उड़ाना, अष् - ग्रहण करना, जाना, जानना, पाना, चमकना, प्रकाश करना)। असि (अस् - होना)। सहमाना (सह = साथ, सहित, सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना, मा = नापना, तौलना, समाना, मान = ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा करना, शोध करना, सत्कार करना, मनाना)। सहस्व (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना)। अरातीः (अ + रा = देना, रम् - रमना, रमण करना, रम जाना, रत होना, क्रीडा करना, प्रिय होना, मूल्यवान होना)। पृतनायतः (पृत -व्याप्त होना, जीवन होना, बलपूर्वक निकालना, पृ = पूर्ण करना)। सहस्रवीर्य्या (सहस्र = हजार, वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। सा (सर्वनाम)। मा (अव्यय)। जिन्व (जिन्व् = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, आनन्द होना, मुक्त करना, प्रकाशित होना, बोलना)॥ 26॥

657. मधु वाता ऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीः नः सन्तु ओषधीः॥27॥

मन्त्रार्थ - मधु = मधु। वाता = सुख, वायु। ऋतायते, = चलता है। सिन्धवः = सिन्धु। मधु = मधु। क्षरन्ति = झरते हैं, गिरते हैं। ओषधीः = ओषधियाँ, नः = हमारे लिए। माध्वीः = माध्वी, मधुरता युक्त। सन्तु = हों॥ 27॥

भावार्थ - हमारे लिए सर्वत्र मधुमय सुख और वायु प्रवाहमान है। सिन्धु भी मधु झरते हैं, मधुरता या आनन्द बरसाते हैं। ओषधियाँ हमारे लिए मधुरता युक्त। हों। प्रकृति हमारे लिए मधुमय है, उपयोगी है, आनन्ददायक है। हमें भी इसी प्रकार बनना चाहिए॥ 27॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मधु (मध् = मधुर होना, मीठा होना, मध्य होना)। वाता (वात - सुखी होना, आनन्द करना, सेवा करना, जाना, वा - गति करना, बहना, पवन की भाँति चलना)। ऋतायते (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। क्षरन्ति (क्षर् - टपकना, झरना, गिरना)। सिन्धवः (सिध - सिद्ध होना, पूर्ण होना, जाना, जानना, पाना, अध्ययन करना, दीक्षा देना, शुभ कार्य करना, सिञ् - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना, सिञ् - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। माध्वीः (मध् = मधुर होना, मीठा होना, मध्य होना)। नः (सर्वनाम)। सन्तु (अस् - होना)। ओषधीः (उषध् - चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)॥ 27॥

658. मधु नक्तम् उत उषसो, मधुमत् पार्थिवम् रजः। मधु द्यौः अस्तु नः पिता॥28॥

मन्त्रार्थ- पिता = हे पिता। मधु = मीठा, मधु । नक्तम् = रात्रि । उत = वैसे ही । उषसो = उषायें । मधुमत् =

मधुयुक्त । पार्थिवम् = पार्थिव को, पृथ्वी को । रजः = रज । मधु = मीठा, मधु । द्यौः = प्रकाशवान्, विद्वान्, द्यौ, प्रकाशयुक्त, अग्रगामी । नः = हमारे लिए। अस्तु = हो । ॥ 28 ॥

भावार्थ - हे पिता, रात्रि मधुमय हो, वैसे ही उषायें मधुमय हों। पार्थिव रज मधुमय हो। द्यौ भी हमारे लिए मधुमय हो। हम सर्वत्र मधुरता की कामना करते हैं॥ 28 ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मधु (मध् = मधुर होना, मीठा होना, मध्य होना)। नक्तम् (अव्यय, नक् - नक्क् = नष्ट होना, नष्ट करना)। उत (अव्यय)। उषसो (उषस् - प्रभात होना, पौ फटना, उष - हिंसा करना, जलना, जलाना, ताप देना)। मधुमत् (मध् = मधुर होना, मीठा होना, मध्य होना)। पार्थिवम् (पृथ - फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना, व्याप्त होना)। रजः (रज - रज होना, धूल होना, सूक्ष्म होना, रंग देना, रंगना, लीन होना)। द्यौः (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना, प्रकाश होना, जानना)। अस्तु (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। नः (सर्वनाम)। पिता (पि - जाना, जानना, पाना, पा- पालन करना, रक्षा करना)॥ 28 ॥

659. मधुमान् नो वनस्पतिः, मधुमान् अस्तु सूर्य्यः। माध्वीः गावो भवन्तु नः॥29॥

मन्त्रार्थ - नो = हमारे लिए। वनस्पतिः = वनस्पति। मधुमान् = मधुरता युक्त। सूर्य्यः = सूर्य, उत्पन्न करने वाला। मधुमान् = मधुरता युक्त। अस्तु = हो। नः = हमारा। गावो = शब्द, वाणी, वचन। माध्वीः = माध्वी, मधुरता युक्त । भवन्तु = हों॥ 29 ॥

भावार्थ - हमारे लिए वनस्पति मधुरता युक्त हो, सूर्य मधुरता युक्त हो। नः = हमारा शब्द, वाण मधुरता युक्त हों। प्रकृति हमारे लिए मधुरतायुक्त हो और हम जीवन में, मन, वचन, कर्म में भी मधुरता हो, यही हमारी भावना है॥ 29 ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मधुमान् (मध् = मधुर होना, मीठा होना, मध्य होना)। नो (सर्वनाम)। वनस्पतिः (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। अस्तु (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। सूर्य्यः (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। माध्वीः (मध् = मधुर होना, मीठा होना, मध्य होना)। गावो (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना)। भवन्तु (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)॥ 29 ॥

660. अपाम् गम्भन् सीद मा त्वा सूर्य्यो, अभि ताप्सीत् मा अग्निः वैश्वानरः।
अच्छिन्नपत्राः प्रजाः अनुवीक्षस्व, अनु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम्॥30॥

मन्त्रार्थ - अपाम् = पालकों की। गम्भन् = प्रगति। सीद = प्रतिष्ठित हो। त्वा = तुमको। सूर्य्यो = सूर्य। मा = नहीं। अभि-ताप्सीत् = अभितप्त करे। वैश्वानरः = विश्वनायक। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी। मा = नहीं, मत। अभि-ताप्सीत् = अभितप्त करे। अच्छिन्नपत्राः = छिद्र रहित पत्र वाले। प्रजाः = सन्तति, प्रजा। अनुवीक्षस्व = अनुवीक्षण करो। त्वा = तुमको। दिव्या = दिव्य। वृष्टिः = वर्षा, पराक्रम। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल। सचताम् = अभिसिञ्चन करें, सींचे।30 ॥

भावार्थ - पालकों की प्रगति प्रतिष्ठित हो। तुमको सूर्य नहीं अभितप्त करे। वैश्वानरः = विश्वनायक अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी नहीं अभितप्त करे। अच्छिन्नपत्राः अर्थात् जिनके पत्र छिन्न न हों, छिद्र रहित पत्र वाले। सन्तति, प्रजा अनुवीक्षण करो। तुमको दिव्य वर्षा, पराक्रम अनुसचताम् = अभिसिञ्चन करें, सींचे॥ 30 ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अपाम् (अप - पालन करना)। गम्भन् (गह् - गहन होना, घना होना, डराना, हिंसा करना, जाना, जानना, पाना)। सीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना,

भग्न करना, नष्ट करना)। मा (अव्यय)। त्वा (सर्वनाम)। सूर्य्यो (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। अभि (उपसर्ग)। ताप्सीत् (तप - ऐश्वर्य होना, तपना, दाह होना, तप करना, तप्त होना, तप्त करना, जलना, जलाना, तृषा होना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। वैश्वानरः (विश्व - सब, नृ - चलना, ले जाना, विनय होना)। अच्छिन्नपत्राः (अ = नहीं, छिद्-छिन् - छेदना, काटना, टुकड़े करना)। प्रजा (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)। अनुवीक्षस्व (अनु = पश्चात्, पीछे, वि - विशेष, इक्ष् - स्वाद लेना, ईक्ष् - देखना)। अनु (उपसर्ग)। दिव्या (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। वृष्टिः (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। सचताम् (सच् - सेवा करना, सन्तुष्ट करना, सींचना, पूर्णतया समझना, सम्बन्धी होना)॥ 30॥

661. त्रीन् समुद्रान् सम् असृपत् स्वर्गान्, अपाम् पतिः वृषभः इष्टकानाम्।
पुरीषम् वसानः सुकृतस्य लोके, तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः॥31॥

मन्त्रार्थ - अपाम् = पालकों का। पतिः = ऐश्वर्यवान् स्वामी। इष्टकानाम् = विद्या, ज्ञान, इच्छाओं का। वृषभः = वर्षा करने वाला। त्रीन् = तीन। समुद्रान् = समुद्रों को। स्वर्गान् = स्वर्ग को। सम् = सम्यक्, भली भाँति। असृपत् = गया॥ सुकृतस्य = सुकृत के। लोके = लोक में। पुरीषम् = अग्रणी। वसानः = वास करते हुए, धारण करते हुए। तत्र = वहाँ । गच्छ = जाओ। यत्र = जहाँ। पूर्वे = पूर्व। परेताः = गये हैं॥ 31॥

भावार्थ - पालकों का ऐश्वर्यवान् स्वामी, विद्या, ज्ञान, इच्छाओं का वर्षा करने वाला तीन समुद्रों को, स्वर्ग को भली भाँति पार कर गया॥ सुकृत के लोक में अग्रणी वास करते हुए वहाँ जाओ, जहाँ पूर्वज गये हैं। उत्तम जन समुद्र के समान विशाल लक्ष्य को भी पार कर जाते हैं। हमें भी उसी प्रकार अपने जीवन में लक्ष्य को प्राप्त करना चाहिए जैसे पहले महान् लोग करते रहे हैं॥ 31॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - त्रीन् (संख्या)। समुद्रान् (सम् = सम्यक्, भलीभांति, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना, द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। सम् (उपसर्ग)। असृपत् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सृप् - सरकना, जाना, चलना,जानना, प्राप्त करना, पाना)। स्वर्गान् (सू- ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, पराक्रम होना, स्वृ-स्वर् = शब्द करना, गम् - जाना)। अपाम् (अप - पालन करना)। पतिः (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। वृषभ (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। इष्टकानाम् (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। पुरीषम् (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। वसानः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। सुकृतस्य (सु = अच्छा, उपसर्ग, कृ = करना)। लोके (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। तत्र (सर्वनाम)। गच्छ (गम्-गच्छ् = जाना)। यत्राम् (सर्वनाम)। पूर्वे (पूर्व = पूर्व, पहले, सर्वनाम, पूर्व - पूर्ण करना, भरना, निवास करना, आश्चर्य करना, आमन्त्रण करना)। परेताः (पर = पराया, अन्य, दूसरा, परे, पश्चात्, बाद में (उपसर्ग), ई - जाना, व्याप्त होना, प्रेरणा करना)॥ 31॥

(153) सूक्त 8

662. मही द्यौः पृथिवी च नः, इमम् यज्ञम् मिमिक्षताम्, पितृताम् नो भरीमभिः॥32॥

मन्त्रार्थ - मही = मही, महिमावान्, महान्। द्यौः = द्यौ, प्रकाशयुक्त, प्रकाशवान्, विद्वान्, अग्रगामी। च = और। पृथिवी = पृथ्वी, विस्तृत, विस्तारयुक्त। नः = हमारे। इमम् = इस। यज्ञम् = यजन को। पितृताम्् = पूर्ण करें, पालन-रक्षण करें। नो = हमारे लिए। भरीमभिः = भरण करने वालों द्वारा। मिमिक्षताम् = सिंचन करें॥ 32॥

भावार्थ - मही अर्थात् महिमावान्, महान् द्यौ अर्थात् प्रकाशवान्, विद्वान्, अग्रगामी और पृथिवी अर्थात् विस्तृत, विस्तारयुक्त हमारे इस यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण दान जैसे कार्यों को पूर्ण करें, पालन-रक्षण करें। हमारे लिए भरण करने वालों द्वारा सिंचन करें।। 32।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मही (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। द्यौः (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना, प्रकाश होना, जानना)। पृथिवी (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। च (अव्यय)। नः (सर्वनाम)। इमम् (सर्वनाम)। यज्ञम् (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना)। मिमिक्षताम् (मि - प्रक्षेपण करना, स्थापन करना, रक्षा करना, मिह - गीला करना, सींचना, प्रोक्षण करना)। पितृताम् (पृ - पूर्ण करना, भरना)। भरीमभिः (भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)।। 32।।

663. विष्णोः कर्माणि पश्यत, यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा।। 33।।

मन्त्रार्थ :- विष्णोः = विष्णु का। कर्माणि = कर्मों को। पश्यत = देखो। यतो = जिससे। व्रतानि = व्रतों को। पस्पशे = बाँधते हैं। इन्द्रस्य = इन्द्र का। युज्यः = योग्य। सखा = मित्र (है)।। 4।।

भावार्थ :- विष्णु अर्थात् व्यापक परमात्मा के कर्मों को देखें। परमात्मा निरन्तर कर्मरत है। वह कर्म करने के लिए बाध्य नहीं है, फिर भी निरन्तर कर्म करता है। स्वाभाविक है कि हमसे भी यही अपेक्षा है। सभी व्रत-संकल्प उसी परमात्मा से तथा उसकी तरह कर्म करते रहेने से ही सम्भव हो पाते हैं। वह परमात्मा तथा निरन्तर कर्मशीलता ही इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्य का योग्य सखा है, मित्र है, साथी है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : - विष्णोः (विष्-विविष् - व्याप्त होना, अभिषेक करना, सींचना, अलग करना)। कर्माणि (कृ)। पश्यत (पश् = देखना)। यतः (सर्वनाम)। व्रतानि (वृ = वरण करना)। पस्पशे (पश-पष-स्पश - बांधना, एकत्र करना, संयुक्त करना)। इन्द्रस्य (इन्द = परम ऐश्वर्य (ऐश्वर्य) होना)। युज्यः (युज - जोड़ना)। सखा (सख् = मित्र होना)।। 33।।

664. ध्रुवा असि धरुणा इतो जज्ञे प्रथमम्, एभ्यो योनिभ्यो अधि जातवेदाः।
स गायत्र्या त्रिष्टुभा अनुष्टुभा च, देवेभ्यो हव्यम् वहतु प्रजानन्।। 34।।

मन्त्रार्थ - ध्रुवा = ध्रुव, अविचल गतिशील, अविचल विद्वान्। धरुणा = धारणकर्ता, धारण करने वाली। असि = हो। इतो = यहां से। प्रथमम् = प्रथम। एभ्यो = इनके लिए। योनिभ्यो = योनियों के लिए। अधि = अधिगत, उच्च। जातवेदाः = वेद को जानने वाले। जज्ञे = उत्पन्न हुए। स = वह। प्रजानन् = जानते हुए। गायत्र्या = गायत्री, गान, स्तुति द्वारा। त्रिष्टुभा = त्रिष्टुप् द्वारा, त्रिष्टुभ् द्वारा। च = और। अनुष्टुभा = अनुष्टुप् द्वारा। देवेभ्यो = देवों, विद्वानों के लिए। हव्यम् = आदान-प्रदान करने योग्य को, हव्य को, देय को। वहतु = वहन करें।। 34।।

भावार्थ - ध्रुव, अविचल गतिशील, अविचल विद्वान् धारणकर्ता हो। यहां से प्रथम इन योनियों के लिए उच्च विद्वान् उत्पन्न हुए। वह जानते हुए गायत्री, गान, स्तुति द्वारा, त्रिष्टुप् या त्रिष्टुभ् द्वारा और अनुष्टुप् द्वारा देवों, विद्वानों के लिए आदान-प्रदान करने योग्य, हव्य या देय पदार्थों को वहन करें ध्रुव का अर्थ अचल, स्थिर के स्ाथ ही गतिशील भी है। अतः इसका अर्थ अविचल गतिशील, अविचल विद्वान् किया गया है।। 34।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ध्रुवा (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। असि (अस् - होना)। धरुणा (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। इतो (इतो = यहां से (सर्वनाम), इ - जाना, जानना, पाना, इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। जज्ञे (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। प्रथमम् (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। एभ्यो (सर्वनाम)। योनिभ्यो (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। अधि (उपसर्ग)। जातवेदाः (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, विद् - जानना)। स (सर्वनाम)। गायत्र्या (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना)। त्रिष्टुभा (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, स्तु - स्तुति करना)। अनुष्टुभा (अनु = पश्चात्, पीछे, स्तु - स्तुति करना)। च (अव्यय)। देवेभ्यो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)।

हव्यम् (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। वहतु (वह् = वहन करना ले जाना, बहना, झरना, ढोना, ढो ले जाना)। प्रजानन् (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)।34 ।।

665. इषे राये रमस्व सहसे, द्युम्न ऊर्जे अपत्याय।
सम्राट् असि स्वराट् असि, सारस्वतौ त्वा उत्सौ प्र अवताम् ।।35 ।।

मन्त्रार्थ - इषे = गति, ज्ञान, इच्छा के लिए। राये = विद्या, गतिशीलता, प्राप्ति के लिए, शब्द अर्थात् वाणी में। रमस्व = रम जाओ।। सहसे = सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ठ के लिए। द्युम्ने = अग्रगामी के लिए। ऊर्जे = ऊर्जा के लिए। अपत्याय = अपत्य, पाल्य, पालनीय के लिए। सम्राट् = सम्राट्। असि = हो। स्वराट् = स्वयं प्रकाशमान। असि = हो। सारस्वतौ = सारस्वत। उत्सौ = उत्स। त्वा = तुम्हारा। प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। अवताम् = पालन-रक्षण करे।। 35 ।।

भावार्थ - गति, ज्ञान, इच्छा के लिए, विद्या, गतिशीलता, प्राप्ति के लिए, शब्द अर्थात् वाणी, विद्या, वेद में। रम जाओ।। सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ठ के लिए, अग्रगामी के लिए, ऊर्जा के लिए, अपत्य, पाल्य, पालनीय के लिए। सम्राट् हो, स्वयं प्रकाशमान हो। सारस्वत उत्स तुम्हारा पालन-रक्षण करे ।। 35 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इषे (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। राये (रै = शब्द करना, रय् = गति करना, जाना, रा - देना, दान करना, लेना, ग्रहण करना)। रमस्व (रम - रमना, क्रीडा करना, खेलना)। सहसे (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना)। द्युम्न (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना)। ऊर्जे (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। अपत्याय (अप् - पालन करना)। सम्राट् (सम् - सम्यक्, भलीभाँति, रट् = बोलना, सम्भाषण करना, राज् = शोभित होना, प्रकाशित होना, चमकना)। असि (अस् - होना)। स्वराट् (स्व - स्वयम्, अपना, राज् = चमकना, प्रकाशित शोभित होना)। सारस्वतौ (सार - कृश होना, लघुकाय होना, दुर्बल होना, सृ- जाना, सरकना, सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। त्वा (सर्वनाम)। उत्सौ (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, सु = उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। प्र (उपसर्ग)। अवताम् (अव = नीचे, दूर, प्राप्त, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)।। 35 ।।

(154) सूक्त 9

666. अग्ने युक्ष्वा हि ये तव, अश्वासो देव साधवः।अरम् वहन्ति मन्यवे।।36 ।।

मन्त्रार्थ - देव = हे देव, विद्वान्, तेजस्वी, दिव्यस्वरूप। अग्ने = हे अग्नि। ये = जो। तव = तुम्हारा। अश्वासो = अश्व, तीव्र गति युक्त, व्यापक। साधवः = साधु, साधनयुक्त, साधकों को। हि = निश्चय, ही। युक्ष्वा = युक्त कीजिये। अरम् = पर्याप्त, गतिशील, विद्वान्। मन्यवे = मन्यु के लिए, मनन के लिए। वहन्ति = वहन करते हैं।। 36 ।।

भावार्थ - हे देव, विद्वान्, तेजस्वी अग्नि, जो तुम्हारे अश्व अर्थात् तीव्र गति युक्त, व्यापक साधु अर्थात् साधनयुक्त, साधकों को निश्चय, ही अपने साथ युक्त कीजिये। पर्याप्त, गतिशील, विद्वान् मन्यु अर्थात् मनन के लिए वहन करते हैं। अग्नि अर्थात् परमात्मा अपने साधु-साधकों, उपासकों को अपने साथ युक्त करे तथा विद्वान्, तेजस्वी जन अपने साथ साधु सज्जन, साधकों उपासकें को संयुक्त करें, साथ लेकर कार्य करें।।। 36 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। युक्ष्वा (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना)। हि (अव्यय)। ये (सर्वनाम)। तव (सर्वनाम)। अश्वासो (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। देव (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। साधवः (साध - पूर्ण करना, सिद्ध करना, जय पाना, जीतना, यशस्वी होना, साधना करना)। अरम् (ऋ-अर्

= जाना, जानना, पाना, महत्व दिखाना, शब्द करना, ध्वनि करना, हिंसा करना, अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, रम् - रमना, रमण करना, रम जाना, रत होना, क्रीडा करना, प्रिय होना, मूल्यवान होना)। वहन्ति (वह् = वहन करना ले जाना, बहना, झरना, ढोना, ढो ले जाना)। मन्यवे (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)।। 36 ।।

667. युक्ष्वा हि देव-हूतमान्, अश्वान् अग्ने रथीः इव। नि होता पूर्व्यः सदः ।। 37 ।।

मन्त्रार्थ - देव-हूतमान् = हे दिव्य-हवि, देवों का आह्वान, दान, ग्रहण युक्त। अग्ने = हे अग्नि। अश्वान् = अश्वों को, तीव्र गति युक्त, शीघ्रगामी, व्यापक को। रथीः = रथी। इव = के समान। हि = निश्चय ही। युक्ष्वा = युक्त कीजिये। नि = निश्चित, निरन्तर। होता = आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाले। पूर्व्यः = पूर्व, प्रथम। सदः = प्रतिष्ठित हो।। 37 ।।

भावार्थ - हे दिव्य-हवि, देवों का आह्वान, दान, ग्रहण युक्त अग्नि स्वरूप परमात्मन्, अश्वों को अर्थात् तीव्र गति युक्त, शीघ्रगामी, व्यापक को रथी के समान निश्चय ही युक्त कीजिये। निश्चित, निरन्तर होता अर्थात् आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाले पूर्व, प्रथम प्रतिष्ठित हो। इसका भाव है कि जिस प्रकार रथी अर्थात् रथचालक अश्वों को रथ में संयुक्त कर रथ का संचालन करता है, उसी प्रकार अश्वों को अर्थात् तीव्र गति युक्त, शीघ्रगामी, व्यापक भाव को हम सबमें संयुक्त कीजिए। वेद में श्लेष अलंकार का सौन्दर्य सर्वत्र दर्शनीय है।। 37 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - युक्ष्वा (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना)। हि (अव्यय)। देव-हूतमान् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना, हु = आदान-प्रदान करना, लेना, ह्वे = शब्द करना)। अश्वान् (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। रथीः (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। इव (अव्यय)। नि (अव्यय)। होता (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। पूर्व्यः (पूर्व = पूर्व, पहले, सर्वनाम, पूर्व - पूर्ण करना, भरना, निवास करना, आश्चर्य करना, आमन्त्रण करना)। सदः (सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)।। 37 ।।

668. सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना, अन्तः हृदा मनसा पूयमानाः।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि, हिरण्ययो वेतसो मध्ये अग्नेः ।। 38 ।।

मन्त्रार्थ - धेना = धारणा, बुद्धिमान, प्रिय, पालन करने वाले। हृदा = हृदय के। अन्तः = अन्तः, भीतर। मनसा = मन द्वारा। पूयमानाः = पवित्र करते हुए। सम्यक् = भलीभाँति। सरितो = प्रवाहमान, नदी। न = के समान। स्रवन्ति = अभिसिञ्चन करते हैं, स्रवित होते हैं। घृतस्य = प्रकाश का। धारा = धारण से। अभि = अभिमुख, सर्वथा। हिरण्ययो = प्रकाशमान, गतिशील। वेतसो = विद्वान्। अग्नेः = अग्नि, अग्रणी के। मध्ये = मध्य में। चाकशीमि = प्रकाश करता हूँ, प्राप्त करता हूँ।। 38 ।।

भावार्थ - बुद्धिमान, प्रिय, पालन करने वाले लोग हृदय के भीतर मन द्वारा पवित्र करते हुए भलीभाँति। सरित अर्थात् प्रवाह के समान अभिसिञ्चन करते हैं, स्रवित होते हैं। जो बुद्धिमान हैं, हमारे प्रियजन हैं, पालन करने वाले हैं, वे हमारे हृदय में प्रकाश भर देते हैं। जो ऐसा नहीं करते हैं, वे बुद्धिमान, प्रिय, पालन करने वाले तो नहीं कहे जा सकते हैं। जो प्रकाश हमें प्राप्त होता है, उसके धारण से प्रगतिशील विद्वान् के मध्य मैं भी प्रकाश करता हूँ, अपना उचित स्थान प्राप्त करता हूँ।। 38 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सम्यक् (अव्यय)। स्रवन्ति (स्रु = जाना, जानना, पाना, सृ - जाना, सरकना, बहना, टपकना)। सरितो (सृ - जाना, सरकना, जानना, पाना, बहना, चलना, स - साथ, सहित, रस् - स्वाद लेना, प्रीति करना, शब्द करना)। न (अव्यय)। धेना (धिन - प्रेम करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, धी - बुद्धि होना, धे - पालना, पीना)। अन्तः (अन्तः = बीच में, अन्त् - अन्त होना, समाप्त होना, बाँधना, पाना, हिंसा करना)। हृदा (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक

करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, लेना, ग्रहण करना, नष्ट करना)। मनसा (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। पूयमानाः (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। घृतस्य (घृ -गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना)। धारा (धाः = पोषण करना, रक्षण करना, देना, दान करना, धार बाँधना, धारा होना)। अभि (उपसर्ग)। चाकशीमि (कश् - गति करना, शासन करना, चाकश् - चमकना, प्रकाश करना)। हिरण्ययो (हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, शब्द करना, ध्वनि होना, हि = गति करना, रण् = शब्द करना, जाना)। वेतसो (विद् = जानना, विद्यमान होना, विचार करना)। मध्ये (सर्वनाम)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)॥ 38॥

669. ऋचे त्वा रुचे त्वा, भासे त्वा ज्योतिषे त्वा।
अभूत् इदम् विश्वस्य भुवनस्य, वाजिनम् अग्नेः वैश्वानरस्य च॥39॥

मन्त्रार्थ - ऋचे = ऋचाओं के लिए। त्वा = तुम्हारा। रुचे = रुचि के लिए, प्रकाश के लिए। त्वा = तुम्हारा। भासे = प्रकाश के लिए। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । ज्योतिषे = प्रकाश । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । इदम् = यह, इसको । विश्वस्य = विश्व का, सभी का। भुवनस्य = भुवन का, वर्तमान का । च = और। वैश्वानरस्य = विश्वनायक का । अग्नेः = अग्नि का । वाजिनम् = वाजयुक्त को, विद्यायुक्त को, गतियुक्त को । अभूत् = हो गया, हुआ॥ 39॥

भावार्थ - यह तुम्हारे लिए ऋचा के लिए, रुचि के लिए, प्रकाश के लिए, भास के लिए, ज्योति, कान्ति, प्रकाश के लिए, विश्व-भुवन का और वैश्वानर-विश्वनायक अग्नि का बल, विद्या, गति हो गया। परमात्मा की दिव्य ज्योति हमारे लिए है। हम उसे प्राप्त कर सकते हैं, प्रकाशमान हो सकते हैं॥ 39॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ऋचे (ऋच - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। त्वा (सर्वनाम)। रुचे (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। भासे (भास् - प्रकाशित होना, चमकना)। ज्योतिषे (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। अभूत् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। इदम् (सर्वनाम)। विश्वस्य (सर्वनाम)। भुवनस्य (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। वाजिनम् (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। वैश्वानरस्य (विश्व - सब, नृ - चलना, ले जाना, विनय होना)। च = और (अव्यय)॥ 39॥

(155) सूक्त 10

670. अग्निः ज्योतिषा ज्योतिष्मान्, रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान्। सहस्रदा असि सहस्राय त्वा॥40॥

मन्त्रार्थ - अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। ज्योतिषा = ज्योति द्वारा। ज्योतिष्मान् = प्रकाशमान। रुक्मो = रुचि, प्रकाश। वर्चसा = प्रकाश द्वारा, तेज द्वारा। वर्चस्वान् = वर्चस्वान्, प्रकाश, तेज युक्त। त्वा = तुम। सहस्राय = सहस्र के लिए। सहस्रदा = सहस्रदाता। असि = हो **॥40॥**

भावार्थ - अग्नि अर्थात् ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् परमात्मा ज्योति द्वारा ज्योतिष्मान्, प्रकाशमान, रुक्म अर्थात् प्रकाश स्वरूप है। वह वर्चस् अर्थात् प्रकाश, तेज द्वारा वर्चस्वान्, प्रकाश, तेज युक्त है। तुम सहस्र के लिए सहस्र अर्थात् बहुत अधिक देने वाला है। अपेक्षा है कि तुम भी ऐसे ही बनो **॥40॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। ज्योतिषा (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। ज्योतिष्मान् (ज्युत् - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। रुक्मो (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। वर्चसा (वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। वर्चस्वान् (वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। सहस्रदा (सहस्र = हजार,

संख्या, दा, दद् = देना)। असि (अस् - होना)। सहस्राय (संख्या)। त्वा (सर्वनाम) **॥ 40 ॥**

671. आदित्यम् गर्भम् पयसा सम् अङ्ग्धि, सहस्रस्य प्रतिमाम् विश्वरूपम्।
परिवृङ्ग्धि हरसा मा अभि मंस्थाः, शतायुषम् कृणुहि चीयमानः ॥41॥

मन्त्रार्थ - सहस्रस्य = सहस्र का। विश्वरूपम् = विश्वरूप। प्रतिमाम् = प्रतिमा, प्रति-मान। आदित्यम् = आदित्य, अदिति अर्थात् अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न। गर्भम् = गर्भ को। पयसा = पयस् द्वारा, प्रवाहमान द्वारा। सम् = सम्यक्, भली भाँति। अङ्ग्धि = चलाओ, प्रगतिशील बनाओ॥ हरसा = हर द्वारा। परिवृङ्ग्धि = परिवर्जित करो, हटाओ, छोडो। मा = नहीं, मत। अभि-मंस्थाः = मन में स्थित करो। चीयमानः = चुनने वाले, एकत्र करने वाले। शतायुषम् = शतायुष। कृणुहि = करो॥ 41॥

भावार्थ - सहस्र के विश्वरूप प्रति-मान आदित्य अर्थात् अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न गर्भ को प्रवाहमान द्वारा सम्यक्, भली भाँति चलाओ, प्रगतिशील बनाओ। हरण द्वारा परिवर्जित करो, हटाओ, छोडो। अभिमान मत करो, मन में स्थित मत करो। चुनने वाले, एकत्र करने वाले शतायु उत्पन्न करो। हम सब आदित्य अर्थात् अक्षय-अविनाशी परमात्मा से ही उत्पन्न हैं, उसके ही गर्भ हैं। हममे उसकी ही चेतना व्याप्त है। उसी प्रवाह द्वारा जीवन में गति-प्रगति सम्भव है। जो अनुचित है, त्याज्य है, उसे हरण करना है, दूर करना है, हटा देना है। समाज को एकत्र करने वाले शतायु को उत्पन्न करना है, ऐसे लोगों के जीवन को सुगम बनाना है, उन्हें दीर्घजीवी बनाना है। यह उनकी नहीं, समाज की आवश्यकता है॥ 41॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आदित्यम् (अ - नहीं, अद् - खाना, नष्ट करना, दी = क्षय होना, नष्ट होना)। गर्भम् (गृह् - ग्रहण करना, लेना, गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गल्भ् - जाना, जानना, पाना, ज्ञान होना, चतुर होना, साहस होना, धैर्य रखना, गृभ्-गर्भ् - अन्दर होना, अन्तःवास करना)। पयसा (पय् = जाना, जानना, पाना, बहना, पयस् = विस्तार करना, फैलाना)। सम् (उपसर्ग)। अङ्ग्धि (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। सहस्रस्य (संख्या)। प्रतिमाम् (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, मा - मापना, तुलना करना)। विश्वरूपम् (रूप - आकार बनाना, रचना करना)। परि (उपसर्ग)। वृङ्ग्धि (वृज = छोड़ना, वर्जित करना)। हरसा (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। मा (अव्यय)। अभि (उपसर्ग)। मंस्थाः (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। शतायुषम् (शता = सौ, आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। कृणुहि (कृ = करना)। चीयमानः (चि - चुनना, एकत्र करना)॥ 41॥

672. वातस्य जूतिम् वरुणस्य नाभिम्, अश्वम् जज्ञानम् सरिरस्य मध्ये।
शिशुम् नदीनाम् हरिम् अद्रि-बुध्नम्, अग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥42॥

मन्त्रार्थ - वातस्य = वायु के समान तीव्र गति वाले वात का। जूतिम् = वेग को। वरुणस्य = वरुण का। नाभिम् = नाभि को। अश्वम् = अश्व, तीव्र गति युक्त, व्यापक को। सरिरस्य = प्रवाहमान का, नदी का। मध्ये = मध्य। जज्ञानम् = उत्पन्न किया, जाना। अग्ने = हे अग्नि। नदीनाम् = नदियों का। शिशुम् = शिशु को। हरिम् = हरि को । अद्रि-बुध्नम् = अद्रि का बोध या ज्ञान, करने वाले को। मा = नहीं, मत । परमे = परम, अत्यन्त, उच्चतम, प्रमुखतम में । व्योमन् = व्योम में हिंसीः = हिंसा करो॥ 42॥

भावार्थ - वात या वायु के वेग को, वरुण की नाभि अश्व अर्थात् तीव्र गति को, सरिर या प्रवाहमान के मध्य उत्पन्न किया, जाना। नदियों के शिशु हरि को, अद्रि का बोध या ज्ञान, करने वाले को परम व्योम में मत मारो, हिंसा मत करो।42॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - वातस्य (वात - सुखी होना, आनन्द करना, सेवा करना, जाना, वा - गति करना, बहना, पवन की भाँति चलना)। जूतिम् (जु - जाना, शीघ्र जाना, भागना)। वरुणस्य (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। नाभिम् (नभ - नष्ट होना, दुःख देना या मार डालना, हिंसा करना, मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना)। अश्वम् (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना,

फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। जज्ञानम् (जन- उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, ज्ञा - जानना)। सरिरस्य (सृ - जाना, सरकना, जानना, पाना, बहना, चलना, स - साथ, सहित, रस् - स्वाद लेना, प्रीति करना, शब्द करना)। मध्ये (सर्वनाम)। शिशुम् (शि = तेज करना, तीक्ष्ण करना, कल्याण करना, शिष् - शेष रखना, बचाना, प्रयोजन करना)। नदीनाम् (नद् - शब्द करना, झंकार करना, चमकना)। हरिम् (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। अद्रि-बुध्नम् (दृ - हिंसा करना, आदर करना, सत्कार करना, अद् - खाना, ग्रहण करना, आत्मसात् करना, नष्ट करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। मा (अव्यय)। हिंसीः (हिंस् - हिंसा करना, मारना, बध करना, दुःख देना, सताना)। परमे (सर्वनाम)। व्योमन् (वि - विशेष, उ - शब्द करना, रक्षा करना, सुखाना, ऊ - शब्द करना, विश्वास करना)॥ 42॥

673. अजस्रम् इन्दुम् अरुषम् भुरण्युम्, अग्निम् ईडे पूर्वचितिम् नमोभिः।
स पर्वभिः ऋतुशः कल्पमानो, गाम् मा हिंसीः अदितिम् विराजम्॥43॥

मन्त्रार्थ - अजस्रम् = सतत, निरन्तर। इन्दुम् = इन्दु को । अरुषम् = अहिंसक, रोष-रहित, गतिशील, व्यापक। भुरण्युम् = धारण-पोषण करने वाले को। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। पूर्वचितिम् = पूर्व चयनित को। नमोभिः = बहुशः नमन द्वारा। ईडे = स्तुति करता हूँ। स = वह। पर्वभिः = पर्वों द्वारा। ऋतुशः = ऋतु के अनुसार। कल्पमानो = रचनाशील। गाम् = गान, गायक को। अदितिम् = अक्षय, अविनाशी । विराजम् = विराज को, प्रकाशित को। मा = नहीं। हिंसीः = हिंसा करे॥ 43॥

भावार्थ - अजस्र, सतत, निरन्तर, इन्दु को अरुष, रोष-रहित धारण-पोषण करने वाले पूर्व चयनित अग्नि स्वरूप परमात्मा अथवा ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को बहुशः नमन द्वारा स्तुति करता हूँ। वह पर्वों द्वारा ऋतु के अनुकूल रचनाशील है। अक्षय, अविनाशी विशेष प्रकाशित गान, गायक को हिंसित नहीं करे। अग्नि की तेजस्विता रचनाशील है, सृजनात्मक है, सकारात्मक है। वह हिंसक नहीं होनी चाहिए। हिंसक शक्ति की स्तुति नहीं की जा सकती है॥ 43॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अजस्रम् (सर्वनाम, अव्यय)। इन्दुम् (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। अरुषम् (अ - नहीं, ऋ- अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, रुष् - हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, मारने का यत्न करना)। भुरण्युम् (भुरण - पालन करना, धारण करना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। ईडे (ईड् = स्तुति करना)। पूर्वचितिम् (पूर्व = पूर्व, पहले, सर्वनाम, पूर्व - पूर्ण करना, भरना, निवास करना, आश्चर्य करना, आमन्त्रण करना, चि - चयन करना, चुनना, एकत्र करना, चित् - विचार करना, चिन्तन करना)। नमोभिः (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। स (सर्वनाम)। पर्वभिः (पर्व् - पूर्ण करना, पूरा करना, भरना, विभाग करना)। ऋतुशः (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। कल्पमानो (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। गाम् (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। मा (अव्यय)। हिंसीः (हिंस् - हिंसा करना, मारना, बध करना, दुःख देना, सताना)। अदितिम् (अ - नहीं, अद् = खाना, दी = नष्ट होना)। विराजम् (वि = विशेष, विना, विलोम, राज् = प्रकाशित होना, शोभित होना, चमकना)॥ 43॥

674. वरूत्रीम् त्वष्टुः वरुणस्य नाभिम्, अविम् जज्ञानाम् रजसः परस्मात्।
महीम् साहस्त्रीम् असुरस्य मायाम्, अग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्॥44॥

मन्त्रार्थ- त्वष्टुः = त्वष्टा का, प्रकाशक का। वरूत्रीम् = वरणीय, वरण करने वाले को। वरुणस्य = वरुण का। नाभिम् = नाभि। अविम् = रक्षक को। परस्मात् = पर से, अन्य से। रजसः = लोक। जज्ञानाम् = उत्पन्न किया। अग्ने = हे अग्नि । महीम् = पूजनीय्, महान्। साहस्त्रीम् = साहस्री, सहस्रयुक्त, सक्षम, समर्थ। असुरस्य = असुर का, प्रकाश देने वाले का। मायाम् = माया को। परमे = परम। व्योमन् = व्योम में। मा = नहीं, मत। हिंसीः = हिंसित करो॥ 44॥

भावार्थ - अग्नि स्वरूप परमात्मा ने त्वष्टा अर्थात् प्रकाशक का वरण करने वाले, वरुण का नाभि लोक के रक्षक

को उत्पन्न किया। पूजनीय्, महान, साहस्री अर्थात् सहस्रों गुणों, सामर्थ्य से युक्त असुर की माया को परम व्योम में हिंसित नहीं करे, असुर की माया का संरक्षण करें।। 44 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - वरूत्रीम् (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। त्वष्टुः (त्वक्ष् = छीलना, रेतना, त्विष् = प्रकाशित होना, चमकना)। वरुणस्य (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। नाभिम् (नभ - नष्ट होना, दुःख देना या मार डालना, हिंसा करना, मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना)। अविम् (अ - नहीं, वि - विशेष, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। जज्ञानाम् (जन- उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, ज्ञा - जानना)। रजसः (रज - रज होना, धूल होना, सूक्ष्म होना, रंग देना, रंगना, लीन होना)। परस्मात् (सर्वनाम)। महीम् (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। साहस्रीम् (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना, प्रसन्न होना)। असुरस्य (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना, सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। मायाम् (मय् - जाना, क्लिष्ट कार्य करना, मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। मा (अव्यय)। हिंसीः(हिंस् - हिंसा करना, मारना, बध करना, दुःख देना, सताना)। परमे (सर्वनाम)। व्योमन् (वि - विशेष, उ - शब्द करना, रक्षा करना, सुखाना, ऊ - शब्द करना, विश्वास करना)।। 44 ।।

675. यो अग्निः अग्नेः अधि अजायत, शोकात् पृथिव्याः उत वा दिवः परि।
येन प्रजा विश्वकर्मा जजान, तम् अग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ।। 45 ।।

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि। यो = जो। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। अग्नेः = अग्नि का। शोकात् = गति, ज्ञान, प्राप्ति, पवित्रता, शोक से। पृथिव्याः = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। उत = ही। वा = अथवा। दिवः = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। परि = सभी ओर। अधि = अधिगत, पूर्णतः। अजायत = उत्पन्न हुआ। अग्ने = हे अग्नि। येन = जिसके द्वारा। विश्वकर्मा = विश्वकर्मा, सभी कर्म करने वाला। प्रजा = सन्तति, प्रजाओं को। जजान = उत्पन्न किया। तम् = उसे। हेडः = घेरने वाला, तिरस्कार करने वाला, प्रगतिशील। परि = सभी ओर। ते = तुम्हारा। वृणक्तु = वरण करे।। 45 ।।

भावार्थ - हे अग्नि स्वरूप परमात्मा, जो अग्नि अर्थात् ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् अग्नि के गति, ज्ञान, प्राप्ति, पवित्रता, शोक से पृथिवी के ही अथवा दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय के सभी ओर उत्पन्न हुआ, जिसके द्वारा विश्वकर्मा ने प्रजाओं को उत्पन्न किया, उसे घेरने वाला, तिरस्कार करने वाला, प्रगतिशील जन सभी ओर से तुम्हारा वरण करें।। 45 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यो (सर्वनाम)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अधि (उपसर्ग)। अजायत (अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, जन् - उत्पन्न होना)। शोकात् (शुक् - जाना, जानना, पाना, शुच् - पवित्र होना, पवित्र कररना, शुच् - दुःख मानना, शोक करना)। पृथिव्याः (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। उत (अव्यय)। वा (अव्यय)। दिवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। परि (उपसर्ग)। येन (सर्वनाम)। प्रजा (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)। विश्वकर्मा (विश्व - सभी, कृ - करना)। जजान (उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन- उत्पन्न करना)। तम् (सर्वनाम)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। हेडः (हेड् - लपेटना, घेरना, तिरस्कार करना, गति करना, जाना, जानना, पाना)। ते (सर्वनाम)। वृणक्तु (वृ = वरण करना, वृण - परित्याग करना, आनन्द करना, उत्साह करना)।। 45 ।।

676. चित्रम् देवानाम् उत् अगात् अनीकम्, चक्षुः मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः।
आ अप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्, सूर्य्य आत्मा जगतः तस्थुषः च॥46॥

मन्त्रार्थ - मित्रस्य = मित्र का। वरुणस्य = वरुण का। अग्नेः = अग्नि का। चक्षुः = चक्षु, दृष्टि। देवानाम् = देवों का। चित्रम् = अद्‌भुत चेतना को। अनीकम् = स्पन्दनशील, चेतना, प्राण को। उत् = ही, उत्कृष्ट, उच्च। अगात् = गया, प्राप्त किया। जगतः = जगत् का, संसार का, गतिशील का। च = और। तस्थुषः = स्थित का, स्थापित का। आत्मा = आत्मा। सूर्य्य = सूर्ये, उत्पन्न करने वाला। द्यावा-पृथिवी = अग्रगामी, प्रकाशमय, द्यावा और पृथ्वी, विस्तृत भूमि, विस्तार। अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष या आकाश को। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। अप्रा = पालन किया, पूर्ण किया, भरण किया॥46॥

भावार्थ - मित्र, वरुण, अग्नि की दृष्टि से ही देवों का चित्र अर्थात् अद्‌भुत चेतना को अनीक अर्थात् स्पन्दनशील, चेतना, प्राण को् प्राप्त किया जा सकता है। मित्रता, वरण, प्रगतिशीलतता को अपनाकर ही दिव्यता को पा सकते हैं। सूर्य अर्थात् उत्पन्न करने वाला परमात्मा ही जगत् अर्थात् संसार या गतिशील का और स्थित, स्थापित का आत्मा है। वेद में आत्मा शब्द परमात्मा के लिए ही है। परमात्मा से पृथक् आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है। द्यावा और पृथिवी युगल हैं, साथ रहते हैं। अग्रगामी, प्रकाशमय, द्यावा और पृथ्वी, भूमि जीवन के लिए अनिवार्य हैं। सूर्य अर्थात् उत्पन्न करने वाला परमात्मा ही अन्तरिक्ष या आकाश का पालन करने वाला है॥46॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - चित्रम् (चित्र् = चित्र बनाना, आश्चर्य करना, चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। देवानाम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। उत् (उपसर्ग)। अगात् (अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अग् = जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, गति करना, घूमना, कुटिल गति करना, टेढ़ा जाना, लेना, ग्रहण करना, गम् = जाना, जानना, पाना)। अनीकम् (अ - नहीं, अन् = प्राण होना, चेतन होना, श्वास लेना, स्पन्दन करना, हलचल करना, जीवन होना, समर्थ होना, जाना)। चक्षुः (चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)। मित्रस्य (मिद् - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, नरम होना, मृदुल होना)। वरुणस्य (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। आ (उपसर्ग)। अप्रा (अप् - पालन करना, प्रा - पूर्ण करना, भरना, तृप्त करना)। द्यावा (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना)। पृथिवी (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। सूर्य्य (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्‌भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। आत्मा (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। जगतः (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। तस्थुषः (तस - स्थापित होना, स्थापना करना, फेंकना, उड़ा देना, भेजना, खोदना, कुम्हलाना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना)। च (अव्यय)॥46॥

(156) सूक्त 11

677. इमम् मा हिंसीः द्विपादम् पशुम्, सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः।
मयुम् पशुम् मेधम् अग्ने जुषस्व, तेन चिन्वानः तन्वो नि षीद।
मयुम् ते शुक् ऋच्छतु, यम् द्विष्मः तम् ते शुक् ऋच्छतु॥47॥

मन्त्रार्थ - सहस्राक्षो = हजारों नेत्र वाला। मेधाय = मेधा के लिए। चीयमानः = चुनने वाला, एकत्र करने वाला। इमम् = इसको। द्विपादम् = द्विपद वाले। पशुम् = पशु को, दृष्टा को, बन्धन को। मा = नहीं, मत। हिंसीः = हिंसित करे॥ अग्ने = हे अग्नि। मयुम् = प्रगतिशील, ज्ञानी। मेधम् = प्रबोधित को। पशुम् = पशु को। जुषस्व = सेवा करो, सन्तुष्ट करो। तेन = उससे, उसके द्वारा। चिन्वानः = चुनने वाले, एकत्र करने वाले। तन्वो = विस्तार, वृद्धि करने वाले। नि = निश्चित, निरन्तर। षीद = संचरण करें, प्रतिष्ठित हों॥ शुक् = विद्वान्, शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी। मयुम् = प्रगतिशील, ज्ञानी को।

ते = तुम्हारे लिए। शुक् = विद्वान्, शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी। ऋच्छतु = जायें, पायें, पहुँचायें, मिलायें। यम् = जिसको। द्विष्मः = द्वेष करें। तम्= उसको। ते = तुम्हारे लिए। शुक् = विद्वान्, शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी। ऋच्छतु = जायें, पायें, पहुँचायें, मिलायें।। 47 ।।

भावार्थ - हजारों नेत्र वाला, मेधा के लिए, चुनने वाला, एकत्र करने वाला, इस द्विपद वाले पशु को, दृष्टा को, बन्धन का हिंसित न करे।। हे अग्नि, प्रगतिशील, ज्ञानी प्रबोधित पशु को सेवा करो, सन्तुष्ट करो।। उसके द्वारा चुनने वाले, एकत्र करने वाले, विस्तार, वृद्धि करने वाले निरन्तर संचरण करें, प्रतिष्ठित हों।। विद्वान्, शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी लोग प्रगतिशील, ज्ञानी को तुम्हारे लिए पायें, पहुँचायें, मिलायें।। जिसको द्वेष करें, उसको तुम्हारे लिए विद्वान्, शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी पायें, पहुँचायें, मिलायें।। 47 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इमम् (सर्वनाम)। मा (अव्यय)। हिंसीः (हिंस् - हिंसा करना, मारना, बध करना, दुःख देना, सताना)। द्विपादम् (द्वि = दो, संख्या, पद - स्थानान्तर करना, चलना, जाना)। पशुम् (पश्-दृश् = देखना, पश - बांधना, बेड़ी डालना, गांठ बांधना, फांस लगाना, जाना)। सहस्राक्षो (सहस्र = हजार, संख्या, अक्ष् - देखना, खेलना) । मेधाय (मेधा - शीघ्र समझना, मेध् - समझना, जानना, सङ्गति करना, मेल करना, हिंसा करना)। चीयमानः (चि - चुनना, एकत्र करना)। मयुम् (मय् - जाना, जानना, पाना)। मेधम् (मेधा - शीघ्र समझना, मेध् - समझना, जानना, सङ्गति करना, मेल करना, हिंसा करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। जुषस्व (जुष् = विचार करना, सेवा करना, सेवन करना, विवेक होना, विवेचना करना, प्रीति करना, चाहना, दुलारना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। तेन (सर्वनाम)। चिन्वानः (चि - चुनना, एकत्र करना)। तन्वो (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। नि (अव्यय)। षीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। ते (सर्वनाम)। शुक् (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। ऋच्छतु (ऋच्छ् - जाना, जानना, प्राप्त करना, मिलाना)। यम् (सर्वनाम)। द्विष्मः (द्विष् = द्वेष करना)। तम् (सर्वनाम)।। 47 ।।

678. इमम् मा हिंसीः एकशफम् पशुम्, कनिक्रदम् वाजिनम् वाजिनेषु।
गौरम् आरण्यम् अनु ते दिशामि, तेन चिन्वानः तन्वो नि षीद।
गौरम् ते शुक् ऋच्छतु, यम् द्विष्मः तम् ते शुक् ऋच्छतु।। 48 ।।

मन्त्रार्थ - इमम् = इसको। एकशफम् = एक शफ वाले को, विचारशील विद्वान्, विचारशील प्रगतिशील। कनिक्रदम् = प्रकाश करते हुए। वाजिनेषु = वाजिनों में अर्थात् बलवानों, द्विानों, प्रगतिशीलों में। वाजिनम् = बलवान्, द्विान्, प्रगतिशील को। पशुम् = पशु को, दृष्टा को, बन्धन को। मा = नहीं, मत। हिंसीः = हिंसा करो।। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। गौरम् = उद्योगी, प्रयासरत, शब्दकर्ता को। आरण्यम् = आरण्य, सम्यक् गमनीय, वचनीय। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल। दिशामि = दिशा देता हूँ।। तेन = उसके द्वारा। चिन्वानः = चुनने वाले, एकत्र करने वाले। तन्वो = विस्तार, वृद्धि। नि = निश्चित, निरन्तर। षीद = संचरण करें, प्रतिष्ठित हों।। ते = तुम्हारे लिए। गौरम् = उद्योगी, प्रयासरत, शब्दकर्ता को। शुक् = विद्वान्, शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी। ऋच्छतु = जायें, पायें, पहुँचायें, मिलायें। यम् = जिसको। द्विष्मः = द्वेष करें। तम् = उसको। ते = तुम्हारे लिए। शुक् = विद्वान्, शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी। ऋच्छतु = जायें, पायें, पहुँचायें, मिलायें।। 48 ।।

भावार्थ - इस एक शफ वाले अर्थात् विचारशील विद्वान्, विचारशील प्रगतिशील, प्रकाश करने वाले, वाजिनों में वाजिन् अर्थात् अत्यन्त बलवान्, द्विान्, प्रगतिशील पशु को, अर्थात् दृष्टा को, पथ-प्रदर्शक को, बन्धनकारी अर्थात् बाँधने वाले को अथवा बन्धु को हिंसित मत करो।। तुम्हारा गौर अर्थात् उद्योगी, प्रयासरत, शब्दकर्ता, आरण्य अर्थात् सम्यक् गमनीय, वचनीय को दिशा देता हूँ।। उसके द्वारा चुनने वाले, एकत्र करने वाले विस्तार, वृद्धि करने वाले निश्चित, निरन्तर संचरण करें, प्रतिष्ठित हों।। तुम्हारे लिए गौर अर्थात् उद्योगी, प्रयासरत, शब्दकर्ता को शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी, विद्वान् पहुँचायें, मिलायें। जिसको हम द्वेष करें, उसको तुम्हारे लिए विद्वान् जायें, पायें, पहुँचायें, मिलायें।।। 48 ।।

विशेष - एकशफम् का अर्थ है एक शफ वाले को। एक शब्द संख्या है, अतः एकशफ का अर्थ होगा जिसका एक ही शफ है। एक् धातु का अर्थ विचार करना है, अतः एकशफ का अर्थ विचारशील शफ भी हो सकता है। शफ शब्द में शप् अथवा शब् धातु मान सकते हैं। शप् धातु का अर्थ शाप देना, आक्रोश करना, कोप करना तथा शब् धातु का अर्थ जाना, जानना, पाना है। इस प्रकार एकशफ शब्द का अर्थ विचारशील विद्वान्, विचारशील प्रगतिशील मानना उपयुक्त है। वाजिनों में वाजिन् का अर्थ है अत्यन्त बलवान्, व्विान्, प्रगतिशील।। 48।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इमम् (सर्वनाम)। मा (अव्यय)। हिंसीः (हिंस् - हिंसा करना, मारना, बध करना, दुःख देना, सताना)। एकशफम् (एक = एक संख्या, एक - विचार करना, शम् - कल्याण करना, शमन करना, विचार करना, फण् - चलना, शब्द करना, शप् - शाप देना, आक्रोश करना, कोप करना, शब् - जाना, जानना, पाना)। पशुम् (पश्-दृश् = देखना, पश - बांधना, बेड़ी डालना, गांठ बांधना, फांस लगाना, जाना)। कनिक्रदम् (कन् - व्याप्त होना, प्रकाश करना, प्रीति करना, जाना, जानना, पाना, कृ - करना)। वाजिनम् (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। वाजिनेषु (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। गौरम् (गुर - उद्योग करना, प्रयत्न करना, गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना)। आरण्यम् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अ - नहीं, रण् - शब्द करना, चलना, युद्ध करना)। अनु (उपसर्ग)। ते (सर्वनाम)। दिशामि (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। तेन (सर्वनाम)। चिन्वानः (चि - चुनना, एकत्र करना)। तन्वो (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। नि (अव्यय)। षीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। गौरम् (गुर - उद्योग करना, प्रयत्न करना, गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना)। शुक् (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। ऋच्छतु (ऋच्छ् - जाना, जानना, प्राप्त करना, मिलाना)। यम् (सर्वनाम)। द्विष्मः (द्विष् = द्वेष करना)। तम् (सर्वनाम)।। 48।।

679. इमम् साहस्रम् शतधारम् उत्सम्, व्यच्यमानम् सरिरस्य मध्ये।
घृतम् दुहानाम् अदितिम् जनाय, अग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्।
गवयम् आरण्यम् अनु ते दिशामि, तेन चिन्वानः तन्वो नि षीद।
गवयम् ते शुक् ऋच्छतु यम् द्विष्मः, तम् ते शुक् ऋच्छतु।। 49।।

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि। इमम् = इसको। साहस्रम् = हजार, सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ट, सहने वाले। शतधारम् = सैकड़ों धाराओं वाला। उत्सम् = उत्स को। सरिरस्य = प्रवाहमान का, नदी का। मध्ये = मध्य। व्यच्यमानम् = व्याप्त होते हुए को। घृतम् = घृत को, प्रकाश को। दुहानाम् = दुहने वालों का। जनाय = जन के लिए। अदितिम् = अक्षय, अविनाशी को। मा = नहीं, मत। हिंसीः = हिंसित करो। परमे = परम, उच्चतम, प्रमुखतम में । व्योमन् = व्योम। गवयम् = गव्य, कथनीय। आरण्यम् = आरण्य, सम्यक् गमनीय, वचनीय। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल। दिशामि = दिशा देता हूँ।। तेन = उसके द्वारा। चिन्वानः = चुनने वाले, एकत्र करने वाले। तन्वो = विस्तार, वृद्धि। नि = निश्चित, निरन्तर। षीद = संचरण करें, प्रतिष्ठित हों।। ते = तुम्हारे लिए। गवयम् = गव्य, कथनीय। शुक् = विद्वान्, शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी। ऋच्छतु = जायें, पायें, पहुँचायें, मिलायें। यम् = जिसको। द्विष्मः = द्वेष करें। तम् = उसको। ते = तुम्हारे लिए। शुक् = विद्वान्, शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी। ऋच्छतु = जायें, पायें, पहुँचायें, मिलायें।। 49।।

भावार्थ - हे अग्नि, इस साहस्री, सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ट, सहने वाले, सैकड़ों धाराओं वाले इस उत्स को, अर्थात् उत्कृष्ट सृजन को हिंसित मत करो।। तुम्हारा गौर अर्थात् उद्योगी, प्रयासरत, शब्दकर्ता, आरण्य अर्थात् सम्यक् गमनीय, वचनीय को दिशा देता हूँ।। उसके द्वारा चुनने वाले, एकत्र करने वाले विस्तार, वृद्धि करने वाले निश्चित, निरन्तर संचरण करें, प्रतिष्ठित हों।। तुम्हारे लिए गव्य, कथनीय को शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी, विद्वान् पहुँचायें, मिलायें। जिसको हम द्वेष करें, उसको तुम्हारे लिए गव्य, कथनीय जायें, पायें, पहुँचायें, मिलायें।।। 49।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इमम् (सर्वनाम)। साहस्रम् (सहस्र = हजार, सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना,

सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना, प्रसन्न होना)। शतधारम् (शत = सौ, धाः- धारा होना, धार बाँधना)। उत्सम् (उत् - उत्तम, उच्च, ऊपर, सु = उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। व्यच्यमानम् (व्यच् - व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, ठगना, वि - विशेष, अच् - जाना, मरना, आदर करना, याचना करना)। सरिरस्य (सृ - जाना, सरकना, जानना, पाना, बहना, चलना, स - साथ, सहित, रस् - स्वाद लेना, प्रीति करना, शब्द करना)। मध्ये (सर्वनाम)। घृतम् (घृ -गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना)। दुहानाम् (दुह - दूध निकालना, दोहना, रिक्त करना, लेना, खींचना)। अदितिम् (अ - नहीं, अद् = खाना, दी = नष्ट होना)। जनाय (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। मा (अव्यय)। हिंसीः (हिंस् - हिंसा करना, मारना, बध करना, दुःख देना, सताना)। परमे (सर्वनाम)। व्योमन् (वि - विशेष, उ - शब्द करना, रक्षा करना, सुखाना, ऊ - शब्द करना, विश्वास करना)। गवयम् (गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना)। आरण्यम् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अ - नहीं, रण् - शब्द करना, चलना, युद्ध करना)। अनु (उपसर्ग)। ते (सर्वनाम)। दिशामि (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। तेन (सर्वनाम)। चिन्वानः (चि - चुनना, एकत्र करना)। तन्वो (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। नि (अव्यय)। षीद (सीद - जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। गवयम् (गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना, गम् = जाना)। शुक् (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। ऋच्छतु (ऋच्छ् - जाना, जानना, प्राप्त करना, मिलाना)। यम् (सर्वनाम)। द्विष्मः (द्विष् = द्वेष करना)। तम् = उसको, उसे (सर्वनाम)।। 49 ।।

680. इमम् ऊर्णायुम् वरुणस्य नाभिम्, त्वचम् द्विपदाम् चतुष्पदाम्।
त्वष्टुः प्रजानाम् प्रथमम् जनित्रम्, अग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्।
उष्ट्रम् आरण्यम् अनु ते दिशामि, तेन चिन्वानः तन्वो नि षीद।
उष्ट्रम् ते शुक् ऋच्छतु यम् द्विष्मः, तम् ते शुक् ऋच्छतु।। 50 ।।

मन्त्रार्थ - इमम् = इसको। ऊर्णायुम् = आवरण-आच्छादन युक्त आयु को। वरुणस्य = वरुण का। नाभिम् = नाभि को। त्वचम् = त्वचा, चर्म, खाल को। द्विपदाम् = द्विपद वाला। चतुष्पदाम् = चार पैर वाले को। त्वष्टुः = त्वष्टा का, प्रकाशक का। प्रजानाम् = प्रजाओं का। प्रथमम् = प्रथम को। जनित्रम् = उत्पादक। अग्ने = हे अग्नि। मा = नहीं, मत। हिंसीः = हिंसा करो । परमे = परम, अत्यन्त, उच्चतम, प्रमुखतम म। व्योमन् = व्योम। उष्ट्रम् = उषा, हिंसा देने वाला।। आरण्यम् = आरण्य, सम्यक् गमनीय, वचनीय । अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल । ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए । दिशामि = दिशा देता हूँ । तेन = उससे, उसके द्वारा । चिन्वानः = चुनने वाले, एकत्र करने वाले । तन्वो = विस्तार, वृद्धि । नि = निश्चित, निरन्तर । षीद = बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों । उष्ट्रम् = उषा, हिंसा देने वाला । ते = तुम्हारे लिए। शुक् = विद्वान्, शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी। ऋच्छतु = जायें, पायें, पहुँचायें, मिलायें। यम् = जिसको। द्विष्मः = द्वेष करें। तम्= उसको। ते = तुम्हारे लिए। शुक् = विद्वान्, शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी। ऋच्छतु = जायें, पायें, पहुँचायें, मिलायें।। 50 ।।

भावार्थ - हे अग्नि, इस कोमल आच्छादन वरुण की नाभि, द्विपद या चतुष्पद जीवों को हिंसित मत करो।। तुम्हारा गौर अर्थात् उद्योगी, प्रयासरत, शब्दकर्ता, आरण्य अर्थात् सम्यक् गमनीय, वचनीय को दिशा देता हूँ।। उसके द्वारा चुनने वाले, एकत्र करने वाले विस्तार, वृद्धि करने वाले निश्चित, निरन्तर संचरण करें, प्रतिष्ठित हों।। तुम्हारे लिए गव्य, कथनीय को शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी, विद्वान् पहुँचायें, मिलायें। जिसको हम द्वेष करें, उसको तुम्हारे लिए गव्य, कथनीय जायें, पायें, पहुँचायें, मिलायें।। 50 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इमम् (सर्वनाम)। ऊर्णायुम् (ऊर्ण = बुनना, आच्छादन करना, ढकना)। वरुणस्य (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित

करना)। नाभिम् (नभ - नष्ट होना, दुःख देना या मार डालना, हिंसा करना, मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना)। त्वचम् (त्वच - आच्छादित करना, लपेटना, ढांकना)। द्विपदाम् (द्वि = दो, संख्या, पद - स्थानान्तर करना, चलना, जाना)। चतुष्पदाम् (चतुः - चार, संख्या, पद - चलना, स्थानान्तर करना)। त्वष्टुः (त्वक्ष् = छीलना, रेतना, त्विष् = प्रकाशित होना, चमकना)। प्रजानाम् (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)। प्रथमम् (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना)। जनित्रम् (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। मा (अव्यय)। हिंसीः (हिंस् - हिंसा करना, मारना, बध करना, दुःख देना, सताना)। परमे (सर्वनाम)। व्योमन् (वि - विशेष, उ - शब्द करना, रक्षा करना, सुखाना, ऊ - शब्द करना, विश्वास करना)। उष्ट्रम् (उषस् = प्रभात होना, उष - हिंसा करना, जलना, जलाना, ताप देना)। आरण्यम् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अ - नहीं, रण् - शब्द करना, चलना, युद्ध करना)। अनु (उपसर्ग)। ते (सर्वनाम)। दिशामि (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। तेन (सर्वनाम)। चिन्वानः (चि - चुनना, एकत्र करना)। तन्वो (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। नि (अव्यय)। षीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। उष्ट्रम् (उषस् = प्रभात होना, उष - हिंसा करना, जलना, जलाना, ताप देना)। शुक् (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। ऋच्छतु (ऋच्छ् - जाना, जानना, प्राप्त करना, मिलाना)। यम् (सर्वनाम)। द्विष्मः (द्विष् = द्वेष करना)। तम् (सर्वनाम)।। 50 ।।

681. अजो हि अग्नेः अजनिष्ट शोकात्, सो अपश्यत् जनितारम् अग्रे।
तेन देवा देवताम् अग्रम् आयन्, तेन रोहम् आयन् उप मेध्यासः।
शरभम् आरण्यम् अनु ते दिशामि, तेन चिन्वानः तन्वो नि षीद।
शरभम् ते शुक् ऋच्छतु यम् द्विष्मः, तम् ते शुक् ऋच्छतु।। 51 ।।

मन्त्रार्थ - अजो = गतिमान, अजन्मा ने। हि = ही, निश्चय। अग्नेः = अग्नि की। शोकात् = पवित्रता से। अजनिष्ट = गतिमान, उत्पन्न किया। सो = उसने। अग्रे = पहले। जनितारम् = उत्पन्न करने वाले को। अपश्यत् = देखा।। तेन = उसके द्वारा। देवा = देवगणों ने। देवताम् = देवत्व को, दिव्यता को। अग्रम् = पहले। आयन् = प्राप्त किया।। तेन = उसके द्वारा। उप = समीप। मेध्यासः = मेधावियों ने। रोहम् = वृद्धि को। आयन् = प्राप्त किया।। ते = तुम्हारे लिए। शरभम् = सुनने वाला, सुनाने वाला, उपदेशक, मार्गदर्शक को। आरण्यम् = आरण्य, सम्यक् गमनीय, वचनीय। अनु = अनुकूल। दिशामि = दिशा देता हूँ।। तेन = उसके द्वारा। चिन्वानः = चुनने वाले, एकत्र करने वाले। तन्वो = विस्तार, वृद्धि करने वाले। नि = निश्चित, निरन्तर। षीद = बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों। शुक् = विद्वान्, शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी। ते = तुम्हारे लिए। शरभम् = सुनने वाला, सुनाने वाला, उपदेशक, मार्गदर्शक को। ऋच्छतु = जायें, पायें, पहुँचायें, मिलायें। यम् = जिसको। द्विष्मः = द्वेष करें। तम्= उसको। ते = तुम्हारे लिए। शुक् = विद्वान्, शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी। ऋच्छतु = जायें, पायें, पहुँचायें, मिलायें।। **51 ।।**

भावार्थ - अजन्मा परमात्मा ने ही अग्नि की पवित्रता से सम्पूर्ण जीव-निर्जीव, चराचर सृष्टि को उत्पन्न किया। यह सृष्टि उससे ही गतिमान है। जो उत्पन्न हुआ, उसने पहले उत्पन्न करने वाले परमात्मा को देखा। उसके द्वारा देवगणों ने देवत्व को, दिव्यता को प्राप्त किया। उसके द्वारा मेधावियों ने वृद्धि को प्राप्त किया। तुम्हारे लिए आरण्य, सम्यक् गमनीय, वचनीय शरभ को अनुदिशा देता हूँ। उसके द्वारा चुनने वाले, एकत्र करने वाले विस्तार, वृद्धि करने वाले निश्चित, निरन्तर संचरण करें, प्रतिष्ठित हों। शुक् अर्थात् शुद्ध, पवित्रकर्ता, विद्वान् तुम्हारे लिए शरभ को पायें, पहुँचायें, मिलायें। शरभ शब्द को शृ धातु से व्युत्पन्न है। इस प्रकार शरभ का अर्थ सुनना, जाना, जानना, पाना है। इसका अर्थ सुनने वाला, सुनाने वाला है। ऐसे शरभ अर्थात् हमें सुनने वाले तथा हमको सुनाने वाले, परासर्श उपदेश देने वाले को पाने का अनुदेश है, निर्देश है। हम जिसको द्वेष करें, जो हमारे लिए हमारे लिए हानिकारक है, द्वेषयोग्य है, उसको तुम्हारे लिए विद्वान्, शुद्ध, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी पायें, पहुँचायें, मिलायें।। 51।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अजो (अ = नहीं, अज- जाना, गति करना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना, जन - उत्पन्न करना)। हि (अव्यय)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अजनिष्ट (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अज- जाना, गति करना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना, जन - उत्पन्न करना)। शोकात् (शुक्-शुच् - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना, शुच् - दुःख मानना, शोक करना)। सो (सर्वनाम)। अपश्यत् (पश् = देखना)। जनितारम् (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। अग्रे (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। तेन (सर्वनाम)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। देवताम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अग्रम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। आयन् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय्-ई - जाना, आय - शब्द करना, शासन करना)। रोहम् (रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। आयन् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय्-ई - जाना, आय - शब्द करना, शासन करना)। उप (उपसर्ग)। मेध्यासः (मेधा - शीघ्र समझना, मेध् - समझना, जानना, सङ्गति करना, मेल करना, हिंसा करना)। शरभम् (शृ - सुनना, जाना, जानना, पाना)। आरण्यम् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अ - नहीं, रण् - शब्द करना, चलना, युद्ध करना)। अनु (उपसर्ग)। ते (सर्वनाम)। दिशामि (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। चिन्वानः (चि - चुनना, एकत्र करना)। तन्वो (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। नि (अव्यय)। षीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। शरभम् (शृ - सुनना, जाना, जानना, पाना)। शुक् (शुक्-शुच् - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। ऋच्छतु (ऋच्छ् - जाना, जानना, प्राप्त करना, मिलाना)। यम् (सर्वनाम)। द्विष्मः (द्विष् = द्वेष करना)। तम् (सर्वनाम)॥ 51॥

(157) सूक्त 12

682. त्वम् यविष्ठ दाशुषो, नॄन् पाहि शृणुधी गिरः। रक्षा तोकम् उत त्मना॥ 52॥

मन्त्रार्थ - **त्वम्** = तुम। **यविष्ठ** = यविष्ठ, अत्यन्त मिलाने-अलग करने वाले, अत्यन्त बन्धनकारी अर्थात् बाँध लेने वाले बन्धु। **दाशुषो** = दानी। **पाहि** = पालन करो, रक्षा करो। **नॄन्** = नरों को। **गिरः** = वाणियाँ, बोध। **शृणुधी** = सुनें । **तोकम्** = तोक, गति, वृद्धि, हिंसा, बल, दान, निवास को। **उत** = ही। **त्मना** = आत्मा द्वारा। **रक्षा** = रक्षा करो **॥ 52 ॥**

भावार्थ - तुम यविष्ठ अर्थात् अत्यन्त मिलाने-अलग करने वाले, अत्यन्त बन्धनकारी अर्थात् बाँध लेने वाले बन्धु तथा दानी हो। हमारा पालन करो, रक्षा करो। नरों की वाणियाँ, बोध, सुनें । तोक अर्थात् गति, वृद्धि, हिंसा, बल, दान, निवास को इच्छा द्वारा, आत्मा द्वारा रक्षा करो **॥ 52 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - **त्वम्** (सर्वनाम)। **यविष्ठ** (यु = मिलाना, अलग करना, बाँधना, यव = समाप्त करना, उपसंहार करना)। **दाशुषो** (दश् = देना)। **नॄन्** (नृ - ले जाना)। **पाहि** (पा - पालन, रक्षण करना)। **शृणुधी** (श्रु-शृण् = सुनना)। **गिरः** (गृ - सींचना, गीला करना, समझना, जानना, गृ - शब्द करना)। **रक्षा** (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। **तोकम्** (तु - गति, वृद्धि, हिंसा करना, तुज् - बल होना, दान करना, निवास करना, ग्रहण करना, चमकना)। **उत** (अव्यय)। **त्मना** (तम् - इच्छा करना, आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना, वैदिक भाषा में आ का लोप हो सकता है) **॥ 52 ॥**

683. अपाम् त्वा एमन् सादयामि, अपाम् त्वा ओद्मन् सादयामि,
अपाम् त्वा भस्मन् सादयामि, अपाम् त्वा ज्योतिषि सादयामि,
अपाम् त्वा अयने सादयामि, अर्णवे त्वा सदने सादयामि,
समुद्रे त्वा सदने सादयामि, सरिरे त्वा सदने सादयामि,
अपाम् त्वा क्षये सादयामि, अपाम् त्वा सधिषि सादयामि,

अपाम् त्वा सदने सादयामि, अपाम् त्वा सधस्थे सादयामि,
अपाम् त्वा योनौ सादयामि, अपाम् त्वा पुरीषे सादयामि,
अपाम् त्वा पाथसि सादयामि, गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि,
त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि, जागतेन त्वा छन्दसा सादयामि,
आनुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि, पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि॥53॥

मन्त्रार्थ - अपाम् = अपा को, पालकों का । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । एमन् = इसको, इसे । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ । अपाम् = अपा को, पालकों का । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । ओद्मन् = ओद्मन् । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ । अपाम् = अपा को, पालकों का । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । भस्मन् = भस्म, भोजन । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ । अपाम् = अपा को, पालकों का । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । ज्योतिषि = प्रकाश । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ । अपाम् = अपा को, पालकों का । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । अयने = गति, ज्ञान, प्राप्ति, उद्धार, प्रेरणा में । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ । अर्णवे = अर्णव में, गतिशील, विद्वान्, गति, ज्ञान युक्त, रतिहीन, प्राप्त होने वाले, अहिंसक में । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । सदने = सदन में, स्थान में । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ। समुद्रे = समुद्र। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । सदने = सदन में, स्थान में । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ । सरिरे = प्रवाहमान, नदी । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । सदने = सदन में, स्थान में । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ। अपाम् = अपा को, पालकों का । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । क्षये = निवास में, क्षय में। सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ। अपाम् = अपा को, पालकों का । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । सधिषि = सहस्थान, सहगामी, साथ में । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ । अपाम् = अपा को, पालकों का । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । सदने = सदन में, स्थान में । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ । अपाम् = अपा को, पालकों का । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । सधस्थे = सहस्थान, सहगामी, साथ में । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ । अपाम् = अपा को, पालकों का । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । योनौ = योनि में, मिलाने अलग करने में । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ । अपाम् = अपा को, पालकों का । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । पुरीषे = पुरीष में, अग्रगामी में, अग्रणी में । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ । अपाम् = अपा को, पालकों का। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । पाथसि = चलते हो, चलाते हो, मार्ग दिखाते हो । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ । गायत्रेण = गायत्र से, गान, स्तुति से । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । छन्दसा = छन्द द्वारा । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ । त्रैष्टुभेन = त्रैष्टुभ द्वारा । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । छन्दसा = छन्द द्वारा। सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ। जागतेन = जागत द्वारा । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । छन्दसा = छन्द द्वारा । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ । आनुष्टुभेन = अनुष्टुप् द्वारा । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । छन्दसा = छन्द द्वारा । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ । पाङ्क्तेन = पालन, रक्षा करने वाला । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । छन्दसा = छन्द द्वारा । सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ ॥53॥

भावार्थ - उपासना-साधना द्वारा परमात्मा की अनुभूति होने पर सर्वत्र, सर्वथा, सर्वभावेन स्थापित करता हूँ, प्रतिष्ठित करता हूँ, यही भाव व्यक्त होता है॥53॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अपाम् (अप - पालन करना)। त्वा (सर्वनाम)। एमन् (सर्वनाम)। ओद्मन् (उद् = उत्कृष्ट होना, उच्च होना, उदार होना, उन्द् - गीला करना, आद्र होना, कष्ट होना)। भस्मन् (भस - खाना, चमकना, दोष लगाना, निन्दा करना)। ज्योतिषि (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। अयने (अ - नहीं, यन् - उद्धार करना, प्रेरणा करना, अय् = जाना, जानना, पाना)। अर्णवे (अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, जाना, जानना, पाना, दुर्गति होना)। सदने (सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। समुद्रे (सम् = सम्यक्, भलीभांति, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना, द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। सरिरे

(सृ - जाना, सरकना, जानना, पाना, बहना, चलना, स - साथ, सहित, रस् - स्वाद लेना, प्रीति करना, शब्द करना)। क्षये (क्षि - जाना, चलना, जानना, पाना निवास करना, रहना, बसना, क्षय होना)। सधिषि (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। सधस्थे (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। योनौ (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। पुरीषे (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। पाथसि (पथ् - जाना, उड़ाना, फेंकना, त्यागना)। गायत्रेण (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। छन्दसा (छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। त्रैष्टुभेन (त्रै - संरक्षण करना, पोषण करना, बचाना, त्रि = तीन, संख्या, सर्वनाम, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना)। जागतेन (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। आनुष्टुभेन (अनु - पीछे, स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। पाङ्क्तेन (पा - रक्षा करना, पालन करना)।। 53 ।।

(158) सूक्त 13

684. अयम् पुरो भुवः तस्य प्राणो, भौव-आयनो वसन्तः प्राणायनो,
गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रम् गायत्रात्, उपांशुः उपांशोः त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरम्,
वसिष्ठ ऋषिः प्रजापति गृहीतया, त्वया प्राणम् गृह्णामि प्रजाभ्यः ।।54।।

मन्त्रार्थ - अयम् = यह । पुरो = पुरो, अग्रगामी, अग्रणी, दानी, प्रकाशक । भुवः = भुवः । तस्य = उसका । प्राणो = प्राण । भौव-आयनो = भौवायन, भुवन-युक्त । वसन्तः = वसन्त, वसते हुए, वास करते हुए, वास करने वाले । प्राणायनो = प्राणायन । गायत्री = गायत्री, गान, स्तुति । वासन्ती = वासयोग्य, वासमय, वास किया हुआ, वास्य । गायत्र्यै = गायत्री, गान, स्तुति द्वारा । गायत्रम् = गायत्र, गाने वाले, स्तुति करने वाले को । गायत्रात् = गायत्र से, गाने वाले, स्तुति करने वाले से । उपांशुः = समीप अंशु, निकट साथी, उपविभाग । उपांशोः = उपांशु का, निकट साथी का, उपविभाग का । त्रिवृत् = त्रिवृत । त्रिवृतो = त्रिवृत । रथन्तरम् = रथ । वसिष्ठ = वास करते हुए, धारण करता हुआ। ऋषिः = ऋषि । प्रजापति = प्रजापति, प्रजा का रक्षक, पालक । गृहीतया = ग्रहीत, ग्रहण किया हुआ, स्वीकार किया हुआ। त्वया = तुम्हारे द्वारा, तुमसे । प्राणम् = प्राण को । गृह्णामि = लेता हूँ, स्वीकार करता हूँ । प्रजाभ्यः = प्रजा के लिए।। 54 ।।

भावार्थ - यह परमात्मा ही सबसे पहले होने वाला है। सृष्टि में सबका उत्पन्न होने का समय है। सबका जीवन काल होता है। केवल परमात्मा सर्वकाल में सदा वर्तमान रहता है। उसका प्राण भौवायन वसन्त है। प्राणायन वासन्ती गायत्री है। गायत्री के लिए गायत्र, गायत्र से उपाशु, उपांशु से त्रिवृत्, त्रिवृत् से रथन्तर अर्थात् अधिक रमणीय हुआ। वसिष्ठ अर्थात् अत्यन्त वास वाले ऋषि, प्रजापति को ग्रहण करने से तुम्हारे द्वारा प्राण को प्रजाओं के लिए ग्रहण करता हूँ।। 54 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम)। पुरो (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। भुवः (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। तस्य (सर्वनाम)। प्राणो (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। भौव-आयनो (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। वसन्तः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। प्राणायनो (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। गायत्री (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। वासन्ती (वस् = रहना, निवास करना)। गायत्र्यै (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। गायत्रम् (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। गायत्रात् (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। उपांशुः (उप - समीप, अंश् = विभाग करना, साथ होना)। उपांशोः (उप - समीप, अंश् = विभाग करना, साथ होना)। त्रिवृत् (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना, वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना,

बोलना, हिंसा करना)। त्रिवृतो (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना, वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना)। रथन्तरम् (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। वसिष्ठ (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। ऋषिः (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। प्रजापति (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। गृहीतया (गृह- लेना, स्वीकार करना, निवास करना)। त्वया (सर्वनाम)। प्राणम् (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। गृह्णामि (गृह- लेना, स्वीकार करना, निवास करना)। प्रजाभ्यः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)।। 54 ।।

685. अयम् दक्षिणा विश्वकर्मा, तस्य मनो वैश्वकर्मणम्,
ग्रीष्मो मानसः त्रिष्टुप्, ग्रैष्मौ त्रिष्टुभः, स्वारम् स्वारात् अन्तर्यामो अन्तर्यामात्,
पञ्चदशः पञ्चदशात्, बृहत् भरद्वाज ऋषिः, प्रजापति गृहीतया, त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ।।55 ।।

मन्त्रार्थ - अयम् = यह । दक्षिणा = समृद्धि । विश्वकर्मा = विश्वकर्मा, सभी कर्म, सभी कर्म करने वाले द्वारा । तस्य = उसका । मनो = मन । वैश्वकर्मणम् = विश्वकर्मा का, सभी कर्म करने वाले का । ग्रीष्मो = ग्रीष्मकाल, ग्रसने वाला । मानसः = मानस, मन सम्बन्धी, मान का । त्रिष्टुप् = त्रिष्टुप् । ग्रैष्मौ = ग्रीष्म में, ग्रसने में । त्रिष्टुभः =त्रिष्टुभ । स्वारम् = स्वारम् । स्वारात् = स्वारम् । अन्तर्यामो = अन्तर्यामी । अन्तर्यामात् = अन्तर्याम से । पञ्चदशः = पन्द्रह । पञ्चदशात् = पन्द्रह सें । बृहत् = महान्, बड़ा, विराट, बृहत् । भरद्वाज = भरण करने वाले विद्वान् । ऋषिः = ऋषि । प्रजापति = प्रजापति, प्रजा का रक्षक, पालक । गृहीतया = ग्रहीत, ग्रहण किया हुआ, स्वीकार किया हुआ । त्वया = तुम्हारे द्वारा, तुमसे । मनो = मन । गृह्णामि = घरों में, गृहों में । प्रजाभ्यः = प्रजा के लिए **।। 55 ।।**

भावार्थ - वह परमात्मा ही विश्वकर्मा है। सभी कर्म वही करता है, वही कर सकता है। वह हमारे दाहिने प्रतिष्ठित हो। हमारी भावना है कि वह सदैव हमारा रक्षक हो **।। 55 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम)। दक्षिणा (दक्ष् - बढ़ना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना, दक्ष होना, चलना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, मार डालना)। विश्वकर्मा (विश्व - सभी, कृ - करना)। तस्य (सर्वनाम)। मनो (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। वैश्वकर्मणम् (विश्व - सभी, कृ - करना)। ग्रीष्मो (ग्रस - ग्रसना, घेरना, लेना, ग्रहण करना, खाना, भक्षण करना, ग्रीष् - तपना, ऊष्म होना)। मानसः (मन् - मनन करना, समझना, जानना, मान - पूजा करना, सम्मान करना, श्रेष्ठ होना, शोध करना)। त्रिष्टुप् (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना)। ग्रैष्मौ (ग्रस - ग्रसना, घेरना, लेना, ग्रहण करना, खाना, भक्षण करना, ग्रीष् - तपना, ऊष्म होना)। त्रिष्टुभः (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना)। स्वारम् (सु - अच्छा, रम् - रमना, रमण करना, रमणीय होना)। स्वारात् = स्वारम् (सु - अच्छा, रा - देना, मिल जाना)। अन्तर्यामो (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, यम - आवरण करना, अपने अधीन रखना, पोषण करना, नियमन करना, प्रतिबन्ध करना, रोकना, अवरोध करना, नाश करना, अन्त करना)। अन्तर्यामात् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, यम - आवरण करना, अपने अधीन रखना, पोषण करना, नियमन करना, प्रतिबन्ध करना, रोकना, अवरोध करना, नाश करना, अन्त करना)। पञ्चदशः (पञ्च = पाँच, दश - दस, संख्या)। पञ्चदशात् (पञ्च = पाँच, दश - दस, संख्या)। बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। भरद्वाज (भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना, वज् - जाना, चलना, गति करना, जानना, पाना, संस्कार करना, शस्त्र बनाना)। ऋषिः (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। प्रजापति (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। गृहीतया (गृह- लेना, स्वीकार करना, निवास करना)।

त्वया (सर्वनाम)। मनो (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। गृह्णामि (गृह् - लेना, स्वीकार करना, निवास करना)। प्रजाभ्यः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)॥ 55॥

686. अयम् पश्चात् विश्व-व्यचाः, तस्य चक्षुः वैश्व-व्यचसम्, वर्षाः चाक्षुष्यो जगती वार्षी,
जगत्या ऋक्सममम् ऋक्समात्, शुक्रः शुक्रात् सप्तदशः सप्तदशात्,
वैरूपम् जमत् अग्निः ऋषिः, प्रजापति गृहीतया, त्वया चक्षुः गृह्णामि प्रजाभ्यः॥56॥

मन्त्रार्थ - अयम् = यह । पश्चात् = पीछे या पश्चिम दिशा से। विश्व-व्यचाः = सर्वव्यापी । तस्य = उसका । चक्षुः = आँख । वैश्व-व्यचसम् = सर्वव्यापी । वर्षाः = बरसो, वर्षा करो । चाक्षुष्यो = आँख । जगती = जगती, संसार, गतिशील । वार्षी = पराक्रमी । जगत्या = जगती का, संसार, गतिशील का । ऋक्सममम् = ऋक् के समान । ऋक्समात् = ऋक् के समान । शुक्रः = शुक्र, विद्वान्, शुद्ध, पवित्र, पावन, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी । शुक्रात् = शुक्र से, विद्वान्, शुद्ध, पवित्र, पावन, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी से । सप्तदशः = सत्रह । सप्तदशात् = सत्रह से । वैरूपम् = विरूपों को । जमत् = जमत् । अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् । ऋषिः = ऋषि । प्रजापति = प्रजापति, प्रजा का रक्षक, पालक । गृहीतया = ग्रहीत, ग्रहण किया हुआ, स्वीकार किया हुआ । त्वया = तुम्हारे द्वारा, तुमसे । चक्षुः = आँख । गृह्णामि = घरों में, गृहों में । प्रजाभ्यः = प्रजा के लिए ।**॥ 56॥**

भावार्थ - वह सर्वव्यापी परमात्मा हमारे पीछे भी वर्तमान है। हम अपने पीछे नहीं देख सकते हैं, परन्तु वह सर्वव्यापी है और पीछे अथवा परोक्ष भी हमारी रक्षा करता है।**॥ 56॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम)। पश्चात् (अव्यय)। विश्व-व्यचाः (व्यच - व्यापना, जाना)। तस्य (सर्वनाम)। चक्षुः (चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)। वैश्व-व्यचसम् (विश्व - सभी, व्यच् - व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, ठगना, वि - विशेष, अच् - जाना, मरना, आदर करना, याचना करना)। वर्षाः (वर्ष् = बरसना, सींचना, अति पराक्रम करना, हिंसा करना, क्लेश देना, उत्पीड़न करना)। चाक्षुष्यो (चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)। वार्षी (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। जगत्या (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। ऋक्सममम् (ऋच - स्तुति करना, सम - एक समान रहना)। ऋक्समात् (ऋच - स्तुति करना, सम - एक समान रहना)। शुक्रः (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। शुक्रात् (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। सप्तदशः (सप्त = सात (संख्या), दश = दश, दस, संख्या)। सप्तदशात् (सप्त = सात (संख्या), दश = दश, दस, संख्या)। वैरूपम् (वि - विशेष, विविध, रूप - आकार बनाना, रचना करना)। जमत् (जम् = खाना, निगलना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। ऋषिः (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। प्रजापति (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। गृहीतया (गृह- लेना, स्वीकार करना, निवास करना)। त्वया (सर्वनाम)। चक्षुः (चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)। गृह्णामि (गृह् - लेना, स्वीकार करना, निवास करना)। प्रजाभ्यः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)॥ 56॥

687. इदम् उत्तरात् स्वः तस्य श्रोत्रम्, सौवम् शरत् श्रौत्री अनुष्टुप् शारदी,
अनुष्टुभ ऐडम् ऐडान् मन्थी मन्थिन, एकविंशः एकविंशाद्,
वैराजम् विश्वामित्र ऋषिः, प्रजापति-गृहीतया, त्वया श्रोत्रम् गृह्णामि प्रजाभ्यः॥57॥

मन्त्रार्थ - इदम् = यह, इसको । उत्तरात् = उत्तर से, उत्तर दिशा से । स्वः = उत्पन्न, ऐश्वर्य, सृष्टि या जगत्, स्वः। । तस्य = उसका । श्रोत्रम् = श्रोत्र । सौवम् = ऐश्वर्यवान्, सुख देने वाला । शरत् = शरत्, शरद् । श्रौत्री = श्रोत्र । अनुष्टुप् = अनुस्तुत । शारदी = शरद् । अनुष्टुभ = अनुस्तुति । ऐडम् = धारण, घर्षण, सहन करने वाले को । ऐडान् = धारण, घर्षण, सहन करने वाले से । मन्थी = मन्थन करने वाले । मन्थिन = मन्थन करने वाले । एकविंशः = इक्कीस । एकविंशाद् = इक्कीस से । वैराजम् = वैराज को । विश्वामित्र = विश्व का मित्र । ऋषिः = ऋषि । प्रजापति = प्रजापति,

प्रजा का रक्षक, पालक । गृहीतया = ग्रहीत, ग्रहण किया हुआ, स्वीकार किया हुआ ।त्वया = तुम्हारे द्वारा, तुमसे ।श्रोत्रम् = श्रोत्र, कर्ण, कान ।गृह्णामि = घरों में, गृहों में ।प्रजाभ्यः = प्रजा के लिए ॥ 57 ॥

भावार्थ - यह सर्वव्यापी सृष्टिकर्ता, ऐश्वर्यवान् परमात्मा उत्तर से अथवा ऊपर से भी हमें देखता है। वह सर्वत्र हमारा पालन-रक्षण करता है॥ 57 ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इदम् (सर्वनाम)। उत्तरात् (सर्वनाम)। स्वः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। तस्य (सर्वनाम)। श्रोत्रम् (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। सौवम् (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्‌भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। शरत् (शृ - सुनना, जाना, जानना, पाना, शृ - मार डालना, दुःख देना, पीड़ा करना, फटना, हिंसा करना, मारना, श्रि - सेवा करना, आश्रय करना)। श्रौत्री (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। अनुष्टुप् (अनु = पश्चात्, पीछे, स्तु - स्तुति करना)। शारदी (शृ - सुनना, जाना, जानना, पाना, शृ - मार डालना या दुःख देना, पीड़ा करना)। अनुष्टुभ (अनु = पश्चात्, पीछे, स्तु - स्तुति करना)। ऐडम् (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, एड - धारण करना, घर्षण करना, सहन करना)। ऐडान् (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, एड - धारण करना, घर्षण करना, सहन करना)। मन्थी (मन्थ - मन्थन करना, बिलोना, मथना, पीड़ा देना, हिंसा करना)। मन्थिन (मन्थ - मन्थन करना, बिलोना, मथना, पीड़ा देना, हिंसा करना)। एकविंशः (एक = एक संख्या, विंश - बीस)। एकविंशाद् (एक = एक संख्या, विंश - बीस)। वैराजम् (वि = विशेष, विना, विलोम, राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। विश्वामित्र (विश्व = सब, सर्वनाम, मिद् = स्नेह करना)। ऋषिः (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। प्रजापति (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। गृहीतया (गृह- लेना, स्वीकार करना, निवास करना)। त्वया (सर्वनाम)। श्रोत्रम् (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। गृह्णामि (गृह् - लेना, स्वीकार करना, निवास करना)। प्रजाभ्यः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)॥ 57 ॥

688. इयम् उपरि मतिः तस्यै वाक् मात्या, हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तिः हैमन्ती पङ्क्त्यै, निधनवत् निधनवत, आग्रयणः आग्रयणात्, त्रिणव-त्रयस्त्रिंशौ त्रिणव-त्रयस्त्रिंशाभ्याम्, शाक्वर रैवते विश्वकर्म ऋषिः, प्रजापति गृहीतया, त्वया वाचम् गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ 58 ॥

मन्त्रार्थ - इयम् = यह, इसको ।उपरि = ऊपर ।मतिः = मति, मननशक्ति ।तस्यै = उसके लिए ।वाक् = वाणी ।मात्या = मान योग्य ।हेमन्तो = हिम, गतिवान्, गति-वृद्धि, शीतल ।वाच्यः = वाणी ।पङ्क्तिः = पंक्ति, विस्तार ।हैमन्ती = हिम, गतिवान्, गति-वृद्धि, शीतल ।पङ्क्त्यै = पंक्ति के लिए, विस्तार के लिए ।निधनवत् = निधनवत ।निधनवत = निधनवत । आग्रयणः = अग्रणी, आग्नेय, अग्नि सम्बन्धी, अग्नि से उत्पन्न ।आग्रयणात् = आग्नेय, अग्नि सम्बन्धी, अग्नि से उत्पन्न, सम्यक् बोध, ज्ञान, वाणी वाले ।त्रिणव = त्रिणव । त्रयस्त्रिंशौ = तैंतीस । त्रिणव = त्रिणव । त्रयस्त्रिंशाभ्याम्,= तैंतीस के लिए ।शाक्वर = शक्तिदाता के लिए ।रैवते = प्रवाहित होता है ।विश्वकर्म = विश्वकर्म, सभी कर्म करने वाले ।ऋषिः = ऋषि ।प्रजापति = प्रजापति, प्रजा का रक्षक, पालक । गृहीतया = ग्रहीत, ग्रहण किया हुआ, स्वीकार किया हुआ ।त्वया = तुम्हारे द्वारा, तुमसे ।वाचम् = वाणी को ।गृह्णामि = घरों में, गृहों में ।प्रजाभ्यः = प्रजा के लिए ॥ **58 ॥**

भावार्थ - यह परमात्मा ऊपर हमारी मति के रूप में वर्तमान है। हमारी मति ही परमात्मा के मार्ग पर हमें चलाती है। जैसी मति होती है, वैसी ही हमारी गति-प्रगति होती है॥ **58 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इयम् (सर्वनाम)। उपरि (सर्वनाम, अव्यय)। मतिः (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। तस्यै (सर्वनाम)। वाक् (वच, वद - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। मात्या (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। हेमन्तो (हि - जाना, जानना, पाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना, हिम - शीत होना)। वाच्यः (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। पङ्क्तिः (पञ्च् = व्यक्त करना,

प्रसिद्ध करना, विस्तार करना)। हैमन्ती (हि - जाना, जानना, पाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना, हिम - शीत होना)। पङ्क्त्यै (पञ्च् = व्यक्त करना, प्रसिद्ध करना, विस्तार करना, फैलाना, पसारना)। निधनवत् (नि- निश्चित, नितराम्, निरन्तर,धन् - शब्द करना, गति करना, चलना, जाना, जानना, पाना, उत्पन्न करना, फलना, बौर लगना)। आग्रयणः (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। आग्रयणात् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना, गृ - सींचना, समझना, जानना, शब्द करना)। त्रिणव (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, नु-नव् - प्रशंसा करना, स्तुति करना, नूतन होना, नया होना)। त्रयस्त्रिंशौ (संख्या)। त्रयस्त्रिंशाभ्याम् (संख्या)। शाक्वर (शक्-शक्व - शक्तिमान् होना, समर्थ होना, सकना)। रैवते (रिव् = उड़ना, तैरना, बहना, रा - देना, रि - जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, री - गति करना, झरना-टपकना, लेना, शब्द करना, सुनना)। विश्वकर्म (विश्व - सभी, कृ - करना)। ऋषिः (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। प्रजापति (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। गृहीतया (गृह- लेना, स्वीकार करना, निवास करना)। त्वया (सर्वनाम)। वाचम् (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। गृह्णामि (गृह् - लेना, स्वीकार करना, निवास करना)। प्रजाभ्यः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)॥ 58॥

इति त्रयोदशो अध्यायः

ॐ

अथ चतुर्दशो अध्यायः

(159) सूक्त 1

689. ध्रुवक्षितिः ध्रुवयोनिः ध्रुवा असि, ध्रुवम् योनिम् आ सीद साधुया।
उख्यस्य केतुम् प्रथमम् जुषाणा, अश्विना अध्वर्यू सादयताम् इह त्वा ॥1॥

मन्त्रार्थ - ध्रुवक्षितिः = ध्रुव निवास वाला। ध्रुवयोनिः = ध्रुवक्षिति, बन्धन, मिलन ध्रुव निवास वाला। ध्रुवा = अविचल गतिशील्। असि = हो। ध्रुवम् = ध्रुव को, अचल, स्थिर, अविचल गतिशील को। योनिम् = योनि को। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। सीद = जाना, चलना, शक्तिहीन होना। साधुया = साध्यगण। उख्यस्य = गतियोग्य का, दाह योग्य का। केतुम् = ज्ञानी, निवास, परामर्श दाता को। प्रथमम् = प्रथम को। जुषाणा = विचारशील, सेवाभावी। अश्विना = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक। अध्वर्यू = अध्वर, अहिंसक। सादयताम् = स्थापित करो। इह = यहां। त्वा = तुमको **॥1॥**

भावार्थ - ध्रुव् धातु का अर्थ स्थिर रहना तथा गति करना दोनो है। अतः ध्रुव शब्द का अर्थ अविचल गतिशील है। इसका अर्थ है जीवन में गतिशीलता के साथ ही उद्देश्य, दिशा, सत्य के प्रति अविचल रहना **॥1॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ध्रुवक्षितिः (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना, क्षि - जाना, चलना, निवास करना, क्षि - जाना, चलना, निवास करना)। ध्रुवयोनिः (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना, यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। ध्रुवा (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। असि (अस् - होना)। ध्रुवम् (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। योनिम् (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। आ (उपसर्ग)। सीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। साधुया (साध् - पूर्ण करना, सिद्ध करना, जीतना, साधना करना, यशस्वी होना)। उख्यस्य (उख् - चलना, जाना, जलना)। केतुम् (केत - बुलाना, आमन्त्रित करना, परामर्श देना, सम्मुख वार्ता करना, कित् - जानना, निवास करना, रोग निवारण करना)। प्रथमम् (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना)। जुषाणा (जुष् = विचार करना, सेवा करना, सेवन करना, विवेक होना, विवेचना करना, प्रीति करना, चाहना, दुलारना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। अश्विना (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। अध्वर्यू (अ - नहीं, ध्वृ-ध्वर् = हिंसा करना, टेढ़ा करना, झुकाना, मार डालना, वर्णन करना)। सादयताम् (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। इह (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम)॥1॥

690. कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः, स्योने सीद सदने पृथिव्याः।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्तु, इमा ब्रह्म पीपिहि सौभगाय,
अश्विना अध्वर्यू सादयताम् इह त्वा ॥2॥

मन्त्रार्थ - कुलायिनी = कुलायिनी, कुलवती। घृतवती = घृतवती, घृतयुक्त, प्रकाशयुक्त। पुरन्धिः = अग्रगामी, अग्रणी को धारण करने वाली। पृथिव्याः = पृथिवी के। स्योने = सुखद। सदने = सदन में, स्थान में। सीद = संचरण करें, प्रतिष्ठित हों। रुद्रा = रुद्रगण, करुणामय। वसवो = स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले। त्वा = तुमको। अभि = अभिमुख, सर्वथा। गृणन्तु = व्वाणी दें, बोध करायें, सिञ्चन करें॥ ब्रह्म = ब्रह्म, महान्, बृहत्। इमा = यह, इसको। सौभगाय = सौभाग्य के लिए। पीपिहि = जाओ, प्राप्त करो, पीओ, पान करो॥ अश्विना = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक। अध्वर्यू = अध्वर, अहिंसक। इह = यहाँ। त्वा = तुमको। सादयताम् = स्थापित करें **॥2॥**

भावार्थ - कुलायिनी, कुलवती, घृतवती, घृतयुक्त, प्रकाशयुक्त, अग्रगामी, अग्रणी को धारण करने वाली नारी पृथिवी के सुखद सदन में, स्थान में संचरण करें, प्रतिष्ठित हों।। रुद्रगण, करुणामय, स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले विद्वान् तुमको अभिमुख होकर सर्वथा वाणी दें, बोध करायें, सिञ्चन करें।। ब्रह्म, महान्, बृहत् इसको सौभाग्य के लिए प्राप्त करें।। तीव्र गति युक्त, व्यापक, अध्वर, अहिंसक भावना वाले स्नेही स्वजन यहाँ तुमको स्थापित करें **॥ 2 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - कुलायिनी (कुल् = आवरण होना, एकत्र करना, बटोरना, अपने के समान वर्तना, सजातीयता से रहना, गिनना)। घृतवती (घृ -गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना)। पुरन्धिः (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, धि-धा = धारण करना)। स्योने (स्योन् = सुख होना, सुख देना)। सीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। सदने (सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। पृथिव्याः (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अभि (उपसर्ग)। त्वा (सर्वनाम)। रुद्रा (रुद् - रोना, रुलाना, करुण होना, रु - शब्द करना, जाना, चलना, जानना, पाना)। वसवो (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। गृणन्तु (गृ-गृण् = शब्द करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना, जानना, समझना, निगलना, बहिर्गमन करना, गृ - शब्द करना, गा-गै = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना)। इमा (सर्वनाम)। ब्रह्म (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। पीपिहि (पि - जाना, जानना, पाना। पी-पिब् - पीना, पान करना, प्राशन करना, संरक्षण करना)। सौभगाय (सु - अच्छा, सुन्दर, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, भग् -भज् - सेवा करना, सेवन करना, दान करना, अलग करना)। अश्विना (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। अध्वर्यू (अ - नहीं, ध्वृ-ध्वर् = हिंसा करना, टेढ़ा करना, झुकाना, मार डालना, वर्णन करना)। सादयताम् (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। इह (सर्वनाम) **॥ 2 ॥**

691. स्वैः दक्षैः दक्षपिता इह सीद, देवानाम् सुम्ने बृहते रणाय।
पिता इव एधि सूनवे आ सुशेवा, सु आवेशा तन्वा सम् विशस्व,
अश्विना अध्वर्यू सादयताम् इह त्वा ॥3 ॥

मन्त्रार्थ - स्वैः = अपने। दक्षैः = दक्षों के साथ। दक्षपिता = दक्षता का पालन करने वाला। देवानाम् = देवों का। सुम्ने = उत्तम चिन्तन, ऐश्वर्य, सृजन के लिए। बृहते = महान्, बृहत् के लिए। रणाय = वाणी के लिए। इह = यहाँ। सीद = बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों। सूनवे = सन्तान के लिए। पिता = पिता, पालन करने वाला। इव = के समान। एधि = जाता है, जानता है। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। सुशेवा = उत्तम सेवा भावना वाले। सु = अच्छा। आवेशा = प्रवेश करते हुए, प्रवेश करने वाले। तन्वा = विस्तार, वृद्धि। सम् = सम्यक्, भली भाँति। विशस्व = प्रवेश करो। अश्विना = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक। अध्वर्यू = अध्वर, अहिंसक। इह = यहां। त्वा = तुमको। सादयताम् = स्थापित करे **॥ 3 ॥**

भावार्थ - परमात्मा दक्षपिता है। वह दक्षता का पालक-रक्षक है। दक्षता के साथ उत्तम चिन्तन, ऐश्वर्य, सृजन, महान्, वेदवाणी को अपने जीवन में प्रतिष्ठित करना हैं। सन्तान के लिए पिता के समान जानता है। आसुशेवा अर्थात् उत्तम सेवा भावना वाले उत्तम प्रवेश करने वाले, विस्तार, वृद्धि वाले सम्यक्, भली भाँति प्रवेश करो। तीव्र गति

युक्त, व्यापक, अहिंसक भावना से यहां तुमको स्थापित करें **॥ 3 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - स्वैः (सर्वनाम)। दक्षैः (दक्ष् - बढ़ना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना, दक्ष होना, चलना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, मार डालना)। दक्षपिता (दक्ष् - बढ़ना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना, दक्ष होना, चलना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, मार डालना, पि - जाना, जानना, पाना, पा- पालन करना, रक्षा करना)। इह (सर्वनाम)। सीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। देवानाम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। सुम्ने (सु - अच्छा, सुन्दर, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, म्ना = अभ्यास करना, विचार करना, मनन करना)। बृहते (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। रणाय (रण - शब्द करना, आवाज करना, जाना)। पिता (पि - जाना, जानना, पाना, पा- पालन करना, रक्षा करना)। इव (अव्यय)। एधि (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, इ - जाना, एध - बढ़ना)। सूनव (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना)। आ (उपसर्ग)। सुशेवा (सु - अच्छा, सुन्दर, शेव् - सेचन, घर्षण, सेवा करना)। सु (उपसर्ग)। आवेशा (आ- समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, वि - विशेष, विश् = प्रवेश करना, फैलना)। तन्वा (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। सम् (उपसर्ग)। विशस्व (विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना)। अश्विना (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। अध्वर्यू (अ - नहीं, ध्वृ-ध्वर् = हिंसा करना, टेढ़ा करना, झुकाना, मार डालना, वर्णन करना)। सादयताम् (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। इह (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम) **॥ 3 ॥**

692. पृथिव्याः पुरीषम् असि, अप्सो नाम ताम् त्वा, विश्वे अभि गृणन्तु देवाः।
स्तोमपृष्ठा धृतवती इह सीद, प्रजावत् अस्मे द्रविणा यजस्व, अश्विना अध्वर्यू सादयताम् इह त्वा ॥4॥

मन्त्रार्थ - पृथिव्याः = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। पुरीषम् = पुरीष, अग्रगामी, अग्रणी। असि = हो। अप्सो = अप्स, पालनकर्ता। नाम = नाम वाले। ताम् = उस। त्वा = तुमको। विश्वे = सभी। देवाः = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण। अभि = अभिमुख, सर्वथा। गृणन्तु = वाणी, बोध, सिञ्चन करें। स्तोमपृष्ठा = स्तुतिपृष्ठ वाले। धृतवती = धारण किये हुए, धृतयुक्त, धैर्य-सम्पन्न। इह = यहां। सीद = प्रतिष्ठित हों। प्रजावत् = प्रजा के समान। अस्मे = हमारे लिए। द्रविणा = द्रवित होने वाले, प्रवाही, ज्ञानी। यजस्व = यजन करो। अश्विना = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक। अध्वर्यू = अध्वर, अहिंसक। इह = यहां। त्वा = तुमको। सादयताम् = स्थापित करे **॥ 4 ॥**

भावार्थ - परमात्मा पृथ्वी योग्य, पृथिवी के पुरीष, अग्रगामी, अग्रणी है। वह अप्स, पालनकर्ता नाम वाला है। सभी विद्वान्, तेजस्वी, देवगण अभिमुख होकर उसका बोध करायें, इस ज्ञान का समाज में अभिसिञ्चन करें, प्रचार-प्रसार करें। स्तुति करने वाले धैर्य-सम्पन्न उपासक यहाँ प्रतिष्ठित हों। हम उसके प्रजा हैं। हमारे लिए द्रवित होने वाले, ज्ञानी यजन करें, देवत्व विद्या का दान करें। तीव्र गति युक्त, व्यापक, अहिंसक भावना वाले होकर हम परमात्मा को जीवन में प्रतिष्ठित करें, अनुभव करें। वह यहा हमको स्थापित करे **॥ 4 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - पृथिव्याः (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। पुरीषम् (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। असि (अस् - होना)। अप्सो (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना)। नाम (अव्यय)। ताम् (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम)। विश्वे (सर्वनाम)। अभि (उपसर्ग)। गृणन्तु (गृ-गृण् = शब्द करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना, जानना, समझना, निगलना, बहिर्गमन करना, गृ - शब्द करना, गा-गै = स्तुति करना, गाना, गायन करना,

जाना, गमन करना, जानना)। देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। स्तोमपृष्ठा (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना, पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। धृतवती (धृ - रहना, स्थिर रहना, धारण करना, पास रखना, युक्त होना)। इह (सर्वनाम)। सीद (सीद - जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। प्रजावत् (प्र - बहुत, प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। अस्मे (सर्वनाम)। द्रविणा (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। यजस्व (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना, दान करना)। अश्विना (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। अध्वर्यू (अ - नहीं, ध्वृ-ध्वर् = हिंसा करना, टेढ़ा करना, झुकाना, मार डालना, वर्णन करना)। सादयताम् (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना) **॥ 4 ॥**

693. आदित्याः त्वा पृष्ठे सादयामि, अन्तरिक्षस्य धर्त्रीम् विष्टम्भनीम्, दिशाम् अधिपत्नीम् भुवनानाम्।
ऊर्मिः द्रप्सो अपाम् असि, विश्वकर्मा ते ऋषिः, अश्विना अध्वर्यू सादयताम् इह त्वा ॥ 5 ॥

मन्त्रार्थ - आदित्याः = अदिति से उत्पन्न, अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न। त्वा = तुमको। पृष्ठे = पृष्ठ पर। अन्तरिक्षस्य = अन्तरिक्ष या आकाश का। धर्तीम् = धारण करने वाली को, धारणकर्त्री को। विष्टम्भनीम् = स्थापित करने वाली, स्तम्भित करने वाली को। भुवनानाम् = भुवनों की। दिशाम् = दिशा को। अधिपत्नीम् = अधिपत्नी को। सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ॥ अपाम् = पालकों का। ऊर्मिः = ऊर्मि। द्रप्सो = हर्ष, आनन्द, गर्व। असि = हो॥ ते = तुम्हारे लिए। विश्वकर्मा = विश्वकर्मा, सभी कर्म करने वाला। ऋषिः = ऋषि। अश्विना = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक। अध्वर्यू = अहिंसक। इह = यहां। त्वा = तुमको। सादयताम् = स्थापित करे **॥ 5 ॥**

भावार्थ - अदिति अर्थात् अक्षय-अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न देवगण तुमको पृष्ठ पर अन्तरिक्ष या आकाश की धारण करने वाली, धारणकर्त्री, स्थापित करने वाली, स्तम्भित करने वाली, भुवनों की दिशा अधिपत्नी को स्थापित करता हूँ॥ पालकों का ऊर्मि हर्ष, आनन्द, गर्व हो॥ तुम्हारे लिए विश्वकर्मा, सभी कर्म करने वाला ऋषि अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक अहिंसक परमात्मा यहा तुमको स्थापित करे **॥ 5 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आदित्याः (अ - नहीं, दी = क्षय होना, नष्ट होना)। त्वा (सर्वनाम)। पृष्ठे (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। सादयामि (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। अन्तरिक्षस्य (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। धर्त्रीम् (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। **विष्टम्भनीम्** (वि - विशेष, स्तम्भ = स्तम्भित करना, स्थित करना, स्थापित करना)। दिशाम् (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। अधिपत्नीम् (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। भुवनानाम् (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। ऊर्मिः (ऊ - शब्द करना, विश्वास करना, उर् = जाना, चलना)। द्रप्सो (दृप् = हर्ष होना, गर्व होना)। अपाम् (अप - पालन करना)। असि (अस् - होना)। विश्वकर्मा (विश्व = सभी, कृ = करना)। ते (सर्वनाम)। ऋषिः (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। अश्विना (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना,

राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। अध्वर्यू (अ - नहीं, ध्वृ-ध्वर् = हिंसा करना, टेढ़ा करना, झुकाना, मार डालना, वर्णन करना)। सादयताम् (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। इह (सर्वनाम) **॥ 5 ॥**

(160) सूक्त 2

694. शुक्रः च शुचिः ग्रैष्मौ ऋतू, अग्नेः अन्तःश्लेषो असि, कल्पेताम् द्यावापृथिवी, कल्पन्ताम् आपः ओषधयः, कल्पन्ताम् अग्नयः पृथक्, मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसो अन्तरा, द्यावापृथिवी इमे ग्रैष्मी ऋतू, अभिकल्पमाना इन्द्रम् इव, देवाः अभिसंविशन्तु, तया देवतया अङ्गिरस्वत् ध्रुवे सीदतम् ॥ 6 ॥

मन्त्रार्थ - शुक्रः = शुक्र, विद्वान्, शुद्ध, पवित्र, पावन, पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी। च = और। शुचिः = शुद्धता। ग्रैष्मौ = ग्रीष्म में, ग्रसने में। ऋतू = ऋतु। अग्नेः = अग्नि का। अन्तः = बीच में, भीतर। श्लेषो =श्लेष। असि = हो।। द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी। कल्पेताम् = कल्पना करें, बनायें, रचना करें।। मम = मेरा। ज्यैष्ठ्याय = ज्येष्ठ के लिए। सव्रताः = व्रत वाला। आप = आप, व्याप्त, व्यापक। ओषधयः = ओषधियाँ। कल्पन्ताम् = कल्पना करें, बनायें, रचना करें।। अग्नयः = अग्निगण, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान, अग्नियाँ। पृथक् = अलग। कल्पन्ताम् = कल्पना करें, बनायें, रचना करें।। ये = जो। अग्नयः = अग्निगण, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान, अग्नियाँ। समनसो = समान मन वाले। अन्तरा = अन्तर, भीतर। द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी। इमे = ये। ग्रैष्मी = ग्रीष्म, ग्रसने वाला। ऋतू = ऋतु। अभिकल्पमाना = अभिकल्प करते हुए। इन्द्रम् = इन्द्र को। इव = के समान। देवाः = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण। अभिसंविशन्तु = सर्वथा सन्मुखता से सम्यक् प्रवेश करें। तया = उसके द्वारा। देवतया = देवत्व द्वारा, दिव्यता द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। ध्रुवे = अचल, स्थिर, अविचल गतिशील। सीदतम् = संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **॥ 6 ॥**

भावार्थ - शुद्ध, पवित्र देव शक्तियाँ रचनाशील हों, ऋतु के अनुकूल सृजनशीलता अपनायें। दिव्य शक्तियाँ हमारे जीवन में प्रविष्ट रहें। इस देवत्व द्वारा हमें भी प्रतिष्ठा प्राप्त हो।**॥ 6 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - शुक्रः (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। च (अव्यय)। शुचिः (शुच्-शुक्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)। ग्रैष्मौ (ग्रस - ग्रसना, घेरना, लेना, ग्रहण करना, खाना, भक्षण करना, ग्रीष् - तपना, ऊष्म होना)। ऋतू (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। श्लेषो (श्लिष = आलिङ्गन करना, गले लगाना, सटे रहना, चिपके रहना, एका करना, मिलाप करना, श्लिष = दग्ध करना, जलाना)। असि (अस् - होना)। कल्पेताम् (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। आप (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। ओषधयः (उषध्-ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा)। कल्पन्ताम् (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। अग्नयः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पृथक् (अव्यय)। मम (सर्वनाम)। ज्यैष्ठ्याय (ज्या - वृद्ध होना, बड़ा होना, बर्द्धित होना, जि - जीतना, जेष् - जाना, चलना, जानना, पाना, जिष् - सेवा करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना)। सव्रताः (स - साथ, सहित (उपसर्ग), वृत् = रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ = नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)। ये (सर्वनाम)। अग्नयः (अग् - जाना,

जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। समनसो (स - सहित, साथ, सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। अन्तरा (अन् = प्राणवान् होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, अन्तः - बीच में)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। इमे = यह, इस, ये (सर्वनाम)। ग्रैष्मी (ग्रस - ग्रसना, घेरना, लेना, ग्रहण करना, खाना, भक्षण करना, ग्रीष् - तपना, ऊष्म होना)। ऋतू (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। अभिकल्पमाना (अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, कल्प = कल्पना करना, विचार करना, रचना करना)। इन्द्रम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। इव (अव्यय)। देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अभिसंविशन्तु (अभि - अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, सम् - सम्यक्, वि - विशेष, विश् - प्रवेश करना, अन्तर्गमन करना, सूचना करना, प्रेरणा करना)। तया (सर्वनाम)। देवतया (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। ध्रुवे (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। सीदतम् (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना) **॥ 6 ॥**

695. सजूः ऋतुभिः सजूः विधाभिः, सजूः देवैः सजूः देवैः वयोनाधैः,
अग्नये त्वा वैश्वानराय, अश्विना अध्वर्यू सादयताम् इह त्वा।
सजूः ऋतुभिः सजूः विधाभिः, सजूः वसुभिः सजूः देवैः वयोनाधैः,
अग्नये त्वा वैश्वानराय, अश्विना अध्वर्यू सादयताम् इह त्वा।
सजूः ऋतुभिः सजूः विधाभिः, सजूः रुद्रैः सजूः देवैः वयोनाधैः,
अग्नये त्वा वैश्वानराय, अश्विना अध्वर्यू सादयताम् इह त्वा।
सजूः ऋतुभिः सजूः विधाभिः, सजूः आदित्यैः सजूः देवैः वयोनाधैः,
अग्नये त्वा वैश्वानराय, अश्विना अध्वर्यू सादयताम् इह त्वा।
सजूः ऋतुभिः सजूः विधाभिः, सजूः विश्वैः देवैः सजूः देवैः वयोनाधैः,
अग्नये त्वा वैश्वनराय, अश्विना अध्वर्यू सादयताम् इह त्वा॥7॥

मन्त्रार्थ - सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। ऋतुभिः = ऋतुओं द्वारा। सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। विधाभिः = विधान द्वारा। सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। देवैः = देवों द्वारा। सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। देवैः = देवों द्वारा। वयोनाधैः = वयोनाध द्वारा। अग्नये = अग्नि के लिए। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। वैश्वानराय = विश्वनायक के लिए। अश्विना = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक। अध्वर्यू = अध्वर, अहिंसक। इह = यहां। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। सादयताम् = स्थापित करे॥

सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। ऋतुभिः = ऋतुओं द्वारा। सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। विधाभिः = विधान द्वारा। सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। वसुभिः = वसुओं द्वारा। सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। देवैः = देवों द्वारा। वयोनाधैः = वयोनाध द्वारा। अग्नये = अग्नि के लिए। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। वैश्वानराय = विश्वनायक के लिए। अश्विना = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक। अध्वर्यू = अध्वर, अहिंसक। इह = यहां। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। सादयताम् = स्थापित करे॥

सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। ऋतुभिः = ऋतुओं द्वारा। सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। विधाभिः = विधान द्वारा। सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। रुद्रैः = रुद्रों द्वारा। सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। देवैः = देवों द्वारा। वयोनाधैः = वयोनाध द्वारा। अग्नये = अग्नि के लिए। त्वा

= तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। वैश्वानराय = विश्वनायक के लिए। अश्विना = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक। अध्वर्यू = अध्वर, अहिंसक। इह = यहां। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। सादयताम् = स्थापित करें।।

सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। ऋतुभिः = ऋतुओं द्वारा। सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। विधाभिः = विधान द्वारा। सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। आदित्यैः = आदित्यगण द्वारा, अदिति-अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न द्वारा। सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। देवैः = देवों द्वारा। वयोनाधैः = वयोनाध द्वारा। अग्नये = अग्नि के लिए। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। वैश्वानराय = विश्वनायक के लिए। अश्विना = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक। अध्वर्यू = अध्वर, अहिंसक। इह = यहां। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। सादयताम् = स्थापित करें।।

सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। ऋतुभिः = ऋतुओं द्वारा। सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। विधाभिः = विधान द्वारा। सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। विश्वैः = विश्व द्वारा, सभी द्वारा। देवैः = देवों द्वारा। सजूः = विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला। देवैः = देवों द्वारा। वयोनाधैः = वयोनाध द्वारा। अग्नये = अग्नि के लिए। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। वैश्वानराय = विश्वनायक के लिए। अश्विना = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक। अध्वर्यू = अध्वर, अहिंसक। इह = यहां। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। सादयताम् = स्थापित करें।। 7 ।।

भावार्थ - सभी देवों द्वारा विचारशील, सेवाभावी, गले लगाने वाला ऋतुओं द्वारा विधान अग्नि के लिए तुमको, वैश्वानर अर्थात् विश्वनायक के लिए अश्विन अर्थात् तीव्र गति युक्त, व्यापक अहिंसक देवगण तुम्हें स्थापित करें।।। 7 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सजूः (स - साथ, सहित, संज्-सज् = गले लगाना, सम्बन्धी होना, स + जूः, जुष् = प्रसन्न करना, सन्तुष्ट करना, चाहना, दुलार करना, प्रीति करना, विचार करना, विवेक-विवेचना करना, हिंसा करना, सेवा करना)। ऋतुभिः (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। विधाभिः (वि - विशेष, धा - धारण करना)। देवैः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। वयोनाधैः (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना, नाध = शासन करना, याचना करना, मांगना, रोगी होना, बीमार होना, श्रीमान् होना, आशीर्वाद देना, स्वस्तिवाचन करना)। अग्नये (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। त्वा (सर्वनाम)। वैश्वानराय (विश्व - सब, नृ - चलना, ले जाना, विनय होना)। अश्विना (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। अध्वर्यू (अ - नहीं, ध्वृ-ध्वर् = हिंसा करना, टेढ़ा करना, झुकाना, मार डालना, वर्णन करना)। सादयताम् (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। इह (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम)। वसुभिः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। रुद्रैः (रुद् - रोना, रोते रोते कहना)। आदित्यैः (अ - नहीं, दी = क्षय होना, नष्ट होना, अद् = खाना)। विश्वैः (सर्वनाम)।। 7 ।।

(161) सूक्त 3

696. प्राणम् मे पाहि, अपानम् मे पाहि, व्यानम् मे पाहि, चक्षुः मे उर्व्या वि भाहि, श्रोत्रम् मे श्लोकय। अपः पिन्व ओषधीः जिन्व, द्विपात् अव चतुष्पात पाहि, दिवो वृष्टिम् आ ईरय।। 8 ।।

मन्त्रार्थ - प्राणम् = प्राण को। मे = मेरा, मेरे लिए। पाहि = पालन करो, रक्षा करो। अपानम् = अपान को। मे = मेरा, मेरे लिए। पाहि = पालन करो, रक्षा करो। व्यानम् = व्यान को। मे = मेरा, मेरे लिए। पाहि = पालन करो, रक्षा करो। चक्षुः = आँख। मे = मेरा, मेरे लिए। उर्व्या = विस्तृत, गतिशील, समर्थ, बहु-दुःखदायी। वि = विशेष, विना, विलोम। भाहि = प्रकाश करो, प्रकाशित हो। श्रोत्रम् = श्रोत्र, कर्ण, कान। मे = मेरा, मेरे लिए। श्लोकय = श्लोक करो। अपः = पालक, रक्षक्। पिन्व = चलो, जानो, शब्द करो, सेवा करो, गति, ज्ञान, प्राप्ति करो। ओषधीः = ओषधी। जिन्व = प्रसन्न करो। द्विपात् = द्विपद वाला। अव = नीचे, दूर, प्राप्त, रक्षा करो, पालन करो। चतुष्पात = चार पैर वाले। पाहि = पालन करो, रक्षा करो। दिवो = दिव, स्तुतिकर्ता, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। वृष्टिम् = उच्च पराक्रम को, वर्षा को, पराक्रमी को। आ = समन्तात्, सम्यक्,

सम्पूर्ण। ईरय = कम्पित करो ॥ 8 ॥

भावार्थ - प्राण, अपान, व्यान, नेत्र, श्रोत्र आदि अंग-प्रत्यंग तथा उनके कार्य सुचारु रूप से चलते रहें, परमात्मा हमारा सर्वथा संरक्षण-पालन करे।॥ 8 ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - प्राणम् (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। मे (सर्वनाम)। पाहि (पा - पालन, रक्षण करना)। अपानम् (अ - नहीं, पा-पान - पीना, पान करना, अप - पालन करना, अन - जीना, समर्थ होना, जाना)। व्यानम् (वि - विशेष, अन् = प्राण होना, जीवन होना)। चक्षुः (चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)। उर्व्या (उर् = विस्तार करना, जाना, चलना, निरन्तर चलना, उर्व - सहना, समर्थ होना, मार डालना या दुःख देना, पीड़ा करना)। वि (उपसर्ग)। भाहि (भास् - प्रकाशित होना, चमकना)। श्रोत्रम् (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। श्लोकय (श्लोक = साथ जाना, श्लोक बनाना, कविता करना, रचना करना)। अपः (अप् - पालन करना)। पिन्व (पि = गति करना, जाना, जानना, पाना, पिन्व = सेवा करना, सेचन करना, प्रोक्षण करना, पिण् - शब्द करना)। ओषधीः (उषध् - चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। जिन्व (जिन्व् = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, आनन्द होना, मुक्त करना, प्रकाशित होना, बोलना)। द्विपात् (द्वि = दो, संख्या, पद - स्थानान्तर करना, चलना, जाना)। अव (अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। चतुष्पात (चतुः - चार, संख्या, पद - चलना, स्थानान्तर करना)। पाहि (पा - पालन, रक्षण करना)। दिवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। वृष्टिम् (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। आ (उपसर्ग)। ईरय (ईर् - कम्पन करना, जाना, जानना, पाना, फेकना, प्रेरणा करना)॥ 8 ॥

697. मूर्धा वयः प्रजापतिः छन्दः, क्षत्रम् वयो मयन्दम् छन्दो, विष्टम्भो वयो अधिपतिः छन्दो, विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो, बस्तो वयो विबलम् छन्दो, वृष्णिः वयो विशालम् छन्दः, पुरुषो वयः तन्द्रम् छन्दो, व्याघ्रो वयो ना ध्रष्टम् छन्दः, सिंहो वयः छदिः छन्दः, पृष्ठवाट् वयो बृहती छन्दः, उक्षा वयः ककुप् छन्दः, ऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः ॥ 9 ॥

मन्त्रार्थ - मूर्धा = उच्च। वयः = वय, रचना। प्रजापतिः = प्रजापति, प्रजा का रक्षक, पालक। छन्दः = छन्द। क्षत्रम् = क्षत्र को। वयो = वय, रचना। मयन्दम् = गति, ज्ञान। छन्दो = छन्द। विष्टम्भो = विस्तृत। वयो = वय, रचना। अधिपतिः = अधिपति। छन्दो = छन्द। विश्वकर्मा = विश्वकर्मा, सभी कर्म, सभी कर्म करने वाले द्वारा। वयः = वय, रचना। परमेष्ठी = परम गतिशील। छन्दो = छन्द। बस्तो = बस्त। वयो = वय, रचना। विबलम् = विशेष बल। छन्दो = छन्द। वृष्णिः = पराक्रमी। वयो = वय, रचना। विशालम् = विशाल को। छन्दः = छन्द। पुरुषो = पुरुष, परिपूर्ण, अग्रगामी, अग्रणी। वयः = वय, रचना। तन्द्रम् = तन्द्र को। छन्दो = छन्द। व्याघ्रो = व्यान, पापी, अपराधी। वयो = वय, रचना। ना = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। ध्रष्टम् = ध्रष्ट को। छन्दः = छन्द। सिंहो = सिंह। वयः = वय, रचना। छदिः = आच्छादन, आवरण, बल । छन्दः = छन्द। पृष्ठवाट् = पृष्ठ, संगठन, प्रवचन। वयो = वय, रचना। बृहती = महान्, बड़ा, विराट, बृहत्। छन्दः = छन्द। उक्षा = प्रोक्षण, स्वच्छ, दृढ़, सिञ्चन किया, करने वाला। वयः = वय, रचना। ककुप् = गर्वित, चञ्चल, प्यासा। छन्दः = छन्द। ऋषभो = ऋषि। वयः = वय, रचना। सतोबृहती = सत्य, महान्, बड़ा, विराट, बृहत्। छन्दः = छन्द ॥ 9 ॥

भावार्थ - विविध छन्दों में आवद्ध वेद का ज्ञान सभी प्राणियों के लिए उपयोगी है ॥ 9 ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मूर्धा (मुर् - घेरना, लपेटना, मूर्द्ध- उच्च होना)। वयः (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना)। प्रजापतिः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। छन्दः (छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। क्षत्रम् (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना, रक्षा करना)। मयन्दम् (मय् - जाना, जानना, पाना)। विष्टम्भो (विष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना, व्यापना, फैलना, प्रसृत होना)। अधिपतिः (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। विश्वकर्मा (विश्व - सभी, कृ - करना)। परमेष्ठी (परम् = परन्तु, फिर, परम् (अव्यय), इष् - इच्छा करना, चाहना,

बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। बस्तो (बस्त = जाना, मांगना, मार डालना या दुःख देनो)। विबलम् (वि = विशेष, बल् - बल होना, जाना, स्पष्ट करना, प्राण होना, चेतन होना, जीना, जीते रहना, रक्षा करना, धान्य सञ्चय करना, द्रव्य को रोकना)। वृष्णिः (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। विशालम् (विश - भीतर जाना, चारों ओर फैलना, विश - घुसना, भीतर जाना, धंसना)। पुरुषो (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना)। तन्द्रम् (तन्त्र = फैलाना, कुटुम्ब पोषण करना, प्रधान होना)। व्याघ्रो (वि - विशेष, अन् = प्राण होना, जीवन होना, अघ् = पाप, अपराध करना)। ना (सर्वनाम)। ध्रष्टम् (धृष = जीतना, पराभव करना, अमीर होना, घबरा जाना, गर्व करना, अपने को बड़ा समझना, धारण करना, कर्षण करना)। सिंहो (सिंह् = हिंसा करना, गति करना)। छदिः (छद् - आच्छादित करना, ढकना, हटाना, छिपाना, बचाना, बलवान् होना या करना)। पृष्ठवाट् (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना, वट् = घेरना, एकत्र करना, परिभाषण करना, ग्रन्थ बनाना, गूंथना, वात - सुखी होना, आनन्द करना, सेवा करना, जाना)। बृहती (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। उक्षा (उक्ष् - प्रोक्षण करना, सिञ्चन करना, स्वच्छ करना, दृढ़ करना, दृढ़ होना)। ककुप् (कक् = गर्व करना, चञ्चल होना, प्यासा होना)। ऋषभो (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना, भा - प्रकाश होना)। सतोबृहती (सत् = सत्य होना, अस्तित्व होना, बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)॥ 9॥

698. अनड्वान् वयः पङ्क्तिः छन्दो, धेनुः वयो जगती छन्दः, त्र्यविः वयः त्रिष्टुप् छन्दो, दित्यवाड् वयो विराट् छन्दः, पञ्चाविः वयो गायत्री छन्दः, त्रिवत्सो वयः उष्णिक् छन्दः, तुर्य्यवाड् वयो अनुष्टुप् छन्दः॥10॥

मन्त्रार्थ - अनड्वान् = अपतनशील, पतित न होने वाला। वयः = वय, रचना। पङ्क्तिः = पंक्ति, विस्तार। छन्दो = छन्द। धेनुः = धेनु, प्रिय, पालन करने वाले। वयो = वय, रचना। जगती = जगती, संसार, गतिशील। छन्दः = छन्द। त्र्यविः = तीन। वयः = वय, रचना। त्रिष्टुप् = त्रिष्टुप्। छन्दो = छन्द। दित्यवाड् = विनाशयोग्य। वयो = वय, रचना। विराट् = विराट, प्रकाशित। छन्दः = छन्द। पञ्चाविः = पंचावि, विस्तार, पाँच के समवाय को, पाँच के समूह को। वयो = वय, रचना। गायत्री = गायत्री, गान, स्तुति। छन्दः = छन्द। त्रिवत्सो = त्रिवत्स। वयः = वय, रचना। उष्णिक् = उषा करने वाला, प्रभात करने वाला, उष्ण करने वाला, तप्त करने वाला। छन्दः = छन्द। तुर्य्यवाड् = शीघ्रकारी, शीघ्रगामी। वयो = वय, रचना। अनुष्टुप् = अनुस्तुत। छन्दः = छन्द॥ 10॥

भावार्थ - विविध छन्दों में आवद्ध वेद का ज्ञान सभी प्राणियों के लिए उपयोगी है॥ 10॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अनड्वान् (अ - नहीं, नड् - गिरना, पतन होना, अन् - नहीं, अड् - व्याप्त होना, उद्यम करना, प्रयत्न करना, अधिकार में लाना, वह् - वहन करना, ले जाना)। वयः (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना)। पङ्क्तिः (पञ्च् = व्यक्त करना, प्रसिद्ध करना, विस्तार करना)। छन्दो (छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। धेनुः (धिन - प्रेम करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, धी - बुद्धि होना, धे - पालना, पीना)। जगती (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। त्र्यविः (त्रि - तीन, संख्या)। त्रिष्टुप् (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना)। दित्यवाड् (दी = क्षय होना, ह्रास होना, नष्ट होना, झरना)। विराट् (वि = विशेष, विना, विलोम, राज् = प्रकाशित होना, शोभित होना, चमकना, रट् - शब्द करना, बोलना, सम्भाषण करना)। पञ्चाविः (पञ्च् = व्यक्त करना, प्रसिद्ध करना, विस्तार करना, फैलाना, पसारना, पञ्च - पाँच, संख्या)। गायत्री (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। त्रिवत्सो (त्रि = तीन (संख्या), वस्त - प्रेरणा करना, प्रातः होना, प्रभात होना, वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। उष्णिक्

(उषस् = प्रभात होना, उष - हिंसा करना, जलना, जलाना, ताप देना)। तुर्य्यवाड् (तुर्-तुरण् = शीघ्रता करना)। अनुष्टुप् (अनु = पश्चात्, पीछे, स्तु - स्तुति करना)॥ 10 ॥

699. इन्द्राग्नी अव्यथामानाम्, इष्टकाम् दृंहतम् युवम्। पृष्ठेन द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षम् च वि बाधसे॥ 11 ॥

मन्त्रार्थ - इन्द्राग्नी = हे इन्द्र और अग्नि। युवम् = तुम दोनो। अव्यथामानाम् = निर्भय, अव्यथित, दुःख-हीन को। इष्टकाम् = विद्या, ज्ञान, इच्छा वाले को। दृंहतम् = दृढ़ करो, बढ़ाओ। च = और। द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी। अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष या आकाश को। पृष्ठेन = पृष्ठ द्वारा। विबाधसे = विबाधित करते हो, विशेष बाधित करते हो, बाधामुक्त करते हो॥ **11** ॥

भावार्थ - हे इन्द्र और अग्नि, तुम दोनो निर्भय, अव्यथित विद्या, ज्ञान, इच्छा वाले को दृढ़ करो, बढ़ाओ॥ और हे द्यावापृथिवी अर्थात् अग्रगामी विस्तार, प्रकाश अथवा द्यावा और पृथिवी, तुम अन्तरिक्ष या आकाश को पृष्ठ द्वारा विबाधित करते हो, विशेष बाधित करते हो, बाधामुक्त करते हो। विबाधित पद का अर्थ विशेष बाधित तथा बाधामुक्त दोनो हो सकता है। वि उपसर्ग विशेष तथा विलोम, विपरीत अर्थ में भी प्रयोग होता है। द्यावापृथिवी का भाव है द्यु और पृथ्वी अर्थात् अन्तरिक्ष में विस्तृत प्रकाशमान दिखने वाले तारे, ग्रह, उपग्रह आदि तथा हमारी यह पृथिवी जिस पर हम निवास करते हैं॥ **11** ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इन्द्राग्नी (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना, पीना)। अव्यथामानाम् (अ = नहीं, व्यथ् = डरना, दुःखी होना)। इष्टकाम् (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। दृंहतम् (दृंह् = बढ़ना, दृढ़ होना, दृढ़ करना)। युवम् (सर्वनाम)। पृष्ठेन (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। च (अव्यय)। वि (उपसर्ग)। बाधसे (बाध - रोकना, अटकाव करना, बाधा देना, दुःख देना)॥ **11** ॥

700. विश्वकर्मा त्वा सादयतु, अन्तरिक्षस्य पृष्ठे, व्यचस्वतीम् प्रथस्वतीम्।
अन्तरिक्षम् यच्छ, अन्तरिक्षम् दृंह अन्तरिक्षम् मा हिंसीः॥
विश्वस्मै प्राणाय अपानाय व्यानाय, उदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय॥
वायुः त्वा अभि पातु महया स्वस्त्या, छर्दिषा शन्तमेन तया देवतया अङ्गिरस्वत् ध्रुवा सीद॥ 12 ॥

मन्त्रार्थ - विश्वकर्मा = विश्वकर्मा, सभी कर्म करने वाले। त्वा = तुम। व्यचस्वतीम् = व्यापकतायुक्त। प्रथस्वतीम् = प्रथस्वती को, विस्तार युक्त को। अन्तरिक्षस्य = अन्तरिक्ष या आकाश का। पृष्ठे = पृष्ठ पर। सादयतु = स्थापित करे॥ विश्वस्मै = विश्व, सभी के लिए। प्राणाय = प्राण के लिए। अपानाय = अपान के लिए। व्यानाय = व्यान के लिए। उदानाय = उदान के लिए। प्रतिष्ठायै = प्रतिष्ठा के लिए। चरित्राय = चरित्र के लिए। अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष या आकाश को। यच्छ = दो, प्रदान करो। अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष या आकाश को। दृंह = दृढ़ करो, बढ़ाओ। अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष या आकाश को। मा = नहीं, मत। हिंसीः = हिंसित करो॥ वायुः = गतिशील, रचनात्मक शक्ति, वायु। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। अभि = सर्वथा। पातु = पालन करे, रक्षा करे॥ महया = पूज्य, महान्। स्वस्त्या = कल्याण, सुख। छर्दिषा = सम्यक् दीपन, कथन, उद्गार द्वारा। शन्तमेन = अत्यन्त कल्याणकारी, शान्तिमय, शमनकारी द्वारा। तया = उसके द्वारा। देवतया = देवत्व द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, प्रगतिशील के समान। ध्रुवा = ध्रुव, अविचल गतिशील, अविचल विद्वान्। सीद = संचरण करें, प्रतिष्ठित हों॥ **12** ॥

भावार्थ - प्राण, अपान, व्यान, नेत्र, श्रोत्र आदि अंग-प्रत्यंग तथा उनके कार्य सुचारु रूप से चलते रहें, परमात्मा हमारा सर्वथा संरक्षण-पालन करे। विश्वकर्मा अर्थात् सभी कर्म करने वाले परमात्मा तुमको स्थापित करे। सभी के लिए। प्राण के लिए, अपान के लिए, व्यान के लिए, उदान के लिए, प्रतिष्ठा के लिए, चरित्र के लिए, अन्तरिक्ष या आकाश को

संरक्षण प्रदान करो। अन्तरिक्ष या आकाश को दृढ़ करो, बढ़ाओ। अन्तरिक्ष या आकाश को नहीं, मत हिंसित करो।। गतिशील, रचनात्मक शक्ति, वायु तुमको सर्वथा पालन करे, रक्षा करे।। महत्या अर्थात् पूज्य, महान् कल्याण, सुख, सम्यक् दीपन, कथन, द्वारा, अत्यन्त कल्याणकारी, शान्ति, शमन द्वारा तथा उस देवत्व द्वारा अंगिरा अर्थात् विद्वान्, प्रगतिशील के समान ध्रुव अर्थात् अविचल गतिशील, अविचल विद्वान् संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **॥12॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - विश्वकर्मा (विश्व - सभी, कृ - करना)। त्वा (सर्वनाम)। सादयतु (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। अन्तरिक्षस्य (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। पृष्ठे (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। व्यचस्वतीम् (व्यच् - व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, ठगना, वि - विशेष, अच् - जाना, मरना, आदर करना, याचना करना)। प्रथस्वतीम् (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। यच्छ (यच्छ = देना)। दृंह (दृंह् = बढ़ना, दृढ़ होना, दृढ़ करना)। मा (अव्यय)। हिंसीः (हिंस् - हिंसा करना, मारना, बध करना, दुःख देना, सताना)। विश्वस्मै (सर्वनाम)। प्राणाय (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। अपानाय (अ - नहीं, पा-पान - पीना, पान करना, अप - पालन करना, अन - जीना, समर्थ होना, जाना)। व्यानाय (वि - विशेष, अन् = प्राण होना, जीवन होना)। उदानाय (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, उद् = उत्कृष्ट होना, उच्च होना, उदार होना, उन्द् - गीला करना, आद्र होना, कष्ट होना, अन् = प्राण होना, जीवन होना)। प्रतिष्ठायै (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, तिष्ठ - स्था - स्थित होना, ठहरना, प्रतीक्षा करना)। चरित्राय (चर -जाना, खाना, आचरण करना)। वायुः (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा = गति करना, पवन की भाँति बहना, जाना, जानना, पाना, गन्ध होना, प्रवाहित होना, प्रवाहित करना)। अभि (उपसर्ग)। पातु (पा = पालन करना, बचाना)। महत्या (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। स्वस्त्या (सु - अच्छा, अस् - होना, स्वस्ति = कल्याण)। छर्दिषा (छर्द - सम्यक् दीपन करना, कहना, उद्गार होना, वमन होना)। शन्तमेन (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। तया (सर्वनाम)। देवतया (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। ध्रुवा (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। सीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना) **॥ 12 ॥**

(162) सूक्त 4

701. राज्ञी असि प्राची दिक्, विराट् असि दक्षिणा दिक्, सम्राट् असि प्रतीची दिक्, स्वराट् असि उदीची दिक्, अधिपत्नी असि बृहती दिक् ॥ 13 ॥

मन्त्रार्थ - राज्ञी = राज्ञी। प्राची = प्राची, पूर्व दिशा। दिक् = दिशा। असि = हो। विराट् = विराट, प्रकाशित। दक्षिणा = समृद्धि। दिक् = दिशा। असि = हो। सम्राट् = सम्राट्। प्रतीची = प्रतिकूल, पीछे, पश्चिम। दिक् = दिशा। असि = हो। स्वराट् = स्वयं प्रकाशमान। उदीची = उदीची। दिक् = दिशा। असि = हो। अधिपत्नी = अधिपत्नी। बृहती = महान्, बृहत्। दिक् = दिशा। असि = हो **॥ 13 ॥**

भावार्थ - हम सभी रूपों में तथा दिशाओं में परमात्मा की सत्ता, विद्यमानता, व्यापकता का अनुभव करते हैं। इस भाव को व्यक्त करते हुए मन्त्र में कहा गया है कि हे परमात्मा, तुम राज्ञी अर्थात् प्रकाशमयी शक्ति के रूप में प्राची या पूर्व दिशा, विराट् होकर दक्षिणा **या** समृद्धि दिशा, सम्राट् अर्थात् सम्यक् प्रकाशमान होकर प्रतीची **या** पश्चिम दिशा, स्वराट् **अर्थात्** स्वयं प्रकाशमान होकर उदीची दिशा तथा अधिपत्नी के रूप में बृहती **अर्थात्** महान्, बृहत् दिशा हो **॥ 13 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त)- राज्ञी (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। असि (अस्

- होना)। प्राची (सर्वनाम)। दिक् (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। विराट् (वि = विशेष, विना, विलोम, राज् = प्रकाशित होना, शोभित होना, चमकना, रट् - शब्द करना, बोलना, सम्भाषण करना)। दक्षिणा (दक्ष् - बढ़ना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना, दक्ष होना, चलना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, मार डालना)। सम्राट् (सम् - सम्यक्, भलीभाँति, रट् = बोलना, सम्भाषण करना, राज् = शोभित होना, प्रकाशित होना, चमकना)। प्रतीची (सर्वनाम)। स्वराट् (स्व - स्वयम्, अपना, राज् = चमकना, प्रकाशित शोभित होना)। उदीची (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, उद् = उत्कृष्ट होना, उच्च होना, उदार होना, इ = जाना, उदि - उन्द् = भिगोना, उन्द् - गीला करना, आद्र होना, कष्ट होना)। अधिपत्नी (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। बृहती (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)॥ 13॥

702. विश्वकर्मा त्वा सादयतु, अन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्।
विश्वस्मै प्राणाय अपानाय, व्यानाय, विश्वम् ज्योतिः यच्छ।
वायुः ते अधिपतिः तया, देवतया अङ्गिरस्वत् ध्रुवा सीद॥ 14॥

मन्त्रार्थ - विश्वकर्मा = विश्वकर्मा, सभी कर्म, सभी कर्म करने वाले। त्वा = तुमको। सादयतु = स्थापित करे। अन्तरिक्षस्य = अन्तरिक्ष या आकाश का। पृष्ठे = पृष्ठ पर। ज्योतिष्मतीम् = प्रकाशवान् को। विश्वस्मै = सब के लिए। प्राणाय = प्राण के लिए। अपानाय = अपान के लिए। व्यानाय = व्यान के लिए। विश्वम् = सबको, विश्व को। ज्योतिः = प्रकाश। यच्छ = दो, प्रदान करो। वायुः = गतिशील, रचनात्मक शक्ति, वायु। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। अधिपतिः = अधिपति। तया = उसके द्वारा। देवतया = देवत्व के लिए, दिव्यता के लिए। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। ध्रुवा = ध्रुव, अविचल गतिशील, अविचल विद्वान्। सीद = सीद, बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों॥ 14॥

भावार्थ - प्राण, अपान, व्यान, नेत्र, श्रोत्र आदि अंग-प्रत्यंग तथा उनके कार्य सुचारु रूप से चलते रहें, परमात्मा हमारा सर्वथा संरक्षण-पालन करे। विश्वकर्मा अर्थात् सभी कर्म करने वाले परमात्मा तुमको स्थापित करे। सभी के लिए। प्राण के लिए, अपान के लिए, व्यान के लिए, उदान के लिए, प्रतिष्ठा के लिए, प्रकाश प्रदान करो। गतिशील, रचनात्मक शक्ति, वायु तुमको उस देवत्व द्वारा अंगिरा अर्थात् विद्वान्, प्रगतिशील के समान ध्रुव अर्थात् अविचल गतिशील, अविचल विद्वान् संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **॥14॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त)- विश्वकर्मा (विश्व - सभी, कृ - करना)। त्वा (सर्वनाम)। सादयतु (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। अन्तरिक्षस्य (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। पृष्ठे (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। ज्योतिष्मतीम् (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। विश्वस्मै (सर्वनाम)। प्राणाय (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। अपानायत (अ - नहीं, पा-पान - पीना, पान करना, अप - पालन करना, अन - जीना, समर्थ होना, जाना)। व्यानाय (वि - विशेष, अन् = प्राण होना, जीवन होना)। विश्वम् (सर्वनाम)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। यच्छ (यच्छ = देना)। वायुः (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा = गति करना, पवन की भाँति बहना, जाना, जानना, पाना, गन्ध होना, प्रवाहित होना, प्रवाहित करना)। ते (सर्वनाम)। अधिपतिः (अधि – अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। तया (सर्वनाम)। देवतया (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। ध्रुवा (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। सीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)॥ 14॥

703. नभः च नभस्यः च वार्षिकौ ऋतू, अग्नेः अन्तः श्लेषो असि।

कल्पेताम द्यावापृथिवी, कल्पन्ताम् आपः ओषधयः,
कल्पन्ताम् अग्नयः पृथक्, मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः।
ये अग्नयः समनसो, अन्तरा द्यावापृथिवी इमे।
वार्षिकौ ऋतू अभिकल्पमाना इन्द्रम् इव, देवा अभिसंविशन्तु तया,
देवतया अङ्गिरस्वत् ध्रुवे सीदतम्॥15॥

मन्त्रार्थ - नभः = नभ। च = और। नभस्यः = नभः के योग्य। च = और। वार्षिकौ = पराक्रमी, वर्षक। ऋतू = ऋतु। अग्नेः = अग्नि का। अन्तः = बीच में, भीतर। श्लेषो = श्लेष। असि = हो। कल्पेताम = कल्पना करें, बनायें, रचना करे। द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी। कल्पन्ताम् = कल्पना करें, बनायें, रचना करें। आप = आप, व्याप्त, व्यापक। ओषधयः = ओषधियाँ। कल्पन्ताम् = कल्पना करें, बनायें, रचना करें। अग्नयः = अग्निगण, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान, अग्नियाँ। पृथक् = अलग। मम = मेरा। ज्यैष्ठ्याय = ज्येष्ठ के लिए। सव्रताः = व्रत वाला। ये = जो। अग्नयः = अग्निगण, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान, अग्नियाँ। समनसो = समान मन वाले। अन्तरा = प्राणवान्, अन्तर, भीतर। द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी। इमे = यह, इस, ये। वार्षिकौ = पराक्रमी। ऋतू = ऋतु। अभिकल्पमाना = अभिकल्प करने वाला। इन्द्रम् = इन्द्र को। इव = समान, की भाँति, के समान। देवा = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने। अभिसंविशन्तु = सर्वथा सन्मुखता से सम्यक् प्रवेश करो। तया = उसके द्वारा। देवतया = देवत्व के लिए, दिव्यता के लिए। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। ध्रुवे = अचल, स्थिर, अविचल गतिशील। सीदतम् = सीद, बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **॥15॥**

भावार्थ - नभः और नभस्य अर्थात् नभः के योग्य वार्षिक अर्थात् = पराक्रमी, वर्षक ऋतुएं अग्नि के भीतर श्लेष अर्थात् मिलन अथवा दहन रूप में स्थित हो। द्यावापृथिवी अर्थात् अग्रगामी विस्तार, प्रकाश को बनायें, रचना करें। आप अर्थात् व्याप्त, व्यापक ओषधियाँ बनायें, रचना करें। व्रती अग्नियाँ अर्थात् अग्निगण, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् मेरे ज्येष्ठ के लिए पृथक् रचना करें। जो समान मन वाले अग्निगण अर्थात् ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् इस द्यावापृथिवी के भीतर हैं। वासन्तिकौ अर्थात् वासयोग्य, वासमय ऋतु को अभिकल्पित करने वाले देवगण अर्थात् विद्वान्, तेजस्वी इन्द्र के समान सर्वथा सन्मुखता से सम्यक् प्रवेश करें। तया = उस दिव्यता द्वारा अंगिरा अर्थात् विद्वान्, गतिशील, पाने वाले के समान अविचल प्रगतिशील विद्वान् संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **॥15॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नभः (नभ् = मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना, नष्ट होना, हिंसा करना)। च (अव्यय)। नभस्यः (नभ् = मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना, नष्ट होना, हिंसा करना)। वार्षिकौ (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। ऋतू (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। श्लेषो (श्लिष = आलिङ्गन करना, गले लगाना, सटे रहना, चिपके रहना, एका करना, मिलाप करना, श्लिष = दग्ध करना, जलाना)। असि (अस् - होना)। कल्पेताम (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। कल्पन्ताम् (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। आप (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। ओषधयः (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। अग्नयः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पृथक् (अव्यय)। मम (सर्वनाम)। ज्यैष्ठ्याय (ज्या - वृद्ध होना, बड़ा होना, बर्द्धित होना, जि - जीतना, जेष् - जाना, चलना, जानना, पाना, जिष् - सेवा करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना)। सव्रताः (स = साथ, सहित (उपसर्ग), वृत् = रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ = नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)। ये (सर्वनाम)। समनसो (स - सहित, साथ, सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, मन -

जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। अन्तरा (अन् = प्राणवान् होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, अन्तः - बीच में)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। इमे (सर्वनाम)। अभिकल्पमाना (अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, कल्प = कल्पना करना, विचार करना, रचना करना)। इन्द्रम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। इव (अव्यय)। देवा = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अभिसंविशन्तु (अभि - अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, सम् - सम्यक्, वि - विशेष, विश् - प्रवेश करना, अन्तर्गमन करना, सूचना करना, प्रेरणा करना)। तया (सर्वनाम)। देवतया (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। ध्रुवे (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। सीदतम् (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना) **॥ 15 ॥**

704. इषः च ऊर्जः च शारदौ ऋतू, अग्नेः अन्तः श्लेषो असि, कल्पेताम् द्यावापृथिवी,
कल्पन्ताम् आप ओषधयः, कल्पन्ताम् अग्नयः पृथक्, मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः।
ये अग्नयः समनसो, अन्तरा द्यावापृथिवी इमे।
शारदौ ऋतू अभिकल्पमाना इन्द्रम् इव, देवा अभिसंविशन्तु तया,
देवतया अङ्गिरस्वत् ध्रुवे सीदतम् ॥ 16 ॥

मन्त्रार्थ - इषः = इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि । च = और। ऊर्जः = ऊर्जा । च = और। शारदौ = शरद् । ऋतू = ऋतु । अग्नेः = अग्नि का । अन्तः = बीच में, भीतर । श्लेषो =श्लेष । असि = हो । कल्पेताम = कल्पना करें, बनायें, रचना करें । द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी । कल्पन्ताम् = कल्पना करें, बनायें, रचना करें । आप = आप, व्याप्त, व्यापक। ओषधयः = ओषधियाँ । कल्पन्ताम् = कल्पना करें, बनायें, रचना करें । अग्नयः = अग्निगण, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान, अग्नियाँ । पृथक् = अलग । मम = मेरा । ज्यैष्ठ्याय = ज्येष्ठ के लिए । सव्रताः= व्रत वाला । ये = जो। अग्नयः = अग्निगण, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान, अग्नियाँ । समनसो = समान मन वाले । अन्तरा = प्राणवान्, अन्तर, भीतर । द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी । इमे = यह, इस, ये । शारदौ = शरद् । ऋतू = ऋतु । अभिकल्पमाना = अभिकल्प करने वाला । इन्द्रम् = इन्द्र को । इव = समान, की भाँति, के समान । देवा = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने । अभिसंविशन्तु = सर्वथा सन्मुखता से सम्यक् प्रवेश करो । तया = उसके द्वारा । देवतया = देवत्व के लिए, दिव्यता के लिए । अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला । ध्रुवे = अचल, स्थिर, अविचल गतिशील । सीदतम् = सीद, बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों । 16 ॥

भावार्थ - इषः **अर्थात्** इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि और ऊर्जा शरद् ऋतुएँ अग्नि के भीतर श्लेष अर्थात् मिलन अथवा दहन रूप में स्थित हो। द्यावापृथिवी अर्थात् अग्रगामी विस्तार, प्रकाश को बनायें, रचना करें। आप अर्थात् व्याप्त, व्यापक ओषधियाँ बनायें, रचना करें। व्रती अग्नियाँ अर्थात् अग्निगण, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् मेरे ज्येष्ठ के लिए पृथक् रचना करें। जो समान मन वाले अग्निगण अर्थात् ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् इस द्यावापृथिवी के भीतर हैं। वासन्तिकौ अर्थात् वासयोग्य, वासमय ऋतु को अभिकल्पित करने वाले देवगण अर्थात् विद्वान्, तेजस्वी इन्द्र के समान सर्वथा सन्मुखता से सम्यक् प्रवेश करें। उस दिव्यता द्वारा अंगिरा अर्थात् विद्वान्, गतिशील, पाने वाले के समान अविचल प्रगतिशील विद्वान् संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **॥ 16 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इषः (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। च (अव्यय)। ऊर्जः (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। शारदौ (शृ - सुनना, जाना, जानना, पाना, शृ - मार डालना या दुःख देना, पीड़ा करना)। ऋतू (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी

होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। श्लेषो (श्लिष = आलिङ्गन करना, गले लगाना, सटे रहना, चिपके रहना, एका करना, मिलाप करना, श्लिष = दग्ध करना, जलाना)। असि (अस् - होना)। कल्पेताम (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। कल्पन्ताम् (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। आप (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। ओषधयः (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। अग्नयः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पृथक् (अव्यय)। मम (सर्वनाम)। ज्यैष्ठ्याय (ज्या - वृद्ध होना, बड़ा होना, बर्द्धित होना, जि - जीतना, जेष् - जाना, चलना, जानना, पाना, जिष् - सेवा करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना)। सव्रताः (स = साथ, सहित (उपसर्ग), वृत् = रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ = नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)। ये (सर्वनाम)। समनसो (स - सहित, साथ, सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। अन्तरा (अन् = प्राणवान् होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, अन्तः - बीच में)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। इमे (सर्वनाम)। अभिकल्पमाना (अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, कल्प = कल्पना करना, विचार करना, रचना करना)। इन्द्रम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। इव (अव्यय)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अभिसंविशन्तु (अभि - अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, सम् - सम्यक्, वि - विशेष, विश् - प्रवेश करना, अन्तर्गमन करना, सूचना करना, प्रेरणा करना)। तया (सर्वनाम)। देवतया (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। ध्रुवे (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। सीदतम् (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)॥ 16॥

(163) सूक्त 5

705. आयुः मे पाहि प्राणम् मे पाहि, अपानम् मे पाहि व्यानम् मे पाहि, चक्षुः मे पाहि श्रोतम् मे पाहि, वाचम् मे पिन्व मनो मे जिन्व, आत्मानम् मे पाहि ज्योतिः मे यच्छ॥17॥

मन्त्रार्थ - मे = मेरा। आयुः = आयु। पाहि = पालन करो, रक्षा करो। मे = मेरा। प्राणम् = प्राण को। पाहि = पालन करो, रक्षा करो। मे = मेरा। अपानम् = अपान को। मे = मेरा। पाहि = पालन करो, रक्षा करो। व्यानम् = व्यान को। पाहि = पालन करो, रक्षा करो। मे = मेरा। चक्षुः = आँख। पाहि = पालन करो, रक्षा करो। मे = मेरा। श्रोतम् = कान, श्रोत्र। पाहि = पालन करो, रक्षा करो। मे = मेरा। वाचम् = वाणी को। पिन्व = चलो, जानो, शब्द करो, सेवा करो, गति, ज्ञान, प्राप्ति करो। मे = मेरा। मनो = मन। जिन्व = प्रसन्न करो। मे = मेरा। आत्मानम् = अपने को, आत्मा को। पाहि = पालन करो, रक्षा करा। मे = मेरे लिए। ज्योतिः = प्रकाश। यच्छ = प्रदान करो॥ 17॥

भावार्थ - मेरा आयु, प्राण, अपान, व्यान, चक्षुः **या** आँख, श्रोत या कान को पालन करो, रक्षा करो। मेरी वाणी को जानो, ज्ञान, प्राप्ति करो। मेरा मन प्रसन्न करो। आत्मानम् **अर्थात्** अपने को, आत्मा को पालन करो, रक्षा करा। मेरे लिए प्रकाश प्रदान करो॥ 17॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आयुः (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। मे (सर्वनाम)। पाहि (पा - पालन, रक्षण करना)। प्राणम् (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। अपानम् (अ - नहीं, पा-पान - पीना, पान करना, अप - पालन करना, अन - जीना, समर्थ होना, जाना)। व्यानम् (वि - विशेष, अन् = प्राण होना, जीवन होना)।

चक्षुः (चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)। श्रोतम् (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। वाचम् (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। पिन्व (पि = गति करना, जाना, जानना, पाना, पिन्व = सेवा करना, सेचन करना, प्रोक्षण करना, पिण् - शब्द करना)। मनो (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। जिन्व (जिन्व् = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, आनन्द होना, मुक्त करना, प्रकाशित होना, बोलना)। आत्मानम् (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। यच्छ = दो, प्रदान करो (यच्छ = देना)॥ 17॥

706. मा छन्दः प्रमा छन्दः, प्रतिमा छन्दो अस्रीवयः छन्दः, पंक्तिः छन्द उष्णिक् छन्दो, बृहती छन्दो अनुष्टुप् छन्दो, विराट् छन्दो गायत्री छन्दः, त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः॥ 18॥

मन्त्रार्थ - मा = मा, मान। छन्दः = छन्द। प्रमा = प्रमा। छन्दः = छन्द। प्रतिमा = प्रतिमा, प्रति-मान। छन्दो = छन्द। अस्रीवयः = अविचल को धारण करने वाला। छन्दः = छन्द। पंक्तिः = पंक्ति। छन्द = छन्द। उष्णिक् = उषा करने वाला, प्रभात करने वाला, उष्ण करने वाला, तप्त करने वाला। छन्दो = छन्द। बृहती = महान्, बड़ा, विराट, बृहत्। छन्दो = छन्द। अनुष्टुप् = अनुष्टुप्, अनुस्तुप। छन्दो = छन्द। विराट् = विराट, प्रकाशित। छन्दो = छन्द। गायत्री = गायत्री, गान, स्तुति। छन्दः = छन्द। त्रिष्टुप् = त्रिष्टुप्। छन्दो = छन्द। जगती = जगती, गतिशील। छन्दः = छन्द।**॥ 18॥**

भावार्थ - मन्त्र में विविध वैदिक छन्दों का उल्लेख किया गया है। छन्दों में प्रकट मन्त्रों का अध्ययन कर हम जीवन को उत्तम बना सकते हैं**॥ 18॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मा (मा - मान करना, मापना, तुलना करना)। छन्दः (छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। प्रमा (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, मा - मान करना)। प्रतिमा (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, मा - मान करना, मापना, तुलना करना)। अस्रीवयः (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सृ - जाना, जाना, पाना, सरकना)। पंक्तिः (पञ्च् = व्यक्त करना, प्रसिद्ध करना, विस्तार करना)। उष्णिक् (उषस् = प्रभात होना, उष - हिंसा करना, जलना, जलाना, ताप देना)। बृहती (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। अनुष्टुप् (अनु = पश्चात्, पीछे, स्तु - स्तुति करना)। विराट् (वि = विशेष, विना, विलोम, राज् = प्रकाशित होना, शोभित होना, चमकना, रट् - शब्द करना, बोलना, सम्भाषण करना)। गायत्री (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। त्रिष्टुप् (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना)। जगती (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)॥ 18॥

707. पृथिवी छन्दो अन्तरिक्षम् छन्दो, द्यौः छन्दः समाः छन्दो, नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो, मनः छन्दः कृषिः छन्दो, हिरण्यम् छन्दो गौः छन्दो, अजा छन्दो अश्वः छन्दः॥ 19॥

मन्त्रार्थ - पृथिवी = पृथ्वी, विस्तृत भूमि, विस्तार। छन्दो = छन्द। अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष या आकाश । छन्दो = छन्द । द्यौः = प्रकाशवान्, विद्वान्, द्यौ, प्रकाशयुक्त, अग्रगामी। छन्दः = छन्द। समाः = सम विभाग, सम्वत्सर, शरद्, वर्ष, । छन्दो = छन्द । नक्षत्राणि = नक्षत्र । छन्दो = छन्द । वाक् = वाणी । छन्दो = छन्द । मनः = मन । छन्दः = छन्द । कृषिः = कृषि, कर्षण । छन्दो = छन्द । हिरण्यम् = हिरण्य को, प्रकाशमान को । छन्दो = छन्द । गौः = शाब्दिक, मननशील, उपदेशक । छन्दो = छन्द । अजा = अजन्मा । छन्दो = छन्द । अश्वः = अश्व, तीव्र गति युक्त, व्यापक । छन्दः = छन्द॥ 19॥

भावार्थ - मन्त्र में विविध वैदिक छन्दों का उल्लेख किया गया है। छन्दों में प्रकट मन्त्रों का अध्ययन कर हम जीवन को उत्तम बना सकते हैं**॥ 19॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त)- पृथिवी (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। छन्दो (छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। द्यौः (द्युत् = प्रकाशित होना,

द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना, प्रकाश होना, जानना)। समाः (सम - सब, सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, सम = न घबराना, एक समान रहना, अन् - प्राण होना, जीवन होना, श्वास लेना)। नक्षत्राणि (नक्ष - जाना, आना, पहुंचना, जानना, पाना)। वाक् (वच, वद - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। मनः (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। कृषिः (कृष् = विलेखन, कर्षण करना, खींचना, आकर्षण होना, रेखा करना)। हिरण्यम् (हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, शब्द करना, ध्वनि होना, हि = गति करना, रण् = शब्द करना, जाना)। गौः (गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना)। अजा (अ - नहीं, जन् - जन्म होना)। अश्वः (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना) **॥ 19 ॥**

708. अग्निः देवता वातो देवता, सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता, वसवो देवता रुद्रा देवता, आदित्या देवता मरुतो देवता, विश्वे देवा देवता बृहस्पतिः देवता, इन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥20 ॥

मन्त्रार्थ - अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। देवता = देवत्व, दिव्यता का गुण। वातो = वायु के समान तीव्र गति वाले, वात समूह। देवता = देवत्व, दिव्यता का गुण। सूर्यो = सूर्य का। देवता = देवत्व, दिव्यता का गुण। चन्द्रमा = चन्द्रमा, आनन्द, प्रकाश दायक। देवता = देवत्व, दिव्यता का गुण। वसवो = स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले। देवता = देवत्व, दिव्यता का गुण। रुद्रा = रुद्रगण, करुणामय। देवता = देवत्व, दिव्यता का गुण। आदित्या = अदिति से उत्पन्न, अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न। देवता = देवत्व, दिव्यता का गुण। मरुतो = मरणशीलों का। देवता = देवत्व, दिव्यता का गुण। विश्वे = सभी। देवा = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने। देवता = देवत्व, दिव्यता का गुण। बृहस्पतिः = विराट, महान्, बृहस्पति। देवता = देवत्व, दिव्यता का गुण। इन्द्रो = परम ऐश्वर्यवान्। देवता = देवत्व, दिव्यता का गुण। वरुणो = वरणीय, वरण करने वाला। देवता = देवत्व, दिव्यता का गुण॥ 20॥

भावार्थ - मन्त्र में विविध देवता, दिव्यता, दिव्य गुणों का उल्लेख किया गया है। इनके सत्य स्वरूप का बोध कर हम जीवन को उत्तम बना सकते हैं **॥ 20 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। देवता (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। वातो (वात - सुखी होना, आनन्द करना, सेवा करना, जाना, वा - गति करना, बहना, पवन की भाँति चलना)। सूर्यो (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। चन्द्रमा (चन्द् - चमकना, आनन्द होना, प्रकाश होना, सन्तोष होना)। वसवो (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। रुद्रा (रुद् - रोना, रुलाना, करुण होना, रु - शब्द करना, जाना, चलना, जानना, पाना)। आदित्या (अ - नहीं, अद् - खाना, नष्ट करना, दी = क्षय होना, नष्ट होना)। मरुतो (मृ = मरना, देहत्याग करना)। विश्वे (सर्वनाम)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। बृहस्पतिः (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। इन्द्रो (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। वरुणो (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)।20॥

(164) सूक्त 6

709. मूर्द्धा असि राड् ध्रुवा असि, धरुणा धत्री असि धरणी। आयुषे त्वा वर्चसे त्वा, कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा॥21॥

मन्त्रार्थ - आयुषे = आयु के लिए। त्वा = तुम। वर्चसे = प्रकाश के लिए, तेज के लिए। त्वा = तुम। कृष्यै = कृष्य के लिए। त्वा = तुम। क्षेमाय = क्षेम के लिए। त्वा = तुम। मूर्द्धा = उच्च। असि = हो। राड् = दानी, प्रकाशमान। ध्रुवा =

ध्रुव, अचल, स्थिर, अविचल गतिशील, अविचल विद्वान। असि = हो। धरुणा = धारणकर्ता, धारण करने वाली । धत्री = धारण, पोषण करने वाली। धरणी = धारणकर्ता, धारण करने वाली। असि = हो **॥ 21 ॥**

भावार्थ - उत्तम जीवन के लिए हमको जीवन में उत्तम गुणों को धारण करना चाहिए, यही सन्देश है **॥ 21 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मूर्द्धा (मुर् - घेरना, लपेटना, मूर्द्ध- उच्च होना)। असि (अस् - होना)। राड् (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना, रा - देना, मिल जाना)। ध्रुवा (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। धरुणा (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। धत्री (धा = धारण, पोषण, रक्षण, दान करना)। धरणी (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। आयुषे (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। त्वा (सर्वनाम)। वर्चसे (वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। कृष्यै (कृष् = विलेखन, कर्षण करना, खींचना, आकर्षण होना, रेखा करना)। क्षेमाय (क्षि - निवास करना, जाना, जानना, पाना, क्षेम् = कल्याण होना)॥ 21॥

710. यन्त्री राड् यन्त्री असि, यमनी ध्रुवा असि धरित्री।
इषे त्वा ऊर्जे त्वा, रय्यै त्वा पोषाय त्वा॥22॥

मन्त्रार्थ - इषे = गति, ज्ञान, इच्छा के लिए। त्वा = ही। ऊर्जे = ऊर्जा के लिए। त्वा = ही। रय्यै = विद्या, ज्ञान के लिए। त्वा = ही। पोषाय = पोषण के लिए। त्वा = ही। यन्त्री = यन्त्रवान्, नियन्त्रित करने वाला। राड् = प्रकाशमान। यन्त्री = यन्त्रवान्, नियन्त्रित करने वाला। असि = हो॥ यमनी = नियमन करने वाली। ध्रुवा = अविचल गतिशील, अविचल विद्वान्। धरित्री = धारण करने वाली। असि = हो॥ ॥ 22॥

भावार्थ - इषे अर्थात् गति, ज्ञान, इच्छा के लिए ही, ऊर्जा के लिए, विद्या, ज्ञान के लिए, पोषण के लिए ही यन्त्री अर्थात् यन्त्रवान्, नियन्त्रित करने वाले, प्रकाशमान, यन्त्रवान्, नियन्त्रित करने वाले हो॥ नियमन करने वाले, ध्रुव अर्थात् अविचल गतिशील, अविचल विद्वान्, धरित्री अर्थात् धारण करने वाले हो। परमात्मा ही सम्पूर्ण सृष्टि का नियन्त्रण, नियमन, धारण करने वाला है। वही हमारा पोषण करता है तथा हमें ऊर्जा, विद्या प्रदान करता है॥ **22 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यन्त्री (यन्त्र = संकुचित करना, अपने अधीन रखना)। राड् (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना, रा - देना, मिल जाना)। असि (अस् - होना)। यमनी (यम - आवरण करना, अपने अधीन रखना, पोषण करना, नियमन करना, प्रतिबन्ध करना, रोकना, अवरोध करना, नाश करना, अन्त करना)। ध्रुवा (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। धरित्री (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना, युक्त होना)। इषे (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। त्वा (सर्वनाम)। ऊर्जे (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। रय्यै (रय्-रि, री - चलना, जाना, जानना, पाना, री-रै - शब्द करना)। पोषाय (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)॥ 22॥

711. आशुः त्रिवृत् भान्तः पञ्चदशो, व्योमा सप्तदशो धरुण एकविंशः,
प्रतूर्त्तिः अष्टादशः तपो नवदशो, अभीवर्त्तः सविंशो वर्चो द्वाविंशः,
सम्भरणः त्रयोविंशो योनिः चतुर्विंशः।
गर्भाः पञ्चविंशः ओजः त्रिणवः, क्रतुः एकत्रिंशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशो,
ब्रध्नस्य विष्टपम् चतुस्त्रिंशो, नाकः षट्त्रिंशो, विवर्त्तो अष्टाचत्वारिंशो धर्त्रम् चतुष्टोमः॥23॥

मन्त्रार्थ - आशुः = तीव्र गति युक्त, व्यापक। त्रिवृत् = त्रिवृत। भान्तः = प्रकाशमान। पञ्चदशो = पन्द्रह। व्योमा = व्योम। सप्तदशो = सत्रह। धरुण = धारणकर्ता, धारण करने वाला। एकविंश= इक्कीस। प्रतूर्त्तिः = तीव्रगति। अष्टादशः = अठारह। तपो = तप। नवदशो = उन्नीस। अभीवर्त्तः = सर्वथा वर्तमान रहने वाला। सविंशो = सम्यक् विस्तार के स्वामी के लिए। वर्चो = प्रकाश। द्वाविंशः = बाईस। सम्भरणः = सम्यक् भरण-पोषण। त्रयोविंशो = तेईस। योनिः = बन्धन, मिलन। चतुर्विंशः = चौबीस। गर्भाः = गर्भ। पञ्चविंशः = पच्चीस। ओजः = ओज। त्रिणवः = त्रिणव। क्रतुः = क्रतु। एकत्रिंशः

=इक्तीस। प्रतिष्ठा = प्रतिष्ठा, प्रकृष्ट स्थिति। त्रयस्त्रिंशा = तेतिस । ब्रध्नस्य = ब्रध्न का, बृद्धि का। विष्टपम् = विस्तृत। चतुस्त्रिंशो = चौतिस। नाकः = नाक, अक रहित, अकुटिल, अविचल। षट्त्रिंशो = छत्तीस। विवर्त्तो = विशेष वर्त्तमान। अष्टाचत्वारिंशो = अड़तालीस। धर्त्रम् = धारण करने वाला, धारणकता। चतुष्टोमः = चतुष्टोम।। **23 ।।**

भावार्थ - परमात्मा, सृष्टि तथा उसके गुण और अनुदान अनन्त हैं। जैसे-जैसे हम उसे देखने-समझने का प्रयास करते हैं, हमें प्रतीत होता है कि प्रत्येक गुण अधिक से अधिक विस्तृत, व्यापक, अनन्त होता जाता है **।। 23 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आशुः (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, अश् = भोजन करना)। त्रिवृत् (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना, वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना)। भान्तः (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। पञ्चदशो (पञ्च = पाँच, दश - दस, संख्या)। व्योमा (वि - विशेष, उ - शब्द करना, रक्षा करना, सुखाना, ऊ - शब्द करना, विश्वास करना)। सप्तदशो (संख्या)। धरुण (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। एकविंशः (एक = एक संख्या, विंश - बीस)। प्रतूर्त्तिः (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, तु - गति, वृद्धि, पूर्ण, हिंसा करना, तुर - शीघ्र गति करना, शीघ्रता करना)। अष्टादशः (संख्या)। तपो (तप - ऐश्वर्य होना, तपना, दाह होना, तप करना, तप्त होना, तप्त करना, जलना, जलाना, तृषा होना)। नवदशो (संख्या)। अभीवर्त्तः (अभि - अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, वृत् = रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ = नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)। सविंशो (सम् - सम्यक्, भलीभाँति, विश् = फैलना)। वर्चो (वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। द्वाविंशः (संख्या)। सम्भरणः (सम् - सम्यक्, भृ - भरण-पोषण करना)। त्रयोविंशो (संख्या)। योनिः (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। चतुर्विंशः (संख्या)। गर्भाः (गृह् - ग्रहण करना, लेना, गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गल्भ् - जाना, जानना, पाना, ज्ञान होना, चतुर होना, साहस होना, धैर्य रखना, गृभ्-गर्भ् - अन्दर होना, अन्तःवास करना)। पञ्चविंशः (संख्या)। ओजः (ओज - शक्तिमान् होना, जीवित होना, बढ़ना)। त्रिणवः (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, नु-नव् - प्रशंसा करना, स्तुति करना, नूतन होना, नया होना)। क्रतुः (कृ = करना)। एकत्रिंशः (संख्या)। प्रतिष्ठा (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, तिष्ठ - स्था - स्थित होना, ठहरना, प्रतीक्षा करना)। त्रयस्त्रिंशा (संख्या)। ब्रध्नस्य (बृध् - बढ़ना, वृद्धि होना, बृद्धि करना)। विष्टपम् (विष् -विविष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना, व्यापना, फैलना, प्रसृत होना)। चतुस्त्रिंशो (संख्या)। नाकः (न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क -नाश होना)। षट्त्रिंशो (संख्या)। विवर्त्तो (वि = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग), वृत् - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, होना, वरण करना, स्वीकार करना, हिंसा करना, सेवा करना, चमकना, बोलना)। अष्टाचत्वारिंशो (संख्या)। धर्त्रम् (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। चतुष्टोमः (चतुः - चार, संख्या, स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)।। 23 ।।

712. अग्नेः भागो असि दीक्षाया आधिपत्यम्, ब्रह्म स्पृतम् त्रिवृत् स्तोमः।
इन्द्रस्य भागो असि विष्णोः आधिपत्यम्, क्षत्रम् स्पृतम् पञ्चदश स्तोमः।
नृचक्षसाम् भागो असि धातुः आधिपत्यम्, जनित्रम् स्पृतम् सप्तदशः स्तोमः।
मित्रस्य भागो असि वरुणस्य आधिपत्यम्, दिवो वृष्टिः वातः स्पृतः एकविंशः स्तोमः ।।24 ।।

मन्त्रार्थ - अग्नेः = अग्नि का। भागो = भाग। असि = हो। दीक्षाया = दीक्षा का। आधिपत्यम् = आधिपत्य को। ब्रह्म = ब्रह्म, महान्, बड़ा, विराट, बृहत्। स्पृतम् = स्पृ, सन्तुष्ट, प्रसन्न। त्रिवृत् = त्रिवृत। स्तोमः = स्तोम। इन्द्रस्य = इन्द्र का, परम ऐश्वर्यशाली का। भागो = भाग। असि = हो। विष्णोः = विष्णु का, सर्वव्यापी का। आधिपत्यम् = आधिपत्य को। क्षत्रम् = क्षत्र को। स्पृतम् = सन्तुष्ट, प्रसन्न। पञ्चदश = पन्द्रह। स्तोमः = स्तोम। नृचक्षसाम् = नरों को देखने वालों का । भागो = भाग। असि = हो। धातुः = धातु, धाता का, धारण करने वाले का। आधिपत्यम् = आधिपत्य को। जनित्रम् = उत्पादक। स्पृतम् = सन्तुष्ट, प्रसन्न। सप्तदशः = सत्रह। स्तोमो = स्तुति। मित्रस्य = मित्र का। भागो = भाग। असि = हो। वरुणस्य

= वरुण का । आधिपत्यम् = आधिपत्य को । दिवो = दिव, स्तुतिकर्ता, तेजस्वी, ज्योतिर्मय । वृष्टिः = वृष्टि, पराक्रमी । वातः= वायु के समान तीव्र गति वाले, वात । स्पृत = स्पृ, सन्तुष्ट, प्रसन्न । एकविंशः = इक्कीस । स्तोमः = स्तोम, स्तुति **॥ 24 ॥**

भावार्थ - हमारे स्तोम अर्थात् स्तुतियाँ परमात्मा के लिए हैं। उसके ही भाग अर्थात् सेवा, भजन हैं। हम बहुविध स्तुतियाँ करते हैं, उसे परमात्मा के विविध गुणों, विविध दिव्य शक्तियों को समर्पित करते हैं। इससे हमें भी उन गुणों को धारण करने की प्रेरणा तथा सामर्थ्य प्राप्त होती है।**॥ 24 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। भागो (भज् = सेवा करना, भजन करना, भाग करना, अलग करना)। असि (अस् - होना)। दीक्षाया (दीक्ष - दीक्षा देना, उपदेश देना, आत्मनिग्रह करना, मानव धर्म सिखाना, आदेश देना)। आधिपत्यम् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, धि = धारण करना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। ब्रह्म (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। स्पृतम् (स्पृ = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, संरक्षण करना, पालना, जाना)। त्रिवृत् (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना, वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना)। स्तोमः (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना, स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। इन्द्रस्य (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना, पीना)। विष्णोः (विष्ण- विष् -विविष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना, व्यापना, फैलना, प्रसृत होना)। क्षत्रम् (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना, रक्षा करना)। पञ्चदश (संख्या)। नृचक्षसाम् (नृ - ले जाना, चक्ष - देखना)। धातुः (धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)। जनित्रम् (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। सप्तदशः (संख्या)। मित्रस्य (मिद् - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, नरम होना, मृदुल होना)। वरुणस्य (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। दिवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। वृष्टिः (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। वातः (वात - सुखी होना, आनन्द करना, सेवा करना, जाना, वा - गति करना, बहना, पवन की भाँति चलना)। एकविंशः (संख्या)।।

(165) सूक्त 7

713. वसूनाम् भागो असि, रुद्राणाम् आधिपत्यम्, चतुष्पात् स्पृतम् चतुर्विंशः स्तोम।
आदित्यानाम् भागो असि, मरुताम् आधिपत्यम्, गर्भाः स्पृताः पञ्चविंशः स्तोमो।
अदित्यै भागो असि, पूष्ण आधिपत्यम्, ओज स्पृतम् त्रिणव स्तोमः।
देवस्य सवितुः भागो असि, बृहस्पतेः आधिपत्यम्, समीचीः दिश स्पृताः चतुष्टोम स्तोमः ॥25॥

मन्त्रार्थ - वसूनाम् = वसुओं का। भागो = भाग। असि = हो। रुद्राणाम् = रोने, रुलाने वाले। आधिपत्यम् = आधिपत्य को। चतुष्पात् = चार पैर वाले। स्पृतम् = स्पृ, सन्तुष्ट, प्रसन्न। चतुर्विंशः = चौबीस। स्तोम = स्तोम, स्तुति। आदित्यानाम् = आदित्यों का, अदिति से उत्पन्न, अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न का। भागो = भाग। असि = हो। मरुताम् = मरुतों का, मरणशीलों का। आधिपत्यम् = आधिपत्य को। गर्भाः = गर्भ। स्पृताः = स्पृत, सन्तुष्ट, प्रसन्न। पञ्चविंशः = पच्चीस। स्तोमो = स्तोम, स्तुति। अदित्यै = अविनाशी के लिए। भागो = भाग। असि = हो। पूष्ण = पोषण करने वाला, पोषणकर्ता का। आधिपत्यम् = आधिपत्य को। ओज = ओज। स्पृतम् = स्पृ, सन्तुष्ट, प्रसन्न। त्रिणव = त्रिणव। स्तोमः = स्तोम, स्तुति। देवस्य = देव का। सवितुः = उत्पादक, ऐश्वर्यवान्, उत्पन्न करने वाला । भागो = भाग। असि = हो। बृहस्पतेः = विराट, महान्, बृहस्पति का। आधिपत्यम् = आधिपत्य को। समीचीः = भलीभांति ही, सम्यक् प्रकाशित। दिश = दिशायें, दिशाओं को। स्पृताः = स्पृत, सन्तुष्ट, प्रसन्न। चतुष्टोम = चतुष्टोम। स्तोमः = स्तोम, स्तुति।। 25 ।।

भावार्थ - हमारे स्तोम अर्थात् स्तुतियाँ परमात्मा के लिए हैं। उसके ही भाग अर्थात् सेवा, भजन हैं। हम बहुविध स्तुतियाँ करते हैं, उसे परमात्मा के विविध गुणों, विविध दिव्य शक्तियों को समर्पित करते हैं। इससे हमें भी उन गुणों को धारण करने की प्रेरणा तथा सामर्थ्य प्राप्त होती है।**॥ 25 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - वसूनाम् (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। भागो (भज् = सेवा करना, भजन करना, भाग करना, अलग करना)। असि (अस् - होना)। रुद्राणाम् (रुद् =रुदन करना, रुलाना)। आधिपत्यम् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, धि = धारण करना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। चतुष्पात् (चतुः - चार, संख्या, पद - चलना, स्थानान्तर करना)। स्पृतम् (स्पृ = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, संरक्षण करना, पालना, जाना)। चतुर्विंशः (संख्या)। स्तोम (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना, स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। आदित्यानाम् (अ - नहीं, अद् - खाना, नष्ट करना, दी = क्षय होना, नष्ट होना)। मरुताम् (मृ = मरना, देहत्याग करना)। गर्भाः (गृह् - ग्रहण करना, लेना, गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गल्भ् - जाना, जानना, पाना, ज्ञान होना, चतुर होना, साहस होना, धैर्य रखना, गृभ्-गर्भ् - अन्दर होना, अन्तःवास करना)। स्पृताः (स्पृ = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, संरक्षण करना, पालना, जाना)। पञ्चविंशः (संख्या)। अदित्यै (अ = नहीं, दी = नष्ट होना, ह्रास होना)। पूष्ण (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। ओज (ओज - शक्तिमान् होना, जीवित होना, बढ़ना)। त्रिणव (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, नु-नव् - प्रशंसा करना, स्तुति करना, नूतन होना, नया होना)। देवस्य (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। सवितुः (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। बृहस्पतेः (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। समीचीः (सम् = सम्यक्, भलीभांति, इत् - इन्ध = प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना, प्रकाश करना, इ - जाना, जानना)। दिश (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। स्पृताः (स्पृ = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, संरक्षण करना, पालना, जाना)। चतुष्टोम (चतुः - चार, संख्या, (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)॥ 25 ॥

714. यवानाम् भागो असि, अयवानाम् आधिपत्यम्, प्रजा स्पृताः चतुश्चत्वारिंशः स्तोमः।
ऋभूणाम् भागो असि, विश्वेषाम् देवानाम् आधिपत्यम्, भूतम् स्पृतम् त्रयस्त्रिंशः स्तोमः ॥26 ॥

मन्त्रार्थ - यवानाम् = यवों का। भागो = भाग। असि = हो। अयवानाम् = गतिशील, विद्वान् का। आधिपत्यम् = आधिपत्य को। प्रजा = सन्तति, प्रजा। चतुश्चत्वारिंशः = चौबालीस। स्तोमः = स्तोम, स्तुति। ऋभूणाम् = ऋभुओं का। भागो = भाग। असि = हो। विश्वेषाम् = सभी का, विश्व का। देवानाम् = देवों का। आधिपत्यम् = आधिपत्य को। भूतम् = भूत को, हो गये को। स्पृतम् = स्पृ, सन्तुष्ट, प्रसन्न। त्रयस्त्रिंशः = तैतीस। स्तोमः = स्तोम, स्तुति॥ 26 ॥

भावार्थ - हमारे स्तोम अर्थात् स्तुतियाँ परमात्मा के लिए हैं। उसके ही भाग अर्थात् सेवा, भजन हैं। हम बहुविध स्तुतियाँ करते हैं, उसे परमात्मा के विविध गुणों, विविध दिव्य शक्तियों को समर्पित करते हैं। इससे हमें भी उन गुणों को धारण करने की प्रेरणा तथा सामर्थ्य प्राप्त होती है **॥ 26 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यवानाम् (यु = मिलाना, अलग करना, यव = समाप्त करना, उपसंहार करना)। भागो (भज् = सेवा करना, भजन करना, भाग करना, अलग करना)। असि (अस् - होना)। अयवानाम् (अ - नहीं, यु - मिलाना, अलग करना, अय् = जाना, जानना, पाना)। आधिपत्यम् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, धि = धारण करना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। प्रजा (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)। स्पृताः (स्पृ = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, संरक्षण करना, पालना, जाना)। चतुश्चत्वारिंशः (संख्या)। स्तोमः (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना, स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। ऋभूणाम् (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना, भा - प्रकाश होना)। विश्वेषाम् (सर्वनाम)। देवानाम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। भूतम् (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल

जाना, एकत्र करना)। स्पृतम् (स्पृ = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, संरक्षण करना, पालना, जाना)। त्रयस्त्रिंशः (संख्या)।26 ।।

715. सहः च सहस्यः च, हैमन्तिकौ ऋतू, अग्नेः अन्तः श्लेषो असि, कल्पेताम् द्यावापृथिवी, कल्पन्ताम आप ओषधयः, कल्पन्ताम अग्नयः पृथङ्, मम् ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसो, अन्तरा द्यावापृथिवी इमे हैमन्तिकौ ऋतू, अभिकल्पमाना इन्द्रम् इव, देवा अभिसंविशन्तु तया, देवतया अङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ।।27 ।।

मन्त्रार्थ - सहः = सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ट । च = और। सहस्यः = सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ठ के लिए । च = और। हैमन्तिक = हिम, गतिवान्, गति-वृद्धि, शीतल। आवृत = आवृत। उ = निश्चय ही, भी। अग्नेः = अग्नि का । अन्तः = बीच में, भीतर। श्लेषो = श्लेष। असि = हो। कल्पेताम् = कल्पना करें, बनायें, रचना करें। द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी। कल्पन्ताम = कल्पना करें, बनायें, रचना करें। आप = आप, व्याप्त, व्यापक। ओषधयः = ओषधियाँ। कल्पन्ताम = कल्पना करें, बनायें, रचना करें। अग्नयः पृथङ् = अलग। मम् = मेरा। ज्यैष्ठ्याय = ज्येष्ठ के लिए। सव्रताः = व्रत वाला। ये = जो। अग्नयः = अग्निगण, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान, अग्नियाँ। समनसो = समान मन वाले। अन्तरा = प्राणवान्, अन्तर, भीतर। द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी। इमे = यह, इस, ये। हैमन्तिक = हिम, गतिवान्, गति-वृद्धि, शीतल। आवृत = आवृत। उ = निश्चय ही, भी। अभिकल्पमाना = अभिकल्प करने वाला। इन्द्रम् = इन्द्र को। इव = समान, की भाँति, के समान। देवा = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने। अभिसंविशन्तु = सर्वथा सन्मुखता से सम्यक् प्रवेश करो। तया = उसके द्वारा। देवतया = देवत्व के लिए, दिव्यता के लिए। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। ध्रुवे = अचल, स्थिर, अविचल गतिशील। सीदतम् = सीद, बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों।। 27 ।।

भावार्थ - हैमन्तिक ऋतुएँ सामर्थ्य देने वाली हैं, बल तथा ओज को बढ़ाने वाली हैं। अग्नि के भीतर श्लेष अर्थात् मिलन अथवा दहन रूप में स्थित हो। द्यावापृथिवी अर्थात् अग्रगामी विस्तार, प्रकाश को बनायें, रचना करें। आप अर्थात् व्याप्त, व्यापक ओषधियाँ बनायें, रचना करें। अग्नियाँ अर्थात् अग्निगण, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् मेरे ज्येष्ठ के लिए पृथक् रचना करें। जो समान मन वाले अग्निगण अर्थात् ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् इस द्यावापृथिवी के भीतर हैं। सामर्थ्य देने वाली हैमन्तिक ऋतु को अभिकल्पित करने वाले देवगण अर्थात् विद्वान्, तेजस्वी इन्द्र के समान सर्वथा सन्मुखता से सम्यक् प्रवेश करें। उस दिव्यता द्वारा अंगिरा अर्थात् विद्वान्, गतिशील, पाने वाले के समान अविचल प्रगतिशील विद्वान् संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **।। 27 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त)- सहः (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना)। च (अव्यय)। सहस्यः (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना)। हैमन्तिक (हि - जाना, जानना, पाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना, हिम - शीत होना)। आवृत (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, भलीभाँति, वृत् = रहना, होना, वर्ताव करना, वरण करना, चमकना, बोलना)। उ (अव्यय)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। श्लेषो (श्लिष = आलिङ्गन करना, गले लगाना, सटे रहना, चिपके रहना, एका करना, मिलाप करना, श्लिष = दग्ध करना, जलाना)। असि (अस् - होना)। कल्पेताम् (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करन, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। कल्पन्ताम (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। आप (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। ओषधयः (उषध्- ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा)। पृथङ् (अव्यय)। मम् (सर्वनाम)। ज्यैष्ठ्याय (ज्या - वृद्ध होना, बड़ा होना, बर्द्धित होना, जि - जीतना, जेष् - जाना, चलना, जानना, पाना, जिष् - सेवा करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना)। सव्रताः (स - साथ, सहित (उपसर्ग), वृत् = रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ

= नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)। ये (सर्वनाम)। समनसो (स - सहित, साथ, सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। अन्तरा (अन् = प्राणवान् होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, अन्तः - बीच में)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। इमे (सर्वनाम)। हैमन्तिक (हि - जाना, जानना, पाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना, हिम - शीत होना)। आवृत (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, भलीभाँति, वृत् = रहना, होना, वर्ताव करना, वरण करना, चमकना, बोलना)। उ (अव्यय)। अभिकल्पमाना (अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, कल्प = कल्पना करना, विचार करना, रचना करना)। इन्द्रम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। इव (अव्यय)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अभिसंविशन्तु (अभि - अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, सम् - सम्यक्, वि - विशेष, विश् - प्रवेश करना, अन्तर्गमन करना, सूचना करना, प्रेरणा करना)। तया (सर्वनाम)। देवतया (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। ध्रुवे (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। सीदतम् (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)॥ 27 ॥

(166) सूक्त 8

716. एकया अस्तुवत, प्रजा अधीयन्त, प्रजापतिः अधिपतिः आसीत्।
तिसृभिः अस्तुवत, ब्रह्म असृज्येत, ब्रह्मणस्पतिः अधिपतिः आसीत्।
पञ्चभिः अस्तुवत, भूतानि असृज्यन्त, भूतानाम् पतिः अधिपतिः आसीत्।
सप्तभिः अस्तुवत, सप्त ऋषयो असृज्यन्त, धाता अधिपतिः आसीत्॥ 28 ॥

मन्त्रार्थ - एकया = एक द्वारा । अस्तुवत = स्तुति की । प्रजा = सन्तति, प्रजा । अधीयन्त = अधियमन किया । प्रजापतिः = प्रजापति, प्रजा का रक्षक, पालक । अधिपतिः = अधिपति । आसीत् = था । तिसृभिः = तीन अस्तुवत, ब्रह्म = ब्रह्म, महान्, बड़ा, विराट, बृहत् । असृज्येत = सृजन किया । ब्रह्मणस्पतिः = विराट, महान्, बृहस्पति । अधिपतिः = अधिपति । आसीत् = था । पञ्चभिः = पाँच द्वारा । अस्तुवत = स्तुति की । भूतानि = भूतों को, उत्पन्न हुओं को । असृज्यन्त = सृजन किया । भूतानाम् = भूतों का, उत्पन्न हुओं का । पतिः = ऐश्वर्यवान् स्वामी । अधिपतिः = अधिपति । आसीत् = था । सप्तभिः = सात । अस्तुवत = स्तुति की । सप्त = सात । ऋषयो = ऋषिगण । असृज्यन्त = सृजन किया । धाता = धारण करने वाला । अधिपतिः = अधिपति । आसीत् = था **॥ 28 ॥**

भावार्थ - हम बहुशः, बहुविध स्तुति करते हैं तथा परमात्मा के सृष्टि-रचना के अद्भुत् कर्म का स्मरण भी करते हैं। इससे हमको भी कर्म की प्रेरणा मिलती है तथा हम स्वयम् को उसकी चेतना से अनुप्राणित अनुभव करते हुए विविध पराक्रम करने में समर्थ अनुभव करते हैं।**॥ 28 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - एकया (एक = एक, एक - विचार करना)। अस्तुवत (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, स्तु = स्तुति-प्रशंसा करना)। प्रजा (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)। अधीयन्त (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, यम् - यमन करना, नियमन करना, नियन्त्रण करना)। प्रजापतिः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। अधिपतिः (अधि – अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना) । आसीत् (अस् - होना)। तिसृभिः (संख्या)। ब्रह्म (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। असृज्येत (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सृज्- सृजन करना, रचना करना, बनाना, विविध रूप से उत्पादन करना)।
ब्रह्मणस्पतिः (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। पञ्चभिः (पञ्च = पाँच, संख्या)। भूतानि (भु =

जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। असृज्यन्त (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सृज्- सृजन करना, रचना करना, बनाना, विविध रूप से उत्पादन करना)। भूतानाम् (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। पतिः (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। सप्तभिः (संख्या)। सप्त (संख्या)। ऋषयो (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। धाता (धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)॥ 28॥

717. नवभिः अस्तुवत, पितरो असृज्यन्त, अदितिः अधिपत्नी आसीत्,
एकादशभिः अस्तुवत, ऋतवो असृज्यन्त, आर्त्तवा अधिपतय आसन्,
त्रयोदशभिः अस्तुवत, मासा असृज्यन्त, सम्वत्सरो अधिपतिः आसीत्,
पञ्चदशभिः अस्तुवत, क्षत्रम् असृज्यत, इन्द्रो अधिपतिः आसीत्,
सप्तदशभिः अस्तुवत, ग्राम्याः पशवो असृज्यन्त, बृहस्पति अधिपतिः आसीत्॥29॥

मन्त्रार्थ - नवभिः = नौ द्वारा ।अस्तुवत = स्तुति की ।पितरो = पालन करने वाले ।असृज्यन्त = सृजन किया । अदितिः = अपनाने योग्य, अक्षय, अविनाशी । अधिपत्नी = अधिपत्नी॥ आसीत् = था ।एकादशभिः = ग्यारह द्वारा ।अस्तुवत = स्तुति की ।ऋतवो = सार्वभौम नियम, ऋत ।असृज्यन्त = सृजन किया । आर्त्तवा = सम्यक् वचन, वाणी, गति, प्राप्ति के लिए ।अधिपतय = अधिपति गण ।आसन् = बैठे हुए, थे ।त्रयोदशभिः = तेरह ।अस्तुवत = स्तुति की ।मासा = मास, रूपान्तरण करने, मापन करने वाले ।असृज्यन्त = सृजन किया । सम्वत्सरो = सम्वत्सर के लिए ।अधिपतिः = अधिपति ।आसीत् = था। पञ्चदशभिः = पन्द्रह द्वारा ।अस्तुवत = स्तुति की ।क्षत्रम् = क्षत्र को ।असृज्यन्त = सृजन किया । इन्द्रो = परम ऐश्वर्यवान् ।अधिपतिः = अधिपति ।आसीत् = था ।सप्तदशभिः = सत्रह ।अस्तुवत = स्तुति की ।ग्राम्याः = ग्रामों वाले ।पशवो = पशु, बन्धन, दृष्टा, देखने वाला ।असृज्यन्त = सृजन किया । बृहस्पति = विराट, महान्, बृहस्पति ।अधिपतिः = अधिपति ।आसीत् = था **॥29॥**

भावार्थ - हम बहुशः, बहुविध स्तुति करते हैं तथा परमात्मा के स्रृष्टि-रचना के अद्भुत् कर्म का स्मरण भी करते हैं। इससे हमको भी कर्म की प्रेरणा मिलती है तथा हम स्वयम् को उसकी चेतना से अनुप्राणित अनुभव करते हुए विविध पराक्रम करने में समर्थ अनुभव करते हैं।**॥ 29॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नवभिः (संख्या)। अस्तुवत (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, स्तु = स्तुति-प्रशंसा करना)। पितरो` (पि - जाना, जानना, पाना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। असृज्यन्त (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सृज्- सृजन करना, रचना करना, बनाना, विविध रूप से उत्पादन करना)।अदितिः (अ - नहीं, अद् = खाना, दी = नष्ट होना)। अधिपत्नी (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)।आसीत् (अस् - होना)।एकादशभिः (संख्या)।ऋतवो (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)।आर्त्तवा (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अर् - ऋ - गति, ज्ञान, प्राप्ति करना, फैलाना, शब्द करना, ध्वनि करना, महत्व प्रदर्शन करना, हिंसा करना)। अधिपतय (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)।आसन् (अस् - होना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीवित रहना, होना)। त्रयोदशभिः (संख्या)। मासा (मस् = रूपान्तरण करना, मापन करना, मापना)। सम्वत्सरो (सम् - सम्यक्, सम् - न घबराना, एक समान रहना, वद् - बोलना, कहना, सृ - चलना, सरकना)। पञ्चदशभिः (पञ्च = पाँच, दश - दस, संख्या)। क्षत्रम् (क्षत्, क्षद् = खाना, कूटना, ढकना, मार डालना, रक्षा करना)। इन्द्रो (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। सप्तदशभिः (संख्या)। ग्राम्याः (ग्राम - बुलाना, बुद्धिपूर्वक कहना, एकत्र होना)। पशवो (पश् - देखना, पश - बांधना, बेड़ी डालना, गांठ बांधना, फांस लगाना, जाना)। बृहस्पति (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना)॥ 29॥

718. नवदशभिः अस्तुवत, शूद्रार्यौ असृज्येताम्, अहोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम्।
एकविंशत्या अस्तुवत, एकशफाः पशवो असृज्यन्त, वरुणो अधिपतिः आसीत्।
त्रयोविंशत्या अस्तुवत, क्षुद्राः पशवो असृज्यन्त, पूषा अधिपतिः आसीत्।
पञ्चविंशत्या अस्तुवत, आरण्याः पशवो असृज्यन्त, वायुः अधिपतिः आसीत्।
सप्तविंशत्या अस्तुवत, द्यावापृथिवी वि ऐताम्, वसवो रुद्रो आदित्याः अनुव्यायन्,
ते एव अधिपतय आसन्॥ 30॥

मन्त्रार्थ - नवदशभिः = उन्नीस द्वारा। अस्तुवत = स्तुति की। शूद्रार्यौ = शूद्र के लिए, शुद्ध करने वाले के लिए। असृज्येताम् = सृजन किया। अहोरात्रे = दिन रात। अधिपत्नी = अधिपत्नी। आस्ताम् = बैठे हुए, थे। एकविंशत्या = इक्कीस द्वारा। अस्तुवत = स्तुति की। एकशफाः = एक शफ वाले। पशवो = पशु, बन्धन, दृष्टा, देखने वाला। असृज्यन्त = सृजन किया। वरुणो = वरणीय, वरण करने वाला। अधिपतिः = अधिपति। आसीत् = था। त्रयोविंशत्या = तेईस। अस्तुवत = स्तुति की। क्षुद्राः = गतिशील, शब्दकर्ता, चूर्ण, लघु, सूक्ष्म। पशवो = पशु, बन्धन, दृष्टा, देखने वाला। असृज्यन्त = सृजन किया। पूषा = पोषण करने वाला, पोषणकर्ता। अधिपतिः = अधिपति। आसीत् = था। पञ्चविंशत्या = पच्चीस। अस्तुवत = स्तुति की। आरण्याः = आरण्य, सम्यक् गमनीय, वचनीय। पशवो = पोषण करने वाला, पोषणकर्ता। असृज्यन्त = सृजन किया। वायुः = गतिशील, रचनात्मक शक्ति, वायु। अधिपतिः = अधिपति। आसीत् = था। सप्तविंशत्या = सत्ताइस। अस्तुवत = स्तुति की। द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी। वि = विशेष, विना, विलोम। ऐताम् = इनको । वसवो = स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले। रुद्रो = रुद्र। आदित्याः = अदिति से उत्पन्न, अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न। अनुव्यायन् = अनुगमन करती हुई। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। एव = ही। अधिपतय = अधिपति गण। आसन् = बैठे हुए, थे॥ 30॥

भावार्थ - हम बहुशः, बहुविध स्तुति करते हैं तथा परमात्मा के सृष्टि-रचना के अद्भुत् कर्म का स्मरण भी करते हैं। इससे हमको भी कर्म की प्रेरणा मिलती है तथा हम स्वयम् को उसकी चेतना से अनुप्राणित अनुभव करते हुए विविध पराक्रम करने में समर्थ अनुभव करते हैं॥ 30॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नवदशभिः (संख्या)। अस्तुवत (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, स्तु = स्तुति-प्रशंसा करना)। शूद्रार्यौ (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना)। असृज्येताम् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सृज् - सृजन करना, रचना करना, बनाना, विविध रूप से उत्पादन करना)। अहोरात्रे (अह् = फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, अर्पण करना, समर्पण करना, रा - देना, लेना, मिलना)। अधिपत्नी (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। आस्ताम् (अस् - होना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीवित रहना, होना)। एकविंशत्या (संख्या)। एकशफाः (एक = एक संख्या, एक - विचार करना, शप् - शाप देना, आक्रोश करना, कोप करना, शब् - जाना, जानना, पाना)। पशवो (पश् - देखना, पश - बांधना, बेड़ी डालना, गांठ बांधना, फांस लगाना, जाना)। असृज्यन्त (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सृज्- सृजन करना, रचना करना, बनाना, विविध रूप से उत्पादन करना)। वरुणो (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। अधिपतिः (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। आसीत् (अस् - होना)। त्रयोविंशत्या (संख्या)। क्षुद्राः (क्षु - जाना, जानना, पाना, शब्द करना, क्षुद् - चूर्ण करना, कूटना, पीसना)। पशवो (पश् - देखना, पश - बांधना, बेड़ी डालना, गांठ बांधना, फांस लगाना, जाना)। पूषा (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। पञ्चविंशत्या (संख्या)। आरण्याः (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अ - नहीं, रण् - शब्द करना, चलना, युद्ध करना)। पशवो (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। वायुः (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा = गति करना, पवन की भाँति बहना, जाना, जानना, पाना, गन्ध होना, प्रवाहित होना, प्रवाहित करना)। सप्तविंशत्या (संख्या)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना,

प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। वि (उपसर्ग)। ऐताम् (सर्वनाम)। वसवो (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। रुद्रो (रुद् - रोना, रुलाना, करुण होना, रु - शब्द करना, जाना, चलना, जानना, पाना)। आदित्याः (अ - नहीं, अद् - खाना, नष्ट करना, दी = क्षय होना, नष्ट होना)। अनुव्यायन् (अनु = पश्चात्, पीछे, वि- विशेष, अय् - शब्द करना, ध्वनि करना, जाना, जानना, पाना)। ते (सर्वनाम)। एव (अव्यय)। अधिपतय (अधि – अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। आसन् (अस् - होना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीवित रहना, होना)॥ 30॥

719. नवविंशत्या अस्तुवत, वनस्पतयो असृज्यन्त, सोमो अधिपतिः आसीत्,
एकत्रिंशता अस्तुवत, प्रजा असृज्यन्त, यवाः च अयवा च अधिपतय आसन्।
त्रयस्त्रिंशता अस्तुवत, भूतानि अशाम्यन्, प्रजापतिः परमेष्ठी अधिपतिः आसीत्॥ 31॥

मन्त्रार्थ - नवविंशत्या = उन्तीस द्वारा । अस्तुवत = स्तुति की । वनस्पतयो = वनस्पतियाँ । असृज्यन्त = सृजन किया (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सृज्- सृजन करना, रचना करना, बनाना, विविध रूप से उत्पादन करना)। सोमो = ऐश्वर्यमय । अधिपतिः = अधिपति । आसीत् = था । एकत्रिंशता = इक्तीस द्वारा । अस्तुवत = स्तुति की । प्रजा = प्रजा । असृज्यन्त = सृजन किया । यवाः = यव । च = और। अयवा = गतिशील, विद्वान् । च = और। अधिपतय = अधिपति गण । आसन् = बैठे हुए, थे । त्रयस्त्रिंशता = तैतीस द्वारा । अस्तुवत = स्तुति की । भूतानि = भूतों को, उत्पन्न हुओं को । अशाम्यन् = अशान्त, अशाम्य, व्याप्त होने वाले । प्रजापतिः = प्रजापति, प्रजा का रक्षक, पालक । परमेष्ठी = परम् में स्थित। अधिपतिः = अधिपति । आसीत् = था ।**॥ 31॥**

भावार्थ - हम बहुशः, बहुविध स्तुति करते हैं तथा परमात्मा के सृष्टि-रचना के अद्भुत् कर्म का स्मरण भी करते हैं। इससे हमको भी कर्म की प्रेरणा मिलती है तथा हम स्वयम् को उसकी चेतना से अनुप्राणित अनुभव करते हुए विविध पराक्रम करने में समर्थ अनुभव करते हैं **॥ 31 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नवविंशत्या (संख्या)। अस्तुवत (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, स्तु = स्तुति-प्रशंसा करना)। वनस्पतयो (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। असृज्यन्त (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सृज्- सृजन करना, रचना करना, बनाना, विविध रूप से उत्पादन करना)। सोमो (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। अधिपतिः (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। आसीत् (अस् - होना)। एकत्रिंशता (संख्या)। प्रजा (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)। यवाः (यु = मिलाना, अलग करना, यव = समाप्त करना, उपसंहार करना)। च (अव्यय)। अयवा (अ - नहीं, यु - मिलाना, अलग करना, अय् = जाना, जानना, पाना)। अधिपतय (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। आसन् (अस् - होना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीवित रहना, होना)। त्रयस्त्रिंशता (संख्या)। भूतानि (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। अशाम्यन् (अ - नहीं, शम् - शान्त होना, शमन करना, अश् = भोजन करना, अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। प्रजापतिः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। परमेष्ठी = परम् में स्थित (परम् = परन्तु, फिर, परम् (अव्यय), स्था - स्थित होना, ठहरना)॥ 31॥

इति चतुर्दशो अध्यायः

ॐ

अथ पञ्चदशो अध्यायः

(167) सूक्त 1

720. अग्ने जातान् प्र णुदा नः सपत्नान्, प्रति अजातान् नुद जातवेदः।
अधिः नो ब्रूहि सुमना अहेडन्, तव स्याम शर्मन् त्रिवरूथ उद्भौ।ß1॥

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि। जातान् = उत्पन्न हुए को। नः = हमारे। सपत्नान् = सपत्नों को, प्रकाश-ऐश्वर्यवान्, प्रकाश-रक्षक को। प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। णुदा = भेजें। जातवेदः = जातवेद, वेद को उत्पन्न करने वाले। प्रति = सम्बन्ध में, प्रत्येक। अजातान् = नहीं उत्पन्न हुए को, अजन्मे को, न उत्पन्न हुए को। नुद = भेजें। अधिः = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। सुमना = सुन्दर मन वाले। अहेडन् = अनादर न करते हुए, व्यापक की स्तुति करते हुए। ब्रूहि = कहो। तव = तुम्हारा। शर्मन् = सुख, सम्मान, समृद्धि। त्रिवरूथ = त्रिवरूथ। उद्भौ = उद्भासित करने वाले को। स्याम = हों।ß1॥

भावार्थ - हे अग्नि स्वरूप परमात्मा, उत्पन्न हुए हमार सपत्नों को, प्रकाश-ऐश्वर्यवान्, प्रकाश-रक्षक को प्रेषित करें, भेजें। जातवेदः जातवेद, वेद को उत्पन्न करने वाले प्रत्येक अजन्मे को, न उत्पन्न हुए को भी भेजें। हमारे सुन्दर मन वाले अनादर न करते हुए, व्यापक की स्तुति करते हुए बोलें। तव तुम्हारा सुख, सम्मान, समृद्धि त्रिगुण वरणीय उद्भासित करने वाले हों।ß1॥

पदार्थ - मूल (निरुक्त) - अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। जातान् (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। प्र (उपसर्ग)। णुदा (नुद् = भेजना, प्रेरणा करना, जाना)। नः (सर्वनाम)। सपत्नान् (स - सहित, साथ, अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना, पत् = जाना, नीचे जाना, पतन होना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना, सप - पूर्ण ज्ञान होना, पूरा समझना, पूर्णतया जानना, संसक्त होना, संलग्न होना, मिलाप होना)। प्रति (अव्यय)। अजातान् (अ - नहीं, जन् - जन्म होना)। नुद (नुद् = भेजना, प्रेरणा करना, जाना)। जातवेदः (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जा-ज्ञा - जानना, विद् - जानना)। अधिः (उपसर्ग)। ब्रूहि (ब्रू = कहना, बोलना)। सुमना (सु - सुन्दर, अच्छा, सु - उत्पन्न करना, पैदा करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, मन - मनन करना, जानना, समझना, स्वीकार करना, अभ्यास करना, स्थिर होना, गर्व होना)। अहेडन् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, हेड् = जाना, चलना, डरना, लपेटना, घेरना, तिरस्कार करना, अह् = फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, अर्पण करना, समर्पण करना, ईड् - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। तव (सर्वनाम)। स्याम (अस् - होना)। शर्मन् (शर्म् = सुख होना, श्रीमान् होना, सम्मानित होना)। त्रिवरूथ (त्रि = तीन (संख्या), वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। उद्भौ (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, उद् = उत्कृष्ट होना, उच्च होना, उदार होना, भा = चमकना, प्रकाश करना)।॥1॥

721. सहसा जातान् प्र णुदा नः सपत्नान्,
प्रति अजातान् जातवेदो नुदस्व।
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयम् स्याम,
प्र णुदा नः सपत्नान्॥2

मन्त्रार्थ - सहसा = सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ट। जातान् = उत्पन्न हुए को। प्र णुदा = भेजें। नः = हमको, हमारे लिए, हमारा। सपत्नान् = सपत्न, प्रकाश-ऐश्वर्यवान्, प्रकाश-रक्षक। प्रति = प्रत्येक। अजातान् = अजन्मा को। जातवेदो = वेद को जानने वाले, वेद को उत्पन्न करने वाले। नुदस्व = भेजें। अधि = अधिक, उच्च, पूर्णतः। नो = हमारे। ब्रूहि

= कहो।। सुमनस्यमानो,= सुमनस्यमान । वयम् = हम। स्याम = हों।। नः = हमारे। सपत्नान् = सपत्न, प्रकाश-ऐश्वर्यवान्, प्रकाश-रक्षक। प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। णुदा = भेजें **॥ 02 ॥**

भावार्थ - सपत्नों अर्थात् प्रकाश-ऐश्वर्यवान्, प्रकाश-रक्षण को भेजने की कामना की गयी है। सपत्नान् पद का अर्थ सपत्नियाँ मानकर उनको दूर भेजने का भावार्थ भी कुछ विद्वानों ने किया है। इस प्रकार का भावार्थ वेद-विद्या की मूल भावना तथा गरिमा के अनुकूल नहीं प्रतीत होता है।**॥ 02 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सहसा (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना)। जातान् (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। प्र (उपसर्ग)। णुदा (नुद् = भेजना, प्रेरणा करना, जाना)। नः (सर्वनाम)। सपत्नान् (स - सहित, साथ, अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना, पत् = जाना, नीचे जाना, पतन होना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना, सप - पूर्ण ज्ञान होना, पूरा समझना, पूर्णतया जानना, संसक्त होना, संलग्न होना, मिलाप होना)। प्रति (अव्यय)। अजातान् (अ - नहीं, जन् - जन्म होना)। जातवेदो (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जा-ज्ञा - जानना, विद् - जानना)। नुदस्व (नुद् = भेजना, प्रेरणा करना, जाना)। अधि (उपसर्ग)। ब्रूहि (ब्रू = कहना, बोलना)। सुमनस्यमानो (सु - सुन्दर, अच्छा, सु - उत्पन्न करना, पैदा करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, मन - मनन करना, जानना, समझना, स्वीकार करना, अभ्यास करना, स्थिर होना, गर्व होना)। वयम् (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना, वी - जाना, जानना, पाना, व्याप्त होना, इच्छा करना, आक्रमण करना, घेरना, भेजना, खाना, वे - बुनना, रचना करना, सृजन करना)। स्याम (अस् = होना)।। 2 ।।

722. षोडशी स्तोम ओजो द्रविणम्, चतुश्चत्वारिंश स्तोमो वर्चो द्रविणम्।
अग्नेः पुरीषम् असि अप्सो नाम, ताम् त्वा विश्वे अभि गृणन्तु देवाः।
स्तोमपृष्ठा घृतवती इह सीद, प्रजावत् अस्मे द्रविणा यजस्व ॥ 3 ॥

मन्त्रार्थ - षोडशी = सोलह से युक्त । स्तोम = स्तोम, स्तुति। ओजो = ओज । द्रविणम् = द्रविण को, द्रवित होने वाले को, प्रवाही को, ज्ञानी को, द्रवणशील, प्रवाहमान को । चतुश्चत्वारिंश = चौवालिस । स्तोमो = स्तोम, स्तुति। वर्चो = प्रकाश । द्रविणम् = द्रविण को, द्रवित होने वाले को, प्रवाही को, ज्ञानी को, द्रवणशील, प्रवाहमान को । अग्नेः = अग्नि का । पुरीषम् = पुरीष, अग्रगामी, अग्रणी । असि = हो । अप्सो = पालक-रक्षक । नाम = नाम वाले । ताम् = उसको । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । विश्वे = सभी । अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा । गृणन्तु = वाणी, बोध, सिञ्चन करें । देवाः = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने । स्तोमपृष्ठा = स्तोमपृष्ठ । घृतवती = घृतवती, घृतयुक्त, प्रकाशयुक्त । इह = यहां। सीद = बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों । प्रजावत् = प्रजा के समान । अस्मे = हमारा, हममें, हमारे लिए । द्रविणा = द्रवित होने वाले, प्रवाही, ज्ञानी। यजस्व = यजन करो **॥ 3 ॥**

भावार्थ - हम बहुशः, बहुविध स्तुति करते हैं तथा परमात्मा के सृष्टि-रचना के अद्भुत् कर्म का स्मरण भी करते हैं। इससे हमको भी कर्म की प्रेरणा मिलती है तथा हम स्वयम् को उसकी चेतना से अनुप्राणित अनुभव करते हुए विविध पराक्रम करने में समर्थ अनुभव करते हैं। अग्नि स्वरूप परमात्मा के पुरीष अर्थात् अग्रणी उपासक-सेवक बनकर हम देव शक्तियों का सहयोग प्राप्त करते हैं।**॥ 3 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - षोडशी (संख्या, सर्वनाम)। स्तोम (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। ओजो (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। द्रविणम् (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। चतुश्चत्वारिंश (संख्या)। स्तोमो (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। वर्चो (वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पुरीषम् (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। असि (अस् - होना)। अप्सो (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना, प्सा - भक्षण करना, संरक्षण करना)। नाम (नाम - नाम होना, नाम रखना, नम् = नमन करना, सम्मान करना, शब्द करना)। ताम् (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम)। विश्वे (सर्वनाम)। अभि (उपसर्ग)। गृणन्तु (गृ-गृण् = शब्द करना,

सिञ्चन करना, घर्षण करना, जानना, समझना, निगलना, बहिर्गमन करना, गृ - शब्द करना, गा-गै = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना)। देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। स्तोमपृष्ठा (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना, पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। घृतवती (घृ -गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना)। इह (सर्वनाम)। सीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। प्रजावत् (प्र - बहुत, प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। अस्मे (सर्वनाम)। द्रविणा (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। यजस्व (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना, दान करना)॥ 3॥

723. एवः छन्दो वरिवः छन्दः, शम्भूः छन्दः परिभूः छन्दः, आ छत् छन्दो मनः छन्दो, व्यचः छन्दः सिन्धुः छन्दः, समुद्र छन्दः सरिरम् छन्दः, ककुप् छन्दः त्रिककुप् छन्दः, काव्यम् छन्दो अङ्कुपम् छन्दो, अक्षरपङ्क्तिः छन्दः पदपङ्क्तिः छन्दो, विष्टारपङ्क्तिः छन्दः ऋक्षुरो भ्रजः छन्दः॥ 4॥

मन्त्रार्थ - एवः = ही। छन्दो = छन्द। वरिवः = वरणीय। छन्दः = छन्द। शम्भूः = कल्याणकारी, शान्तिमय, शमनकारी। छन्दः = छन्द। परिभूः = सबसे बढ़कर, सर्वत्र रहने वाला। छन्दः = छन्द। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। छत् = आच्छादन, आवरण, बल। छन्दो = छन्द। मनः = मन। छन्दो = छन्द। व्यचः = व्याप्त। छन्दः = छन्द। सिन्धुः = समुद्र। छन्दः = छन्द। समुद्र = समुद्र को। छन्दः = छन्द। सरिरम् = प्रवाहमान, नदी। छन्दः = छन्द। ककुप् = गर्वित, चञ्चल, प्यासा। छन्दः = छन्द। त्रिककुप् = त्रिककुप्, तीन गर्वित, चञ्चल, प्यासा। छन्दः = छन्द। काव्यम् = काव्य। छन्दो = छन्द। अङ्कुपम् = गणना, अंक का पालन करने वाले। छन्दो = छन्द। अक्षरपङ्क्तिः = अक्षरों की पंक्ति। छन्दः = छन्द। पदपङ्क्तिः = पदपङ्क्ति। छन्दो = छन्द। विष्टारपङ्क्तिः = विष्टारपङ्क्ति। छन्दः = छन्द। ऋक्षुरो = ऋक्षुरो। भ्रजः = पोषण करने वाले, भूनने वाले। छन्दः = छन्द **॥ 4॥**

भावार्थ - प्रस्तुत मन्त्र में विविध वैदिक छन्दों का उल्लेख किया गया है। छन्दों में प्रकट विविध वेद-मन्त्रों का अध्ययन कर हम जीवन को उत्तम बना सकते हैं **॥ 4॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - एवः (अव्यय)। छन्दो (छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। वरिवः (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। शम्भूः (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना, भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। परिभूः (परि = सभी तरफ, उपसर्ग, भू- होना)। आ (उपसर्ग)। छत् (छद् - आच्छादित करना, ढकना, हटाना, छिपाना, बचाना, बलवान् होना या करना)। मनः (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। व्यचः (व्यच् - व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, ठगना, वि - विशेष, अच् - जाना, मरना, आदर करना, याचना करना)। सिन्धुः (सिध - सिद्ध होना, पूर्ण होना, जाना, जानना, पाना, अध्ययन करना, दीक्षा देना, शुभ कार्य करना, सिञ् - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना, सिञ् - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। समुद्र (सम् = सम्यक्, भलीभांति, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना, द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। सरिरम् (सृ - जाना, सरकना, जानना, पाना, बहना, चलना, स - साथ, सहित, रस् - स्वाद लेना, प्रीति करना, शब्द करना)। ककुप् (कक् = गर्व करना, चञ्चल होना, प्यासा होना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। त्रिककुप् (त्रि = तीन, संख्या, कक् = गर्व करना, चञ्चल होना, प्यासा होना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। काव्यम् (कु, कव् = शब्द करना, कविता करना, वर्णन करना, चित्र खींचना)।

अङ्कुपम् (अंक् = गिनना, जाना, चिह्न लगाना, परिचय करना, गोद में लेना)। अक्षरपङ्क्तिः (अ = नहीं, उपसर्ग, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अक्ष - खेलना, देखना, एकत्र होना, व्याप्त होना, इच्छितार्थ होना, पैठना, क्षर - संचलन होना, टपकना, झरना, बहना, क्षरण होना, अनुपयुक्त होना, पच्-पङ्क् - व्यक्त करना, प्रकाशित करना, व्यवहार करना)। पदपङ्क्तिः (पद् - चलना, जाना, जानना, पाना, भूषित होना, भूषित करना, पच्-पङ्क् - व्यक्त करना, प्रकाशित करना, व्यवहार करना)। विष्टारपङ्क्तिः (विष् -विविष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना, व्यापना, फैलना, प्रसृत होना, पच्-पङ्क् - व्यक्त करना, प्रकाशित करना, व्यवहार करना)। ऋक्षुरो (ऋक्ष् - काटना, हिंसा करना, प्रकाश करना)। भ्रजः (भृ - भरण-पोषण, धारण करना, भृज् - भूँजना, तलना, सेंकना)॥ 4॥

724. आछत् छन्दः प्रछत् छन्दः, संयत् छन्दो वियत् छन्दो, बृहत् छन्दो रथन्तरम् छन्दो, निकायः छन्दो विवधः छन्दो, गिरः छन्दो भ्रजः छन्दः, संस्तुप् छन्दो अनुष्टुप् छन्द, एवः छन्दो वरिवः छन्दो, वयः छन्दो वयस्कृत् छन्दो, विष्पर्द्धाः छन्दो विशालम् छन्दः, छदिः छन्दो दूरोहणम् छन्दः, तन्द्रम् छन्दो अङ्काङ्कम् छन्दः॥ 5॥

मन्त्रार्थ - आछत् = आछत्, आच्छादन, आवरण, बल। छन्दः = छन्द । प्रछत् = प्रछत्, प्रमुख आच्छादन, आवरण, बल। छन्दः = छन्द। संयत् = संयत्, सम्यक् प्रयत्न, सम्यक् आदेश, सम्यक् एकत्रीकरण। छन्दो = छन्द। वियत् = वियत्, विशेष प्रयत्न, विशेष, आदेश, विशेष, एकत्रीकरण। छन्दो = छन्द। बृहत् = महान्, बड़ा, विराट, बृहत्। छन्दो = छन्द। रथन्तरम् = रथ को। छन्दो = छन्द। निकायः = निरन्तर स्तुति, प्रशंसा, स्तोता, स्तुति। छन्दो = छन्द। विवधः = विशिष्ट वध करने वाला, विशेष विद्वान्, विशेष प्राप्ति। छन्दो = छन्द। गिरः = वाणियाँ, बोध, सिञ्चन। छन्दो = छन्द। भ्रजः = पोषण करने वाले, भूनने वाले। छन्दः = छन्द। संस्तुप् = संस्तुप्। छन्दो = छन्द। अनुष्टुप् = अनुस्तुत। छन्द = छन्द। एवः = एवः। छन्दो = छन्द। वरिवः = वरणीय। छन्दो = छन्द। वयः = वय, रचना। छन्दो = छन्द। वयस्कृत् = वय या रचना करने वाला। छन्दो = छन्द। विष्पर्द्धाः = विष्पर्द्धा, विशेष स्पर्धा। छन्दो = छन्द। विशालम् = विशाल को। छन्दः = छन्द। छदिः = छदि, आच्छादन, आवरण, बल। छन्दो = छन्द। दूरोहणम् = दुःख पूर्वक रोहण को। छन्दः = छन्द। तन्द्रम् = तन्द्र। छन्दो = छन्द। अङ्क = गणना, अंक, गोद। अङ्कम् = गणना, अंक, गोद को। छन्दः = छन्द॥ 5॥

भावार्थ - प्रस्तुत मन्त्र में विविध वैदिक छन्दों का उल्लेख किया गया है। छन्दों में प्रकट विविध वेद-मन्त्रों का अध्ययन कर हम जीवन को उत्तम बना सकते हैं॥ **5॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ (उपसर्ग)। छत् (छद् - आच्छादित करना, ढकना, हटाना, छिपाना, बचाना, बलवान् होना या करना)। छन्दः (छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। प्र (उपसर्ग)। संयत् (सम् - सम्यक्, भलीभाँति, यत = दुःख देना, मारना, ठोकना, चपेटना, आज्ञा करना, एकत्र करना, मना करना, रोकना, यत = यत्न करना, उद्योग करना, निश्चय करना, ठहराना)। वियत् (वि = विशेष, यत = दुःख देना, मारना, ठोकना, चपेटना, आज्ञा करना, एकत्र करना, मना करना, रोकना, यत = यत्न करना, उद्योग करना, निश्चय करना, ठहराना)। बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। रथन्तरम् (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। निकायः (नि - निश्चित, निरन्तर, कै-काय् - शब्द करना, स्तुति करना, प्रशंसा करना)। विवधः (वि = विशेष, विना, विलोम, वध्-हन् = मारना, जाना, जानना, प्राप्त करना)। गिरः (गृ - सींचना, गीला करना, समझना, जानना, गृ - शब्द करना)। भ्रजः (भृ - भरण-पोषण, धारण करना, भृज् - भूँजना, तलना, सेंकना)। संस्तुप् (सम्-संस् = सम्यक्, भलीभांति, स्तुप = ढेर लगाना, एकत्र करना)। अनुष्टुप् (अनु = पश्चात्, पीछे, स्तु - स्तुति करना)। एवः (अव्यय)। वरिवः (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। वयः (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना)। वयस्कृत् (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना)। विष्पर्द्धाः (वि = विशेष, विपरीत, स्पर्ध - स्पर्धा करना, जीतने की इच्छा करना, स्पृ - प्रीति करना, सेवा करना, चलना, पालना, जाना)। विशालम् (विश - भीतर जाना, चारों ओर फैलना, विश - घुसना, भीतर जाना, धंसना)। छदिः (छद् - आच्छादित करना, ढकना, हटाना, छिपाना, बचाना, बलवान् होना या

करना)। दूरोहणम् (दू = जाना, जानना, पाना, सुगन्ध लेना, श्रम करना, जलना, तप्त होना, दुःख होना, दुःख देना, रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। तन्द्रम् (तन्त्र = फैलाना, कुटुम्ब पोषण करना, प्रधान होना)। अङ्काङ्कम् (अंक् = गिनना, जाना, चिह्न लगाना, परिचय करना, गोद में लेना)॥ 5॥

725. रश्मिना सत्याय सत्यम् जिन्व, प्रेतिना धर्म्मणा धर्मम् जिन्व,अन्वित्या दिवा दिवम् जिन्व, संधिना अन्तरिक्षेण अन्तरिक्षम् जिन्व, प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवीम् जिन्व, विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिम् जिन्व, प्रवया अह्ना अहः जिन्व, अनुया रात्र्या रात्रीम् जिन्व, उशिजा वसुभ्यो वसून् जिन्व, प्रकेतेन आदित्येभ्यः आदित्यान् जिन्व॥6॥

मन्त्रार्थ - रश्मिना = रश्मि द्वारा। सत्याय = सत्य के लिए। सत्यम् = सत्य को। जिन्व = प्रकाशित करो। प्रेतिना = प्रेति द्वारा, प्राप्त, विगत, पूर्ण द्वारा। धर्म्मणा = धर्म द्वारा। धर्मम् = धर्म को। जिन्व = प्रकाशित करो। अन्वित्या = अनुगमन द्वारा। दिवा = दिव्य द्वारा, तेजस्वी, ज्योतिर्मय द्वारा। दिवम् = दिव को, तेजस्वी को। जिन्व = प्रकाशित करो। संधिना = सन्धि द्वारा। अन्तरिक्षेण = अन्तरिक्ष द्वारा। अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष या आकाश को। जिन्व = प्रकाशित करो। प्रतिधिना = प्रतिधिन् द्वारा, प्रतिधि द्वारा, प्रसन्नता द्वारा, प्रतिधारणा द्वारा। पृथिव्या = पृथ्वी योग्य, पृथिवी द्वारा। पृथिवीम् = पृथिवी को। जिन्व = प्रकाशित करो। विष्टम्भेन = विस्तम्भ द्वारा, विशेष स्थापना द्वारा, विशेष स्थित द्वारा। वृष्ट्या = वृष्टि द्वारा, वर्षा द्वारा, उच्च पराक्रम द्वारा। वृष्टिम् = वृष्टि को, उच्च पराक्रम को, वर्षा को, पराक्रमी को। जिन्व = प्रकाशित करो। प्रवया = प्रकृष्ट गति, व्याप्ति, रचना द्वारा। अह्ना = व्यापक, व्याप्त द्वारा। अहः = व्यापक, व्याप्त को। जिन्व = प्रकाशित करो। अनुया = जीवन द्वारा, प्राण द्वारा, चेतना द्वारा। रात्र्या = रात्रि द्वारा। रात्रीम् = रात्रि को। जिन्व = प्रकाशित करो। उशिजा = उशिक् द्वारा, इच्छुक द्वारा, कामना द्वारा। वसुभ्यो = वसुओं के लिए। वसून् = वसुओं को। जिन्व = प्रकाशित करो। **प्रकेतेन** = प्रकेत द्वारा, आमन्त्रण, ज्ञान, निवास द्वारा। आदित्येभ्यः = आदित्यों के लिए, अदिति-अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न के लिए। आदित्यान् = आदित्यों को, अदिति से उत्पन्न, अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न को। जिन्व = प्रकाशित करो **।।6।।**

भावार्थ - हमे अपने जीवन में दिव्य गुणों का प्रकाश करना है। हम जो कुछ चाहते हैं, उसके लिए उसी प्रकार के उपाय अपनाने होते हैं, प्रयास करने होते हैं। अतः कहा गया है कि रश्मि द्वारा सत्य के लिए सत्य को प्रकाशित करो। प्रेति द्वारा, प्राप्त, विगत, पूर्ण द्वारा धर्म द्वारा धर्म को प्रकाशित करो। अनुगमन द्वारा दिव्य द्वारा, तेजस्वी, ज्योतिर्मय द्वारा दिव को, तेजस्वी को प्रकाशित करो। सन्धि द्वारा अन्तरिक्ष द्वारा अन्तरिक्ष या आकाश को प्रकाशित करो। प्रतिधिन् द्वारा, प्रतिधि द्वारा, प्रसन्नता द्वारा, प्रतिधारणा द्वारा। पृथ्वी योग्य, पृथिवी द्वारा पृथिवी को प्रकाशित करो। विस्तम्भ द्वारा, विशेष स्थापना द्वारा, विशेष स्थित द्वारा वृष्टि द्वारा, वर्षा द्वारा उच्च पराक्रम द्वारा वृष्टि को, उच्च पराक्रम को, वर्षा को, पराक्रमी को प्रकाशित करो। उत्कृष्ट गति, व्याप्ति, रचना द्वारा। यापक, व्याप्त द्वारा व्यापक, व्याप्त को प्रकाशित करो। जीवन द्वारा, प्राण द्वारा, चेतना द्वारा रात्रि द्वारा रात्रि को प्रकाशित करो। उशिक् द्वारा, इच्छुक द्वारा, कामना द्वारा वसुओं के लिए वसुओं को प्रकाशित करो। प्रकेत द्वारा, आमन्त्रण, ज्ञान, निवास द्वारा। आदित्यों के लिए, अदिति-अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न के लिए आदित्यों को, अदिति से उत्पन्न, अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न को प्रकाशित करो **॥6॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - रश्मिना (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। सत्याय (सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना)। सत्यम् (सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना)। जिन्व (जिन्व् = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, आनन्द होना, मुक्त करना, प्रकाशित होना, बोलना)। प्रेतिना (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, इ - जाना, जानना, पाना, प्रा - पूर्ण करना, भरना)। धर्म्मणा (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। धर्मम् (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। अन्वित्या (अनु = पश्चात्, पीछे, इ - जाना, जानना, पाना, प्रेरणा करना)। दिवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। दिवम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। संधिना (सम्-धि, सम् - सम्यक्,

भलीभाँति, धि - धारण करना)। अन्तरिक्षेण (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। प्रतिधिना (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, धि - धारण करना, धिन, धिन्व = सन्तुष्ट होना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, समीप होना, समीप जाना, समीप आना)। पृथिव्या (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। पृथिवीम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। विष्टम्भेन (वि - विशेष, विपरीत, स्तम्भ् - स्थित करना, स्थापित करना)। वृष्ट्या (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। वृष्टिम् (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। प्रवया (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना)। अह्ना (अह् = फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, अर्पण करना, समर्पण करना)। अहः (अह् = फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, अर्पण करना, समर्पण करना)। अनुया (अन् = जीवन होना, प्राण होना, चेतना होना, अनु = पश्चात्, पीछे, या - जाना, जानना, पाना)। रात्र्या (रा - देना, मिल जाना)। रात्रीम् (रा - देना, मिल जाना)। उशिजा (उश्-वश् - चाहना, कामना करना, इच्छा करना)। वसुभ्यो (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। वसून् (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। प्रकेतेन (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, केत - बुलाना, आमन्त्रित करना, परामर्श देना, सम्मुख वार्ता करना, कित् - जानना, निवास करना, रोग निवारण करना)। आदित्येभ्यः (अ - नहीं, दी = क्षय होना, नष्ट होना, अद् = खाना)। आदित्यान् (अ - नहीं, अद् - खाना, नष्ट करना, दी = क्षय होना, नष्ट होना)॥ 6॥

726. तन्तुना रायः पोषेण रायः पोषम् जिन्व, संसर्पेण श्रुताय श्रुतम् जिन्व,
ऐडेन ओषधीभिः ओषधीः जिन्व, उत्तमेन तनूभिः तनूः जिन्व,
वयोधसा आधीतेन आधीतम् जिन्व, अभिजिता तेजसा तेजो॥7॥

मन्त्रार्थ - तन्तुना = तन्तु द्वारा, विस्तार द्वारा । रायः = गति, विद्या, वाणी के। पोषेण = पोषण द्वारा, पुष्टिकर्ता द्वारा। रायः = गति, विद्या, वाणी को। पोषम् = पोषण करने वाले को। जिन्व = प्रकाशित करो। संसर्पेण = संसर्प द्वारा। श्रुताय = श्रुत के लिए, सुने हुए के लिए। श्रुतम् = श्रुत को, सुने हुए को। जिन्व = प्रकाशित करो। ऐडेन = धारण, घर्षण, सहन करने वाले द्वारा। ओषधीभिः = ओषधियों द्वारा। ओषधीः = ओषधी। जिन्व = प्रकाशित करो, प्रसन्न करो। उत्तमेन = उत्तम, श्रेष्ठ-इच्छा द्वारा। तनूभिः = तनू द्वारा, विस्तार द्वारा, वाणी द्वारा। तनूः = विस्तार, वाणी, शरीर। जिन्व = प्रकाशित करो। वयोधसा = वय या रचना को धारण करने वाले। आधीतेन = आधीत द्वारा, सम्यक् धारण किये हुए द्वारा। आधीतम् = आधीत, सम्यक् धारण किये हुए। जिन्व = प्रकाशित करो। अभिजिता = अभिजित् द्वारा, विजयी, विजेता द्वारा। तेजसा = तेज द्वारा, तेज के साथ। तेजो = तेज, चमक को (जिन्व = प्रकाशित करो)॥ 7॥

भावार्थ - हमे अपने जीवन में दिव्य गुणों का प्रकाश करना है। हम जो कुछ चाहते हैं, उसके लिए उसी प्रकार के उपाय अपनाने होते हैं, प्रयास करने होते हैं। अतः कहा गया है कि तन्तु द्वारा, विस्तार द्वारा गति, विद्या, वाणी के पोषण द्वारा गति, विद्या, वाणी के पोषण करने वाले को प्रकाशित करो। संसर्प द्वारा श्रुत के लिए, सुने हुए के लिए श्रुत को, सुने हुए को प्रकाशित करो। धारण, घर्षण, सहन करने वाले द्वारा ओषधियों द्वारा ओषधी को प्रकाशित करो, प्रसन्न करे । उत्तम द्वारा, श्रेष्ठ-इच्छा द्वारा तनूओं द्वारा, विस्तार द्वारा, वाणी द्वारा विस्तार, वाणी, शरीर को प्रकाशित करो। वय या रचना को धारण करने वाले आधीत द्वारा, सम्यक् धारण किये हुए द्वारा आधीत, सम्यक् धारण किये हुए को प्रकाशित करो। अभिजित् द्वारा, विजयी, विजेता द्वारा तेज द्वारा, तेज के साथतेज, चमक को जिन्व = प्रकाशित करो। मन्त्र के अन्तिम भाग में जिन्व = प्रकाशित करो क्रियापद नहीं आया है, पूर्व वाक्यों के समान इसमें भी यही क्रिया पद स्वाभाविक रूप से ग्रहण करने योग्य है॥ 7॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तन्तुना (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना, पालन करना)। रायः (रा-देना, लेना, ग्रहण करना, रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना)। पोषेण (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। पोषम् (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। जिन्व (जिन्व् = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, आनन्द होना, मुक्त करना, प्रकाशित होना, बोलना)। संसर्पेण (सम् - सम्यक्, भलीभाँति, (सृप् - जाना, सरकना, जानना, पाना, चलना)। श्रुताय (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। श्रुतम् (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। ऐडेन (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, एड - धारण करना, घर्षण करना, सहन करना)। ओषधीभिः (उषध्-ओषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। ओषधीः (उषध् - चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। उत्तमेन (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। तनूभिः (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। तनूः (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। वयोधसा (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना)। आधीतेन (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, धी = धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना, बुद्धि, प्रज्ञा होना)। आधीतम् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, धी = धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना, बुद्धि, प्रज्ञा होना)। अभिजिता (अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, जि - जय करना, जीतना)। तेजसा (तिज्, तेज् = चमकना, चमकाना, पैना करना, प्रभाव होना, तीक्ष्ण करना)। तेजो (तिज्, तेज् = चमकना, चमकाना, पैना करना, प्रभाव होना, तीक्ष्ण करना)॥ 7॥

(168) सूक्त 2

727. प्रतिपत् असि प्रतिपदे त्वा, अनुपत् असि अनुपदे त्वा,
सम्पत् असि सम्पदे त्वा, तेजो असि तेजसे त्वा॥8॥

मन्त्रार्थ - प्रतिपत् = प्रतिपत्, प्रत्येक पद, प्रत्येक ऐश्वर्य। असि = हो। त्वा = तुमको। प्रतिपदे = प्रत्येक पद, प्रत्येक ऐश्वर्य के लिए। अनुपत् = अनुपत्, अनुगामी ऐश्वर्य। असि = हो। त्वा = तुमको। अनुपदे = अनुगामी ऐश्वर्य के लिए। सम्पत् = सम्पत्, सम्यक् ऐश्वर्य। असि = हो। त्वा = तुमको। सम्पदे = सम्पत्, सम्यक् ऐश्वर्य के लिए। तेजो = तेज, चमक। असि = हो। त्वा = तुमको। तेजसे = तेजस् के लिए। (वरण करते हैं, उपासना करते हैं)।**॥8॥**

भावार्थ - समस्त गुण-धर्म-ऐश्वर्य परमात्मा में ही निहित हैं। अतः स्तुति करते हैं कि हे परमात्मा, आप ही प्रतिपत् अर्थात् प्रत्येक ऐश्वर्य हो, हम आपको प्रतिपद के लिए वरण करते हैं, उपासना करते हैं। आप अनुपत हो, हम अनुपद के लिए वरण करते हैं, उपासना करते हैं। आप ही सम्पत्, सम्यक् ऐश्वर्य हो, तुमको। हम सम्पत् अर्थात् सम्यक् ऐश्वर्य के लिए वरण करते हैं, उपासना करते हैं। आप तेज हा, तुमको तेजस् के लिए वरण करते हैं, उपासना करते हैं।**॥8॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - प्रतिपत् (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, पद् - चलना, जाना, जानना, पाना, पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना, पाना, नीचे गति करना)। असि (अस् - होना)। प्रतिपदे (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, पद् - चलना, जाना, जानना, पाना, पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना, पाना, नीचे गति करना)। त्वा (सर्वनाम)। अनुपत् (अनु - पीछे, अनुकूल, पद् - चलना)। अनुपदे (अनु - पीछे, अनुकूल, पद् - चलना)। सम्पत् (सम् = सम्यक्, भलीभांति, पद् - चलना)। सम्पदे (सम् = सम्यक्, भलीभांति, पद् - चलना)। तेजो (तिज्, तेज् = चमकना, चमकाना, पैना करना, प्रभाव होना, तीक्ष्ण करना)। तेजसे (तिज्, तेज् = चमकना, चमकाना, पैना करना, प्रभाव होना, तीक्ष्ण करना)॥ 8॥

728. त्रिवृत् असि त्रिवृते त्वा, प्रवृत् असि प्रवृते त्वा, विवृत् असि विवृते त्वा,
सवृत् असि सवृते त्वा, आक्रमो असि आक्रमाय त्वा, संक्रमो असि संक्रमाय त्वा,
उत्क्रमो असि उत्क्रमाय त्वा, उत्क्रान्तिः असि उत्क्रान्त्यै त्वा, अधिपतिना ऊर्जा ऊर्जम् जिन्व॥9॥

मन्त्रार्थ - त्रिवृत् = त्रिवृत। असि = हो। त्रिवृते = त्रिवृत। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। प्रवृत् = प्रवृत। असि = हो। प्रवृते = प्रवृत। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। विवृत् = विशेष वृत के लिए। असि = हो। विवृते = विशेष वृत के लिए। त्वा

= तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। सवृत = व्रत वाला। असि = हो। सवृते = व्रत वाला। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। आक्रमो = आ-क्रम, सम्यक् गति, रक्षण। असि = हो। आक्रमाय = आ-क्रम के लिए, सम्यक् गति, रक्षण के लिए। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। संक्रमो = संक्रमो। असि = हो। संक्रमाय = संक्रम के लिए। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । उत्क्रमो = उत्कृष्ट गति, रक्षण, वृद्धि । असि = हो । उत्क्रमाय = उत्कृष्ट गति, रक्षण, वृद्धि । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । उत्क्रान्तिः = उत्कृष्ट गति, रक्षण, वृद्धि । असि = हो । उत्क्रान्त्यै = उत्कृष्ट गति, रक्षण, वृद्धि के लिए । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । अधिपतिना = अधिपति द्वारा । ऊर्जा = ऊर्जा, बल, प्राण, चेतना । ऊर्जम् = ऊर्जा को । जिन्व = प्रकाशित करो, प्रसन्न करो ॥ 9 ॥

भावार्थ - समस्त गुण-धर्म-ऐश्वर्य परमात्मा में ही निहित हैं। अतः हम उन गुणों का स्मरण करते हुए स्तुति करते हैं, वरण करते हैं, उपासना करते हैं। हमारी कामना है कि हमें भी वह दिव्य ऊर्जा, प्रकाश प्राप्त हो **॥ 9 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - त्रिवृत् (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना, वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना)। असि (अस् - होना)। त्रिवृते (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना, वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना)। त्वा (सर्वनाम)। प्रवृत् (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, वृत् = रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ = नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)। प्रवृते (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, वृत् = रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ = नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)। विवृत् (वि = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग), वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना)। विवृते (वि = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग), वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना)। सवृत (स = साथ, सहित, उपसर्ग, वृत् = रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ = नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)। सवृते (स = साथ, सहित, उपसर्ग, वृत् = रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ = नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)। आक्रमो (आ = सम्यक्, समन्तात्, सम्पूर्ण, क्रम् = चलना, निर्भयता से चलना, रक्षा करना, बढ़ना)। आक्रमाय (आ = सम्यक्, समन्तात्, सम्पूर्ण, क्रम् = चलना, निर्भयता से चलना, रक्षा करना, बढ़ना)। संक्रमो (सम् = सम्यक्, भलीभांति, क्रम् = चलना, निर्भयता से चलना, रक्षा करना, बढ़ना)। संक्रमाय (सम् = सम्यक्, भलीभांति, क्रम् = चलना, निर्भयता से चलना, रक्षा करना, बढ़ना)। उत्क्रमो (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, क्रम = चलना, रक्षा करना, बढ़ना)। उत्क्रमाय (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, क्रम = चलना, रक्षा करना, बढ़ना)। उत्क्रान्तिः (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, क्रम = चलना, रक्षा करना, बढ़ना)। उत्क्रान्त्यै (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, क्रम = चलना, रक्षा करना, बढ़ना)। अधिपतिना (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। ऊर्जा (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। ऊर्जम् (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। जिन्व (जिन्व् = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, आनन्द होना, मुक्त करना, प्रकाशित होना, बोलना)॥ 9 ॥

729. राज्ञी असि प्राची दिक् वसवः, ते देवा अधिपतयो अग्निः, हेतीनाम् प्रतिधर्त्ता त्रिवृत् त्वा, स्तोमः पृथिव्याम् श्रयतु आज्यम्, उक्थम् अव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तरम्, साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयः त्वा, प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया, वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता च, अयम् अधिपतिः च ते त्वा, सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे, स्वर्गे लोके यजमानम् च सादयन्तु ॥ 10 ॥

मन्त्रार्थ- राज्ञी = राज्ञी। असि = हो । प्राची = प्राची, पूर्व दिशा । दिक् = दिशा । वसवः = स्नेहपूर्वक निवास

करने तथा वास देने वाले । ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए । देवा = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय । अधिपतयो = अधिपति गण । अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् । हेतीनाम् = हेतियों का, गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि, प्रेरणाओं का । प्रतिधर्त्ता = प्रत्येक धारणकर्ता, धारण करने वाला । त्रिवृत् = त्रिवृत । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । स्तोमः = स्तोम, स्तुति । पृथिव्याम् = पृथ्वी पर । श्रयतु = प्राप्त हो । आज्यम्,= आज्य को, सम्यक् गति, ज्ञान को पीने, पालन-रक्षण करने वाले को । उक्थम् = उक्ति, कथन । अव्यथायै = निर्भय, दुःख-हीन के लिए । स्तभ्नातु = स्तम्भित करो । रथन्तरम् = रथ को । साम = साम । प्रतिष्ठित्या = प्रतिष्ठिति के लिए, प्रकृष्ट स्थिति के लिए । अन्तरिक्ष = अन्तरिक्ष या आकाश । ऋषयः = ऋषिगण । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । प्रथमजा = प्रथम उत्पन्न । देवेषु = देवों में । दिवो = दिव, स्तुतिकर्ता, तेजस्वी, ज्योतिर्मय । मात्रया = माता द्वारा । वरिम्णा = वरण, पालन कर । प्रथन्तु = विस्तार करो । विधर्त्ता = विशेष धारण करने वाले । च = और । अयम् = यह । अधिपतिः = अधिपति । च = और । ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । सर्वे = सभी । संविदाना = सम्यक् जानना । नाकस्य = नाक, अक रहित, अकुटिल, अविचल का । पृष्ठे = पृष्ठ पर । स्वर्गे = स्वर्ग में । लोके = लोक में । यजमानम् = यजमान को । च = और । सादयन्तु = स्थापित करो **॥ 10 ॥**

भावार्थ - परमात्मा ही समस्त सृष्टि रचना तथा संचालन का आधार हैं । समस्त गुण-धर्म-ऐश्वर्य परमात्मा में ही निहित हैं । वह हमें सुखमय प्रतिष्ठा प्रदान करे, यही कामना है । **॥ 10 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - राज्ञी (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना) । असि (अस् - होना) । प्राची (सर्वनाम) । दिक् (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना) । वसवः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना) । ते (सर्वनाम) । देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना) । अधिपतयो (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना) । अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना) । हेतीनाम् (हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना) । प्रतिधर्त्ता (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना) । त्रिवृत् (त्रि - तीन, संख्या, सर्वनाम, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना, वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना) । त्वा (सर्वनाम) । स्तोमः (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना) । पृथिव्याम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना) । श्रयतु (श्रा = परिपक्व करना, पकाना, रांधना, उबालना, स्वेदन करना, श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना) । आज्यम् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अज् - जाना, स्थापन करना, दौड़ाना, फेकना, जि- जीतना, सर्वोत्कर्ष से रहना, ज्या-वृद्ध होना) । उक्थम् (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना, उच् - एकत्र होना, सम्बन्ध होना) । अव्यथायै (अ = नहीं, व्यथ् =डरना, दुःखी होना) । स्तभ्नातु (स्तम्भ - अवरोध करना, दृढ़ होना, खम्भे के समान, स्तब्ध होना) । रथन्तरम् (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना) । साम (साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना) । प्रतिष्ठित्या (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, तिष्ठ - स्था - स्थित होना, ठहरना, प्रतीक्षा करना) । अन्तरिक्ष (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना) । ऋषयः (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना) । प्रथमजा (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना) । देवेषु (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना) । दिवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना) । मात्रया (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना) । वरिम्णा (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना) । प्रथन्तु (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध

होना)। विधर्त्ता (वि - विशेष, धृ = धारण करना)। च (अव्यय)। अयम् (सर्वनाम)। अधिपतिः (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। सर्वे (सर्वनाम)। संविदाना (सम् - सम्यक्, विद = समझना, जानना)। नाकस्य (नक् - नक्क् = नष्ट होना, नष्ट करना, न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क -नाश होना)। पृष्ठे (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। स्वर्गे (सू- ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, पराक्रम होना, स्वृ-स्वर् = शब्द करना, गम् - जाना)। लोके (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। यजमानम् (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना, दान करना)। सादयन्तु (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)॥ 10॥

730. विराट् असि दक्षिणा दिग् रुद्राः, ते देवा अधिपतय इन्द्रो, हेतीनाम् प्रतिधर्त्ता पञ्चदशः त्वा, स्तोमः पृथिव्याम् श्रयतु प्र उगम्, उक्थम् अव्यथायै स्तभ्नातु बृहत्, साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋतयः त्वा, प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया, वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता च, अयम् अधिपतिः च ते त्वा, सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे, स्वर्ग लोके यजमानम् च सादयन्तु॥11॥

मन्त्रार्थ - विराट् = विराट, प्रकाशित। असि = हो। दक्षिणा = समृद्धि। दिग् = दिशा। रुद्राः = रोने, रुलाने वाले। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। देवा = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। अधिपतय = अधिपति गण। इन्द्रो = परम ऐश्वर्यवान्। हेतीनाम् = हेतियों का, गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि, प्रेरणाओं का। प्रतिधर्त्ता = प्रत्येक धारणकर्ता, धारण करने वाला। पञ्चदशः = पन्द्रह। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। स्तोमः = स्तोम, स्तुति। पृथिव्याम् = पृथ्वी पर। श्रयतु = प्राप्त हो। प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। उगम् = उग को। उक्थम् = उक्ति, कथन। अव्यथायै = निर्भय, दुःख-हीन के लिए। स्तभ्नातु = स्तम्भित करो। बृहत् = महान्, बड़ा, विराट, बृहत। साम = साम। प्रतिष्ठित्या = प्रतिष्ठिति के लिए, प्रकृष्ट स्थिति के लिए। अन्तरिक्ष = अन्तरिक्ष या आकाश। ऋषयः = ऋषिगण। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। प्रथमजा = प्रथम उत्पन्न। देवेषु = देवों में। दिवो = दिव, स्तुतिकर्ता, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। मात्रया = माता द्वारा। वरिम्णा = वरण, पालन कर। प्रथन्तु = विस्तार करो। विधर्त्ता = विशेष धारण करने वाले। च = और। अयम् = यह। अधिपतिः = अधिपति। च = और। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। सर्वे = सभी। संविदाना = सम्यक् जानना। नाकस्य = नाक, अक रहित, अकुटिल, अविचल का। पृष्ठे = पृष्ठ पर। स्वर्गे = स्वर्ग में। लोके = लोक में। यजमानम् = यजमान को। च = और। सादयन्तु = स्थापित करो॥ 11॥

भावार्थ - परमात्मा ही समस्त सृष्टि रचना तथा संचालन का आधार हैं। समस्त गुण-धर्म-ऐश्वर्य परमात्मा में ही निहित हैं। वह हमें सुखमय प्रतिष्ठा प्रदान करे, यही कामना है॥ **11**॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - विराट् (वि = विशेष, विना, विलोम, राज् = प्रकाशित होना, शोभित होना, चमकना, रट् - शब्द करना, बोलना, सम्भाषण करना)। असि (अस् - होना)। दक्षिणा (दक्ष् - बढ़ना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना, दक्ष होना, चलना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, मार डालना)। दिग् (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। रुद्राः (रुद् =रुदन करना, रुलाना)। ते (सर्वनाम)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। अधिपतय (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। इन्द्रो (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। हेतीनाम् (हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना)। प्रतिधर्त्ता (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। पञ्चदशः (पञ्च = पाँच, दश - दस, संख्या)। त्वा (सर्वनाम)। स्तोमः (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। पृथिव्याम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। श्रयतु (श्रा = परिपक्व करना, पकाना, रांधना, उबालना, स्वेदन करना, श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना)। प्र (उपसर्ग)। उगम् (उग् - उग्र - उग्र

होना, तेज होना)। उक्थम् (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना, उच् - एकत्र होना, सम्बन्ध होना)। अव्यथायै (अ = नहीं, व्यथ् = डरना, दुःखी होना)। स्तभ्नातु (स्तम्भ - अवरोध करना, दृढ़ होना, खम्भे के समान, स्तब्ध होना)। बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। साम (साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)। प्रतिष्ठित्या (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, तिष्ठ - स्था - स्थित होना, ठहरना, प्रतीक्षा करना)। अन्तरिक्ष (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। ऋषयः (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। प्रथमजा (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना)। देवेषु (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। दिवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। मात्रया (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। वरिम्णा (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। प्रथन्तु (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। विधर्त्ता (वि - विशेष, धृ = धारण करना)। च (अव्यय)। अयम् (सर्वनाम)। अधिपतिः (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। सर्वे (सर्वनाम)। संविदाना (सम् - सम्यक्, विद = समझना, जानना)। नाकस्य (नक् - नक्क् = नष्ट होना, नष्ट करना, न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क -नाश होना)। पृष्ठे (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूंछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। स्वर्गे (सू- ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, पराक्रम होना, स्वृ-स्वर् = शब्द करना, गम् - जाना)। लोके (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। यजमानम् (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना, दान करना)। सादयन्तु (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)।। 11।।

731. सम्राट् असि प्रतीची दिक् आदित्याः, ते देवा अधिपतय वरुणो,
हेतीनाम् प्रतिधर्त्ता सप्तदशः त्वा, स्तोमः पृथिव्याम् श्रयतु मरुत्वतीयम्,
उक्थम् अव्यथायै स्तभ्नातु वैरुपम्, साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयः त्वा,
प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया, वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता च, अयम् अधिपतिः च ते त्वा,
सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे, स्वर्गे लोके यजमानम् च सादयन्तु।।12।।

मन्त्रार्थ- सम्राट् = सम्राट। असि = हो। प्रतीची = प्रतिकूल, पीछे, पश्चिम। दिक् = दिशा। आदित्याः = अदिति से उत्पन्न, अक्षय-अविनाशी से उत्पन्न। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। देवा = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। अधिपतय = अधिपति गण। वरुणो = वरणीय, वरण करने वाला। हेतीनाम् = हेतियों का, गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि, प्रेरणाओं का। प्रतिधर्त्ता = प्रत्येक धारणकर्ता, धारण करने वाला। सप्तदशः = सत्रह। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। स्तोमः = स्तोम, स्तुति। पृथिव्याम् = पृथ्वी पर। श्रयतु = प्राप्त हो। **मरुत्वतीयम्** = मरुत्वतीय को, मरणशील को। उक्थम् = उक्ति, कथन। अव्यथायै = निर्भय, दुःख-हीन के लिए। स्तभ्नातु = स्तम्भित करो। वैरुपम् = विशेष रुप को। साम = साम। प्रतिष्ठित्या = प्रतिष्ठिति के लिए, प्रकृष्ट स्थिति के लिए। अन्तरिक्ष = अन्तरिक्ष या आकाश। ऋषयः = ऋषिगण। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। प्रथमजा = प्रथम उत्पन्न। देवेषु = देवों में। दिवो = दिव, स्तुतिकर्ता, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। मात्रया = माता द्वारा। वरिम्णा = वरण, पालन कर। प्रथन्तु = विस्तार करो। विधर्त्ता = विशेष धारण करने वाले। च = और। अयम् = यह। अधिपतिः = अधिपति। च = और। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। सर्वे = सभी। संविदाना = सम्यक् जानना। नाकस्य = नाक, अक रहित, अकुटिल, अविचल का। पृष्ठे = पृष्ठ पर। स्वर्गे = स्वर्ग में। लोके = लोक में। यजमानम् = यजमान को। च = और। सादयन्तु = स्थापित करो।। 12।।

भावार्थ - परमात्मा ही समस्त सृष्टि रचना तथा संचालन का आधार हैं। समस्त गुण-धर्म-ऐश्वर्य परमात्मा में ही

निहित हैं। वह हमें सुखमय प्रतिष्ठा प्रदान करे, यही कामना है।**॥ 12 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सम्राट् (सम् - सम्यक्, भलीभाँति, रट् = बोलना, सम्भाषण करना, राज् = शोभित होना, प्रकाशित होना, चमकना)। असि (अस् - होना)। प्रतीची (सर्वनाम)। दिक् (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। आदित्याः (अ - नहीं, अद् - खाना, नष्ट करना, दी = क्षय होना, नष्ट होना)। ते (सर्वनाम)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। अधिपतय (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। वरुणो (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय प्राप्ति)। हेतीनाम् (हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना)। प्रतिधर्त्ता (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। सप्तदशः (संख्या)। त्वा (सर्वनाम)। स्तोमः (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। पृथिव्याम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। श्रयतु (श्रा = परिपक्व करना, पकाना, रांधना, उबालना, स्वेदन करना, श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना)। मरुत्वतीयम् (मृ = मरना, देहत्याग करना)। उक्थम् (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना, उच् - एकत्र होना, सम्बन्ध होना)। अव्यथायै (अ = नहीं, व्यथ् = डरना, दुःखी होना)। स्तभ्नातु (स्तम्भ - अवरोध करना, दृढ़ होना, खम्भे के समान, स्तब्ध होना)। वैरुपम् (वि - विशेष, रूप - बनाना, आकार बनाना, रचना करना, मन में रुपाकृति लाना)। साम (साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)। प्रतिष्ठित्या (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, तिष्ठ - स्था - स्थित होना, ठहरना, प्रतीक्षा करना)। अन्तरिक्ष (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। ऋषयः (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। प्रथमजा (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना)। देवेषु (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। दिवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। मात्रया (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। वरिम्णा (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। प्रथन्तु (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। विधर्त्ता (वि - विशेष, धृ = धारण करना)। च (अव्यय)। अयम् (सर्वनाम)। अधिपतिः (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। सर्वे (सर्वनाम)। संविदाना (सम् - सम्यक्, विद = समझना, जानना)। नाकस्य (नक् - नक्क् = नष्ट होना, नष्ट करना, न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क -नाश होना)। पृष्ठे (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। स्वर्गे (सू- ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, पराक्रम होना, स्वृ-स्वर् = शब्द करना, गम् - जाना)। लोके (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। यजमानम् (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना, दान करना)। सादयन्तु (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)॥ 12 ॥

(169) सूक्त 3

732. स्वराट् असि उदीची दिङ् मरुतः, ते देवा अधिपतयः सोमो,
हेतीनाम् प्रतिधर्त्ताः एकविंशः त्वा, स्तोमः पृथिव्याम् श्रयतु निष्केवल्यम्,
उक्थम् अव्यथायै स्तभ्नातु वैराजम्, साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयः त्वा,
प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया, वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता च, अयम् अधिपतिः च ते त्वा,
सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे, स्वर्गे लोके यजमानम् च सादयन्तु॥ 13 ॥

मन्त्रार्थ - स्वराट् = स्वयं प्रकाशमान। असि = हो। उदीची = उदीची। दिङ् = दिशा। मरुतः = मरणशील, मरुतों का। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। देवा = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। अधिपतय = अधिपति गण (अधि – अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। सोमो = ऐश्वर्यमय। हेतीनाम् = हेतियों का, गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि, प्रेरणाओं का। प्रतिधर्त्ता = प्रत्येक धारणकर्ता, धारण करने वाला। एकविंशः = इक्कीस। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। स्तोमः = स्तोम, स्तुति। पृथिव्याम् = पृथ्वी पर। श्रयतु = प्राप्त हो। निष्केवल्यम् = निरन्तर सेवनीय को, निरन्तर केवल्य को। उक्थम् = उक्ति, कथन। अव्यथायै = निर्भय, दुःख-हीन के लिए। स्तभ्नातु = स्तम्भित करो। वैराजम् = वैराज को, विशेष राज को। साम = साम। प्रतिष्ठित्या = प्रतिष्ठिति के लिए, प्रकृष्ट स्थिति के लिए। अन्तरिक्ष = अन्तरिक्ष या आकाश। ऋषयः = ऋषिगण। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। प्रथमजा = प्रथम उत्पन्न। देवेषु = देवों में। दिवो = दिव, स्तुतिकर्ता, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। मात्रया = माता द्वारा। वरिम्णा = वरण, पालन कर। प्रथन्तु = विस्तार करो। विधर्त्ता = विशेष धारण करने वाले। च = और। अयम् = यह। अधिपतिः = अधिपति। च = और। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। सर्वे = सभी। संविदाना = सम्यक् जानना। नाकस्य = नाक, अक रहित, अकुटिल, अविचल का। पृष्ठे = पृष्ठ पर। स्वर्गे = स्वर्ग में। लोके = लोक में। यजमानम् = यजमान को। च = और। सादयन्तु = स्थापित करो।। 13 ।।

भावार्थ - परमात्मा ही समस्त सृष्टि रचना तथा संचालन का आधार हैं। समस्त गुण-धर्म-ऐश्वर्य परमात्मा में ही निहित हैं। वह हमें सुखमय प्रतिष्ठा प्रदान करे, यही कामना है।**।। 13 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - स्वराट् (स्व - स्वयम्, अपना, राज् = चमकना, प्रकाशित शोभित होना)। असि (अस् - होना)। उदीची (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, उद् = उत्कृष्ट होना, उच्च होना, उदार होना, इ = जाना, उदि - उन्द् = भिगोना, उन्द् - गीला करना, आद्र होना, कष्ट होना)। दिङ् (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। मरुतः (मृ = मरना, देहत्याग करना)। ते (सर्वनाम)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। अधिपतय (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। सोमो (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। हेतीनाम् (हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना)। प्रतिधर्त्ता (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। एकविंशः (एक = एक संख्या, विंश - बीस)। त्वा (सर्वनाम)। स्तोमः (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। पृथिव्याम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। श्रयतु (श्रा = परिपक्व करना, पकाना, रांधना, उबालना, स्वेदन करना, श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना)। निष्केवल्यम् (नि- निश्चित, नितराम्, निरन्तर, केव् - सेवा करना, सिंचन करना, घर्षण करना, रिक्त होना)। उक्थम् (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना, उच् - एकत्र होना, सम्बन्ध होना)। अव्यथायै (अ = नहीं, व्यथ् =डरना, दुःखी होना)। स्तभ्नातु (स्तम्भ - अवरोध करना, दृढ़ होना, खम्भे के समान, स्तब्ध होना)। वैराजम् (वि - विशेष, राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। साम (साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)। प्रतिष्ठित्या (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, तिष्ठ - स्था - स्थित होना, ठहरना, प्रतीक्षा करना)। अन्तरिक्ष (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। ऋषयः (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। प्रथमजा (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना)। देवेषु (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। दिवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। मात्रया (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना,

मापना, समानता दर्शाना)। वरिम्णा (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। प्रथन्तु (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। विधर्त्ता (वि - विशेष, धृ = धारण करना)। च (अव्यय)। अयम् (सर्वनाम)। अधिपतिः (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। सर्वे (सर्वनाम)। संविदाना (सम् - सम्यक्, विद = समझना, जानना)। नाकस्य (नक् - नक्क् = नष्ट होना, नष्ट करना, न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क -नाश होना)। पृष्ठे (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। स्वर्गे (सू- ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, पराक्रम होना, स्वृ-स्वर् = शब्द करना, गम् - जाना)। लोके (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। यजमानम् (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना, दान करना)। सादयन्तु (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)॥ 13॥

733. अधिपत्नी असि बृहती दिक् विश्वे, ते देवा अधिपतयो बृहस्पतिः,
हेतीनाम् प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ त्वा, स्तोमौ पृथिव्याम् श्रयताम् वैश्वदेव अग्नि मारुते,
उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीताम् शाक्वररैवते, सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयः त्वा,
प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया, वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता च, अयम् अधिपतिः च ते त्वा,
सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे, स्वर्गे लोके यजमानम् च सादयन्तु॥ 14॥

मन्त्रार्थ- अधिपत्नी = अधिपत्नी। असि = हो। बृहती दिक् = दिशा। विश्वे = सभी। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। देवा = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। अधिपतय = अधिपति गण। बृहस्पतिः = विराट, महान्, बृहस्पति। हेतीनाम् = हेतियों का, गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि, प्रेरणाओं का। प्रतिधर्त्ता = प्रत्येक धारणकर्ता, धारण करने वाला। त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ = तैतीस। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। स्तोमः = स्तोम, स्तुति। पृथिव्याम् = पृथ्वी पर। श्रयताम् = प्राप्त हो। वैश्वदेव = वैश्वदेव, सभी देवगण। अग्नि = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। मारुते = मारुत में, मरणशील में। उक्थे = उक्ति, कथन। अव्यथायै = निर्भय, दुःख-हीन के लिए। स्तभ्नीताम् = स्तभ्नीत को। शाक्वररैवते = शक्तिदाता के लिए। सामनी = साम। प्रतिष्ठित्या = प्रतिष्ठिति के लिए, प्रकृष्ट स्थिति के लिए। अन्तरिक्ष = अन्तरिक्ष या आकाश। ऋषयः = ऋषिगण। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। प्रथमजा = प्रथम उत्पन्न। देवेषु = देवों में। दिवो = दिव, स्तुतिकर्ता, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। मात्रया = माता द्वारा। वरिम्णा = वरण, पालन कर। प्रथन्तु = विस्तार करो। विधर्त्ता = विशेष धारण करने वाले। च = और। अयम् = यह। अधिपतिः = अधिपति। च = और। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। सर्वे = सभी। संविदाना = सम्यक् जानना। नाकस्य = नाक, अक रहित, अकुटिल, अविचल का। पृष्ठे = पृष्ठ पर। स्वर्गे = स्वर्ग में। लोके = लोक में। यजमानम् = यजमान को। च = और। सादयन्तु = स्थापित करो॥ 14॥

भावार्थ - परमात्मा ही समस्त सृष्टि रचना तथा संचालन का आधार हैं। समस्त गुण-धर्म-ऐश्वर्य परमात्मा में ही निहित हैं। वह हमें सुखमय प्रतिष्ठा प्रदान करे, यही कामना है **॥ 14॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अधिपत्नी (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। असि (अस् - होना)। दिक् (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। विश्वे (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। अधिपतय (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। बृहस्पतिः (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। हेतीनाम् (हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना)। प्रतिधर्त्ता (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ (संख्या)। त्वा (सर्वनाम)। स्तोमः (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। पृथिव्याम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण

करना)। श्रयताम् (श्रा = परिपक्व करना, पकाना, रांधना, उबालना, स्वेदन करना, श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना)। वैश्वदेव (विश्व - सभी, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न करना)। अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। मारुते (मृ = मरना, देहत्याग करना)। उक्थे (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना, उच् - एकत्र होना, सम्बन्ध होना)। अव्यथायै (अ = नहीं, व्यथ् = डरना, दुःखी होना)। स्तभ्नीताम् (स्तम्भ - अवरोध करना, दृढ़ होना, खम्भे के समान, स्तब्ध होना)। शाक्वररैवते (शक्-शक्व - शक्तिमान् होना, समर्थ होना, सकना)। सामनी (साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)। प्रतिष्ठित्या (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, तिष्ठ - स्था - स्थित होना, ठहरना, प्रतीक्षा करना)। अन्तरिक्ष (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। ऋषयः (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। त्वा (सर्वनाम)। प्रथमजा (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना, जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना)। देवेषु (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। दिवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। मात्रया (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। वरिम्णा (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। प्रथन्तु (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। विधर्त्ता (वि - विशेष, धृ = धारण करना)। च (अव्यय)। अयम् (सर्वनाम)। अधिपतिः (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। सर्वे (सर्वनाम)। संविदाना (सम् - सम्यक्, विद = समझना, जानना)। नाकस्य (नक् - नक्क् = नष्ट होना, नष्ट करना, न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क - नाश होना)। पृष्ठे (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूंछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। स्वर्गे (सू- ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, पराक्रम होना, स्वृ-स्वर् = शब्द करना, गम् - जाना)। लोके (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। यजमानम् (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना, दान करना)। सादयन्तु (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)॥ 14 ॥

(170) सूक्त 4

734. अयम् पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिः तस्य, रथगृत्सः च रथौजाः च सेनानीग्रामण्यौ।
पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला च अप्सरसौ, दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः, पौरुषेयो वधः प्रहेतिः,
तेभ्यो नमो अस्तु, ते नो अवन्तु, ते नो मृडयन्तु, ते यम् द्विष्मो, यः च नो द्वेष्टि,
तम् एषाम् जम्भे दध्मः ॥ 15 ॥

मन्त्रार्थ - अयम् = यह। पुरो = पहले। हरिकेशः = हरिकेश, मनोहारी गतियुक्त। सूर्यरश्मिः = सूर्य की किरण युक्त। तस्य = उसका। रथगृत्सः = रमणीय वाणी वाला। च = और। रथौजाः = रथ के ओजयुक्त। च = और। सेनानी-ग्रामण्यौ = सेनानी और ग्रामणी। पुञ्जिकस्थला = सामूहिक स्थल युक्त। च = और। क्रतुस्थला = कर्मस्थल, कर्मशीलों का स्थल। च = और। अप्सरसौ = अप्स के रस, पालन रक्षण करने वालों की गति में। दङ्क्ष्णवः = डसने वाले, बोलने वाले, चमकने वाले। पशवो = पशु, बन्धन, दृष्टा, देखने वाला। हेतिः = हेति, गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि, प्रेरणायुक्त। पौरुषेयो = पौरुषेय, परिपूर्ण, अग्रगामी। वधः = वध करने वाला। प्रहेतिः = प्रहेति, प्रगतिशील, विद्वान्। तेभ्यो = उनके लिए। नमो = नमन। अस्तु = हो। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। अवन्तु = प्रकाशित करें, रक्षा करें। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। मृडयन्तु = सुख करो। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। यम् = जिसे, जिसको = जहाँ। द्विष्मो = द्वेष करते हैं। यः = जो। च = और। नो = हमका। द्वेष्टि = द्वेष करता है। तम् = उसे। एषाम् = इनका। जम्भे = गर्व में, नाश में। दध्मः = धारण करते हैं ॥ 15 ॥

भावार्थ - मन्त्र का भाव है कि जो गुणवान् तथा उत्तम भावना वाले सज्जन लोग हैं, उनको हम नमन करते हैं। वे हमें सुख प्रदान करते हैं। इसके साथ ही जो लोग द्वेष करने वाले हैं, तथा जिनके आचार-विचार-कर्म अनुचित हैं, सज्जनों के प्रति द्वेषपूर्ण हैं, हम उनको नमन नहीं कर सकते हैं क्योंकि दोषों तथा दोषियों का सम्मान करने से उनको प्रोत्साहन मिलता है। हमको भी ऐसे लोगों से द्वेष ही होता है। अतः हमसे द्वेष करने वाले तथा द्वेष के योग्य लोगों को हम विनाश की ओर पहुँचाते हैं। मन्त्र में कहा गया है कि यह हरिकेश अर्थात् मनोहारी गतियुक्त सूर्यरश्मि वाला, रमणीय वाणी वाला और रमणीय ओजस्वी अथवा रथ के बलयुक्त, सेनानी और ग्रामणी पुञ्जिक अर्थात् सामूहिक स्थल और कर्मस्थल अथवा कर्मशीलों का स्थल और अप्स के रस अथवा पालन रक्षण करने वालों की गति में दङ्क्षणवः अर्थात् डसने वाले, बोलने वाले, चमकने वाले पशु अर्थात् बन्धन, दृष्टा, देखने वाला, हेति अर्थात् गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि, प्रेरणायुक्त, पौरुषेय, परिपूर्ण, अग्रगामी, वध करने वाला, प्रहेति अर्थात् प्रगतिशील, विद्वान्, प्राप्ति, वृद्धि, प्रेरणायुक्त हैं, उनके लिए नमन हो। वे हमको प्रकाशित करें, रक्षा करें। वे हमको सुखी करें। वे जिसको द्वेष करते हैं, जो हमको द्वेष करता है, उस इनका। गर्व में, नाश में धारण करते हैं **॥ 15 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम)। पुरो (पुरो = पहले, अव्यय, पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। हरिकेशः (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना, किश्-केश्-किस् - गति करना, बाल उगना, व्याप्त होना)। सूर्यरश्मिः (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना, रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। तस्य (सर्वनाम)। रथगृत्सः (रम् = रमना, रमण करना, गृ-गृण् = शब्द करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना, जानना, समझना, निगलना, बहिर्गमन करना, गृ - शब्द करना)। च (अव्यय)। रथौजाः (रम् = रमना, रमण करना, ओज् - ओज होना, बल होना)। सेनानीग्रामण्यौ (सि–सिन् = बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना, ग्राम - बुलाना, बुद्धिपूर्वक कहना, एकत्र होना)। पुञ्जिकस्थला (पुञ्ज् - समूह बनाना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना)। क्रतुस्थला (कृ = करना, स्था - स्थित होना, ठहरना)। अप्सरसौ (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना, रस् - स्वाद लेना, शब्द करना, प्रीति करना, सृ - गति करना, सरकना, जाना, जानना, पाना)। दङ्क्षणवः (**दंश** = डसना, काटना, दंश मारना, देखना, चमकना, डंक मारने के समान बोलना)। पशवो (पश् - देखना, पश - बांधना, बेड़ी डालना, गांठ बांधना, फांस लगाना, जाना)। हेतिः (हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना)। पौरुषेयो (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना)। वधः (वध्-हन् = मारना)। प्रहेतिः (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना)। तेभ्यो (सर्वनाम)। नमो (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। अस्तु (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। ते (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। अवन्तु (अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना, प्रकाश करना)। ते (सर्वनाम)। मृडयन्तु (मृड - सुखी होना, सुख देना)। यम् (सर्वनाम)। द्विष्मो (द्विष् = द्वेष करना, विरोध करना, शत्रुता करना, मत्सर करना)। यः (सर्वनाम)। द्वेष्टि (द्विष् = द्वेष करना, विरोध करना, शत्रुता करना)। तम् (सर्वनाम)। एषाम् (सर्वनाम)। जम्भे (जम्भ् - नाश करना, गर्व करना, आलस्य होना)। दध्मः (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)॥ 15 ॥

735. अयम् दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनः च, रथेचित्रः च सेनानीग्रामण्यौ।
मेनका च सहजन्या च अप्सरसौ, यातुधाना हेती रक्षांसि प्रहेतिः, तेभ्यो नमो अस्तु,
ते नो अवन्तु ते नो मृडयन्तु, ते यम् द्विष्मो यः च नो द्वेष्टि, तम् एषाम् जम्भे दध्मः ॥16॥

मन्त्रार्थ - अयम् = यह। दक्षिणा = समृद्धि। विश्वकर्मा = विश्वकर्मा, सभी कर्म, सभी कर्म करने वाले द्वारा। तस्य = उसका। रथस्वनः = रथ-ध्वनि। च = और। रथेचित्रः = रथ में चित्र, रथ में आश्चर्य। च = और। सेनानीग्रामण्यौ = सेनानीग्रामण्य। मेनका = मेनका। च = और। सहजन्या = सहजन्या, लोगों के साथ, साथ उत्पन्न। च = और। अप्सरसौ = अप्स के रसों का, पालन रक्षण करने वालों की गति में। यातुधाना = यातुधान। हेती = हेति, गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि, प्रेरणा। रक्षांसि = रक्षक। प्रहेतिः = प्रहेति, प्रगतिशील, विद्वान्। तेभ्यो = उनके लिए। नमो = नमन। अस्तु = हो। ते =

तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। अवन्तु = प्रकाशित करें, रक्षा करें। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। मृडयन्तु = सुख करो। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। यम् = जिसे, जिसको = जहाँ। द्विष्मो = द्वेष करते हैं। यः = जो। च = और। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। द्वेष्टि = द्वेष करता है। तम् = उसको, उसे। एषाम् = इनका। जम्भे = गर्व करते हैं, नाश करते हैं। दध्मः = धारण करते हैं।। 16 ।।

भावार्थ - मन्त्र का भाव है कि जो गुणवान् तथा उत्तम भावना वाले सज्जन लोग हैं, उनको हम नमन करते हैं। वे हमें सुख प्रदान करते हैं। इसके साथ ही जो लोग द्वेष करने वाले हैं, तथा जिनके आचार-विचार-कर्म अनुचित हैं, सज्जनों के प्रति द्वेषपूर्ण हैं, हम उनको नमन नहीं कर सकते हैं क्योंकि दोषों तथा दोषियों का सम्मान करने से उनको प्रोत्साहन मिलता है। हमको भी ऐसे लोगों से द्वेष ही होता है। अतः हमसे द्वेष करने वाले तथा द्वेष के योग्य लोगों को हम विनाश की ओर पहुँचाते हैं।। 16 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम)। दक्षिणा (दक्ष् - बढ़ना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना, दक्ष होना, चलना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, मार डालना)। विश्वकर्मा (विश्व - सभी, कृ - करना)। तस्य (सर्वनाम)। रथस्वनः (रथ = जाना, ले जाना, स्वन = शब्द करना, आवाज करना)। च (अव्यय)। रथेचित्रः (रथ = जाना, ले जाना,रम् = रमना, क्रीडा करना, चित्र् = चित्र बनाना, आश्चर्य करना, चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। सेनानीग्रामण्यौ (सि–सिन् = बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना, ग्राम - बुलाना, बुद्धिपूर्वक कहना, एकत्र होना)। मेनका (मी-मे - ग्रहण करना, प्रतिदान लेना, शीघ्र समझना, मेध् - समझना, जानना, सङ्गति करना, मेल करना, हिंसा करना)। सहजन्या (सह = साथ, सहित (सर्वनाम), सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ठ होना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। अप्सरसौ (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना, रस् - स्वाद लेना, शब्द करना, प्रीति करना, सृ - गति करना, सरकना, जाना, जानना, पाना)। यातुधाना (या - जाना, यत् - यत्न करना, प्रयास करना, उद्योग करना, दुःख देना, छाया-आच्छादन करना, रोकना, धा = धारण करना)। हेती (हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना)। रक्षांसि (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। प्रहेतिः (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना)। तेभ्यो (सर्वनाम)। नमो (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। अस्तु (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। ते (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। अवन्तु (अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना, प्रकाश करना)। मृडयन्तु (मृड - सुखी होना, सुख देना)। यम् (सर्वनाम)। द्विष्मो (द्विष् = द्वेष करना, विरोध करना, शत्रुता करना, मत्सर करना)। यः (सर्वनाम)। द्वेष्टि (द्विष् = द्वेष करना, विरोध करना, शत्रुता करना)। तम् (सर्वनाम)। एषाम् (सर्वनाम)। जम्भे (जम्भ् - नाश करना, गर्व करना, आलस्य होना)। दध्मः (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)।। 16 ।।

736. अयम् पश्चात् विश्वव्यचाः तस्य, रथप्रोतः च असमरथः च सेनानीग्रामण्यौ।
प्रम्लोचन्ती च अनुम्लोचन्ती च अप्सरसौ, व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिः, तेभ्यो नमो अस्तु,
ते नो अवन्तु ते नो मृडयन्तु, ते यम् द्विष्मो यः च नो द्वेष्टि, तम् एषाम् जम्भे दध्मः ।। 17 ।।

मन्त्रार्थ - अयम् = यह। पश्चात् = पीछे या पश्चिम दिशा से। विश्वव्यचाः= सर्वव्यापी। तस्य = उसका। रथप्रोतः = रथप्रोत, रथ की गति। च = और। असमरथः = प्रकाशमान रथवाला, असमान रथ वाला। च = और। सेनानी-ग्रामण्यौ = सेनानी और ग्रामणी। प्रम्लोचन्ती = प्रमुख विद्वान्, ज़ानते हुए। च = और। अनुम्लोचन्ती = अनुगमन करती हुई। च = और। अप्सरसौ = अप्स के रसों में, पालन रक्षण करने वालों की गति में। व्याघ्रा = व्याघ्र, विशेष घ्राणयुक्त। हेतिः = हेति, गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि, प्रेरणा युक्त। सर्पाः = सर्प। प्रहेतिः = प्रहेति, प्रगतिशील, विद्वान्। तेभ्यो = उनके लिए। नमो = नमन। अस्तु = हो। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। अवन्तु = प्रकाशित करें, रक्षा करें। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। मृडयन्तु = सुख करो। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। यम् = जिसे, जिसको = जहाँ। द्विष्मो = द्वेष करते हैं। यः = जो। च = और। नो = हमको। द्वेष्टि = द्वेष करता है। तम् = उसे। एषाम् = इनका। जम्भे = गर्व करते हैं, नाश करते हैं। दध्मः = धारण करते हैं।। 17 ।।

भावार्थ - मन्त्र का भाव है कि जो गुणवान् तथा उत्तम भावना वाले सज्जन लोग हैं, उनको हम नमन करते हैं। वे हमें सुख प्रदान करते हैं। इसके साथ ही जो लोग द्वेष करने वाले हैं, तथा जिनके आचार-विचार-कर्म अनुचित हैं, सज्जनों के प्रति द्वेषपूर्ण हैं, हम उनको नमन नहीं कर सकते हैं क्योंकि दोषों तथा दोषियों का सम्मान करने से उनको प्रोत्साहन मिलता है। हमको भी ऐसे लोगों से द्वेष ही होता है। अतः हमसे द्वेष करने वाले तथा द्वेष के योग्य लोगों को हम विनाश की ओर पहुँचाते हैं।**॥ 17 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम)। पश्चात् (अव्यय)। विश्वव्यचाः (व्यच - व्यापना, जाना)। तस्य (सर्वनाम)। रथप्रोतः (रम् = रमना, रमण करना, प्रु - अधिक होना, गति करना, हिलना)। च (अव्यय)। असमरथः (अ - नहीं, सम = न घबराना, एक समान रहना, अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना, रम् = रमना, रमण करना)। सेनानीग्रामण्यौ (सि–सिन् = बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना, ग्राम - बुलाना, बुद्धिपूर्वक कहना, एकत्र होना)। प्रम्लोचन्ती (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, म्लुच् - जाना, जानना, पाना)। अनुम्लोचन्ती (अनु = पश्चात्, पीछे, म्लुच् - जाना, जानना, पाना)। अप्सरसौ (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना, रस् - स्वाद लेना, शब्द करना, प्रीति करना, सृ - गति करना, सरकना, जाना, जानना, पाना)। व्याघ्रा (वि - विशेष, आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण (उपसर्ग), अघ - पाप करना, अपराध करना, घ्रा-जिघ्र - सूंघना, चूमना)। हेतिः (हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना)। सर्पाः (सृप् - जाना, सरकना, जानना, पाना, चलना)। प्रहेतिः (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना)। तेभ्यो (सर्वनाम)। नमो (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। अस्तु (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। ते (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। अवन्तु (अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना, प्रकाश करना)। मृडयन्तु (मृड - सुखी होना, सुख देना)। यम् (सर्वनाम)। द्विष्मो (द्विष् = द्वेष करना, विरोध करना, शत्रुता करना, मत्सर करना)। यः (सर्वनाम)। द्वेष्टि (द्विष् = द्वेष करना, विरोध करना, शत्रुता करना)। तम् (सर्वनाम)। एषाम् (सर्वनाम)। जम्भे (जम्भ् - नाश करना, गर्व करना, आलस्य होना)। दध्मः (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)॥ 17 ॥

737. अयम् उत्तरात् संयद्वसुः तस्य, तार्क्ष्यः च अरिष्टनेमिः च सेनानीग्रामण्यौ।
विश्वाची च घृताची च अप्सरसौ, आपो हेतिः वातः प्रहेतिः, तेभ्यो नमो अस्तु,
ते नो अवन्तु ते नो मृडयन्तु, ते यम् द्विष्मो यः च नो द्वेष्टि, तम् एषाम् जम्भे दध्मः ॥ 18 ॥

मन्त्रार्थ - अयम् = यह। उत्तरात् = उत्तर से, उत्तर दिशा से। संयद्वसुः = संयद्वसु, सम्यक् प्रयास करने वाला वसु। तस्य = उसका। तार्क्ष्यः = गमनीय, गम्य, प्राप्य, पाने योग्य, विद्वान्। च = और। अरिष्टनेमिः = अत्यन्त हिंसक, गतिशील, व्यापक को जानने, प्राप्त करने वाले। च = और। सेनानी-ग्रामण्यौ = सेनानी और ग्रामणी। विश्वाची = विश्व-मान्य, सर्व-मान्य, विश्व व्यापी। च = और। घृताची = प्रकाशगामी। च = और। अप्सरसौ = अप्स के रसों का, पालन रक्षण करने वालों की गति में। आपो = आप, व्याप्त, व्यापक । हेतिः = हेति, गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि, प्रेरणा युक्त। वातः = वायु के समान तीव्र गति वाले। प्रहेतिः = प्रहेति, प्रगतिशील, विद्वान्। तेभ्यो = उनके लिए। नमो = नमन। अस्तु = हो। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। अवन्तु = प्रकाशित करें, रक्षा करें। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। मृडयन्तु = सुख करो। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। यम् = जिसे, जिसको = जहाँ। द्विष्मो = द्वेष करते हैं। यः = जो। च = और। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। द्वेष्टि = द्वेष करता है। तम् = उसको, उसे। एषाम् = इनका। जम्भे = गर्व करते हैं, नाश करते हैं। दध्मः = धारण करते हैं।**॥ 18 ॥**

भावार्थ - मन्त्र का भाव है कि जो गुणवान् तथा उत्तम भावना वाले सज्जन लोग हैं, उनको हम नमन करते हैं। वे हमें सुख प्रदान करते हैं। इसके साथ ही जो लोग द्वेष करने वाले हैं, तथा जिनके आचार-विचार-कर्म अनुचित हैं, सज्जनों के प्रति द्वेषपूर्ण हैं, हम उनको नमन नहीं कर सकते हैं क्योंकि दोषों तथा दोषियों का सम्मान करने से उनको प्रोत्साहन मिलता है। हमको भी ऐसे लोगों से द्वेष ही होता है। अतः हमसे द्वेष करने वाले तथा द्वेष के योग्य लोगों को हम विनाश की ओर पहुँचाते हैं।**॥ 18 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम)। उत्तरात् (सर्वनाम)। संयद्वसुः (सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, यत

-यत्न करना, उद्योग करना, निश्चय करना, ठहराना, वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। तस्य (सर्वनाम)। तार्क्ष्यः (तृक्ष् -चलना, जाना, जानना, पाना)। च (अव्यय)। अरिष्टनेमिः (अ - नहीं, ऋ-अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, रिष- हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, मारने का यत्न करना, नी - जाना, जानना, पाना, प्राप्त करना, पहुँचना)। सेनानीग्रामण्यौ (सि–सिन् = बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना, ग्राम - बुलाना, बुद्धिपूर्वक कहना, एकत्र होना)। विश्वाची (विश् = भीतर जाना, सभी ओर फैलना, अच् - जाना, चलना, आदर करना, मांगना)। घृताची (घृ -गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना, अच् - जाना, चलना, आदर करना, मांगना)। अप्सरसौ (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना, रस् - स्वाद लेना, शब्द करना, प्रीति करना, सृ - गति करना, सरकना, जाना, जानना, पाना)। आपो (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। हेतिः (हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना)। वातः (वात - सुखी होना, आनन्द करना, सेवा करना, जाना, वा - गति करना, बहना, पवन की भाँति चलना)। प्रहेतिः (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना)। तेभ्यो (सर्वनाम)। नमो (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। अस्तु (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। ते (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। अवन्तु (अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना, प्रकाश करना)। मृडयन्तु (मृड - सुखी होना, सुख देना)। यम् (सर्वनाम)। द्विष्मो (द्विष् = द्वेष करना, विरोध करना, शत्रुता करना, मत्सर करना)। यः (सर्वनाम)। द्वेष्टि (द्विष् = द्वेष करना, विरोध करना, शत्रुता करना)। तम् (सर्वनाम)। एषाम् (सर्वनाम)। जम्भे (जम्भ् - नाश करना, गर्व करना, आलस्य होना)। दध्मः (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)॥ 18॥

738. अयम् उपरि अर्वाक् वसुः तस्य, सेनजित् च सुषेणः च सेनानीग्रामण्यौ।
उर्वशी च पूर्वचित्तिः च अप्सरसौ, अवस्फूर्जनः हेतिः विद्युत् प्रहेतिः, तेभ्यो नमो अस्तु,
ते नो अवन्तु ते नो मृडयन्तु, ते यम् द्विष्मो यः च नो द्वेष्टि, तम् एषाम् जम्भे दध्मः॥19॥

मन्त्रार्थ - अयम् = यह। उपरि = ऊपर। अर्वाक् = पहले। वसुः = वसु, स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले। तस्य = उसका। सेनजित् = सेना को जीतने वाला। च = और। सुषेणः सुषेणः = अच्छी सेना वाला। च = और। सेनानीग्रामण्यौ = सेनानी और ग्रामणी। उर्वशी = उर्वशी, बहुत इच्छा, गति युक्त, बहु-दुःखदायी। च = और। पूर्वचित्तिः = पूर्वचित, पूर्व चेतना, पूर्ण चेतना। च = और। अप्सरसौ = अप्स के रसों का, पालन रक्षण करने वालों की गति में। अवस्फूर्जनः = मेघ-गर्जन। हेतिः = हेति, गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि, प्रेरणा। विद्युत् = विशेष प्रकाशमान। प्रहेतिः = प्रहेति, प्रगतिशील, विद्वान्। तेभ्यो = उनके लिए। नमो = नमन। अस्तु = हो। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। अवन्तु = प्रकाशित करें, रक्षा करें। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। नो = हमको। मृडयन्तु = सुखी करो। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। यम् = जिसे, जिसको = जहाँ। द्विष्मो = द्वेष करते हैं। यः = जो। च = और। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। द्वेष्टि = द्वेष करता है। तम् = उसको, उसे। एषाम् = इनका। जम्भे = गर्व करते हैं, नाश करते हैं। दध्मः = धारण करते हैं॥ 19॥

भावार्थ - मन्त्र का भाव है कि जो गुणवान् तथा उत्तम भावना वाले सज्जन लोग हैं, उनको हम नमन करते हैं। वे हमें सुख प्रदान करते हैं। इसके साथ ही जो लोग द्वेष करने वाले हैं, तथा जिनके आचार-विचार-कर्म अनुचित हैं, सज्जनों के प्रति द्वेषपूर्ण हैं, हम उनको नमन नहीं कर सकते हैं क्योंकि दोषों तथा दोषियों का सम्मान करने से उनको प्रोत्साहन मिलता है। हमको भी ऐसे लोगों से द्वेष ही होता है। अतः हमसे द्वेष करने वाले तथा द्वेष के योग्य लोगों को हम विनाश की ओर पहुँचाते हैं।**॥ 19 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम)। उपरि (सर्वनाम, अव्यय)। अर्वाक् (अव्यय)। वसुः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। तस्य (सर्वनाम)। सेनजित् (सिञ् - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना, जि - सर्वोत्कर्ष से रहना,

सब से बढ़ के होना, जीतना, पराभव करना)। च (अव्यय)। सुषेणः (सु - अच्छा, सिञ् - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। सेनानीग्रामण्यौ (सि–सिन् = बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना, ग्राम - बुलाना, बुद्धिपूर्वक कहना, एकत्र होना)। उर्वशी (उर् = विस्तार करना, जाना, चलना, निरन्तर चलना, उर्व - सहना, समर्थ होना, मार डालना या दुःख देना, पीड़ा करना, वश् - इच्छा करना, चाहना, चमकना, शी - शयन करना, सोना)। पूर्वचित्तिः (पूर्व = पूर्व, पहले, सर्वनाम, पूर्व - पूर्ण करना, भरना, निवास करना, आश्चर्य करना, आमन्त्रण करना, चि - चयन करना, चुनना, एकत्र करना, चित् - विचार करना, चिन्तन करना)। अप्सरसौ (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना, रस् - स्वाद लेना, शब्द करना, प्रीति करना, सृ - गति करना, सरकना, जाना, जानना, पाना)। अवस्फूर्जनः (अ - नहीं, अव = नीचे, दूर, प्राप्त, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना, स्फुर्ज् = देवशब्द होना, मेघ-गर्जना होना)। हेतिः (हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना)। विद्युत् (वि - विशेष, विद - शरीर की सुध रखना, समझना, जानना, समझा के कहना, रहना, वास करना, वसना, स्थिर रहना, विद्यमान होना, विचार करना, जीवन होना, द्युत् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना)। प्रहेतिः (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना)। तेभ्यो (सर्वनाम)। नमो (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। अस्तु (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। ते (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। अवन्तु (अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना, प्रकाश करना)। मृडयन्तु (मृड - सुखी होना, सुख देना)। यम् (सर्वनाम)। द्विष्मो (द्विष् = द्वेष करना, विरोध करना, शत्रुता करना, मत्सर करना)। यः (सर्वनाम)। द्वेष्टि (द्विष् = द्वेष करना, विरोध करना, शत्रुता करना)। तम् (सर्वनाम)। एषाम् (सर्वनाम)। जम्भे (जम्भ् - नाश करना, गर्व करना, आलस्य होना)। दध्मः (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)॥ 19॥

(171) सूक्त 5

739. अग्निः मूर्द्धा दिवः, ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपाम् रेतांसि जिन्वति॥20॥

मन्त्रार्थ - अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। मूर्द्धा = उच्च। दिवः = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। ककुत्पतिः = गर्वित पति, गर्वितों का ईश। पृथिव्या = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। अयम् = यह। अपाम् = अपा को, पालकों का। रेतांसि = विद्या, गतिशीलता। जिन्वति = सन्तुष्ट करता है, प्रकाशित होता है।**॥20॥**

भावार्थ - अग्नि स्वरूप परमात्मा अथवा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् उच्च, दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय, ककुत्पति अर्थात् गर्वित पति, गर्वितों का ईश पृथिव्य अर्थात् पृथ्वी योग्य, पृथिवी के पालकों का विद्या, गतिशीलता को प्रकाशित करता है **॥ 20॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। मूर्द्धा (मुर् - घेरना, लपेटना, मूर्द्ध - उच्च होना)। दिवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। ककुत्पतिः (कक् = गर्व करना, चञ्चल होना, प्यासा होना, पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। पृथिव्या (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। अयम् (सर्वनाम)। अपाम् (अप - पालन करना)। रेतांसि (रि - जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, री - गति करना, झरना-टपकना, लेना, शब्द करना, सुनना)। जिन्वति (जिन्व् = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, आनन्द होना, मुक्त करना, प्रकाशित होना, बोलना)।20॥

740. अयम् अग्निः सहस्रिणो, वाजस्य शतिनः पतिः। मूर्धा कवी रयीणाम्॥21॥

मन्त्रार्थ - अयम् = यह। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। सहस्रिणो = सहस्री, हजारों से युक्त। शतिनः = सौ युक्त का। वाजस्य = विद्याओं का, गतियों का। पतिः = ऐश्वर्यवान्, ईश। रयीणाम् = विद्यावानों, प्रगतिशीलों का। मूर्धा = उच्च। कवी = कवि (है)**॥21॥**

भावार्थ - यह अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान सहस्रों, सैकड़ों विद्याओं का, गतियों का ईश

तथा विद्यावानों, प्रगतिशीलों के लिए उत्तम कवि (है) ॥ **21** ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। सहस्रिणो (संख्या)। वाजस्य (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। शतिनः (सर्वनाम)। पतिः (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। मूर्धा (मुर् - घेरना, लपेटना, मूर्द्ध- उच्च होना)। कवी (कु, कव् = शब्द करना, कविता करना, वर्णन करना, चित्र खींचना)। रयीणाम् (रय्-रि, री - चलना, जाना, जानना, पाना, री-रै - शब्द करना)॥ 21॥

741. त्वाम् अग्ने पुष्करात्, अधि अथर्वा निः अमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ 22 ॥

मन्त्रार्थ- त्वाम् = तुमको, तुम्हारा। अग्ने = हे अग्नि। पुष्करात् = पुष्कर से, पुष्टिकारी से। अधि = अधिगत, उच्च। अथर्वा = अविचलित-अहिंसक। निः = बिना, बाहर, निश्चित। अमन्थत = मथा, मन्थन किया। मूर्ध्नो = उच्च। विश्वस्य = विश्व का, सभी का। वाघतः = उत्थान से॥ 22॥

भावार्थ - परमात्मा की वेदवाणी किसी देश या समुदाय के लिए नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए है। विश्व के पोषण की भावना से कुटिलता, हिंसा तथा विचलित होने जैसे दुर्गुणों तथा दुर्बलताओं से मुक्त होकर वेद का स्वाध्याय करना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - त्वाम् (सर्वनाम)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पुष्करात् (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, रक्षण करना, वृद्धि करना, विभाग करना, कृ = करना)। अधि (उपसर्ग)। अथर्वा (अ - नहीं, थर्व - अस्थिर होना, हिंसा करना)। निः (अव्यय)। अमन्थत (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, मथ् - मथना, मन्थन करना)। मूर्ध्नो (मुर् - घेरना, लपेटना, मूर्द्ध - उच्च होना)। विश्वस्य (सर्वनाम)। वाघतः (वघ् - रुकना, उठना, उत्थान करना)॥ 22॥

(172) सूक्त 6

742. भुवो यज्ञस्य रजसः च नेता, यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः।
दिवि मूर्द्धानम् दधिषे स्वर्षाम्, जिह्वाम् अग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ 23 ॥

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि। यत्रा = जहाँ। यज्ञस्य = यजन का। भुवो = वर्तमान, सृष्टि। च = और। रजसः = लोक का, रजस् का। नेता = ले जाने वाला। नियुद्भिः= नियुतों द्वारा, निश्चित रूप से, निरन्तर युक्तों द्वारा। शिवाभिः = शिवों द्वारा, कल्याणकारकों द्वारा। सचसे = अभिसिञ्चन करते हो। दिवि = दिव्यता में। मूर्द्धानम् = उच्च। स्वर्षाम् = ऐश्वर्यों का। दधिषे = धारण करते हो। जिह्वाम् = जिह्वा को, गति, ज्ञान, प्राप्ति को। हव्यवाहम् = हव्य का वहन करने वाला, आदान-प्रदान योग्य को ले जाने वाला। चकृषे = करते हो ॥ **23** ॥

भावार्थ - हे अग्नि, यजन का वर्तमान, सृष्टि और रजस् अर्थात् लोक का नेता **अर्थात्** ले जाने वाला नियुतों द्वारा, निश्चित निरन्तर युक्तों, शिवों अर्थात् कल्याणकारकों द्वारा अभिसिञ्चन करते हो॥ दिव्यता में उच्च ऐश्वर्यों का धारण करते हो॥ जिह्वाम् = जिह्वा अर्थात् गति, ज्ञान, प्राप्ति को। हव्यवाहम् = हव्य का वहन करने वाला, आदान-प्रदान योग्य को ले जाने वाला करते हो ॥ **23** ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - भुवो (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। यज्ञस्य (यज्ञ = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। रजसः (रज - रज होना, धूल होना, सूक्ष्म होना, रंग देना, रंगना, लीन होना)। च (अव्यय)। नेता (नी = ले जाना)। यत्रा (यत्र = जहाँ (सर्वनाम) यत - यत्न करना, उद्योग करना, निश्चय करना, ठहराना)। नियुद्भिः(नि - निश्चित रूप से, निरन्तर, यु - मिलाना, युक्त करना, जोड़ना, अलग करना)। सचसे (सच् - सेवा करना, सन्तुष्ट करना, सींचना, पूर्णतया समझना, सम्बन्धी होना)। शिवाभिः (शिव् = कल्याण करना)। दिवि (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। मूर्द्धानम् (मुर् - घेरना, लपेटना, मूर्द्ध - उच्च होना)। दधिषे (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। स्वर्षाम्

(सू- ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, पराक्रम होना, स्वृ-स्वर् = शब्द करना)। जिह्वाम् (जिह = जाना, जानना, पाना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। चकृषे (कृ = करना)। हव्यवाहम् (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना, वह् - वहन करना, ले जाना)॥ 23॥

743. अबोधि अग्निः समिधा जनानाम्, प्रति धेनुम् इव आयतीम् उषासम्।
यह्वा इव प्र वयाम् उज्जिहानाः, प्र भानवः सिस्रते नाकम् अच्छ॥24॥

मन्त्रार्थ - अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। समिधा = सम्यक् प्रकाश द्वारा। जनानाम् = जनों का। प्रति = सम्बन्ध में, प्रत्येक में। धेनुम् = धेनु, प्रिय, पालन करने वाले। इव = की भाँति, के समान। आयतीम् = आयती को, शब्दकर्ता को। उषासम् = उत्कृष्ट गति, ज्ञान वाले। अबोधि = बोध हुआ। यह्वा = महान्। इव = की भाँति, के समान। प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। वयाम् = वय या रचना युक्त को। उज्जिहानाः = उत्कृष्ट गति, ज्ञान वाले। प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। भानवः = प्रकाशमान। सिस्रते = प्राप्त करते हैं। नाकम् = नाक, अक रहित, अकुटिल, अविचल। अच्छ = अच्छा, निर्मल करो **॥ 24॥**

भावार्थ - अग्नि स्वरूप परमात्मा अथवा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् ने जनों के प्रति धेनु अर्थात् प्रिय, पालन करने वाले के समान सम्यक् प्रकाश द्वारा शब्दकर्ता उषा को बोध कराया॥ प्रकृष्ट वय या रचनाकार अथवा सृजनशील परमात्मा अथवा ऐसे जनों को उत्कृष्ट गति, ज्ञान वाले उपासक प्रकृष्ट प्रकाशमान महान् की भाँति **प्राप्त करते हैं**। नाक अर्थात् अक रहित, अकुटिल, अविचल को अच्छा, निर्मल करो **॥ 24॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अबोधि (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, बुध - बोध होना, जानना, समझना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। समिधा (सम् = सम्यक्, भलीभांति, इत् - इन्ध = प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना, प्रकाश करना)। जनानाम् (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। प्रति (अव्यय)। धेनुम् (धिन - प्रेम करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, धी - बुद्धि होना, धे - पालना, पीना)। इव (अव्यय)। आयतीम् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, आय - शब्द करना, शासन करना, ई - जाना, यत - यत्न करना, उद्योग करना, निश्चय करना, ठहराना)। उषासम् (उष् = प्रभात होना)। यह्वा (यह्व्-मह = सम्मान करना, पूजा करना)। इव (अव्यय)। प्र (उपसर्ग)। वयाम् (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना)। उज्जिहानाः (उत् - ऊपर, जिह् = चलना, जाना, जानना, पाना)। प्र (उपसर्ग)। भानवः (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। सिस्रते (सृ = जाना, सरकना, बहना, टपकना)। नाकम् (नक् - नक्क् = नष्ट होना, नष्ट करना, न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क - नाश होना)। अच्छ (अच्छ् - अच्छा होना, निर्मल करना) **॥ 24॥**

744. अवोचाम कवये मेध्याय, वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे।
गविष्ठिरो नमसा स्तोमम् अग्नौ, दिवीव रुक्मम् उरुव्यञ्चम अश्रेत्॥25॥

मन्त्रार्थ - वन्दारु = हे वन्दनीय। कवये = कवि के लिए। मेध्याय = मेधावी के लिए। वृषभाय = पराक्रमी के लिए। वृष्णे = उच्च पराक्रमी के लिए। वचो = वचन को। अवोचाम् = बोलूँ॥ गविष्ठिरो = वाणी में स्थिर ने। नमसा = नमन द्वारा। स्तोमम् = स्तोम को। रुक्मम् = रुक्म को, रुचि को, प्रसन्नता को। उरुव्यञ्चम् = बहुमान करने वाले को। अग्नौ = अग्नि मे। दिवीव = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय के समान। अश्रेत् = व्यापक, आश्रय किया **॥ 25॥**

भावार्थ -हे वन्दनीय परमात्मा। कवये = कवि अर्थात् शब्दकर्ता उपदेशक के लिए, मेधावी के लिए, पराक्रमी के लिए, उच्च पराक्रमी के लिए वचन बोलूँ॥ वाणी में स्थिर अर्थात् वेदवाणी में अविचल रहने वाले तथा अपने वचन के प्रति स्थिर रहने वाले ने नमन पूर्वक स्तोम अर्थात् स्तुति को रुचि, प्रसन्नता पूर्वक बहुमान करने वाले को अग्नि स्वरूप परमात्मा मे दिव्य, तेज के समान व्यापक, आश्रय किया **॥ 25॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अवोचाम् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, वच्-वद् - बोलना)। कवये (कु, कव् = शब्द करना, कविता करना, वर्णन करना, चित्र खींचना)। मेध्याय (मेधा - शीघ्र समझना, मेध् - समझना, जानना,

सङ्गति करना, मेल करना, हिंसा करना)। वचो (वच् - बोलना, कहना, समझाना)। वन्दारु (वन्द् = स्तुति करना, प्रणाम करना, वन्दना करना, प्रशंसा करना)। वृषभाय (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। वृष्णे (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। गविष्ठिरो (गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना, गम् = जाना, स्था - स्थिर होना)। नमसा (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। स्तोमम् (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। अग्नौ (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। दिवीव (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना, इव = समान, की भाँति, के समान (अव्यय))। रुक्मम् (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। उरुव्यञ्चम् (उरु - बहुत, अधिक, उर् = विस्तार करना, जाना, चलना, निरन्तर चलना, वि - विशेष, अञ्च् - जाना, पूजा करना, मान करना, शोभित करना, मांगना, चाहना, प्रकट करना)। अश्रेत् (अ - नहीं, श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना) ॥ 25 ॥

745. अयम् इह प्रथमो धायि धातृभिः, होता यजिष्ठो अध्वरेषु ईड्यः।
यम् अप्नवानो भृगवो विरुरुचुः, वनेषु चित्रम् विभ्वम् विशेविशे ॥ 26 ॥

मन्त्रार्थ - अयम् = यह। होता = आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाले। यजिष्ठो = यजिष्ठ, अतिशय यजन करने वाला। अध्वरेषु = अहिंसकों में। ईड्यः = स्तुत्य। इह = यहां। धातृभिः = धारण करने वालों द्वारा, धाताओं द्वारा। प्रथमो = प्रथम। धायि = धारण किया गया है। यम् = जिसे। अप्नवानो = अप्नवान, पालन-रक्षण करने वाली वाणी बोलने वाले। भृगवो = भृगुगणों अर्थात् भरण करने वाले प्रकाशमानों ने। वनेषु = वाणी में, वनों में। चित्रम् = चित्र को, अद्भुत चेतना को, आश्चर्यरूप को। विभ्वम् = विभु को। विशेविशे = सभी विशों में, प्रतिष्ठितों में, प्रवेशियों में। विरुरुचुः = प्रकाशित किया, प्रकाशित करें **॥ 26 ॥**

भावार्थ - यह यजिष्ठ अर्थात् अतिशय यजन करने वाला अहिंसकों में स्तुत्य होता **अर्थात्** आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाला यहाँ धातृओं **अर्थात्** धारण करने वालों द्वारा, धाताओं द्वारा प्रथम धारण किया गया है। जिसे अप्नवान, पालन-रक्षण करने वाली वाणी बोलने वाले भृगुगणों अर्थात् भरण करने वाले प्रकाशमानों ने वाणी में, वनों में चित्र अर्थात् आश्चर्यरूप अद्भुत चेतना विभु अर्थात् परमात्मा को सभी विशों में, प्रतिष्ठितों में, प्रवेशियों में प्रकाशित किया, प्रकाशित करें **॥ 26 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम)। इह (सर्वनाम)। प्रथमो (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना)। धायि (धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)। धातृभिः (धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)। होता (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। यजिष्ठो (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। अध्वरेषु (अ - नहीं, ध्वृ-ध्वर् = हिंसा करना, टेढ़ा करना, झुकाना, मार डालना, वर्णन करना)। ईड्यः (ईड - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। यम् (सर्वनाम)। अप्नवानो (अप् - पालन करना, वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना)। भृगवो (भृज्-भ्रज् = चमकना, तेज होना, जानना, भृ - भरण-पोषण, धारण करना, गु - शब्द करना, मनन करना)। विरुरुचुः (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। वनेषु (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना)। (चित्र् = चित्र बनाना, आश्चर्य करना, चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। विभ्वम् (वि = विशेष, विना, विलोम, भू - होना, उत्पन्न होना, होना, प्राप्त होना, एकत्र करना, कल्पना करना)। विशेविशे (विश - भीतर जाना, चारों ओर फैलना) ॥ 26 ॥

746. जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविः, अग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे।

घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा, द्युमत् वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥27॥

मन्त्रार्थ - जनस्य = जन का। गोपा = रक्षक, शब्द करने वालों, मननशीलों, उपदेशकों के पालक-रक्षक। जागृविः = जागा हुआ, जाग्रत। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। सुदक्षः = सुदक्ष, अच्छी तरह दक्ष ने। सुविताय = सुन्दर, विशेष रक्षण-पालन करने वाले के लिए। नव्यसे = नवीनता के लिए, स्तुतियोग्य के लिए। अजनिष्ट = उत्पन्न किया॥ घृतप्रतीको = घृत-प्रतीक, प्रकाशगामी। बृहता = महान्, बड़ा, विराट, बृहत्। दिविस्पृशा = दिव्य को स्पर्श करने वाले। द्युमत् = अग्रगामी, प्रकाशमान ने। भरतेभ्यः = भरण करने वालों के लिए। शुचिः= शुद्धता को। वि = विशेष। भाति = प्रकाशित होता है॥ **27॥**

भावार्थ - जन का रक्षक, शब्द करने वालों, मननशीलों, उपदेशकों के पालक-रक्षक, जाग्रत अग्नि स्वरूप परमात्मा अथवा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्, उत्तम दक्ष ने सुन्दर, विशेष रक्षण-पालन करने वाले के लिए, स्तुतियोग्य के लिए। उत्पन्न किया॥ घृत-प्रतीक, प्रकाशगामी महान्, बृहत् दिव्य को स्पर्श करने वाले अग्रगामी, प्रकाशमान भरण करने वालों के लिए पवित्र परमात्मा विशेष प्रकाशित करता है। परमात्मा सदा सर्वत्र प्रकाशमान है, परन्तु वह गुणवानों को विशेष प्रकाश प्रदान करता है **। 27॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - जनस्य (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। गोपा (गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना, गुप् = रक्षा करना, चमकना, बोलना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। अजनिष्ट (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अज - जाना, गति करना, हांकना, दौड़ाना, फेंकन, जन - उत्पन्न करना)। जागृविः (जागृ - जगना, नींद न लेना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। सुदक्षः (सु - सुन्दर, अच्छा, दक्ष् - बढ़ना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना, दक्ष होना, चलना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, मार डालना)। सुविताय (सु - सुन्दर, अच्छा, वि - विशेष, ताय - रक्षा करना, पालन करना, तानना, फैलाना)। नव्यसे (नु-नव् - प्रशंसा करना, स्तुति करना, नूतन होना, नया होना)। घृतप्रतीको (घृ -गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना, प्र - प्रकृष्ट, अधिक, तिक् - गति करना, चाल चलना, दुःख देने का प्रयास करना, तीक् - जाना, जानना, पाना)। बृहता (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। दिविस्पृशा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना, स्पृश - स्पर्श करना, छूना, संयोग करना, हाथ से लेना)। द्युमत् (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना)। वि (उपसर्ग)। भाति (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। भरतेभ्यः (भृ = पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)। शुचिः (शुच्-शुक्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना)॥ 27॥

747. त्वाम् अग्ने अङ्गिरसो गुहा हितम्, अनु अविन्दन् शिश्रियाणम् वनेवने।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्, त्वाम् आहुः सहसः पुत्रम् अङ्गिरः ॥28॥

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि। त्वाम् = तुमको। अङ्गिरसो = विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। गुहा = गुह्य। हितम् = हित, गति, वृद्धि को। शिश्रियाणम् = सेवा करने वाले, आश्रय देने वाले को। वनेवने = वाणी में, वनों में। अनु = पश्चात्, अनुकूल। अविन्दन् = प्राप्त किया॥ स = उसने। सहो = सहनशील। महत् = महान्। मथ्यमानः = मन्थन करते हुए, मन्थन करने वाले। जायसे = उत्पन्न होते हो। अङ्गिरः = विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। त्वाम् = तुमको। सहसः = सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ट। पुत्रम् = पुत्र को। आहुः = कहा, कहते हैं॥ **28॥**

भावार्थ - हे अग्नि, विद्वानों ने गुह्य हित, गति, वृद्धि सेवा करने वाले, आश्रय देने वाले तुमको शब्द-शब्द में प्राप्त किया॥ वह तुम सहनशील महान मन्थन करते हुए उत्पन्न होते हो॥ अङ्गिरः **अर्थात्** विद्वान्, तुमको गतिशील सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ट कहते हैं। विद्वान् उपासक मनीषी परमात्मा को विविध गुणों से स्मरण करते हैं **। 28॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - त्वाम् (सर्वनाम)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति

करना, लेना, ग्रहण करना)। अङ्गिरसो (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। गुहा (गुह् - आच्छादन करना, छिपाना, ढकना, गति करना, जाना, जानना, हिंसा करना)। हितम् (हि - जाना, जानना, पाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना)। अनु (उपसर्ग)। अविन्दन् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, विद् - समझना, जानना, वास करना, जीवन होना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना, विन्द् = लाभ होना, प्राप्त करना, पाना)। शिश्रियाणम् (श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना)। वनेवने (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना)। स (सर्वनाम)। जायसे (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। मथ्यमानः (मथ् - मथना, विलोडन करना, विचार करना)। सहो (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना, प्रसन्न होना)। महत् (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। त्वाम् (सर्वनाम)। आहुः (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, अह - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे = शब्द करना, आह्वान करना, बुलाना)। सहसः (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना)। पुत्रम् (पु - रक्षा करना, श्वास लेना)। अङ्गिरः (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)॥ 28॥

(173) सूक्त 7

748. सखायः सम् व सम्यञ्चम्, इषम् स्तोमम् च अग्नये। वर्षिष्ठाय क्षितीनाम्, ऊर्जो नप्त्रे सहस्वते॥29॥

मन्त्रार्थ - सखायः = मित्र। सम् = सम्यक्। व = तुम सबके लिए। सम्यञ्चम् = समीचीन, उपयुक्त। इषम् = इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि को। स्तोमम् = स्तोम को। च = और। अग्नये = अग्नि के लिए। वर्षिष्ठाय = वर्षिष्ठ के लिए। क्षितीनाम् = निवासों का। ऊर्जो = ऊर्जा। नप्त्रे = ज्ञानियों के लिए, प्रकाशमान के लिए। सहस्वते = सहनशील, सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ठ के लिए **॥ 29 ॥**

भावार्थ - मित्र तुम सबके लिए सम्यक् समीचीन, उपयुक्त इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि को, स्तोम को वर्षिष्ठ अग्नि के लिए, निवासों का ऊर्जा ज्ञानियों, प्रकाशमान के लिए, सहनशील, सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ठ के लिए हैं **॥ 29 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सखायः (सख् = मित्र होना)। **सम्** (उपसर्ग)। **व** (सर्वनाम)। **सम्यञ्चम्** (यञ्च्-अञ्च = विशेषित करना, सम्मानित करना, हटाना, पृथक् करना)। **इषम्** (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। **स्तोमम्** (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। **च** (अव्यय)। **अग्नये** (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **वर्षिष्ठाय** (वर्ष् = बरसना, सींचना, अति पराक्रम करना, हिंसा करना, क्लेश देना, उत्पीड़न करना)। **क्षितीनाम्** (क्षि - जाना, चलना, जानना, पाना निवास करना, रहना, बसना, क्षय होना)। **ऊर्जो** (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। **नप्त्रे** (नप - पहुंचना, जानना, पाना, शब्द करना, झंकार करना, चमकना)। **सहस्वते** (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना)॥ 29॥

749. सम् सम् इत् युवसे वृषन्, अग्ने विश्वानि अर्य्यः आ।
इडस्पदे सम् इध्यसे, स नो वसूनि आ भर॥30॥

मन्त्रार्थ- वृषन् = हे शक्तिशाली, पराक्रमी। अग्ने = हे अग्नि। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। इत् = ही। विश्वानि = सभी। = अर्य को, प्रगतिशील को। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। युवसे = युक्त करते हो। इडस्पदे = स्तुतियों के पद में। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। इध्यसे = गति, ज्ञान, प्रकाश करते हो। स = वह। नो = हमारे लिए। वसूनि = वसुओं को। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। भर = भरण करो, पूर्ण करो **॥ 30 ॥**

भावार्थ - हे शक्तिशाली, पराक्रमी अग्निस्वरूप परमात्मा, सम्यक् रूप से सभी प्रगतिशीलताओं को सम्यक्, सम्पूर्ण

रूप से युक्त करते हो। स्तुतियों के पद में भली भाँति गति, ज्ञान, प्रकाश करते हो। हमारे लिए वसुओं को समन्तात् भरण करो, पूर्ण करो। सम्पूर्ण सृष्टि गतिशील है। सम्पूर्ण गति-प्रगति को उत्पन्न करने वाला परमात्मा ही है। वह परमात्मा स्तुतियों के पदों में प्रकाशित है। वेद मन्त्रों को स्तुति भी कहते हैं। वह परमात्मा वेद मन्त्रों में प्रकाशित है अर्थात् वेद मन्त्रों से हम परमात्मा को जान सकते हैं तथा उसका प्रकाश प्राप्त कर सकते हैं। उससे प्रार्थना है कि हमें प्रगतिशीलता से संयुक्त करे। हमारे जीवन में प्रगति हो। हमें वसु अर्थात् वास-स्थान, वसन-वासन आदि संसाधन प्राप्त हों **॥ 30 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) -सम् (उपसर्ग)। इत् (अव्यय)। युवसे (यु - संयोग-वियोग करना, मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना)। वृषन् (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। विश्वानि (सर्वनाम)। अर्यः (ऋ - जाना, सम्पादन करना, प्राप्त करना, मिलाना, पहुँचाना, अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, मिलाना, महत्व दिखाना, हिंसा करना)। आ (उपसर्ग)। इडः (इड - धारण करना, घर्षण करना, छेदन करना, ईड् = स्तुति करना)। पदे (पद् - चलना, जाना, जानना, पाना, भूषित होना, भूषित करना)। इध्यसे (इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। स (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। वसूनि (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। आ (उपसर्ग)। भर (भृ - भरण करना, पूर्ण करना) **॥ 30 ॥**

750. त्वाम् चित्रश्रवस्तम, हवन्ते विक्षु जन्तवः। शोचिष्केशम् पुरुप्रिय, अग्ने हव्याय वोढवे॥ 31 ॥

मन्त्रार्थ- चित्रश्रवस्तम = हे चित्रश्रवस्तम, आश्चर्य-जनक अत्यन्त विश्रुत अर्थात् महान् विद्वान्। पुरुप्रिय = पुरुप्रिय, बहुत प्रिय। अग्ने = हे अग्नि। त्वाम् = तुमको। शोचिष्केशम् = शोचिष्केश को, पवित्र प्रगतिशील को। विक्षु = प्रजाओं में। जन्तवः = जन्तु। हव्याय = हव्य के लिए, दान योग्य के लिए, आदान-प्रदान योग्य के लिए। वोढवे = प्राप्त करने के लिए, वहन करने के लिए। हवन्ते = आह्वान करते हैं, आदान- प्रदान करते हैं **॥ 31 ॥**

भावार्थ - हे चित्रश्रवस्तम, आश्चर्य-जनक अत्यन्त विश्रुत अर्थात् महान् विद्वान्, पुरुप्रिय, बहुत प्रिय अग्नि, तुम शोचिष्केश अर्थात् पवित्र प्रगतिशील को प्रजाओं में जन्तु अर्थात् जन्मे हुए प्राणी, विशेषतः हम मनुष्य हव्य अर्थात् दान योग्य, आदान-प्रदान योग्य को प्राप्त करने के लिए तथा वहन करने के लिए आह्वान करते हैं, आदान- प्रदान करते हैं **॥ 31 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - त्वाम् (सर्वनाम)। चित्रश्रवस्तम (चित्र् = चित्र बनाना, आश्चर्य करना, चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना, श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। हवन्ते (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। विक्षु (विक् - विवेक करना, तारतम्य देखना, पृथक् करना, पृथक् होना)। जन्तवः (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। शोचिष्केशम् (शुच् = शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना, दुःख मानना, शोक करना, किश्-केश्-किस् - गति करना, बाल उगना, व्याप्त होना)। पुरुप्रिय (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, प्री = स्नेह करना, प्यार करना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना, चाहना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। हव्याय (हू = दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। वोढवे (वह - बहना, झरना, ढोना)॥ 31॥

751. एना वो अग्निम् नमसा, ऊर्जो नपातम् आ हुवे।
प्रियम् चेतिष्ठम् अरतिम् स्वध्वरम्, विश्वस्य दूतम् अमृतम्॥ 32 ॥

मन्त्रार्थ- वो = तुमको। एना = प्रकाशित करने वाले। ऊर्जो = ऊर्जावान्। नपातम् = विद्वान्, प्रकाशमान, अपतित को। प्रियम् = प्रिय। चेतिष्ठम् = अत्यन्त चेतन, एकत्र, विचार करने वाले। अरतिम् = गतिशील, विद्वान्, गति, ज्ञान युक्त, रतिहीन, प्राप्त होने वाले। स्वध्वरम् = उत्तम अहिंसक को। विश्वस्य = विश्व का, सभी का। दूतम् = गतिशील, विद्वान्, परिश्रमी। अमृतम् = न मरने वाले, अमर। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। नमसा = नमन द्वारा। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। हुवे = आह्वान करते हैं, दान करते हैं, आदान-प्रदान करते हैं, तृप्ति करते हैं **॥ 32 ॥**

भावार्थ - प्रकाशित करने वाले, ऊर्जावान्, विद्वान्, प्रकाशमान, अपतित, प्रिय, अत्यन्त चेतन, एकत्र, विचार करने वाले, गतिशील, विद्वान्, गति, ज्ञान युक्त, रतिहीन, प्राप्त होने वाले, उत्तम अहिंसक, विश्व के दूत, गतिशील, विद्वान्, परिश्रमे, अमर, अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को नमन द्वारा आह्वान करते हैं, दान करते हैं, आदान-प्रदान करते हैं, तृप्ति करते हैं **॥ 32 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - एना (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, इन-एन - प्रकाशित करना, मिश्रण करना, विभाजन करना)। वो (सर्वनाम)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। नमसा (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। ऊर्जो (ऊर्ज् = प्राण होना, चेतन होना, बल होना, ऊर्जा होना, शक्तिमान होना, पराक्रमी होना, चलना, जाना)। नपातम् (नप - पहुंचना, जानना, पाना, शब्द करना, झंकार करना, चमकना, न - नहीं, पा - पालन करना, रक्षा करना, पत् - ऐश्वर्य होना, गिरना)। आ (उपसर्ग)। हुवे (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। प्रियम् (प्री = स्नेह करना, प्यार करना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना, चाहना)। चेतिष्ठम् (चि - चुनना, एकत्र करना, चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, सम्यक् ज्ञान होना, स्मरण करना, शंका करना, सन्देह करना)। अरतिम् (ऋ-अर् = जाना, जानना, पाना, महत्व दिखाना, शब्द करना, ध्वनि करना, हिंसा करना, रम् - रमना, रमण करना, रम जाना, रत होना, क्रीडा करना, प्रिय होना, मूल्यवान होना)। स्वध्वरम् (सु = सुष्ठु, उत्तम, ध्वृ - हिंसा करना)। विश्वस्य (सर्वनाम)। दूतम् (दू = जाना, जानना, पाना, सुगन्ध लेना, श्रम करना, जलना, तप्त होना, दुःख होना, दुःख देना)। अमृतम् (अ - नहीं, मृ = मरना)॥ 32॥

752. विश्वस्य दूतम् अमृतम्, विश्वस्य दूतम् अमृतम्।
स योजते अरुषा विश्व-भोजसा, स दुद्रवत् स्वाहुतः ॥ 33 ॥

मन्त्रार्थ - विश्वस्य = विश्व का, सभी का। दूतम् = गतिशील, विद्वान्, परिश्रमी, दुःखदायी। अमृतम् = न मरने वाला, अमर।,विश्वस्य = विश्व का, सभी का। दूतम् = गतिशील, विद्वान्, परिश्रमी, दुःखदायी। अमृतम् = न मरने वाला, अमर। स = वह। अरुषा = अहिंसक अथवा रोष-रहित। विश्व-भोजसा = विश्व-भोज द्वारा, विश्व संरक्षण द्वारा । योजते = मिलाते हैं।। स्वाहुतः = उत्तम दाता, बुलाया हुआ। स = वह। दुद्रवत् = गतिमान, संचरित हुआ **॥ 33 ॥**

भावार्थ - परमात्मा तथा उत्तम जन विश्व का दूत बनकर, गतिशील, विद्वान्, परिश्रमी होकर अमृत तत्व का अनुभव कर अमर हो जाते हैं। वह अहिंसक अथवा रोष-रहित होकर विश्व-भोज द्वारा, विश्व संरक्षण द्वारा हमको मिलाता है।। स्वाहुत अर्थात् उत्तम दाता, बुलाया हुआ वह परमात्मा ही सम्पूर्ण सृष्टि में गतिमान, संचरित हुआ है **॥ 33 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) -विश्वस्य (सर्वनाम)। दूतम् (दू = जाना, जानना, पाना, सुगन्ध लेना, श्रम करना, जलना, तप्त होना, दुःख होना, दुःख देना)। अमृतम् (अ - नहीं, मृ = मरना)। स (सर्वनाम)। योजते (युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना, योग करना, जोड़ना, मिलना, मिलाना, चित्त स्थिर रखना, बांधना एकत्र करना)। अरुषा (अ - नहीं, ऋ-अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, रुष् - हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, मारने का यत्न करना)। विश्व-भोजसा (विश्व - सभी, भुज - संरक्षण करना, पालन करना, खाना, भक्षण करना)। स (सर्वनाम)। दुद्रवत् (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। स्वाहुतः (स्वः = उत्पन्न, ऐश्वर्य, सृष्टि या जगत्, स्वः। सु = अच्छा हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)॥ 33॥

753. स दुद्रवत् स्वाहुतः, स दुद्रवत् स्वाहुतः, सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनाम्, देवम् राधो जनानाम् ॥ 34 ॥

मन्त्रार्थ- स्वाहुतः = उत्तम दाता, बुलाया हुआ। स = वह। दुद्रवत् = गतिमान, संचरित हुआ॥ स्वाहुतः = उत्तम दाता, बुलाया हुआ। स = वह। सुब्रह्मा = उत्तम ब्रह्म, अच्छा और महान्। यज्ञः = यजन। सुशमी = सुशीतल। वसूनाम् = वसुओं का। देवम् = देव को। राधो = शुद्ध, निर्दोष निर्णय, वृद्धि। जनानाम् = जनों का, उत्पन्न लोगों का। **दुद्रवत्** = गतिमान, संचरित हुआ **॥ 34 ॥**

भावार्थ - उत्तम दाता वह परमात्मा ही सम्पूर्ण सृष्टि में गतिमान, संचरित हुआ है **॥ 34 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त)- स (सर्वनाम)। दुद्रवत् (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। स्वाहुतः (स्वः = उत्पन्न, ऐश्वर्य, सृष्टि या जगत्, स्वः। सु = अच्छा हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। सुब्रह्मा (सु - सुन्दर, अच्छा, बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। यज्ञः (यज = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। सुशमी (सु - अच्छा, सुन्दर, शम - शान्त होना, ठण्डा होना)। वसूनाम् (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। देवम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। राधो (रध - शुद्ध होना, निदोष होना, पूर्ण करना, समाप्त करना, परिपक्व होना, अपकार करना, हिंसा करना, राध - बढ़ना, निर्णय करना, सिद्ध होना)। जनानाम् (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)॥ 34 ॥

(174) सूक्त 8

754. अग्ने वाजस्य गोमत, ईशानः सहसो यहो। अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ 35 ॥

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि। वाजस्य = विद्या का। गोमत = शब्द करने वालों, मननशीलों, उपदेशकों से युक्त। ईशानः = अधिकार करने वाला, शासन करने वाला। सहसो = सक्षम, समथ, तृप्त, सन्तुष्ट। **यहो** = पूज्य, सम्मानित। अस्मे = हमारे लिए। जातवेदो = विद्वान्, वेद को जानने वाले, वेद को उत्पन्न करने वाले। महि = पूज्य, महान्। श्रवः = श्रवण करने वाले को। धेहि = धारण करें॥ 35 ॥

भावार्थ - परमात्मा समस्त विद्या का आधार है। वह हमारे लिए विद्या तथा विद्वानों को धारण करें, प्रदान करें। **॥ 35 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। वाजस्य (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। गोमत (गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना)। ईशानः (ईश = ऐश्वर्य-अधिकार होना)। सहसो (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना)। यहो (यह्-मह् = पूजा करना, सम्मान करना)। अस्मे (सर्वनाम)। धेहि (धा-धि-धी - धारण करना, पहनना, पोषण करना, रक्षण करना, देना)। जातवेदो (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जा-ज्ञा - जानना, विद् - जानना)। महि (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। श्रवः (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)॥ 35 ॥

755. स इधानो वसुः कविः, अग्निः ईडेन्यो गिरा। रेवत् अस्मभ्यम् पुर्वणीक दीदिहि ॥ 36 ॥

मन्त्रार्थ- स = वह। इधानो = प्रकाशमान। वसुः = वसु, स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले। कविः = ज्ञानी, कवि। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। ईडेन्यो = स्तुत्य। गिरा = स्तुतियां, वाणियाँ। रेवत् = प्रवाह। अस्मभ्यम् = हमारे लिए। पुर्वणीक = बहुत प्राणवान्, निवासी, बुलाने वाला। दीदिहि = वृद्धि करो **॥ 36 ॥**

भावार्थ - वह परमात्मा प्रकाशमान, वसु, स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाला, ज्ञानी, कवि, अग्नि अर्थात् ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् स्तुत्य है। हम प्रार्थना करते हैं कि हे बहु प्राणवान्, परमात्मा, प्रवाह को हमारे लिए बढ़ाओं, वृद्धि करो **॥ 36 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - स (सर्वनाम)। इधानो (इ - जाना, जानना, पाना, इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। वसुः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। कविः (कु - शब्द करना, कविता करना, वर्णन करना, चित्र खींचना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। ईडेन्यो (ईड - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। गिरा (गृ - सींचना, गीला करना, समझना, जानना, गृ - शब्द करना)। रेवत् (रिव्

= उड़ना, तैरना, बहना, रि - जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, री - गति करना, झरना-टपकना, लेना, शब्द करना, सुनना)। अस्मभ्यम् (सर्वनाम)। पुर्वणीक (पुरु - बहुत, सर्वनाम, अन् - प्राण होना, जीवन होना, पुर्व - रहना, निवास करना, आमन्त्रण करना, पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। दीदिहि (दिह् = रूप बनाना, बढ़ना, वृद्धि करना)॥ 36॥

756. क्षपो राजन् उत त्मना, अग्ने वस्तोः उत उषसः। स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति॥ 37॥

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि। स = वह। क्षपो = सहनशील, संयमी। राजन् = प्रकाशमान। उत = ही। वस्तोः = वस्तु का, प्रेरणा का, वास का। उत = ही। उषसः = उषा का, प्रभात का। तिग्मजम्भ = कुटिलता से नाश करने वाला, नाश होने वाला, कुटिलता पर गर्व करने वाला। रक्षसो = रक्षस् का। **त्मना** = आत्मा द्वारा, गति, वृद्धि, हिंसा, इच्छा द्वारा। प्रति = प्रतिकार। दह = जलाओ **॥ 37॥**

भावार्थ - हे अग्नि स्वरूप परमात्मा, वह सहनशील, संयमी राजन् अर्थात् प्रकाशमान, राजा ही वस्तु का, प्रेरणा का, वास का ही उषा का, प्रभात का कुटिलता से नाश करने वाला, नाश होने वाला, कुटिलता पर गर्व करने वाले रक्षस् का आत्मा द्वारा अथवा गति, वृद्धि, हिंसा की इच्छा द्वारा प्रतिदहन करे। रक्षक यदि कुटिल विनाशकारी हो जायें, हिंसक हो जायें तो प्रतिकार में उनको जलाना अर्थात् नष्ट करना उचित है **॥ 37॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - क्षपो (क्षप = प्रेरणा करना, भेजना, सहन करना, हूकना, संयमी होना)। राजन् (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। उत (अव्यय)। त्मना (तु - गति-वृद्धि, हिंसा करना, तम् - इच्छा करना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना, वैदिक भाषा में अ या आ का लोप हो सकता है)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। वस्तोः (वस्त - प्रेरणा करना, प्रातः होना, प्रभात होना, वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। उषसः (उषस् = प्रभात होना, उष - हिंसा करना, जलना, जलाना, ताप देना)। स (सर्वनाम)। तिग्मजम्भ (तिग् = जाना, जानना, पाना, कूटचाल चलना, जम्भ् - नाश करना, गर्व करना, आलस्य होना)। रक्षसो (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। दह (दह् - जलाना, नष्ट करना, दुःख देना)। प्रति (अव्यय)॥ 37॥

757. भद्रो नो अग्निः आहुतो, भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः। भद्रा उत प्रशस्तयः॥ 38॥

मन्त्रार्थ - सुभग = हे उत्तम सेवित, भजनीय। नो = हमको, हमारे लिए। आहुतो = आदान-प्रदान किया हुआ, आहुत, आह्वान किये, बुलाये हुए, व्याप्त। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। भद्रो = कल्याणकारी। (हों)। रातिः = अनुदान। भद्रा = कल्याणकारी। (हों)। अध्वरः = अहिंसक, अवर्णनीय। भद्रो = कल्याणकारी। (हों)। प्रशस्तयः = प्रशस्तियाँ। उत = ही, वैसे ही, उसी प्रकार। भद्रा = कल्याणकारी (हों) **॥ 38॥**

भावार्थ - हे उत्तम सेवित, भजनीय, हमारे लिए, आहुतो **अर्थात्** आदान-प्रदान किया हुआ, आह्वान किये, बुलाये हुए, व्याप्त अग्नि स्वरूप परमात्मा अथवा ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् कल्याणकारी (हों)। अनुदान कल्याणकारी (हों)। अध्वरः **अर्थात्** अहिंसक, अवर्णनीय जन तथा कर्म कल्याणकारी (हों)। प्रशस्तियां भी उसी प्रकार कल्याणकारी (हों) **॥ 38॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - भद्रो (भदि-भन्द् = सुख होना, शुभ कर्म करना, कल्याण होना)। नो (सर्वनाम)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। आहुतो (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, अह - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे = शब्द करना, आह्वान करना, बुलाना)। भद्रा (भदि-भन्द् = सुख होना, शुभ कर्म करना, कल्याण होना)। रातिः (रा - देना, मिल जाना)। सुभग (सु - सुन्दर, अच्छा, भग्-भज् = सेवा करना, सेवन करना, सेवित होना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। अध्वरः (अ - नहीं, ध्वृ-ध्वर् = हिंसा करना, टेढ़ा करना, झुकाना, मार डालना, वर्णन करना)। **उत** (अव्यय)। प्रशस्तयः (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, शास्-शस् - अनुशासन करना, इच्छा करना, आशीर्वाद देना, शस् - काटना, मारना, हिंसा करना)॥ 38॥

758. भद्रा उत प्रशस्तयो, भद्रम् मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये। येन समत्सु सासहः ॥39॥

मन्त्रार्थ - उत = ही, उसी प्रकार, उत्कृष्ट, उच्च। प्रशस्तयो = प्रशस्तियाँ। भद्रा = कल्याणकारी। (हों)। वृत्रतूर्ये = वरणीय, सेवा, प्रकाश की शीघ्रता में। मनः = मन को। भद्रम् = कल्याणकारी। कृणुष्व = कीजिये॥ येन = जिससे। समत्सु = सम्यक् सतत गतिशील, समानताओं में। सासहः = सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ठ, सहने वाले **(हों) ॥ 39 ॥**

भावार्थ - उत्कृष्ट प्रशस्तियाँ कल्याणकारी हों। वरणीय, सेवा, प्रकाश की शीघ्रता में मन को कल्याणकारी कीजिये॥ जिससे सम्यक् सतत गतिशील, समानताओं में सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ठ, सहने वाले **हों ॥ 39 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - भद्रा (भदि-भन्द् = सुख होना, शुभ कर्म करना, कल्याण होना)। उत (उपसर्ग)। प्रशस्तयो (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, शास्-शस् - अनुशासन करना, इच्छा करना, आशीर्वाद देना, शस् - काटना, मारना, हिंसा करना)। भद्रम् (भदि-भन्द् = सुख होना, शुभ कर्म करना, कल्याण होना)। मनः (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। कृणुष्व (कृ - करना)। वृत्रतूर्ये (वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना, तुर् = शीघ्र जाना, त्वरा करना)। येन (सर्वनाम)। समत्सु (सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति (उपसर्ग), सम = समान होना, सम विभाग करना, न घबराना, परिणाम होना, अत् - निरन्तर चलना, सतत गमन करना)। सासहः (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना, प्रसन्न होना)॥ 39॥

759. येना समत्सु सासहो, अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम्। वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥40॥

मन्त्रार्थ - येना = जिस। समत्सु = समानताओं में। सासहो = सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ठ। अव = नीचे, दूर। स्थिरा = स्थिर। तनुहि = विस्तार करो। भूरि = बहुत। शर्धताम् = विजय करो, बलवान् बनाओ। अभिष्टिभिः = सर्वथा इष्ट, अभीष्टि द्वारा। ते = तुम्हारी। वनेमा = सेवा करें **॥ 40 ॥**

भावार्थ - समानताओं में सक्षम, समर्थ, तृप्त, सन्तुष्ठ होकर अवस्थिर विस्तार करो। बहुत विजय करो, बलवान् बनाओ। अभीष्टियों द्वारा तुम्हारी सेवा करें **॥ 40 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - येना (सर्वनाम)। समत्सु (सम = समान होना, सम विभाग करना, न घबराना, परिणाम होना)। सासहो (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना, प्रसन्न होना)। अव (अव्यय)। स्थिरा (स्था - ठहरना, स्थिर होाना)। तनुहि (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। भूरि (अव्यय, सर्वनाम)। शर्धताम् (शृध् - सहन करना, जीतना, शक्ति होना, सामर्थ्य होना)। वनेमा (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना)। ते (सर्वनाम)। अभिष्टिभिः (अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, इष् = इच्छा करना, चाहना)॥ 40॥

(175) सूक्त 9

760. अग्निम् तम् मन्ये यो वसुः, अस्तम् यम् यन्ति धेनवः।
अस्तम् अर्वन्तः आशवो, अस्तम् नित्यासो वाजिनः, इषम् स्तोतृभ्य आ-भर ॥41॥

मन्त्रार्थ - तम् = उस। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। मन्ये = मानता हूँ। यो = जो। वसुः = वसु, स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले (हैं)। यम् = जिसे, जहाँ। अस्तम् = प्रकाशमान को। धेनवः = धेनु, प्रिय, पालन करने वाले। यन्ति = प्राप्त होते हैं॥ **अर्वन्तः** = प्रगतिशील, व्यापक, शब्दकर्ता। **आशवो** = आशुकारी, तीव्रगामी। अस्तम् = प्रकाशमान को। नित्यासो = नित्य, निरन्तर। वाजिनः = वाजयुक्त, विद्यायुक्त, गतियुक्त। इषम् = इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि को। स्तोतृभ्यः = स्तुतिकर्ताओं के लिए। **आ-भर** = भरण करो **॥ 41 ॥**

भावार्थ - उस अग्नि स्वरूप परमातत्मा को तथा ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को मानता हूँ, जो वसु, अर्थात्

स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले (हैं)। जिस प्रकाशमान को धेनु अर्थात् प्रिय, पालन करने वाले प्राप्त होते हैं। **उस** प्रकाशमान को प्रगतिशील, व्यापक, शब्दकर्ता, आशुकारी, तीव्रगामी प्राप्त होते हैं।। **उस** प्रकाशमान को नित्य, निरन्तर वाजयुक्त, विद्यायुक्त, गतियुक्त प्राप्त होते हैं।। हे परमात्मा, इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि को स्तुतिकर्ताओं के लिए भरण करो **।। 41 ।।**

विशेष - कुछ उपसर्ग और अव्ययों में त्य आदि प्रत्यय जुड़कर नामिक शब्द बन जाते हैं। फिर उनमें नामिक विभक्ति लग जाती है। महर्षि पाणिनि ने एक सूत्र में इस नियम का उल्लेख किया है। इस प्रकार के शब्दों को अपवाद ही कहा जा सकता है। इस प्रकार नि उपसर्ग में त्य प्रत्यय जुड़कर नित्य शब्द बना। जिसका बहुवचन नित्यासः बना। इस शब्द का अर्थ नि उपसर्ग के अर्थ से लिया जायेगा। अतः नित्यासः शब्द का अर्थ निरन्तर बने रहना ही है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। तम् (सर्वनाम)। मन्ये (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। यो (सर्वनाम)। वसुः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। अस्तम् (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। यम् (सर्वनाम)। यन्ति (यम् = रोकना, स्वाधीन रखना, आवरण करना, पोषण करना, नियमन करना, यन -उद्धार करना, या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना, जानना)। धेनवः (धिन - प्रेम करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, धी - बुद्धि होना, धे - पालना, पीना)। अस्तम् (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। अर्वन्त (ऋ - जाना, सम्पादन करना, प्राप्त करना, मिलाना, पहुँचाना, अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, मिलाना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, अर्व - गति करना, जाना, चलना, जानना, पाना, पहुँचना, हिंसा करना)। आशवो (आ- समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, अश् = तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना, व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, शव् - जाना, जानना, पाना, विकार होना)। अस्तम् (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। नित्यासो (नि - निश्चित, निरन्तर, नी = पहुँचाना, प्राप्त होना, मार्ग दिखाना, पाना, मिलना, ले जाना)। वाजिन (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। इषम् (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। स्तोतृभ्यः (स्तु- प्रशंसा करना, स्तुति करना)। **आ-भर** (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, भृ - भरण करना)।। 41।।

761. सो अग्निः यो वसुः गृणे, सम् यम् आयन्ति धेनवः।
सम् अर्वन्तो रघुद्रुवः, सम् सुजातासः सूरयः, इषम् स्तोतृभ्य आ-भर ।।42 ।।

मन्त्रार्थ - सो = वह। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। यो = जो। वसुः = स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले। गृणे = वाणी, बोध, अभिसिंचन करते हैं।। यम् = जिसे, जिसको। धेनवः = धेनु, प्रिय, पालन करने वाले। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। आयन्ति = आते हैं। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। **अर्वन्तः** = प्रगतिशील, व्यापक, शब्दकर्ता। **रघुद्रुवः** = वाणी, प्रकाश, प्रगति में प्रवाहमान। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। सुजातासः = उत्तम जन। सूरयः = उत्पन्न कर्ता, ऐश्वर्यवान्। इषम् = इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि को। स्तोतृभ्यः = स्तुतिकर्ताओं के लिए। **आ-भर** = भरण करो **।। 42 ।।**

भावार्थ - वह अग्नि स्वरूप परमातत्मा को तथा ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान्, वसु अर्थात् स्नेहपूर्वक निवास करने तथा वास देने वाले हैं, वाणी, बोध, अभिसिंचन करते हैं।। यम् = जिसे, जिसको धेनु, अर्थात् प्रिय, पालन करने वाले सम्यक् रूप से, भली भाँति आते हैं। प्रगतिशील, व्यापक, शब्दकर्ता वाणी, प्रकाश, प्रगति में प्रवाहमान सम्यक् रूप से, भली भाँति आते हैं। उत्तम जन उत्पन्न कर्ता, ऐश्वर्यवान् सम्यक् रूप से, भली भाँति आते हैं। हे परमात्मा, इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि को स्तुतिकर्ताओं के लिए भरण करो **।। 42 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सो (सर्वनाम)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति

करना, लेना, ग्रहण करना)। यो (सर्वनाम)। वसुः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। गृणे (गृ-गृण् = शब्द करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना, जानना, समझना, निगलना, बहिर्गमन करना, गृ - शब्द करना, गा-गै = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना)। सम् (उपसर्ग)। यम् (सर्वनाम)। आयन्ति (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय्-ई - जाना, आय - शब्द करना, शासन करना)। धेनवः (धिन - प्रेम करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, धी - बुद्धि होना, धे - पालना, पीना)। **अर्वन्तः** (ऋ - जाना, सम्पादन करना, प्राप्त करना, मिलाना, पहुँचाना, अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, मिलाना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, अर्व - गति करना, जाना, चलना, जानना, पाना, पहुँचना, हिंसा करना)। रघुद्रुव (लघि-लङ्घ = जाना, चमकना, बोलना, उपवास करना, भूखा रहना, न्यून होना, अल्प होना, शुष्क होना, सूखना, द्रु - जाना, शीघ्रता से जाना, चलना, बहना, प्रवाहित होना)। सुजातासः (सु = अच्छा, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। सूरयः (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। इषम् (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। स्तोतृभ्य (स्तु- प्रशंसा करना, स्तुति करना)। आ-भर (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, भृ - भरण करना)॥ 42॥

762. उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो, दर्वी श्रीणीषे आसनि।
उतो नः उत् पुपूर्या, उक्थेषु शवसः-पते, इषम् स्तोतृभ्य आ भर॥43॥

मन्त्रार्थ- उभे = हे पूर्ण। सुश्चन्द्र = हे उत्तम आनन्दप्रद, उत्तम प्रकाशमान। सर्पिषो = प्रगतिशील विद्वान् का। दर्वी = प्रगतिशील। आसनि = आसन पर, स्थान पर। श्रीणीषे = आश्रय करते हो, परिपाक करतें हो। शवसः-पते = हे गति, ज्ञान के पति, ऐश्वर्यवान्। उतो = ही। नः = हमारा। उत् = उत्कृष्ट। पुपूर्या = पालन, रक्षा, पूर्ण, तृप्त करने वाले। उक्थेषु = उक्तियों में, कथनों में। इषम् = इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि को। स्तोतृभ्यः = स्तुतिकर्ताओं के लिए। आ-भर = भरण करो॥ 43॥

भावार्थ - हे पूर्ण, **हे** उत्तम आनन्दप्रद, उत्तम प्रकाशमान, प्रगतिशील विद्वान् के प्रगतिशील आश्रय में समुचित आसन या स्थान **पर** परिपाक करतें हो। हे गति, ज्ञान के पति, ऐश्वर्यवान्। उतो = ही। नः = हमारा। उत् = उत्कृष्ट। पुपूर्या = पालन, रक्षा, पूर्ण, तृप्त करने वाले। उक्थेषु = उक्तियों में, कथनों में। हे परमात्मा, इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि को स्तुतिकर्ताओं के लिए भरण करो **॥ 43॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उभे (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना)। सुश्चन्द्र (सु - अच्छा, सुन्दर, चन्द्र - आनन्द होना, चमकना)। सर्पिषो (सृप् - जाना, सरकना, जानना, पाना, चलना)। दर्वी (दर्व् = जाना, जानना, पाना)। श्रीणीषे (श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना)। आसनि (अस् - होना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीवित रहना, होना)। उतो (अव्यय)। नः (सर्वनाम)। उत् (उपसर्ग)। पुपूर्या (पृ-पूर - पालन करना, रक्षा करना, पूर्ण करना, तृप्त करना)। उक्थेषु (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना, उच् - एकत्र होना, सम्बन्ध होना)। शवसः (शव - जाना, समीप जाना, आना, चलना-फिरना, बदले में देना, विकार होना)। पत (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। इषम् (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। स्तोतृभ्य (स्तु- प्रशंसा करना, स्तुति करना)। आ-भर (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, भृ - भरण करना)। 43॥

(176) सूक्त 10

763. अग्ने तम् अद्य अश्वम् न स्तोमैः, क्रतुम् न भद्रम् हृदिस्पृशम्। ऋध्यामा ते ओहैः॥44॥

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि। तम् = उसको। अद्य = आज। अश्वम् = अश्व, तीव्र गति युक्त, व्यापक। न = समान। स्तोमैः = स्तुतियों द्वारा। क्रतुम् = कर्मशील को। न = समान। भद्रम् = कल्याणकारी। हृदिस्पृशम् = हृदिस्पृश को, हृदय को स्पर्श करने वाले को। ते = तुम्हारा। ओहैः = ऊहाओं द्वारा। ऋध्यामा = सम्वर्धित करें, वृद्धि करें, समृद्ध करें **॥ 44॥**

भावार्थ - हे अग्नि स्वरूप परमात्मा, अश्व अर्थात् तीव्र गति युक्त, व्यापक के समान तथा कर्मशील के समान कल्याणकारी हृदय-स्पर्शी को, हृदय को स्पर्श करने वाले को स्तुतियों द्वारा तथा तुम्हारे ऊहाओं द्वारा सम्वर्धित करें, वृद्धि करें, समृद्ध करें **॥ 44 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। तम् (सर्वनाम)। अद्य (अव्यय)। अश्वम् (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। न (अव्यय)। स्तोमैः (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। क्रतुम् (कृ = करना)। भद्रम् (भदि-भन्द् = सुख होना, शुभ कर्म करना, कल्याण होना)। हृदिस्पृशम् (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना, स्पृश - स्पर्श करना, छूना, संयोग करना, हाथ से लेना)। ऋध्यामा (ऋध् - वृद्धि होना, वृद्धि करना, समृद्धि होना, ऐश्वर्य होना, आनन्दित करना, पूर्ण करना)। ते (सर्वनाम)। ओहैः (ऊह् = अनुमान करना, कल्पना करना, तर्क करना)॥ 44 ॥

764. अध आ हि अग्ने क्रतोः, भद्रस्य दक्षस्य साधोः। रथीः ऋतस्य बृहतो बभूथ॥ 45 ॥

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि। अध = इसके अनन्तर। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। हि = ही, निश्चय। क्रतोः = कर्मशील का। भद्रस्य = भद्र का, कल्याणकारी का। दक्षस्य = दक्ष का। साधोः = साधु का। ऋतस्य = ऋत का। बृहतो = महान्, बड़ा, विराट, बृहत्। रथीः = रथी, रथवाला। बभूथ = हो गये॥ 45 ॥

भावार्थ - स्तुति-उपासना से सत्कर्म करने वाले साधक को समुचित उपलब्धि होती है। इस भाव को व्यक्त करते हुए कहा गया है कि हे अग्नि स्वरूप परमात्मा अथवा तेजस्वी उपासक, इस साधना के अनन्तर, सम्यक् रूप से कर्मशील, कल्याणकारी, दक्ष, साधु, ऋत का बृहत अथवा महान रथी हो गया **॥ 45 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अध (अव्यय)। आ (उपसर्ग)। हि (अव्यय)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। क्रतोः (कृ = करना)। भद्रस्य (भदि-भन्द् = सुख होना, शुभ कर्म करना, कल्याण होना)। दक्षस्य (दक्ष् - बढ़ना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना, दक्ष होना, चलना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, मार डालना)। साधोः (साध् - पूर्ण करना, सिद्ध करना, जीतना, साधना करना, यशस्वी होना)। रथीः (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। ऋतस्य (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। बृहतो (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। बभूथ (भू = होना, प्राप्त होना)॥ 45 ॥

765. एभिः नो अर्कैः भवा, नो अर्वाङ् स्वः न ज्योतिः। अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः॥ 46 ॥

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि। एभिः = इनके द्वारा। नो = हमारे लिए। अर्कैः= स्तुत्यों, प्रशंसनीयों द्वारा। अर्वाङ् = अभिमुख, प्रगतिशील, शब्दकर्ता। स्वः = उत्पन्न, सृष्टि, ऐश्वर्य। न = **के** समान। ज्योतिः = प्रकाश। विश्वेभिः = सबके द्वारा। नो = हमारे लिए। अनीकैः = स्पन्दनशील, चेतना, प्राणों द्वारा। सुमना = सुन्दर मन वाले। भवा = हो जाये **॥ 46 ॥**

भावार्थ - हे अग्नि स्वरूप परमात्मा, इन स्तुत्यों, प्रशंसनीयों द्वारा स्पन्दनशील, चेतना, प्राणों द्वारा अभिमुख सृष्टि, ऐश्वर्य **के** समान, ज्योतिः **या** प्रकाश हमारे लिए सुन्दर मन वाले हो जाये **॥ 46 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - एभिः (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। अर्कैः (अर्क - प्रशंसा करना, स्तुति करना, ग्रहण करना)। भवा (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। अर्वाङ् (ऋ - जाना, सम्पादन करना, प्राप्त करना, मिलाना, पहुँचाना, अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, मिलाना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, अर्व - गति करना, जाना, चलना, जानना, पाना, पहुँचना, हिंसा करना)। स्वः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। न (अव्यय)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। विश्वेभिः (सर्वनाम)। सुमना (सु - सुन्दर, अच्छा, सु - उत्पन्न करना, पैदा करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, मन - मनन करना, जानना, समझना, स्वीकार करना, अभ्यास करना, स्थिर होना,

गर्व होना)। अनीकैः (अन् = प्राण होना, चेतन होना, श्वास लेना, स्पन्दन करना, हलचल करना, जीवन होना, समर्थ होना, जाना)॥ 46॥

(177) सूक्त 11

766. अग्निम् होतारम् मन्ये दास्वन्तम्, वसुम् सूनुम् सहसो जातवेदसम्, विप्रम् न जातवेदसम्।
यः ऊर्ध्वया सु अध्वरो, देवो देवाच्या कृपा।
घृतस्य विभ्राष्टिम् अनु वष्टि, शोचिषा आजुह्वानस्य सर्पिषः॥47॥

मन्त्रार्थ- अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। होतारम् = हवन करने वाले को। मन्ये = मानता हूँ। दास्वन्तम् = दानी, सेवाधर्मी, सेवाभावी को। वसुम = वसुओं को। सूनुम् = सूनु को। सहसो = सहः के लिए, सक्षम के लिए, समर्थ के लिए, तृप्त के लिए, सन्तुष्ट के लिए। जातवेदसम् = जातवेद को, वेद को जानने वाले, वेद को उत्पन्न करने वाले को। विप्रम् = विशेष पूर्ण करने वाले को। न = के समान। जातवेदसम् = जातवेद को, जन्म से विद्वान् को, वेद को जानने वाले, वेद को उत्पन्न करने वाले को। यः = जो। ऊर्ध्वया = उच्च, ऊपर, ऊर्ध्व। सु = अच्छा। अध्वरो = अध्वर, अहिंसक। देवो = देव। देवाच्या = देवाच्य। कृपा = कृपा, दया। घृतस्य = घृत का, प्रकाश का। विभ्राष्टिम् = विशेष चमकना। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल। वष्टि = वष्टि, इच्छा। शोचिषा = शोचमान द्वारा। आजुह्वानस्य = दानी का। सर्पिषः = प्रगतिशील विद्वान् का॥ **47**॥

भावार्थ - अग्नि स्वरूप परमात्मा के विविध गुणों की स्तुति की गयी है। परमात्मा हमारे लिए सब कुछ देता है, हमें भी इसी प्रकार सज्जनों का सहयोग करना चाहिए॥ **47**॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त)- अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। होतारम् (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। मन्ये (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। दास्वन्तम् (दास् - काटना, दान करना, सेवा करना)। वसुम (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। सूनुम् (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना)। सहसो (सह = शक्तिमान् करना, सहना, सहन करना, सक्षम होना, प्रतिरोध करना, समर्थ होना, तृप्त होना, सन्तुष्ट होना)। जातवेदसम् (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जा-ज्ञा - जानना, विद् - जानना)। विप्रम् (वि = विशेष, विना, विलोम, प्रा - पूर्ण करना)। न (अव्यय)। य (सर्वनाम)। ऊर्ध्वया (सर्वनाम)। सु (उपसर्ग)। अध्वरो (अ - नहीं, ध्वृ-ध्वर् = हिंसा करना, टेढ़ा करना, झुकाना, मार डालना, वर्णन करना)। देवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। देवाच्या (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। कृपा (कृप - कृपा करना, दया करना, कल्पना करना, विचार करना)। घृतस्य (घृ -गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना)। विभ्राष्टिम् (वि - विशेष, भ्रास - प्रकाशे। चमकना)। अनु (उपसर्ग)। वष्टि (वश - इच्छा करना, चाहना)। शोचिषा (शुच् = शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना, दुःख मानना, शोक करना)। आजुह्वानस्य (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, हु = देना, दान करना, आदान-प्रदान करना)। सर्पिषः (सृप् - जाना, सरकना, जानना, पाना, चलना)॥ **47**॥

767. अग्ने त्वम् नो अन्तमः उत, त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
वसुः अग्निः वसुश्रवा अच्छा, नक्षि द्युमत्तमम् रयिम् दाः।
तम् त्वा शोचिष्ठ दीदिवः, सुम्नाय नूनम् ईमहे सखिभ्यः॥48॥

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि। त्वम् = तुम। नो = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो। अन्तम = प्राणवान्। उत = ही। त्राता = रक्षक, पालक, पोषक। शिवो = कल्याणकारी। भवा = हो। वरूथ्यः = वरण करने योग्य। वसुः = वसु, स्नेहपूर्वक

निवास करने तथा वास देने वाले। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। वसुश्रवा = वसु को श्रवण करने वाला। अच्छा = अच्छा, श्रेष्ठ, सुन्दर, स्वच्छ। नक्षि = गति, ज्ञान, प्राप्ति। द्युमत्तमम् = अत्यन्त अग्रगामी। रयिम् = विद्या, ज्ञान। दाः = दानी, दो। तम् = उसको, उसे। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा। शोचिष्ठ = पावनतम। दीदिवः= तेजस्वी! सुम्नाय = ऐश्वर्य के लिए। नूनम् = निश्चय ही। ईमहे = आते हैं, जानते हैं। सखिभ्यः = मित्रों के लिए **॥ 48 ॥**

भावार्थ - अग्नि स्वरूप परमात्मा अत्यन्त प्राणवान् है, वह प्राणदाता है। वह हमारे लिए कल्याणकारी हो, इस भावना से हम मित्रों के साथ स्तुति करते हैं **॥ 48 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त)- अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। त्वम् (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। अन्तम (अन् = प्राणवान् होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना)। उत (अव्यय)। त्राता (त्रै = पालन करना, रक्षा करना, पोषण करना)। शिवो (शिव् = कल्याण करना)। भवा (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। वरूथ्यः (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। वसुः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। वसुश्रवा (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना, श्रु = सुनना)। अच्छा (अच्छ् - अच्छा होना, निर्मल करना)। नक्षि (नक्ष - जाना, आना, पहुंचना, जानना, पाना)। द्युमत्तमम् (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना)। रयिम् (रय्-रि, री - चलना, जाना, जानना, पाना, री-रै - शब्द करना)। दाः (दा, दद् = देना)। तम् (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम)। शोचिष्ठ (शुच् = शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना, दुःख मानना, शोक करना)। दीदिवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। सुम्नाय (सु = उत्पन्न कराना, ऐश्वर्य होना)। नूनम् (अव्यय)। ईमहे (ई = जाना, जानना, पाना, व्यापना)। सखिभ्यः (सख् = मित्र होना)॥ 48 ॥

(178) सूक्त 12

768. येन ऋषयः तपसा सत्रम् आयन्, इन्धाना अग्निम् स्वः आ-भरन्तः।
तस्मिन् अहम् निदधे नाके अग्निम्, यम् आहुः मनवः स्तीर्ण-बर्हिषम् ॥49 ॥

मन्त्रार्थ- येन = जिसके द्वारा। ऋषयः = ऋषिगणों ने। तपसा = तप द्वारा। इन्धाना = प्रकाशित करने वाले। अग्निम् = अग्नि को। स्वः = उत्पन्न, ऐश्वर्य, सृष्टि को। आ-भरन्तः = भरण करते हुए। सत्रम् = सत्र को, विस्तार, सम्बन्ध को। आयन् = प्राप्त किया। तस्मिन् = उसमें। अहम् = मैं। नाके = अकुटिल, अविचल में। अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को। निदधे = निश्चित, निरन्तर धारण किया। यम् = जिसे, जिसको। मनवः = मननशील। स्तीर्ण-बर्हिषम् = आच्छादन करने वाले, पूर्ण करने वालों में प्रधान को। आहुः = कहा, कहते हैं **॥ 49 ॥**

भावार्थ - अग्नि स्वरूप परमात्मा का प्रकाश हम तप-साधना-उपासना द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। उसे अकुटिल, अविचल भावना के साथ धारण करना है। वही सर्वप्रधान है। मन्त्र में कहा गया है कि जिसके द्वारा ऋषिगणों ने तप द्वारा प्रकाशित करने वाले अग्नि को ऐश्वर्य, सृष्टि को भरण करते हुए सत्र को, विस्तार, सम्बन्ध को प्राप्त किया। उसमें मैंने अकुटिल, अविचल साधना-भावना में अग्नि को निरन्तर धारण किया। जिसको मननशील विद्वान् आच्छादन करने वालों, पूर्ण करने वालों में प्रधान कहते हैं **॥ 49 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - येन (सर्वनाम)। ऋषयः (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। तपसा (तप - ऐश्वर्य होना, तपना, दाह होना, तप करना, तप्त होना, तप्त करना, जलना, जलाना, तृषा होना)। सत्रम् (सत्र - फैलाना, विस्तार करना, सम्बन्ध करना, संसर्गी होना)। आयन् (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः,

अय्-ई - जाना, आय - शब्द करना, शासन करना)। इन्धाना (इन्ध् = प्रकाश होना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। स्वः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। आ-भरन्तः (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, भृ - भरण करना)। तस्मिन् (सर्वनाम)। अहम् (सर्वनाम)। निदधे (नि- निश्चित, नितराम्, निरन्तर, दध-धा - धारण करना)। नाके (नक् - नक्क् = नष्ट होना, नष्ट करना, न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क -नाश होना)। अग्निम् (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। यम् (सर्वनाम)। आहुः (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, अह - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे = शब्द करना, आह्वान करना, बुलाना)। मनव (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। स्तीर्ण-बर्हिषम् (स्तृ = आच्छादित करना, ढकना, फैलाना, ठकना, पूर्ण करना। बर्ह् - श्रेष्ठ होना, प्रधान होना, प्रयास करना, उद्यम-व्यवसाय करना, खेलना, बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)।। 49 ।।

769. तम् पत्नीभिः अनु गच्छेम देवाः, पुत्रैः भ्रातृभिः उत वा हिरण्यैः।
नाकम् गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके, तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥50॥

मन्त्रार्थ - देवाः = देवगण। तम् = उसको, उसे। पत्नीभिः = पत्नियों के साथ। पुत्रैः = पुत्रों के साथ। भ्रातृभिः = भ्राताओं के साथ। उत = ही। वा = अथवा। हिरण्यैः = हिरण्यों से, प्रकाशमानों द्वारा। नाकम् = अकुटिल, अविचल को। गृभ्णानाः = गृहण करने वाले। सुकृतस्य = सुकृत के। लोके = लोक में। तृतीये = तृतीय। पृष्ठे = पृष्ठ पर। दिवः = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय के। अधि = अधिगत, अधिकृत। रोचने = प्रकाश में। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल। गच्छेम = जायें **।।50 ।।**

भावार्थ - उपासना में परिवार तथा विद्वान् मार्गदर्शक के साथ होने से तथा अविचल, अकुटिल भावना से सफलता मिलती है। इस भाव को व्यक्त करते हुए कहा गया है कि विद्वान्, तेजस्वी, देवगण पत्नियों, पुत्रों, भ्राताओं के साथ ही अथवा प्रकाशमानों द्वारा अकुटिल, अविचल को गृहण करने वाले सुकृत के लोक में तृतीय पृष्ठ पर दिव्य अधिप्रकाश में अनुगमन करें **।। 50 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तम् (सर्वनाम)। पत्नीभिः (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। अनु (उपसर्ग)। गच्छेम (गम्-गच्छ् = जाना, जानना, पाना)। देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। पुत्रैः (पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। भ्रातृभिः (भृ = भरण करना)। उत (अव्यय)। वा (अव्यय)। हिरण्यैः (हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, शब्द करना, ध्वनि होना, हि = गति करना, रण् = शब्द करना, जाना, पण् = स्तुति करना, व्यवहार करना)। नाकम् (नक् - नक्क् = नष्ट होना, नष्ट करना, न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क -नाश होना)। गृभ्णानाः (गृह् - ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना, निवास करना, गृ = सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गल्भ् - जाना, जानना, पाना, ज्ञान होना, चतुर होना, साहस होना, धैर्य रखना, गृभ्-गर्भ् - ग्रहण करना, लेना, अन्दर होना, अन्तःवास करना)। सुकृतस्य (सु = अच्छा, उपसर्ग, कृ = करना)। लोके (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। तृतीये (संख्या, सर्वनाम)। पृष्ठे (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। अधि (उपसर्ग)। रोचने (रुच् = रुचना, प्रकाशित होना, प्रसन्न होना)। दिवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)।। 50 ।।

770. आ वाचो मध्यम् अरुहत् भुरण्युः, अयम् अग्निः सत्पतिः चेकितानः।
पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतत्, अधस्पदम् कृणुताम् ये पृतन्यवः ॥51॥

मन्त्रार्थ - अयम् = यह। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। भुरण्युः = धारण-पोषण करने वाले। सत्पतिः = सत्य के पति, सत्य के पालक, रक्षक। चेकितानः = विद्वान्। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। वाचो = वाणी। मध्यम् = मध्य को। अरुहत् = आरोहण किया, उत्पन्न हुआ, हिंसक को मारने वाला, गतिशील, व्यापक हुआ। ये = जो। पृथिव्या = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के। पृष्ठे = पृष्ठ पर। निहितो = निहित, स्थित। अधस्पदम् = अधस्पद को, निम्न पद को। पृतन्यवः = व्यापक। दविद्युतत् = विशेष प्रकाशमान। कृणुताम् = करो **॥ 51 ॥**

भावार्थ - विद्या, बल, धन, अग्रता, उच्चता का महत्व यही है कि उसका सदुपयोग निम्न पद अर्थात् असहाय, निर्बल लोगों के जीवन में प्रकाश करने में किया जाये। यह अग्नि अर्थात्, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, धारण-पोषण करने वाले सत्पति अर्थात् सत्य के पति, सत्य के पालक, रक्षक विद्वान् सम्यक् वाणी के मध्य आरोहण किया॥ वे जो पृथिवी के पृष्ठ पर निहित, स्थित अधस्पद को, निम्न पद को व्यापक तथा विशेष प्रकाशमान करें **॥ 51 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ (उपसर्ग)। वाचो (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। मध्यम् (सर्वनाम)। अरुहत् (अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, रुह् - आरोहण करना, उगना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, जन्म होना)। भुरण्युः (भुरण - पालन करना, धारण करना)। अयम् (सर्वनाम)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। सत्पतिः (सत् - होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। चेकितानः (चिकित् - जानना)। पृष्ठे (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। पृथिव्या (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। निहितो (नि - निरन्तर, निश्चित, हि - जाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना)। दविद्युतत् (दवि- विशेष, वैदिक उपसर्ग, दव-दु = जाना, द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना)। अधस्पदम् (अधः = नीचे, अव्यय। अधः - अधर् - न्यून करना, जीतना, निम्न गति करना, अ - नहीं, धृ - धारण करना)। कृणुताम् (कृ = करना)। ये (सर्वनाम)। पृतन्यवः (पृत -व्याप्त होना, जीवन होना, बलपूर्वक निकालना, पृ = पूर्ण करना)॥ 51॥

771. अयम् अग्निः वीरतमो वयोधाः, सहस्रियो द्योतताम् अप्रयुच्छन्।
विभ्राजमानः सरिरस्य मध्ये, उप प्र याहि दिव्यानि धाम॥ 52 ॥

मन्त्रार्थ- अयम् = यह। अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। वीरतमो = पराक्रमी, वीर। वयोधाः = वय या रचना को धारण करने वाले। अप्रयुच्छन् = प्रमाद न करते हुए। सहस्रियो = सहस्रों, हजारों को। द्योतताम् = प्रकाशित करें। विभ्राजमानः = विशेष प्रकाशित। सरिरस्य = प्रवाह के। मध्ये = मध्य। दिव्यानि = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। धाम = धामों को धारण करने योग्य को। उप = समीप। प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक। याहि = जायें, प्राप्त हों, प्राप्त करें **॥ 52 ॥**

भावार्थ - यह अग्नि स्वरूप परमात्मा निरन्तर सबको प्रकाशमान करता है। इसी प्रकार अग्नि स्वरूप अर्थात् ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् भी वीरतम **अर्थात्** अत्यन्त पराक्रमी, वय या रचना को धारण करने वाले प्रमाद न करते हुए। सहस्रों, हजारों को प्रकाशित करें॥ वे विशेष प्रकाशमान समाज के प्रमुख जन भी लोक प्रवाह के मध्य दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय धामों को अर्थात् धारण करने योग्य स्थानों को समीप प्रमुखता से प्राप्त हों, प्राप्त करें **॥ 52 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम)। अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। वीरतमो (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। वयोधाः (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, बहना, धा - धारण करना)। सहस्रियो (संख्या)। द्योतताम् (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना)। अप्रयुच्छन् (अ - नहीं, युच्छ् = प्रमाद करना, असावधान होना)। विभ्राजमानः (वि - विशेष, भ्राज् = चमकना, प्रकाशित होना)। सरिरस्य (सृ - जाना, सरकना, जानना, पाना, बहना, चलना, स - साथ, सहित, रस् - स्वाद लेना, प्रीति करना, शब्द करना)। मध्य (सर्वनाम)। उप (उपसर्ग)। प्र (उपसर्ग)। याहि (या- जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। दिव्यानि (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार

करना)। धाम (धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)॥ 52॥

772. सम् प्रच्यवध्वम् उप सम्प्रयात, अग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम्।
पुनः कृण्वानाः पितरा युवाना, अन्वातांसीत् त्वयि तन्तुम् एतम्॥53॥

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि। सम् = सम्यक् रूप से, भली भाँति। प्रच्यवध्वम् = प्रगति करो। उप = समीप। सम्प्रयात = सम्प्रयाण करो। देवयानान् = देवयानों को। पथो = पथ, मार्ग। कृणुध्वम् = करो। युवाना = हे युवा। पुनः = फिर। कृण्वानाः = कर्मशील। पितरा = पितर, ज्ञानी, पालन करने वालों ने। त्वयि = तुम में। एतम् = इसको। तन्तुम् = तन्तु, विस्तार को। अन्वातांसीत् = अनुशृंगार किया **॥ 53 ॥**

भावार्थ - हमारे पितर अर्थात् पूर्वज, पालक दिव्य पथ पर चलते रहे हैं। उन्होंने हमारे लिए विस्तृत अलंकरण, शृंगार अर्थात् उत्तम जीवन हेतु समुचित सुख-सुविधाएं उपलब्ध करायी हैं। हमें भी भविष्य के युवाओं के लिए इसी प्रकार कर्मशील रहकर प्रयास करना है। हे अग्नि, सम्यक् रूप से, भली भाँति प्रगति करो। समीप सम्प्रयाण करो। देवयानों को पथ करो अर्थात् अपना मार्ग बनाओ। हे युवा। पुनः कर्मशील पितरों ने अर्थात् ज्ञानी, पालन करने वालों ने तुम में इस तन्तु अर्थात् विस्तार को अलंकृत किया **॥ 53 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सम् (उपसर्ग)। प्रच्यवध्वम् (च्यु - जाना, गिरना, गिर पड़ना, भटकना)। उप (उपसर्ग)। सम्प्रयात (सम् = सम्यक्, भलीभांति, प्र - प्रकृष्ट, अधिक, या = जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पथो (पथ, पन्थ् - चलना, जाना, जानना, पाना, भूषित होना, भूषित करना, घूमना, फेंकना, त्यागना)। देवयानान् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना, या - जाना, जानना, प्राप्त होना, पहुँचना)। कृणुध्वम् (कृ = करना)। पुनः (अव्यय)। कृण्वानाः (कृ = करना)। पितरा (पि - जाना, जानना, पाना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। युवाना (युव् - बल होना, तरुण होना, युवा होना, यु - मिलाना, अलग करना, बन्धन करना)। अन्वातांसीत् (अनु = पश्चात्, पीछे, तंस- सजाना, अलंकृत करना, शृंगार करना)। त्वयि (सर्वनाम)। तन्तुम् (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। एतम् (सर्वनाम)॥ 53॥

773. उत् बुध्यस्व अग्ने प्रति जागृहि, त्वम् इष्टापूत्रे सम् सृजेथाम् अयम् च।
अस्मिन् सधस्थे अधि उत्तरस्मिन्, विश्वे देवा यजमानः च सीदत॥54॥

मन्त्रार्थ- अग्ने = हे अग्नि। **उत्** = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। **बुध्यस्व** = बोधमय, बोधयुक्त हो। **प्रति** = सम्बन्ध में, प्रत्येक में। **जागृहि** = जाग्रत हो। **त्वम्** = तुम। **इष्टापूत्रे** = विद्या, इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि की पूर्ति के लिए। **सम्** = सम्यक् रूप से, भली भाँति। **सृजेथाम्** = सृजन करो। **अयम्** = यह। **च** = और। **अस्मिन्** = इस, इसमें। **सधस्थे** = सहस्थान, सहगामी, साथ में। **अधि** = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च। उत्तरस्मिन = उत्तर में। **विश्वे** = सभ। **देवा** = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण। **च** = और। **यजमानः** = यजमान। **सीदत** = सीद, बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **॥ 54 ॥**

भावार्थ - हे अग्नि, उत्कृष्ट, बोधमय, बोधयुक्त हो। प्रत्येक में जाग्रत हो। तुम इष्ट अर्थात् विद्या, इच्छा, गति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि की पूर्ति के लिए सम्यक् रूप से, भली भाँति सृजन करो। इसके साथ में उच्च उत्तर में सभी देवगण अर्थात् दिव्यता युक्त तेजस्वी विद्वान् और यजमान अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान करने वाले उपासक बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **॥ 54 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - **उत्** (उपसर्ग)। **बुध्यस्व** (बुध् - बोध होना, बोध करना, जानना, समझना)। **अग्ने** (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **प्रति** (अव्यय)। **जागृहि** (जागृ - जगना, नींद न लेना)। **त्वम्** (सर्वनाम)। **इष्टापूत्रे** (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। **सम्** (उपसर्ग)। **सृजेथाम्** (सृज - छोड़ना, त्याग करना, विविध रूप से उत्पन्न करना, रचना करना)। **अयम्** (सर्वनाम)। **च** (अव्यय)। **अस्मिन्** (सर्वनाम)। **सधस्थे** (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। **अधि** (उपसर्ग)। उत्तरस्मिन (सर्वनाम)। **विश्वे** (सर्वनाम)। **देवा** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना,

स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **यजमानः** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना, दान करना)। **सीदत** (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)॥ 54 ॥

(179) सूक्त 13

774. येन वहसि सहस्रम्, येन अग्ने सर्व-वेदसम्। तेन इमम् यज्ञम् नो नय, स्वः देवेषु गन्तवे॥ 55 ॥

मन्त्रार्थ - **अग्ने** = हे अग्नि। **येन** = जिससे, जिसके द्वारा। **सहस्रम्** = हजार को। **येन** = जिससे, जिसके द्वारा। **सर्व-वेदसम्** = सर्व-वेद को। **वहसि** = वहन करते हो। **तेन** = उससे, उसके द्वारा। **इमम्** = इसका। **यज्ञम्** = यजन को। **नो** = हमारे लिए। **स्वः** = उत्पन्न, ऐश्वर्य, सृष्टि या जगत्। **देवेषु** = देवों में। **गन्तवे** = गतिमान, जाने वाले के लिए। **नय** = ले जाओ॥ **55 ॥**

भावार्थ - हे अग्नि स्वरूप परमात्मा, जिसके द्वारा सहस्रों अर्थात् हजारों को तथा जिसके द्वारा सर्व-वेद को, सर्वज्ञों को वहन करते हो, उसके द्वारा इस यजन को हमारे लिए देवों में ऐश्वर्य, सृष्टि गतिमान के लिए ले जाओ॥ **55 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - **येन** (सर्वनाम)। **वहसि** (वह् = वहन करना ले जाना, बहना, झरना, ढोना, ढो ले जाना)। **सहस्रम्** (संख्या)। **अग्ने** (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **सर्व-वेदसम्** (सर्व- सभी, विद् = जानना, समझना, विद्यमान होना)। **तेन** (सर्वनाम)। **इमम्** (सर्वनाम)। **यज्ञम्** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना)। **नो** (सर्वनाम)। **नय** (नी - नय - जाना, हिलना, पहुँचना, संरक्षण करना)। **स्वः** (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **देवेषु** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **गन्तवे** (गम् = जाना, जानना, पाना)॥ **55 ॥**

775. अयम् ते योनिः ऋत्वियो, यतो जातो अरोचथाः।
तम् जानन् अग्ने आरोह, अथ आ नो वर्धया रयिम्॥ 56 ॥

मन्त्रार्थ- अयम् = यह। ते = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए। ऋत्वियो = ऋतु सम्बन्धी। योनिः = बन्धन, मिलन। (है) यतो = जिससे। जातो = उत्पन्न हुआ। अरोचथाः = रुचा, प्रसन्न, उत्साहित, प्रकाशित हुआ, प्रकाश हुआ। अग्ने = हे अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान्। तम् = उसको, उसे। जानन् = जानते हुए। आरोह = आरोहण करो। अथ = इसके अनन्तर। नो = हमको, हमारे लिए। आ = सम्यक्, सम्पूर्ण। रयिम् = विद्या, ज्ञान को। वर्धया = बढ़ाओ॥ **56 ॥**

भावार्थ - ऋतु सम्बन्धी समुचित जानकारी का उपयोग कर हम उन्नति कर सकते हैं॥ **56 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। योनिः (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। ऋत्वियो (ऋ = जाना, जानना, ऋतु)। यतो (सर्वनाम)। जातो (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। अरोचथाः (अ = नहीं, अ = भूतकालिक उत्साह होना, रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)। तम् (सर्वनाम)। जानन् (ज्ञा-जा - जानना, समझना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। अग्ने (अग् = जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, गति करना, घूमना, टेढ़ा जाना, आगे जाना, लेना, ग्रहण करना)। आ (उपसर्ग)। रोह (रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। अथ (अव्यय)। नो (सर्वनाम)। वर्धया (वृध् = बढ़ना, चमकना, बोलना)। रयिम् (रय्-रि, री - चलना, जाना, जानना, पाना, री-रै - शब्द करना)॥ 56 ॥

776. तपः च तपस्यः च शैशिरौ ऋतू, अग्नेः अन्तः श्लेषो असि, कल्पेताम् द्यावापृथिवी,
कल्पन्ताम् आप ओषधयः, कल्पन्ताम् अग्नयः पृथक्, मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः।
ये अग्नयः समनसो, अन्तरा द्यावापृथिवी इमे।
शैशिरौ ऋतू अभिकल्पमाना इन्द्रम् इव, देवा अभिसंविशन्तु तया,
देवतया अङ्गिरस्वत् ध्रुवे सीदतम्॥ 57 ॥

मन्त्रार्थ- तपः = तप। च = और। तपस्यः = तप। च = और। शैशिरौ = शिशिर। ऋतू = ऋतु। अग्नेः = अग्नि का। अन्तः = बीच में, भीतर। श्लेषो =श्लेष। असि = हो। कल्पेताम् = कल्पना करें, बनायें, रचना करें। द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी। कल्पन्ताम् = कल्पना करें, बनायें, रचना करें। आप = आप, व्याप्त, व्यापक। ओषधयः = ओषधियाँ। कल्पन्ताम् = कल्पना करें, बनायें, रचना करें। अग्नयः = अग्निगण, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान, अग्नियाँ। पृथक् = अलग। मम = मेरा। ज्यैष्ठ्याय = ज्येष्ठ के लिए। सव्रताः = व्रत वाला। ये = जो। अग्नयः = अग्निगण, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान, अग्नियाँ। समनसो = समान मन वाले। अन्तरा = प्राणवान्, अन्तर, भीतर। द्यावापृथिवी = अग्रगामी विस्तार, प्रकाश, द्यावा और पृथिवी। इमे = यह, इस, ये। शैशिरौ = शिशिर। ऋतू = ऋतु। अभिकल्पमाना = अभिकल्प करने वाला। इन्द्रम् = इन्द्र को। इव = समान, की भाँति, के समान। देवा = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने। अभिसंविशन्तु = सर्वथा सन्मुखता से सम्यक् प्रवेश करो। तया = उसके द्वारा। देवतया = देवत्व के लिए, दिव्यता के लिए। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला। ध्रुवे = अचल, स्थिर, अविचल गतिशील। सीदतम् = सीद, बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों।। 57।।

भावार्थ - शिशिर ऋतु का वर्णन किया गया है। ऋतु सम्बन्धी समुचित जानकारी का उपयोग कर हम उन्नति कर सकते हैं **।। 57 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तपः (तप - ऐश्वर्य होना, तपना, दाह होना, तप करना, तप्त होना, तप्त करना, जलना, जलाना, तृषा होना)। च (अव्यय)। तपस्यः (तप - ऐश्वर्य होना, तपना, दाह होना, तप करना, तप्त होना, तप्त करना, जलना, जलाना, तृषा होना)। शैशिरौ (शि = तेज करना, तीक्ष्ण करना, कल्याण करना, शिष् - शेष रखना, बचाना, प्रयोजन करना)। ऋतू (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। श्लेषो (श्लिष = आलिङ्गन करना, गले लगाना, सटे रहना, चिपके रहना, एका करना, मिलाप करना। श्लिष = दग्ध करना, जलाना)। असि (अस् - होना)। कल्पेताम् (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करन, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। कल्पन्ताम् (कल्प् - कल्पना करना, विचार करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। आप (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। ओषधयः (उषध्- ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा)। अग्नयः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। पृथक् (अव्यय)। मम (सर्वनाम)। ज्यैष्ठ्याय (ज्या - वृद्ध होना, बड़ा होना, बर्द्धित होना, जि - जीतना, जेष् - जाना, चलना, जानना, पाना, जिष् - सेवा करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना)। सव्रताः (स = साथ, सहित (उपसर्ग), वृत् = रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ = नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)। ये (सर्वनाम)। समनसो (स - सहित, साथ, सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। अन्तरा (अन् = प्राणवान् होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, अन्तः - बीच में)। द्यावापृथिवी (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करन, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। इमे (सर्वनाम)। शैशिरौ (शि = तेज करना, तीक्ष्ण करना, कल्याण करना, शिष् - शेष रखना, बचाना, प्रयोजन करना)। ऋतू (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। अभिकल्पमाना (अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, कल्प = कल्पना करना, विचार करना, रचना करना)। इन्द्रम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। इव (अव्यय)। देवा` (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अभिसंविशन्तु (अभि - अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, सम् - सम्यक्, वि - विशेष, विश् - प्रवेश करना, अन्तर्गमन करना, सूचना करना, प्रेरणा करना)। तया (सर्वनाम)। देवतया (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। ध्रुवे (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। सीदतम् (सीद-

जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)।। 57 ।।

777. परमेष्ठी त्वा सादयतु, दिवः पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्।
विश्वस्मै प्राणाय अपानाय, व्यानाय विश्वम् ज्योतिः यच्छ।
सूर्यः ते अधिपतिः तया, देवतया अङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ।। 58 ।।

मन्त्रार्थ - परमेष्ठी = परम में स्थित। त्वा = तुमको। ज्योतिष्मतीम् = प्रकाशवान् को। दिवः = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। पृष्ठे = पृष्ठ पर। सादयतु = स्थापित करे। विश्वस्मै = सभी के लिए। प्राणाय = प्राण के लिए। अपानाय = अपान के लिए। व्यानाय = व्यान के लिए। विश्वम् = सबको। ज्योतिः = प्रकाश। यच्छ = दो, प्रदान करो। ते = तुम्हारा। अधिपतिः = अधिपति। सूर्यः = उत्पन्न करने, गति करने वाले, ऐश्वर्यवान्। तया = उसके द्वारा। देवतया = देवत्व द्वारा, दिव्यता द्वारा। अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, प्रगतिशील के समान। ध्रुवा = अविचल गतिशील। सीद = बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **।। 58 ।।**

भावार्थ - परम में स्थित परमात्मा तुम प्रकाशवान् को दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय पृष्ठ पर स्थापित करे। सभी के लिए प्राण के लिए, अपान के लिए, व्यान के लिए सबको प्रकाश प्रदान करो।। तुम्हारा अधिपति सूर्यः **अर्थात्** उत्पन्न करने वाले, ऐश्वर्यवान् परमात्मा उसके देवत्व द्वारा अंगिरा के समान अर्थात् विद्वान्, प्रगतिशील के समान ध्रुव अर्थात् अविचल गतिशील होकर संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **।। 58 ।।**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - परमेष्ठी (परम = अत्यन्त, उच्चतम (सर्वनाम), स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना)। त्वा (सर्वनाम)। सादयतु (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। दिवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। पृष्ठे (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूंछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। ज्योतिष्मतीम् (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। विश्वस्मै (सर्वनाम)। प्राणाय (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। अपानाय (अ - नहीं, पा-पान - पीना, पान करना, अप - पालन करना, अन - जीना, समर्थ होना, जाना)। व्यानाय (वि - विशेष, अन् = प्राण होना, जीवन होना)। विश्वम् (सर्वनाम)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। यच्छ (यच्छ = देना)। सूर्यः (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। ते (सर्वनाम)। अधिपतिः (अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, गिरना)। तया (सर्वनाम)। देवतया (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। ध्रुवे (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। सीदतम् (सीद - जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)।। 58 ।।

(180) सूक्त 14

778. लोकम् पृण छिद्रम् पृण, अथो सीद ध्रुवा त्वम्। इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिः, अस्मिन् योनौ असीषदन्।। 59 ।।

मन्त्रार्थ - त्वम् = तुम। लोकम् = लोक को, दर्शन को। पृण = पूर्ण करो। छिद्रम् = छिद्र को। पृण = पूर्ण करो। अथो = इसके अनन्तर। ध्रुवा = ध्रुव, अविचल गतिशील, अविचल विद्वान्। सीद = बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों। त्वा = तुमको। इन्द्राग्नी = इन्द्र और अग्नि। बृहस्पतिः = विराट, महान्, बृहस्पति। अस्मिन् = इस, इसमें। योनौ = योनि में, बन्धन में, मिलाने अलग करने में। असीषदन् = संचरण किया, प्रतिष्ठित किया। **।। 59 ।।**

भावार्थ - तुम लोक को, दर्शन को पूर्ण करो। छिद्र को पूर्ण करो। इसके अनन्तर ध्रुव अर्थात् अविचल गतिशील, अविचल विद्वान् होकर संचरण करें, प्रतिष्ठित हों। तुमको इन्द्र और अग्नि, बृहस्पति, विराट, महान्। इस योनि में, बन्धन में, मिलाने अलग करने में संचरण किया, प्रतिष्ठित किया।। 59 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - लोकम् (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। पृण (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना)। छिद्रम् (छिद्र - छेद करना)। अथो (अव्यय)। सीद (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। ध्रुवा (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। त्वम् (सर्वनाम)। इन्द्राग्नी (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना, पीना)। त्वा (सर्वनाम)। बृहस्पतिः (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। अस्मिन् (सर्वनाम)। योनौ (यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, बन्धन होना, संयोग-वियोग करना)। असीषदन् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सीद - जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)॥ 59॥

779. ताः अस्य सूददोहसः, सोमम् श्रीणन्ति पृश्नयः। जन्मन् देवानाम् विशः, त्रिषु आ रोचने दिवः॥60॥

मन्त्रार्थ - ता = वे। अस्य = इसका। सूददोहसः = पवित्रता का दोहन करने वाले का। पृश्नयः = प्रश्नकर्ता। देवानाम् = देवों का। विशः = विश, प्रतिष्ठित, प्रवेशी। जन्मन् = जन्म। त्रिषु = तीनों में। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। रोचने = प्रकाश में। दिवः = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। सोमम् = सोम को, ऐश्वर्यवान् को। श्रीणन्ति = सेवा करते हैं॥ 60॥

भावार्थ - पवित्रता का दोहन करने वाले दिव्य प्रतिष्ठित, प्रवेशी जन्म के प्रश्नकर्ता तीनों प्रकाश में दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय सोम अर्थात् सृजनकर्ता, ऐश्वर्यवान्, अन्तकर्ता को सेवा करते हैं॥ 60॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ता (सर्वनाम)। अस्य (सर्वनाम)। सूददोहसः (सूद् - टपकना, झरना, आश्रय करना, शुद्ध करना, पवित्र करना, दुह - दूध निकालना, दोहना, रिक्त करना, लेना, खींचना)। सोमम् (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। श्रीणन्ति (श्री = सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना, श्री-श्रीण = पकाना, रांधना)। पृश्नयः (पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सींचना, सहन करना)। जन्मन् (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। देवानाम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। विशः (विश - भीतर जाना, चारों ओर फैलना)। त्रिषु (त्रि = तीन, संख्या, सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। रोचने (रुच् = रुचना, प्रकाशित होना, प्रसन्न होना)। दिवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)॥ 60॥

780. इन्द्रम् विश्वा अवीवृधन्, समुद्रव्यचसम् गिरः। रथीतमम् रथीनाम्, वाजानाम् सत्पतिम् पतिम्॥61॥

मन्त्रार्थ - समुद्रव्यचसम् = समुद्र की व्यापकता को। गिरः = वाणियाँ, बोध, सिञ्चन। रथीनाम् = रथियों का। रथीतमम् = अत्यन्त रथी को। वाजानाम् = वाजों का, विद्याओं का, गतियों का। सत्पतिम् = सत्य के पति को, सत्य के पालक को, रक्षक को। पतिम् = पति को, अधिपति, रक्षक, पालक। इन्द्रम् = इन्द्र को। विश्वा = विश्व ने, सभी ने। अवीवृधन् = वर्धित किया॥ 61॥

भावार्थ - समुद्र की व्यापकता, वाणियाँ, बोध, सिञ्चन, रथियों का अत्यन्त रथी को वाजों का, विद्याओं का, गतियों का सत्पति अर्थात् सत्य के पति को, सत्य के पालक-रक्षक इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा को सभी ने उपासना-साधना द्वारा अपने जीवन में वर्धित किया अर्थात् उसके स्वरूप को, चेतना को अपनाया॥ 61॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इन्द्रम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। विश्वा (सर्वनाम)। अवीवृधन् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना, वी- जाना, व्यापना, वृध् - बढ़ना)। समुद्रव्यचसम् (सम् = सम्यक्, भलीभांति, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना, व्यच् - व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, ठगना, वि - विशेष, अच् - जाना, मरना, आदर करना, याचना करना)। गिरः (गृ - सींचना, गीला करना, समझना, जानना, गृ - शब्द करना)। रथीतमम् (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। रथीनाम् (रम

- रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। वाजानाम् (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। सत्पतिम् (सत् - होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। पतिम् (पत् = जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)।61।।

781. प्रोथत् अश्वो न यवसे अविष्यन्, यदा महः संवरणात् वि अस्थात्।
आत् अस्य वातो अनु वाति शोचिः, अध स्म ते व्रजनम् कृष्णम् अस्ति॥62॥

मन्त्रार्थ - अश्वो = अश्व, तीव्र गति युक्त, व्यापक। न = के समान। यवसे = यवस् के लिए, मिश्रित-पृथक् करने वाले के लिए। अविष्यन् = रक्षा करते हुए। प्रोथत् = व्याप्त हुआ॥ यदा = जब। महः = महान्। संवरणात् = सम्यक् वरण से। अस्थात् = स्थित हुआ। आत् = **पुनः**। अस्य = इसका। वातो = वात, वायु के समान तीव्र गति वाला। अनु = पश्चात्, पीछे, अनुकूल। वाति = चलता है, वायु के समान तीव्र गति से बहता है॥ **शोचिः** = पवित्रकर्ता। अध = इसके अनन्तर। स्म = ही। ते = तुम्हारा। व्रजनम् = पूर्ण सिद्ध। कृष्णम् = आकर्षण। अस्ति = है **॥62॥**

भावार्थ - तीव्र गति युक्त, व्यापक होने पर ही विशेष उपलब्धि होती है, यही सन्देश दिया गया है।**॥62॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - प्रोथत् (प्रुथ - शरण लेना, व्याप्त होना, प्रु - अधिक होना, गति करना, हिलना)। अश्वो (अश् = व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। न (अव्यय)। यवसे (यु = मिलाना, अलग करना, यव = समाप्त करना, उपसंहार करना)। अविष्यन् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अव् = रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। यदा (सर्वनाम)। महः (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। संवरणात् (सम् - सम्यक्, भलीभाँति, (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। वि (उपसर्ग)। अस्थात् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना, स्था- स्थित होना, ठहरना)। आत् (आत् = पुनः (अव्यय), अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। अस्य (सर्वनाम)। वातो (वात - सुखी होना, आनन्द करना, सेवा करना, जाना, वा - गति करना, बहना, पवन की भाँति चलना)। अनु (उपसर्ग)। वाति (वात - सुखी होना, आनन्द करना, सेवा करना, जाना, वा - गति करना, बहना, पवन की भाँति चलना)। शोचिः (शुच् = शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना, दुःख मानना, शोक करना)। अध (अव्यय)। स्म (अस् - होना)। ते (सर्वनाम)। व्रजनम् (व्रज = जाना, पूर्ण करना, सिद्ध करना)। कृष्णम् (कृष् = विलेखन, कर्षण करना, खींचना, आकर्षण होना, रेखा करना)। स्म (अव्यय)॥ 62॥

782. आयोः त्वा सदने सादयामि, अवतः छायायाम् समुद्रस्य हृदये।
रश्मीवतीम् भास्वतीम् आ या द्याम् भासि, आ पृथिवीम् उरु अन्तरिक्षम्॥63॥

मन्त्रार्थ- त्वा = तुमको। आयोः = आयु के। सदने = सदन में, स्थान में। अवतः = रक्षा करते हुए की। छायायाम् = छाया में। समुद्रस्य = समुद्र के। हृदये = हृदय में। सादयामि = स्थापित करता हूँ, बैठाता हूँ॥ रश्मीवतीम् = रश्मीवती को, किरण युक्त को। भास्वतीम् = प्रकाशमान को। या = जो। द्याम् = द्यु को, सबसे बढ़कर, विशिष्ट, प्रकाशमय को। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। पृथिवीम् = पृथिवी को। उरु = बहुत। अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष या आकाश **को।** आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। भासि = प्रकाश करते हो॥**63॥**

भवार्थ - हमें प्रकाशमान होना है, प्रकाश का विस्तार करना है। तभी हम दिव्य प्रकाश पाने के अधिकारी बन सकते हैं**॥63॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आयोः (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय = जाना, जानना, पाना, ग़ति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु = मिलना, अलग करना)। त्वा (सर्वनाम)। सदने (सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। सादयामि (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। अवतः (अव् = रक्षा करना, पालन

करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। छायायाम् (छद् - आच्छादित करना, ढकना, हटाना, छिपाना, बचाना, बलवान् होना या करना, छा-छो - छाया करना, कतरना, काटना)। समुद्रस्य (सम् = सम्यक्, भलीभांति, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना, द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। हृदये (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। रश्मीवतीम् (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। भास्वतीम् (भास् - प्रकाशित होना, चमकना)। आ (उपसर्ग)। या (सर्वनाम)। द्याम् (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना)। भासि (भास् - प्रकाशित होना, चमकना)। पृथिवीम् (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। उरु (सर्वनाम)। अन्तरिक्षम् (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)।63॥

(181) सूक्त 15

783. परमेष्ठी त्वा सादयतु, दिवः पृष्ठे व्यचस्वतीम् प्रथस्वतीम्, दिवम् यच्छ दिवम् दृंह दिवम् मा हिंसीः।
विश्वस्मै प्राणाय अपानाय, व्यानाय उदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय।
सूर्यः त्वा अभि पातु मह्या, स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया, देवतया अङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्।64॥

मन्त्रार्थ- परमेष्ठी = परम में स्थित। त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । सादयतु = स्थापित करे। दिवः = दिव्य, तेजस्वी, ज्योतिर्मय। पृष्ठे = पृष्ठ पर। व्यचस्वतीम् = व्यापकतायुक्त को। प्रथस्वतीम् = प्रथस्वती को, विस्तार युक्त को। दिवम् = दिव को, तेजस्वी को। यच्छ = दो, प्रदान करो। दिवम् = दिव को, तेजस्वी को। दृंह = दृढ़ करो, बढ़ाओ। दिवम् = दिव को, तेजस्वी को । मा = नहीं, मत । हिंसीः = हिंसा करो । विश्वस्मै = विश्व, सभी, सब के लिए । प्राणाय = प्राण के लिए । अपानाय = अपान के लिए । व्यानाय = व्यान के लिए । उदानाय = उदान के लिए । प्रतिष्ठायै = प्रतिष्ठा के लिए, प्रकृष्ट स्थिति के लिए । चरित्राय = चरित्र क लिए, विचरण करने वाले के लिए । सूर्यः = सूर्ये, उत्पन्न करने वाला । त्वा = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा । अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा । पातु = पालन करे, रक्षा करे । मह्या = पूज्या, महिमावान्, महान् । स्वस्त्या = कल्याण के लिए, सुख के लिए । छर्दिषा = छन्द । शन्तमेन = कल्याणकारी, शान्तिमय, शमनकारी । तया = उसके द्वारा । देवतया = देवत्व के लिए, दिव्यता के लिए । अङ्गिरस्वत् = अंगिरा के समान, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला । ध्रुवे = अचल, स्थिर, अविचल गतिशील । सीदतम् = सीद, बैठें, संचरण करें, प्रतिष्ठित हों **॥ 64 ॥**

भावार्थ - परमेष्ठी **अर्थात्** परम में स्थित परमात्मा दिव्यता में स्थापित करता है, हमें दिव्यता प्रदान करता है। हमारा भी दायित्व है कि हम दिव्यता का संरक्षण करें, विस्तार करें, उसका हनन न करें **॥ 64 ॥**

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - परमेष्ठी (परम = अत्यन्त, उच्चतम (सर्वनाम), स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना)। त्वा (सर्वनाम)। सादयतु (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। दिवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। पृष्ठे (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना, भरना, स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना, बैठना, पृश् = प्रश्न करना, पूछना, पृश्, पृष् = जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, सींचना, सहन करना)। व्यचस्वतीम् (व्यच् - व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, ठगना, वि - विशेष, अच् - जाना, मरना, आदर करना, याचना करना)। प्रथस्वतीम् (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। दिवम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। यच्छ (यच्छ = देना)। दिवम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। दृंह (दृंह् = बढ़ना, दृढ़ होना, दृढ़ करना)। दिवम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। मा (अव्यय)। हिंसीः (हिंस्

- हिंसा करना, मारना, बध करना, दुःख देना, सताना)। विश्वस्मै (सर्वनाम)। प्राणाय (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। अपानाय (अ - नहीं, पा-पान - पीना, पान करना, अप - पालन करना, अन - जीना, समर्थ होना, जाना)। व्यानाय (वि - विशेष, अन् = प्राण होना, जीवन होना)। उदानाय (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, उद् = उत्कृष्ट होना, उच्च होना, उदार होना, उन्द् - गीला करना, आद्र होना, कष्ट होना, अन् = प्राण होना, जीवन होना)। प्रतिष्ठायै (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, तिष्ठ - स्था - स्थित होना, ठहरना, प्रतीक्षा करना)। चरित्राय (चर -जाना, खाना, आचरण करना)। सूर्यः (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। अभि (उपसर्ग)। पातु (पा = पालन करना, बचाना)। मह्या (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। स्वस्त्या (सु - अच्छा, अस् - होना, स्वस्ति = कल्याण)। छर्दिषा (छर्दिषा - सम्यक् दीपन करना, कहना, उद्गार होना, वमन होना)। शन्तमेन (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। तया (सर्वनाम)। देवतया (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। अङ्गिरस्वत् (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। ध्रुवे (ध्रुव् = अचल होना, स्थिर होना, जाना, गति करना, जानना, पाना)। सीदतम् (सीद- जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, खिन्न होना, सूखना, शुष्क होना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। 64 ।।

784. सहस्रस्य प्रमा असि, सहस्रस्य प्रति-मा असि,
सहस्रस्य उन्मा असि, साहस्रो असि सहस्राय त्वा ।। 65 ।।

मन्त्रार्थ- सहस्रस्य = हजार का। प्रमा = प्रमा, प्रमाण। असि = हो। सहस्रस्य = हजार का। प्रति-मा = प्रतिमा, प्रति-मान। असि = हो। सहस्रस्य = हजार के। उन्मा = उन्मान। असि = हो। साहस्रो = हजार। असि = हो। सहस्राय = हजार के लिए। त्वा = तुमको **।। 65 ।।**

भावार्थ - उपासकों के लिए शुभकामना है कि सहस्रों के प्रमाण, प्रतिमान, उन्मान बनो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सहस्रस्य (संख्या)। प्रमा (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, मा - मान करना)। असि (अस् - होना)। प्रति-मा (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, मा - मापना, तुलना करना)। उत् (उपसर्ग)। मा (अव्यय)। साहस्रो (संख्या)। सहस्राय (संख्या)। त्वा (सर्वनाम)।। 65 ।।

इति पञ्चदशो अध्यायः